भगवान् महावीरके २५००वें निर्वाण महोत्सवके उपलक्ष्यमें

भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ

[तृतीय भाग]

मध्यप्रदेश

भारतीय ज्ञानपीठके
संयोजन, सम्पादन एवं निर्देशनके अन्तर्गत

लेखक
बलभद्र जैन

प्रकाशक
भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी,
हीराबाग, बम्बई–४

भारतके दिगम्बर जैन तीर्थ, भाग–३
मध्यप्रदेश

प्रकाशक :
भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी,
हीराबाग, बम्बई–४

प्रथम संस्करण : १९७६
मूल्य : तीस रुपये

प्राप्ति-स्थान :
• भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, हीराबाग, बम्बई–४
• भारतीय ज्ञानपीठ, बी/४५-४७ कॅनॉट प्लेस, नयी दिल्ली–११०००१

मुद्रक
सन्मति मुद्रणालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी–२२१००५

आमुख

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटीको इस बातका बहुत हर्ष है कि उसने भगवान् महावीरके २५००वें निर्वाण महोत्सव वर्षके उपलक्ष्यमें 'भारतके दिगम्बर जैन तीर्थ' ग्रन्थको पाँच या छह भागोंमें प्रकाशित करनेकी जिस योजनाका समारम्भ किया था उसका अब यह तृतीय भाग भी प्रकाशित होकर आपके हाथोंमें पहुँच रहा है। इसका सम्बन्ध मध्यप्रदेशके जैन तीर्थोंसे है। पूर्व प्रकाशित इसके प्रथम एवं द्वितीय भागोंमें क्रमशः उत्तरप्रदेश (दिल्ली तथा पोदनपुर-तक्षशिला सहित) और बंगाल-बिहार-उड़ीसाके तीर्थोंका उनके पौराणिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, स्थापत्य एवं कला आदिके सन्दर्भमें विस्तृत विवेचन किया गया है।

वास्तवमें हमारी पीढ़ीका यह परम सौभाग्य है कि हमें भगवान् महावीरके निर्वाणके ढाई हजारवें वर्षकी परिसमाप्तिके इस महान् पर्वको मनानेका अवसर प्राप्त हुआ। हमारी सद्-आस्थाको आधार देनेवाले, हमारे जीवनको कल्याणमय बनानेवाले, हमारी धार्मिक परम्पराकी अहिंसामूलक संस्कृतिकी ज्योतिको प्रकाशमान रखनेवाले, जन-जनका कल्याण करनेवाले हमारे तीर्थंकर ही हैं। जन्म-मरणके भवसागरसे उबार-कर अक्षय सुखके तीरपर ले जानेवाले हमारे तीर्थंकर प्रत्येक युगमें 'तीर्थ' का प्रवर्तन करते हैं अर्थात् मोक्षका मार्ग प्रशस्त करते हैं। तीर्थंकरोंकी इस महिमाको अपने हृदयमें बसाये रखने और अपने श्रद्धानको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिए हमने उन सभी विशेष स्थानोंको 'तीर्थ' कहा जहाँ-जहाँ तीर्थंकरोंके जन्म आदि 'कल्याणक' हुए, जहाँसे केवली भगवान्, महान् आचार्य और साधु 'सिद्ध' हुए, जहाँके 'अतिशय' ने श्रद्धालुओं-को अधिक श्रद्धायुक्त बनाया, उन्हें धर्म-प्रभावनाके चमत्कारोंसे साक्षात्कार कराया। ऐसे पावन स्थानोंमें-से कुछ हैं जो ऐतिहासिक कालके पूर्वसे ही पूजे जाते हैं और जिनका वर्णन पुराण-कथाओंकी परम्परासे पुष्ट हुआ है। अन्य तीर्थोंके साथ इतिहासकी कोटिमें आनेवाले तथ्य जुड़ते चले गये हैं और मनुष्यकी कलाने उन्हें अलंकृत किया है। स्थापत्य और मूर्तिकलाने एवं विविध शिल्पकारोंने इन स्थानोंके महत्त्वको बढ़ाया है। अनादि-अनन्त प्रकृतिका मनोरम रूप और वैभव तो प्रायः सभी तीर्थोंपर विद्यमान है।

ऐसे सभी तीर्थ-स्थानोंकी वन्दनाका प्रबन्ध और तीर्थोंकी सुरक्षाका दायित्व समाजकी जो संस्था अखिल भारतीय स्तरपर वहन करती है, उसे गौरवकी अपेक्षा अपनी सीमाओंका ध्यान अधिक रहता है, और यही ऐसी संस्थाओंके लिए शुभ होता है, यह ज्ञान उन्हें सक्रिय रखता है।

इस समय तीर्थक्षेत्र कमेटीके सामने इन पवित्र स्थानोंकी सुरक्षा, पुनरुद्धार और नव-निर्माणकी दिशामें एक बड़ा और व्यापक कार्यक्रम है। इसे पूरा करनेके लिए हमारे प्रत्येक भाई-बहनको यथासामर्थ्य योगदान करनेकी अन्तःप्रेरणा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। यह प्रेरणा मूर्त रूप ले और यात्री भाई-बहनोंको तीर्थ-वन्दनाका पूरा सुफल, आनन्द और ज्ञान प्राप्त हो, तीर्थक्षेत्र कमेटीका इस ग्रन्थमालाके प्रकाशनमें यह दृष्टिकोण रहा है।

ग्रन्थ प्रकाशनकी इस परिकल्पनाको पग-पगपर साधनेका सर्वाधिक श्रेय श्री साहू शान्तिप्रसादजीको है, जिनके सभापतित्व कालमें इस ग्रन्थकी सामग्रीके संकलन और लेखनका कार्य प्रारम्भ हुआ और अब तक इसके तीन भागोंका प्रकाशन उनके निर्देशनमें सम्पन्न हुआ। आगेके भाग भी, जिनका सम्बन्ध राजस्थान-गुजरात-महाराष्ट्र तथा दक्षिण भारतके तीर्थ-स्थलों एवं कलाक्षेत्रोंसे है, उनके निर्देशनमें तैयार हो रहे हैं।

हमारा पूरा प्रयत्न है कि ये सभी भाग शीघ्र ही प्रकाशमें आ जायें। तीर्थक्षेत्र कमेटीकी ओरसे इस अवसर-पर मैं एक बार फिरसे श्री साहूजीके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ।

तीर्थक्षेत्र कमेटी और भारतीय ज्ञानपीठके संयुक्त तत्त्वावधानमें इस ग्रन्थमालाकी सामग्रीका संकलन, लेखन और प्रकाशन हुआ है, हो रहा है। प्रस्तुत ग्रन्थके प्रकाशनमें जिन महानुभावोंका सहयोग प्राप्त हुआ है, मैं उन सभीका तीर्थक्षेत्र कमेटीकी ओरसे आभारी हूँ।

लालचन्द हीराचन्द
सभापति
भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई

दिनांक २९ जून १९७६

प्रस्तुति

'भारतके दिगम्बर जैन तीर्थ' ग्रन्थमालाका यह तीसरा भाग है जो प्रथम दो भागोंकी ही भाँति भगवान् महावीरके २५००वें निर्वाण महोत्सव वर्षकी पुण्य स्मृतिमें समर्पित है। ग्रन्थमालाकी प्रकाशन योजनाके पूर्ण होनेमें इसके अभी दो या तीन भाग और शेष रह जाते हैं। सर्वेक्षण, सामग्री-संकलन, लेखन एवं सम्पादन कार्य चल रहा है। प्रयास यही है कि शेष सभी भाग भी आपके हाथोंमें यथाशीघ्र पहुँचें।

जैसा कि अब तक प्रकाशित इन तीन भागोंके अवलोकनसे स्पष्ट होगा, तीर्थोंके परिचयात्मक वर्णनमें पौराणिक, ऐतिहासिक और स्थापत्य एवं कलापरक सामग्रीका संयोजन बहुत ही परिश्रम और सूझ-बूझसे किया गया है। ग्रन्थ लेखक पं. बलभद्रजीको इस कार्यमें व्यापक अनुभव है, लगन तो है ही। सामग्रीको सर्वांगीण बनानेकी दिशामें जो भी सम्भव था, कमेटीके साधन, ज्ञानपीठका निर्देशन एवं श्री साहू शान्ति-प्रसादजीका मार्गदर्शन और प्रेरणा पण्डितजीको उपलब्ध रही है। भारतीय ज्ञानपीठकी ओरसे सामग्रीका न केवल सम्पादकीय नियमन हुआ है अपितु सारे मानचित्रोंका निर्माण प्रथम बार कराया गया है। तीर्थक्षेत्र कमेटीने यात्राओंके नियोजन, सामग्री-संकलन, सम्पादन, लेखन तथा फोटोग्राफ्स प्राप्त कराने, मानचित्र बनवाने और ग्रन्थमालाको प्रकाशित करनेमें पर्याप्त धन व्यय किया है। इस सारी सामग्रीपर और इसके संयोजन-प्रकाशनपर भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटीका सम्पूर्ण अधिकार है।

सामग्री संकलन, लेखन-कार्य और मुद्रण-प्रकाशनपर यद्यपि अधिक धनराशि व्यय हुई है फिर भी तीर्थक्षेत्र कमेटीने इस ग्रन्थमालाको सर्व-सुलभ बनानेकी दृष्टिसे केवल लागत मूल्यके आधारपर दाम रखनेका निर्णय किया है। भारतीय ज्ञानपीठका व्यवस्था सम्बन्धी जो व्यय हुआ है, और जो साधन-सुविधाएँ इस कार्यके लिए उपलब्ध की गयी हैं, उनका समावेश इस व्यय-राशिमें नहीं किया गया है। भाग १ और २ की तरह इस भागकी भी अलग-अलग जनपद सम्बन्धी पुस्तिकाएँ छपायी गयी हैं ताकि सम्बन्धित तीर्थक्षेत्र, चाहे तो, उतने ही अंशकी प्रतियाँ भी प्राप्त कर सकें।

तीर्थक्षेत्र कमेटी तथा भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा नियोजित की गयी पं. बलभद्रजीकी यात्राओंके अवसर-पर तीर्थोंके मन्त्रियों और प्रबन्धकोंसे जो लेखन-सामग्री या सूचनाएँ उपलब्ध हुईं तथा जो सहयोग प्राप्त हुआ उसके लिए हम अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

हमारा विश्वास है कि यह प्रकाशन पर्याप्त उपयोगी, सुन्दर, ज्ञानवर्धक और तीर्थ-वन्दनाके लिए प्रेरणादायक माना जायेगा।

पूरा प्रयत्न करनेपर भी त्रुटियाँ रह जाना सम्भव है। अतः इस ग्रन्थके सम्बन्धमें सुझावों और संशोधनोंका हम स्वागत करेंगे।

लक्ष्मीचन्द्र जैन
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ,
नयी दिल्ली–११०००१
दिनांक : २७ जून, १९७६

जयन्तीलाल एल. परिख
महामन्त्री
भा. दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई

प्राक्कथन

तीर्थ

तीर्थ-मान्यता

प्रत्येक धर्म और सम्प्रदायमें तीर्थोंका प्रचलन है। हर सम्प्रदायके अपने तीर्थ हैं, जो उनके किसी महापुरुष एवं उनकी किसी महत्त्वपूर्ण घटनाके स्मारक होते हैं। प्रत्येक धर्मके अनुयायी अपने तीर्थोंकी यात्रा और वन्दनाके लिए बड़े भक्ति भावसे जाते हैं और आत्म-शान्ति प्राप्त करते हैं। तीर्थ-स्थान पवित्रता, शान्ति और कल्याणके धाम माने जाते हैं। जैन धर्ममें भी तीर्थ-क्षेत्रका विशेष महत्त्व रहा है। जैन धर्मके अनुयायी प्रति वर्ष बड़े श्रद्धा-भावपूर्वक अपने तीर्थोंकी यात्रा करते हैं। उनका विश्वास है कि तीर्थ-यात्रासे पुण्य-संचय होता है और परम्परासे यह मुक्ति-लाभका कारण होती है। अपने इसी विश्वासके कारण वृद्ध जन और महिलाएँ भी सम्मेद शिखर, राजगृही, माँगीतुंगी, गिरनार-जैसे दुरूह पर्वतीय क्षेत्रोंपर भी भगवान्का नाम स्मरण करते हुए चढ़ जाते हैं। बिना आस्था और निष्ठाके क्या कोई वृद्धजन ऐसे पर्वतपर आरोहण कर सकता है ?

तीर्थकी परिभाषा

तीर्थ शब्द तॄ धातुसे निष्पन्न हुआ है। व्याकरणकी दृष्टिसे इस शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'तीर्यन्ते अनेन अस्मिन् वा।' 'तॄ प्लवनतरणयोः '(भ्वा. प. से.)। 'पातॄतुदि'—(उ. २।७) इति थक्। अर्थात् तॄ धातुके साथ थक् प्रत्यय लगाकर तीर्थ शब्दकी निष्पत्ति होती है। इसका अर्थ है—जिसके द्वारा अथवा जिसके आधारसे तरा जाये। कोषके अनुसार तीर्थ शब्द अनेक अर्थोंमें प्रयुक्त होता है। यथा—

> निपानागमयोस्तीर्थमृषिजुष्टजले गुरौ।
>
> —अमरकोष, तृ. काण्ड, श्लोक ८६
>
> तीर्थं शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायनारीरजःसु च।
> अवतारर्षिजुष्टाम्बुपात्रोपाध्यायमन्त्रिषु॥
>
> —मेदिनी

इस प्रकार कोषकारोंके मतानुसार तीर्थ शब्द जलावतरण, आगम, ऋषि जुष्ट जल, गुरु, क्षेत्र, उपाय, स्त्री-रज, अवतार, पात्र, उपाध्याय और मन्त्री इन विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है।

जैन शास्त्रोंमें भी तीर्थ शब्दका प्रयोग अनेक अर्थोंमें किया गया है। यथा—

> संसाराब्धेरपारस्य तरणे तीर्थमिष्यते।
> चेष्टितं जिननाथानां तस्योक्तिस्तीर्थसंकथा॥
>
> —जिनसेनकृत आदिपुराण ४।८

अर्थात् जो इस अपार संसार-समुद्रसे पार करे उसे तीर्थ कहते हैं। ऐसा तीर्थ जिनेन्द्र भगवान्का चरित्र ही हो सकता है। अतः उसके कथन करनेको तीर्थाख्यान कहते हैं।

यहाँ जिनेन्द्र भगवान्के चरित्रको तीर्थ कहा गया है।

आचार्य समन्तभद्रने भगवान् जिनेन्द्रदेवके शासनको सर्वोदय तीर्थ बताया है—

सर्वान्तवत्तद्गुणमुख्यकल्पं सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षम् ।
सर्वापदामन्तकरं निरन्तं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव ॥

—युक्त्यनुशासन ६२

अर्थात् "आपका यह तीर्थ सर्वोदय (सबका कल्याण करनेवाला) है। जिसमें सामान्य-विशेष, द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक, अस्ति-नास्ति रूप सभी धर्म गौण-मुख्य रूपसे रहते हैं, ये सभी धर्म परस्पर सापेक्ष हैं, अन्यथा द्रव्यमें कोई धर्म या गुण रह नहीं पायेगा। तथा यह सभीकी आपत्तियोंको दूर करनेवाला है और किसी मिथ्यावादसे इसका खण्डन नहीं हो सकता। अतः आपका यह तीर्थ सर्वोदय-तीर्थ कहलाता है।"

यह तीर्थ परमागम रूप है, जिसे धर्म भी कहा जा सकता है।

बृहत्स्वयंभू स्तोत्रमें भगवान् मल्लिनाथकी स्तुति करते हुए आचार्य समन्तभद्रने उनके तीर्थको जन्म-मरण रूप समुद्रमें डूबते हुए प्राणियोंके लिए प्रमुख तरण-पथ (पार होनेका उपाय) बताया है—

तीर्थमपि स्वं जननसमुद्रत्रासितसत्त्वोत्तरणपथोऽग्रम् ॥१०९

पुष्पदन्त-भूतबलि प्रणीत षट्खण्डागम (भाग ८, पृ. ९१) में तीर्थंकरको धर्म-तीर्थका कर्ता बताया है। आदिपुराणमें श्रेयान्सकुमारको दान-तीर्थका कर्ता बताया है। आदिपुराणमें (२।३९) मोक्षप्राप्तिके उपायभूत सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्रको तीर्थ बताया है।

आवश्यक निर्युक्तिमें चातुर्वर्ण अर्थात् मुनि-अर्जिका श्रावक-श्राविका इस चतुर्विध संघ अथवा चतुर्वर्णको तीर्थ माना है। इनमें भी गणधरों और उनमें भी मुख्य गणधरको मुख्य तीर्थ माना है और मुख्य गणधर ही तीर्थंकरोंके सूत्र रूप उपदेशको विस्तार देकर भव्यजनोंको समझाते हैं, जिससे वे अपना कल्याण करते हैं। कल्पसूत्रमें इसका समर्थन किया गया है।

तीर्थ और क्षेत्र-मंगल

कुछ प्राचीन जैनाचार्योंने तीर्थके स्थानपर 'क्षेत्र-मंगल' शब्दका प्रयोग किया है। षट्खण्डागम (प्रथम खण्ड, पृ. २८) में क्षेत्र-मंगलके सम्बन्धमें इस प्रकार विवरण दिया गया है—

तत्र क्षेत्रमंगलं गुणपरिणतासन—परिनिष्क्रमण—केवलज्ञानोत्पत्तिपरिनिर्वाणक्षेत्रादिः। तस्योदाहरणम्—ऊर्जयन्त-चम्पा-पावानगरादिः। अर्धाष्टारत्न्यादि-पञ्चविंशत्युत्तरपञ्च-धनुःशतप्रमाणशरीरस्थितकैवल्याद्यवष्टब्धाकाशदेशा वा, लोकमात्रात्मप्रदेशैर्लोकपूरणापूरितविश्वलोकप्रदेशा वा।

अर्थात् गुण-परिणत-आसन क्षेत्र अर्थात् जहाँपर योगासन, वीरासन इत्यादि अनेक आसनोंसे तदनुकूल अनेक प्रकारके योगाभ्यास, जितेन्द्रियता आदि गुण प्राप्त किये गये हों ऐसा क्षेत्र, परिनिष्क्रमण क्षेत्र, केवलज्ञानोत्पत्ति क्षेत्र और निर्वाण क्षेत्र आदिको क्षेत्र-मंगल कहते हैं। इसके उदाहरण ऊर्जयन्त (गिरनार), चम्पा, पावा आदि नगर क्षेत्र है। अथवा साढ़े तीन हाथसे लेकर पाँच सौ पचीस धनुष तकके शरीरमें स्थित और केवलज्ञानादिसे व्याप्त आकाश प्रदेशोंको क्षेत्र-मंगल कहते हैं। अथवा लोक प्रमाण आत्म-प्रदेशोंसे लोकपूरणसमुद्घात दशामें व्याप्त किये गये समस्त लोकके प्रदेशोंको क्षेत्र-मंगल कहते हैं।

बिलकुल इसी आशयकी ४ गाथाएँ आचार्य यतिवृषभने तिलोयपण्णत्ति नामक ग्रन्थमें (प्रथम अधिकार गाथा २१-२४) निबद्ध की हैं और उन्होंने कल्याणक क्षेत्रोंको क्षेत्र-मंगलकी संज्ञा दी है।

गोम्मटसारमें बताया है—

क्षेत्रमंगलमूर्जयन्तादिकमर्हदादीनाम्।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तीर्थ शब्दके आशयमें ही क्षेत्र-मंगल शब्दका प्रयोग मिलता है। यदि अन्तर है तो इतना कि तीर्थ शब्द व्यापक है। तीर्थ शब्दसे उन सबका व्यवहार होता है, जो पार करनेमें

साधन हैं। इन साधनोंमें एक साधन तीर्थ-भूमियाँ भी हैं। इन तीर्थ-भूमियोंको ही क्षेत्र-मंगल शब्दसे व्यवहृत किया गया है। अतः यह कहा जा सकता है कि तीर्थ शब्दका आशय व्यापक और क्षेत्र-मंगल शब्दका अर्थ व्याप्य है। तीर्थ शब्दके साथ यदि भूमि या क्षेत्र शब्द और जोड़ दिया जाये तो उससे वही अर्थ निकलेगा जो क्षेत्र-मंगल शब्दसे अभिप्रेत है।

तीर्थोंकी संरचनाका कारण

तीर्थ शब्द क्षेत्र या क्षेत्र-मंगलके अर्थमें बहुप्रचलित एवं रूढ़ है। तीर्थ-क्षेत्र न कहकर केवल तीर्थ शब्द कहा जाये तो उससे भी प्रायः तीर्थ-क्षेत्र या तीर्थ-स्थानका आशय लिया जाता है। जिन स्थानोंपर तीर्थंकरोंके गर्भ, जन्म, अभिनिष्क्रमण, केवलज्ञान और निर्वाणकल्याणकोंमें-से कोई कल्याणक हुआ हो अथवा किसी निर्ग्रन्थ वीतराग तपस्वी मुनिको केवलज्ञान या निर्वाण प्राप्त हुआ हो, वह स्थान उन वीतराग महर्षियों-के संसर्गसे पवित्र हो जाता है। इसलिए वह पूज्य भी बन जाता है। वादीभसिंह सूरिने क्षत्रचूड़ामणि (६।४-५) में इस बातको बड़े ही बुद्धिगम्य तरीकेसे बताया है। वे कहते हैं—

पावनानि हि जायन्ते स्थानान्यपि सदाश्रयात् ॥
सद्भिरध्युषिता धात्री संपूज्येति किमद्भुतम् ।
कालायसं हि कल्याणं कल्पते रसयोगतः ॥

अर्थात् महापुरुषोंके संसर्गसे स्थान भी पवित्र हो जाते है। फिर जहाँ महापुरुष रह रहे हों वह भूमि पूज्य होगी ही, इसमें आश्चर्यकी क्या बात है। जैसे रस अथवा पारसके स्पर्श मात्रसे लोहा सोना बन जाता है।

मूलतः पृथ्वी पूज्य या अपूज्य नहीं होती। उसमें पूज्यता महापुरुषोंके संसर्गके कारण आती है। पूज्य तो वस्तुतः महापुरुषोंके गुण होते हैं किन्तु वे गुण (आत्मा) जिस शरीरमें रहते हैं, वह शरीर भी पूज्य बन जाता है। संसार उस शरीरकी पूजा करके ही गुणोंकी पूजा करता है। महापुरुषके शरीरकी पूजा भक्तका शरीर करता है और महापुरुषके आत्मामें रहनेवाले गुणोंकी पूजा भक्तकी आत्मा अथवा उसका अन्तःकरण करता है। इसी प्रकार महापुरुष, वीतराग तीर्थंकर अथवा मुनिराज जिस भूमिखण्डपर रहे, वह भूमिखण्ड भी पूज्य बन गया। वस्तुतः पूज्य तो वे वीतराग तीर्थंकर या मुनिराज है। किन्तु वे वीतराग जिस भूमिखण्ड-पर रहे, उस भूमिखण्डकी भी पूजा होने लगती है। उस भूमिखण्डकी पूजा भक्तका शरीर करता है, उस महापुरुषकी कथा-वार्ता, स्तुति-स्तोत्र और गुण-संकीर्तन भक्तकी वाणी करती है और उन गुणोंका अनुचिन्तन भक्तकी आत्मा करती है। क्योंकि गुण आत्मा में रहते हैं, उनका ध्यान, अनुचिन्तन और अनुभव आत्मामें ही किया जा सकता है।

वीतराग तीर्थंकरों और महर्षियोंने संयम, समाधि, तपस्या और ध्यानके द्वारा जन्म-जरा-मरणसे मुक्त होनेकी साधना की और संसारके प्राणियोंको संसारके दुखोंसे मुक्त होनेका उपाय बताया। जिस मिथ्या-मार्गपर चलकर प्राणी अनादि कालसे नाना प्रकारके भौतिक और आत्मिक दुःख उठा रहे हैं, उस मिथ्या-मार्गको ही इन दुखों का एकमात्र कारण बताकर प्राणियोंको सम्यक् मार्ग बताया। अतः वे महापुरुष संसारके प्राणियोंके अकारण बन्धु हैं उपकारक हैं। इसीलिए उन्हें मोक्षमार्गका नेता माना जाता है। उनके उपकारों-के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने और उस भूमि-खण्डपर घटित घटनाकी सतत स्मृति बनाये रखने और इस सबके माध्यमसे उन वीतराग देवों और गुरुओंके गुणोका अनुभव करनेके लिए उस भूमिपर उन महापुरुषका कोई स्मारक बना देते हैं। संसारकी सम्पूर्ण तीर्थभूमियों या तीर्थ-क्षेत्रोंकी संरचनामें भक्तोंकी महापुरुषोंके प्रति यह कृतज्ञताकी भावना ही मूल कारण है।

तीर्थोंके भेद

दिगम्बर जैन परम्परामें संस्कृत निर्वाण-भक्ति और प्राकृत निर्वाण-काण्ड प्रचलित हैं। अनुश्रुतिके अनुसार ऐसा मानते हैं कि प्राकृत निर्वाण-काण्ड (भक्ति) आचार्य कुन्दकुन्दकी रचना है। तथा संस्कृत निर्वाण-भक्ति आचार्य पूज्यपाद द्वारा रचित कही जाती है। इस अनुश्रुतिका आधार सम्भवतः क्रियाकलापके टीकाकार प्रभाचन्द्राचार्य हैं। उन्होंने लिखा है कि संस्कृत भक्तिपाठ पादपूज्य स्वामी विरचित है। प्राकृत निर्वाण-भक्तिके दो खण्ड हैं—एक निर्वाण-काण्ड और दूसरा निर्वाणेतर-काण्ड। निर्वाण-काण्डमें १९ निर्वाण-क्षेत्रोंका विवरण प्रस्तुत करके शेष मुनियोंके जो निर्वाण क्षेत्र हैं उनके नामोल्लेख न करके सबकी वन्दना की गयी है। निर्वाणेतर काण्डमें कुछ कल्याणक स्थान और अतिशय क्षेत्र दिये गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राकृत निर्वाण-भक्तिमें तीर्थभूमियोंकी इस भेद कल्पनासे ही दिगम्बर समाजमें तीन प्रकारके तीर्थ-क्षेत्र प्रचलित हो गये—सिद्ध क्षेत्र (निर्वाण क्षेत्र), कल्याणक क्षेत्र और अतिशय क्षेत्र।

संस्कृत निर्वाण-भक्तिमें प्रारम्भके बीस श्लोकोंमें भगवान् वर्धमानका स्तोत्र है। उसके पश्चात् बारह पद्योंमें २५ निर्वाण क्षेत्रोंका वर्णन है। वास्तवमें यह भक्तिपाठ एक नहीं है। प्रारम्भमें बीस श्लोकोंमें जो वर्धमान स्तोत्र है वह स्वतन्त्र स्तोत्र है। उसका निर्वाण भक्तिसे कोई सम्बन्ध नहीं है। यह इसके पढ़नेसे ही स्पष्ट हो जाता है। द्वितीय पद्यमें स्तुतिकार सन्मतिका पाँच कल्याणकोंके द्वारा स्तवन करने की प्रतिज्ञा करता है और बीसवें श्लोकमें इस स्तोत्रके पाठका फल बताता है। यहाँ यह स्तोत्र समाप्त हो जाता है। फिर इक्कीसवें पद्यमें अर्हन्तों और गणधरोंकी निर्वाण-भूमियोंकी स्तुति करनेकी प्रतिज्ञा करता है। और बत्तीसवें श्लोकमें उनका समापन करता है। जो भी हो, संस्कृत निर्वाण-भक्तिके रचयिताने प्राकृत निर्वाण-भक्तिकारकी तरह तीर्थ-क्षेत्रोंके भेद नहीं किये। सम्भवतः उन्हें यह अभिप्रेत भी नहीं था। उनका उद्देश्य तो निर्वाण-क्षेत्रोंकी स्तुति करना था।

इन दो भक्तिपाठोंके अतिरिक्त तीर्थक्षेत्रोंसे सम्बन्धित कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ दिगम्बर परम्परामें उपलब्ध नहीं है। जो है, वे प्रायः १६वीं, १७वीं शताब्दीके बादके हैं।

किन्तु दिगम्बर समाजमें उक्त तीन ही प्रकारके तीर्थक्षेत्रोंकी मान्यताका प्रचलन रहा है—(१) निर्वाण क्षेत्र, (२) कल्याणक क्षेत्र और (३) अतिशय क्षेत्र।

निर्वाण क्षेत्र—ये वे क्षेत्र कहलाते हैं, जहाँ तीर्थंकरों या किन्हीं तपस्वी मुनिराजका निर्वाण हुआ हो। संसारमें शास्त्रोंका उपदेश, व्रत-चारित्र, तप आदि सभी कुछ निर्वाण प्राप्तिके लिए है। यही चरम और परम पुरुषार्थ है। अतः जिस स्थानपर निर्वाण होता है, उस स्थानपर इन्द्र और देव पूजाको आते हैं। अन्य तीर्थोंकी अपेक्षा निर्वाण क्षेत्रोंका महत्त्व अधिक होता है। इसलिए निर्वाण-क्षेत्र के प्रति भक्त जनताकी श्रद्धा अधिक रहती है। जहाँ तीर्थंकरोंका निर्वाण होता है, उस स्थानपर सौधर्म इन्द्र चिह्न लगा देता है। उसी स्थानपर भक्त लोग उन तीर्थंकर भगवान्के चरण-चिह्न स्थापित कर देते हैं। आचार्य समन्तभद्रने स्वयम्भू-स्तोत्रमें भगवान् नेमिनाथकी स्तुति करते हुए बताया है कि ऊर्जयन्त (गिरनार) पर्वतपर इन्द्रने भगवान् नेमिनाथके चरण-चिह्न उत्कीर्ण किये।

तीर्थंकरोंके निर्वाण-क्षेत्र कुल पाँच हैं—कैलास, चम्पा, पावा, ऊर्जयन्त और सम्मेदशिखर। पूर्वके चार क्षेत्रोंपर क्रमशः ऋषभदेव, वासुपूज्य, महावीर और नेमिनाथ मुक्त हुए। शेष बीस तीर्थंकरोंने सम्मेद-शिखरसे मुक्ति प्राप्त की। इन पाँच निर्वाण क्षेत्रोंके अतिरिक्त अन्य मुनियोंकी निर्वाणभूमियाँ हैं, जिनमें-से कुछके नाम निर्वाण-भक्तिमें दिये हुए हैं।

कल्याणक क्षेत्र—ये वे क्षेत्र हैं, जहाँ किसी तीर्थंकरका गर्भ, जन्म, अभिनिष्क्रमण (दीक्षा) और केवलज्ञान कल्याणक हुआ है। जैसे मिथिलापुरी, भद्रिकापुरी, हस्तिनापुर आदि।

अतिशय क्षेत्र—जहाँ किसी मन्दिरमें या मूर्तिमें कोई चमत्कार दिखाई दे, तो वह अतिशय क्षेत्र कहलाता है। जैसे श्री महावीरजी, देवगढ़, हुम्मच, पद्मावती आदि। जो निर्वाण-क्षेत्र अथवा कल्याणक-क्षेत्र नहीं हैं, वे सभी अतिशय-क्षेत्र कहे जाते हैं।

तीर्थोंका माहात्म्य

संसारमें प्रत्येक स्थान समान हैं, किन्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका प्रभाव हर स्थानको दूसरे स्थानसे पृथक् कर देता है। द्रव्यगत विशेषता, क्षेत्रकृत प्रभाव और कालकृत परिवर्तन हम नित्य देखते हैं। इससे भी अधिक व्यक्तिके भावों और विचारोंका चारों ओरके वातावरणपर प्रभाव पड़ता है। जिनके आत्मामें विशुद्ध या शुभ भावोंकी स्फुरणा होती है, उनमें-से शुभ तरंगें निकलकर आसपासके सम्पूर्ण वातावरणको व्याप्त कर लेती हैं। उस वातावरणमें शुचिता, शान्ति, निर्वैरता और निर्भयता व्याप्त हो जाती है। ये तरंगें कितने वातावरणको घेरती हैं, इसके लिए यही कहा जा सकता है कि उन भावोंमें, उस व्यक्तिशुचिता आदिमें जितनी प्रबलता और वेग होगा, उतने वातावरणमें वे तरंगें फैल जाती हैं। इसी प्रकार जिस व्यक्तिके विचारोंमें जितनी कषाय और विषयोंकी लालसा होगी, उतने परिमाणमें, वह अपनी शक्ति द्वारा सारे वातावरणको दूषित कर देता है। इतना ही नहीं, वह शरीर भी पुद्गल-परमाणु और उसके चारों ओरके वातावरणके कारण दूषित हो जाता है। उसके अशुद्ध विचारों और अशुद्ध शरीरसे अशुद्ध परमाणुओंकी तरंगें निकलती रहती है, जिससे वहाँके वातावरणमें फैलकर वे परमाणु दूसरेके विचारोंको भी प्रभावित करते हैं।

प्राय: सर्वस्वत्यागी और आत्मकल्याणके मार्गके राही एकान्त शान्तिकी इच्छासे वनोंमें, गिरि-कन्दराओंमें, सुरम्य नदी-तटोंपर आत्मध्यान लगाया करते थे। ऐसे तपस्वी-जनोंके शुभ परमाणु उस सारे वातावरणमें फैलकर उसे पवित्र कर देते थे। वहाँ जाति-विरोधी जीव आते तो न जाने उनके मनका भय और संहारकी भावना कहाँ तिरोहित हो जाती। वे उस तपस्वी मुनिकी पुण्य भावनाकी स्निग्ध छायामें परस्पर किलोल करते और निर्भय विहार करते थे।

इसी आशयको भगवज्जिनसेनने आदिपुराण २।३-२६ में व्यक्त किया है। मगध नरेश श्रेणिक गौतम गणधरकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं—"आपका यह मनोहर तपोवन जो कि विपुलाचल पर्वतके चारों ओर विद्यमान है, प्रकट हुए दयावनके समान मेरे मनको आनन्दित कर रहा है। इस ओर ये हथिनियाँ सिंहके बच्चेको अपना दूध पिला रही है और ये हाथीके बच्चे स्वेच्छासे सिंहनीके स्तनोंका पान कर रहे हैं।"

इस प्रकारका चमत्कार तो तपस्वी और ऋद्धिधारी वीतराग मुनियोंकी तपोभूमिमें भी देखनेको मिलता है। जो उस तपोभूमिमें जाता है, वह संसारकी आकुलता-व्याकुलताओंसे कितना ही प्रभावित क्यों न हो, मुनिजनोंकी तपोभूमिमें जाते ही उसे निराकुल शान्तिका अनुभव होने लगता है और वह जबतक उस तपोभूमिमें ठहरता है, संसारकी चिन्ताओं और आधि-व्याधियोंसे मुक्त रहता है।

जब तपस्वी और ऋद्धिधारी मुनियोंका इतना प्रभाव होता है तो तीन लोकके स्वामी तीर्थंकर भगवान्‌के प्रभावका तो कहना ही क्या है। उनका प्रभाव तो अचिन्त्य है, अलौकिक है। तीर्थंकर प्रकृति सम्पूर्ण पुण्य प्रकृतियोंमें सर्वाधिक प्रभावशाली होती है और उसके कारण अन्य प्रकृतियोंका अनुभाग सुखरूप परिणत हो जाता है। तीर्थंकर प्रकृतिकी पुण्य वर्गणाएँ इतनी तेजस्वी और बलवती होती हैं कि तीर्थंकर जब माताके गर्भमें आते हैं, उससे छह माह पूर्वसे ही वे देवों और इन्द्रोंको तीर्थंकरके चरणोंका विनम्र सेवक बना देती हैं। इन्द्र छह माह पूर्व ही कुबेरको आज्ञा देता है—"भगवान् त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर प्रभुका छह माह पश्चात् गर्भावतरण होनेवाला है। उनके स्वागतकी तैयारी करो। त्रिलोकीनाथके उपयुक्त निवास स्थान बनाओ। उनके आगमनके उपलक्ष्यमें अभीसे उनके जन्म पर्यन्त रत्न और स्वर्णकी वर्षा करो, जिससे उनके नगरमें कोई निर्धन न रहे।"

ऐसे वे तीर्थंकर भगवान् जिस नगरमें जन्म लेते हैं, वह नगर उनकी चरण-धूलिसे पवित्र हो जाता है। जहाँ वे दीक्षा लेते हैं, उस स्थानका कण-कण उनके विराग रंजित कठोर तप और आत्मसाधनासे शुचिताको प्राप्त हो जाता है। जिस स्थानपर उन्हें केवलज्ञान होता है, वहीं देव समवसरणकी रचना करते हैं, जहाँ भगवान्की दिव्य ध्वनि प्रकट होकर धर्मचक्रका प्रवर्तन होता है और अनेक भव्य जीव संयम ग्रहण करके आत्म-कल्याण करते हैं, वहाँ तो कल्याणका आकाशचुम्बी मानस्तम्भ ही गड़ जाता है, जो संसारके प्राणियोंको आमन्त्रण देता है—'आओ और अपना कल्याण करो।' इसी प्रकार जहाँ तीर्थंकर देव शेष अघातिया कर्मोंका विनाश करके निरंजन परमात्म दशाको प्राप्त होते हैं, वह तो शान्ति और कल्याणका ऐसा अजस्र स्रोत बन जाता है, जहाँ भक्ति-भावसे जानेवालोंको अवश्य शान्ति मिलती है और अवश्य ही उनका कल्याण होता है। निर्वाण ही तो परम पुरुषार्थ है, जिसके कारण अन्य कल्याणकोंका भी मूल्य और महत्त्व है।

यह माहात्म्य अन्य मुनियोंके निर्वाण स्थानका भी है। यह माहात्म्य उस स्थानका नहीं है, किन्तु उन तीर्थंकर प्रभुका है या उन निष्काम तपस्वी मुनिराजोंका है, जिनके अन्तरमें आत्यन्तिक शुद्धि प्रकट हुई, जिनकी आत्मा जन्म-मरणसे मुक्त होकर सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हो चुकी है। इसीलिए तो आचार्य शुभचन्द्रने ज्ञानार्णवमें कहा है—

सिद्धक्षेत्रे महातीर्थे पुराणपुरुषाश्रिते।
कल्याणकलिते पुण्ये ध्यानसिद्धिः प्रजायते॥

सिद्धक्षेत्र महान् तीर्थ होते हैं। यहाँपर महापुरुषका निर्वाण हुआ है। यह क्षेत्र कल्याणदायक है तथा पुण्यवर्द्धक होता है। यहाँ आकर यदि ध्यान किया जाये तो ध्यानकी सिद्धि हो जाती है। जिसको ध्यान-सिद्धि हो गयी, उसे आत्म-सिद्धि होनेमें विलम्ब नहीं लगता।

तीर्थ-भूमियोंका माहात्म्य वस्तुतः यही है कि वहाँ जानेपर मनुष्योंकी प्रवृत्ति संसारकी चिन्ताओंसे मुक्त होकर उस महापुरुषकी भक्तिसे आत्मकल्याणकी ओर होती है। घरपर मनुष्यको नाना प्रकारकी सांसारिक चिन्ताएँ और आकुलताएँ रहती हैं। उसे घरपर आत्मकल्याणके लिए निराकुल अवकाश नहीं मिल पाता। तीर्थ-स्थान प्रशान्त स्थानोंपर होते हैं। प्रायः तो वे पर्वतोंपर या एकान्त वनोंमें नगरोंके कोलाहलसे दूर होते हैं। फिर वहाँके वातावरणमें भी प्रेरणाके बीज छितराये होते हैं। अतः मनुष्यका मन वहाँ शान्त, निराकुल और निश्चिन्त होकर भगवान्की भक्ति और आत्म-साधनामें लगता है। संक्षेपमें, तीर्थक्षेत्रोंका माहात्म्य इन शब्दोंमें कहा जा सकता है—

श्रीतीर्थपान्थरजसा विरजीभवन्ति तीर्थेषु विभ्रमणतो न भवे भ्रमन्ति।
तीर्थव्ययादिह नराः स्थिरसंपदः स्युः पूज्या भवन्ति जगदीशमथाश्रयन्तः॥

अहा! तीर्थभूमिके मार्गकी रज इतनी पवित्र होती है कि उसके आश्रयसे मनुष्य रजरहित अर्थात् कर्म मल रहित हो जाता है। तीर्थोंपर भ्रमण करनेसे अर्थात् यात्रा करनेसे संसारका भ्रमण छूट जाता है। तीर्थपर धन व्यय करनेसे अविनाशी सम्पदा मिलती है। और जो तीर्थपर आकर भगवान्की शरण ग्रहण कर लेते हैं अर्थात् भगवान्के मार्गको जीवनमें उतार लेते हैं, वे जगत्पूज्य हो जाते हैं।

तीर्थ-यात्राका उद्देश्य

तीर्थ-यात्राका उद्देश्य यदि एक शब्दमें प्रकट किया जाये तो वह है आत्म-विशुद्धि। शरीरकी शुद्धि तेल-साबुन और अन्य प्रसाधनोंसे होती है। वाणीकी शुद्धि लवंग, इलायची, सौंफ आदिसे होती है, ऐसी लोक-मान्यता है। कुछ लोगोंकी मान्यता है कि पवित्र नदियों, सागरों और भगवान्के नाम संकीर्तनसे सर्वांग विशुद्धि होती है। कुछ मानते हैं कि तीर्थ-क्षेत्रकी यात्रा करने मात्रसे पापोंका क्षय और पुण्यका संग्रह हो जाता है। किन्तु यह बहिर्दृष्टि है। बहिर्दृष्टि अर्थात् बाहरी साधनोंकी ओर उन्मुखता। किन्तु तीर्थ-यात्राका उद्देश्य

बाह्यशुद्धि नहीं है, वह हमारा साध्य नहीं है, न हमारा लक्ष्य ही बाह्यशुद्धि मात्र है। वह तो हम घरपर भी कर लेते हैं। तीर्थ-यात्राका ध्येय आत्म-शुद्धि है, आत्माकी ओर उन्मुखता, परसे निवृत्ति और आत्म-प्रवृत्ति हमारा ध्येय है। बाह्य-शुद्धि तो केवल साधन है और वह भी एक सीमा तक। तीर्थ-यात्रा करने मात्रसे ही आत्म-शुद्धि नहीं हो जाती। तीर्थ-यात्रा तो आत्म-शुद्धिका एक साधन है। तीर्थपर जाकर वीतराग मुनियों और तीर्थंकरोंके पावन चरित्रका स्मरण करके हम उनकी उस साधनापर विचार करें, जिसके द्वारा उन्होंने शरीर-शुद्धिकी चिन्ता छोड़कर आत्माको कर्म-मलसे शुद्ध किया। यह विचार करके हम भी वैसी साधनाका संकल्प लें और उसकी ओर उन्मुख होकर वैसा प्रयत्न करें।

कुछ लोगोंकी ऐसी धारणा बन गयी है कि जिसने तीर्थकी जितनी अधिक बार वन्दना की अथवा किसी स्तोत्रका जितना अधिक बार पाठ किया या भगवान्‌की पूजामें जितना अधिक समय लगाया, उतना अधिक धर्म किया। ऐसी धारणा पुण्य और धर्मको एक माननेकी परम्परासे पैदा हुई है। जिस क्रियाका आत्म-शुद्धि, आत्मोन्मुखतासे कोई नाता नहीं, वह क्रिया पुण्यदायक और पुण्यवर्द्धक हो सकती हैं, वह भी तब, जब मनमें शुभ भाव हों, शुभ राग हों।

पुण्य या शुभ राग साधन है, साध्य नहीं। पुण्य बाह्य साधन तो जुटा सकता है, आत्माकी विशुद्धि नहीं कर सकता। आत्माकी विशुद्धि आत्माके निज पुरुषार्थसे होगी और वह शुभ-अशुभ दोनों रागोंके निरोधसे होगी। तीर्थ-भूमियाँ हमारे लिए ऐसे साधन और अवसर प्रस्तुत करती हैं। वहाँ जाकर भक्त जन उस भूमिसे सम्बन्धित महापुरुषका स्मरण, स्तवन और पूजन करते हैं तथा उनके चरित्रसे प्रेरणा लेकर अपनी आत्माकी ओर उन्मुख होते हैं। पुण्यकी प्रक्रिया सरल है, आत्म-शुद्धिकी प्रक्रिया समझनेमें भी कठिन है और करनेमें भी।

किन्तु एक बात स्मरण रखनेकी है। भक्त जन घाटेमें नहीं रहता। वह पाप और अशुभ संकल्प-विकल्पोंको छोड़कर तीर्थ-यात्राके शुभ भावोंमें लीन रहता है। वह अपना समय तीर्थ-वन्दना, भगवान्‌का पूजन, स्तुति आदिमें व्यतीत करता है। इससे वह पुण्य संचय करता है और पापोंसे बचता है। जब वह आत्माकी ओर उन्मुख होता है तो कर्मोंका क्षय करता है, आत्म-विशुद्धि करता है। अर्थात् स्वकी ओर उपयोग जाता है तो असंख्यात गुनी कर्म-निर्जरा करता है और पर (भगवान् आदि) की ओर उपयोग जाता है तो पुण्यानुबन्धी पुण्य संचय करता है। यही है तीर्थ-यात्राका उद्देश्य और तीर्थ-यात्राका वास्तविक लाभ।

तीर्थ-यात्रासे आत्म-शुद्धि होती है, इस सम्बन्धमें श्री चामुण्डराय 'चारित्रसार' में कहते हैं—

तत्रात्मनो विशुद्धध्यानजलप्रक्षालितकर्ममलकलङ्कस्य स्वात्मन्यवस्थानं लोकोत्तरशुचित्वं, तत्साधनानि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रतपांसि तद्वन्तश्च साधवस्तदधिष्ठानानि च निर्वाणभूम्यादिकानि। तत्प्राप्त्युपायत्वाच्छुचिव्यपदेशमर्हन्ति। (अशुचि अनुप्रेक्षा)

अर्थात् विशुद्ध ध्यानरूपी जलसे कर्म-मलको धोकर आत्मामें स्थित होनेको आत्माकी विशुद्धि कहते हैं। यह विशुद्धि अलौकिक होती है। आत्म-विशुद्धिके लिए सम्यग्दर्शन, सम्यक्-ज्ञान, सम्यक्-चारित्र, सम्यक्-तप और इनसे युक्त साधु और उनके स्थान निर्वाणभूमि आदि साधन हैं। ये सब आत्म-शुद्धि प्राप्त करनेके उपाय हैं। इसलिए इन्हें भी पवित्र कहते हैं।

गोम्मटसारमें आचार्य नेमिचन्द्रने कहा है—

"क्षेत्रमंगलमूर्जयन्तादिकमर्हदादीनां निष्क्रमणकेवलज्ञानादिगुणोत्पत्तिस्थानम्।"

अर्थात् निष्क्रमण (दीक्षा) और केवल-ज्ञानके स्थान आत्मगुणोंकी प्राप्तिके साधन हैं।

तीर्थ-पूजा

वसुनन्दी श्रावकाचारमें क्षेत्र-पूजाके सम्बन्धमें महत्त्वपूर्ण उल्लेख मिलता है, जो इस प्रकार है—

'जिणजम्मण णिक्खमणे णाणुप्पत्तीए तित्थचिण्हेसु।
णिसिहीसु खेत्तपूजा पुव्वविहाणेण कायव्वा' ॥४५२॥

अर्थात् जिन-भगवान्‌की जन्मकल्याणक भूमि, निष्क्रमण कल्याणक भूमि, केवलज्ञानोत्पत्ति स्थान, तीर्थचिह्न स्थान और निषीधिका अर्थात् निर्वाण-भूमियोंमें पूर्वोक्त विधानसे की हुई पूजा क्षेत्र-पूजा कहलाती है।

आचार्य गुणभद्र 'उत्तर-पुराण' में बतलाते हैं कि निर्वाण-कल्याणकका उत्सव मनानेके लिए इन्द्रादि देव स्वर्गसे उसी समय आये और गन्ध, अक्षत आदिसे क्षेत्रकी पूजा की और पवित्र बनाया।

'कल्पान्निर्वाणकल्याणमन्वेत्यामरनायकाः।
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य तत्क्षेत्रमपवित्रयन् ॥
—उत्तरपुराण ६६।६३

पाँच कल्याणकोंके समय इन्द्र और देव भगवान्‌की पूजा करते हैं। और भगवान्‌के निर्वाण-गमनके बाद इन कल्याणकोंके स्थान ही तीर्थ बन जाते हैं। वहाँ जाकर भक्त जन भगवान्‌के चरणचिह्न अथवा मूर्तिकी पूजा करते है तथा उस क्षेत्रकी पूजा करते हैं। यही तीर्थ-पूजा कहलाती है। वस्तुतः तीर्थ-पूजा भगवान्‌का स्मरण कराती है क्योंकि तीर्थ भी भगवान्‌के स्मारक हैं। अतः तीर्थ-पूजा प्रकारान्तरसे भगवान्‌की ही पूजा है।

तीर्थ-क्षेत्र और मूर्ति-पूजा

जैन धर्ममें मूर्ति-पूजाके उल्लेख प्राचीनतम कालसे पाये जाते हैं। पूजा पूज्य पुरुषकी की जाती है। पूज्य पुरुष मौजूद न हो तो उसकी मूर्ति बनाकर उसके द्वारा पूज्य पुरुषकी पूजा की जाती है। तदाकार स्थापनाका आशय भी यही है। इसलिए इतिहासातीत कालसे जैन मूर्तियाँ पायी जाती हैं और जैन मूर्तियोंके निर्माण और उनकी पूजाके उल्लेखसे तो सम्पूर्ण जैन साहित्य भरा पड़ा है। जैन धर्ममें मूर्तियोंके दो प्रकार बतलाये गये है—कृत्रिम और अकृत्रिम। कृत्रिम प्रतिमाओंसे अकृत्रिम प्रतिमाओंकी संख्या असंख्य गुणी बतायी है। जिस प्रकार प्रतिमाएँ कृत्रिम और अकृत्रिम बतलायी हैं, उसी प्रकार चैत्यालय भी दो प्रकारके होते हैं—कृत्रिम और अकृत्रिम।

ये चैत्यालय नन्दीश्वर द्वीप, सुमेरु, कुलाचल, वैताढ्य पर्वत, शाल्मली वृक्ष, जम्बू वृक्ष, वक्षारगिरि, चैत्य वृक्ष, रतिकरगिरि, रुचकगिरि, कुण्डलगिरि, मानुषोत्तर पर्वत, इष्वाकारगिरि, अंजनगिरि, दधिमुख पर्वत, व्यन्तरलोक, स्वर्गलोक, ज्योतिर्लोक और भवनवासियोंके पाताललोकमें पाये जाते हैं। इनकी कुल संख्या ८५६९७४८१ बतलायी गयी है। इन अकृत्रिम चैत्यालयोंमें अकृत्रिम प्रतिमाएँ विराजमान हैं। सौधर्मेन्द्रने युगके आदिमें अयोध्यामें पाँच मन्दिर बनाये और उनमें अकृत्रिम प्रतिमाएँ विराजमान कीं।

कृत्रिम प्रतिमाओंका जहाँ तक सम्बन्ध है, सर्वप्रथम भरत क्षेत्रके प्रथम चक्रवर्ती भरतने अयोध्या और कैलासमें मन्दिर बनवाकर उनमें स्वर्ण और रत्नोंकी मूर्तियाँ विराजमान करायी। इनके अतिरिक्त जहाँ-पर बाहुबली स्वामीने एक वर्ष तक अचल प्रतिमायोग धारण किया था, उस स्थानपर उन्हींके आकारकी अर्थात् पाँच सौ पचीस धनुषकी प्रतिमा निर्मित करायी। ऐसे भी उल्लेख मिलते हैं कि दूसरे तीर्थंकर अजितनाथके कालमें सगर चक्रवर्तीके पुत्रोंने तथा बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथके तीर्थमें मुनिराज बाली और प्रतिनारायण रावणने कैलास पर्वतपर इन बहत्तर जिनालयोंके तथा रामचन्द्र और सीताने बाहुबली स्वामीकी उक्त प्रतिमाके दर्शन और पूजा की थी।

पुरातात्त्विक दृष्टिसे जैन मूर्ति-कलाका इतिहास सिन्धु सभ्यता तक पहुँचता है। सिन्धु घाटीकी खुदाईमें मोहन-जो-दड़ो और हड़प्पासे जो मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, उनमें मस्तकहीन नग्न मूर्ति तथा सीलपर अंकित ऋषभ जिनकी मूर्ति जैन धर्मसे सम्बन्ध रखती हैं। अनेक पुरातत्त्ववेत्ताओंने यह स्वीकार कर लिया है कि कायोत्सर्गासनमें आसीन योगी-प्रतिमा आद्य जैन तीर्थंकर ऋषभदेवकी प्रतिमा है।

भारतमें उपलब्ध जैन मूर्तियोंमें सम्भवतः सबसे प्राचीन जैन मूर्ति तेरापुरके लयणोंमें स्थित पार्श्वनाथकी प्रतिमाएँ हैं। इनका निर्माण पौराणिक आख्यानोंके अनुसार कलिंगनरेश करकण्डुने कराया था, जो पार्श्वनाथ और महावीरके अन्तरालमें हुआ था। यह काल ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी होता है।

इसके बादकी मौर्यकालीन एक मस्तकहीन जिनमूर्ति पटनाके एक मुहल्ले लोहानीपुरसे मिली है। वहाँ एक जैन मन्दिरकी नींव भी मिली है। मूर्ति पटना संग्रहालयमें सुरक्षित है। वैसे इस मूर्तिका हड़प्पासे प्राप्त नग्नमूर्तिके साथ अद्भुत साम्य है।

ईसा पूर्व पहली-दूसरी शताब्दीके कलिंगनरेश खारवेलके हाथी-गुम्फा शिलालेखसे प्रमाणित है कि कलिंगमें सर्वमान्य एक 'कलिंग-जिन' की प्रतिमा थी, जिसे नन्दराज (महापद्मनन्द) ई. पूर्व. चौथी-पाँचवीं शताब्दीमें कलिंगपर आक्रमण कर अपने साथ मगध ले गया था। और फिर जिसे खारवेल मगधपर आक्रमण करके वापस कलिंग ले आया था।

इसके पश्चात् कुषाण काल (ई. पू. प्रथम शताब्दी तथा ईसाकी प्रथम शताब्दी) की और इसके बादकी तो अनेक मूर्तियाँ मथुरा, देवगढ़, पभोसा आदि स्थानोंपर मिली हैं।

तीर्थ और मूर्तियोंपर समयका प्रभाव

ये मूर्तियाँ केवल तीर्थ क्षेत्रोंपर ही नहीं मिलती, नगरोंमें भी मिलती हैं। तीर्थंकरोंके कल्याणक-स्थानों और सामान्य केवलियोंके केवलज्ञान और निर्वाण-स्थानोंपर प्राचीन कालमें, ऐसा लगता है, उनकी मूर्तियाँ विराजमान नहीं होती थीं। तीर्थंकरोंके निर्वाण-स्थानको सौधर्मेन्द्र अपने वज्रदण्डसे चिह्नित कर देता था। उस स्थानपर भक्त लोग चरण-चिह्न बनवा देते थे। तीर्थंकरोंके पाँच निर्वाण स्थान हैं। उनपर प्राचीन कालसे अबतक चरण-चिह्न ही बने हुए हैं और सब उन्हींकी पूजा करते हैं। शेष तीर्थ स्थानोंपर प्राचीन कालमें चरण-चिह्न रहे। किन्तु वहाँ मूर्तियाँ कबसे विराजमान की जाने लगीं, यह कहना कठिन है। इसका कारण यह है कि वर्तमानमें किसी भी तीर्थपर कोई मन्दिर और मूर्ति अधिक प्राचीन नहीं है। भारतीय इतिहासकी कुछ शताब्दियाँ जैनधर्म और जैन धर्मानुयायियोंके लिए अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण रहीं, जबकि लाखों जैनोंको बलात् धर्म-परिवर्तन करना पड़ा, लाखोंको अपना मातृ-स्थान छोड़कर विस्थापित होना पड़ा और अपने अस्तित्वकी रक्षा और निवासके लिए नये स्थान खोजने पड़े। ऐसे ही कालमें अनेक तीर्थक्षेत्रोंसे जैनोंका सम्पर्क टूट गया। वे क्षेत्र विरोधियोंके क्षेत्रमें होनेके कारण वहाँकी यात्रा बन्द हो गयी। अनेक मन्दिरोंको विरोधियोंने तोड़ डाला, अनेक मन्दिरोंपर जैनेतरोंने अधिकार कर लिया। ऐसे ही कालमें जैन लोग अपने कई तीर्थोंका वास्तविक स्थान ही भूल गये। फिर भी उन्होंने तीर्थ-भक्तिसे प्रेरित होकर उन तीर्थोंकी नये स्थानोंपर उन्हीं नामोंसे, स्थापना और संरचना कर ली। कुछ जैन तीर्थोंका नवनिर्माण पिछली कुछ शताब्दियोंमें ही किया गया है। उनके मूल स्थानोंकी खोज होना अभी शेष है।

तीर्थोंपर प्रायः चरणचिह्न ही रहते थे और उनके लिए एकाध मन्दिर बनाया जाता था। जब मन्दिरोंका महत्त्व बढ़ने लगा तो तीर्थोंपर भी अनेक मन्दिरोंका निर्माण होने लगा।

तीर्थोंपर तीर्थंकरोंकी जो मूर्तियाँ निर्मित होती थीं उनका अध्ययन करनेसे हम इस परिणामपर पहुँचते हैं कि वे सभी नग्न वीतराग होती थीं। जितनी प्राचीन प्रतिमाएँ उपलब्ध होती हैं, वे सभी नग्न हैं।

सम्भवतः मथुरामें सर्वप्रथम ऐसी मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं, जिन प्रतिमाओंके चरणोंके पास वस्त्र खण्ड मिलता है। कडोरा या लंगोटसे चिह्नित प्रतिमाओंके निर्माणका काल तो गुप्तोत्तर युग माना जाता है और उस समय भी इस प्रकारकी प्रतिमाओंका निर्माण अपवाद ही माना जा सकता है।

जब निर्ग्रन्थ जैन संघमें-से फूटकर श्वेताम्बर सम्प्रदाय निकला, तो उसे एक सम्प्रदायके रूपमें व्यवस्थित रूप लेनेमें ही काफी समय लग गया। इतिहासकी दृष्टिसे इसे ईसाकी छठी शताब्दी माना गया है। इसके भी पर्याप्त समयके बाद वीतराग तीर्थंकर मूर्तियोंपर वस्त्रके चिह्नका अंकन किया गया। धीरे-धीरे यह विकार बढते-बढते यहाँ तक पहुँच गया कि जिन-मूर्तियाँ वस्त्रालंकारोंसे आच्छादित होने लगीं और उनकी वीतरागता इस परिग्रहके आडम्बरमें दब गयी। किन्तु दिगम्बर परम्परामें भगवान् तीर्थंकरके वीतराग रूपकी रक्षा अबतक अक्षुण्ण रूपसे चली आ रही है।

तीर्थ-क्षेत्रोंमें प्राचीन कालसे स्तूप, आयागपट्ट, धर्मचक्र, अष्ट प्रातिहार्य युक्त तीर्थंकर मूर्तियोंका निर्माण होता था और वे जैन कलाके अप्रतिम अंग माने जाते थे। किन्तु ११वीं-१२वीं शताब्दियोंके बादसे तो प्रायः इनका निर्माण समाप्त-सा हो गया। इस बीसवीं शताब्दीमें आकर मूर्ति और मन्दिरोंका निर्माण संख्याकी दृष्टिसे तो बहुत हुआ है किन्तु अब तीर्थंकर-मूर्तियाँ एकाकी बनती हैं, उनमें न अष्ट प्रातिहार्यकी संयोजना होती है, न उनका कोई परिकर होता है। उनमें भावाभिव्यंजना और सौन्दर्यका अंकन सजीव होता है।

पूजाकी विधि और उसका क्रमिक-विकास

श्रावकके दैनिक आवश्यक कर्मोंमें आचार्य कुन्दकुन्दने प्राभृतमें तथा वरांगचरित और हरिवंश-पुराणमें दान, पूजा, तप और शील ये चार कर्म बतलाये हैं। भगवज्जिनसेनने इनको अधिक व्यापक बनाकर पूजा, वार्ता, दान, स्वाध्याय, संयम और तपको श्रावकके आवश्यक कर्म बतलाये। सोमदेव और पद्मनन्दिने देवपूजा, गुरूपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये षडावश्यक कर्म बतलाये।

इन सभी आचार्योंने देव-पूजाको श्रावकका प्रथम आवश्यक कर्तव्य बताया है। परमात्मप्रकाश (१६८) में तो यहाँ तक कहा गया है कि "तूने न तो मुनिराजोंको दान ही किया, न जिन भगवान्की पूजा ही की, न पंच परमेष्ठियोंको नमस्कार किया, तब तुझे मोक्षका लाभ कैसे होगा ?" इस कथनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान्की पूजा श्रावकको अवश्य करनी चाहिए। भगवान्की पूजा मोक्ष-प्राप्तिका एक उपाय है।

आदि-पुराण — पर्व ३८ में पूजाके चार भेद बताये हैं—नित्यपूजा, चतुर्मुखपूजा, कल्पद्रुमपूजा और अष्टाह्निकपूजा। अपने घरसे गन्ध, पुष्प, अक्षत ले जाकर जिनालयमें जिनेन्द्रदेवकी पूजा करना सदार्चन अर्थात् नित्यमह (पूजा) कहलाता है। मन्दिर और मूर्तिका निर्माण करना, मुनियोंकी पूजा करना भी नित्यमह कहलाता है। मुकुटबद्ध राजाओं द्वारा की गयी पूजा चतुर्मुख पूजा कहलाती है। चक्रवर्ती द्वारा की जानेवाली पूजा कल्पद्रुम पूजा होती है। और अष्टाह्निकामें नन्दीश्वर द्वीपमें देवों द्वारा की जानेवाली पूजा अष्टाह्निक पूजा कहलाती है।

पूजा अष्टद्रव्यसे की जाती है—जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल। इस प्रकारके उल्लेख प्रायः सभी आर्ष ग्रन्थोंमें मिलते हैं। तिलोयपण्णत्ति (पंचम अधिकार, गाथा १०२ से १११) में नन्दीश्वर द्वीपमें अष्टाह्निकामें देवों द्वारा भक्तिपूर्वक की जानेवाली पूजाका वर्णन है। उसमें अष्टद्रव्योंका वर्णन आया है। धवला टीकामें भी ऐसा ही वर्णन है। आचार्य जिनसेन कृत आदिपुराण (पर्व १७, श्लोक २५२) में भरत द्वारा तथा पर्व २३, श्लोक १०६ में इन्द्रों द्वारा भगवान्की पूजाके प्रसंगमें अष्टद्रव्यों का वर्णन आया है।

पूजन विधिके प्रसंगमें समाजमें कुछ मान्यता-भेद है। अष्टद्रव्योंके नामोंके सम्बन्धमें कोई मतभेद नहीं है। केवल मतभेद है सचित्त और अचित्त (प्रासुक) सामग्रीके बारेमें। एक वर्गकी मान्यता है कि अष्ट-द्रव्योंमें जो नाम हैं, पूजनमें वे ही वस्तु चढ़नी चाहिए। इसके विपरीत दूसरी मान्यता है कि सचित्त वस्तुमें जीव होते हैं, उनकी हिंसाकी सम्भावनासे बचनेके लिए प्रासुक वस्तुओंका ही व्यवहार उचित है।

मतभेदका दूसरा मुद्दा है—भगवान्‌पर केसर चर्चित करनेका। इसके पक्षमें तर्क यह दिया जाता है कि अष्टद्रव्योंमें दूसरा द्रव्य चन्दन या गन्ध है। उसका एक मात्र प्रयोजन है भगवान्‌पर गन्ध विलेपन करना। दूसरा पक्ष इस बातको भगवान् वीतराग प्रभुकी वीतरागताके विरुद्ध मानता है और गन्धलेपको परिग्रह स्वीकार करता है।

पूजनके सम्बन्धमें तीसरा विवाद इस बातको लेकर है कि पूजन बैठकर किया जाये या खड़े होकर।

चौथा विवादास्पद विषय है भगवान्‌का पंचामृताभिषेक अर्थात् घृत, दूध, दही, इक्षुरस और जल।

पाँचवाँ मान्यता-भेद है स्त्रियों द्वारा भगवान्‌का प्रक्षाल।

इन मान्यता-भेदोंके पक्ष-विपक्षमें पड़े बिना हमारा विनम्र मत है कि भगवान्‌का पूजन भगवान्‌के प्रति अपनी विनम्र भक्तिका प्रदर्शन है। यह कषायको कृश करने, मनको अशुभसे रोककर शुभमें प्रवृत्त करने और आत्म-शान्ति प्राप्त करनेका साधन है। साधनको साधन मानें, उसे साध्य न बना लें तो मान्यता-भेदका प्रभाव कम हो जाता है। शास्त्रोंको टटोलें तो इस या उस पक्षका समर्थन शास्त्रोंमें मिल जायेगा। जिस आचार्यने जिस पक्षको युक्तियुक्त समझा, उन्होंने अपने ग्रन्थमें वैसा ही कथन कर दिया। उन्हें न किसी पक्षका आग्रह था और न किसी दूसरे पक्षके प्रति द्वेष-भाव।

हमें लगता है, अपने पक्षके प्रति दुराग्रह और दूसरे पक्षके प्रति आक्रोश और द्वेष-बुद्धि, यह कषाय-में-से उपजता है। इसमें सन्देह नहीं कि सचित्त फलों और नैवेद्य (मिष्टान्न आदि)का वर्णन तिलोयपण्णत्तिमें नन्दीश्वर द्वीपमें देवताओंके पूजन-प्रसंगमें मिलता है, अन्य शास्त्रोंमें भी मिलता है। किन्तु हमारी विनम्र मान्यतामें जब शुद्धाशुद्धि और हिंसा आदिका विशेष विवेक नहीं रहा, उस काल और क्षेत्रमें सुधारवादी प्रवृत्ति चली और इसपर बल दिया गया कि जो भी वस्तु भगवान्‌के आगे अर्पण की जाये, वह शुद्ध हो, प्रासुक हो, सूखी हो, जिसमें हिंसाकी सम्भावनासे बचा जा सके। यही बात गन्ध-विलेपन और पंचामृताभिषेकके सम्बन्धमें है।

धर्म और पुण्य-कार्यको कषायका साधन न बनावें। मनकी चंचलता, मनके संकल्प-विकल्पसे दूर होकर आप भगवान्‌के गुणोंके संकीर्तन चिन्तन और अनुभवमें अपने आपको जिस उपायसे, जिस विधिसे केन्द्रित करें वही विधि आपके लिए उपादेय है। दूसरा व्यक्ति क्या करता है, क्या विधि अपनाता है, और उस विधिमें क्या त्रुटि है, आप इसपर अपने उपयोगको केन्द्रित न करके यह आत्म-निरीक्षण करें कि मेरा मन भगवान्‌के गुणोंमें आत्मसात् क्यों नहीं हुआ, मेरी कहाँ त्रुटि रह गयी, तब फिर क्या मतभेद मन-भेद बन सकते हैं ? तीन सौ तिरेसठ विरोधी मतोंके विविध रंगी फूलोंसे स्याद्वादका सुन्दर गुलदस्ता बनानेवाला जैन धर्म एक ही वीतराग जिनेन्द्र भगवान्‌के भक्तोंकी विविध प्रकारकी पूजन-विधियोंके प्रति अनुदार और असहिष्णु बनकर उनकी मीमांसा करता फिरेगा ? और क्या जिनेन्द्र प्रभुका कोई भक्त कषायको कृश करनेकी भावनासे जिनेन्द्र प्रभुके समक्ष यह दावा लेकर जायेगा कि जिस विधिसे मैं प्रभुकी पूजा करता हूँ, वही विधि सबके लिए उपादेय है ? नहीं, बिलकुल नहीं। हमारे अज्ञान और कुज्ञानमें-से दम्भ फूटता है और दम्भ अर्थात् मदमें-से स्वके प्रति राग और परके प्रति द्वेष निपजता है। यह सम्यक् मार्ग नहीं है, यह मिथ्या-मार्ग है।

तीर्थ-यात्राका समय

यों तो तीर्थ-यात्रा कभी भी की जा सकती है। जब भी यात्रा की जाये, पुण्य-संचय ही होगा। किन्तु अनुकूल द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव देखकर यात्रा करना अधिक उपयोगी रहता है। द्रव्यकी सुविधा होनेपर यात्रा करना अधिक फलदायक होता है। यदि यात्राके लिए द्रव्यकी अनुकूलता न हो, द्रव्यका कष्ट हो और यात्राके निमित्त कर्ज लिया जाये तो उससे यात्रा में निश्चिन्तता नही आ पाती, संकल्प-विकल्प बने रहते हैं। किस या किन क्षेत्रोंकी यात्रा करनी है, वे क्षेत्र पर्वतपर स्थित हैं, जंगलमे है, शहरमें हैं अथवा सुदूर देहाती अंचलमें हैं। वहाँ जानेके लिए रेल, बस, नाव, रिक्शा-ताँगा या पैदल किस प्रकारकी यातायातकी सुविधा है, यह जानकारी यात्रा करनेसे पूर्व कर लेना आवश्यक है। इसके साथ-साथ कालकी अनुकूलता भी आवश्यक है। जैसे सम्मेदशिखरकी यात्रा तीव्र ग्रीष्म ऋतुमें अथवा वर्षा ऋतुमें करनेसे बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती है। उत्तराखण्डके तीर्थोंके लिए वर्षा ऋतु अथवा सर्दीकी ऋतु अनुकूल नही है। उसके लिए ग्रीष्म ऋतु ही उपयुक्त है। कई तीर्थोंपर नदियोंमें बाढ आनेपर यात्रा नही हो सकती। कुछ तीर्थोंको छोड़कर उदाहरणत. उत्तराखण्डके तीर्थ—शेष तीर्थोंकी यात्राका सर्वोत्तम अनुकूल समय अक्टूबरसे लेकर मार्च तकका है। इसमें मौसम प्रायः साफ रहता है, बाढ़ आदिका प्रकोप समाप्त हो चुकता है, ठण्डे दिन होते है। गर्मीकी बाधा नही रहती। शरीरमें स्फूर्ति रहती है। यह मौसम पर्वतीय और मैदानी, शहरी और देहाती सभी प्रकारके तीर्थोंकी यात्राके लिए अनुकूल है। भावोंकी अनुकूलता यह है कि यात्रापर जानेके पश्चात् अपने भावोंको भगवान्की भक्ति-पूजा, स्तुति, स्तोत्र, जाप, कीर्तन, धर्म-चर्चा, स्वाध्याय और आत्मध्यानमें लगाना चाहिए। अन्य सांसारिक कथाएँ, राजनीतिक चर्चाएँ नही करनी चाहिए।

तीर्थ-यात्राका अधिकार

तीर्थ-यात्राका उद्देश्य, जैसा कि हम निवेदन कर आये है, पापोंसे मुक्ति और आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त करना है। जो भी व्यक्ति इन उद्देश्योंसे तीर्थ-यात्रा करना चाहता है, वह कर सकता है। उसके लिए मुख्य शर्त है जिनेन्द्र प्रभुके प्रति भक्ति। जो प्रदर्शनके लिए ही तीर्थोंपर जाना चाहते है, उनके लिए अधिकारका प्रश्न ही नही उठता। किन्तु जो विनय और भक्तिके साथ, वहाँके नियमोंका आदर करते हुए तीर्थ-वन्दनाको जाना चाहे, वे वहाँ जा सकते है। तीर्थ-यात्रा अधिकारका प्रश्न न होकर कर्तव्यका प्रश्न है। जो कर्तव्यको अपना अधिकार मानते है, उनके लिए अधिकारका कोई प्रश्न नही उठता। किन्तु जो अधिकारको ही अपना कर्तव्य बना लेते है, उनका उद्देश्य तीर्थ-वन्दना नही होता, बल्कि उस तीर्थकी व्यवस्थापर अपना अधिकार करना होता है। तीर्थ तीर्थंकरों या केवलियोके स्मारक है। उनकी उपदेश-सभामें सब जाते थे—मनुष्य, देव, पशु-पक्षी तक। उनके पावन स्मारकस्वरूप तीर्थोंमें सब जायें, मनुष्य मात्र जायें, सभी तीर्थ-व्यवस्थापकोंकी यह हार्दिक कामना होती है। किन्तु उनकी इस सदिच्छाका दुरुपयोग करके कुछ लोग उस तीर्थपर ही अधिकार जताने लगें तो यह प्रश्न यात्राका न रहकर व्यवस्थाके स्वामित्वका बन जाता है। जहाँ प्राणीके कल्याण और विश्व-मैत्रीका घोष उठा था, वहाँ यदि कषायके निर्घोष गूँजने लगें तो फिर तीर्थोंकी पावनता कैसे बनी रह सकती है और तीर्थोंके वातावरणमें-से पावनताका वह स्वर मन्द पड़ जाये तो तीर्थोंका माहात्म्य और उनका अतिशय कैसे बना रह सकता है। आज तीर्थोंपर वैसा अतिशय नहीं दीख पड़ता, जैसा मध्यकाल तक था। और उसके जिम्मेदार है वे लोग, जो योजनानुसार आये दिन तीर्थक्षेत्रोंके उन्मुक्त वीत-राग वातावरणमें कषायका विषैला धुआँ छोड़कर वहाँ घुटन पैदा किया करते हैं।

प्राचीन कालमें तीर्थ-यात्रा

प्राचीन कालमें तीर्थ-यात्रा कैसे होती थी, इसके लिए कुछ उल्लेख शास्त्रोंमें मिलते है अथवा उनके यात्रा-विवरण उपलब्ध होते है। उनसे ज्ञात होता है कि पूर्वकालमें यात्रा-संघ निकलते थे। संघका एक संचा-

लक होता था, जो संघका व्यय उठाता था। संघमें विविध वाहन होते थे—हाथी, घोड़े, रथ, गाड़ी आदि। संघके साथ मुनि भी जाते थे। उस समय यात्रामें कई-कई माह लग जाते थे। महाराज अरविन्द जब मुनि बन गये और जब वे एक बार एक संघके साथ सम्मेद-शिखरकी यात्राके लिए आ रहे थे, अचानक एक जंगली हाथी आक्रमणके उद्देश्यसे उनपर आ झपटा। अरविन्द अवधि-ज्ञानी थे। उन्होंने जाना कि यह तो मेरे मन्त्री मरुभूतिका जीव है। अतः उन्होंने उस हाथीको सम्बोधित करके उपदेश दिया। हाथीने अणुव्रत धारण कर लिये और प्रासुक जल और सूखे पत्तोंपर निर्वाह करने लगा। वही जीव बादमें पार्श्वनाथ तीर्थंकर बना। इस प्रकारका कथन पौराणिक साहित्यमें मिलता है।

भैया भगवतीदास कृत 'अर्गलपुर जिन-वन्दना' नामक स्तोत्र है। उससे ज्ञात होता है कि रामपुरके श्रावकोंके साथ भैया भगवतीदास यात्रा करते हुए अर्गलपुर (आगरा) आये थे। उन्होंने अपने स्तोत्रमें आगराके तत्कालीन जैन मन्दिरोंका परिचय दिया है। इससे यह भी पता चलता है कि उस समय जैन समाजमें कितना अधिक साधर्मी वात्सल्य था। जब यात्रा संघके लोग किसी मन्दिरमें दर्शनार्थ जाते थे तो उस मुहल्लेके जैन बन्धु संघके लोगोंको देखकर बड़े प्रसन्न होते थे और उनका भोजन, पानसे सत्कार करते थे। दुख है कि वर्तमानमें साधर्मी वात्सल्य नहीं रहा और न यात्रा-संघोंके स्वागत-सत्कारका ही वह रूप रहा।

यात्रा संघोंके अनेक उल्लेख विभिन्न ग्रन्थोंकी प्रशस्तियों आदिमें भी मिलते हैं।

तीर्थ-यात्रा कैसे करें ?

वर्तमानमें यातायातके साधनोंकी बहुलता और सुलभताके कारण यात्रा करना पहले-जैसा न तो कष्ट-साध्य रहा है और न अधिक समय-साध्य। यात्रा-संघोंमें यात्रा करनेके पक्ष-विपक्षमें तर्क दिये जा सकते हैं। किन्तु एकाकीकी अपेक्षा यात्रा-संघोंके साथ यात्रा करनेका सबसे बड़ा लाभ यह है कि अनेक परिचित साथियोंके साथ यात्राके कष्ट कम अनुभव होते हैं, समय पूजन, दर्शन, शास्त्र-चर्चा आदिमें निकल जाता है; व्यय भी कम पड़ता है। रेलकी अपेक्षा मोटर बसों द्वारा यात्रा करनेमें कुछ सुविधा रहती है।

जब यात्रा करनेका निश्चय कर लें तो उसी समयसे अपना मन भगवान्की भक्तिमें लगाना चाहिए और जिस समय घरसे रवाना हो, उसी समयसे घर-गृहस्थीका मोह छोड़ देना चाहिए, व्यापारकी चिन्ता छोड़ देनी चाहिए तथा अन्य सांसारिक प्रपंचोंसे मुक्त हो जाना चाहिए।

यात्रामें सामान यथसम्भव कम ही रखना चाहिए किन्तु आवश्यक वस्तुएँ नहीं छोड़नी चाहिए। उदाहरणके रूपमें यदि सर्दीमें यात्रा करनी हो तो ओढ़ने-बिछानेके रुईवाले कपड़े (गद्दा और रजाई) तथा पहननेके गर्म कपड़े अवश्य अपने साथमें रखने चाहिए। विशेषतः गुजरात, मद्रास आदि प्रान्तोंके यात्रियोंको उत्तर प्रदेश, बिहार आदि प्रदेशोंके तीर्थोंकी यात्रा करते समय इस बातको ध्यानमें रखना चाहिए। कपड़ोंके अलावा स्टोव, आवश्यक बरतन और कुछ दिनोंके लिए दाल, मसाला, आटा आदि भी साथमें ले जाना चाहिए।

मैदानी इलाकोंके तीर्थोंकी यात्रा किसी भी मौसममें की जा सकती है। जिन दिनों अधिक गर्मी पड़ती और वर्षा होती है, उन्हें बचाना चाहिए—जिससे असुविधा अधिक न हो।

तीर्थक्षेत्रपर पहुँचनेपर यह ध्यान रखना चाहिए कि तीर्थक्षेत्र पवित्र होते हैं। उनकी पवित्रताको किसी प्रकार आन्तरिक और बाह्य रूपसे क्षति नहीं पहुँचनी चाहिए। ज्ञानार्णवमें आचार्य शुभचन्द्रने कहा है—

"जनसंसर्गवाक्चित्तपरिस्पन्दमनोभ्रमाः। उत्तरोत्तरबीजानि ज्ञानिजनमतस्त्यजेत् ॥"

अर्थात् अधिक मनुष्योंका जहाँ संसर्ग होता है, वहाँ मन और वाणीमें चंचलता आ जाती है और मनमें विभ्रम उत्पन्न हो जाते हैं। यही सारे अनर्थोंकी जड़ है। अतः ज्ञानी पुरुषोंको अधिक जन-संसर्ग छोड़ देना चाहिए।

यदि शास्त्र-प्रवचन, तत्त्व-चर्चा, प्रभु-पूजन, कीर्तन, सामायिक प्रतिक्रमण या विधान-प्रतिष्ठोत्सव आदि धार्मिक प्रसंग हों तो जन-संसर्ग अनर्थका कारण नहीं है, क्योंकि वहाँ सभीका एक ही उद्देश्य होता है और वह है—धर्म-साधना। किन्तु जहाँ जनसमूहका उद्देश्य धर्म-साधना न होकर सांसारिक प्रयोजन हो, वहाँ जन-संसर्ग संसार-परम्पराका ही कारण होता है।

तीर्थ-क्षेत्रोंपर जो जनसमूह एकत्रित होता है, उसका उद्देश्य धर्म-साधन होता है। यदि उस समूहमें कुछ तत्त्व ऐसे हों जो सांसारिक चर्चाओं और अशुभ रागवर्द्धक कार्योंमें रस लेते हों तो तीर्थोंपर जाकर ऐसे तत्त्वोंके सम्पर्कसे यथासम्भव बचनेका प्रयत्न करना चाहिए तथा अपने चित्तकी शान्ति और शुद्धि बढ़ानेका ही उपाय करना चाहिए। यही आन्तरिक शुद्धि कहलाती है।

बाह्य शुचिताका प्रयोजन बाहरी शुद्धि है। तीर्थक्षेत्रोंपर जाकर गन्दगी नहीं करनी चाहिए। मल-मूत्र यथास्थान ही करना चाहिए। बच्चोंको भी यथास्थान ही बैठाना चाहिए। दीवालोंपर अश्लील वाक्य नही लिखने चाहिए। कूड़ा, राख यथास्थान डालना चाहिए। रसोई यथास्थान करनी चाहिए। सारांश यह है कि तीर्थोंपर बाहरी सफाईका विशेष ध्यान रखना चाहिए।

स्त्रियोंको एक बातका विशेष ध्यान रखना चाहिए। मासिक-धर्मके समय उन्हें मन्दिर, धर्म-सभा, शास्त्र-प्रवचन, प्रतिष्ठा-मण्डप आदिमें नहीं जाना चाहिए। कई बार इससे बड़े अनर्थ और उपद्रव हो जाते हैं।

जब तीर्थ-क्षेत्रके दर्शनके लिए जायें, तब स्वच्छ धुला हुआ (सफेद या केशरिया) धोती-दुपट्टा पहनकर और सामग्री लेकर जाना चाहिए। जहाँ तक हो, पूजनकी सामग्री घरसे ले जाना चाहिए। यदि मन्दिरकी सामग्री लें तो उसकी न्योछावर अवश्य दे देनी चाहिए। जहाँसे मन्दिरका शिखर या मन्दिर दिखाई देने लगे, वहींसे 'दृष्टाष्टक' अथवा कोई स्तोत्र बोलते जाना चाहिए। क्षेत्रके ऊपर यात्रा करते समय या तो स्तोत्र पढ़ते जाना चाहिए अथवा अन्य लोगोंके साथ धर्म-वार्ता और धर्म-चर्चा करते जाना चाहिए।

क्षेत्रपर और मन्दिरमें विनयका पूरा ध्यान रखना चाहिए। सामग्री यथास्थान सावधानीपूर्वक चढ़ानी चाहिए। उसे जमीनमें, पैरोंमें नही गिरानी चाहिए। गन्धोदक भूमिपर न गिरे, इसका ध्यान रखना आवश्यक है। गन्धोदक कटि भागसे नीचे नहीं लगाना चाहिए। पूजनके समय सिरको ढकना और केशरका तिलक लगाना आवश्यक है।

जिस तीर्थपर जायें और जिस मूर्तिके दर्शन करें, उसके बारेमें पहले जानकारी कर लेना जरूरी है। इससे दर्शनोंमें मन लगता है और मनमें प्रेरणा और उल्लास जागृत होता है।

तीर्थ-यात्राके समय चमड़ेकी कोई वस्तु नही ले जानी चाहिए। जैसे—सूटकेस, बिस्तरबन्द, जूते, बैल्ट, घड़ीका फीता, पर्स आदि।

अन्तमें एक निवेदन और है। भगवान्‌के समक्ष जाकर कोई मनौती नही मनानी चाहिए, कोई कामना लेकर नही जाना चाहिए। निष्काम भक्ति सभी संकटोंको दूर करती है। स्मरण रखना चाहिए कि भगवान्‌से सासारिक प्रयोजनके लिए कामना भक्ति नही, निदान होता है। भक्ति निष्काम होती है, निदान सकाम होता है। निदान मिथ्यात्व कहलाता है और मिथ्यात्व संसार और दुखका मूल है।

विषापहार स्तोत्रमे कवि धनंजयने भगवान्‌के समक्ष कामना प्रकट करनेवालोंकी आँखोंमें उँगली डालकर उन्हें जगाते हुए कितने सुन्दर शब्दोंमें कहा है—

इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद् वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि।
छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात् कश्छायया याचितयात्मलाभः ॥

अर्थात् हे देव ! स्तुति कर चुकनेपर मैं आपसे कोई वरदान नहीं माँगता। माँगूँ क्या, आप तो वीतराग हैं। और माँगूँ भी क्यों ? कोई समझदार व्यक्ति छायावाले पेड़के नीचे बैठकर पेड़से छाया थोड़े ही माँगता है। वह तो स्वयं बिना माँगे ही मिल जाती है। ऐसे ही भगवान्‌की शरणमें जाकर उनसे किसी बातकी कामना क्या करना। वहाँ जाकर सभी कामनाओंकी पूर्ति स्वतः हो जाती है।

तीर्थ-ग्रन्थकी परिकल्पना

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी बम्बईकी बहुत समयसे इच्छा और योजना थी कि समस्त दिगम्बर जैन तीर्थोंका प्रामाणिक परिचय एवं इतिहास तैयार कराया जाये। सन् १९५७-५८ में तीर्थक्षेत्र कमेटीके सहयोगसे मैंने लगभग पाँच सौ पृष्ठकी सामग्री तैयार भी की थी और समय-समयपर उसे तीर्थ-क्षेत्र कमेटीके कार्यालयमें भेजता भी रहता था। किन्तु उस समय उस सामग्रीका कुछ उपयोग नहीं हो सका।

सन् १९७० में भगवान् महावीरके २५००वें निर्वाण महोत्सवके उपलक्ष्यमें भारतवर्षके सम्पूर्ण दिगम्बर जैन तीर्थोंके इतिहास, परम्परा और परिचय सम्बन्धी ग्रन्थके निर्माणका पुनः निश्चय किया गया। यह भी निर्णय हुआ कि यह ग्रन्थ भारतीय ज्ञानपीठके तत्त्वावधानमें भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी बम्बईकी ओरसे प्रकाशित किया जाये। भगवान् महावीरके २५००वें निर्वाण महोत्सवकी अखिल भारतीय दिगम्बर जैन समितिके मान्य अध्यक्ष श्रीमान् साहू शान्तिप्रसादजीने, जो तीर्थक्षेत्र कमेटीके भी तत्कालीन अध्यक्ष थे, मुझे इस ग्रन्थके लेखन-कार्यका दायित्व लेनेके लिए प्रेरित किया और मैंने भी उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया।

प्रस्तुत भाग ३ की संयोजना

प्रस्तुत भाग ३ मध्यप्रदेशके तीर्थक्षेत्रोंसे सम्बन्धित है। इसकी रूपरेखा और सामग्रीकी संयोजना निम्नप्रकार की गयी है—

(अ) सुविधाके लिए मध्यप्रदेश निम्नलिखित प्राचीन जनपदोंमें विभाजित किया गया है—

(१) चेदि जनपद, (२) सुकोशल जनपद, (३) दशार्ण-विदर्भ जनपद और (४) मालव-अवन्ती जनपद।

(आ) इन जनपदोंमें मध्यप्रदेशके जैन तीर्थोंका विभाजन इस प्रकार किया गया है—

(१) चेदि जनपद

सिहोनिया, ग्वालियर, मनहरदेव, सोनागिरि, पनिहार-बरई, खनियाधाना, गोलाकोट, पचराई, बजरंगढ़, थूबौन, चन्देरी, खन्दार, गुरीलागिरि, बूढ़ी-चन्देरी, आमनचार, भियादाँत, बीठला, भामौन, पपौरा, अहार, बन्धा, खजुराहो, द्रोणगिरि, रेशन्दीगिरि, पजनारी, बीना-बारहा, पटनागंज, अजयगढ़, कारीतलाई और पतियानदाई।

(२) सुकोशल जनपद

कुण्डलपुर, लखनादौन, मढ़िया, त्रिपुरी, बरहठा, कोनी, पनागर और बहोरीबन्द।

(३) दशार्ण-विदर्भ जनपद

उदयगिरि, पठारी, उदयपुर और ग्यारसपुर।

(४) मालव-अवन्ती जनपद

मक्सी पार्श्वनाथ, उज्जयिनी, बदनावर, गन्धर्वपुरी, चूलगिरि, तालनपुर, पावागिरि, सिद्धवरकूट, बनेड़िया।

(इ) परिशिष्ट—१

मध्यप्रदेशके दिगम्बर जैन तीर्थोंका संक्षिप्त परिचय और उनका यात्रा मार्ग।

(ई) इस भागके नक्शे भी इसीके अनुसार तैयार कराये गये हैं—सम्पूर्ण मध्यप्रदेशके तीर्थोंका एक तथा चार जनपदोंके तीर्थोंके चार नक्शे।

(उ) ग्रन्थके अन्तमें अधिकाश तीर्थक्षेत्रोंके मुख्य मन्दिरों, मूलनायक अथवा अतिशय सम्पन्न प्रतिमाओं और कलात्मक एवं पुरातात्त्विक महत्त्वके शिखरो, मूर्तियों और अन्य कला सामग्रीके चित्र दिये गये है।

आभार-प्रदर्शन

किसी ग्रन्थके प्रणयन, उसकी साज-सज्जा और उसके लिए आवश्यक सुविधाएँ जुटानेमें अनेक सहयोगी और कृपालु सज्जनोका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोग, परामर्श, आशीर्वाद और शुभेच्छाएँ काम करती है। यह प्रकाशन भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी बम्बईका है और इसका समस्त व्यय-भार उसीने वहन किया है। अतः मैं तीर्थक्षेत्र कमेटीका हृदयसे आभारी हूँ। इस ग्रन्थके संयोजन, निर्देशन तथा प्रकाशनकी सारी व्यवस्था भारतकी प्रसिद्ध साहित्यिक संस्था भारतीय ज्ञानपीठकी ओरसे हुई है। अतः मैं उसके अध्यक्ष ख्यातनामा साहू शान्तिप्रसादजी और सुयोग्य मन्त्री बाबू लक्ष्मीचन्द्रजीका भी अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे ग्रन्थ-निर्माणके लिए सभी आवश्यक सुविधाएँ प्रदान की। इस अवसरपर ज्ञानपीठकी दिवंगत अध्यक्षा माननीया रमा रानीजीकी स्मृतिसे मेरे मनःप्राण भावाभिभूत हो उठे है। यदि वे आज जीवित होती तो इस ग्रन्थको देखकर उन्हे कितना आह्लाद और सन्तोष होता। मैं उनके प्रति अपनी विनत श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

मैं सभी तीर्थक्षेत्रोके मन्त्रियो और व्यवस्थापकोके प्रति भी अपना आभार व्यक्त किये बिना नही रह सकता। मैं जिस क्षेत्रपर भी गया, वहाँ उन्होने उस क्षेत्रकी आवश्यक जानकारी दी, मूर्तियो आदिका माप, चित्र और विवरण लेनेके लिए आवश्यक सुविधाएँ प्रदान कीं।

अन्तमें मैं भारतीय ज्ञानपीठमें कार्यरत अपने मित्र डॉ. गुलाबचन्द्रजीके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिन्होंने भाषा आदिकी दृष्टिसे पाण्डुलिपिमें संशोधन-सम्पादन कर उसकी प्रेस कापी तैयार की, नक्शे तैयार कराये तथा चित्र-चयन करने आदि कार्योंमें मुझे अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया।

माघ कृष्णा चतुर्दशी
(ऋषभदेव-निर्वाण-दिवस)
दिनांक ३० जनवरी १९७६

—बलभद्र जैन

अनुक्रम

मध्यप्रदेश : पृष्ठभूमि और कला ३-२८

चेदि जनपद २९-१८८

सिहौनिया, ग्वालियर, मनहरदेव, सोनागिरि, पनिहार-बरई, खनियाधाना और उसके निकटवर्ती क्षेत्र, बजरंगढ़, थूबौन, चन्देरी, खन्दारगिरि, गुरीलागिरि, बूढ़ी चन्देरी, आमनचार, भामौन, भियादांत, बीठला, पपौरा, अहार, बन्धा, खजुराहो, द्रोणगिरि, रेशन्दीगिरि (नैनागिरि), पजनारी, बीना-बारहा, पटनागंज, अजयगढ़, कारीतलाई, पतियानदाई।

सुकोशल जनपद १८९-२३०

कुण्डलपुर, लखनादौन, मढ़िया, त्रिपुरी, बरहटा, कोनीजी, पनागर, बहोरीबन्द।

दशार्ण-विदर्भ जनपद २३१-२४४

उदयगिरि, उदयपुर, पठारी, ग्यारसपुर।

मालव-अवन्ती जनपद ... २४५-३२७

मक्सी पार्श्वनाथ, उज्जयिनी, बदनावर, गन्धर्वपुरी, चूलगिरि, तालनपुर, पावागिरि, सिद्धवरकूट, बनेड़िया।

परिशिष्ट–१ .... ३२९-३४१

मध्यप्रदेशके दिगम्बर जैन तीर्थोंका संक्षिप्त परिचय और उनका यात्रा-मार्ग।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची ३४३-३४४

चित्र सूची ३४५-३४६

●

मध्यप्रदेशके दिगम्बर जैन तीर्थ

मध्यप्रदेश : पृष्ठभूमि और कला

मध्यप्रदेश : स्थिति

मध्यप्रदेश भारतके मध्यमें अवस्थित है। स्वतन्त्रता प्राप्तिसे पूर्व यह प्रदेश अनेक छोटी-बड़ी रियासतोंमें बँटा हुआ था। किन्तु स्वतन्त्रताके पश्चात् रियासतोंका भारतमें विलीनीकरण हुआ और यह प्रदेश मध्यप्रदेश, विन्ध्यप्रदेश और मध्यभारत इन तीन प्रदेशोंके रूपमें उभरा। यह प्रयोग अधिक समय तक नहीं चल पाया। इस प्रयोगमें जनताकी आकांक्षाओंके पूर्ण करनेकी क्षमता नहीं थी, अपेक्षित प्रगति भी नहीं हुई थी। अतः इन तीनों प्रदेशोंका एकीकरण करके 'मध्यप्रदेश'के नामसे केवल एक प्रदेश बना दिया गया। क्षेत्रफलकी दृष्टिसे यह भारतका सबसे बड़ा प्रदेश है। इसके भालपर विन्ध्याचल और सतपुड़ाका हिम-किरीट सुशोभित है। इसके आँचल-को बेतवा, नर्मदा, कावेरी आदि नदियाँ पखारती हैं।

प्राचीन जनपद—भगवज्जिनसेनके 'आदिपुराण'के अनुसार भगवान् ऋषभदेवकी आज्ञासे इन्द्रने भारतको ५२ जनपदोंमें विभाजित किया था। उनके नाम इस प्रकार हैं—

सुकोशल, अवन्ती, पुण्ड्र, उण्ड्र, अश्मक, रम्यक, कुरु, काशी, कलिंग, अंग, बंग, सुह्म, समुद्रक, काश्मीर, उशीनर, आनर्त, वत्स, पंचाल, मालव, दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, कुरुजांगल, करहाट, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, आभीर, कोंकण, वनवास, आन्ध्र, कर्णाट, कोशल, चोल, केरल, दारु, अभिसार, सौवीर, शूरसेन, अपरान्तक, विदेह, सिन्धु, गान्धार, यवन, चेदि, पल्लव, काम्बोज, आरट्ट, वाह्लीक, तुरुष्क, शक और केकय।

इन जनपदोंमें निम्नलिखित जनपद मध्यप्रदेशमें स्थित थे—

सुकोशल, अवन्ती, मालव, दशार्ण और चेदि।

सुकोशल—इसकी सीमाएँ इस प्रकार बतायी गयी हैं[१]—उत्तरमें अमरकण्टकमें नर्मदाके मुहानेसे दक्षिणमें महानदी तक तथा पश्चिममें वानगंगासे लेकर पूर्वमें हरदा और जोंक नदियों तकका सम्पूर्ण भूभाग। इसमें वर्तमान छत्तीसगढ़ और रायपुरके जिले भी सम्मिलित थे। यह कलचुरि नरेशोंका शासित प्रदेश था।[२]

अवन्ती—मालवाका प्राचीनतम नाम (कथासरित्सागर, अ. १९)। इस प्रदेशकी राजधानी उज्जयिनी थी। (अनर्घराघव, अंक ७)। गोविन्द-सुत्त (दीघ-निकाय) के अनुसार माहिष्मती इसकी राजधानी थी। अवन्तीको ही सातवीं-आठवीं शताब्दीसे मालवा कहने लगे (Rhys David's Buddhist India, p. 28)

१. The Geographical Dictionary of Ancient & Mediaevel India by Nundolal Dey.

२. Tivara Deva's Inscription, found at Rajim in Asiatic Researches XV, 508.

मालव १—विक्रमादित्य आदिके कालमें इसकी राजधानी उज्जयिनी थी। राजा भोजके कालमें इसकी राजधानी धारा नगरी हो गयी। सातवीं-आठवीं शताब्दीसे पहले मालवको अवन्ती कहते थे।

२—मालव या मल्लोंका देश, जिसकी राजधानी मुलतान[२] थी। 'हर्षचरित' में वर्णित मालवराज सम्भवतः मुलतानके मल्लोंका राजा[३] था।

दशार्ण—महाभारतमें दशार्ण नामके दो देशोंका उल्लेख मिलता है—एक पश्चिमकी ओर, जिसे नकुलने जीता था (सभा पर्व, अ. ३२)। दूसरा पूर्वमें, जिसे भीमने जीता था (सभा पर्व, अ. ३०)। पश्चिम दशार्णमें पूर्वी मालवा तथा भोपाल सम्मिलित थे। इसकी राजधानी विदिशा थी। अशोकके कालमें इसकी राजधानी चैत्यगिरि या चेतियगिरि थी। पूर्वी दशार्णमें वर्तमान छत्तीसगढ़ जिला और आदिवासियोंकी पटना भी सम्मिलित थी।[४]

चेदि—बुन्देलखण्ड। इसकी सीमाएँ इस प्रकार थीं—पश्चिममें काली सिन्ध, पूर्वमें टोंस। 'टाड राजस्थान' (१,४३) में चेदिकी पहचान चन्देरीसे की गयी है तथा इसे शिशुपालकी राजधानी बताया है। 'आइने-अकबरी' मे बताया है कि यह एक बहुत बड़ा शहर है और इसमें एक किला भी है। डॉ. फ्यूरर, जनरल कनिंघम और डॉ. ह्यूलरका मत है कि दहल मण्डल या बुन्देलखण्ड ही प्राचीन चेदि है। दहल नर्मदाका तटवर्ती भाग है। गुप्तकालमें कालंजर इसकी राजधानी थी और महाभारत कालमें शक्तिमती उसकी राजधानी थी। चेदिको इसकी राजधानी त्रिपुरीके कारण त्रिपुरी भी कहा जाता था। त्रिपुरीको वर्तमानमें तेवर कहते हैं।

सिद्धक्षेत्र

प्राचीन कालमें मध्यप्रदेशके सुरम्य शैल-मालाओं और नदी-तटोंपर, कलकल निनाद करते हुए अजस्र निर्झरों और वन-वीथियोंमें मुनिजन तपस्या किया करते थे। प्रकृतिकी गोदमें बैठकर जब वे वीतराग योगी आत्मोपलब्धिके लिए ध्यानलीन बैठ जाते तो प्रकृति-पुत्र वन्य जीव उनके निकट निर्भय और निर्वैर होकर परस्पर केलि किया करते थे। कोटि-कोटि निर्ग्रन्थ मुनियोंकी आत्म-साधना इस प्रदेशके पर्वत शिखरोंपर, गुहाओं और नदी-तटोंपर बैठकर या कायोत्सर्ग मुद्रामें ध्यान करते हुए सफल हुई है। उन्हें केवलज्ञान प्रकट हुआ। किन्हीं मुनियोंने केवलज्ञान प्राप्तिके पश्चात् गन्धकुटीमें विराजमान होकर जगत्‌के जीवोंको कल्याण और हितका उपदेश दिया और आयुकर्म पूर्ण होनेपर यहींसे मुक्त हो गये। कुछ मुनियोंके ऊपर घोर उपसर्ग हुआ और वे अन्तकृत् केवली होकर सिद्ध परमात्मा बन गये। इस प्रदेशमें ऐसे कुछ स्थान हैं, जहाँ मुनियोंका निर्वाण हुआ और इसलिए जो सिद्धक्षेत्र या निर्वाण क्षेत्र कहे जाते हैं। इन सिद्धक्षेत्रोंके नाम इस प्रकार हैं—

१. महाभारत, सभा पर्व, अ. ३२। Mc Crindle's Invasion of India by Alexander, p. 352; Cunnnigham's Arch. S. Report V, p. 129; बृहत्संहिता अ. १४।

२. Epigraphia Indica, Vol. I, p. 70.

३. Dr. Bhandarkar's History of Dekkan, Sec. III.

४. Journal of Asiatic Society of Bengal 1905, pp. 7-14.

५. अलबेरूनीका भारत, प्रथम खण्ड, पृ २०२। हेमकोश। अनर्घ्य राघव, अंक ७ में बताया है कि कलचुरि-कालमें माहिष्मती चेदिमण्डलकी राजधानी थी।

पावागिरि, सिद्धवरकूट, चूलगिरि, रेशंदीगिरि, द्रोणगिरि, सोनागिरि।

पावागिरि—प्राकृत निर्वाण काण्डके अनुसार पावागिरिके शिखर पर, चलना नदीके तट-पर सुवर्णभद्र आदि चार मुनीश्वर निर्वाणको प्राप्त हुए। संस्कृत निर्वाण भक्तिमें कर्मविजेता सुवर्णभद्रकी मुक्ति नदीके तटसे बतायी है। यह नदी निश्चय ही चलना नदी थी और उस स्थान-का नाम पावागिरि था।

अनुश्रुति है कि मालवराज बल्लालने यहाँ ९९ मन्दिर, ९९ सरोवर और ९९ कुएं बनवाये थे। इस राजाके कालके ११ मन्दिर कुछ अच्छी दशामें तथा शेष मन्दिरोंके भग्नावशेष यहाँपर अब तक मिलते हैं।

सिद्धवरकूट—यहाँसे रेवाके दोनों तटोंपर रावणके दो पुत्र तथा साढ़े पाँच करोड़ मुनि मुक्त हुए थे। इनके अतिरिक्त दो चक्रवर्ती, दस कामकुमार और साढ़े तीन करोड़ मुनि भी यहाँसे मुक्त हुए थे।

कुल २४ कामदेव हुए हैं, जिनके नाम हैं—बाहुबली, अमिततेज, श्रीधर, दशभद्र, प्रसेनजित चन्द्रवर्ण, अग्निमुक्ति, सनत्कुमार, वत्सराज, कनकप्रभ, मेघवर्ण, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, विजयराज, श्रीचन्द्र, नल, हनुमान, बलगजा, वसुदेव, प्रद्युम्न, नागकुमार, श्रीपाल और जम्बूकुमार।

इनमें-से कौन-से १० कामकुमार यहाँसे मुक्त हुए हैं, यह ज्ञात नहीं हो सका।

चक्रवर्तियोंमें दो चक्रवर्ती यहाँसे मुक्त हुए हैं। सम्भवतः उनके नाम हैं मघवा और सनत्कुमार।

चूलगिरि—बड़वानी नगरसे दक्षिणकी ओर चूलगिरि शिखरसे इन्द्रजीत और कुम्भकर्ण मुनियोंने मुक्ति प्राप्त की थी। यहाँपर भारतकी सबसे विशाल प्रतिमा विराजमान है। यह प्रतिमा आद्य तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेवकी है जो कायोत्सर्ग मुद्रामें एक ही पाषाणमें उत्कीर्ण ८४ फुट ऊँची है। इसे बावनगजाजी कहते हैं। इस प्रदेशमें प्राचीन कालमें एक हाथको ही कच्चा गज माननेका रिवाज था, अतः ५२ हाथको बावनगजा कहने लगे। यह पहाड़के सहारे खड़ी है। भगवान्के मुखपर जो वीतरागता और शान्तिके भाव अंकित हैं, उन्हें देखकर दर्शक स्वतः अभिभूत हो जाता है।

रेशंदीगिरि—इस क्षेत्रका नाम नैनागिरि है। रेशंदीगिरिको ही नैनागिरि मान लिया गया है। यहाँसे भगवान् पार्श्वनाथके समवसरणमें वरदत्त आदि पाँच मुनियोंको मोक्ष प्राप्त हुआ है।

द्रोणगिरि—फलहोड़ी ग्रामके पश्चिममें द्रोणगिरि पर्वतके शिखरसे गुरुदत्त आदि मुनियोंकी मुक्ति हुई है। वर्तमानमें यह क्षेत्र सेंधपा ग्राम (जिला-छतरपुर) के निकट माना जाता है।

सोनागिरि—यहाँसे नंगकुमार, अनंगकुमार आदि साढ़े पाँच करोड़ मुनि मोक्ष पधारे हैं। अतः यह क्षेत्र सिद्धक्षेत्र है। यह क्षेत्र झाँसी-दतियाके निकट है।

इन सिद्धक्षेत्रोंके अतिरिक्त कई स्थान ऐसे हैं, जिनको अभी तक सिद्धक्षेत्र तो नहीं माना जाता, किन्तु आर्ष ग्रन्थोंमें जहाँसे मुनिजनोंके मुक्त होनेके उल्लेख मिलते हैं। जैसे—

उज्जयिनीमें अभयघोष मुनि पधारे और वीरासनसे ध्यानारूढ़ हो गये। तभी उनके पुत्र चण्डवेगने उनके ऊपर घोर उपसर्ग किया, उनके चारों हाथ-पैर काट दिये। मुनिराज समरसी-भावमें निमग्न थे। उन्हें तत्काल केवलज्ञान हो गया और वहींसे कुछ ही क्षणोंमें उन्हें मोक्ष हो गया। इस प्रकार उज्जयिनी भी निर्वाण क्षेत्र है।

अननुबद्ध केवलियोंमें अन्तिम केवली श्रीधर मुनि कुण्डलपुरसे मुक्त हुए। उपर्युक्त आधार-पर कुछ विद्वान् कुण्डलपुर क्षेत्रको श्रीधर मुनिकी निर्वाण-भूमि मानकर उसे निर्वाण-क्षेत्र मानते हैं।

कुछ लोग अहारको निर्वाण-क्षेत्र मानते हैं। इनकी मान्यता है कि मदनकुमार और विष्कंवल केवली यहाँसे मुक्त हुए थे।

मध्यप्रदेशके उपर्युक्त सिद्धक्षेत्रोंमें चूलगिरि (बड़वानी) को छोड़कर शेष सभी सिद्धक्षेत्रों-की अवस्थितिके सम्बन्धमें विवाद है। कुछ लोग मानते हैं कि वर्तमानमें पावागिरि, सिद्धवरकूट, रेशंदीगिरि, द्रोणगिरि और सोनागिरि जहाँ हैं, वस्तुतः ये क्षेत्र अपने मूल स्थानपर नहीं रहे। जैन समाज इनके मूल स्थानोंको भूल चुकी है और कुछ खण्डहरों या मन्दिरोंको देखकर विभिन्न स्थानोंपर इन तीर्थोंकी स्थापना कर ली है। इनमें-से कुछ क्षेत्र तो इसी शताब्दीमें ५० वर्षके भीतर ही स्थापित किये गये हैं। अतः यह स्वाभाविक है कि इन क्षेत्रोंके वास्तविक स्थानका पता लगाया जाये।

दूसरा पक्ष यह है कि ये क्षेत्र अपने वास्तविक स्थानपर ही हैं। इसके लिए वे विभिन्न प्रमाण भी उपस्थित करते हैं।

किन्तु इन दोनों पक्ष-विपक्षोंसे व्यतिरिक्त एक तीसरा तटस्थ पक्ष भी है। उसका कहना है कि प्रत्येक क्षेत्र जहाँ था, उस स्थानकी खोज होना अत्यन्त आवश्यक है। क्षेत्रोंके वास्तविक स्थानोंका अपना ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्त्व है। उनके अनुसन्धानकी बड़ी आवश्यकता है। किन्तु जबतक क्षेत्रोंकी वर्तमान स्थितिके विरुद्ध ठोस प्रमाण प्राप्त न हों, तबतक इन क्षेत्रोंको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। जहाँ १२ वर्ष तक भक्तजन यात्रा, पूजन और दर्शनोंके लिए जाते रहते है, वह स्थान पवित्र तीर्थक्षेत्र बन जाता है। फिर इन क्षेत्रोंकी मान्यताको तो कई १२ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इन तीर्थक्षेत्रोंके साथ असंख्य भक्तजनोंका भावनात्मक सम्बन्ध जुड़ चुका है। अतः बिना किसी ठोस आधारके इन तीर्थक्षेत्रोंको अमान्य नही ठहराया जा सकता।

यहाँ एक बात विशेष उल्लेखनीय है। मध्यप्रदेशमें किसी तीर्थंकरका एक भी कल्याणक नही हुआ। उत्तरप्रदेशमें १८ तीर्थंकरोंके गर्भ, जन्म, तप और केवलज्ञान कल्याणक हुए। ऋषभदेवका निर्वाण कल्याणक भी उत्तरप्रदेशमे ही हुआ। नेमिनाथके केवल गर्भ और जन्म कल्याणक ही उत्तरप्रदेशमे हुए, शेष कल्याणक गुजरात प्रदेशमें हुए। इसी प्रकार बिहार प्रदेशमें भी ६ तीर्थंकरोके गर्भ, जन्म, तप, केवलज्ञान कल्याणक हुए तथा २२ तीर्थंकरोंके निर्वाण-कल्याणक हुए। गुजरातमें भगवान् नेमिनाथके तप, केवलज्ञान और निर्वाण कल्याण हुए।

कुछ लोगोंकी मान्यता है कि उदयगिरि (विदिशा)में भगवान् शीतलनाथके गर्भ, जन्म, तप और केवलज्ञान कल्याणक हुए थे। यद्यपि इसके लिए कोई ठोस आधार उपलब्ध नहीं हैं।

अतिशय क्षेत्र

मध्यप्रदेश अतिशय क्षेत्रोंके मामलेमें अत्यन्त समृद्ध है। इस प्रदेशमें जितने अतिशय क्षेत्र विद्यमान हैं, उतने अतिशय क्षेत्र किसी दूसरे प्रदेश में नही मिलते। इन अतिशय क्षेत्रोंसे सम्बन्धित अनेक सरस और रोचक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कुछ किंवदन्तियाँ तो सामान्य (Common) हैं जो कई अतिशय क्षेत्रोंके लिए समान रूपसे प्रचलित हैं। जैसे राँगेका चाँदी बन जाना, बावड़ीमें एक पर्ची पर बरतनोंका नाम लिखकर डालना और बावड़ीसे तदनुरूप बरतन निकलना। कुछ

किंवदन्तियाँ किन्हीं व्यक्तियोंसे सम्बन्धित हैं, जिनकी मनोकामना वहाँ पूजा-पाठ करनेसे पूर्ण हो गयी। किन्तु कुछ किंवदन्तियाँ अवश्य ही ऐतिहासिक महत्त्वकी हैं। जैसे—

—महमूद गजनवी (अथवा मालवाका कोई सुलतान) अपनी विशाल वाहिनीको लेकर भारतके विभिन्न प्रान्तोंको रौंदता, जनताको लूटता और मन्दिर-मूर्तियोंको तोड़ता हुआ मक्सी आया और गाँवके बाहर एक उद्यानमें ठहर गया। उसकी योजना मन्दिर और मूर्तियोंको प्रातःकाल होनेपर तोड़नेकी थी। किन्तु रातमें वह ऐसा बीमार हो गया कि उसे पलंगसे उठना भी कठिन हो गया। उसे अन्तःप्रेरणा हुई कि यह मक्सीके पार्श्वनाथका चमत्कार है। सुबह होते ही उसने फौजमें आदेश प्रचारित किया कि कोई इस मन्दिरको हाथ न लगावे। वह स्वयं मन्दिरमें गया और पार्श्वनाथको नमस्कार किया तथा इस घटनाकी स्मृतिस्वरूप मन्दिरके मुख्य द्वारपर पाँच कंगूरोंका निशान बनानेका आदेश दिया। वे निशान अब तक वहाँ मौजूद हैं। इन निशानोंको देखकर बादमें भी किसीने इस मन्दिरको हाथ नहीं लगाया।

—कुण्डलपुर क्षेत्रपर जब मुस्लिम बादशाहने आक्रमण करके मूर्तियोंको तोड़ना चाहा और हथौड़ा चलाया तो मूर्तिमें-से दूधकी धार बह निकली और मधुमक्खियोंने आकर शाही फौजपर धावा बोल दिया, जिनसे सारी फौजको वहाँसे भागना पड़ा। इसी प्रकार यहाँ आकर महाराज छत्रसालकी मनोकामना पूर्ण हो गयी और उन्हें उनका राज्य पुनः मिल गया।

—बनैड़ियाके मन्दिरके सम्बन्धमें किंवदन्ती है कि एक भट्टारक गुजरातसे एक मन्दिरको आकाश-मार्ग द्वारा पूर्व दिशामें किसी स्थानपर स्थापित करनेके लिए ले जा रहे थे। इतनेमें प्रातःकाल हो गया और मन्दिर जमीनपर आ लगा। इसीलिए यह नींवसे शिखर तक खण्डित है। बादमें इसे जोड़-तोड़कर ठीक किया गया।

इस प्रदेशके अतिशय क्षेत्रोंके नाम इस प्रकार हैं—

बजरंगढ़, थूबौन, चन्देरी, बहुरीबन्द, सिहौनिया, पनागर, पटनागंज, बन्धा, अहार, गोलाकोट, पचराई, पपौरा, कुण्डलपुर, मनहरदेव, कोनी, तालनपुर, मक्सी, पार्श्वनाथ, बनैड़िया, बीना-बारहा, गुरीलागिरि, बूढ़ी चन्देरी, खन्दार, लखनादौन, मड़िया।

कलाक्षेत्र

इस प्रदेशमें ऐसे स्थानोंकी कमी नहीं है जो न सिद्धक्षेत्र हैं, न अतिशय-क्षेत्र, किन्तु फिर भी जो कला, पुरातत्त्व और इतिहासकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण हैं और तीर्थक्षेत्र माने जाते हैं। इससे ज्ञात होता है कि जैन समाज अपनी कला और इतिहासकी धरोहरको उतना ही अधिक महत्त्व देती है जितना अन्य तीर्थों और मन्दिरोंको। इसका प्रमाण यह है कि इस प्रदेशमें जिन स्थानोंपर जैन पुरातत्त्व अधिक संख्यामें मिला है, ऐसे कई स्थानोंपर जैन समाजने मूर्तियोंका संग्रह एक स्थानपर कर लिया है। जैसे अहार, पपौरा, थूबौन, सिहौनिया, पावागिरि, चूलगिरि, द्रोणगिरि, बहुरीबन्द, सोनागिरि, खजुराहो, विदिशा, बीना-बारहा, गुरीलागिरि, उज्जयिनी। इनमें अहार, उज्जयिनी और सोनागिरिमें तो व्यवस्थित जैन संग्रहालय बन चुके हैं। शेष स्थानोंपर अभी संग्रहालय तो नहीं बन पाये, किन्तु संग्रहालय बनानेकी योजना चल रही है।

ऐसे पुरातात्त्विक महत्त्वके स्थान भी, जो सिद्धक्षेत्र या अतिशय-क्षेत्र नहीं हैं, तीर्थक्षेत्र माने जाते हैं। इन्हें कलातीर्थ कहा जा सकता है। ऐसे स्थानोंमें ग्वालियर, अजयगढ़, खजुराहो, गन्धर्वपुरी, ग्यारसपुर, उदयगिरि, कारीतलाई, पतियानदाई, पनिहार-बरई, त्रिपुरी, बदनावर, ऊदबपुर, पठारी, बड़ोह आदि हैं।

जैन पुरातत्त्व

मध्यप्रदेशमें लगभग सभी जिलोंमें, वनों और पर्वतोंपर जैन पुरातत्त्व की सामग्री बिखरी पड़ी है। जितने प्रचुर परिमाणमें जैन पुरावशेष इस प्रदेशमें मिलते हैं, उतनी संख्यामें सम्भवतः भारतके किसी अन्य प्रदेशमें नहीं मिलेंगे। यहाँका जैन पुरातत्त्व प्रचुरताकी दृष्टिसे ही नहीं, ऐतिहासिक और कलाकी दृष्टिसे भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

कालक्रमकी दृष्टिसे हम इस प्रदेशके जैन पुरातत्त्वको सुविधाके लिए तीन भागोंमें बाँट सकते हैं—गुप्तकालीन, मध्यकालीन और उत्तरकालीन। इसी प्रकार यहाँकी पुरातन कलाकृतियों और कलावशेषोंको भी अपनी सुविधाके लिए हम चार भागोंमें विभाजित कर सकते हैं—(१) तीर्थंकरमूर्तियाँ, (२) शासन देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ, (३) देवायतन, (४) अभिलेख।

तीर्थंकर मूर्तियाँ

इस प्रदेशमें तीर्थंकर-मूर्तियाँ हजारोंकी संख्यामें उपलब्ध होती हैं। इनमें खड्गासन मूर्तियोंकी संख्या पद्मासन मूर्तियोंकी अपेक्षा कम है। अधिकांश अतिशय क्षेत्रोंपर मूलनायक प्रतिमाएँ प्रायः खड्गासन मिलती हैं। विशेषतः बुन्देलखण्डके अतिशय क्षेत्रोंपर विशाल अवगाहनावाली शान्तिनाथ भगवान्‌की प्रतिमाएँ स्थापित करनेकी परम्परा-सी रही है। मध्यप्रदेशमें खड्गासन प्रतिमाओंमें सर्वोन्नत प्रतिमा चूलगिरि (बड़वानी) में स्थित भगवान् आदिनाथकी है। इसकी ऊँचाई ८४ फुट है। भारतमें इतनी ऊँची प्रतिमा दूसरी नहीं है। ग्वालियर किलेकी आदिनाथ भगवान्‌की ५७ फुट ऊँची प्रतिमाको दूसरा स्थान दिया जा सकता है। इसकी गणना उरवाही समूहकी प्रतिमाओंमें की जाती है। इसी दुर्गके दक्षिण-पूर्व समूहकी लगभग २० प्रतिमाएँ २० से ४० फुट तक ऊंची हैं। खन्दारमें शान्तिनाथ भगवान्‌की ३५ फुट ऊँची मूर्ति है।

इनके अतिरिक्त अन्य कई क्षेत्रोंपर भी काफी समुन्नत खड्गासन प्रतिमाएँ हैं, किन्तु वे इनसे आकारमें छोटी हैं। जैसे बजरंगढ़में शान्ति, कुन्थु और अरनाथकी १८ फुट ऊँची, अहारमें १७ फुट, सिहोनियामें शान्तिनाथकी १६ फुट, थूबोनमें शान्तिनाथकी १८ फुट, बीना-बारहामें शान्तिनाथकी १५ फुट ऊँची प्रतिमाएँ हैं। बहुरीबन्द, पटनागंज, कुण्डलपुर, बीना-बारहा आदिमें १२ फुट अवगाहनावाली प्रतिमाएँ मिलती हैं।

पद्मासन प्रतिमाओंमें सर्वोन्नत प्रतिमा ग्वालियर दुर्गके 'एक पत्थरकी बावड़ी' समूहकी सुपार्श्वनाथ तीर्थंकरकी है जो ३५ फुट ऊँची है। इतनी विशाल पद्मासन मूर्ति सम्भवतः अन्यत्र कहींपर भी उपलब्ध नहीं होती। कुण्डलपुरमें आदिनाथ भगवान्‌की मूर्ति, जिसे 'बड़े बाबा' कहा जाता है, १२ फुट ऊँची है। ग्वालियर दुर्गमें अन्य भी कई पद्मासन मूर्तियाँ विशाल आकारकी पायी जाती हैं।

इस प्रदेशमें उपलब्ध होनेवाली तीर्थंकर मूर्तियोंमें वैविध्यके भी दर्शन होते हैं। जैसे द्विमूर्तिका, त्रिमूर्तिका, सर्वतोभद्रिका, पंचबालयति, चतुर्विंशति पट्टिका मूर्तियोंमें, यों तो सभी २४ तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं, किन्तु आदिनाथ, शान्तिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीरकी मूर्तियाँ बहु संख्यामें मिलती हैं। आदिनाथकी जटामण्डित मूर्तियाँ इस प्रदेशमें भी मिलती हैं। किन्तु उनकी संख्या अत्यल्प है। ऐसी मूर्तियाँ कुण्डलपुर, कारीतलाई आदिमें हैं। बीना-बारहा आदि कई स्थानोंपर आदिनाथेतर कई तीर्थंकर मूर्तियोंपर भी स्कन्धचुम्बी जटें अंकित मिलती हैं। पार्श्वनाथकी प्रतिमाएँ प्रायः सप्तफणावलि युक्त प्राप्त होती हैं, नव और एकादश फणावलि युक्त पार्श्वनाथ प्रतिमा विरल ही उपलब्ध होती हैं। पटनागंजमें सहस्रफणमण्डित दो

पार्श्वनाथ मूर्तियाँ हैं। ऐसी मूर्तियाँ इस प्रान्तमें अन्यत्र नहीं हैं।

जिस प्रकार चूलगिरिकी ८४ फुट उत्तुंग आदिनाथ-प्रतिमा और ग्वालियरकी ३५ फुट उत्तुंग पद्मासन सुपार्श्वनाथ प्रतिमाकी समानता अवगाहनाकी दृष्टिसे भारतकी अन्य कोई प्रतिमा नहीं कर सकती, इसी प्रकार चन्देरीकी चौबीसी (अर्थात् चौबीस तीर्थंकरोंकी प्रतिमाओं) की समता कोई दूसरी चौबीसी नहीं कर सकती। चन्देरीकी ये २४ तीर्थंकर मूर्तियाँ अत्यन्त सुन्दर हैं, सभी मूर्तियोंका वर्ण वही है जो शास्त्रोंमें तीर्थंकरोंका बताया गया है। ये मूर्तियाँ अलग-अलग गर्भगृहोंमें विराजमान हैं। मूर्तियोंकी चौबीसीके समान मन्दिरोंकी चौबीसी पपौरामें विद्यमान है। यह भी अपनेमें अनुपम है।

ऐतिहासिक कालक्रमकी दृष्टिसे इस प्रदेशकी तीर्थंकर मूर्तियोंपर विचार करनेपर हमें कुछ रोचक निष्कर्ष प्राप्त होते हैं। इस प्रदेशमें जो तीर्थंकर मूर्तियाँ उपलब्ध हैं, उनमें गुप्तकालसे प्राचीन कोई मूर्ति नहीं है। अर्थात् यहाँ उपलब्ध तीर्थंकर मूर्तियोंका प्राचीनतम काल गुप्तकाल है। मध्यप्रदेशपर मौर्य वंश, शुंग वंश, नाग वंश, शक क्षत्रप, परिव्राजक, उच्चकल्प आदि राजवंशोंका शासन रहा। इन कालोंसे सम्बन्धित कुछ सिक्के भी प्राप्त हुए हैं। त्रिपुरीमें ईसासे तीन शताब्दी पूर्वके पाये हुए सिक्कोंपर रेवाकी मूर्ति अंकित मिलती है। इससे त्रिपुरीका इतिहास मौर्य युग तक पहुँच जाता है। इसी प्रकार कारीतलाईके निकटकी गुफाओंमें २००० वर्ष प्राचीन शिलालेख मिले हैं। उनकी लिपि ब्राह्मी है। गुप्त संवत् १७४ (ई. स. ४९३-९४) का एक ताम्रपत्र भी कारीतलाईमें मिला था। इस ताम्रपत्रमें उच्चकल्प (उचहरा) के महाराज जयनाथ द्वारा नागदेव सन्तक (नागौद) में स्थित छन्दापल्लिका नामक गाँवके दानका उल्लेख है। यहाँ यह सब देनेका उद्देश्य यह है कि मध्यप्रदेशके अनेक स्थानोंका सम्बन्ध प्राचीन इतिहास-कालसे रहा है। किन्तु गुप्तकालसे पूर्वकी कोई जैन मूर्ति इस प्रदेशमें उपलब्ध नहीं हुई। श्वेताम्बर साहित्यिक साक्ष्योंके अनुसार भगवान् महावीरकी एक मूर्ति उनके जीवन कालमें बन गयी थी। इस सम्बन्धमें यह कथा मिलती है—

अवन्तिके चण्डप्रद्योतने सिन्धु सौवीर नरेश उदयनकी एक सुन्दर दासीका अपहरण कर लिया। दासी अपने साथ जीवन्त स्वामीकी प्रतिमा भी ले गयी थी। उदयनको जब इस काण्डका पता चला तो उसने प्रद्योतपर आक्रमण कर दिया। प्रतिमा मिली नहीं, दासी बचकर भाग निकली। उदयनने चण्डप्रद्योतको गिरफ्तार कर लिया और उसके सिरपर एक स्वर्ण-पट्टिका बाँध दी, जिसपर लिखा था—मम दासीपतिः। मार्गमें पर्युषण पर्वके दिन प्रारम्भ हो गये। उदयनने पर्युषणके उपलक्ष्यमें उपवास किया और रसोइयासे कह दिया—"तुम चण्डप्रद्योत नरेशसे पूछ लो, वे क्या खायेंगे। उनकी इच्छानुकूल भोजन बना देना।" रसोइयाने चण्डप्रद्योतसे पूछा। चण्डप्रद्योतको सन्देह हुआ कि आज मेरे भोजनमें विष डालकर मुझे मार डालनेका उपक्रम किया जा रहा है। किन्तु जब उसे ज्ञात हुआ कि पर्युषण पर्वके कारण उदयन उपवास कर रहा है तो उसने भी उपवास करनेकी अपनी इच्छा प्रकट की। यह बात रसोइयाने उदयनसे कह दी। उदयनको यह जानकर अत्यन्त दुःख हुआ कि मैंने अपने एक साधर्मी बन्धुका घोर अपमान किया है। वह तत्काल चण्डप्रद्योतके निकट पहुँचा और अपने कृत अपराधके लिए क्षमा-याचना की तथा चण्डप्रद्योतको आदर सहित मुक्त कर दिया। चण्डप्रद्योतने मुक्त होकर विदिशामें जीवन्त स्वामीकी उस प्रतिमाको विराजमान कर दिया।[1]

१. भरतेश्वर-बाहुबली वृत्ति, आवश्यकचूर्णि, निशीथचूर्णि, वसुदेव हिण्डी।

श्वेताम्बर साहित्य—'त्रिषष्टिशलाका-पुरुष-चरित्र' आदिके अनुसार जैनधर्मका सर्वाधिक प्रचार अशोकके पौत्र सम्प्रतिके राज्यकालमें हुआ। इस कालमें विदिशामें महावीर स्वामीकी चन्दननिर्मित जीवन्त स्वामीकी प्रतिमा विद्यमान[1] थी।

दिगम्बर परम्परामें जीवन्त स्वामीकी प्रतिमाओंका कहीं उल्लेख नहीं मिलता। श्वेताम्बर साहित्यमें उल्लिखित कोई जीवन्त स्वामी प्रतिमा अब मध्यप्रदेशमें नहीं मिलती।

अब तककी शोध-खोजके परिणामस्वरूप यह स्वीकार करना पड़ता है कि मध्यप्रदेशमें गुप्तकालसे पूर्वकी कोई जैन प्रतिमा नहीं है। हाँ, गुप्तकालकी कई जैन मूर्तियाँ विद्यमान हैं। इन मूर्तियोंमें गुप्तकालीन कलाके सभी वैशिष्ट्य परिलक्षित होते हैं। इस कालकी प्रतिमाओंमें सौन्दर्य और अलंकरणकी ओर विशेष ध्यान दिया गया है। उष्णीष, प्रभावलय, परिकर आदि कोई अंग सौन्दर्यसे अछूता नहीं रहने पाया है। तीर्थंकरोंके चिह्नोंका प्रचलन इस काल तक अधिक नहीं हो पाया था, तथापि उनका उपयोग प्रारम्भ हो गया था।

यहाँ एक विचारणीय प्रश्न है कि मथुरा आदिमें गुप्तकालके पूर्वकी शक-कुषाण कालकी जैन मूर्तियाँ जितनी प्रचुर संख्यामें प्राप्त हुई हैं, उतनी जैन मूर्तियाँ गुप्तकालकी नहीं मिलतीं, वाकाटक-कालकी भी नहीं मिलती, जबकि गुप्तवंशी राजा शैव या वैष्णव होते हुए भी जैनधर्मके प्रति सहिष्णु और उदार बताये जाते हैं। गुप्तकालमें कलाका बहुमुखी विकास हुआ था और हिन्दू देवी-देवताओंकी इस कालकी मूर्तियाँ बहु संख्यामें पायी जाती हैं। तब उतनी जैनधर्मसे सम्बन्धित मूर्तियाँ इस कालकी क्यों नहीं मिलतीं। इतिहास अब तक इस अनसुलझे प्रश्नका कोई उत्तर नहीं दे पाया है।

गुप्त शासनके उत्तरवर्ती काल अर्थात् सातवींसे बारहवीं शताब्दी तकके कालको हम मध्यकाल मानकर चलते हैं। प्रायः सातवीं-आठवीं शताब्दीको ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यमें पूर्व मध्य-काल अथवा सन्धिकालके नामसे भी उल्लिखित किया जाता है। किन्तु सुविधाकी दृष्टिसे हम मध्यकालको पूर्वमध्यकाल अथवा उत्तर-मध्यकालके रूपमें विभाजित न करके इस कालको केवल मध्यकालके रूपमें ही अभिहित करेंगे।

मध्यप्रदेशमें मध्यकालकी जैन मूर्तियाँ प्रचुर संख्यामें मिलती हैं। यहाँके अनेक क्षेत्रोंकी स्थापना इसी कालमें हुई थी और उन क्षेत्रोंपर इसी कालमें जैन मन्दिरोंका निर्माण किया गया था। इसलिए इस कालकी जैन मूर्तियोंका बहुसंख्यामें पाया जाना स्वाभाविक है। जहाँ कोई तीर्थक्षेत्र नहीं रहा, उन स्थानोंपर भी इस कालकी जैन मूर्तियाँ अत्यधिक संख्यामें मिलती हैं।

विन्ध्यप्रदेश, महाकोशल और मध्यभारतको तो जैन पुरातत्त्वका गढ़ ही कहना चाहिए। यहाँ कोई वन, पर्वत, जलाशय, दुर्ग ऐसा नहीं है, जहाँ जैन मूर्तियाँ खण्डित और अखण्डित दशामें सैकड़ोंकी संख्यामें न मिलती हों। इन भूभागोंमें चन्देल, कलचुरि, प्रतिहार, तोमर और परमार शासकोंके राज्य-कालमें कलाका विकास द्रुत गतिसे हुआ। यहाँके कलाकारोंने युगकी बदलती कला-प्रवृत्तियोंको भी अनूठे ढंगसे आत्मसात् करके जैन संस्कृतिके मौलिक रूपको सुरक्षित रखनेका पूरा प्रयास किया।

गुप्तयुग और मध्ययुगके सन्धिकालकी भी कुछ मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। मूर्तिके अलंकरण और प्रतिमा-शैलीके आधारपर मूर्तिका निर्माण-काल निर्धारित किया जाता है। एक मूर्ति जबलपुरके निकट स्लिमनाबादमें एक वृक्षके नीचेसे प्राप्त हुई थी। इस शिलाफलकमें अष्ट प्रातिहार्य-

---

१. आवश्यक निर्युक्ति १२७८।

युक्त तीर्थंकर-प्रतिमा विराजमान है। उसके चारों ओर नवग्रहोंकी खड़ी हुई मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। नवग्रहोंकी प्रमुखतामें जिनमूर्तिका अंकन अत्यन्त आकर्षक बन पड़ा है। लोग इसे सिन्दूर पोतकर खेरामाईके नामसे अबतक पूजते रहे हैं। इस प्रकारकी न जाने कितनी जैन मूर्तियाँ इस प्रान्तमें खेरमाईके नामसे पूजी जाती हैं। जसो, मैहर, उचहरा, रीवाँ आदिमें जैन मूर्तियोंको खेरामाईके नामसे पूजनेका चलन अब भी देखा जा सकता है।

विन्ध्यप्रदेशमें इस युगमें विविध स्थानोंपर जैनधर्मके सबल केन्द्र रहे थे। यहाँका कण-कण प्राचीन कालसे ही भारतीय शिल्प-स्थापत्य कलासे सम्पन्न रहा है। भारत और विदेशोंके अनेक संग्रहालय इसी प्रदेशसे गये हुए पुरातत्त्वसे श्रीसम्पन्न हैं। भरहुत स्तूप-जैसी विश्वविश्रुत कलाकृति इसी प्रदेशकी देन है। खजुराहोके कलायतन इसी भूमिके ज्योतित रत्न हैं। इस प्रदेशके कलाकारोंकी कल्पनाशक्ति, शिल्पवैविध्य, सुललित अंकन, शारीरिक गठन एवं उत्प्रेरक तत्त्व यहाँकी कलाकृतियोंमें आज भी परिलक्षित होते हैं। इस प्रदेशमें पुरातन सामग्रीके अवशेष जहाँपर भी मिलते हैं, उनमें जैन सामग्रीका भाग बहुत बड़ा होता है। यहाँके कई मकानोंकी दीवालों, फर्शों और सीढ़ियोंमें जैन पुरातत्त्वका स्वच्छन्द उपयोग मिलता है। कलकत्ता, प्रयाग, रीवाँ आदि अनेक संग्रहालयोंमें यहाँकी पुरातत्त्व सामग्री सुरक्षित है। आज भी इस प्रदेशके खेतोंमें जुताईके समय अनेक जैन मूर्तियाँ भूगर्भसे निकलती हुई सुनी जाती हैं। देवतलाव, मऊ, प्योहारी, गुर्गी, नागौद, जसो, लखुरबाग, नचना, उचहरा, मैहर, अजयगढ़, पन्ना, सतना, खजुराहो, छतरपुर तथा उनके निकटवर्ती स्थानोंपर जैन अवशेषोंके ढेर इस बातके साक्षी हैं कि यह सम्पूर्ण भूभाग कभी जैनोंका केन्द्र रहा होगा। आज स्थिति यह है कि इन अवशेषोंमें बिखरी हुई पुरातत्त्व सामग्रीकी नितान्त उपेक्षा हो रही है। इनमें-से कई स्थानों पर तो जैनोंका एक भी घर नहीं रहा।

इस काल और इस प्रदेशकी मूर्तियोंकी अपनी कुछ विशेषताएँ हैं। इस कालकी और इस प्रदेशकी तीर्थंकर-मूर्तियाँ प्रायः अष्ट प्रातिहार्ययुक्त होती हैं। इसी प्रकार मूर्तिके दोनों ओर यक्ष-यक्षी और भक्त श्रावक-श्राविकाका अंकन भी प्रायः मिलता है। इस प्रदेशमें अनेक स्थानोंपर तोरणद्वार भी मिले हैं। इनमें ललाट बिम्बपर तीन जिन-प्रतिमाएँ होती हैं और शेष भागमें कीर्तिमुख आदि। किसी-किसीमें तीर्थंकरोंके अभिषेकका दृश्य भी अंकित होता है। कुछमें गोम्मट स्वामीकी मूर्ति बनी होती है। कुछ ऐसी भी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनमें २४ तीर्थंकरोंके साथ गोम्मट स्वामीकी भी मूर्ति बनी हुई है। दिगम्बर परम्परामें बाहुबलीकी मूर्तियोंका प्रचलन प्राचीन कालसे चला आ रहा है। विन्ध्यप्रदेश और महाकोशलमें बाहुबलीकी मूर्तियाँ तीर्थंकर मूर्तियोंके साथ भी अंकित मिलती हैं। उनकी स्वतन्त्र मूर्तियाँ सम्भवतः इस कालकी कोई नहीं मिली, जबकि ७-८वीं शताब्दीमें बाहुबलीकी स्वतन्त्र प्रतिमाओंका निर्माण होने लगा था। बादामी गुफामें बाहुबलीकी ७॥ फुट ऊँची प्रतिमा मिली है। यह सातवीं शताब्दीमें निर्मित हुई थी। ऐलोरा गुफाके छोटे कैलास मन्दिरकी इन्द्र सभाकी दक्षिणी दीवारपर भी बाहुबलीकी मूर्ति बनी हुई है। इसका निर्माण काल आठवीं शताब्दी माना जाता है। देवगढ़के शान्तिनाथ मन्दिरमें ई. सन् ८६२ की बाहुबलीकी मूर्ति है, जिसमें बामी, कुक्कुट, सर्पोंके साथ बिच्छू-छिपकली और माधवी लताएँ भी मिलती हैं।

इस प्रदेशमें कुछ स्थान तो ऐसे हैं, जहाँ पुरातन शिल्पावशेष इतनी प्रचुरतामें उपलब्ध होते हैं, जिनसे एक संग्रहालय मजेमें बन सकता है। रीवाँ ऐसा ही स्थान है। यहाँके कलावशेषोंकी सामग्री अनेक मकानोंमें लगी है, उन अवशेषोंसे कई नये मन्दिर बन गये हैं। रीवाँके लक्ष्मण बागवाले नूतन मन्दिरका निर्माण गुर्गीके कलापूर्ण अवशेषोंसे हुआ है। रीवाँके कुछ पुरावशेष

व्यंकट विद्या सदनमें सुरक्षित हैं। इसमें ताम्रपत्र, शिलालेख, प्राचीन मूर्तियाँ, हस्तलिखित ग्रन्थ और शस्त्रास्त्रोंका अच्छा संग्रह है। इस संग्रहालयका बहुभाग जैन सामग्रीसे युक्त है। जैन सामग्रीमें ऋषभदेव, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर तीर्थंकरकी अष्टप्रातिहार्य, यक्ष-यक्षी और परिकरयुक्त प्रतिमाओंके अतिरिक्त अम्बिका और पद्मावतीकी मूर्तियाँ, तोरण, चौबीसी, मानस्तम्भका शिरोभाग आदि प्राप्त होते हैं। यह सामग्री प्रायः उत्तरकालीन मानी जाती है अर्थात् १२वीं शताब्दीके बादकी है।

सतनासे रीवाँ जानेवाले मार्गमें दसवें मीलपर 'रामवन' नामक एक आश्रममें भी पुरातत्त्व सामग्री संग्रहीत है। अधिकांश सामग्री वाकाटक और गुप्तकालकी हैं। इसमें कुछ खण्डित और अखण्डित जैन प्रतिमाएँ भी सुरक्षित हैं। यह सामग्री लखुरबाग और नचनासे लायी हुई है। जैन प्रतिमाओंमें पार्श्वनाथ, मल्लिनाथ, चौबीसी प्रतिमाएँ हैं। पन्नामें प्राप्त एक महावीर प्रतिमा भी यहाँ सुरक्षित है जो गुप्तकालकी है।

जसो तो जैन मूर्तियोंका घर है, जैसा कि ऊपर निवेदन किया जा चुका है। यहाँकी सामग्रीसे आज भी कई संग्रहालय सम्पन्न हैं। यहाँ जालपादेवीके मन्दिरके अहातेमें जैन पुरातत्त्वकी बहुत-सी सामग्री संग्रहीत है। इसमें अधिकांश सामग्री तो विकृत की हुई है। कुछ जैन मूर्तियोंपर सिन्दूर भी पुता हुआ है। इन मूर्तियोंमें भगवान् ऋषभदेव, पार्श्वनाथ और महावीरकी प्रतिमाएँ पद्मासन और खड्गासन दोनों ही आसनों में मिलती हैं। यहाँके इन कलावशेषोंमें अम्बिकाकी एक असाधारण प्रतिमा सुरक्षित है। आम्रवृक्षके मध्य भागपर नेमिनाथ तीर्थंकरकी प्रतिमा है। अधोभागमें गोमेद यक्ष सहित अम्बिका विराजमान हैं। एक नग्न स्त्री वृक्ष-स्थाणु पर चढ़ती हुई दीख पड़ती है। निकट ही एक गुफा अंकित है। सम्भवतः यह दृश्य राजीमतिसे सम्बन्धित है जो नेमिनाथके निकट जा रही है।

इस मन्दिरके निकटवाले मकानकी दीवालमें कई जैन मूर्तियाँ लगी हुई हैं। इसी प्रकार यहाँके कुम्हड़ा मठ, राम मन्दिर, जलकुण्ड, तालाब, दुर्ग, अनेक निजी मकानों आदिमें भी जैन मूर्तियाँ मिलती हैं। लखुरबाग, नचना और उचहरा भी जैन कलावशेषोंके केन्द्र रहे हैं। यहाँके महत्त्वपूर्ण अवशेष कलकत्ताके संग्रहालयमें पहुँचा दिये गये हैं। किन्तु अब भी इन स्थानोंपर जैन पुरातत्त्व-सामग्री यत्र-तत्र बिखरी हुई पड़ी है। कुछ जैन मूर्तियाँ यहाँ खैरामाई या खैरदइयाके रूपमें पूजी जाती हैं। मैहर, पोड़ी आदिमें और उनके निकटवर्ती स्थानोंपर भी जैन मूर्तियाँ मिली हैं। पौड़ीसे उपलब्ध एक प्रतिमापर संवत् ११५७ का लेख भी अंकित है। इस मूर्तिके ऊपर ग्रामीण लोग हँसिया, खुरपी आदि औजार रगड़कर तेज करते थे। उससे यह लेख काफी अस्पष्ट हो गया है।

विन्ध्यप्रदेशके तीर्थोंका जहाँ तक सम्बन्ध है, उनके मन्दिरों, मूर्तियों और अन्य पुरातत्त्व शिल्प सामग्रीके आनुमानिक निर्माण-कालका विभाजन शताब्दी क्रमसे हम इस प्रकार कर सकते हैं।

५वी शताब्दीसे ८वीं शताब्दी तक—तुमैन (खनियाधानाके निकट) में गुप्त सं. ११६ (सन् ४३५) का एक अभिलेख उपलब्ध हुआ है, जिसमें एक हिन्दू मन्दिरके निर्माणका उल्लेख है। अनुमान किया जाता है कि इसी कालमें यहाँ जैन मन्दिर और मूर्तियोंकी भी प्रतिष्ठा प्रारम्भ हो गयी होगी।

९वी-१०वीं शताब्दीकी मूर्तियाँ—खजुराहोके घण्टई मन्दिर और पार्श्वनाथ मन्दिरका निर्माण १०वी शताब्दीमें हुआ था। अतः वहाँकी मूलनायक प्रतिमाओंका निर्माण-काल भी यही

हो सकता है। गोलाकोटकी मूर्तियोंके लेखानुसार ये वि. सं. १००० से १२०० तककी हैं। अतः इनमें कुछ मूर्तियाँ १०वीं शताब्दीकी हैं। पतियानदाईमें गुप्तकालका अथवा ९-१०वीं शताब्दीका अम्बिका देवीका एक मन्दिर जीर्णशीर्ण दशामे खड़ा हुआ है। इसमें २४ जैन देवियोंकी मूर्तियाँ एक शिलाफलकमें उत्कीर्ण हैं। उनके मध्यमें अम्बिका देवीकी मूर्ति है। इसी प्रकार कारीतलाई, रखेतरा, बीना-बारहाके मन्दिरोंमें १०वीं शताब्दीमें प्रतिहार-शासन कालमें बनी हुई मूर्तियाँ मिलती हैं।

११-१२वीं शताब्दीकी जैन मूर्तियाँ—विन्ध्यप्रदेशमें इस कालकी अनेक जैन मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। इन मूर्तियोंपर चन्देल और प्रतिहार कलाका पूरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इस काल-की मूर्तियाँ रेशन्दीगिरि, बन्धा, अहार, पपौरा, खजुराहो, अजयगढ़, खनियाधाना, गोलाकोट, पचराई, भियादाँत, बीठला, आमनचार, बुढ़ियाखो, भामौन आदि क्षेत्रोंपर प्राप्त होती हैं।

उत्तरकालीन जैन मूर्तियाँ—१२वीं शताब्दीके परवर्तीकालकी मूर्तियाँ तो प्रायः सभी क्षेत्रों-पर उपलब्ध होती हैं।

महाकोशल प्रदेशमें प्रस्तर प्रतिमाएँ दो प्रकारकी उपलब्ध होती हैं—परिकरसहित और परिकररहित पद्मासन और दूसरी परिकरसहित और परिकररहित खड्गासन। परिकरसहित पद्मासन प्रतिमाओंमें सर्वश्रेष्ठ मूर्ति भगवान् ऋषभदेवकी है जो हनुमानतालस्थित दिगम्बर जैन मन्दिरमें विराजमान है। यह मूर्ति त्रिपुरीसे लाकर यहाँ विराजमान की गयी है। यह कलचुरि कलाकी एक सर्वश्रेष्ठ रचना कही जा सकती है। कलापक्ष और भावपक्ष दोनों ही दृष्टियोंसे इसका परिकर इतना प्रभावक बन पड़ा है कि इस कोटि की एक भी मूर्ति इस प्रदेश में मुश्किल से मिलेगी। यह ५ फुट ऊँची और ३॥ फुट चौड़ी है।

त्रिपुरीसे कलचुरि कालकी कई प्रतिमाएँ प्राप्त हुई थीं जो वर्तमानमें नागपुर संग्रहालयमें सुरक्षित हैं। कई प्रतिमाएँ उपर्युक्त मन्दिर नं. ४ (हनुमानताल जबलपुर) में हैं। नागपुर संग्रहालय-मे त्रिपुरीकी जो जिन प्रतिमाएँ सुरक्षित हैं, उनमे एकके सिंहासन पीठपर संस्कृतमे लेख भी है, जिसमें बताया गया है कि माथुरान्वयके धौलुके पुत्र देवचन्द्रने संवत् ९०० में यह प्रतिमा प्रतिष्ठित करायी। इसी प्रकार एक प्रतिमाके लेखसे ज्ञात होता है कि वह संवत् ९५१ ज्येष्ठ सुदी तीजको प्रतिष्ठित की गयी। इन संवतोंसे प्रायः भ्रम हो जाता है। ये न शक-संवत्के सूचक हैं, न विक्रम संवत् के। अपितु ये कलचुरि संवत्के द्योतक हैं। कलचुरि संवत् ईसवी सन् २४८ में प्रारम्भ हुआ। अतः ये प्रतिमाएं १२वीं शताब्दीकी हैं।

एक खण्डित प्रतिमा प्राप्त हुई है, जिसमें अलंकार धारण किये हुए स्त्री-पुरुष हैं। उनके मध्यमें एक वृक्षकी शाखा दिखाई देती है। शाखाके ऊपर सम्भवतः धर्मचक्र बना हुआ है। ऊपरकी ओर आसनपर जिन-मूर्ति बनी हुई है। इस मूर्तिके दोनों ओर खड्गासन जिन मूर्तियाँ हैं। उनके बगलमें कोनों पर पद्मासन जिन-मूर्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। सभी प्रतिमाओंके कानोंके पास पत्तियाँ बनी हुई हैं। इस प्रकारकी जिन-प्रतिमाएँ और भी मिलती हैं।

कुछ विद्वान् दम्पतीको अशोककी पुत्री संघमित्रा और पुत्र महेन्द्र बताते हैं तथा वृक्षको बोधि-वृक्ष बताते हैं। उन्हें यह क्लिष्ट कल्पना क्यों करनी पड़ी, सम्भवतः इसका कारण जैनमूर्ति-कलाके सम्बन्धमें उनकी अनभिज्ञता है। उन्हें यह कल्पना करते समय तीर्थंकर-मूर्तियोंका स्मरण नहीं आया। वस्तुतः यह मूर्ति पंच-बालयतियोंकी है। इनमें मुख्य प्रतिमा नेमिनाथ स्वामीकी है। स्त्री-पुरुष नेमिनाथ भगवान्की यक्षी अम्बिका तथा यक्ष गोमेद हैं। वृक्षकी शाखा आम्रवृक्ष है। आम्रवृक्ष अम्बिकाकी मूर्तियोंके साथ पाया जाता है।

इस प्रदेशमें ऐसी भी मूर्तियाँ मिली हैं, जिनमें मध्यमें तीर्थंकर प्रतिमा बनी हुई हैं और उसके परिकरमें केवल नवग्रह बने हुए हैं।

महाकोशलके जैन तीर्थोंमें बहुरीबन्द और त्रिपुरीके निकटवर्ती कुछ स्थान ऐसे हैं जहाँ गुप्तकालीन मन्दिर और मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। बहुरीबन्दके आसपास तिगवा, रूपनाथ, ककरहटा आदिमें मौर्यकालके अवशेष मिलते हैं। रूपनाथमें तो सम्राट् अशोकका पाषाणपर उत्कीर्ण शासनादेश अब तक विद्यमान है। बहुरीबन्दमे खुदाईमें १७ जैन मूर्तियाँ निकली थीं। यह सम्भावना है कि यहाँ तिगवाके समान कोई गुप्तकालीन मन्दिर रहा हो। इसीके निकटवर्ती भुभारा में भी गुप्तकालका एक शिलालेख मिला है। किन्तु इन स्थानोंसे गुप्तकाल या उससे पूर्वकी कोई जैन शिल्प-सामग्री उपलब्ध नहीं हुई, जबकि हिन्दू और बौद्ध सामग्री मिलती है। यहाँसे जो जैन सामग्री मिली है, वह ९-१०वीं शताब्दी या इसके बादकी है।

बहुरीबन्दकी शान्तिनाथ-प्रतिमा, जो आकारमें १३ फुट ९ इंच ऊँची और पौने चार फुट चौड़ी है, की प्रतिष्ठा कलचुरिनरेश गयकर्णदेवके शासनकालमें शक सं. १०७० (सन् ११४८) में की गयी थी।

कोनीके भी मन्दिर और कुछ मूर्तियाँ ९-१०वी शताब्दीकी हैं। लखनादौनमें डॉ. हीरालालजी कटनीको एक अभिलिखित द्वार-शिलाखण्ड मिला था। उससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला था कि यहाँ ९-१०वी शताब्दीका कोई मन्दिर अवश्य होगा। उसीका यह द्वार-शिलाखण्ड होगा। अभी कुछ समय पहले खेतमें हल जोतते हुए महावीर स्वामीकी चार फुट ऊँची और सवा दो फुट चौड़ी प्रतिमा सपरिकर मिली थी। इसकी गणना प्रदेशकी सर्वश्रेष्ठ प्रतिमाओंमें की जा सकती है। पाषाण, रचना-शैली आदिसे यह भी ९-१०वी शताब्दीकी लगती है। त्रिपुरीमे उपलब्ध जैन मूर्तियोंका काल १२वी शताब्दी माना गया है।

पनागर, मढ़िया आदिको मूर्तियाँ उत्तरकालीन हैं।

मध्यभारतका सम्पूर्ण भूभाग जैन पुरातत्त्व सामग्रीसे सम्पन्न है। सम्भवतः इस भूभागका कोई जिला ऐसा नही मिलेगा, जिसमे विपुल परिमाणमे जैन कलावशेष बिखरे हुए न हों। 'उज्जयिनी'से सम्बन्धित लेखमें हमने उज्जैनके निकटवर्ती अनेक स्थानोंकी सूची दी है, जहाँ जैन पुरातत्त्व सम्बन्धी सामग्री मिलती है। सुविधाके लिए मध्यभारतमे हमने इन्दौर, उज्जैन, धार, देवास, गुना, शिवपुरी, ग्वालियर, विदिशा आदि जिलोंको लिया है।

मध्यभारतमें विशालताकी दृष्टिसे सबसे विशाल प्रतिमा बड़वानीके निकट 'बावनगजाजी' के नामसे प्रसिद्ध ८४ फुट ऊँची आदिनाथ-मूर्ति है जिसका उल्लेख संक्षेपमें हम अभी कर चुके हैं। इसके दोनों ओर यक्ष-यक्षी भी उत्कीर्ण हैं। उसके पश्चात् नम्बर आता है ग्वालियर दुर्गकी आदिनाथ मूर्तिका जो ५७ फुट ऊँची है। इस दुर्गकी अन्य खड्गासन और पद्मासन मूर्तियाँ भी इसी क्रममे आगे स्थान पा सकती हैं।

मध्यभारतमे कालकी दृष्टिसे सबसे प्राचीन मूर्ति विदिशामें प्राप्त तीन तीर्थंकर-मूर्तियाँ हैं तथा विदिशाके निकट उदयगिरि गुफा नं. २० में पार्श्वनाथकी वह मूर्ति भी है जो अब वहाँ नही है। ये चारों मूर्तियाँ गुप्तवंशके रामगुप्तके काल की हैं। इनमें चन्द्रप्रभकी मूर्तिकी चरण-चौकीके लेखमें तिथि तो नही दी है, किन्तु महाराजाधिराज श्री रामगुप्तका नामोल्लेख मिलता है। उदयगिरिकी गुफा नं. २० में एक तिथियुक्त अभिलेख मिला है जो उक्त पार्श्वनाथकी मूर्तिसे सम्बन्धित है। इसमें गुप्तवंशीय राजाओंके शासन कालके १०६वें वर्षमें (ई. स. ४२६) कार्तिक कृष्णा ५ को गुहा-द्वारमें पार्श्वनाथ-मूर्ति बनवानेका उल्लेख है।

गुप्तकालीन एक जैन मूर्ति बेसनगरसे प्राप्त हुई थी। यहाँ भरहुत स्तूपके कुछ भाग और अभिलिखित वेदिका-स्तम्भ मिले हैं, जिनपर अशोक शैलीके लेख उत्कीर्ण हैं। ये ईसा पूर्व तीसरी शताब्दीके माने जाते हैं। यहाँ आरोहीयुक्त गज, सिंहमूर्ति, मकरवाहिनी गंगा आदि अनेकविध पुरातत्त्व सामग्री मिली है। किन्तु जैन मूर्ति या अन्य जैन सामग्री इस कालकी उपलब्ध नहीं हुई।

इस प्रदेशमें मध्यकालकी सामग्री विपुल परिमाणमें मिलती है। इस मध्यकालीन सामग्रीका अधिकांश परमारवंशी नरेशोंके शासन-कालकी देन है। उज्जयिनीके जैन संग्रहालय और विक्रम विश्वविद्यालयके पुरातत्त्व संग्रहालयमें स्थित जैन सामग्रीका काल ९वीं या उसके बादकी शताब्दियाँ हैं। यह सम्पूर्ण सामग्री उज्जैन और उसके निकटवर्ती स्थानोंसे लायी गयी है।

उज्जयिनीमें क्षिप्राके दूसरे तटपर जो मण्डप बना हुआ है, उसके एक स्तम्भमें जैन मूर्ति बनी हुई है। इसमें तो सन्देह नहीं है कि यह मण्डप अत्यन्त प्राचीन है। एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है। उज्जयिनीमें भट्टारकोंकी गद्दी थी और यहाँ सन् ६२९ से १०५८ तक व्यवस्थित भट्टारक-परम्परा चलती रही। प्रायः भट्टारकोंकी गद्दी वहीं बनायी जाती थी, जहाँके मन्दिरकी पहलेसे प्रसिद्धि रही हो। सन् ६२९ में जब यहाँ भट्टारक-गद्दीकी स्थापना की गयी, उस समय यहाँ कोई जैन मन्दिर ऐसा अवश्य था, जिसकी ख्याति जनतामें बहुत समयसे और दूर-दूर तक थी। हमारा अनुमान है, वह और कोई नहीं, जैनोंका ही मन्दिर था जो भगवान् महावीरके उपसर्गकी स्मृतिमें यहाँ बनाया गया था।

ग्वालियर दुर्गकी मूर्तियोंका निर्माण तोमरवंशी राजा डूँगरसिंह और उनके पुत्र राजा कीर्तिसिंहके शासन-कालमें हुआ था। डूंगरसिंहका राज्य शासन वि. संवत् १४८१ से १५१० और कीर्तिसिंहका राज्य-काल संवत् १५१० से १५३६ तक था। इन ५५ वर्षोंमें यहाँ मूर्तियोंके निर्माण-के अतिरिक्त अनेक ग्रन्थोंका भी निर्माण हुआ। अपभ्रंश भाषाके महाकवि रइधू इसी कालमें हुए थे। ५७ फुट ऊँची प्रतिमाकी प्रतिष्ठा उन्होंने ही करायी थी। ग्वालियर संग्रहालयमें जो जैन कला-सामग्री है, वह कला और समय दोनों ही दृष्टियोंसे उल्लेखनीय है। जिस जैन मन्दिरको मुगलकालमें मसजिद बना दिया गया था, उसमें एक कमरा जमीनके नीचे मिला है, जिसमें जैन मूर्तियाँ विराजमान हैं। यहाँ वि. सं. ११६५ का एक लेख भी मिला है। इससे ज्ञात होता है कि ये मूर्तियाँ भी १२वीं शताब्दीकी हैं।

शिवपुरीका संग्रहालय एक प्रकारसे जैन संग्रहालय ही है। इसमें प्रायः सम्पूर्ण कला सामग्री जैनोंसे सम्बन्धित है। यह सामग्री परमारकालीन है। कला-वस्तुओं अर्थात् मूर्तियों आदिमें परमार कालकी विकसित कलाकी पूर्णतः अभिव्यक्ति मिली है।

ग्वालियरके निकट सिहौनियाके सम्बन्धमें ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि सन् २७५ में वहाँ राजा सूरजसेनकी रानी कोकनवतीने कोकनपुर मठका बड़ा जैन मन्दिर बनवाया था। अब तो वहाँ भग्नावशेष बिखरे पड़े हैं। जो मन्दिर वर्तमानमें वहाँ हैं, वे इतने प्राचीन नहीं लगते। अतः सम्भव है, रानी द्वारा बनवाया हुआ मन्दिर भग्न हो गया हो और इन अवशेषोंमें पड़ा हो।

चूलगिरिमें मन्दिरके एक सभा-मण्डपमें चार शिलालेख अंकित हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि वि. सं. १११६, १२२३ और १५०८ में यहाँके मन्दिरोंका जीर्णोद्धार किया गया था। इसका अर्थ यह है कि ये मन्दिर इस कालसे कम से कम २-३ शताब्दी पूर्वमें निर्मित हुए होंगे। तब इन मन्दिरोंका निर्माण काल ८-९वीं शताब्दी माना जा सकता है।

पावागिरि ऊनमें राजा बल्लालने जिन ९९ हिन्दू और जैन मन्दिरोंका निर्माण कराया था, उनमें-से ११ मन्दिर जीर्ण-शीर्ण दशामें अब भी खड़े हैं। इनमें ३ जैन मन्दिर भी हैं। बल्लाल-

की मृत्यु सन् ११४३ में परमारवंशी यशोधवलके हाथों हुई थी। इतिहासकारोंका यह कथन सत्य ही है कि खजुराहोके पश्चात् एक पावागिरि ही ऐसा स्थान है जहाँ इतने प्राचीन मन्दिर अब तक खड़े हैं। यहाँकी मूर्तियोंके पादपीठपर वि. सं. १२१८, १२५२, १२६३, १३३२ के लेख मिलते हैं। इन लेखोंसे ज्ञात होता है कि ये मन्दिर और मूर्तियाँ १२वीं शताब्दी और उसके परवर्ती कालमें निर्मित हुए थे। मनहरदेव, सोनागिरि, बजरंगढ़, गन्धर्वपुरी और सिद्धवरकूटमें ११-१२वीं शताब्दी-की जिन-मूर्तियाँ मिलती हैं।

उत्तरवर्ती कालकी जिन-मूर्तियाँ प्रायः सभी तीर्थोंपर प्राप्त होती हैं।

हमने अबतक मध्यप्रदेशमें प्राप्त पाषाणोत्कीर्ण तीर्थंकर प्रतिमाओं और मन्दिरोंका ऐति-हासिक क्रमसे काल-निर्धारण करनेका प्रयत्न किया है। उपर्युक्त विश्लेषणसे एक तथ्य और भी उजागर हो जाता है कि मध्यप्रदेशकी विन्ध्यभूमिकी जैन कलाकृतियोंपर मुख्यतः चन्देल कलाकी छाप है, महाकोशल विभागकी जैनाश्रित कला कलचुरि कलासे प्रभावित रही है और मध्यभारत सम्भागपर परमार कलाका प्रभाव अंकित है। तीनों ही शैलियोंकी अपनी-अपनी विशेषताएँ रही हैं, किन्तु किन्हीं कलाकृतियोंपर इन शैलियोंका साँझा प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। इन शैलियों-की अपेक्षा मन्दिरों पर अधिक आसानीसे पहचाना जा सकता है।

धातु मूर्तियाँ प्रायः ५-६वीं शताब्दीके बाद निर्मित होनी प्रारम्भ हुईं, इससे पूर्वकी कोई धातु-प्रतिमा उपलब्ध नहीं होती, अब तक ऐसी धारणा चली आ रही थी। इस धारणाके अनुसार चौसा (जिला शाहाबाद, बिहार) से प्राप्त धातु मूर्तियाँ सर्वाधिक प्राचीन मानी जाती हैं। वे आजकल पटना संग्रहालयमें सुरक्षित हैं। यद्यपि इन मूर्तियोंमें-से किसीके भी पाद-पीठपर लेख नहीं है, किन्तु इनका निर्माण-काल ५-६वीं शताब्दी माना जाता है।

भारत-कला-भवन वाराणसीमें एक लघु जैन धातु-मूर्ति रखी हुई है। मूलतः यह सोना-गिरिके भट्टारककी है। इसका निर्माण-काल गुप्तकाल अनुमानित किया जाता है।

मध्यप्रदेशमें धातु-प्रतिमाएँ उपलब्ध तो होती हैं, किन्तु वे विशेष प्राचीन नहीं हैं।

शासन-देवताओंकी मूर्तियाँ

मध्यप्रदेशमें शासन-देवताओंकी मूर्तियाँ बहुलतासे प्राप्त होती हैं। शासन देवताओंकी मूर्तियाँ तीर्थंकर-मूर्तियोंके साथ भी मिलती हैं और स्वतन्त्र भी मिलती हैं। प्रत्येक तीर्थंकरके अनुषंगी एक यक्ष और एक यक्षी माने गये हैं। तीर्थंकर-मूर्तिके दायें-बायें प्रायः इन यक्ष-यक्षियोंका अंकन प्राप्त होता है। कुछ प्राचीन प्रतिमाएँ ऐसी भी मिलती हैं, जिनमें इनका अंकन नहीं मिलता, किन्तु तीर्थंकरके परिकरमें इनका अंकन आवश्यक माना गया है। ऐसी सपरिकर तीर्थंकर प्रतिमाएँ प्रायः सभी तीर्थ क्षेत्रों और प्राचीन स्थानोंपर मिलती हैं। इन शासन देवताओंके अतिरिक्त भी कुछ देव देवियोंका अंकन जैन प्रतिमाओं पर मिलता है तथा जैन प्रतिष्ठा ग्रन्थोंमें इन देव-देवियों-का उल्लेख भी प्राप्त होता है। इन देव-देवियोंमें सोलह विद्या देवता, नवग्रह, दस दिक्पाल, अष्ट मातृका सम्मिलित हैं। जैन संग्रहालय उज्जैनमें स्थित एक ताम्र-यन्त्रपर ६४ जैन शासन-देवियों-के नाम उत्कीर्ण हैं। जो नाम उसमें दिये गये हैं, वे किस आधारसे दिये गये हैं, यह ज्ञात नहीं हो सका।

इसी संग्रहालयमें मूर्ति क्रमांक १५६ में चार देवियाँ बालक लिये हुए अंकित हैं। उनके नीचे उनके नाम इस प्रकार दिये गये हैं—देवीदासी, रसादगुणदेवी, विभारवती और त्रिसला। मूर्ति क्रमांक १४१ में ६ शासन-देवियाँ अंकित हैं। उनके नीचे उनके नाम हैं—वारिदेवी, सिमिदेवी,

उमादेवी, सुभयदेवी, जयदेवी और सवाईदेवी। इन देवियोंके नाम किसी दिगम्बर अथवा श्वेताम्बर ग्रन्थमें नहीं मिलते। हो सकता है, ये देवियाँ न होकर मूर्ति-प्रतिष्ठापिका गृहस्थ

यक्ष-यक्षियोंकी स्वतन्त्र मूर्तियाँ तो मिलती ही हैं, इनके स्वतन्त्र मन्दिर भी रहे हैं। ऐसा लगता है, इन यक्ष-यक्षियोंकी मान्यता तीर्थंकर-मूर्तियोंके निर्माण-कालके कुछ अनन्तर ही प्रारम्भ हो गयी थी। कुषाण-कालसे पूर्वकी तीर्थंकर मूर्तियोंकी संख्या उँगलियों पर गिनने लायक है। कुषाण-कालमें मथुरामें मूर्ति-कलाका विकास हुआ। इस कालमें निर्मित मूर्तियोंकी संख्या सैकड़ों है। इसी कालमें यक्ष और यक्षियोंकी मूर्तियाँ भी निर्मित होने लगी थीं। इस कालमें तीर्थंकर मूर्तिके दोनों पार्श्वोंमें इनका अंकन होने लगा था तथा साथ ही इनका स्वतन्त्र निर्माण भी होने लगा था। इस सम्बन्धमें हम किसी क्रमिक विकासकी कल्पना करना चाहें तो यह एक कठिन कल्पना ही कहलायेगी। मथुरा संग्रहालयमें कंकाली टीलेसे प्राप्त प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवकी यक्षी चक्रेश्वरीकी एक मूर्ति कुषाण-कालकी सुरक्षित है। यह दसभुजी और ढाई फुट ऊँची है। यह गरुड़ासना है। इसके ऊपर पद्मासन जिनप्रतिमा है। इस मूर्तिके अतिरिक्त मथुराके कंकाली टीलेसे सरस्वती, नैगमेश आदि देव-देवोंकी मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं।

मध्यप्रदेशमें शासन-देवियोंके स्वतन्त्र मन्दिर कई स्थानोंपर पाये गये हैं। जैसे—कटनीके समीप बिलहरी ग्राममें 'लक्ष्मणसागर' के तटपर चक्रेश्वरीका एक प्राचीन मन्दिर बना हुआ है। चक्रेश्वरी गरुड़पर विराजमान है और उसके मस्तकपर आद्य तीर्थंकर ऋषभदेव विराजमान हैं। यह मूर्ति आजकल खैरमाईके नामसे पूजी जा रही है।

इसी प्रकार सतनाके निकट पतियानदाईका एक प्राचीन मन्दिर है। एक शिलाफलकमें चौबीस यक्षियोंकी एक मूर्ति है। मध्यमें अम्बिका विराजमान है तथा दोनों पार्श्वोंमें तीर्थंकर और यक्षी मूर्तियाँ बनी हुई हैं। यह प्रतिमा आजकल प्रयाग संग्रहालयमें सुरक्षित है तथा मन्दिर भग्न दशामें खड़ा है। लगभग ६ फुट ऊँचे और साढ़े तीन फुट चौड़े शिलाफलकपर लगभग ४१ इंचकी चतुर्भुजी अम्बिका अंकित है। इसके चारों हाथ खण्डित हैं। कण्ठमें हार मुक्तामाला, बाँहोंमें भुजबन्द, हाथोंमें नागावलि सुशोभित है। केश-विन्यास त्रिवल्यात्मक है। मुखपर ओज, लावण्य और भाव-विमुग्धताकी सुललित छवि है। कटि भागमें रत्नमेखला कई लड़ोंकी है। चरणमें नूपुर और तोड़ोंका अंकन है। प्रतिमाके दायी ओर एक बालक सिंहपर आरूढ़ है, बायीं ओर एक बालक खड़ा है। नीचेके भागमें एक स्त्री और पुरुष अंजलिबद्ध खड़े हैं। देवीके मस्तकपर भगवान् नेमिनाथकी पद्मासन प्रतिमाका अंकन है। शंखका चिह्न स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इस परिकरमें कुल १३ जिन-मूर्तियाँ तथा अम्बिकाके अतिरिक्त २३ देवी-मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इस शिलाफलकके अधोभागमें एक पंक्तिका लेख उत्कीर्ण है।

कलाकी दृष्टिसे अम्बिकाकी ऐसी सर्वांग सम्पूर्ण मूर्ति तथा २४ यक्षियोंकी ऐसी भव्य मूर्तियाँ अन्यत्र देखनेमें नहीं आयीं। सम्भवतः यह मूर्तिफलक १०-११वीं शताब्दीका है। इसे चन्देल कलाकी प्रतिनिधि रचना माना जा सकता है।

प्रयाग संग्रहालयमें भुमारा, भरहुत, खजुराहो, नागौद और जसो आदिसे लायी हुई जैन मूर्तियाँ रखी हैं। इन मूर्तियोंमें शासन-देवियोंकी ६ मूर्तियाँ ऐसी हैं, जिन्हें अद्भुत कहा जा सकता है। यक्षोंकी कोई स्वतन्त्र मूर्ति यहाँ नहीं मिली है। देवियोंकी मूर्तियोंमें एक मूर्ति (क्रमांक २३५) साढ़े तीन फुटी शिलाफलकपर है। मूर्ति आद्य तीर्थंकर ऋषभदेवकी है। इसके दोनों ओर डेढ़ फुट अवगाहनावाली दो खड्गासन जिन-मूर्तियाँ हैं। नीचेके भागमें एक ओर गृहस्थ दम्पती हाथ जोड़े

घुटने टेककर वन्दना कर रहा है। उसके बगलमें सुखासनमें एक मूर्ति बनी हुई है। कुछ विद्वानोंकी सम्मतिमें यह गोमेद यक्षकी मूर्ति हो सकती है। कुछ लोगोंका मत है कि यह कुबेर-मूर्ति है। इसके बायीं ओर आम्रलुम्ब लिये और बायें हाथसे एक बालकको कमरपर थामे अम्बिकाकी मूर्ति है। ऋषभदेवकी अधिष्ठात्री देवी चक्रेश्वरी है, किन्तु इस शिलाफलकमें ऋषभदेवके साथ अम्बिका दी हुई है।

मूर्ति क्रमांक ६१० और भी अद्भुत है। यह खड्गासन प्रतिमा है। इसका आकार है ३८ इंच × ११॥ इंच। प्रतिमाके ऊपर सप्तफण है। लांछन शंख स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है। प्रतिमाके मस्तकके ऊपर आम्रवृक्षकी शाखाएँ हैं। मस्तकके बायें भागमें एक देवी-मूर्ति है। उसके बायें घुटनेपर बालक बैठा हुआ है। तीर्थंकरके मस्तकके ऊपरी भागमें शासन-देवताकी मूर्ति प्रायः मिलती नहीं। शिल्पपरम्परा यही है कि शासन-देवताके मस्तकके ऊपरी भागमें जिन-प्रतिमा अंकित की जाये। ऐसी मूर्तियाँ सैकड़ोंकी संख्यामें मिलती हैं। दूसरी बात यह है कि सप्तफणावलि-युक्त प्रतिमा पार्श्वनाथकी मानी जाती है, किन्तु इसके नीचे लांछन शंखका है जो कि नेमिनाथका चिन्ह है। आम्रशाखाएँ और गोदका बालक अम्बिकाका प्रतीक है। फिर पार्श्वनाथके साथ अम्बिकाकी क्या संगति हो सकती है। किन्तु देवगढ़ आदिमें पार्श्वनाथके साथ अम्बिकाकी कई मूर्तियाँ मिलती हैं। यह खजुराहोसे लायी गयी थी। यह मूर्ति लगभग १०वीं शताब्दीकी है।

मूर्ति क्रमांक ६११ लगभग ३८ इंच × ३० इंच आकारकी है। यह खण्डित है। मूर्तिके सिरपर केशगुच्छक हैं। स्कन्धपर पड़ी हुई केशावलीसे यह ऋषभदेवकी मूर्ति निश्चित होती है। इसमें भी अधिष्ठातृ देवी अम्बिका है। दक्षिण भागमें खण्डित घुटनोंवाली दो खड्गासन जिन-मूर्तियाँ हैं। इनके ऊपर भी तीन खड्गासन मूर्तियाँ हैं। सम्भवतः यह चतुर्विंशति शिलापट्ट रहा होगा। यह मूर्ति ९–१०वीं शताब्दीकी होगी।

एक और मूर्ति इससे भी अद्भुत है। इसमें तीन तीर्थंकर-मूर्तियाँ हैं। दोनों ओरकी मूर्तियाँ क्रमशः पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथकी हैं, जिनके सिरपर क्रमशः सात और पाँच फणावलियाँ हैं। मध्यमें ऋषभदेवकी मूर्ति है। इन मूर्तियोंके मस्तकपर शिखराकृतियाँ बनी हुई हैं। तीनोंके उभय पार्श्वमें दो-दो खड्गासन-प्रतिमाएँ अंकित हैं और मध्यवर्ती भागमें दायीं ओर अम्बिका और बायीं ओर चक्रेश्वरी अपने आयुधों सहित बैठी हुई हैं। शिखरोंके अग्रभागपर भी एक-एक पद्मासन जिन-मूर्ति है। आश्चर्यकी बात यह है कि इनमें देवियोंके अगल-बगलमें जिन-प्रतिमाएँ हैं जो प्रायः अन्यत्र देखनेमें नहीं आतीं। पतियानदाईका चतुर्विंशति यक्षी पट भी इसी प्रकारका है। किन्तु ऐसी मूर्तियाँ विरल हैं।

एक अन्य मूर्ति भी विलक्षण है। एक वृक्षकी दो शाखाएँ फैली हुई हैं। उनके सिरेपर दो देवियाँ हैं जो पुष्पमाला धारण किये हुए हैं। वृक्षकी छायामें दायीं ओर पुरुष और बायीं ओर स्त्री बैठी हुई है। दोनोंके बायें घुटनेपर एक-एक बालक बैठा हुआ है। स्त्री दायें हाथमें सम्भवतः आम्रफल लिये है। बालक भी फल लिये है। पुरुषके सिरपर मुकुट और गलेमें रत्नाभरण हैं। वृक्षकी पत्रावलियोंके बीचमें जिन-प्रतिमा दृष्टिगोचर होती हैं। निम्न भागमें उपासकोंकी सात मूर्तियाँ बनी हुई हैं जो आमने-सामने मुख किये हुए हैं। अवश्य ही यह गोमेद यक्ष और अम्बिका यक्षीकी मूर्ति है। ऊपर भगवान् नेमिनाथकी मूर्ति है।

मनोवेगा देवीकी एक मूर्ति बदनावरसे प्राप्त हुई है। देवी चतुर्भुजी है। वह अश्वपर आरूढ़ है। उसके दोनों दायें हाथ खण्डित हैं। ऊपरके बायें हाथमें ढाल है तथा नीचेके बायें हाथसे रास सँभाले हुए है। उसका एक पैर रकाबमें है और दूसरा पैर जंघाके ऊपर रखा है। देवीके

गलेमें मौक्तिक माला और कानोंमें कुण्डल हैं। देवीके ऊपर एक मण्डप-सा बना हुआ है, जिसपर तीन जिन-प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। चारों कोनोंपर भी छोटी-छोटी जिन-मूर्तियाँ हैं। मूर्तिकी चरण-चौकीपर अभिलेख भी है। उसके अनुसार देवी-प्रतिमाको सं. १२२९ (सन् ११७२) में कुछ कुटुम्बोंके व्यक्तियोंने वर्धमानपुर (बदनावर) के शान्तिनाथ मन्दिरमें विराजमान किया। इसी मन्दिरमें शक सं. ७०५ (ई. ७८३) में आचार्य जिनसेनने हरिवंशपुराणकी रचना पूर्ण की थी।

जैन संग्रहालय उज्जैनमें बदनावरसे प्राप्त कई देवियोंकी मूर्तियाँ सुरक्षित हैं। यहाँ अम्बिका, पद्मावती, चक्रेश्वरी, महामानसी, रोहिणी, गोमेधा, निर्वाणी और ब्रह्माणी की कई स्वतन्त्र मूर्तियाँ भी हैं।

विक्रम विश्वविद्यालयमें चक्रेश्वरी देवीकी एक अद्भुत प्रतिमा उपलब्ध है। देवी अष्टभुजी और गरुड़ासना है। किन्तु पाँच हाथ भग्न हैं। शेष हाथोंमें चक्र और वज्र हैं। गरुड़ मनुष्याकृतिके रूपमें प्रदर्शित है और वह अपने दोनों हाथोंको ऊपर उठानेका उपक्रम करता प्रतीत होता है। देवीके मस्तकके ऊपर ऋषभदेव जिनकी प्रतिमा है। एक वृक्षका अंकन है, जिसपर दो वानर प्रदर्शित हैं। देवीके दोनों पार्श्वोंमें उनके सेवक-सेविका, देव-देवी आकाशगमन कर रहे हैं। मध्य भागमें नवग्रहोंका अंकन बहुत ही कलापूर्ण और भव्य बन पड़ा है। किसी देवी-प्रतिमाके साथ नवग्रहोंका अंकन प्रायः देखनेमें नहीं आता।

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित स्थानों पर चक्रेश्वरी, पद्मावती, अम्बिका, ज्वालामालिनी, सरस्वती, मनोवेगा आदि देवियोंकी दुर्लभ मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं—

कारीतलाई, खजुराहो, पावागिरि, ग्यारसपुर, सिद्धवरकूट, सोनागिरि, गन्धर्वपुरी, बीना बारहा, थूबौन, द्रोणगिरि, रेशंदीगिरि, गुरीलागिरि, खन्दार, चूलगिरि, रखेतरा आदि।

खजुराहोके आदिनाथ मन्दिरके द्वारके सिरदलपर देवियोंकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं। मन्दिरकी बाह्य भित्तियोंपर १६ देवियोंकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं जो सम्भवतः १६ विद्या देवियाँ हैं। यहाँके पार्श्वनाथ मन्दिरके महामण्डप और प्रवेशद्वारके ऊपर ललाट-बिम्बपर दसभुजी चक्रेश्वरी, त्रिमुख ब्रह्माणी, चतुर्भुज सरस्वती, चतुर्भुज लक्ष्मी, षड्भुजी सरस्वती आदि देवियोंका अंकन मिलता है। यहाँके सभी प्राचीन जैन मन्दिरोंके शिखरकी रथिकाओं और तोरणपर इन शासन-देवताओंकी मूर्तियाँ बहुसंख्यामें मिलती हैं।

इस प्रकार मध्यप्रदेशमें चन्देल, कलचुरि, परिहार और परमार कालकी अनेक देव-देवी मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। यह काल ७वीं से १२वीं शताब्दी तकका माना जाता है। लगता है, इस कालमें शासन-देवियोंकी मान्यता मध्यप्रदेशमें विशेष बढ़ी हुई थी। यद्यपि इस कालकी २४ यक्षियों, १६ विद्या देवताओं और ६४ अधिष्ठातृ देवियोंकी समवेत अथवा एकाकी मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं, किन्तु इन देवियोंमें भी अम्बिका, पद्मावती, चक्रेश्वरी, सरस्वती और लक्ष्मीकी मूर्तियाँ अत्यधिक मिलती हैं।

देवायतन

देवालय साधना और अर्चनाके स्थान होते हैं। वहाँ जाकर मनुष्यके मनको आध्यात्मिक शान्ति और सन्तोषका अनुभव होता है। साहित्यिक साक्ष्योंके आधारपर कहा जा सकता है कि कर्मभूमिके प्रारम्भिक कालसे जिनायतनोंका निर्माण होता रहा है। भगवज्जिनसेनकृत 'आदिपुराण'-के अनुसार इन्द्रने जब अयोध्याकी रचना की तो उसने सर्वप्रथम पाँच जिनालयोंकी रचना की अर्थात् चारों दिशाओंमें एक-एक तथा एक जिनालय नगरके मध्यमें। इसके पश्चात् भगवान्

आदिनाथके ज्येष्ठ पुत्र भरत चक्रवर्ती द्वारा ७२ जिनालयोंके निर्माणके उल्लेख मिलते हैं। इसके बाद अनेक व्यक्तियोंने जैन मन्दिरोंका निर्माण कराया, इस प्रकारके उल्लेख पुराण साहित्यमें स्थान-स्थानपर उपलब्ध होते हैं।

इतिहास और पुरातत्त्वके विद्वानोंका अभिमत है कि अति प्राचीन कालमें मन्दिरोंका निर्माण नहीं होता था, स्तूप बनाये जाते थे। पूज्य पुरुषोंके निधन-स्थानपर स्तूपोंका निर्माण होता था। उनकी किसी विशेष घटनाकी स्मृतिको सुरक्षित रखनेके लिए भी स्तूप निर्मित किये जाते थे। मथुरामें स्तूपके अवशेष मिले हैं। इन्हींका विकास होते-होते गुफा-चैत्य अथवा गुहा-मन्दिर बनाये जाने लगे। इसी कालमें विहारोंका भी निर्माण होना प्रारम्भ हुआ। सम्भवतः गुहा-मन्दिरोंके आधारपर ही स्वतन्त्र मन्दिरोंके निर्माणकी परम्परा चली। मन्दिरोंके संरचनात्मक शिल्पमें जो वैविध्य उपलब्ध होता है, वह सब प्रान्त, रुचि और संस्कृतिके विभेदके कारण है। वास्तु-कला और शिल्पका ज्यों-ज्यों विकास होता गया, मन्दिरोंकी संरचना और शिल्पमें भी उसी प्रकार परिवर्तन होते गये।

यद्यपि प्राचीन स्तूप वर्तमानमें उपलब्ध नहीं है किन्तु गुहा-मन्दिर अब तक उपलब्ध होते हैं। वे न केवल प्राचीन वास्तुकलाके ही निदर्शन हैं, अपितु उनसे तत्कालीन सामाजिक स्थिति और इतिहासपर भी विशद प्रकाश पड़ता है। जैनाश्रित कलासे सम्बन्धित गुहा-मन्दिरोंमें सर्वाधिक प्राचीन महाराष्ट्र प्रदेशके उस्मानाबाद जिलेमें तेरापुरकी गुफाएँ हैं। जैन साहित्यिक स्रोतोंके अनुसार ये महाराज करकण्डु द्वारा निर्मित करायी गयी थीं। करकण्डु नरेशका काल ईसा पूर्व ८०० से ६०० के बीचका है।

इसी प्रकार भद्रबाहु गुफा (श्रवणबेलगोला), सोन भण्डार गुफा (राजगिरि), पभोसाकी गुफाएँ, उदयगिरि-खण्डगिरि (उड़ीसा), उदयगिरि (विदिशा), बाबा प्यारामठकी गुफाएँ (जूनागढ़), सित्तन्नवासल, बादामी, ऐहोल, ऐलोरा, अंकाई-तंकाई आदिकी गुफाएँ मौर्यकालसे लेकर ११-१२वी शताब्दी तककी हैं। इनमें-से कुछ गुफाएँ केवल मुनियोंके ध्यान-अध्ययनके ही काममें आती थी, किन्तु अधिकांश गुफाओंमें तीर्थंकर मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। मध्यप्रदेशमें उदयगिरि, ग्वालियर आदि कुछ ही स्थानोंपर गुहा-मन्दिर हैं।

जैनोंमें विहारोंकी परम्परा प्राचीन कालसे रही है। इन विहारोंका उपयोग मुनियोंके आवास और गुरुकुलके रूपमे होता था। ऐसे ही एक विहारका उल्लेख पहाड़पुर (जिला राजशाही, बंगाल) के ताम्रलेखमें आया है। लेखानुसार इसका काल गुप्त सं. १५९ (ई० सन् ४७२) है। इस लेखमें पंचस्तूप निकायके निर्ग्रन्थ श्रमणाचार्य गुहन्दि और उनके शिष्योंसे अधिष्ठित विहार मन्दिरके लिए दिये हुए दानका उल्लेख किया गया है। इस लेखमें जिस विहारका उल्लेख किया गया है, संयोगसे उत्खननके फलस्वरूप वह विहार भूगर्भसे प्रकट हो चुका है। यह विहार अत्यन्त विलक्षण है। इसमें लगभग १७५ गुफाकार कोष्ठ हैं। चारों दिशाओंमें द्वार बने हुए हैं तथा मध्यमें सर्वतोभद्र मन्दिर बना हुआ है। मन्दिर तीन मंजिलका है। दुःख है कि इस विहारके अतिरिक्त अन्य कोई जैन बिहार नही मिला। पहाड़पुरके ताम्रपत्रमें उल्लिखित गुहन्दि आचार्य पंचस्तूपान्वयी थे। इसी परम्परामें षट्खण्डागमके विद्वान् टीकाकार वीरसेन, जिनसेन आदि आचार्य हुए। पहाड़पुरका यह विहार ईसाकी पहली दूसरी शताब्दीसे विद्या और जैनधर्मका महान् केन्द्र रहा था।

जब हम जैन मन्दिरोंके सम्बन्धमें विचार करते हैं तो हमें लगता है, जबसे जैन मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं, तभीसे जैन मन्दिर भी मिलते हैं। अबतक उपलब्ध मूर्तियोंमें सर्वाधिक प्राचीन मूर्ति लोहानीपुर (पटना) की मानी जाती है। यहाँ दो जिन-मूर्तियाँ उपलब्ध हुई थीं—एक मूर्तिका

तो कबन्ध मात्र है। उसमें भी आधी भुजाएँ और घुटनोंसे नीचेका भाग नहीं है। दूसरी मूर्ति सिर-के आधे भागसे गरदन तक ही है। दोनों ही तीर्थंकर-मूर्तियाँ हैं और ओपदार पालिशके कारण इन्हें मौर्यकालीन स्वीकार किया गया है। यहाँ एक जैन मन्दिरकी नींव भी मिली है। यहाँकी ईंटें मौर्यकालीन सिद्ध हो चुकी हैं। यहाँ एक मौर्यकालीन रजतमुद्रा भी प्राप्त है।

मध्यप्रदेशमें गुप्तकालसे पूर्वके किसी चैत्य, स्तूप या विहारके अवशेष उपलब्ध नहीं हुए। यहाँ मध्यकालसे पूर्वका भी कोई जैन मन्दिर अथवा उसके अवशेष भी उपलब्ध नहीं हुए। ग्यारस-पुरका वज्रमठ और खजुराहोका पार्श्वनाथ मन्दिर सम्भवतः मध्यप्रदेशके जैन मन्दिरोंमें सर्वाधिक प्राचीन हैं। इनका निर्माणकाल १०वीं शताब्दी है। कुछ विद्वानोंके मतानुसार ग्यारसपुरका यह भग्न मन्दिर १०वीं शताब्दीसे भी पूर्वका है। फर्गुसन साहब तो इसे ७वीं शताब्दीका अनुमानित करते हैं। खजुराहोके आदिनाथ और शान्तिनाथ मन्दिर इसके कुछ काल बादके हैं। ११-१२वीं शताब्दीके मन्दिरोंमें उल्लेखनीय है पावागिरि ऊनके चौबारा डेरा, ग्वालेश्वर मन्दिर, रेशंदीगिरिका पार्श्वनाथ मन्दिर, खनियाधानाके आसपास गूडर, गोलाकोट, नेरहीके भग्नप्राय मन्दिर भी इसी कालके लगते हैं। पतियानदाईका मन्दिर अपने संरचनात्मक शिल्पके कारण गुप्तकालीन कलाके साथ समानता रखता है, किन्तु इसे मध्यकालका माना गया है।

मन्दिरोंके निर्माण-कालका निर्णय उसकी संरचनात्मक विशेषता, शिखरकी शैली आदि तत्त्वोंके आधारपर किया जाता है। मन्दिरोंमें प्रायः निर्माण-काल-सूचक अभिलेख लगानेकी परम्परा नही रही। अतः मन्दिरमें विराजमान मूर्तियोंके लेखके आधारपर मन्दिर-प्रतिष्ठाका काल-निर्णय कर लिया जाता है, किन्तु मूर्ति-लेखोंका आधार इस सम्बन्धमें सदा ही विश्वसनीय सिद्ध नहीं हो पाता। कारण स्पष्ट है। कभी-कभी मन्दिर और मूर्तिके प्रतिष्ठापक भिन्न-भिन्न और भिन्नकालीन व्यक्ति होते हैं। अनेक बार मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा किसी स्थानपर करा ली जाती है और आवश्यकता एवं सुविधाकी दृष्टिसे किसी मन्दिरमें विराजमान कर दी जाती है। एक ही मन्दिरमें विभिन्न कालोंकी विभिन्न व्यक्तियों द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ मिलती हैं। मन्दिरके काल-निर्णयमें वे ही मूर्तिलेख सहायक सिद्ध हो सकते हैं, जिनके सम्बन्धमें यह निश्चित हो जाये कि मन्दिर और मूर्तिकी प्रतिष्ठा एक साथ हुई है। इन कारणोंसे अभिलेखके अभावमें किसी मन्दिरके निर्माण-कालका निश्चय करना अत्यन्त कठिन होता है। इसीलिए हमने उपर्युक्त मन्दिरोंके अतिरिक्त अन्य मन्दिरोंका उल्लेख नहीं किया।

जहाँ तक हमारी जानकारी है, मध्यकालके जैन मन्दिरोंमें केवल खजुराहो, ग्यारसपुर और ऊनके मन्दिर ही कुछ अच्छी दशामें हैं, शेष मन्दिर तो अर्धभग्न दशामें खड़े हैं। इन स्थानोंके जिनालयोंके ऊपर शिखरकी भी संयोजना है। किन्तु इनमें भी खजुराहोके शिखरोंकी रचना और अलंकृति अति भव्य है। इन मन्दिरोंमें पार्श्वनाथ मन्दिरकी कला तो अनुपम है। शिल्पीके हस्तकौशलने पाषाणोंमें मानो प्राण डाल दिये हों। वैसे इन तीनों स्थानोंके मन्दिरोंकी कला और शिखर-संयोजनामें अद्भुत साम्य पाया जाता है।

यहाँ खजुराहोके अन्य तीन मन्दिरोंके सम्बन्धमें जेम्स फर्गुसनके अभिमतका उल्लेख करनेका लोभ संवरण नहीं कर सकता। चौंसठ योगिनी मन्दिरकी प्रमिति और देवकुलिकाओंको देख कर उनकी यह धारणा बनी कि 'मन्दिर निर्माणकी यह रीति जैनोंकी अपनी विशेषता है, अतः-मूलतः इसके जैन होनेमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है।' मध्यवर्ती मन्दिर अब नहीं है। फर्गुसन साहब-के मतानुसार सम्भवतः प्राचीन बौद्ध चैत्योंके समान यह काष्ठका रहा हो। सम्भवतः खजुराहोके

मन्दिर समूहमें यही मन्दिर प्राचीनतम रहा हो। घण्टाई मन्दिरकी रचना शैलीके आधारपर इसे भी फर्गुसन साहबने जैन स्वीकार किया है। यहाँ प्राप्त खण्डित लेखकी लिपिके आधारपर कनिंघम साहबने इसे छठी-सातवीं शताब्दीका माना है। फर्गुसन साहब भी इसकी रचना शैलीके आधारपर यही काल मानते हैं।

मध्यप्रदेशके तीर्थोंपर गहरा चिन्तन करनेपर उनकी एक विशेषता और सामने आती है। यहाँके कुछ तीर्थ तो वास्तवमें मन्दिरोंके नगर हैं। जैसे सोनागिरमें छतरियों सहित १०० मन्दिर हैं। इसी प्रकार पपौरामें १०७, कुण्डलपुरमें ६०, रेशंदीगिरिमें ५२, मढ़ियामें ३२, द्रोणगिरि में २९, थूबौनमें २५ और पटनागंजमें २५ मन्दिर हैं। लगता है, ये तीर्थ मन्दिरोंकी बस्तियाँ हों। इन स्थानोंपर मन्दिरोंके अतिरिक्त प्रायः और कोई बस्ती नहीं हैं। यदि है भी तो नाममात्रको इसलिए भी इन्हें मन्दिरोंका नगर या बस्ती कहा जा सकता है। इन तीर्थोंमें पपौरा और पटनागंज-को छोड़कर शेष सभी मन्दिर पर्वतोंके ऊपर हैं। पर्वतोंपर ऊपर-नीचे छितराये हुए इन मन्दिरोंके कारण अद्भुत दृश्य प्रतीत होता है। निर्जन एकान्तमें नीरव खड़े हुए और अपने समुन्नत शिखरोंसे आकाशसे बतियाते ये मन्दिर विचित्र रहस्यमय वातावरणकी सृष्टि करते हैं।

पपौरामें मन्दिरोंकी अद्‌भुत चौबीसी बनी हुई है। मध्यवर्ती मन्दिरकी चारों दिशाओंमें छह-छह मन्दिर हैं। ऐसी चौबीसी अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। वस्तुतः यह किसी उर्वर कल्पनाशील मस्तिष्ककी देन है।

भोंयरे भी मन्दिरोंके ही लघु संस्करण हैं। उनकी कल्पना आपत्कालमें की गयी प्रतीत होती है। जब विदेशी आक्रान्ता मन्दिरों और मूर्तियोंका विध्वंस करने लगे, उस समय मूर्तियोंकी सुरक्षाके लिए भूगर्भमें भोंयरे निर्मित हुए। वहाँ मूर्तियाँ पहुँचा दी गयी। वास्तवमें भोंयरोंमें रखी हुई मूर्तियाँ आक्रान्ताओंकी दृष्टिसे बची रहीं, इसलिए वे सुरक्षित रहीं। विशेष शान्तिपूर्ण वातावरणकी सृष्टिके लिए भी सम्भवतः ऐसे भोंयरोंका निर्माण होता रहा हो। मध्यप्रदेशमें इन भोंयरोंकी संख्या केवल ७ है। ये भोंयरे सोनागिरि, पपौरा, अहार, पनिहार, बीना-बारहा, बन्धा क्षेत्रोंमें बने हुए हैं। पपौरामें २ भोंयरे हैं। इन भोंयरोंमें कुछ मूर्तियाँ ११-१२वी शताब्दीकी उपलब्ध होती हैं। भोंयरोंमें रखी हुई मूर्तियाँ प्रायः अन्य मन्दिरोंसे लायी गयी हैं।

चैत्यस्तम्भ और मानस्तम्भ भी जैन स्थापत्य और जैन मन्दिर शिल्पमें विशिष्ट स्थान रखते हैं। जयसिंहपुरा दिगम्बर जैन मन्दिर उज्जैनके संग्रहालयमें अजीतखो, गुना, इन्दरगढ़, और ईसागढ़से लाये चार चैत्यस्तम्भ सुरक्षित हैं। इनमें चारों दिशाओंमें पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ विराजमान हैं। विदिशासे उपलब्ध रामगुप्त-अभिलेखवाली प्रतिमाओंसे इनका शैलीगत साम्य प्रतीत होता है। इसलिए पुरातत्त्वविद् इन्हें गुप्तकालीन मानते हैं। सोनागिरि, पटनागंज, द्रोणगिरि आदि तीर्थोंपर भी चैत्यस्तम्भ मिलते हैं।

इस प्रदेशमें मानस्तम्भ विशेष प्राचीन नहीं मिले हैं। प्राचीन कालमें मानस्तम्भोंकी परम्परा रही है। कहाऊँ (देवरिया) में उपलब्ध समुद्रगुप्तकालीन मानस्तम्भसे इसकी पुष्टि होती है। देवगढ़में ११वी शताब्दीके बने हुए कई मानस्तम्भ अबतक मिलते हैं। किन्तु मध्यप्रदेशमें मध्य-काल तकके २-४ ही मानस्तम्भ मिले हैं, शेष जो विद्यमान हैं, वे सब उत्तरकालीन है। अजयगढ़ किलेमें बना हुआ मानस्तम्भ चन्देल राजाओंके कालका है। अतः यह ११-१२वीं शताब्दीका माना जाता है। यह मानस्तम्भ अद्भुत है। इसके ऊपर सैकड़ों तीर्थंकर मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। खनियाधानाके निकट तेरही ग्राममें १०वीं शताब्दीके दो जिन मन्दिर हैं। एक मानस्तम्भ भी

बना हुआ है जो सम्भवतः इन्हींके समकालीन है। इसी प्रकार इसके थोड़ी दूर सकरा गाँवमें भी एक प्राचीन मानस्तम्भ खड़ा हुआ है। अहार क्षेत्रपर दो मानस्तम्भ हैं जो १०वीं शताब्दीके हैं।

नन्दीश्वर जिनालय और सहस्रकूट जिनालय भी जिनालय-शिल्पकी एक विशिष्ट विधा हैं। कोनी, पटनागंज, थूबौन, पनागर आदिमें अब भी ये मिलती हैं।

अभिलेख

मध्यप्रदेशमें अभिलेखोंका बाहुल्य है। इन अभिलेखोंका विशेष महत्त्व है। इनसे इतिहासके अनावृत पृष्ठोंपर प्रकाश पड़ता है तथा शिल्पकलाके क्रमिक विकासकी जानकारी मिलती है। अभिलेख दो प्रकारके होते हैं—शिलालेख और प्रतिमालेख। मध्यप्रदेशमें उपलब्ध जैन शिलालेखोंमें सर्वप्राचीन लेख उदयगिरि (विदिशा) के गुफा मन्दिरके हैं। यह वहाँकी गुफा नं. २० की एक भित्तिपर अंकित है। यह अभिलेख गुप्त संवत् १०६ (ई. सन् ४२५) का है। उस समय कुमारगुप्त प्रथमका शासन था। इसी स्थानकी एक मूर्तिकी चरण-चौकीपर रामगुप्तकालीन अभिलेख भी उपलब्ध हुआ है। ये ही दोनों लेख मध्यप्रदेशके जैन अभिलेखोंमें सर्वाधिक प्राचीन माने जाते हैं।

इसके पश्चात् लगभग ५ शताब्दीका काल अन्धकार युग कहा जा सकता है। इस कालका कोई जैन अभिलेख इस प्रदेशमें प्राप्त नहीं हुआ। सम्भव है, इस कालके शिलालेख और मूर्तिलेख खण्डित हो गये हों। किन्तु निश्चित रूपसे कुछ कहा नहीं जा सकता कि इस लम्बे अन्तरालमें कोई जैन अभिलेख न मिलनेका क्या ऐतिहासिक कारण रहा है। ग्यारसपुरमें वज्रमठ जैन मन्दिरके निकट आठ खम्भे खड़े हुए हैं। उनमें-से एक स्तम्भपर एक अभिलेख है जिसमें वि. सं. १०३९ में किसी भक्त द्वारा यहाँकी यात्रा करनेका उल्लेख किया गया है। खजुराहोके घण्टई मन्दिरमें दो लेख अंकित हैं जो वि. सं. १०११ और १०१२ के हैं। चूलगिरिके एक मन्दिरके सभामण्डपमें ४ शिलालेख उत्कीर्ण हैं। ये वि. सं. १११६, १२२३ और १५०८ के हैं। ग्वालियरके संग्रहालयमें वि. सं. १३१९ का भीमपुरका महत्त्वपूर्ण शिलालेख सुरक्षित है। इन्दौर संग्रहालयमें जैन मन्दिरके प्रवेशद्वारके शिरदलपर अंकित वि. सं. १३३२ का वह लेख सुरक्षित है जो पावागिरि ऊनसे यहाँ लाया गया था।

प्रायः सभी जैन मूर्तियोंपर लेख मिलते हैं। लेख मूर्तियोंकी चरण-चौकीपर होते हैं। किन्तु अनेक मूर्तियाँ खण्डित कर दी गयी हैं। इससे लेख भी खण्डित होनेसे पढ़े नहीं जा सकते। कुछ मूर्तियोंके लेख अधिक प्राचीन होनेसे अस्पष्ट हो गये हैं। तुमैन, तेरही, नाचना कुठार, उछहरा, भूभरा आदि कुछ स्थान ऐसे हैं जहाँ मौर्य और गुप्तकालके लेख हिन्दू और बौद्ध कलाकृतियोंपर मिलते हैं। उन स्थानोंपर भग्न जैन मन्दिरों और मूर्तियोंके अवशेष प्रचुर परिमाणमें मिलते हैं, जिनके सम्बन्धमें अनुमान किया जाता है कि ये भी वहींकी हिन्दू या बौद्ध कलाकृतियोंके ही समकालीन होंगे, किन्तु दुख है कि इन स्थानोंके जैन अवशेषोंमें कोई लेख उपलब्ध नहीं हुआ।

वर्तमानमें जो मूर्ति-लेख मिलते हैं, वे प्रायः ११वीं शताब्दीके या उसके पश्चात्कालीन हैं। ११वीं शताब्दीके मूर्तिलेख खजुराहोके शान्तिनाथ मन्दिरमें मूलनायक शान्तिनाथ तीर्थंकर तथा वहीं अहातेमें रखी हुई एक तीर्थंकर प्रतिमाके पादपीठपर अंकित है। इसके अतिरिक्त अहार, सोनागिरि, बजरंगढ़में इस शताब्दीके मूर्तिलेख अनेक स्थानोंपर उपलब्ध होते हैं, जैसे अहार, सोनागिरि, चूलगिरि, खण्डवा, पपौरा, खजुराहो, बजरंगढ़, ग्यारसपुर, गन्धर्वपुरी, बन्धा, आमनचार तथा रायपुर, जबलपुर, विक्रम विश्वविद्यालय संग्रहालय एवं जयसिंहपुरा जैन मन्दिर,

उज्जैन संग्रहालय। १३वीं शताब्दीके मूर्ति-लेख अहार, चूलगिरि, ऊन तथा इस प्रदेशके विभिन्न संग्रहालयोंमें मिले हैं। इसके पश्चात्कालके मूर्तिलेख तो विभिन्न तीर्थक्षेत्रों और मन्दिरोंकी अनेक मूर्तियोंकी पादपीठिकापर मिलते हैं।

सारांशतः मध्यप्रदेश जैन पुरातत्त्वकी दृष्टिसे अत्यन्त समृद्ध है। परिमाणकी दृष्टिसे कोई अन्य प्रदेश जैन पुरातत्त्वके क्षेत्रमें मध्यप्रदेशके साथ समता नही कर सकता। यह इस प्रदेशका सौभाग्य है कि यहांके वन-उपवन, पर्वत, उपत्यका, नदी, सरोवर, दुर्ग, वापिका सर्वत्र जैन पुरातत्त्वकी सामग्री प्रचुर संख्यामें बिखरी पड़ी है। और यह इस प्रदेशका दुर्भाग्य है कि यहांके घरोंकी दीवालों, आँगन, सीढ़ियों और पाखानों तकमें जैन मूर्तियां लगी हुई मिलती हैं, धोबी जैन मूर्तियोंकी पीठपर कपड़े पछीटते हैं, अन्धभक्त तीर्थंकर मूर्तियोंके आगे बलि देते हैं। यदि स्थानीय जैन समाज प्रयत्न करे अथवा पुरातत्त्व विभाग सक्रिय होकर कुछ कार्य करे तो कलाकी यह विडम्बना और विनाश रुक सकता है।

संक्षेप में मध्यप्रदेशमें ११-१२वीं शताब्दी तक प्राप्त होनेवाले पुरातत्त्वकी तालिका दी जा रही है। इस पुरातत्त्वमें मन्दिर, मूर्तियां, अभिलेख, स्तम्भ आदि सम्मिलित है। यह तालिका पुरातत्त्वके छात्रों और शोधकर्ताओंके लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

सिहौनिया—यहाँ नवीन जिनालयमें भगवान् शान्तिनाथकी लगभग १६ फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। इसके दोनों ओर कुन्थुनाथ और अरनाथकी ८-८ फुट ऊँची प्रतिमाएँ हैं। इनका निर्माणकाल ११ वीं शताब्दी है। इस मन्दिरमें भूगर्भसे प्राप्त कुछ प्रतिमाएँ रखी है तथा मन्दिरसे लगभग एक फलाँग दूर एक पाषाण स्तम्भ है जो सम्भवतः मानस्तम्भ रहा होगा। इनका काल भी वही लगता है। ग्वालियर-दुर्गमें पाषाण शिलाओंमें उकेरी हुई लगभग १५०० मूर्तियाँ हैं। अधिकतम अवगाहनावाली मूर्तियोंमें खड्गासनमें आदिनाथ भगवान्की ५७ फुटकी और पद्मासनमे सुपार्श्वनाथ भगवान्की ३५ फुटकी है।

दुर्ग स्थित संग्रहालयमें पर्यंकपर शयन करती हुई तीर्थंकर माता और उनके पार्श्वमें लेटे हुए बाल तीर्थंकरकी एक मूर्ति है। चार दिक्कुमारिकाएँ तीर्थंकर माताकी सेवामे रत हैं। यह मूर्ति बड़ोहके गडरमल मन्दिरसे यहाँ लायी गयी है। यह जैन मन्दिर ९वीं शताब्दीका है। उक्त मूर्ति भी इसी कालकी है। संग्रहालयमें पार्श्वनाथ, आदिनाथ आदिकी कई मूर्तियाँ ११-१२वीं शताब्दीकी हैं। यहाँ उदयगिरि गुहा मन्दिरसे लाया गया एक शिलालेख गुप्त संवत् १०६ (सन् ४३५ ई.) का है जिसमें तीर्थंकर पार्श्वनाथकी प्रतिमाके निर्माण करानेका उल्लेख है। दो अन्य शिलालेख १३वीं शताब्दीके हैं।

सोनागिरि—पर्वतके ऊपर ७७ जिनालय, १३ छतरियाँ, ५ क्षेत्रपाल तथा तलहटीमें १७ जिनालय हैं। पर्वतके ऊपर मन्दिर नं. ४५, ५४, ५७, ७६ में ११-१२वीं शताब्दीकी कई मूर्तियाँ हैं।

बजरंगढ़—सेठ पाड़ाशाह द्वारा निर्मित शान्तिनाथ भगवान्की १५ फुट ऊँची प्रतिमा है। इसके दोनों पार्श्वोंमे कुन्थुनाथकी ११ फुट ऊँची प्रतिमाएँ हैं। ये तीनो सं. १२३६ (ई. सन् ११७९) की है। इनके अतिरिक्त यहाँ विक्रम सं. १०७५, ११५५, १२२५, १२५० की भी कई प्रतिमाएँ विद्यमान हैं।

चन्देरी—यहांकी चौबीसी (२४ तीर्थंकरोंकी) मूर्तियाँ अत्यन्त विख्यात एवं भव्य हैं। यहाँ कई मूर्तियाँ १०-११वी शताब्दीकी हैं।

अहार—पाड़ाशाह द्वारा प्रतिष्ठित शान्तिनाथ भगवान्‌की १८ फुट ऊँची प्रतिमा सं. १२३७ (सन् ११८०) की है। यहाँके संग्रहालयमें ११-१२वीं शताब्दीकी अनेक मूर्तियाँ हैं।

थूबौन—शान्तिनाथ भगवान्‌की १८ फुट ऊँची प्रतिमा है जिसकी प्रतिष्ठा सेठ पाड़ाशाह द्वारा हुई बतायी जाती है। १६, १५ और १२ फुटकी भी कई मूर्तियाँ हैं। यहाँ विशेष प्राचीन मूर्ति कोई नहीं है। सम्भवतः शान्तिनाथ मूर्ति १२वीं शताब्दीकी है। यहाँ कुल २५ मन्दिर हैं। इनमें एक गुमटी हनुमान्‌जीकी है। हनुमान्‌जीकी मूर्ति ७ फुट ऊँची, पूँछ और वानर मुखवाली है। उनके दोनों कन्धोंपर दो दिगम्बर मुनि बैठे हुए हैं। यह दृश्य पद्मपुराणमें वर्णित उस प्रसंगका स्मरण दिलाता है, जब जलते हुए दो मुनियोंका उपसर्ग हनुमान्‌जीने दूर किया था।

कुण्डलपुर—यहाँ कुल ६० जिनालय हैं—४० पर्वतके ऊपर और २० तलहटीके मैदानमें। मैदानके मन्दिरों और पर्वतके बीचमें वर्धमानसागर नामक विशाल सरोवर है। यहाँ मन्दिर नं. २५ में एक मूर्ति बारहवीं शताब्दी (वि. सं. ११५७) की है।

रेशंदीगिरि—यहाँ कुल ५१ जिनालय हैं—३६ पहाड़ीके ऊपर और १५ मैदानमें। मन्दिर नं. ११ (पार्श्वनाथ मन्दिर) उत्खननके फलस्वरूप निकला था। उसके साथ १३ मूर्तियाँ भी निकली थीं। ये मन्दिर और मूर्तियाँ सं. ११०९ (ई. सन् १०५२) के हैं। यहाँ एक सरोवरके मध्यमें एक जिनालय बना हुआ है। दृश्य बहुत सुन्दर है।

बीना-बारहा—यहाँ कुछ प्राचीन मूर्तियाँ हैं। कुछ तो यहींकी हैं, कुछ अन्य स्थानोंसे उत्खनन आदिसे प्राप्त हुई हैं। इनमें कुछ मूर्तियाँ अनुमानतः ११-१२वीं शताब्दीकी हैं। यहाँ मन्दिरोंकी दीवालों और द्वारोंके सिरदलोंपर कुछ मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। उनमें कई मूर्तियाँ अद्भुत हैं। एक मूर्ति पार्श्वनाथकी माता वामादेवीकी है। माता शय्यापर लेटी हुई हैं। उनके सिरपर सर्पफण-मण्डप है। देवी चरण सेवा कर रही है। शीर्ष भागपर पद्मावती देवी सर्पफण-मण्डप सहित बैठी है। देवियाँ नृत्य द्वारा माताका मनोरंजन कर रही हैं। एक अन्य तीर्थंकर माताकी मूर्ति है। माता लेटी है। दिक्कुमारियाँ सेवारत हैं। शीर्षभागपर पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति है। सरस्वतीकी एक मूर्ति बड़ी अद्भुत है। मध्यमें सरस्वती बैठी है। उसके एक ओर अष्टमातृकाएँ हैं तथा दूसरी ओर नवग्रह बने हुए हैं।

दो बातें यहाँ और भी अद्भुत हैं। प्रथम तो यह कि १३ फुट ऊँची भगवान् महावीरकी पद्मासन मूर्ति दीवालमें चिनी हुई है। यह ईंट-गारे द्वारा बनी हुई है। द्वितीय यह कि ऋषभदेवकी मूर्तियोंके समान यहाँ अन्य तीर्थंकर मूर्तियोंपर भी केशोंकी लटें दिखाई पड़ती हैं। यहाँ शान्तिनाथ भगवान्‌की १५ फुट उत्तुंग एक खड्गासन प्रतिमा है।

पनागर—मूल नायक भगवान् ऋषभदेवकी ८ फुट ऊँची खड्गासन प्रतिमा अनुमानतः ११-१२वीं शताब्दीकी प्रतीत होती है।

बहुरीबन्द—भगवान् शान्तिनाथकी १४ फुट ऊँची खड्गासन मुद्रावाली यह प्रतिमा सं. १०७० (ई. सं. १०१३) में प्रतिष्ठित हुई थी।

कोनी—यहाँके मन्दिर पर्याप्त प्राचीन लगते हैं। यहाँका सहस्रकूट चैत्यालय और नन्दीश्वर जिनालय रचना-शैलीकी दृष्टिसे अद्भुत हैं।

पटनागंज—यहाँ नदी-तटपर २९ जिनालय हैं। यहाँ मूर्तियाँ अधिक प्राचीन नहीं हैं। किन्तु सहस्रफणावलि युक्त दो पार्श्वनाथ प्रतिमाएँ विशेष दर्शनीय हैं।

मढ़िया—यहाँ १३ मन्दिर और २४ मन्दरियाँ हैं। यहाँ पुरातत्त्व सामग्री कुछ भी नहीं है।

सिद्धवरकूट—क्षेत्रपर कुल १० मन्दिर हैं। यहाँ ओंकारेश्वरके पुरावशेषोंमें-से २-३ मूर्तियाँ

रखी हुई हैं जिनका अनुमानिक काल १०-११वीं शताब्दी है। कावेरीके तटवर्ती जंगलमें भग्न जैन मन्दिर और मूर्तियाँ पड़ी हुई हैं। इनमें एक मूर्ति ५ फुट ऊँची है। एक वस्त्रालंकार-सज्जित राजपुरुष है, उसके शीर्षपर पद्मासन मुद्रामें अर्हन्त प्रतिमा विराजमान है। यह मूर्ति १०-११वीं शताब्दीकी प्रतीत होती है।

चूलगिरि—यहाँ भारतकी सबसे विशाल प्रतिमा भगवान् ऋषभदेवकी विराजमान है जो ८४ फीट ऊँची है। क्षेत्रपर कुल २९ जिनालय हैं—८ पहाड़पर और २१ मैदानमें। क्षेत्रपर दो प्रतिमाएँ संवत् ११३१ (ई. सन् १०७४) तथा दो प्रतिमाएँ संवत् १२४२ (ई. सन् ११८५) की हैं। संवत् १३८० की प्रतिमाओंकी संख्या लगभग ५० होगी। चूलगिरि मन्दिरके महामण्डपमें संवत् १११६ (सन् १०५९) और संवत् १२२३ (सन् ११६६) के शिलालेख भी हैं।

तालनपुर—भूगर्भसे प्राप्त ५ मूर्तियाँ मन्दिरमें विराजमान है जो संवत् १३२५ (ई. सन् १२६८) की हैं।

पावागिरि—यहाँ ३ प्राचीन जिनालय हैं—ग्वालेश्वर, चोवारा डेरा नं. १ और चोवारा डेरा नं. २। ये तीनों ही १२वीं शताब्दीके हैं। ग्वालेश्वर (शान्तिनाथ) जिनालय जैनोंके अधिकारमें हैं, शेष दोनो पुरातत्त्व विभागके अधिकारमें हैं। धर्मशालामें स्थित महावीर मन्दिर और ग्वालेश्वर मन्दिरमें कई मूर्तियाँ १२वी शताब्दी की हैं। पुरातत्त्व विभागके संग्रहालयमें भी १२वी शताब्दीकी जैन मूर्तियाँ बहुत हैं। यहाँकी कुछ मूर्तियाँ, तोरण शिलालेख आदि इन्दौर संग्रहालयमें सुरक्षित हैं जो १२वीं शताब्दीके है। यहाँके प्राचीन मन्दिरोंका शिल्प अत्यन्त कला-पूर्ण और मनोहर है। शिखरकी रूप पट्टिकाओं और रथिकाओंपर यक्ष-यक्षी, सुर-सुन्दरियोंकी मूर्तियाँ और मिथुन मूर्तियाँ अंकित हैं।

ग्यारसपुर—कलाके समृद्ध आगारोंमें ग्यारसपुरका मालादे मन्दिर और वज्रमठ अपना विशिष्ट स्थान बनाये हुए हैं। ये मन्दिर ९–१०वी शताब्दीमें निर्मित हुए थे। मालादे मन्दिरमें १४ तीर्थंकर मूर्तियाँ रखी हुई है। द्वारपर शान्तिनाथ तीर्थंकरकी यक्षी महामानसी बनी हुई है। शिखरकी जंघा और रथिकाओंमें तीर्थंकर और यक्ष-यक्षियोंकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं। बज्रमठमें ४ तीर्थंकर मूर्तियाँ विराजमान हैं। उसके प्रवेश-द्वारोंके सिरदलोंपर अर्हन्त मूर्तियाँ हैं। इसकी बाह्य भित्तियों और शिखरकी अलंकरण-पट्टिकाओंमें जैन यक्ष-यक्षियोंकी मूर्तियाँ हैं। अतः ये मन्दिर और मूर्तियाँ जैन है और ९–१०वी शताब्दीके हैं। इसी कालकी एक मूर्ति बस्तीके जैन मन्दिर में है।

खजुराहो—यहाँ एक ही अहातेमें ३२ जिनालय हैं। इसमें पार्श्वनाथ, आदिनाथ आदि कई जिनालय १०-११वीं शताब्दीके बने हुए हैं। इनकी अन्तः तथा बाह्य भित्तियोंपर तीर्थंकर-मूर्तियाँ, बाहुबलीकी मूर्ति तथा पौराणिक कथानकोंसे सम्बन्धित दृश्य—जैसे राम और सीता, अशोक वाटिकामें हनुमान् आदि, तीर्थंकरोंके सेवक यक्ष-यक्षी, सुरसुन्दरियाँ विभिन्न आकर्षक मुद्राओंमें अंकित हैं। ये भी उपर्युक्त कालकी हैं। मन्दिर नं. १ में शान्तिनाथ जिनालयमें शान्तिनाथ भगवान्की १६ फुट ऊँची खड्गासन मूर्ति संवत् १०८५ (ई. स. १०२८) की है। मन्दिर नं. ८ में भगवान् चन्द्रप्रभकी मूर्ति १२वीं शताब्दीकी है। यहाँका घण्टई मन्दिर १०वीं शताब्दीका है। इन मन्दिरोंकी शिल्प-शैली और सज्जा अत्यन्त उत्कृष्ट कोटिकी है। इनकी भित्तियों, रथिकाओं और द्वारशाखाओंपर यक्षियोंकी बहुभुजी मूर्तियाँ हैं। दशभुजी चक्रेश्वरी, चतुर्भुजी लक्ष्मी, अम्बिका, पद्मावती, गजलक्ष्मी—गंगा-जमुना, सरस्वती एवं चतुर्भुजी त्रिमुख ब्रह्माणीकी मूर्तियाँ बड़ी मनोज्ञ हैं।

यहाँके संग्रहालयमें कई जैन मूर्तियाँ संवत् १२०५ की हैं।

गन्धर्वपुरी—सरकार तथा ग्राम पंचायतके संग्रहालयमें अनेक प्राचीन मूर्तियाँ संग्रहीत हैं। इनमें अनेक मूर्तियाँ १०-११वीं शताब्दीकी हैं। यहाँ चक्रेश्वरीकी एक षोडशभुजी मूर्ति अत्यन्त सुन्दर है।

गोलाकोट—यहाँका मन्दिर और मूर्तियाँ विक्रम संवत् १००० से १२०० तककी हैं।

पचराई—यहाँ २८ जिनालय हैं। इनमें ११वीं शताब्दीकी अनेक मूर्तियाँ हैं। शीतलनाथ भगवान्‌की एक मूर्ति १२ फुट ऊँची है।

बन्धा—भगवान् अजितनाथकी मूलनायक प्रतिमा विक्रम सं. ११९९ (ई. स. ११४२) की है। इसके दोनों पार्श्वोंमें स्थित ऋषभदेव और सम्भवनाथ तीर्थंकरोंकी दो मूर्तियाँ संवत् १२०९ (ई. स. ११५२) की हैं। अन्य भी कई मूर्तियाँ इसी कालकी हैं।

उदयगिरि—यहाँ गुफा नं. १ और २० जैनोंसे सम्बन्धित हैं। गुफा नं. २० में एक शिलालेख गुप्त संवत् १०६ (ई. स. ४२५) का है। इसमें शंकर नाम व्यक्ति द्वारा पार्श्वनाथ तीर्थंकरकी मूर्ति निर्माण कराये जानेका उल्लेख है। यहाँकी एक तीर्थंकर-मूर्ति विदिशा संग्रहालयमें तथा अन्य दो तीर्थंकर मूर्तियाँ भोपाल संग्रहालयमें सुरक्षित हैं। विदिशा संग्रहालयकी यह प्रतिमा अद्‌भुत है और सम्राट् रामगुप्तने उसकी प्रतिष्ठा करायी थी। यहाँ उदयगिरिसे प्राप्त एक प्रतिमा सुरक्षित है जो संवत् १२१४ में प्रतिष्ठित हुई थी। इस संग्रहालयमें, श्रीमन्त सेठ लक्ष्मीचन्द्रजीके मन्दिरमें एवं उपर्युक्त दोनों गुफाओंमें कई मूर्तियाँ ६वीं शताब्दीसे १०वी शताब्दी तककी हैं। इस प्रकार उदयगिरिमें गुप्तकालके गुहा मन्दिर, अभिलेख और मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। सम्भवतः मध्यप्रदेशमें इससे प्राचीन जैन शिलालेख, मन्दिर और मूर्ति अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं होती। इस दृष्टिसे उदयगिरिका जैन पुरातत्त्व मध्यप्रदेशके जैन पुरातत्त्वमें सर्वाधिक प्राचीन है।

उदयपुर—यहाँ १०-११वी शताब्दीकी तीर्थंकर मूर्तियाँ और मन्दिर हैं।

पठारी—यहाँ गडरमल मन्दिर, वन-मन्दिर तथा अन्य कई जैन मन्दिर एवं तीर्थंकर मूर्तियाँ ८-९वीं शताब्दीके विद्यमान हैं।

बदनावर—यहाँकी अनेक मूर्तियाँ जैन संग्रहालय उज्जैनमें हैं। इन मूर्तियोंपर संवत् ११२२, १२०२, १२०५, १२१६, १२१९, १२२८, १२२९, १२३४ तथा इसके पश्चात्कालके लेख हैं। इस प्रकार बदनावरका पुरातत्त्व ११-१२वी शताब्दी तक पहुँचता है। बदनावरमें इन शताब्दियोंके मन्दिरोंका अवशेष और खण्डित मूर्तियोंके ढेर पड़े हुए हैं।

कारीतलाई—यहाँकी अनेक जैन मूर्तियाँ रायपुर और जबलपुर संग्रहालयमें सुरक्षित है। इनमें कई मूर्तियाँ १०-११वी शताब्दीकी हैं।

उज्जयिनी—यहाँ जैन संग्रहालय और विक्रम विश्वविद्यालयके संग्रहालयमें निकटवर्ती अनेक स्थानोंसे लायी हुई जैन सामग्री सुरक्षित है। इसमें अजीतखो, गुना आदिसे लाये हुए मानस्तम्भके शीर्षभाग अथवा चैत्य सम्मिलित हैं। ये गुप्तकालीन कहे जाते हैं। यहाँ ११-१२वी शताब्दीकी अनेक प्रतिमाएँ विद्यमान हैं।

पपौरा—एक परकोटेके अन्दर १०७ मन्दिर हैं। एक भोंयरेमें दो मूर्तियाँ संवत् १२०२ (ई. स. ११४५) की हैं।

लखनादौन—भगवान् महावीरकी प्रतिमा १०-११वीं शताब्दीकी है।

पतियानदाई—यहाँका मन्दिर गुप्तकालका माना जाता है।

विशेष उल्लेखनीय

उक्त सन्दर्भमें कुछ विशेष उल्लेखनीय बातोंपर प्रकाश डालना आवश्यक लगता है—

भोंयरा—मध्यप्रदेशमें सोनागिरि, अहार, पपौरा, बन्धा, बीना-बारहा और पनिहार इन क्षेत्रोंपर भोंयरे बने हुए हैं।

मेरु-मन्दिर—अहार, सोनागिरि, रेशंदीगिरि, खजुराहो, द्रोणगिरि, पटनागंज क्षेत्रपर मेरु-मन्दिर निर्मित हैं।

सहस्रकूट जिनालय—कोनी, पटनागंज, कारीतलाई (रायपुर संग्रहालय), ग्वालियर संग्रहालयमें हैं।

नन्दीश्वर जिनालय की रचना कई स्थानों पर मिलती है, जैसे थूबौन, सोनागिरि, कोनी, पटनागंज, पनागर, रायपुर संग्रहालय, मक्सी पार्श्वनाथ।

मानस्तम्भ—अहार, कुण्डलपुर, सोनागिरि, चूलगिरि, पावागिरि, सिद्धवरकूट, मढ़िया, थूबौन, पपौरा, रेशंदीगिरि, द्रोणगिरि, गूडर इन क्षेत्रोंमें मानस्तम्भ हैं। द्रोणगिरि पर्वतके ऊपर-का और अहारमें एक मानस्तम्भ पर्याप्त प्राचीन प्रतीत होते हैं। सिहोनिया और पटनागंजमें पाषाण-स्तम्भ बने हुए हैं। सम्भवतः वे भी मानस्तम्भ रहे हों।

समवसरण रचना—किसी क्षेत्रपर प्राचीन कालकी समवसरण रचना उपलब्ध नहीं होती। समवसरणकी आधुनिक रचना मढ़िया और कुण्डलपुरमें है।

भट्टारक पीठ—मध्यप्रदेशमें पनागर, उज्जैन, ग्वालियर और सोनागिरि इन चार स्थानों-पर भट्टारक पीठ रहे हैं। इन्दौरमे भी भट्टारकोंकी गद्दी थी, ऐसे उल्लेख प्राप्त होते हैं।

संग्रहालय—मध्यप्रदेशके निम्नलिखित तीर्थक्षेत्रोंपर सरकार या समाजकी ओरसे संग्रहालय स्थापित किये गये हैं अथवा मूर्तियोंका संग्रह हो चुका है और संग्रहालय स्थापित करनेकी योजना है—विदिशा, पावागिरि, ऊन, गन्धर्वपुरी, उज्जयिनी, ग्वालियर, सोनागिरि, अहार, चन्देरी, थूबौन, बीना-बारहा, खजुराहो।

संवत् और सन्—इस ग्रन्थमें प्रसंगानुसार अनेक संवतों और संवत्सरोंका उल्लेख आया है। इनको समझनेमे अनेक विद्वानोंको भी भ्रम हो जाता है। इसका प्रभाव किसी ऐतिहासिक व्यक्ति और घटना कालके निर्णयपर पड़ता है। पाठकोंकी सुविधाके लिए यहाँ ग्रन्थमें आये हुए संवतों-संवत्सरोंका नामोल्लेख करते हुए उनका ईस्वी सन् से अन्तर बताया जा रहा है।

गुप्त संवत् और ईस्वी सन्मे ३१९ वर्षका अन्तर है अर्थात् गुप्त संवत् ई. सन् ३१९ में हुआ।

कलचुरि संवत्—जिसका दूसरा नाम चेदि संवत् भी है—का प्रारम्भ ईस्वी सन् २४९में हुआ।

शक और ईस्वी सन्में ७८ वर्षका अन्तर है अर्थात् ई. सन् ७८में शक संवत्का प्रारम्भ हुआ।

विक्रम संवत् और ईस्वी सन्में ५७ वर्षका अन्तर है अर्थात् विक्रम संवत् ५७ में ईस्वी सन्का प्रारम्भ हुआ।

विक्रम संवत् और शक संवत्मे १३५ वर्षका अन्तर है अर्थात् विक्रम संवत् १३५ में शक संवत् प्रारम्भ हुआ।

हिजरी और ईस्वी सन्में ६०२ वर्षका अन्तर है अर्थात् ई. सन् ६०२ में हिजरी सन् प्रारम्भ हुआ।

□

चेदि जनपद

सिहोनिया
ग्वालियर
मनहरदेव
सोनागिरि
पनिहार-बरई
खनियाधाना और उसके निकटवर्ती क्षेत्र
बजरंगढ़
थूबोन
चन्देरी
खन्दारगिरि
गुरीलागिरि
बूढ़ी चन्देरी
आमनचार
भामोन
भियादांत
बीठला
पपौरा
अहार
बन्धा
खजुराहो
द्रोणगिरि
रेशन्दीगिरि
पजनारी
बीना-बारहा
पटनागंज
अजयगढ़
कारीतलाई
पतियानदाई
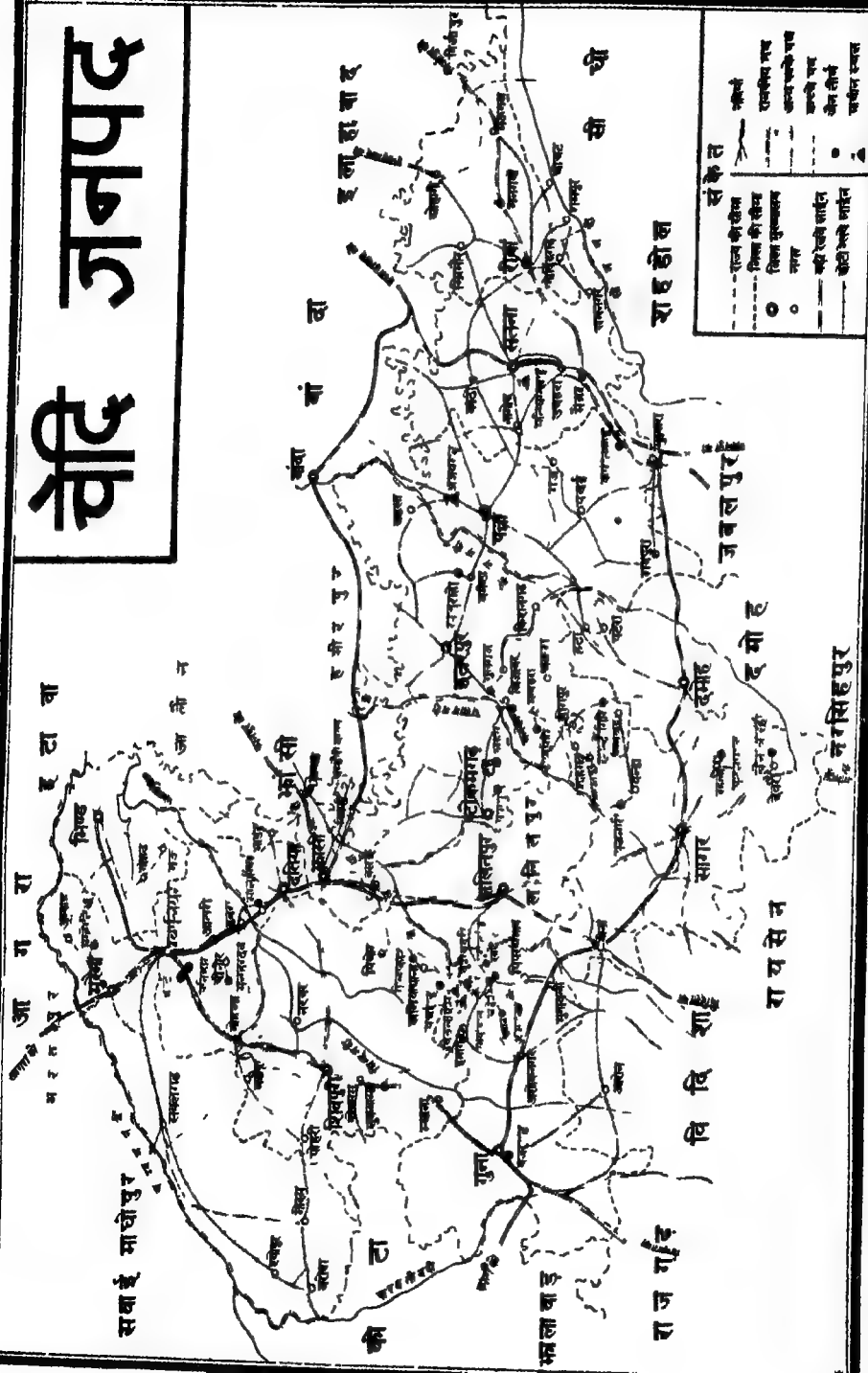
१ भारतके महासर्वेक्षककी अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभागीय मानचित्रपर आधारित। © भारत सरकारका प्रतिलिप्यधिकार, १९७६

२ मानचित्रमें दिये गये नामोंका अक्षर-विन्यास विभिन्न सूत्रोसे लिया गया है।

सिहौनिया

इतिहास

सिहौनिया क्षेत्र अहसिन नदीके तटपर अवस्थित है। इस नगरके सुद्धनपुर, सुधानियापुर, सुहानिया, सिहौनिया, सुधीनपुर, सिंहपाणीय आदि कई नाम मिलते हैं। इस नगरकी स्थापनाके सम्बन्धमें कहा जाता है कि यह नगर ग्वालियरके संस्थापक राजा सूरजसेनके पूर्वजोंने दो हजार वर्ष पूर्व स्थापित किया था। प्रारम्भसे ही यह नगर जैन संस्कृतिका केन्द्र रहा है। पहले इस नगरका नाम क्या था यह तो पता नहीं चलता किन्तु वर्तमान नाम सिहौनिया सूरजसेनके नामपर ही पड़ा है। कहा जाता है कि जब राजा सूरजसेनका कुष्ठ रोग ग्वालियर किलेमें स्थित कुण्डके जलमें स्नान करनेके कारण दूर हो गया, तब उसने अपना नाम शोधनपाल या शुद्धनपाल रख लिया। उनके इस नाम-परिवर्तनकी स्मृति सुरक्षित रखनेके लिए नगरवासियोंने इस नगरका नाम सुद्धनपुर या सुधानियापुर रख लिया। यही नाम बदलते-बदलते सुहानिया या सिहौनिया हो गया।

इस राजाकी जैन धर्ममें गाढ़ श्रद्धा थी। उसकी रानी कोकनवती भी जैन धर्मकी अनुयायी थी। उसने सन् २७५ मे कोकनपुर मठका बड़ा जैन मन्दिर बनवाया था। यह मन्दिर ग्वालियरके किलेमें विद्यमान है। इसके अतिरिक्त इसने सुहानियाके निकट भी एक जैन मन्दिर बनवाया था। यहाँ चौथी-पाँचवीं शताब्दीमें जैसवाल जैनोंके बनवाये हुए ११ जैन मन्दिर थे, इस प्रकारके उल्लेख भी मिलते हैं।

यह भी कहा जाता है कि यह नगर अपने वैभव-कालमें १२ कोसमें विस्तृत था। चारों दिशाओंमें नगरके चार फाटक थे। कहा नहीं जा सकता कि यह बात कहाँ तक ठीक है। किन्तु इसके चारों ओर एक-एक, दो-दो कोसकी दूरीपर बिलोनी, बोरीपुरा, पुरवास और बाढ़ा नामक ग्रामोंमें दरवाजोंके अवशेष और चिह्न अब तक मिलते हैं। यदि ये अवशेष प्राचीन सुहानिया नगरके ही हों तो इसमें सन्देह नही कि यह नगर अवश्य ही इतना विशाल रहा होगा।

१०वीं शताब्दी तक यहाँ जैन धर्मका प्रभावशाली प्रचार रहा। किन्तु उसके पश्चात् यहाँ आक्रमण होने लगे और कोई शासन अधिक दिनों तक स्थिर नहीं रह सका। फलतः नगर उजड़ने लगा। इन्हीं दिनों मुस्लिम शासकोंने यहांके मन्दिर और मूर्तियोंका ध्वंस कर दिया। सम्भवतः तब से अब तक यह स्थान उपेक्षित दशामें पड़ा रहा।

अब बीसवीं शताब्दीमें जैनोंका ध्यान इसके जीर्णोद्धार की ओर गया है।

क्षेत्रका इतिहास

लगभग ५० वर्ष पूर्व अम्बाहनिवासी ब्रह्मचारी गुमानीमलजी धर्म-प्रचार करते हुए कमतरी (अम्बाहके निकट एक गाँव) पहुँचे। रात्रिमें उन्हें स्वप्नमें उस ग्रामके निकटवर्ती जंगलमें भगवान् जिनेन्द्रकी अति मनोज्ञ मूर्तियाँ दिखाई दीं। प्रातःकाल होते ही वे स्वप्नमें देखी हुई मूर्तियोंके अन्वेषणके लिए जंगलोंमें चल दिये। खोज करते हुए वे सिहौनिया पहुँचे। वहाँ उन्हें वही टीला

दिखाई दिया जो उन्हें स्वप्नमें दीखा था। उन्होंने उस टीलेकी खुदाई की तो उन्हें मूर्तिका सिर दीख पड़ा। यह समाचार आसपासके गाँवोंमें भी पहुँचा। वहाँसे अनेक बन्धु आ जुटे। सावधानीके साथ खुदाई की गयी तो एक अत्यन्त भव्य और विशाल प्रतिमा भूगर्भसे प्रकट हुई। इसके साथ अन्य भी कई मूर्तियाँ निकलीं। वहाँ भक्तजनोंका मेला लग गया। वहाँ नित्यप्रति सैकड़ों व्यक्ति भगवान्‌के दर्शनोंके लिए आने लगे। अनेक व्यक्ति मनौतियाँ माननेके लिए आते और उनकी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती। इस प्रकारकी घटनाएँ अनुश्रुतियाँ बनकर चारों ओर फैलने लगीं, जिससे इस स्थानकी प्रसिद्धि अतिशय क्षेत्रके रूपमें होने लगी।

ब्रह्मचारी गुमानीलालजी मन्दिरके निर्माणके लिए चिन्तित थे। मूर्तियाँ खुले मैदानमें रखी हुई थीं। एक रात्रिको उन्हे स्वप्न दिखाई दिया। स्वप्नमें एक व्यक्ति उनसे कह रहा था—"तुम चिन्ता मत करो। तुम्हारा मनोरथ सफल होगा। मन्दिर-निर्माणके लिए तुम्हें पर्याप्त धन मिलेगा।" इस भविष्यवाणीसे ब्रह्मचारीजी आश्वस्त हुए और उन्होंने दूसरे दिनसे ही विभिन्न स्थानोंपर जाकर धन-संग्रह करना प्रारम्भ कर दिया। अल्पकालमें ही मन्दिरका निर्माण हो गया। मूर्ति जहाँ प्रकट हुई थी, उसी स्थानपर विराजमान है। मन्दिर-निर्माणके पश्चात् यहाँ और आसपास कुछ जैन मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

अतिशय

शान्तिनाथ भगवान्‌की मूर्तिमें महान् अतिशय है, इस प्रकारकी मान्यता इधरके प्रदेशकी जैन और जैनेतर जनतामें बहुप्रचलित है। यहाँ अनेक चामत्कारिक घटनाएँ घटित भी हो चुकी हैं। कहते हैं, एक बार क्षेत्रका प्रथम मेला श्री मोतीराम कुंजलाल करारीवालोंने बड़ी धूमधामसे कराया। उन्होंने सभी समागत यात्रियोंको प्रीतिभोज भी दिया। मेलेमें लगभग २० हजार जनसमुदाय एकत्र हुआ था। किन्तु जलकी समस्या विकट थी। नदीसे गाड़ियोंमें टंकियाँ भरकर मँगानेकी व्यवस्था की गयी थी। किन्तु इतने व्यक्तियोंके भोजमें इतनी दूरसे जलकी व्यवस्था करनेसे जलकी सन्तोषजनक पूर्ति नहीं हो पा रही थी। स्थिति बड़ी असन्तोषजनक थी। यह देखकर चिन्तामग्न ब्रह्मचारीजी प्रभु शान्तिनाथके चरणोंमें जा लेटे और बड़े गद्गद कण्ठसे प्रार्थना करने लगे—'प्रभो! पानीका बड़ा संकट है। क्षेत्रकी लाज तेरे हाथ है।'

इधर मन्दिरमें ब्रह्मचारीजी भक्तिभरी स्तुति कर रहे थे और दूसरी ओर मन्दिरके निकट एक कुएँमें स्वयमेव पानी आ गया और बढ़ता गया। जनताको किरमिचके पुरहों द्वारा जल खींचकर सन्तुष्ट किया गया। जनतामें शान्तिनाथ भगवान्‌के इस चमत्कारकी बड़ी चर्चा रही और सबके हृदय इस चमत्कारके कारण भक्तिसे भर गये।

इस प्रकारके चमत्कार यहाँ आये दिन होते रहते हैं। इस प्रदेशकी जैनेतर जनता भी भगवान् शान्तिनाथकी भक्त है। वह इसे चेतनाथ बाबाके नामसे मानती है। लगता है, 'चेतनाथ' चैत्यनाथका अपभ्रंश है। सम्भवतः प्राचीन कालमें यहाँ कोई मन्दिर था, उस मन्दिरको चैत्यालय कहा जाता था अथवा इस मन्दिरमें चैत्य रहा होगा। अतः यहाँके मूलनायक भगवान् शान्तिनाथको चैत्यनाथ कहा जाने लगा होगा। फिर चैत्यनाथसे बिगड़कर धीरे-धीरे चेतनाथ हो गया। अस्तु!

इधर आसपासके ग्रामोंमें जब भी कोई मनुष्य अथवा पशु बीमार पड़ जाता है तो लोग बाबा चेतनाथकी बोलारी बोलते हैं। फलतः उसको तत्काल आराम हो जाता है।

क्षेत्र दर्शन

सिहोनिया ग्रामके बाहर जहाँ पुलिस स्टेशन है, वहाँ मैदानमें पाषाणका प्राचीन मानस्तम्भ बना हुआ है। यह एक टीलेपर अवस्थित है। यह भूमिके ऊपर आठ फुट ऊँचा है। किन्तु इसका कुछ भाग भूमिके नीचे भी दबा हुआ है। यद्यपि वर्तमानसे इसके शीर्षपर कोई मूर्ति नहीं है, किन्तु ध्यानपूर्वक देखनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसके शीर्ष भागपर पहले कोई वेदिका और उसमें तीर्थंकर मूर्तियाँ रही होंगी। प्रतिष्ठाशास्त्रोंके अनुसार मानस्तम्भका निर्माण जिन-मन्दिरके सामने होता है। जिस टीलेपर प्रस्तुत मानस्तम्भ बना हुआ है, यदि उस टीलेकी खुदाई की जाये तो प्राचीन मन्दिरके अवशेष प्राप्त होनेकी सम्भावनाको इनकार नहीं किया जा सकता।

यहाँसे लगभग एक किलोमीटर दूर सिहोनिया अतिशय क्षेत्र है। क्षेत्रके मन्दिरके तीन ओर धर्मशालाके कमरे बने हुए हैं। उनमें कुछ पूर्ण निर्मित हैं, कुछ अर्धनिर्मित हैं। मन्दिरके सामनेवाले भागमें अभी कुछ नहीं बना है, किन्तु वहाँ मुख्य प्रवेशद्वार तथा कार्यालय आदि बनानेकी योजना है।

प्रांगणके मध्यमें जिनालय बना हुआ है। जिनालयमें केवल महामण्डप (हॉल) है। प्रवेश-द्वारके बिलकुल सामने दीवालके सहारे भगवान् शान्तिनाथ सस्मित मुद्रामें खड़े हुए हैं। छवि अत्यन्त सौम्य है। मुखकी छविसे करुणा, शान्ति और वीतरागताकी त्रिधारा प्रवाहित होती हुई प्रतीत होती है। आकुल-व्याकुल करनेवाले जीवन-प्रसंगोंसे ऊबे हुए व्यक्तिको यहाँ भगवान्के चरणोंमें पहुँचते ही अपूर्व शान्तिका अनुभव होता है। भगवान् शान्तिनाथका सबसे बड़ा अतिशय यही है।

भगवान् शान्तिनाथकी यह मूर्ति बलुए पाषाणकी हलके कत्थई वर्णकी खड्गासन मुद्रामें है। ऊपरसे चरणों तकका भाग भूमिके ऊपर है और पीठासन अभी भूमि-गर्भमें है। मूर्तिकी अवगाहना १३ फुट है तथा अनुमानतः ३ फुट भूमिके गर्भमें पीठासन है। मूर्तिके दायें कन्धेके निकट एक शिलालेख अंकित है। लेख अस्पष्ट है, किन्तु प्राचीन है। उसमें संवत् १४१ पढ़नेमें आया है। सम्भवतः प्रारम्भका अंक १ पढ़नेमें नहीं आता। मूर्तिकी रचना-शैलीको देखकर यह ग्यारहवीं शताब्दीकी अनुमित की जाती है। इस मूर्तिके दोनों ओर भगवान् कुन्थुनाथ और अरनाथकी मूर्तियाँ विराजमान हैं। ये दोनों मूर्तियाँ भी खड्गासन मुद्रामें हैं तथा इनकी अवगाहना आठ फुट है। इनके पादपीठपर क्रमशः बकरा और मछली ये लांछन उत्कीर्ण हैं। मध्यप्रदेशमें विशेषतः बुन्देलखण्डमें अतिशय क्षेत्रोंपर शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ—तीनोंकी प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित करानेका प्रचलन मध्यकालमें विशेष रूपसे रहा है। ये तीनों ही कामदेव, चक्रवर्ती, हस्तिनापुरके निवासी और तीर्थंकर थे। सम्भवतः जीवन-समानताका यह तथ्य ही तीनों तीर्थंकरोंकी मूर्तियोंको एकत्र प्रतिष्ठित करानेमें प्रेरक कारण रहा है।

इन तीनों मूर्तियोंके अतिरिक्त यहाँ १९ मूर्तियाँ और हैं। ये सभी मूर्तियाँ सिहोनियामें भूगर्भसे ही प्रकट हुई हैं। इनमें एक मूर्ति पाँच फुट नौ इंच ऊँची है। यह मूर्ति बड़ी प्रभावपूर्ण है। इसके सिरपर जटाजूट, मुखपर भव्य दाढ़ी, गलेमें गलहार, स्कन्धसे बगलमें लटकता हुआ यज्ञोपवीत, सिरके पीछे प्रभावर्तुल, कटिमें मेखला, कलाईमें दस्तबन्द और बाँहोंमें भुजबन्द हैं। दायाँ हाथ जंघे पर रखा हुआ है तथा बायें हाथमें परशु है। चरणोंके दोनों ओर करबद्ध सेवक-सेविका खड़े हैं। यह मूर्ति लोकपाल या दिक्पालकी है। लोकपाल या दिक्पालकी इस प्रकारकी मूर्तियाँ खजुराहोमें भी मिलती हैं।

इसके अतिरिक्त शेष १८ मूर्तियाँ तीर्थंकरोंकी हैं। इनमें खड्गासन और पद्मासन दोनों ही प्रकारकी मूर्तियाँ हैं। किन्तु अधिकांश मूर्तियाँ पद्मासन हैं। ये मूर्तियाँ कमसे कम ९ इंचकी हैं और अधिकतम अवगाहनावाली मूर्ति तीन फुटकी है। एक मूर्ति चतुर्मुखी (सर्वतोभद्रिका) है। इन मूर्तियोंके लिए अभी तक वेदी नहीं बनी है। अतः ये मूर्तियाँ अभी भूमिपर ही रखी हुई हैं।

मूलनायक प्रतिमाकी भित्तिके पीछे खुले आकाशके नीचे भूगर्भसे प्राप्त कुछ खण्डित मूर्तियाँ रखी हुई हैं।

उपर्युक्त सभी खण्डित और अखण्डित मूर्तियाँ मध्यकालकी, विशेषतः १०-११वीं शताब्दीकी हैं।

पुरातत्त्व

मध्यप्रदेशमें पुरातत्त्व और कलाकी दृष्टिसे जिन स्थानोंका—सर्वाधिक महत्त्व है, उनमें सिहौनियाका भी अपना विशिष्ट स्थान है। यहाँ उपलब्ध पुरातत्त्वावशेष मन्दिर और मूर्तियाँ—इस बातकी साक्षी है। सिहौनिया मध्ययुगमें एक सम्पन्न नगर था। इसका पता हमें यहाँ प्राप्त हिन्दू और जैन मन्दिरोंके अवशेषोसे चलता है। इस समय यह गाँव बहुत साधारण और छोटा-सा रह गया है, किन्तु इस समय भी यहाँ प्राचीन गौरवकी परिचायक कुछ सामग्री—मन्दिर और मूर्तियाँ—बची हुई हैं। जैसे काकनमठ, अम्बिकादेवीका मन्दिर, हनुमान्की मूर्ति, पाषाण-स्तम्भ और जैन मूर्तियाँ।

इनमें पाषाण-स्तम्भ तो असन्दिग्ध रूपसे किसी जैन मन्दिरका मानस्तम्भ था। क्या यह कल्पना करना संगत होगा कि शान्तिनाथ मन्दिर (जिसमें शान्ति, कुन्थु और अरनाथकी विशाल मूर्तियाँ विराजमान थीं) उस कालमें इतना विशाल बना हुआ था कि उक्त मानस्तम्भ उस मन्दिरके सामने पड़ता था। यह कल्पना कुछ तर्कसंगत भी प्रतीत होती है क्योंकि अब तक जितनी जैन मूर्तियाँ यहाँ उपलब्ध हुई हैं, वे सभी वर्तमान जैन मन्दिर और पाषाण-स्तम्भके मध्यवर्ती क्षेत्रमें ही मिलती हैं। इसमें भी सन्देह नहीं है कि उपलब्ध जैन तीर्थंकर मूर्तियाँ और यह पाषाण-स्तम्भ समकालीन हैं। यह भी सम्भव है कि यह मानस्तम्भ निकटवर्ती किसी अन्य जैन मन्दिरका रहा हो।

सिहौनिया और उसके निकटवर्ती स्थानोंपर जो पुरातत्त्व-सामग्री प्राप्त हुई है, वह कछवाहा अथवा परिहार नरेशोंके शासनकालकी है। ग्वालियर-दुर्गमें बने हुए सास-बहूके मन्दिरमें उत्कीर्ण एक लेखसे ज्ञात होता है कि कछवाहानरेश कीर्तिराजने सिहौनियामें शिवका एक विशाल मन्दिर बनवाया था। कीर्तिराजने ग्वालियर-दुर्गपर लगभग १००० ई. में राज्य किया था। लेखमें सिहोनियाका नाम 'सिंहपाणीय' दिया है। यह शिवमन्दिर कौन-सा था, इस सम्बन्धमें कुछ विद्वानोंकी मान्यता है कि काकनमठ ही वह शिव मन्दिर है। इन विद्वानोंकी सम्मतिमें काकनमठका निर्माण रानी काकनवतीने कराया था और यह कीर्तिराजकी पत्नी थी। कुछ अन्य विद्वान् इस मठको मूलतः जैन मन्दिर मानते है। इस मन्दिरमें इस समय कोई मूर्ति नहीं है। इसका सभामण्डप स्तम्भोंपर आधारित है। मण्डपके ऊपर शिखर है। पहले यह भूतलसे १०० फुट ऊँचा था। अब तो मन्दिरकी ऊँची चौकी जमीनके अन्दर दबी हुई है। इस मन्दिरके स्तम्भों और बाह्य भागपर नाना दृश्य उत्कीर्ण थे जो अब नष्ट या अस्पष्ट हो गये हैं। इस मठके चारों ओर बिखरे हुए भग्नावशेषोंसे ज्ञात होता है कि इसके चारों ओर अनेक मन्दिर बने हुए थे किन्तु अब तो उनके अवशेष ही पड़े मिलते हैं। काकनमठ गाँवसे दो मील उत्तर-पश्चिममें है।

अम्बिका देवीका मन्दिर और हनुमान् मूर्ति गाँवके निकट ही हैं। सिहोनियामें पुरातत्त्व-सामग्री विपुल परिमाणमें उपलब्ध हुई है। यह सामग्री प्रायः १०-११वीं शताब्दीकी है। यह सम्पूर्ण सामग्री ग्वालियर-दुर्गमें स्थित संग्रहालयमें सुरक्षित है। इस सामग्रीमें विष्णु, नरवराह, नरसिंह, राम-सीता, वैद्यनाथ, पार्वती, अग्नि, सूर्य, ब्रह्माणी, सरस्वती, इन्द्र आदि देव-देवियोंकी मूर्तियाँ हैं। कुछ नारी-मूर्तियाँ भी हैं, जिनमें-से कुछ तो अप्सराओंकी हैं और एक मूर्ति शालभंजिका-की है। शालभंजिकाकी मूर्ति सरस लोक-जीवनका प्रतिनिधित्व करती है। कुछ ऐसी भी नारी-मूर्तियाँ यहाँ मिली हैं, जिनमें स्त्री सिरपर भरा हुआ घड़ा रखकर और दोनों हाथोंमें दीपक लिये इठलाती हुई जा रही है। शायद यह भारतीय नारीकी ही विशेषता है कि वह भरे हुए घड़ेको सिरपर रखकर उसे बिना पकड़े साधकर सहज होमें ले जा सकती है। इसी विशेषताको प्रदर्शित करनेवाली ये मूर्तियाँ वस्तुतः भारतके तत्कालीन लोक-जीवनपर प्रकाश डालती हैं।

इस सबसे लगता है कि सिहोनिया मध्ययुगमें अत्यन्त समृद्ध था। तत्कालीन समाजमें कलाके प्रति अत्यधिक रुचि थी, कलाने केवल कल्पना न रहकर, वास्तविक रूप ग्रहण कर लिया था; और विकसित दशाको प्राप्त हो चुकी थी। इस कालको कलाकी दृष्टिसे हम उसका प्रौढ़ काल कह सकते हैं। सिहोनिया कलाको अपना महत्त्वपूर्ण योगदान करनेमें किसीसे पीछे नहीं रहा।

मार्ग

सिहोनिया क्षेत्र आगरा-ग्वालियरके मध्य स्थित मुरैनासे ३० कि. मी. है। मुरैनासे बड़ागाँव होकर सिहोनिया तक पक्की सड़क है और बसें चलती हैं। बस गाँवके बाहर थाने तक जाती है। वहाँसे सिहोनिया दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्रका मन्दिर कच्चे मार्गसे लगभग एक किलोमीटर दूर है।

ग्वालियर

स्थिति और मार्ग

ग्वालियर सेण्ट्रल रेलवेकी मुख्य लाइनपर आगरा-झाँसीके मध्यमें आगरासे ११८ कि. मी. और झाँसीसे ९७ कि. मी. दूर एक प्रसिद्ध शहर है। यह एक समय ब्रिटिश शासनकालमें भारत-की रियासतोंमें चौथे नम्बरपर था और उसके नरेश सिन्धिया वंशके थे। आजकल तो यह मध्यप्रदेशका एक प्रमुख शहर मात्र रह गया है और कुछ प्रशासकीय कार्यालयोंके अतिरिक्त उसका कोई विशेष राजनैतिक महत्त्व नहीं है। किन्तु प्राचीन कालमें इसका बड़ा राजनैतिक महत्त्व रहा है और अनेकों राजनैतिक घटनाएँ यहाँ घटित हुई हैं। दक्षिण-भारतका द्वार होनेके कारण इसको विशेष राजनैतिक महत्त्व मिल चुका है। जैन इतिहास, जैन कला और पुरातत्त्वकी दृष्टिसे भी इसका गौरवपूर्ण स्थान रहा है।

यह शहर तीन भागोंको मिलकर बना है—ग्वालियर, लश्कर और मुरार। ग्वालियर पहाड़ीपर बने हुए किलेके उत्तरमें स्थित है, लश्कर किलेके दक्षिणमें तथा मुरार किलेके पूर्वमें है। लश्कर सन् १८१० में दौलतराव सिन्धियाके फौजी लश्कर या छावनीके रूपमें बस गया और मुरारमें पहले अँगरेजोंकी छावनी रहती थी। ग्वालियर आगरासे दक्षिणमें ११८ कि. मी., दिल्ली-

से ३१७ कि. मी. और बम्बईसे १२२५ कि. मी. दूर है। ग्वालियरसे इन्दौर होते हुए बम्बई तक, आगरा होते हुए दिल्ली तक और कानपुर होते हुए कलकत्ता तक पक्की सड़कें हैं। ग्वालियर हवाई मार्गपर भी है। 'एयर इण्डिया सर्विस' ग्वालियरको दिल्ली-बम्बईसे जोड़ती है।

गोपाचल दुर्ग

पुरातन कालमें ग्वालियरके कई नाम जैन वाङ्मयमें उपलब्ध होते हैं—जैसे गोपाद्रि, गोपगिरि, गोपाचल, गोपालाचल, गोवागिरि, गोवालगिरि गोपालगिरि, गोवालचलहु, ग्वालियर। ये सब नाम ग्वालियरके दुर्गके कारण पड़े हैं। इस दुर्गका अपना एक इतिहास है। कुछ लोगोंका कथन है कि यह दुर्ग ईसासे ३००० वर्ष पूर्वका है। कुछ पुरातत्त्वज्ञ इसे ईसाकी तीसरी शताब्दीमें निर्मित मानते हैं। इस दुर्गकी गणना भारतके प्राचीन दुर्गोंमें की जाती है।

इस दुर्गकी स्थापनाके सम्बन्धमें कई किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। एक किंवदन्तीके अनुसार यहाँ पहाड़ीपर ग्वालिय नामक एक साधु रहते थे। एक दिन नगरके नरेश सूर्यसेन, जिन्हें कुष्ठ रोग हो गया था, घूमते हुए इस पहाड़ीपर आ निकले और उनकी उक्त साधुसे भेंट हो गयी। नरेशने साधुको प्रणाम करके अपने कुष्ठ रोगका कुछ उपचार पूछा। साधुने राजासे वहाँ बने हुए तालाबमें स्नान करनेका परामर्श दिया। राजाने वैसा ही किया और स्नान करते ही उनका कुष्ठ रोग जाता रहा। राजाने उस साधुके इच्छानुसार उस पहाड़ीपर एक दुर्ग बनवाया और उसका नाम ग्वालिगढ़ रखा और पश्चात् उस नगरका नाम भी ग्वालियर रख दिया। सम्भवतः यह घटना ईसाकी तीसरी शताब्दीकी है।

ऐतिहासिक दृष्टिसे इसका सर्वप्रथम उल्लेख हूण सरदार मिहिरकुलके सूर्य मन्दिरवाले शिलालेखमें मिलता है। इसमें राज्यके १५वें वर्षमें गोपगिरिपर मातृचेल द्वारा सूर्य मन्दिरकी स्थापनाका उल्लेख है। इसी प्रकार चतुर्भुज मन्दिरके वि. सं. ९३२-९३३ के शिलालेखमें भी उक्त दुर्गका उल्लेख मिलता है। यह शिलालेख कन्नौजके राजा भोजदेवके समयका है। उस कालमें इस दुर्गपर कन्नौज-नरेशका अधिकार था।

इस प्रकार यह किला इससे पूर्वका होना चाहिए। वह जलाशय अब भी है, जिसका नाम सूर्यकुण्ड है किन्तु लगता है, उसके जलमें पहले-जैसा चमत्कार नहीं रह गया।

यह किला ३०० फुट ऊँची पहाड़ीपर बना हुआ है। उत्तरसे दक्षिणकी ओर इसकी लम्बाई पौने दो मील है तथा पूर्वसे पश्चिम तक इसकी चौड़ाई ६०० से २८०० फुट तक है। किलेमें चार हिन्दू और दो मुस्लिम इमारतें विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं—मान मन्दिर, गुजरी महल, करण मन्दिर, विक्रम मन्दिर, जहाँगीर महल और शाहजहानी महल। कुछ महत्त्वपूर्ण हिन्दू मन्दिर भी यहाँ दर्शनीय हैं—जैसे सूर्यदेव, ग्वालिया, चतुर्भुज, जयन्ती थोरा, तेलीका मन्दिर, सास-बहू (बड़ा), सास-बहू (छोटा), माता देवी, धोन्धदेव और महादेव। इनके अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण जैन मन्दिर भी किलेमें है, जिसका पता सन् १८४४ में कनिंघमने लगाया था।

गोपाचल दुर्गपर विभिन्न राजवंशोंका शासन

सूरजपालने यहाँ ३६ वर्ष राज्य किया। इस वंशमें रसकपाल, नहरपाल, भीमपाल, अमरपाल, गंगपाल, भोजपाल, पदमपाल, अनंगपाल, इन्द्रपाल, जीतपाल, ढाण्डूपाल, लक्ष्मणपाल, नहरपाल, मण्डरपाल, अजीतपाल, बुद्धपाल आदि ८४ राजाओंने राज्य किया। इनका राज्यकाल लगभग ९८९ वर्ष रहा। फिर यहाँ परिहारवंशका १०२ वर्ष तक राज्य रहा। उपर्युक्त शिलालेखोंसे

यह पता चलता है कि प्रतिहार राजा भोजने इसे जीतकर अपने कन्नौज राज्यमें मिला लिया था। विक्रमकी ११वीं शताब्दीमें कच्छपघाटवंशी वज्रदामन नामक नरेश (१००७–१०३७ राज्य शासन) ने ग्वालियरको जीतकर अपने अधिकारमें कर लिया। वि. सं. १०३४ में उसने एक जैनमूर्तिकी प्रतिष्ठा भी करायी थी, जैसा कि मूर्ति-लेखसे ज्ञात होता है। इससे पता चलता है कि जैन धर्मके प्रति इस नरेशकी गहरी आस्था थी। इस वंशके अनेक राजा हुए—जैसे मंगलराज, कीर्तिराज, भुवनपाल, देवपाल, पद्मपाल, सूर्यपाल, महीपाल, भुवनपाल, मधुसूदन आदि—जिन्होंने ग्वालियरपर शासन किया। फिर प्रतिहारवंशकी द्वितीय शाखाने इसपर अपना अधिकार कर लिया। वि. सं. १२४९ में दिल्लीके शासक अल्तमशने दुर्गपर घेरा डाल दिया और काफी विनाश किया। सारंगदेव और १५०० वीर राजपूत वीरतापूर्वक लड़े और मातृभूमिके लिए बलि हो गये। राजपूत स्त्रियोंने हजारोंकी संख्यामें अग्निकी भयंकर ज्वालाओंमें कूदकर जौहर-व्रत लिया और इस प्रकार अपने सतीत्वकी रक्षा की। राजमहलकी ७० रानियाँ पहले आगमें कूदीं, फिर अन्य स्त्रियाँ कूदीं। जहाँ जौहर हुआ, वह जौहर ताल अब भी मौजूद है। किलेपर अल्तमश-का अधिकार हो गया।

वि. सं. १४५९ में जब कूदी तैमूरलंगने भारतपर प्रबल वेगसे आक्रमण किया, उस समय अराजकतापूर्ण स्थितिसे लाभ उठाकर वीरसिंह नामक एक तोमरवंशी सरदारने ग्वालियरपर अधिकार कर लिया। यह अलाउद्दीनके सेनापति सिकन्दरखाँ की नौकरीमें था और ईसामणि भोला (डाण्डरौली परगना) का रहनेवाला था। ग्वालियरपर इस वंशका अधिकार वि. सं. १५९३ तक रहा। इस वंशमें अनेक नरेश हुए जिन्होने ग्वालियरपर १०५ वर्ष तक शासन किया। उन नरेशोंके नाम इस प्रकार हैं—वीरसिंह, उद्धरणदेव, विक्रमदेव (वीरमदेव), गणपतिदेव, डूंगरसिंह, कीर्तिसिंह, कल्याणमल, मानसिंह, विक्रमसाह, रामसाह, शालिवाहन, उनके दो पुत्र श्यामसाह और मित्रसेन। अपने शासन-कालमें इन सभी राजाओंका जैन धर्मके प्रति सहानुभूति-पूर्ण व्यवहार रहा। अतः इनके शासनकालमें जैन धर्म और जैन कलाको फलने-फूलनेका खूब अवसर प्राप्त हुआ। इन तोमरवंशी नरेशोंमें-से महाराज डूंगरसिंह अथवा डूंगरेन्द्रदेव और कीर्तिसिंहकी आस्था जैन धर्मपर पूर्ण-रूपसे रही। डूंगरसिंहका शासन-काल तीस वर्ष था और कीर्तिसिंहने पचीस वर्ष तक शासन किया। इन दोनों ही नरेशोंके राज्यकालमें गोपाचलपर अनेक भव्य और विशाल मूर्तियोंका निर्माण हुआ और अनेक प्रतिष्ठोत्सव हुए।

तोमरवंशके बाद दुर्गपर लोदीवंश, मुगलवंश, सिन्धियावंश और अँगरेजोंका शासन रहा। ताजुल-मआसिरके लेखक एक मुगल इतिहासकारने इस किलेको हिन्दके गलेमें पड़े हुए किलोंके रत्नहारका एक उज्ज्वल रत्न बताया है। किसीने इसे दक्षिण भारतका प्रवेश-द्वार बताया है। किलेके इस महत्त्वके कारण ही इसे इतना राजनैतिक महत्त्व प्राप्त हुआ और इसपर विभिन्न राज-वंशोंके आक्रमण निरन्तर होते रहे।

जैन प्रतिमाएँ

ऊपर कनिंघम द्वारा खोजे गये जिस जैन मन्दिरका उल्लेख किया गया है, वह किलेमें हाथी दरवाजा और सास-बहूके मन्दिरके मध्यमें अवस्थित है। कनिंघमके अनुसार इसे मुगल शासन-कालमें मसजिदके रूपमें परिवर्तित कर दिया गया था। खुदाई करते समय नीचे एक कमरा मिला है। उसमें कई दिगम्बर जैन मूर्तियाँ हैं। ये मूर्तियाँ पद्मासन और कायोत्सर्गासन दोनों ही प्रकारकी हैं। एक लेख वि. सं. ११६५ का मिला है। इस कमरेमें दो वेदियाँ बनी हुई हैं। उत्तरकी

वेदीमें दो नग्न कायोत्सर्ग मूर्तियाँ विराजमान हैं, जिनमें एक मूर्ति सप्तफणमण्डित भगवान् पार्श्वनाथकी है। मध्यमें ६ फुट ८ इंच लम्बा आसन है, जिसपर कोई मूर्ति विराजमान नहीं है। दक्षिणकी भीतमें पाँच वेदियाँ हैं, जिनमें दोके स्थान रिक्त हैं। केवल दो दिगम्बर जैन मूर्तियाँ विद्यमान हैं। लगता है, शेष मूर्तियाँ आततायियोंने नष्ट कर दीं।

इस गढ़में जितनी मूर्तियाँ बनी हुई हैं, उनका निर्माण महाराज डूँगरसिंह और कीर्तिसिंहके शासन-कालके ५५ वर्षोंमें हो पाया था। मूर्तियोंके निर्माणका प्रारम्भ तो महाराज डूँगरसिंहके कालमें ही हो गया, किन्तु मूर्तियोंका निर्माण अधिकांशतः महाराज कीर्तिसिंहके कालमें पूर्ण हुआ। महाराज डूँगरसिंहके शासनकालमें तो पहाड़की ऊबड़-खाबड़, आड़ी-तिरछी शिलाओं और चट्टानोंको छेनी-हथौड़ोंकी सहायतासे साफ और चिकना बनानेका उपक्रम चलता रहा। फिर कलाकारोंने चट्टानोंके कठिन हृदयोंको भेदकर उनके भीतरसे सौम्यता, शान्ति और वीतरागताको प्रतिमाके मुखपर अंकित करनेमें सफलता प्राप्त की। सारे पर्वतको उधेड़कर जिनेन्द्र प्रभुके विशाल और कमनीय रूपको उजागर करनेमें कलाकारने पूर्णतः सफलता प्राप्त की। उन्होंने सम्पूर्ण दुर्गको जैन प्रतिमाओंका भव्य मन्दिर बना दिया। प्रतिमाओंकी इस विशालतामें भी कलाकारकी छेनी और हथौड़ा चूके नहीं हैं और सब कहीं समुचित रूपमें भावनाओं और रेखाओं तकका उभार हुआ है। यह कलाकारोंके नैपुण्यको प्रदर्शित करनेके लिए पर्याप्त है।

सुविधाके लिए ग्वालियर किलेकी इन मूर्तियोंको हम पाँच भागोंमें बाँट सकते हैं—(१) उरवाही समूह, (२) दक्षिण-पश्चिम समूह, (३) दक्षिण-पूर्व समूह, (४) उत्तर-पश्चिम समूह और (५) उत्तर-पूर्व समूह। इनमें उरवाही समूह और दक्षिण-पूर्व समूह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उरवाही समूह अपनी विशालताके कारण तथा दक्षिण-पूर्व समूह अलंकृत कलाके कारण सबको अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं।

इन मूर्तियोंकी जानकारीके लिए इनके सम्बन्धमें संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

इस पर्वतपर कुल जैन मूर्तियोंकी संख्या १५०० के लगभग है। इनमें ६ इंचसे लेकर ५७ फुट तककी मूर्तियाँ सम्मिलित हैं। यहाँकी सबसे विशाल मूर्ति भगवान् आदिनाथकी है जो उरवाही दरवाजेके बाहर है, खड्गासन मुद्रामें है और ५७ फुट ऊँची है। इसके पैरोंकी लम्बाई ९ फुट है। श्वेताम्बर आचार्य शीलविजय और आचार्य सौभाग्यविजयने अपनी तीर्थमालामें इस मूर्तिको बावनगजा बताया है और बाबरने अपने आत्मचरित (बाबरनामा) में इस मूर्तिको ४० फुटका लिखा है, किन्तु ये दोनों ही धारणाएँ गलत हैं। एक पत्थरकी बावड़ीमें सुपार्श्वनाथकी पद्मासन प्रतिमा है जो ३४ फुट ऊँची और ३० फुट चौड़ी है। पद्मासन प्रतिमाओंमें यह भारतमें सबसे विशाल है।

महावीर धर्मशाला नयी सड़कसे किलेका उरवाही द्वार लगभग ६ किलोमीटर है। किलेकी बाहरी दीवारमें कुछ अर्धनिर्मित मूर्तियाँ बनी हुई हैं। सम्भवतः मूर्तियाँ बनानेकी योजना थी, किन्तु किसी कारणवश छत्र आदि खोदकर छोड़ दिया गया।

बायी ओरकी सर्वप्रथम पहाड़में तीन खड्गासन मूर्तियाँ मिलती हैं। तीनों कमलासनपर खड़ी हैं। तीनों मूर्तियोंके मध्य स्थानोंमें शिलालेख उत्कीर्ण हैं। पहाड़के सभी शिलालेख देना तो सम्भव नहीं है, किन्तु यहाँ केवल एक शिलालेख जानकारीके लिए दिया जा रहा है—

"सं. १५१० वर्षे माघ सुदी ८ सोमे गोपालदुर्गे तोमरवंशान्वये महाराजाधिराज राजा श्री डूंगरेन्द्रदेव राज्य पवित्रमाने श्री काष्ठाष्ठासंघ माथुरान्वये भट्टारक श्री गुणकीर्तिदेवास्तत्पट्टे श्री यशकीर्तिदेवास्तत्पट्टे श्री मलयकीर्ति देवास्ततो भट्टारक गुणभद्रदेव पंडितवर्य रइधू तदाम्नाये

अग्रोतवंशे वासिल गोत्रे साकेल्हा भार्या निबारी तयोः पुत्रः विजयष्ठ साहु सहजा तत्पुत्र साहु नाथू तेउ नाथू पुत्रौ मालादे भीसा तेऊ पुत्रौ गोविन्ददेवजीमहारथी बालमती साधु माल्हा भार्या सिरो पुत्र संघाधिपत्तिदेव भार्या मालेह्री द्वितीय कोछि तयोः पुत्र शंकर मसीजाकरमासारे पति पुत्र नेम भार्या हेमराज हि चतुर्थ साहीगा पुत्र खेई माव पुत्र बीजा जोडसी कुमरा पद्मवला चेला पुण्याधिदा द्वितीय भोला तृतीय अलूसा जीदा पुत्र माधिकुटी बारतव सहारापु बालू पुत्र देवीदास इस वंश निर्देश एतेषां मध्ये साधु श्री माल्हा पुत्र संघाधिपति देउताय पुत्र संघाधिपति करमसीहा श्री चन्द्रप्रभु जिनबिंब महाकाय प्रतिष्ठापितं प्रणमति कर्पासी श्री साध्वी वीर जिनपद चक्र अंगुष्ठ मातृ विमान जिनसा क्रिया प्रतिष्ठापयतो महुतया कुलं बलं राज्यमनंतसौख्यं तवस्य विच्छित्तिरथो-विमुक्तिः। शुभं भवतु देशवृषयोः।"

इस शिलालेखमें कुल १५ पंक्तियाँ हैं और यह लगभग पौने दो फुट लम्बा और इतना ही चौड़ा है।

बायीं ओरसे प्रतिमाएँ इस प्रकार हैं—तीर्थंकर मूर्ति, दोनों ओर इन्द्र और इन्द्राणी हैं। फिर तीर्थंकर चन्द्रप्रभकी मूर्ति है। उसके दोनों ओर इन्द्र-इन्द्राणी हैं। फिर तीर्थंकर महावीरकी मूर्ति है। उसके बगलमें इन्द्र विनम्र मुद्रामें खड़ा है।

इस समूहमें विशाल खड्गासन मूर्तियाँ ४०, पद्मासन मूर्तियाँ २४, स्तम्भों और दीवारोंमें लघु तीर्थंकर मूर्तियाँ ८४०, उपाध्याय और साधु मूर्तियाँ ४, यक्ष और शासन देवी-मूर्तियाँ १२ हैं। ४ चैत्य स्तम्भ भी बने हुए हैं। उनके ऊपर दीवारमें शिखर बने हुए हैं। इस समूहमें कुल १० शिलालेख हैं जिनमें-से कई तो संवत् १५१० और १५२२ के हैं।

उरवाही द्वारकी ओर जानेपर दायीं ओरके मूर्ति-समूहके सम्बन्धमें आवश्यक ज्ञातव्य निम्न प्रकार है—

दायीं ओरसे बायीं ओरको—इस समूहमें ४७ खड्गासन मूर्तियाँ हैं, ३१ पद्मासन मूर्तियाँ, ६ यक्ष और देवी-मूर्तियाँ, ६ चैत्य-स्तम्भ और ३ शिलालेख हैं। इस पर्वतकी मूर्तियोंमें सबसे विशाल अवगाहनावाली मूर्ति भगवान् ऋषभदेवकी है जो इसी समूहमें है और जिसकी अवगाहना ५७ फुटकी है। इस मूर्तिके पादपीठके सारे भागपर मूर्तिलेख है तथा इस मूर्तिके दोनों ओर भी लेख है। मूर्ति-लेखके अनुसार इस मूर्तिके प्रतिष्ठाकारक साहू कमलसिंह तथा प्रतिष्ठाचार्य रइधू थे। यहाँ ५ मूर्तियाँ ऐसी हैं, जिनमें महाराज श्रेयांस द्वारा भगवान् ऋषभदेवको आहार देते हुए प्रदर्शित किया गया है। इस समूहमें एक कोष्ठकमें चैत्यालय बना हुआ है। इसमें तीन वेदियाँ बनी हुई हैं। प्रत्येक वेदीके ऊपर शिखर निर्मित हैं। एक स्थलपर सम्भवतः मुनियोंके ध्यानके लिए एक गुफा और एक कक्ष बने हुए हैं। एक मूर्ति तीर्थंकर माताकी बनी हुई है जो उपधानके सहारे शयन-मुद्रामें दीख पड़ती है। सम्भवतः यह स्वप्न-दर्शनके अवसरकी मूर्ति है। कई स्थानोंपर दीवारमें लघु मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। एक स्थानपर ७१ मूर्तियाँ बनी हुई हैं। किन्तु सब मूर्तियोंकी गणना करना सम्भव नहीं लगता। कुछ मूर्तियाँ बड़ी अस्पष्ट और अर्धनिर्मित हैं। कुछ बड़ी मूर्तियाँ भी अर्धनिर्मित दशामें हैं। शिल्पीको उन्हें पूर्ण करनेमें क्या बाधा आयी, यह अनुमानसे बाहर है।

आगे बढ़नेपर उरवाही द्वार मिलता है। द्वारके दोनों ओर दो खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ खड़ी हैं, किन्तु इनकी कमर तक ईंटें चुन दी गयी हैं तथा मूर्तियोंपर सफेदी कर दी गयी है।

उरवाही द्वारसे सिन्धिया स्कूल होते हुए आगे बढ़नेपर सासका बड़ा मन्दिर और बहूका छोटा मन्दिर मिलते हैं। सास-बहूके इन दोनों मन्दिरोंमें गर्भगृहमें कोई मूर्ति नहीं है। बड़ा मन्दिर १०५ फुट लम्बा, ७५ फुट चौड़ा और १०० फुट ऊँचा है। मन्दिरके बीचका हॉल ३२ फुट लम्बा

और ३१ फुट चौड़ा है। इसमें एक चौकोर चबूतरा बना हुआ है। चारों कोनोंपर स्तम्भ हैं। स्तम्भों और दीवारोंपर विविध प्रकारके दृश्य अत्यन्त कलापूर्ण रीतिसे उत्कीर्ण किये गये हैं। द्वार और छतका अलंकरण दर्शनीय है। यहाँपर लगे हुए एक शिलालेखसे प्रकट होता है कि कछवाहा राजपूत महीपालने इसे संवत् १०९३ में पूर्ण किया। शिलालेखसे यह प्रकट नहीं होता कि यह मन्दिर किस देव या भगवान्को अर्पित किया गया। किन्तु परम्परागत मान्यता है कि उक्त भक्त राजपूतने आष्टाह्निक व्रतके उपलक्ष्यमें नन्दीश्वर द्वीपकी अनुकृतिपर यह जैन मन्दिर बनवाया था। नन्दीश्वर द्वीपमें जानेवाले देव-देवियोंकी मूर्तियाँ नृत्य एवं विभिन्न मुद्राओंमें मन्दिर-के सभी भागोंमें उत्कीर्ण करायीं। सम्भवतः मुस्लिम कालमें इसकी मूर्तिका भंजन कर दिया गया। यही कहानी इसके निकट बने बहूके मन्दिरकी है। ये दोनों ही मूलतः जैन मन्दिर रहे हैं। किन्तु कुछ आधुनिक इतिहासकार सास-बहूके स्थानपर सहस्रबाहुका मन्दिर बताकर इन्हें विष्णु मन्दिर सिद्ध करते हैं। इसके समर्थनमें कोई अभिलेख या अन्य प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। अतः निश्चित रूपसे इस सम्बन्धमें कुछ कहना सम्भव नहीं है।

इन मन्दिरोंसे आगे बढ़नेपर तेलीका मन्दिर मिलता है। इस मन्दिरका निर्माण नौवीं शताब्दीमें द्रविड़ शैलीमें हुआ है। यह १०० फुट ऊँचा है। इसमें भी वेदी सूनी पड़ी है। इसके चारों ओर वाटिकामें जैन मन्दिर या मन्दिरोंके पाषाण-स्तम्भ तथा तीर्थंकर मूर्तियाँ रखी हुई हैं। ये मूर्तियाँ किस मन्दिरकी हैं तथा ये खुले मैदानमें क्यों रखी गयी हैं, यह ज्ञात नहीं हो सका। हमारा अनुमान है कि यह सामग्री तेलीके मन्दिर और उसके निकट बने हुए एक जीर्ण जैन मन्दिरकी है। तेलीका मन्दिर भी मूलतः जैन मन्दिर था। कुछ लोग इसका नाम तिलगना (तैलंग) कल्पित करके इसे विष्णु मन्दिर मानते हैं।

इस मन्दिरके निकट एक जीर्ण-शीर्ण कमरा बना हुआ है। सन् १८४४ में कनिंघमने इस ३५ फुट लम्बे और १५ फुट चौड़े कमरेको जैनोंके २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथका मन्दिर माना था। इसका निर्माण सन् ११०८ में हुआ बताया जाता है। इसके पास ही सिखोंका गुरुद्वारा बना हुआ है। इसके सम्बन्धमें बड़ी रोचक कहानी प्रचलित है। मुगल सम्राट् जहाँगीरने सिखोंके छठे गुरु हरगोविन्दको बन्दी बनाकर इस किलेमें रखा था। थोड़े दिनोंके बाद जहाँगीर बीमार पड़ गया। कुछ लोगोंने बादशाहको परामर्श दिया कि गुरुको छोड़ दो। जहाँगीरने तदनुरूप आदेश दे दिया। किन्तु गुरुने अपने साथियोंको पहले रिहा करनेकी शर्त रखी। अपनी बढ़ती हुई बीमारीके कारण जहाँगीरको गुरुकी बात माननी पड़ी। जिन लोगोंने गुरुका दामन पकड़ा, वे सब मुक्त कर दिये गये। इसलिए गुरुका नाम 'दाता बन्दी छोड़' पड़ गया। गुरुके कारण सिखोंके लिए यह तीर्थस्थान बन गया और उन्होंने गुरुकी स्मृति सुरक्षित रखनेके लिए यहाँ गुरुद्वारा बनवा लिया।

यहाँसे कुछ आगे जानेपर सिन्धिया स्कूलके छात्रावासके सामने सूरज-कुण्ड बना हुआ है। यह वही कुण्ड बताया जाता है जिसके जलमें स्नान करनेसे राजा सूरजसेनका कुष्ठ रोग दूर हो गया था। कुण्डके चारों ओर पक्के घाट और सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। कुण्डके मध्यमें और किनारेपर हिन्दुओंने कुछ मन्दिर बना लिये हैं।

इससे आगे बढ़नेपर मान-मन्दिर मिलता है। राजा मानसिंह तोमरवंशके नरेशोंमें प्रभाव-शाली नरेश था। वह सन् १४८६ में गद्दीपर बैठा। वह अत्यन्त कला प्रेमी था। उसके कलाप्रेमका ही नमूना यह मान-मन्दिर है। कलाकी दृष्टिसे भारतके भवनोंमें इसका बहुत ऊँचा स्थान है। यह भवन मानसिंहका निवास-स्थान था। इसकी यद्यपि दो मंजिलें हैं किन्तु पहाड़की ओर झुके हुए पश्चिमी भागमें दो मंजिलें जमीनके नीचे भी हैं। इसमें जालीकी महीन कारीगरी और रंग-

विन्यास दर्शनीय है। कहते हैं, इस राजप्रासादमें को प्रत्येक पत्थरपर छत्तीस दिन तक खुदाईका काम किया गया। मानसिंह ललित कलाओंका बड़ा प्रेमी था। उसने संगीतको प्रोत्साहन देनेके लिए एक संगीत महाविद्यालयकी भी स्थापना की थी। बादशाह अकबरके दरबारके नवरत्नोंमें प्रसिद्ध गायक तानसेन इसी विद्यालयकी देन था। मानसिंह स्वयं भी गायन-कलामें निष्णात था। उसने तथा उसके प्रोत्साहनपर अन्य गायकोंने उस समय कई नये रागोंका आविष्कार किया जो बादमें बड़े लोकप्रिय हो गये।

इस महलके नीचेके भागमें एक जौहर कुण्ड भी बना हुआ है। कहा जाता है कि जब मुसलमानोंने इस दुर्गपर अधिकार कर लिया तो रानियों तथा अन्य स्त्रियोंने इस कुण्डमें आग जला ली और उसमें कूदकर अपने शीलकी रक्षा की थीं। यहींपर मुगल बादशाह औरंगजेबने अपने भाई मुरादको कैद करके रखा और फाँसी दी थी। उसने यहींपर अपने पुत्र सुलतान मुहम्मद, दाराके पुत्र सुलेमान शिकोह आदि परिवार-जनोंको बन्दी बनाकर रखा और उन्हें नाना प्रकारकी क्रूर यातनाएँ देकर मार डाला।

मानसिंह महलका पश्चिमी भाग ३०० फुट तथा दक्षिणी भाग १५० फुट लम्बा और लगभग ६० फुट ऊँचा है। इसकी दीवारें नीले, हरे और पीले रंगकी कारीगरीसे मण्डित हैं। इसकी बाहरी दीवारपर नानाविध देवताओंकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। पाँच तीर्थंकर मूर्तियाँ भी हैं। इनमें एक खड्गासन तीर्थंकर मूर्ति विशाल है।

इस महलसे थोड़ा आगे चलनेपर गूजरी महल बना हुआ है। वह महल राजा मानसिंहने अपनी प्रियतमा रानी मृगनयनीके लिए बनवाया था। आजकल इस महलमें सरकारी संग्रहालय है।

गूजरी महलसे ग्वालियर गेट होते हुए एक पत्थरकी बावड़ीपर जाते हैं। यह स्थान फूलबाग गेटके पास है। ग्वालियर गेटसे यह स्थान लगभग २-३ कि. मी. है। सड़कसे किलेकी बाहरी दीवार तक, जहाँ यह स्थान है, २ फर्लांगकी चढ़ाई है। मार्ग पक्का है, किन्तु चढ़ाई थका देनेवाली है। यहाँ किलेके प्राचीरके बाहरी भागमें, पर्वतके एक कोनेमें एक ही पत्थरकी खुदी हुई प्राकृतिक बावड़ी है। यह लगभग २० फुट लम्बी और इतनी ही गहरी है। इसमें किसी अज्ञात स्रोतसे जल आता है और बारहों महीने निरन्तर आता रहता है। जल शीतल एवं मीठा है। बावड़ी एक प्राकृतिक गुफामें बनी हुई है। दुर्गके इस प्राचीरके बाहर विशाल अवगाहनावाली खड्गासन और पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ पहाड़में बनायी गयी हैं। यह दक्षिण-पूर्व समूह कहलाता है। यह समूह समुन्नत मूर्ति-कलाकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह समूह लगभग २ फर्लांगके क्षेत्रमें फैला हुआ है। इस समूहकी मूर्तियाँ उरवाही द्वारकी मूर्तियोंकी अपेक्षा अधिक कलापूर्ण, सुघड़ और सौम्य हैं। इस समूहकी मूर्तियाँ अत्यन्त कुशल, अनुभवी और निष्णात शिल्पियों द्वारा निर्मित हुई प्रतीत होती हैं। मूर्तियोंका सौष्ठव, अंगविन्यास और भावाभिव्यंजना सभी कलाकारोंकी निपुणताके मूक साक्षी हैं। यहाँ मूर्तियोंके पीछेकी दीवारको तराशकर चिकना बनाया गया है, मूर्तियोंके अभिषेकके लिए सोपान बने हुए हैं तथा मूर्तियोंकी ग्रीवाके सामने पाषाण-पट्टिकाएँ बनी हुई हैं जिनपर खड़े होकर सुगमतासे अभिषेक किया जा सकता है। ९ मूर्तियोंके आगे ऊँची दीवार उठाकर और मूर्तियोंके ऊपर शिखर बनाकर जिनालयका रूप प्रदान किया गया है। मूर्तियोंके पीछे भामण्डल, सिरके ऊपर छतमें चन्दोवा और हाथोंमें कमल बने हुए हैं और वे अत्यन्त कलापूर्ण हैं। प्रत्येक मूर्तिके दोनों ओर गजलक्ष्मीका अंकन किया गया है, जिनमें गजराज अपनी सूँड़में कलश लिये हुए भगवान्‌का अभिषेक करते दिखाई पड़ते हैं।

बावड़ीके बगलमें दायीं ओर पद्मासन पार्श्वनाथ मूर्ति है। इसके ऊपर बहुत सुन्दर छत्र बना हुआ है। इसके आगे २० से ३० फुट ऊँची खड्गासन मूर्तियाँ हैं। पादपीठपर बने हुए लांछनोंके अनुसार ये मूर्तियाँ जिन तीर्थंकरोंकी हैं उनके नाम इस प्रकार हैं : (१) शान्तिनाथ, (२) पद्मप्रभ, (३) शान्तिनाथ, (४) पद्मप्रभ, (५) बाहुबली, (६) शान्तिनाथ, (७) पद्मप्रभ, (८) नेमिनाथ, (९) शान्तिनाथ।

इनसे आगे ९ मूर्तियोंके आगे दीवारमें द्वार बने हैं और ऊपर शिखर बने हैं जो मन्दिर प्रतीत होते हैं। ये मूर्तियाँ इस प्रकार है : (१) कुन्थुनाथ, (२) सुपार्श्वनाथ, (३) पद्मासन, (४) आदिनाथ पद्मासन, (५) शान्तिनाथ खड्गासन, (६-७) पद्मासन, (८) शान्तिनाथ, (९) सम्भवनाथ।

इनसे आगे पुष्पदन्त, नेमिनाथ और ऋषभदेवकी खड्गासन तथा पद्मप्रभकी पद्मासन मूर्तियाँ हैं। इनके पश्चात् कई छोटी मूर्तियाँ हैं। एक मूर्तिके आगे दोनों ओर मानस्तम्भ बने हुए हैं। आगे एक गुफा मिलती है। इसमें छोटी-बड़ी लगभग १२५ प्रतिमाएँ दीवारोंमें उत्कीर्ण हैं। इसके पश्चात् तीन खड्गासन मूर्तियाँ बनी हुई है। अन्तमें दो गुफाओंमें कुछ मूर्तियाँ हैं। इनमें ऋषभदेवकी एक खड्गासन मूर्ति है जो ३५ फुट ऊँची और १० फुट चौड़ी है। सभी मूर्तियाँ खण्डित हैं। मुगल बादशाह बाबरने दुर्गकी सभी मूर्तियोंको खण्डित करा दिया था। किन्तु एक मूर्तिके ऊपर उसकी क्रूरताका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह है सुपार्श्वनाथकी पद्मासन प्रतिमा, जो ३५ फुट ऊँची और ३० फुट चौड़ी है। यह मूर्ति खण्डित नहीं हो सकी, इसका क्या कारण था। इस सम्बन्धमें विविध और विचित्र किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। तथ्य जो भी हो, इसमें सन्देह नही है कि दुर्गकी सभी मूर्तियाँ खण्डित हैं, किन्तु यह अखण्डित है। पद्मासन मूर्तियोंमें यह सबसे विशाल मूर्ति है। इसके अतिरिक्त एक मूर्ति और भी अखण्डित है। वह है महावीर भगवान्‌की मूर्ति जो बावड़ीके निकट, पार्श्वनाथ भगवान्‌की मूर्तिके नजदीक विराजमान है।

उपर्युक्त चार मूर्ति-समूहोंके अतिरिक्त उरवाही द्वारके प्राचीरके पीछे कोलेश्वरमें भी कुछ मूर्तियाँ बनी हुई हैं। एक मूर्ति ८ फुट लम्बी शिलापर बनी हुई है। यह तीर्थंकर माताकी शयन-मुद्रामें है। इसपर ओपदार पालिश है। एक शिलाफलकमें एक स्त्री, पुरुष और बालक बने हुए हैं। सम्भवतः यह मूर्ति गोमेद यक्ष और अम्बिकाकी है।

मूर्तियोंका निर्मम भंजन

ग्वालियर दुर्गकी इन मूर्तियोंका निर्माण तोमरवंशी नरेश डूंगरसिंह और उनके उत्तराधिकारी पुत्र करनसिंह (अथवा कीर्तिसिंह) के शासन-कालके ३३ वर्षों (सन् १४४० से ७३) में हुआ था। महाराज मानसिंहने कुछ मूर्तियोंका निर्माण करवाकर इसमें वृद्धि की। इन मूर्तियोंका निर्माण केवल इन नरेशोंने ही नही कराया, अपितु इस पुण्य कार्यमें अनेक भक्त श्रावकोंने भी भाग लिया और करोड़ों रुपये व्यय करके अक्षय पुण्य और कीर्तिका संचय किया।

सन् १५५७ में बाबरके सेनापति रहीमदादखाँने दुर्गके पास रहनेवाले एक फकीर शेख मोहम्मद गौसकी मददसे इब्राहीम लोदीके सूबेदार तातारखाँको पराजित करके दुर्गपर अधिकार कर लिया। जब बाबरने विजेताके रूपमें दुर्गमें प्रवेश किया तो वह इन विशाल और भीमकाय मूर्तियोंको देखकर बड़ा झुंझलाया और उसने इन मूर्तियोंको ध्वस्त करनेका आदेश दे दिया। इस बातका उल्लेख उसने अपने 'बाबरनामा' में किया है। इसका आदेश पाकर सैनिकोंने इन मर्तियों-के ऊपर हथौड़ोंके निर्मम प्रहार किये, जिसके फलस्वरूप अधिकांश मूर्तियोंकी मुखाकृति ही नष्ट

हो गयी। अनेक मूर्तियोंके हाथ-पैर खण्डित कर दिये गये। इस प्रकार प्रायः सभी मूर्तियाँ क्षत-विक्षत कर दी गयीं। धर्मोन्मादकी ज्वालामें इतिहास, पुरातत्त्व और कलाकी न जाने कितनी बहुमूल्य सामग्री नष्ट कर दी गयी, इसका मूल्यांकन कौन कर सकता है।

मूर्ति-लेखोंका एक अध्ययन

ग्वालियर दुर्गकी जैन मूर्तियों, उनके अभिलेखों और वहाँ उपलब्ध शिलालेखोंका सांगोपांग और विधिवत् अध्ययन अभी तक नहीं हो पाया है और न अब तक कोई ऐसा ग्रन्थ ही प्रकट हुआ है जिसमें वहाँकी सभी मूर्तियों, अभिलेखों और कलाकी विवेचना ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्यमें की गयी हो। यदि इन मूर्तियों और अभिलेखोंका तुलनात्मक अध्ययन किया जाये तो उससे तत्कालीन इतिहासपर अभिनव प्रकाश पड़ सकता है। इस अध्ययनमें तत्कालीन साहित्य अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकता है। वस्तुतः यह अध्ययन तभी सर्वांगपूर्ण बन सकेगा। इससे तोमरवंशके नरेशों, गोपाचल पीठके भट्टारकों, उस कालमें हुए महाकवि रइधू, कवि विबुध श्रीधर, पद्मनाभ आदि प्रसिद्ध कवियों, संघवी कमलसिंह, मन्त्रिवर कुशराज, खेल्हा ब्रह्मचारी, असपति साहू, रणमल साहू, खेऊ साहू, लोणा साहू, हरसी साहू, भुल्लण साहू, तोसठ साहू, हेमराज, खेमसिंह साहू, आढू साहू, संघवी नेमदास, श्रमणभूषण कुन्थुदास, होलू साहू जैसे कला एवं साहित्यरसिक दानियों, मूर्ति प्रतिष्ठाकारकों, प्रतिष्ठाचार्यों एवं गोपाचलकी तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक एवं कलात्मक प्रवृत्तियोंके इतिहासपर प्रामाणिक प्रकाश पड़ सकेगा। वस्तुतः ऐसे सम्पूर्ण अध्ययनकी आवश्यकतासे इनकार नहीं किया जा सकता। यह किसी शोध-प्रबन्धका स्वतन्त्र विषय हो सकता है। किन्तु विषय और अवसरकी मर्यादाओंको दृष्टिमें रखते हुए हमें यहाँ मूर्तियोंसे सम्बन्धित प्रतिष्ठाकारकों एवं प्रतिष्ठाचार्योंके सम्बन्धमें ही संक्षेपमें विचार करना है।

यहाँके मूर्तिलेखोंके अध्ययनसे स्पष्टतः चार बातोंपर प्रकाश पड़ता है, जिनके सम्बन्धमें यहाँ कुछ आवश्यक ज्ञातव्य बातें दी जा रही हैं—

(१) तोमरवंशी नरेश डूँगरसिंह, उनके पुत्र कीर्तिसिंह तथा कीर्तिसिंहके पौत्र मानसिंहके शासन-कालमें इन मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा हुई। इन नरेशोंने अपनी ओरसे किसी मूर्तिका निर्माण और प्रतिष्ठा करायी हो, ऐसा कोई अभिलेख हमारे देखनेमें नहीं आया। सम्भवतः मानमहलकी दीवारमें जो जैन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं, उनका निर्माण महाराज मानसिंहने कराया था। किन्तु इस सम्बन्धमें अभी असन्दिग्ध प्रमाण खोजनेकी आवश्यकता है। फिर भी जिन नरेशोंके शासनकालमें उन्हींकी इच्छा और आज्ञासे गोपाचल दुर्गके प्राचीरका बाह्य और भीतरी भागको विशाल और लघु प्रतिमाएँ उकेरकर एक विशाल देवालय बना दिया गया, उन नरेशोंकी जैन धर्मके प्रति उत्कट श्रद्धा और अपने भट्टारक गुरुओंके प्रति उनकी निश्छल भक्तिमें सन्देह नहीं किया जा सकता। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि ये नरेश अन्य धर्मोंके प्रति असहिष्णु अथवा अनुदार रहे। निश्चय ही वे उदार शासक थे और सभी धर्मोंका समान आदर करते थे। धर्म-श्रद्धा उनके व्यक्तिगत जीवन तक सीमित थी किन्तु शासनकी नीतिमें समस्त धर्म और प्रजा उनके लिए समान थे।

(२) गोपाचल पीठकी भट्टारक-परम्परा एवं वे भट्टारक, जिनकी प्रेरणासे अथवा जिनके द्वारा यहाँ मूर्ति-प्रतिष्ठाएँ हुईं। यहाँके मूर्तिलेखोंमें यहाँकी भट्टारक-परम्परा इस प्रकार मिलती है—"श्री काष्ठासंघे माथुरान्वये भट्टारक श्रीगुणकीर्तिदेवास्तत्पट्टे श्री यशकीर्तिदेवास्तत्पट्टे

श्री मलयकीर्ति देवास्ततो भट्टारक गुणभद्रदेवः।" इनमें भट्टारक गुणकीर्ति महाराज वीरमदेव, गणपतिदेव और डूंगरसिंहके शासनकालमें थे। इन भट्टारकजीके प्रति इन नरेशों—विशेषतः डूंगरसिंहकी अत्यन्त भक्ति थी। इन भट्टारकजीके सम्पर्क और उपदेशोंके कारण ही डूंगरसिंहकी रुचि जैन धर्मकी ओर हो गयी। इन्हींकी प्रेरणा और प्रभावके कारण डूंगरसिंहके शासनकालमें गोपाचलपर अनेक मूर्तियोंका उत्खनन हुआ। इसी प्रकार कीर्तिसिंहके शासनकालमें भट्टारक गुणभद्रके उपदेशसे अनेक मूर्तियोंका निर्माण एवं प्रतिष्ठा हुई। उरवाही द्वारके मूर्ति-समूहमें चन्द्रप्रभकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा इन्हीं गुणभद्रके उपदेशसे हुई थी। अन्य भी कई मूर्तियाँ इनकी प्रेरणासे प्रतिष्ठित की गयीं। भट्टारक महीचन्द्रने एक पत्थरकी बावड़ीके गुफा-मन्दिरकी प्रतिष्ठा करायी थी। भट्टारक सिंहकीर्तिने बावड़ी मूर्ति-समूहकी पार्श्वनाथ प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करायी। महाराज गणपतसिंहके शासनकालमें मूलसंघ नन्दी तटगच्छ कुन्दकुन्द आम्नायके भट्टारक शुभचन्द्रदेवके मण्डलाचार्य पण्डित भगवतके पुत्र खेमा और धर्मपत्नी खेमादेने धातुकी चौबीसी मूर्तिकी प्रतिष्ठा करायी थी (संवत् १४७९ वैशाख सुदी ३ शुक्रवार)। यह मूर्ति आजकल नया मन्दिर लश्करमें विराजमान है। इस प्रकार भट्टारकों द्वारा या उनके उपदेशसे ही गोपाचलकी समस्त मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा हुई थी।

(३) अनेक मूर्तिलेखोंमें प्रतिष्ठाचार्यके रूपमें पण्डितवर्य रइधूका नाम आता है। अपभ्रंश भाषाके मूर्धन्य कवियोंमें रइधूका एक विशिष्ट स्थान है। इनका जो कुछ परिचय उपलब्ध होता है, वह इनके साहित्यसे ही होता है। इनका समय विक्रम सं. १४५०–१५४६ निश्चित किया गया है। वे संघाधिप देवरायके पौत्र और हरिसिंहके पुत्र थे। इनकी माताका नाम विजयश्री था। उनकी जाति पद्मावती पुरवाल थी। वे किस स्थानके निवासी थे, वे विवाहित थे या अविवाहित, यह उनके किसी ग्रन्थकी प्रशस्तिसे प्रकट नहीं होता। बलभद्रचरित्र (पद्मपुराण) की अन्तिम प्रशस्तिके १७वें कड़वकसे यह अवश्य ज्ञात होता है कि उनके दो भाई और थे, जिनके नाम थे बाहोल और माहणसिंह। इसी ग्रन्थकी आद्य प्रशस्तिके चतुर्थ कड़वकके अनुसार रइधूके गुरुका नाम आचार्य ब्रह्मश्रीपाल था जो भट्टारक यशःकीर्तिके शिष्य थे। यद्यपि उन्होंने यशोधरचरित आदि ग्रन्थोंमें कई स्थानोंपर भट्टारक यशःकीर्ति और भट्टारक कमलकीर्तिका उल्लेख गुरुके रूपमें किया है, किन्तु ये उल्लेख केवल श्रद्धावश ही किये गये हैं। वे भट्टारकीय पण्डित तो थे ही, अतः वे सभी भट्टारकोंको अपना गुरु मानते थे।

ग्वालियरमें कविवर नेमिनाथ और वर्धमान जिनालयमें रहकर साहित्यसृजन करते थे। वे अल्प समयमें ही अपनी दिव्यप्रतिभा, अगाध वैदुष्य, उच्च कोटिकी रचनाओं और अपने मधुर स्वभावके कारण जन-जनके लोकप्रिय कवि बन गये। उन दिनों गोपाल दुर्गके शासक महाराज डूँगरसिंह थे, जो विद्यारसिक और जैनधर्मके परम श्रद्धालु थे। उनके कानोंमें भी इस महान् लोक-कविका यशोगान पहुँचा। उन्होंने कविवरको आदरसहित दुर्गमें बुलाया। महाराज कविवरके व्यक्तित्व और प्रतिभासे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने कविवरसे दुर्गमें रहकर उसे ही अपनी साहित्य-साधनाका केन्द्र बनानेका अनुरोध किया। कविवरने उसे स्वीकार कर लिया और वहीं रहकर साहित्य-सृजन और प्रतिष्ठा-कार्य करने लगे।[1] यह क्रम महाराज डूँगरसिंहके पश्चात् उनके पुत्र महाराज कीर्तिसिंहके शासनकालमें भी चलता रहा।

कविवरने ३० से अधिक ग्रन्थोंका प्रणयन किया था, जिनमें-से २४ ग्रन्थ उपलब्ध हो चुके हैं।

१. गोवग्गिरिदुग्गम्मि णिवसंतउ बहुसुहेण तहिं—सम्मइजिणचरिउ १।३।१०

उनकी भाषा सन्धिकालीन अपभ्रंश है, किन्तु कुछ ग्रन्थ प्राकृत एवं हिन्दी तथा कुछ पद्य संस्कृतके भी उपलब्ध होते हैं।

कविवर रइधूके व्यक्तित्वका एक दूसरा रूप भी था। वह था प्रतिष्ठाचार्यका। उन्होंने अपने जीवनमें कितनी मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करायी, यह तो नहीं कहा जा सकता; किन्तु उन्होंने ग्वालियर दुर्ग में तथा अन्य नगरोंमें भी अनेक मूर्तियों की प्रतिष्ठा करायी थी, यह बात कविवरकी ग्रन्थ-प्रशस्तियों एवं मूर्ति-लेखोंसे ज्ञात होती है। उरवाही द्वारके मूर्ति-समूहमें भगवान् आदिनाथकी ५७ फुट ऊँची मूर्ति तथा चन्द्रप्रभ भगवान्‌की विशाल मूर्तिके लेखोंमें पण्डितवर्य रइधू द्वारा प्रतिष्ठित होना बताया है। अन्य सभी मूर्तिलेख अब तक नहीं पढ़े गये, अन्यथा यह पता चल जाता कि दुर्गमें कितनी मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा रइधूने करायी थी। कविवरने 'सम्मत्तगुणणिहाणकव्व', 'सम्मइजिणचरिउ' आदि काव्योंमें कई मूर्ति-निर्माताओं और प्रतिष्ठाकारकोंका उल्लेख किया है।

एक अभिलेखके अनुसार कविवर रइधूने चन्द्रपाट नगर (वर्तमान चन्दवार—फीरोजाबादके पास) में चौहानवंशी नरेश रामचन्द्र और युवराज प्रतापचन्द्रके शासनकालमें अग्रवालवंशी संघाधिपति गजाधर और भोला नामक प्रतिष्ठाकारकोंके अनुरोधपर भगवान् शान्तिनाथके बिम्बकी प्रतिष्ठा करायी थी।[1]

कविवर के समयमें ग्वालियर दुर्गमें जैन मूर्तियोंका इतना अधिक निर्माण हुआ, जिन्हें देखकर उन्हे यह लिखना पड़ा—

अगणिय अण पडिम को लक्खइ। सुरगुरु ताहृ गणण जइ अक्खइ॥

सम्मत्त. १।१३।५

इस पद्यमें कविवरने गोपाचलकी जैन मूर्तियोंको अगणित कहा है। कविवरकी विद्वत्ता, राजसम्मान और लोकप्रियताको देखकर यह कल्पना करना असंगत नही प्रतीत होता कि यहाँकी अधिकांश मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा उन्हीके हाथो हुई थी।

(४) मूर्ति-निर्माता और प्रतिष्ठाकारक—कविवर रइधूके ग्रन्थोंमे कुछ ऐसे व्यक्तियोंका नामोल्लेख आया है, जिन्होने मूर्तियोंका निर्माण और उनकी प्रतिष्ठा गोपाचल दुर्गपर करायी। उनमे-से कुछ नाम ये हैं—संघवी कमलसिंह, खेल्हा ब्रह्मचारी, असपति साहू, संघाधिप नेमदास आदि।

संघवी कमलसिंह—इन्हे कविवर रइधूने गोपाचलका तीर्थ-निर्माता कहा है। इन्हीकी प्रेरणासे कविवरने 'सम्मत्त गुण णिहाण' काव्यकी रचना की थी। इस काव्यकी प्रशस्तिमे संघवीका परिचय दिया गया है। इसके अनुसार इनका कुल अग्रवाल और गोत्र गोयल था। इनके पिताका नाम क्षेमसिंह और माताका नाम निउरादे था। इनकी पत्नीका नाम सरासइ और पुत्रका नाम मल्लिदास था। इन्होंने भगवान् आदिनाथकी ११ हाथ ऊँची प्रतिमाका निर्माण और प्रतिष्ठा महाराज डूँगरसिंहके राज्य-कालमें प्रार्थना करके रइधूसे करवायी थी। उस प्रतिमाकी प्रशंसा करते हुए कविवर लिखते हैं—

जो देवहिदेव तित्थंकरु, आइणाहु तित्थो य सुहंकरु।
तहु पडिमा दुग्गइणिण्णासणि, जा मिच्छत्त गिरिंद सरासणि॥
जा पुणु भवह-सुहगइ सासणि, जा महिरोय सोय दुहु णासणि।
सा एयारहकर अविहंगी, कारावियणिरुवम अरतुंगी॥

[1] प्राचीन जैन लेख संग्रह—बा० कामताप्रसाद द्वारा सम्पादित।

इस प्रशस्तिमें भगवान् आदिनाथकी जिस प्रतिमाका उल्लेख किया गया है, वह आदिनाथकी उस प्रतिमासे भिन्न प्रतीत होती है जो ५७ फुट ऊँची है। इसके दो कारण हैं—प्रथम तो दोनों प्रतिमाओंके आकारमें अन्तर है, एक ५० फुटकी है तो दूसरी १६॥ फुट की। दूसरा कारण यह है कि बड़ी मूर्तिके लेखमें प्रतिष्ठाका काल संवत् १४९७ दिया गया है, जबकि प्रशस्तिमें उल्लिखित प्रतिमा इससे पूर्वकी है क्योंकि उक्त ग्रन्थ (सम्मत्त गुणणिहाण) की रचना[1] संवत् १४९२ में हो चुकी थी। अतः यह प्रतिमा इससे पूर्वकी होनी चाहिए। हाँ, बड़ी मूर्तिके प्रतिष्ठाकारक भी उक्त संघवी ही हैं। यह बात तो उसके मूर्ति-लेखसे भी सिद्ध होती है। वास्तवमें संघवीजीने एकाधिक मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करायी थी और वे अन्य मूर्ति-निर्माताओं और प्रतिष्ठाकारकोंको पूर्ण सहयोग देते थे।

खेल्हा ब्रह्मचारी—इनके अनुरोध और भट्टारक यशःकीर्तिके आदेशपर कविवरने 'सम्मइजिणचरिउ' ग्रन्थकी रचना की थी। इस ग्रन्थकी प्रशस्तिमें खेल्हाके वंशका विस्तृत परिचय दिया है। उससे ज्ञात होता है कि वे हिसारके अग्रवालजातीय गोयल गोत्रीय साहू तोसउके ज्येष्ठ पुत्र थे। उनका विवाह तेजा साहूकी पुत्री क्षेमीके साथ हुआ था। किन्तु सन्तान-लाभ न होनेके कारण इन्होंने अपने भतीजे हेमाको गोद ले लिया और गृहस्थीका सब भार उसे सौंपकर ब्रह्मचर्य-व्रत ले लिया। उसी समयसे वे ब्रह्म खेल्हा कहलाने लगे। उन्होंने ग्वालियर दुर्गमें चन्द्रप्रभ भगवान्‌की मूर्तिका निर्माण कराया, संघवी कमलसिंहके सहयोगसे शिखरबन्द मन्दिरका निर्माण और मूर्ति-प्रतिष्ठाका कार्य सम्पन्न किया। इस सम्बन्धमे कविवरने लिखा है—

अम्हहं पसाएण भव दुह-कयंतस्स, ससिपह जिणेदंस्स पडिमा विसुद्धस्स।
काराविया मई जि गोवायले तुंग, उड्डुचाविणामेण तित्थम्मि सुहसंग॥

असपति साहू—इनके पिता महाराज डूँगरसिंहके अमात्य थे। कुछ विद्वानोंका मत है कि वे खाद्य-मन्त्री थे। साहू असपति भी सम्भवतः महाराज कीर्तिसिंहका मन्त्री या सेनापति था। अपने व्ययसे तीर्थयात्रा-संघ निकालनेके कारण इसे संघपतिकी उपाधि प्राप्त हुई थी। इसने अनेक जैन मूर्तियों और मन्दिरोंकी प्रतिष्ठा करायी थी। कविवरने इनकी प्रशंसा करते हुए लिखा है—

पुणु वीयउ णंदणु सकियच्छे। रज्जकज्जधुर धरणसमच्छे।
संघाहिउ असपत्ति असंकिउ। ससिपहकरणिम्मल जस अंकिउ॥
णिरसियपावपडलणिउरंवर। जेण पइट्ठाविय जिणविंवइ॥
—सावयचरिउ ६।२६।६-८

संघाधिप नेमदास—कविवरने संघाधिप नेमदासकी प्रेरणासे 'पुण्णासव कहाकोस'की रचना की थी। उस ग्रन्थकी प्रशस्तिमे कविवरने नेमदासका परिचय देते हुए उसकी बड़ी प्रशंसा की है। उसके अनुसार नेमदास योगिनीपुर (दिल्ली) के निवासी साहू तोसउके चार पुत्रोंमे-से ज्येष्ठ पुत्र थे। उन दिनों चन्द्रवाड़नगर बहुत प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र था। अन्य नगरोंके अनेक व्यापारी व्यापारके निमित्त वहाँ आते-जाते थे। अनेक व्यापारी तो स्थायी रूपसे वहीं बस गये थे। नेमदास भी वहीं आकर रहने लगे और उन्होंने वहाँ व्यापारमें अपार धन कमाया। वे अत्यन्त उदार और धर्मपरायण व्यक्ति थे। उन्होंने धातु, पाषाण, विद्रुम और रत्नोंकी अनेक

१. चउदह सय वाणउ उत्तरालि, वरिसइ गय विक्कमराय कालि।

जिनमूर्तियाँ बनवायीं और एक विशाल जिनालय बनवाकर उसमें इन्हें प्रतिष्ठित किया। वहाँके नरेश चौहानवंशी प्रतापरुद्रने उनका बड़ा सम्मान किया था। सम्भवत: व्यापारिक कार्यसे वे ग्वालियर भी आते-जाते थे। वहाँ संघवी कमलसिंहके माध्यमसे वे कविवर रइधूके सम्पर्कमें आये। धीरे-धीरे यह सम्पर्क प्रगाढ़तर होता गया। कविवरके आदेश या उपदेशसे उन्होंने ग्वालियर दुर्गमें भी मूर्ति-प्रतिष्ठा करायी। 'पुण्णासव कहाकोस'में कविवरने इस बातका उल्लेख इस प्रकार किया है—

> भो रइधू बुह चड्ढियपमोय।....
> संसिद्ध जाइ तुहु परममित्तु। तउ वयणामियपाणेण तित्तु॥
> पइ किय पइट्ठमहु सुहमणेण। जाजयपूरिय धणकंचणेण॥
> पुणु तुव उवएसे जिणविहारु। काराविउ मइ दुरियावहारु॥१।६।८–११

अर्थात् हे बुद्धिमान रइधू! मेरा आपके प्रति अत्यन्त प्रमोद है। तुम मेरे परममित्र हो। आप जो कहिये, मैं धन-कंचनसे आपको सन्तुष्ट करूँगा। आपने बड़े हर्षसे जिन-बिम्ब-प्रतिष्ठा की है। तुम्हारे उपदेशसे मैंने जिन-विहार (मन्दिर) का निर्माण कराया है। तुमने मेरे पापोंका क्षय कराया है।

संघाधिप कुशराज—ये ग्वालियरके गोलाराडान्वयी सेउ साहूके पुत्र थे। इनकी प्रेरणासे कविवर रइधूने 'सावयचरिउ' ग्रन्थकी रचना की थी। इन्होंने महाराज कीर्तिसिंहके शासन-कालमें विशाल जिन-मन्दिरका निर्माण कराया।

कुमुदचन्द्र—ये गोलालारे जातीय थे। इन्होंने संवत् १४५८ में बावड़ीकी ओर भट्टारक सिंहकीर्ति द्वारा पार्श्वनाथ-मूर्तिकी प्रतिष्ठा करायी थी।

साहू पद्मसिंह—ये जैसवाल वंशके उल्हा साहूके ज्येष्ठ पुत्र थे। इन्होंने २४ जिनालयोंका निर्माण कराया था तथा एक लाख ग्रन्थ लिखवाकर साधुओं, श्रावकों एवं मन्दिरोंको भेंट किया था।

मंत्री कुशराज—ये जैसवाल वंशके भूषण थे और महाराज वीरमदेवके महामन्त्री थे। इनके पिताका नाम जैनपाल और माताका नाम लोणा था। इनके पाँच भ्राता थे। इन्होंने भट्टारक विजयकीर्तिके उपदेशसे चन्द्रप्रभ भगवान्का मन्दिर बनवाया था।

संघपति सहदेव—कविवर रइधूने 'सम्मइ जिणचरिउ' में साहू सहजपालके पुत्र संघपति सहदेवके सम्बन्धमें लिखा है कि उन्होंने ग्वालियर दुर्गमें मूर्ति-प्रतिष्ठा करायी। तथा गिरनारकी यात्राका संघ चलाया और उसका सम्पूर्ण व्ययभार उठाया।

---

१. जिणबिंब अणेय विसुद्धबोह। णिम्मविवि दुग्गइ पहणिरोह॥
सुपइट्ठ काराविउ सुहमणेण। तित्थेसगोत्तु बंधियउ जेण॥ पुण्णासव. १।५।८–९
बहुविह धाउफलिहविद्दुममउ। काराबेप्पिणु अगणिय पडिमउ॥
पतिट्ठाविवि सुहु आवज्जिड। सिरितित्थेसरगोत्तु समज्जिउ॥पुण्णासव. १३।२।३-४

२. विज्जुल चंचलु लच्छी सहाउ। आलोइ विहिउ जिणधम्मभाउ॥
जिणगंथु लिहावउ लक्खु एकु। सावय लक्खा हारीति रिक्खु।
मुणि भोजन भुंजाविय सहासु। चउवीस जिणालय किउ सुभासु।
—जैन ग्रन्थ प्रशस्ति, सं. पृ. १४४

मुहम्मद गोसका मकबरा

यह ग्वालियर किलेके पास बना हुआ है। इस मकबरेका भी एक इतिहास है। ग्वालियर दुर्ग इब्राहीम लोदीके सूबेदार तातार खाँके अधिकारमें था। बाबरकी सेनाओंने दुर्गपर आक्रमण कर दिया। किन्तु किलेमें कैसे प्रवेश किया जाये, यह समस्या थी। मुगल सेनाने किलेके पास रहनेवाले एक फकीर शेख मोहम्मद गोसको मदद ली। एक बरसती रातमें किलेके प्रत्येक द्वारपर शेखने अपने शिष्योंको किसी प्रकार नियुक्त कर दिया। आधी रातको सेना किलेमें प्रवेश कर पायी। किलेपर मुगलोंका अधिकार हो गया। इस उपकारके कारण मुगल घरानेमें अकबरके समय तक इनका बड़ा सम्मान रहा। शेख ८० वर्षकी आयुमें मरे। उनकी मृत्युपर अकबरने उनका भव्य स्मारक बनवानेकी इच्छा व्यक्त की। स्मारक तुरन्त तैयार नही हो सकता था, अतः शवको पूर्वनिर्मित एक भव्य भवनमे दफना दिया गया। यह भवन जैन मन्दिर था जो अत्यन्त कलापूर्ण बना हुआ था। किन्तु बाबरके सैनिकोंने इसकी वेदियाँ, मूर्तियाँ आदि नष्ट कर दी थीं। उसी जैन मन्दिरको अकबरने शेख मुहम्मद गोसका मकबरा बना दिया। इसकी बनावटसे ही प्रतीत होता है कि यह मूलतः जैन मन्दिर था।

संग्रहालयमें जैन पुरातत्त्व

ग्वालियरका केन्द्रीय पुरातत्त्व संग्रहालय दुर्गके गूजरी महलमें स्थित है। गूजरी महल न केवल एक प्राचीन स्मारक ही है, अपितु वह स्थापत्य कलाका एक अनुपम उदाहरण भी है। इस महलके साथ एक प्रेम-कथानक जुड़ा हुआ है जो मध्यभारतमें बड़ा लोकप्रिय है। राजा मानसिंह-को शिकार खेलनेका बड़ा शौक था। एक दिन वे दुर्गके उत्तर-पश्चिममें स्थित 'राय' गाँवमे शिकार खेलते हुए पहुँच गये। गाँवमें एक जगह दो भैंसोंमे युद्ध हो रहा था। दोनों भयंकर क्रोधके कारण एक-दूसरेसे गुँथे हुए थे। दर्शकोका भारी शोर हो रहा था। कुछ गुजरियाँ सिरपर घड़े रखे हुए राह साफ होनेकी प्रतीक्षामे वहाँ खड़ी थी। किसीमे यह साहस नही था कि भैंसोको अलग कर दे। सहसा एक गूजरी आगे बढ़ी, घड़े उतारकर एक ओर रख दिये, भैंसोंके पास पहुँची और अपने बलिष्ठ हाथोंसे उनके सीग पकड़कर दोनोंको अलग कर दिया। राजा मानसिंह खड़े हुए देख रहे थे। वे एक नारीके इस अतुल साहस और शारीरिक बलको देखकर उसकी ओर आकर्षित हो गये। उसके सौन्दर्यने उसका मन हर लिया। राजाने गूजरीसे विवाहका प्रस्ताव किया। सुन्दरीके परिजन और पुरजन राजाका प्रस्ताव सुनकर गर्वसे फूल उठे। किन्तु गूजरी कन्या सहसा विवाहके लिए तैयार नही हुई। उसने एक शर्त पेश की—यदि राय ग्रामकी नदीसे महल तक हर समय जल पहुँचानेकी व्यवस्था कर दी जाये तो वह विवाह कर सकती है क्योकि राय ग्रामकी नदीके जलके कारण ही तो वह इतनी शक्तिवती है। राजाने यह शर्त स्वीकार कर ली। बम्बो द्वारा पानी लानेकी व्यवस्था कर दी गयी। विवाहके बाद गूजरीका नाम 'मृगनयना' रखा गया। उसके रहनेके लिए एक सुन्दर महल बनवाया गया। वह 'गूजरी महल' के नामसे विख्यात है तथा 'रानी सागर' इस बातका स्मरण दिलाता है कि राजा मानसिंहने अपनी प्यारी रानीके लिए जलकी विशेष व्यवस्था की थी।

इस संग्रहालयमे जो जैन पुरातत्त्व-सामग्री संग्रह की गयी है, वह प्रायः तीन स्थानों से—प्राचीन ग्वालियर, पधावली और भिलसा। ग्वालियरसे आयी मूर्तियाँ प्रायः तोमरवंशके शासन-काल (१५-१६वी शताब्दी) की हैं, कुछ ११-१२वीं शताब्दीकी हैं। एक पद्मासन मूर्ति, मूर्ति-लेखके अनुसार, महाराजाधिराज मानसिंहके शासनकालमें विक्रम सं. १५५२ में प्रतिष्ठित की

गयी थी। दूसरी मूर्ति पार्श्वनाथकी विक्रम सं. १४७६ की है। एक अन्य पार्श्वनाथकी मूर्ति ११-१२वीं शताब्दीकी है। ग्वालियरकी मूर्तियोंमें नेमिनाथ, धर्मनाथ और चन्द्रप्रभकी मूर्तियाँ हैं एवं चौमुखी मूर्तियाँ हैं। इनमें क्रमशः ऋषभनाथ, अजितनाथ, महावीर और पार्श्वनाथकी मूर्तियाँ हैं।

भिलसासे भी एक चतुर्मुखी प्रतिमा मिली है। उसमें भी मूर्तियोंका क्रम उपर्युक्त रीतिसे है। भिलसासे प्राप्त ऋषभदेवकी एक मूर्ति अपने अद्‌भुत केश-विन्यासके कारण विशेष उल्लेखनीय जान पड़ती है।

पधावलीकी मूर्तियोंमें आदिनाथ, धर्मनाथ, पद्‌मप्रभ, अजितनाथ और पार्श्वनाथकी मूर्तियाँ हैं। ये मूर्तियाँ पधावलीके पश्चिममें स्थित पहाड़ीसे लायी गयी थीं। ये सब १२-१४वीं शताब्दी की हैं।

ये सब मूर्तियाँ गूजरी महलके फाटकमें घुसते ही गैलरीमें रखी हैं, अथवा गैलरी नं. २० (जैनकक्ष) में सुरक्षित हैं। इन मूर्तियोंका क्रमिक विवरण इस प्रकार है—

१. पार्श्वनाथ—मूर्तिका सिर

२. पद्मासन प्रतिमा, अवगाहना ढाई फुट। ऊपर दोनों सिरोंपर दो पद्मासन अर्हन्त प्रतिमाएँ हैं। उनके नीचे दो देवियाँ वाद्य यन्त्र लिये हुए हैं। उनसे नीचे चमरवाहक हैं।

३—साढ़े चार फुट शिलाफलक पर दो खड्‌गासन तीर्थंकर-मूर्तियाँ हैं। सिरके ऊपर छत्र हैं। कोनोंपर आकाशचारी गन्धर्व हैं। भगवान्‌के हाथोंके पास दोनों ओर दो-दो चमरेन्द्र खड़े हैं। पाषाणका वर्ण कुछ हल्का पीला है।

४. दूसरे बरामदेमें—सहस्रकूट चैत्यालय।

५ सर्वतोभद्रिका प्रतिमाएँ पद्मासन मुद्रामें, अवगाहना चार फुट।

६. सर्वतोभद्रिका प्रतिमाएँ खड्‌गासन मुद्रामें। चारों कोनोंपर चमरवाहक।

७ पूर्वोक्त प्रतिमा-जैसी है। चमरवाहक नहीं है।

जैन कक्ष नं. २० में मूर्तियोंका क्रम इस प्रकार है—

१. सवा दो फुट ऊँची पद्मासन प्रतिमा। गरदनसे ऊपरका भाग नहीं है।

२. सर्वतोभद्रिका।

३. पद्मासनमुद्रामें सवा दो फुट उन्नत प्रतिमा पुष्पदन्त तीर्थंकरकी। परिकरमें ऊपर कोनोंपर गजारूढ़ इन्द्र, नभचारी देव और मध्यमें चमरेन्द्र।

४. तीर्थंकर मूर्तिका केवल पीठासन भाग है, शेष खण्डित है। मध्यमें बोधिवृक्ष बना हुआ है। उसके दोनों ओर खड़े हुए भक्त उसकी पूजा कर रहे हैं। उसके ऊपर दो पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। उनके दोनों ओर यक्ष और यक्षी खड़े हैं। मूर्तिलेखके अनुसार इस मूर्तिकी प्रतिष्ठा संवत् १५५२ ज्येष्ठ सुदी ९ सोमवारको सम्पन्न हुई थी।

५. खड्‌गासन मुद्रा में ७ फुट उन्नत तीर्थंकर प्रतिमा। परिकरमें आकाशचारी गन्धर्व और चमरेन्द्र।

६. ढाई फुट ऊँची पद्मासन मूर्ति। सिरके पीछे प्रभामण्डल है।

७. पंचबालयतिकी मूर्ति। मध्यमें खड्‌गासन पार्श्वनाथ है। ऊपर दो पद्मासन तथा नीचे दो खड्‌गासन मूर्तियाँ हैं। उनके दोनों ओर चमरवाहक हैं।

८. एक खण्डित मूर्ति केवल पद्मासन (पद्मोली) का भाग अवशिष्ट है। मूर्ति-लेखके अनुसार संवत् १४९२ में प्रतिष्ठित।

९. एक भव्य तीर्थंकर प्रतिमा। पद्मासन मुद्रामें अवगाहना साढ़े चार फुट। छत्र और भामण्डल कलापूर्ण है। दोनों ओर दो खड्गासन मूर्तियाँ हैं, किन्तु खण्डित हैं।

१०. सात फुट उन्नत, पद्मासन मुद्रामें तीर्थंकर मूर्ति छत्रत्रयी है। ऊपर दोनों कोनोंपर माला लिये हुए देव-देवियाँ बनी हुई हैं। दो खड्गासन तथा दोनों ओर दो-दो युगल मूर्तियाँ पद्मासन मुद्रा में। नृत्य-मुद्रामें चमरेन्द्र खड़े हैं। दोनों कोनोंपर यक्ष और यक्षी हैं। दो सिंह बने हुए हैं। शेष भाग खण्डित है।

११. भगवान् पार्श्वनाथकी ५ फुट ऊँची पद्मासन प्रतिमा। सिरपर फणावली, उसके ऊपर छत्र और भामण्डल सुशोभित हैं। ऊपर पार्श्वोंमें दोनों ओर गज बने हुए हैं। नीचे दोनों ओर दो-दो खड्गासन मूर्तियाँ हैं। अलंकरणमें हिरण और देवियाँ उत्कीर्ण हैं।

१२. पाँच फुटकी खड्गासन तीर्थंकर-प्रतिमा। उसके सिरके ऊपर छत्रत्रयी और पीछे भामण्डल सुशोभित हैं। ऊपर दोनों सिरोंपर नभचारी गन्धर्व हैं। उनके नीचे दोनों ओर एक खड्गासन और एक पद्मासन मूर्तियाँ विराजमान हैं। मूर्तिके दोनों किनारोंपर अलंकरण हैं।

१३. सवा दो फुट ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। सिरके पीछे भामण्डल सुशोभित है।

१४. सात फुटके एक शिलाफलकपर भगवान् ऋषभदेवकी खड्गासन मूर्ति है। उसके दोनों ओर चार खड्गासन मूर्तियाँ हैं। उनसे नीचे चमरवाहक चमर लिये हुए भगवान्की सेवामें खड़े हैं। पादपीठपर वृषभलांछन अंकित है।

१५. पाँच फुटके शिलाफलकपर पद्मासन प्रतिमा उत्कीर्ण है। बायी ओर ९ लघु पद्मासन मूर्तियाँ बनी हुई हैं, दायीं ओरका भाग खण्डित है। शिलाफलक भी टूटा हुआ है।

१६. भगवान् अजितनाथकी खड्गासन प्रतिमा है। बायी ओर तीन लघु खड्गासन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। दूसरी ओरका भाग खण्डित है। पादपीठपर गजका लांछन अंकित है।

१७. पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमाके ऊपर छत्र हैं। छत्रके ऊपर ३ पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। दायीं और बायी ओर २-२ पद्मासन और १-१ खड्गासन प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं।

१८. सर्वतोभद्रिका प्रतिमा। एक स्तम्भमें चारों दिशाओंमें चार पद्मासन प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

१९. किसी मूर्तिका ऊपरका भाग, जिसमें केवल छत्र मध्यमें और दो हाथी दोनों सिरोंपर बने हुए है।

२०. एक पद्मासन प्रतिमा। सिर कटा हुआ है।

२१. कक्ष नं. २० के सामने मैदानमें एक पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति रखी हुई है। उसके सिरके पीछे भामण्डल और सिरके ऊपर छत्रत्रयी है। दोनों पार्श्वोंमें दो पद्मासन प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। उनसे नीचे चमरेन्द्र चमर लिये हुए खड़े हैं। मूर्ति पर भव्य अलंकरण किया हुआ है।

कुछ मूर्तियाँ ऐसी हैं, जो अन्य कक्षोंमें रखी हुई हैं। वे विवादास्पद कही जा सकती हैं। उनमेंसे एक है वदोह (विदिशा जिला) से प्राप्त तीर्थंकर माताकी मूर्ति। माता पर्यंकपर लेटी हुई हैं। उनके बगल में सद्यःजात बाल तीर्थंकर लेटे हुए हैं। तीर्थंकर माताके सिरके पीछे भामण्डल है। उनके निकट इन्द्र द्वारा माताकी सेवाके लिए भेजी गयी चार देवियाँ खड़ी हैं। उनके हाथोंमें चामर आदि वस्तुएँ हैं। ये चार देवियाँ कौन थीं अथवा क्या कर रही थीं, इसका समाधान हमें 'हरिवंश पुराण' से इस भाँति हो जाता है—

सहैव रुचकप्रभारुचकया तदाद्याभया परा च रुचकोज्ज्वला सकलविद्युदग्रेसराः।
दिशां च विजयादयो युवतयश्चतस्रो वरा जिनस्य विदधुः परं सविधिजातकर्मश्रिताः॥ ३८।३७

अर्थात् विद्युत्कुमारियोंमें प्रमुख रुचकप्रभा, रुचका, रुचकाभा और रुचकोज्ज्वला ये चार देवियाँ तथा दिक्कुमारियोंमें प्रमुख विजया आदि चार देवियाँ जिनेन्द्रदेवके जातकर्म करनेमें जुट गयीं।

मूर्तिको ध्यानपूर्वक देखनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसमें बनी हुई चार देवियाँ हरिवंश-पुराणमें वर्णित चार विद्युत्कुमारियाँ हैं अथवा चार दिक्कुमारियाँ हैं। प्रतीकके रूपमें मूर्तिमें चार देवियाँ अंकित कर दी गयी हैं। निश्चय ही यह तीर्थंकर माता तथा सद्यःजात बालक तीर्थंकरकी मूर्ति है तथा देवियाँ माताका जातकर्म करके माताकी सेवामें खड़ी हुई हैं।

यह मूर्ति बदोहके गडरमल मन्दिरसे प्राप्त हुई थी। यह मन्दिर ९वीं शताब्दीका अनुमानित किया जाता है। मुस्लिम आक्रान्ताओंने इस मन्दिरका जीर्णोद्धार करवा लिया। मूलतः यह जैन मन्दिर रहा है और अब भी इसमें जैन मूर्तियाँ हैं।

किन्तु कोई विद्वान् आग्रहवश इसे देवकी और कृष्णकी मूर्ति मानते हैं। तथा यह आक्षेप भी करते हैं कि इस मन्दिरपर जैनोंने अधिकार कर लिया तथा बादमें अपनी मूर्तियाँ वहाँ रख दी। किन्तु उन्होंने अपनी मान्यताके समर्थनमें कोई प्रमाण नहीं दिया। उनकी निराधार कल्पना-को केवल उनके आग्रहके कारण स्वीकार करनेमें किसी भी विवेकशील व्यक्तिको कठिनाई होगी। उनके आग्रहके एकाधिक उदाहरण और भी हैं। जैसे ग्यारसपुरका मालादे मन्दिरपर जैनोंने अधिकार कर लिया है और उसमें अपनी मूर्तियाँ रख दी हैं। जैन यक्षी अम्बिकाके सम्बन्धमें भी यही बात है। अस्तु।

शिलालेख

शिलालेखोंकी दृष्टिसे यह संग्रहालय अत्यन्त समृद्ध है। इसमें कुछ जैन शिलालेख भी हैं जो ऐतिहासिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। एक शिलालेख उदयगिरि (जिला विदिशा) गुहासे उपलब्ध हुआ है जो गुप्त संवत् १०६ (सन् ४२५ ई.) का है। इसमें उल्लेख है कि कुरुदेशके शंकर स्वर्णकारने कर्मारगण (स्वर्णकार संघ) के हितके लिए गुहा मन्दिरमें तीर्थंकर पार्श्वनाथ-की प्रतिमाका निर्माण कराया।

एक शिलालेख १३वीं शताब्दीका है। यह यज्वपाल वंशके असल्लदेवका नरवर शिलालेख है जो विक्रम सं. १३१९ (सन् १२६२) का है। इसमें गोपगिरि दुर्गके माथुर कायस्थ परिवारकी वंशावली दी गयी है। सर्वप्रथम भुवनपालका नाम है जो धार-नरेश भोजका मन्त्री था। उसने जैन तीर्थंकरके मन्दिरका निर्माण कराया, नागदेवने उसमें तीर्थंकर प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करायी और यह शिलालेख वास्तव्य कायस्थ (श्रीवास्तव) ने लिखा।

एक अन्य शिलालेख उपर्युक्त असल्लदेवके पुत्र गोपालदेव नरवरका है जिसमें आशादित्य कायस्थ द्वारा एक वापिका बनवाने और वृक्ष लगाये जानेका उल्लेख है।

ग्वालियरमें तोमर राजवंशके कालमें जैनधर्म

तोमर राजवंश प्राचीन भारतीय राजवंशोंमें अत्यन्त प्रतिष्ठित राजवंश माना जाता है। तोमरवंशने अपनी वीरता, साहस और सूझबूझसे भारतीय इतिहासपर उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। तोमरवंशके राजा अनंगपालने दिल्लीको बसाया था, यह एक ऐतिहासिक तथ्य है, जिसका समर्थन दिल्ली संग्रहालयमें उपलब्ध निम्नलिखित श्लोकसे होता है—

देशोऽस्ति हरियानाख्यः पृथिव्यां स्वर्गसन्निभः।
ढिल्लिकाख्यपुरी तत्र तोमरैरस्ति निर्मिता ॥

यहाँ तोमरोंसे अभिप्राय अनंगपालसे है। इस सम्बन्धमें विस्तृत विवेचन इस ग्रन्थके भाग १ में किया जा चुका है।

इसी तोमरवंशकी एक शाखा ग्वालियरमें शासन करती थी। इस वंशके शासनकालमें जैनधर्मको प्रगति करनेका पूर्ण अवसर मिला। जैनधर्मके प्रति तोमरवंशके शासकोंका व्यवहार उदार और सहानुभूतिपूर्ण रहा। इस वंशके कई राजा तो जैनधर्मके अनुयायी भी थे। कई राजाओंके मन्त्री जैन थे। यहाँके राजाओंपर भट्टारकोंका बड़ा प्रभाव था और वे उनके शिष्य थे। इस कारण इस कालमें ग्वालियरमें अनेक मन्दिरों और मूर्तियोंका निर्माण हुआ। अनेक प्रतिष्ठोत्सव हुए तथा अनेक जैन ग्रन्थोंका प्रणयन और प्रतिलिपि हुई।

महाराज वीरमदेवका मन्त्री कुशराज था। वह जैसवाल जैन वंशमें उत्पन्न हुआ था। इस मन्त्रीने ग्वालियरमें चन्द्रप्रभ जिन मन्दिर बनवाया था और उसका प्रतिष्ठोत्सव बड़े समारोहके साथ किया था।

कुशराजने पद्मनाभनामक एक कायस्थ विद्वान्से यशोधरचरित्र नामका एक काव्य ग्रन्थ लिखनेका अनुरोध किया था। पद्मनाभने उनके अनुरोधको स्वीकार करके भट्टारक गुणकीर्तिके संरक्षणमें इस संस्कृत काव्य-ग्रन्थकी रचना की।

वीरमदेवके राज्यकालमें यहाँ अनेक ग्रन्थोंकी प्रतिलिपियाँ भी हुईं जो अब भी विभिन्न शास्त्र-भण्डारोंमें मिलती हैं। जैसे सं. १४६० में गोपाचलमें साहू वरदेवके चैत्यालयमें भट्टारक हेमकीर्तिके शिष्य मुनि धर्मचन्द्रने सम्यक्त्व कौमुदीकी प्रति आत्म-पठनार्थ लिखी, यह तेरापन्थी मन्दिर जयपुरके शास्त्र-भण्डारमें सुरक्षित है।

सं. १४६८ में भट्टारक गुणकीर्तिकी आम्नायमें साहू मरुदेवकी पुत्री देवसिरोने 'पंचास्तिकाय' टीकाकी प्रति करवायी, जो कारंजाके शास्त्रभण्डारमें है।

सं. १४६९ में आचार्य अमृतचन्द्र कृत प्रवचनसारकी तत्त्वदीपिका टीका लिखी गयी थी।

संवत् १४७९ में जौतुको श्री सरोने षट्कर्मोपदेशकी प्रति लिखवाकर अर्जिका विमलमती-को पूजा-महोत्सवके साथ समर्पित की। यह प्रति आमेरके शास्त्र-भण्डारमें विद्यमान है।

महाराज डूंगरसिंहकी जैनधर्ममें पूर्ण आस्था थी। वह कुशल राजनीतिज्ञ, अप्रतिम साहसी और पराक्रमी योद्धा था। नरवरको जीतकर उसने अपने राज्यका बहुत विस्तार कर लिया था। नरवरके दुर्गमें उसने अपनी विजयके उपलक्ष्यमें जयस्तम्भ भी बनवाया। गोपाचल दुर्गकी ऊबड़-खाबड़ चट्टानोंमें सम, सुडौल और विशाल प्रतिमाओंका निर्माण उसके शासनकालमें प्रारम्भ हुआ। यह सिलसिला उसके पुत्र कीर्तिदेवके शासनकालके अन्त तक चला।

इनके शासनकालमें अनेक नये ग्रन्थोंका निर्माण हुआ। भट्टारक यशःकीर्तिने संवत् १४९७ में पाण्डवपुराण, १५०० में हरिवंशपुराणकी रचना अपभ्रंश भाषामें की। जिनरात्रिकथा, रविव्रतकथा और चन्द्रप्रभ चरित आदि ग्रन्थ भी इन्होंने बनाये। स्वयंभूदेवके हरिवंशपुराणकी जीर्ण-शीर्ण प्रतिका भी उद्धार इन्होंने कराया।

अपभ्रंश भाषाके महाकवि रइधू ग्वालियरके ही रहनेवाले थे। महाराज डूंगरसिंह और उनके पुत्र महाराज कीर्तिसिंह दोनों ही नरेश इस महान् कविके भक्त थे। रइधूने अपनी रचनाओं-में जो प्रशस्तियाँ लिखी हैं, वे ऐतिहासिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उनमें उन्होने ग्वालियर, पद्मावती, उज्जयिनी, दिल्ली, हिसार आदि स्थानोंकी तत्कालीन राजनैतिक, आर्थिक और

सामाजिक परिस्थितियाँ भी दी हैं; अपने समकालीन राजाओं, सेठों, कवियों और भट्टारकोंके भी परिचय दिये हैं।

महाराज कीर्तिसिंहके शासनकालमें संवत् १५२१ में जैसवालकुलभूषण उल्हा साहुके ज्येष्ठ पुत्र पद्मसिंहने २४ जिनालयोंका निर्माण कराया और उनकी प्रतिष्ठा करायी। संवत् १५३१ में इन्होंने महाकवि पुष्पदन्तके आदिपुराणकी प्रतिलिपि करायी। इस ग्रन्थके दानकर्ताकी प्रशस्ति-में लिखा है कि उन्होंने ग्रन्थोंको एक लाख प्रतिलिपियाँ कराकर विभिन्न मन्दिरोंमें भेजीं।

भ. गुणभद्रने यहाँके श्रावकोंकी प्रेरणासे अनेक कथाओंका निर्माण कराया था।

संवत् १५२१ में यहाँके एक लुहाड़िया गोत्रीय खण्डेलवाल जैनने 'पउमचरिउ'की प्रतिलिपि करायी।

महाराज डूंगरसिंहका शासन संवत् १४८१ से १५१० तक रहा तथा महाराज कीर्तिसिंह-का राज्यकाल संवत् १५१० से १५३६ तक है। वस्तुतः ग्वालियरमें जैनधर्मका यह स्वर्ण-काल माना जाता है।

इनके पश्चात् महाराज मानसिंहके राज्यकालमें कुछ सांस्कृतिक कार्य होनेके उल्लेख प्राप्त होते हैं। संवत् १५५८ में गोपाचल दुर्गमें भट्टारक सोमकीर्ति और भट्टारक विजयसेनके शिष्य ब्रह्मकलामें षट्कर्मोपदेशकी प्रतिलिपि करायी। इसी संवत्में नागकुमार चरितकी प्रति करायी गयी। संवत् १५६९ मे गोपाचलमें श्रावक सिरीमलके पुत्र चतरुने ४४ पद्योंमें नेमीश्वर गीतकी रचना की।

इस प्रकार तोमर-वंशके राज्य-कालमें गोपाचलमें जैनोंके विविध सांस्कृतिक कार्य हुए। इस कालमें निर्मित मूर्तियोंके लेखोंमें गोपाचलके नरेशोंका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। जिन ग्रन्थोंका इस कालमें निर्माण हुआ या प्रतिलिपि हुई, उनकी प्रशस्तिमें भी इन नरेशोंका उल्लेख सम्मानके साथ किया गया है।

ग्वालियरमें भट्टारक-पीठ

ग्वालियर काष्ठा संघ माथुर गच्छका भट्टारक-पीठ था। ग्रन्थ-प्रशस्तियों और मूर्ति-लेखोंमें इस संघके साथ काष्ठासंघ माथुरान्वय बलात्कार गण सरस्वती गच्छका प्रयोग मिलता है। ग्वालियरके भट्टारकोंका उल्लेख कविवर रइधूके ग्रन्थों, मूर्तिलेखों और पट्टावलियोंमें प्राप्त होता है। उनसे प्रतीत होता है कि इस शाखाका प्रारम्भ माधवसेनसे हुआ। भट्टारक माधवसेनके दो शिष्य थे—उद्धरसेन और विजयसेनकी शिष्य-परम्परामें देवसेन, विमलसेन, धर्मसेन, भावसेन, सहस्रकीर्ति, गुणकीर्ति, यशःकीर्ति, मलयकीर्ति, गुणभद्र और गुणचन्द्र भट्टारक हुए।

भट्टारक गुणचन्द्रके शिष्य ब्रह्ममण्डनने संवत् १५७६ में सोनपतमें इब्राहीम लोदीके शासन-कालमें स्तोत्रादिका एक गुटका लिखा था। उसकी प्रशस्तिमें अपने गुरुओंकी पट्टावलीका उल्लेख इस प्रकार किया है—

'स्वस्तिश्री विक्रमार्कं संवत्सर १५७६ जेठ वदि १ पडिवा शुक्र दिने कुरुजांगले सुवर्ण-पथनाम्नि सुदुर्गे सिकंदरसाहि तत्पुत्र सुल्तान इब्राहिम राज्य प्रवर्तमाने काष्ठासंघे माथुरगच्छे पुष्करगणे आचार्य श्री माहवसेनदेवाः तत्पट्टे भ. उद्धरसेन देवाः तत्पट्टे भ. देवसेन देवाः तत्पट्टे भ. विमलसेन देवाः तत्पट्टे भ. धर्मसेन देवाः तत्पट्टे भ. भावसेन देवाः तत्पट्टे भ. सहस्रकीर्तिदेवाः तत्पट्टे भ. गुणकीर्तिदेवाः तत्पट्टे भ. यशःकीर्तिदेवाः तत्पट्टे भ. मलयकीर्तिदेवाः तत्पट्टे भ. श्री गुणभद्रदेवाः तत्पट्टे भ. श्रीगुणचन्द्र तच्छिष्य ब्रह्मांडण एषां गुरुणामाम्नाये....'

इसी प्रकार माधवसेनके दूसरे शिष्य विजयसेनसे दूसरी परम्परा प्रारम्भ हुई। इस परम्परामें विजयसेन, नयसेन, श्रेयांससेन, अनन्तकीर्ति, कमलकीर्ति, क्षेमकीर्ति, हेमकीर्ति, कमलकीर्ति हुए। कमलकीर्तिके दो शिष्य थे—शुभचन्द्र और कुमारसेन। शुभचन्द्रने अपनी पीठ सोनागिरिमें स्थापित की। इनके शिष्य यशःसेन थे। कमलकीर्तिके दूसरे शिष्य कुमारसेनकी शिष्य-परम्परामें हेमचन्द्र, पद्मनन्दि, यशःकीर्ति हुए। यशःकीर्तिके पट्ट-शिष्य दो हुए—गुणचन्द्र और क्षेमकीर्ति। गुणचन्द्रके शिष्य सकलचन्द्र और उनके शिष्य महेन्द्रसेन हुए। यशःकीर्तिकी शिष्य-परम्परामें क्षेमकीर्ति और त्रिभुवनकीर्ति हुए। इनका पट्टाभिषेक हिसारमें हुआ। इनकी परम्परामें सहस्रकीर्ति, महीचन्द्र, देवेन्द्रकीर्ति, जगत्कीर्ति, ललितकीर्ति, राजेन्द्रकीर्ति और मुनीन्द्रकीर्ति हुए।

इन भट्टारकोंका अपने समयमें राजा और प्रजा दोनोंपर ही अद्भुत प्रभाव था। इन्होंने अनेक मन्दिरों और मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा की, अनेक भट्टारकोंने स्वयं शास्त्र लिखे तथा दूसरे विद्वानोंको प्रेरणा देकर शास्त्र लिखवाये, शास्त्रोंकी प्रतिलिपि करायी। इन भट्टारकोंमें-से जिन्होंने कुछ विशेष कार्य किये, उनका संक्षिप्त उल्लेख यहाँ किया जा रहा है—

विमलसेन—समय १४वी शताब्दीका उत्तरार्ध। वि. सं. १४१४ में इनके द्वारा प्रतिष्ठित एक पद्मासन धातु चौबीसी जयपुरके पाटौदी मन्दिरमें विराजमान है। सं. १४२८ में प्रतिष्ठित आदिनाथकी एक मूर्ति दिल्लीके नया मन्दिरमें विद्यमान है।

धर्मसेन—समय विक्रमकी १५वी शताब्दी। इनके द्वारा प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ, अजितनाथ और वर्धमान तीर्थंकरोंकी प्रतिमाएँ जैन मन्दिर हिसारमें विराजमान हैं।

गुणकीर्ति—इनके तप और चरित्रका प्रभाव तोमरवंशके शासकोंपर पड़ा और वे जैनधर्मकी ओर आकर्षित हुए। ये अत्यन्त प्रभावशाली थे। राजा डूंगरसिंहके शासनकालमें जैन मूर्तियोंके उत्कीर्णनका जो महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ, उसका श्रेय इन्ही भट्टारकको है।

यशःकीर्ति—ये गुणकीर्तिके लघुभ्राता और शिष्य थे। ये बड़े विद्वान् थे। इनकी रचनाओंमें पाण्डवपुराण, हरिवंशपुराण, आदित्यवारकथा और जिनरात्रिकथा मुख्य हैं। इन्होंने महाकवि स्वयम्भूके खण्डित और जीर्ण-शीर्ण हरिवंशपुराणका उद्धार ग्वालियरके पास पनिहार जिन चैत्यालयमें बैठकर किया था।

भट्टारक गुणभद्र—आप प्रकाण्ड विद्वान् थे। आपने लोगोंके आग्रहसे १५ कथाओंकी रचना की।

भानुकीर्ति—इनकी लिखी हुई रविव्रतकथा प्राप्त होती है।

कमलकीर्ति—इनके समयमे कविवर रइधूने चन्द्रवाड़में भगवान् चन्द्रप्रभ-मूर्तिकी प्रतिष्ठा की।

ग्वालियरमें जैन मन्दिर और वार्षिक मेले

ग्वालियर, लश्कर और मुरार इन तीन भागोंको मिलाकर ग्वालियर शहर कहलाता है। इनमें-से ग्वालियरमें ४ मन्दिर और ४ चैत्यालय हैं, लश्करमें कुल २० मन्दिर और ३ चैत्यालय हैं, तथा मुरारमें २ मन्दिर और २ चैत्यालय हैं।

यहाँ जैन समाजकी ओरसे २६ जनवरीको रथयात्रा निकाली जाती है। असौज कृष्ण २ को ग्वालियर किलेके उरवाही द्वारके नीचे पंचायती मेला होता है। असौज कृष्ण ४ को दिगम्बर जैन जैसवाल मन्दिर दानाओलीसे भगवान्‌की प्रतिमाको एक पत्थरकी बावड़ीपर ले जाकर

विराजमान करते हैं और यहाँ मेला भरता है। असौज अमावस्याको वासुपूज्य मन्दिर ग्वालियरसे श्रीजीकी जलेब एक पत्थरकी बावड़ीपर जाती है। यह मेला बड़ा होता है।

जैनधर्मशालाएँ

यहाँ लश्करमें ९, ग्वालियरमें २ तथा मुरारमें १ जैन धर्मशालाएँ हैं। इनमें नयी सड़क (लश्कर) में महावीर धर्मशाला अधिक सुविधाजनक है।

मनहरदेव

मार्ग

श्री मनहरदेव क्षेत्र ग्वालियर जिलेकी तहसील पिछोरमें स्थित है। सेण्ट्रल रेलवेके आन्तरी और डबरामण्डी स्टेशनोंसे यह लगभग १९ कि. मी. दूर है। चिनौर तक पक्की सड़क है। वहाँसे ५ कि. मी. कच्चा रास्ता है। इसका पोस्ट ऑफिस करहिया (जिला ग्वालियर, मध्यप्रदेश) है। करहियासे यह ८ कि. मी. दूर पड़ता है। यह क्षेत्र चैत्य नामक ग्रामके निकट एक छोटी-सी पहाड़ीपर स्थित है।

अतिशय-क्षेत्र

श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय-क्षेत्र मनहरदेव एक पहाड़ीपर है। पहाड़ी विशेष ऊँची नहीं है। पर्वतपर एक जैन मन्दिर है तथा ११ मन्दिर जीर्ण-शीर्ण दशामें विद्यमान हैं। पर्वतकी तलहटीमें भी दो मन्दिर हैं। पर्वतपर स्थित मन्दिरमें मूलनायकके रूपमें सेठ पाड़ाशाह द्वारा प्रतिष्ठित भगवान् शान्तिनाथकी १५ फुट उत्तुंग कायोत्सर्गासन दिगम्बर जैन प्रतिमा विराजमान थी, जो अब सोनागिर क्षेत्रपर पहुँचा दी गयी है। प्रतिमा अत्यन्त मनोज्ञ और अतिशयसम्पन्न है। इसके अतिशयोंके सम्बन्धमें जनतामें अनेक किम्वदन्तियाँ प्रचलित हैं। जैन जनताके समान निकटवर्ती अजैन जनतामें भी इस क्षेत्रकी अत्यधिक मान्यता रही है और वह इसे चैत्य-क्षेत्रके नामसे पूजती हैं। वास्तवमें चैत्य-क्षेत्र उसी क्षेत्रको कहा जाता है जहाँ चैत्य अर्थात् जैन मूर्ति और जैन मन्दिर हों। इसी कारण गाँवका नाम भी चैत्य पड़ गया है।

यह मूर्ति मनको हरनेवाली है। इसलिए सर्वसाधारणमें यह मनहरदेवके नामसे प्रसिद्ध रही है। प्रतिमाकी चरण-चौकीपर कोई लांछन स्पष्ट नहीं है। करहिया निवासी पं. लेखराजजीने 'वरैया विलास' नामक ग्रन्थमें इस मूर्तिको ऋषभदेवकी मूर्तिके रूपमें उल्लेखित किया है। किन्तु जैन समाजमें भगवान् शान्तिनाथकी मूर्तिके नामसे यह प्रसिद्ध है। इस प्रसिद्धिका कारण सम्भवतः यह मान्यता है कि इस मूर्तिके प्रतिष्ठाकारक सेठ पाडाशाह थे और पाडाशाहने सर्वत्र शान्तिनाथ-की मूर्ति ही मूलनायकके रूपमें प्रतिष्ठित की है। यह मान्यता अधिक साधार रही है, अतः सर्वसाधारणमें यही मान्यता प्रचलित रही है और सभी इस मूर्तिको शान्तिनाथकी ही मूर्ति मानते हैं।

यह क्षेत्र नितान्त एकान्तमें है और इस क्षेत्रपर एवं इसके निकटवर्ती प्रदेशमें जैन पुरातत्त्व-की सामग्री विपुल परिमाणमें असुरक्षित दशामें बिखरी हुई पड़ी है। ऐसे स्थान मूर्तिचोरोंको अपनी दुरभिसन्धि पूरी करनेमें बहुत अनुकूल पड़ते हैं। इस क्षेत्रपर भी इन लोगोंने अपने कुत्सित कृत्यों द्वारा कला, इतिहास और धार्मिक भावनाओंको गहरा आघात पहुँचाया है।

इस क्षेत्रपर मनहरदेवकी मूलनायक प्रतिमाके अतिरिक्त भगवान् चन्द्रप्रभ और भगवान् नेमिनाथकी दो विशाल मूर्तियाँ हैं। मूर्तिचोरोंने इन दोनों मूर्तियोंका शिरोच्छेदन और हस्त-विच्छेदन कर दिया है। सन् १९६७ में मूर्तिचोरोंने इस क्षेत्रपर १९ मूर्तियोंके सिर काट दिये।

इन घटनाओंके कारण क्षेत्रपर असुरक्षा और आतंकका वातावरण बन गया। इसलिए भगवान् शान्तिनाथकी मूर्तिको वहाँसे हटाकर किसी सुरक्षित स्थानपर ले जानेका निर्णय किया गया। इसके लिए सोनागिरको सर्वाधिक सुरक्षित स्थान मानकर मूर्तिको हटानेकी व्यवस्था की गयी और माघ शुक्ला १३ संवत् २०२५ (३० जनवरी सन् १९६९) को सोनागिरमें भट्टारक चन्द्रभूषणजीकी कोठीमें अलग वेदी बनवाकर विराजमान कर दी गयी। मूर्तिको हटानेमें उसके होठों और हाथोंको कुछ क्षति अवश्य पहुँची है, किन्तु अब वह मूर्ति पूर्णतः सुरक्षित हो गयी है।

भगवान् शान्तिनाथके कारण ही यह स्थान 'श्री दिगम्बर जैन अतिशय-क्षेत्र मनहरदेव' कहलाता था। उस मूर्तिके हटनेसे अब इस स्थानका पूर्ववत् महत्त्व नहीं रह गया है। यहाँ तलहटीके मन्दिरोंका जीर्णोद्धार वि. सं. २००४ में हो चुका है किन्तु अभी तक पहाड़ीके ऊपरके मन्दिरोंका जीर्णोद्धार नहीं हो पाया। यहाँपर बिखरी हुई पुरातत्त्वसामग्रीको एकत्रित और सुरक्षित करनेकी आवश्यकता है। यहाँ पर ११-१२वी शताब्दीकी भी मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं।

सोनागिरि

अवस्थिति

सोनागिरि जिसे स्वर्णगिरि, श्रमणगिरि आदि भी कहते हैं, परम पावन सिद्धक्षेत्र है। यह मध्यप्रदेशके दतिया जिलेमें दतियासे रेलमार्गसे ११ कि. मी. दूर पर अवस्थित है। पहाड़की तलहटीमें सनावल नामक एक ग्राम है। यहीं सोनागिरि क्षेत्रका कार्यालय और धर्मशाला है। सेण्ट्रल रेलवेकी ग्वालियर-झाँसी लाइनपर ग्वालियरसे ६१ कि. मी. आगे सोनागिरि स्टेशन है, वहाँसे क्षेत्र ५ कि. मी. है। स्टेशनसे क्षेत्र तक पक्की सड़क है। सड़कका निर्माण दिगम्बर जैन समाजकी ओरसे तीर्थक्षेत्र कमेटीने कराया है। ट्रेनसे जाते समय पर्वतपर स्थित मन्दिरोंके उत्तुंग शिखरोंके दर्शन होते हैं। इसका पोस्ट ऑफिस सोनागिरि ही है।

सिद्धक्षेत्र

सोनागिरि स्वर्णगिरिका हिन्दी रूपान्तर है। बोलचालमें सोनागिरि नाम ही प्रसिद्ध है। यह सोनागिरि सिद्धक्षेत्र है। यहाँसे नंग, अनंग आदि साढ़े पाँच कोटि मुनि तपस्या करके मुक्त हुए हैं। प्राकृत निर्वाण काण्डमें इस सम्बन्धमें निम्नलिखित गाथा उपलब्ध होती है—

णंगाणंगकुमारा कोटी पंचद्ध मुणिवरा सहिआ।
सोनागिरि वरसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥९॥

अर्थात्, सोनागिरिके शिखरसे नंग-अनंगकुमार साढ़े पाँच करोड़ मुनियों सहित मोक्ष पधारे।

कई प्रतियोंमें सवणागिरि पाठ मिलता है। कुछ प्रतियोंमें 'सुवण्णगिरि मत्थ-यत्थे' पाठ है। सवणागिरिका संस्कृत रूप श्रमणगिरि होता है और सुवण्णगिरिका संस्कृत रूप सुवर्णगिरि। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। श्रमणसे सवन, सोन और सोनागिरि बन गया। इसी प्रकार सुवर्णसे सोनागिरि बन जाता है। इस सोनागिरि क्षेत्रसे साढ़े पाँच करोड़ मुनि मोक्ष पधारे। अतः यह क्षेत्र अत्यन्त पवित्र है।

नंग-अनंग कुमार आदिका निर्वाण

यौधेय देशमें श्रीपुर नगरके नरेश अरिंजय और उनकी रानी विशालाके दो पुत्र थे—नंग और अनंग। दोनों कुमार रूप, गुण, बल, विद्या और बुद्धिमें अनुपम थे। उन्होंने गुरुके समीप थोड़े समयमें ही विविध विद्याओं और कलाओंमें निपुणता प्राप्त कर ली। एक बार मालव देशके अरिष्टपुर नगरके नरेश धनंजयके ऊपर तिलिंग देशके नरेश अमृत विजयने आक्रमण कर दिया। धनंजय महामाण्डलिक राजा था। उसके अधीन अनेक राजा थे। धनंजयको अमृतविजयकी योजनाका जैसे ही पता लगा, उसने अपने मित्र राजाओंको सेनासहित शीघ्र पधारनेके लिए विशेष दूतोंके द्वारा आमन्त्रण-पत्र भिजवा दिये। राजा अरिंजयके पास भी निमन्त्रण-पत्र आया। पत्र प्राप्त होते ही अरिंजय सेना लेकर प्रस्थानकी तैयारी करने लगे। जैसे ही नंग-अनंग दोनों कुमारोंने अपने पिताको युद्धके लिए प्रस्थान करते देखा, वे बोले—'पिताजी! आप कहाँ जा रहे हैं?' पिताने उत्तर दिया—'महाराज धनंजयने युद्धमें सहायता देनेके लिए बुलाया है, वहीं जा रहा हूँ।' कुमार बोले—'पिताजी! हम लोगोंके रहते हुए युद्धके लिए आपका जाना हमारे लिए लज्जाकी बात है। आप यहीं रहकर राज्य-कार्य देखें, हम लोग युद्धके लिए जायेंगे। पिताने उन्हें बहुत समझाया, किन्तु उनके आग्रह-अनुरोधके आगे पिताको उनकी बात स्वीकार करनी पड़ी और वे दोनों कुमार सेना सहित चल दिये। जब वे अरिष्टपुर पहुँचकर महाराज धनंजयसे मिले तो देवकुमारोंके समान रूपवान् और बलवान् उन कुमारोंको देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ और उनका यथोचित सत्कार किया।

दूसरे दिन दोनों सेनाओंका भयानक युद्ध हुआ। जब तिलिंगराजने धनंजयकी सेनाको रौंदना शुरू कर दिया, तब वे दोनों कुमार आयुध लेकर युद्ध-भूमिमें कूद पड़े। कुमार नंग तिलिंगराजसे जा भिड़ा और अनंगकुमारने उसके सामन्तोंका प्रतिरोध करना प्रारम्भ कर दिया। तिलिंगराज और उनके सामन्तोंकी उन कुमारोंके समक्ष एक न चली। दोनों ही सिंह-शावक शत्रुरूपी हिरणोंपर टूट पड़े। कुमार नंगने अपनी अमोघ बाण-वर्षासे दिनको अन्धकारमय बना दिया। उसने तिलिंगराजकी ध्वजा, छत्र, मुकुट, घोड़े, सारथी सबको मार गिराया और अपने हाथीसे फुर्तीसे प्रतिपक्षीके रथपर कूदकर शत्रुको बन्दी बना लिया। शत्रुके बन्दी बनते ही शत्रु-सेना भाग खड़ी हुई। युद्ध बन्द हो गया। महाराज धनंजयने नंग और अनंग कुमारोंका बड़ा सत्कार किया तथा शत्रुके साथ भी सहृदयताका व्यवहार किया। किन्तु तिलिंगराजको अपनी पराजय और पराभवके कारण मनमें विराग उत्पन्न हो गया।

जब अरिष्टपुरमें विजयोत्सव मनाया जा रहा था, तभी अष्टम तीर्थंकर भगवान् चन्द्रप्रभका समवसरण नगरके बाहर आया। बनपालने आकर महाराज धनंजयको भगवान् चन्द्रप्रभके पधारनेका शुभ समाचार दिया। समाचार मिलते ही सभी राजा और प्रजा भक्तिभावसे समवसरणमें पहुँचे और भगवान्की प्रदक्षिणा कर उनके चरणोंकी पूजा की। फिर भगवान्का हितकारी उपदेश सुना, जिसे सुनकर धनंजय अमृतविजय, नंग, अनंग आदि १५०० राजाओंको वैराग्य हो गया। वे भगवान्के समवसरणमें ही संयम धारण करके मुनि बन गये।

उज्जयिनीनरेश श्रीदत्तकी रानी विजयाके कोई सन्तान नहीं थी। एक दिन पुत्र न होनेके कारण रानी अत्यन्त दुखी हो रही थी। तभी दो चारणऋद्धिधारी मुनि वहाँ पधारे। राजदम्पतिने सन्तान होनेके बारेमें उनसे पूछा तो मुनियोंने उत्तर दिया—'तुम यात्रासंघ निकालकर स्वर्णगिरिकी यात्रा करो, उस क्षेत्रकी पूजा करो तो तुम्हारे सन्तान होगी।' राजाने पत्र भेजकर

अनेक मित्र राजाओंको स्वर्णगिरिके यात्रासंघमें सम्मिलित होनेका निमन्त्रण दिया। यथासमय विशाल यात्रासंघ लेकर राजा श्रीदत्त वहाँसे चला।

जब यात्रासंघ स्वर्णगिरि पहुँचा, उस समय भगवान् चन्द्रप्रभका समवसरण वहाँपर ही विराजमान था। राजा श्रीदत्त तथा अन्य यात्रियोंको भगवान्‌का दर्शन करके अत्यन्त हर्ष हुआ। सबने भगवान्‌के दर्शन किये, पूजन-स्तुति की और उनका दिव्य उपदेश सुना। उपदेश सुनकर अनेक लोगोंने वहीं मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली।

एक बार मुनि नंग-अनंग कुमार अनेक मुनियोंके साथ विहार करते हुए पुनः स्वर्णगिरिपर पधारे। सभी मुनि वहींपर उग्र तप करने लगे। तप करते हुए वहाँपर मुनि नंगसेन, मुनि अनंगसेन आदि अनेक मुनियोंको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया और कुछ समय पश्चात् इसी पवित्र पर्वतसे अनेक मुनियोंको निर्वाण प्राप्त हुआ।

इन मुनियोंके निर्वाणका समाचार सुनकर श्रीदत्तके पुत्र सुवर्णभद्रने भी अपने पिताकी तरह एक विशाल यात्रासंघ स्वर्णगिरिकी यात्राके लिए निकाला। इस यात्रासंघमें मुनि, अर्जिका, श्रावक और श्राविका थे, अनेक देशोंके राजा थे और हजारों धार्मिक स्त्री-पुरुष सम्मिलित थे। यह यात्रा-संघ सानन्द यात्रा करके वापस आया। कुछ समय पश्चात् सुवर्णभद्रको भी संसारसे वैराग्य हो गया और उसने मुनिव्रत अंगीकार कर लिया। उन्होंने स्वर्णगिरिपर तपस्या करके पाँच हजार मुनियोंके साथ मुक्ति प्राप्त की।

इस प्रकार नंग, अनंग, चिन्तागति, पूर्णचन्द्र, अशोकसेन, श्रीदत्त, सुवर्णसेन आदि अनेक मुनियोंकी निर्वाण-भूमि होनेके कारण यह क्षेत्र निर्वाण-क्षेत्र माना जाता है।

क्षेत्र-दर्शन

सोनागिरि क्षेत्रके लिए ग्वालियरसे सीधी बस-सेवा चालू है। यह बस क्षेत्रके फाटकके बाहर उतारती है। जो लोग ग्वालियर-सोनागिरि बस-सेवासे न जा सकें, वे ग्वालियर-दतिया आदि बसों द्वारा सोनागिरिके मोड़पर उतर जायें। वहाँसे क्षेत्र केवल ४ कि. मी. है। इसी प्रकार जो ट्रेनसे सोनागिरि स्टेशनपर उतरते हैं, उन्हें क्षेत्र ५ कि. मी. दूर पड़ता है। दोनों ही स्थानों पर, स्टेशन तथा मोड़पर ताँगे मिलते हैं। उनके द्वारा भी क्षेत्र तक जा सकते हैं।

क्षेत्रके सदर फाटकमें घुसते ही तलहटीके मन्दिरों और धर्मशालाओंका क्रम प्रारम्भ हो जाता है। तलहटीमें कुल १७ मन्दिर और ५ छतरी हैं। यहाँ कुल १५ धर्मशालाएँ हैं। यह क्षेत्र दिगम्बर जैन समाजके आधिपत्य में है। इस क्षेत्रपर किसी अन्य सम्प्रदाय या धर्मवालोंका किसी प्रकारका विवाद नहीं है, अर्थात् यह शुद्ध दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र है। किन्तु यहाँके तलहटीके सभी मन्दिरों और धर्मशालाओंकी व्यवस्था एक प्रबन्धक समितिके अन्तर्गत नहीं है, सबकी व्यवस्था भिन्न-भिन्न है, जबकि पहाड़के ऊपर जो ७७ मन्दिर, १३ छतरियाँ और ५ क्षेत्रपालके स्थान हैं, उन सबकी व्यवस्था 'श्री दिगम्बर जैन सोनागिरि सिद्धक्षेत्र संरक्षिणी कमेटी' के अधीन है। धर्म-शालाओंकी व्यवस्था पृथक् होनेपर भी कोई भी यात्री इच्छानुसार किसी भी धर्मशालामें ठहर सकता है। क्षेत्र कमेटीका कार्यालय दिल्लीवाले मन्दिरमें है।

तलहटीके मन्दिरोंका निर्माण जिस समाज अथवा महानुभावोंने कराया है, उनके नाम इस प्रकार है :—

मन्दिर	नं.	१-२-६	तेरहपंथी आम्नाय, सराफा बाजार, लश्कर
"	"	३	खरौआ जैन समाज, मौ. (भिण्ड)
"	"	४	गोलसिंघारे जैन समाज, खैरोली (भिण्ड)
"	"	५	पद्मावती पुरवार जैन समाज, एटा
"	"	७	जैसवाल जैन समाज, मुरार
"	"	८-९-११-१७	स्व. भट्टारक चन्द्रभूषण जी, सोनागिरि
"	"	१०	सेठ गुलाबचन्द गणेशीलाल दोशी, मुरार
"	"	१२	श्री मुन्नालाल करहिया वाले (मन्दिर खाली है)
"	"	१३	श्री गुन्दीलाल वैशाखिया झाँसीवाले
"	"	१४	श्री सोनागिरि दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी
"	"	१५	(बीसपन्थी आम्नाय, चम्पाबाग, ग्वालियर)
"	"	१६	जैसवाल जैन समाज, राजाखेड़ा

ये सभी मन्दिर शिखर-बद्ध हैं। इनमें-से मन्दिर नं. १५ ग्वालियरके भट्टारकका बनवाया हुआ है। इसका निर्माण विक्रम संवत् ८०० का बताया जाता है। यह बहुत विशाल है। इस मन्दिरमें मूलनायक भगवान् अरहनाथकी प्रतिमा है। इस मन्दिरको चहारदीवारीके अन्दर एक प्राचीन बावड़ी है। कहा जाता है कि पहले इस वापिकाका जल बड़ा स्वास्थ्यवर्द्धक था। अब भी इसका जल बड़ा स्वादिष्ट है और क्षेत्रपर जलकी अधिकांश आवश्यकताकी पूर्ति इसी वापिका द्वारा होती है। इसी मन्दिरमें भट्टारकजीकी गद्दी थी। इस मन्दिरके बगलमें-से होकर पहाड़के ऊपर जानेका पक्का मार्ग है।

पहाड़पर कुल ७७ जैन मन्दिर हैं। प्रत्येक मन्दिरके ऊपर मन्दिरकी क्रम संख्या पड़ी हुई है तथा प्रत्येक मन्दिरमें वहाँके मूलनायक भगवान्‌को अर्घ्य चढ़ानेका पाठ भित्तिपर लिखा हुआ है। प्रत्येक मन्दिर तक पहुँचनेके लिए पक्का मार्ग बना हुआ है। प्रत्येक मन्दिरमें विद्युत्‌की व्यवस्था है। पहाड़ी अधिक ऊँची नहीं है। पहाड़ीके चारों ओर परिक्रमा-पथ बना हुआ है। उसके चारों कोनोंपर चार छत्रियाँ हैं, जिनमें चरण-चिह्न बने हुए हैं, यह परिक्रमा-पथ ही क्षेत्रकी सीमा-रेखा है। यह सीमा-रेखा पहाड़पर जैनोंके स्वामित्व और अधिकारकी रेखा है। पहाड़के किसी ऊँचे स्थलपर खड़े होकर देखें तो पहाड़पर शिखरबद्ध मन्दिरोंकी श्रृंखला, शिखरोंपर सूर्यके प्रकाशमें चमकते हुए कलश और उनके ऊपर लहराती हुई ध्वजाएँ बड़ी मनोरम और मनोमुग्धकारी प्रतीत होती हैं। मन्दिरोंको देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि कोई पर्वताकार पुरुष गलेमें मन्दिरोंकी श्वेत मुक्तमाल पहनकर खड़ा हो। मेलेके दिनोंमें तो यहाँकी छटा और भी मनोहर लगने लगती है, जब रात्रिमें विद्युत् प्रकाशसे सारा पर्वत जगमगा उठता है। भक्ति-विह्वल स्त्री, पुरुष और बच्चे भक्तिगान और जयघोष करते हुए परिक्रमा-पथ पर चलते हैं तो यहाँका दृश्य एक अद्भुत स्वप्नलोक-सा प्रतीत होता है और यहाँके वातावरणमें एक अलौकिक उल्लास, भक्ति और अध्यात्मका अद्भुत सौरभ भर जाता है। यह सिद्धक्षेत्र है, भक्तोंके मनका यह विश्वास ही यहाँ आनेपर उन्हें एक दिव्य पुलकसे भर देता है।

यहाँका मन्दिर नं. ५७ मुख्य मन्दिर है। यह चन्द्रप्रभ मन्दिर है और इसमें मूलनायक भगवान् चन्द्रप्रभ हैं। यह मूर्ति विशाल, भव्य और अतिशयसम्पन्न है। इस पर्वतपर चन्द्रप्रभ भगवान्‌की इस विशालकाय मूर्तिको मूलनायकके रूपमें विराजमान करना सोद्देश्य है। नंग-अनंगकुमारके चरितमें ऊपर बताया जा चुका है कि भगवान् चन्द्रप्रभका समवसरण इस पर्वतपर आया

था। नंग-अनंगकुमार आदिने भगवान् चन्द्रप्रभका उपदेश सुनकर उन्हींके चरणोंमें यहींपर संयम धारण किया था। इस प्रकार भगवान् चन्द्रप्रभके पावन जीवनके साथ इस पर्वतका विशिष्ट सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। इसलिए इस पर्वतपर चन्द्रप्रभ भगवान्को मूलनायकके रूपमें महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इस मन्दिरके निकट एक छत्रीमें मुनि नंगकुमार, मुनि अनंगकुमारके चरण-चिह्न विराजमान हैं। एक प्रकारसे ये चरण-चिह्न उन साढ़े पाँच कोटि मुनियोंके प्रतीक हैं जो यहाँसे निर्वाणको प्राप्त हो चुके हैं।

पर्वतपर स्थित मन्दिरोंका परिचय इस प्रकार है—

१. **नेमिनाथ मन्दिर**—केवल गर्भगृह बना हुआ है। उसमें भगवान् नेमिनाथकी पाँच फुट ऊँची कायोत्सर्गासन प्रतिमा विराजमान है। यह श्यामवर्ण है और विक्रम संवत् १२१९ में इसकी प्रतिष्ठा हुई थी। प्रतिष्ठाकारक थे झिरिवाले चौधरी हरीसिंह।

इस मन्दिरके बगलमें फाटक है। उसमें प्रवेश करके और सीढ़ियाँ चढ़कर दूसरा मन्दिर मिलता है।

२. **नेमिनाथ मन्दिर**—भगवान् नेमिनाथकी श्यामवर्ण पद्मासन सवा दो फुट अवगाहना-वाली मूर्ति विराजमान है जो संवत् १८८८ में बलात्कारगण सरस्वतीगच्छके आचार्य विजय-कीर्तिजीके द्वारा प्रतिष्ठित की गयी। प्रतिष्ठाकारक झाँसीवाले सि. बुलाकीदास हेमराज थे। मन्दिरमें केवल गर्भगृह है।

३. **आदिनाथ मन्दिर**—भगवान् आदिनाथकी पद्मासन श्वेतवर्ण डेढ़ फुट अवगाहनावाली प्रतिमा संवत् १९६१ में प्रतिष्ठित है। मन्दिरमें केवल गर्भगृह है। इसके बराबर एक छत्रीमें किसी मुनिराजके चरण विराजमान हैं।

४. **आदिनाथ मन्दिर**—मन्दिरमें केवल गर्भगृह है। इसमें भगवान् आदिनाथकी श्वेतवर्ण पद्मासन सोलह इंच अवगाहनावाली प्रतिमा है जिसकी प्रतिष्ठा संवत् १८५५ में हुई थी।

इसके आगे एक छत्रीमे एक शिलाफलकपर २४ तीर्थंकरोंके संवत् १८८८ मे प्रतिष्ठित चरण-चिह्न विराजमान हैं।

५. **पार्श्वनाथ मन्दिर**—भगवान् पार्श्वनाथकी श्वेतवर्ण पद्मासन १४ इंच ऊँची प्रतिमा है जिसकी प्रतिष्ठा संवत् १५४८ मे सेठ जीवराज पापड़ीवालने करायी थी।

६. **चन्द्रप्रभ मन्दिर**—केवल गर्भगृह है। भगवान् चन्द्रप्रभकी श्वेतवर्ण पद्मासन एक फुट अवगाहनाकी मूर्ति है जो संवत् १९३० में प्रतिष्ठित की गयी।

७. **नेमिनाथ मन्दिर**—भगवान् नेमिनाथकी श्यामवर्ण खड्गासन पौने तीन फुट ऊँची मूर्ति है। प्रतिष्ठा-संवत् १८८९ है। मन्दिरमें केवल गर्भगृह है।

८. **पद्मप्रभ मन्दिर**—भगवान् पद्मप्रभकी श्वेतवर्ण पद्मासन १२ इंच अवगाहनावाली प्रतिमा विराजमान है। प्रतिष्ठाकारक हैं श्री छीतरमल पन्नालाल अलवरवाले। मन्दिरमें अर्धमण्डप और गर्भगृह है।

९. **पार्श्वनाथ मन्दिर**—भगवान् पार्श्वनाथकी श्वेतवर्ण पद्मासन दो फुट ऊँची प्रतिमा है। प्रतिष्ठा संवत् १९४२ है। मन्दिरमें अर्धमण्डप और गर्भगृह है। प्रतिष्ठाकारकका नाम है श्री चतुर्भुज गोरमीवाले।

१०. **पार्श्वनाथ मन्दिर**—इस मन्दिरमें तीन वेदियाँ हैं। मध्यकी वेदीपर मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथकी श्यामवर्ण पद्मासन पौने तीन फुट ऊँची मूर्ति है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९२१ में भट्टारक चारु चन्द्रभूषणजी द्वारा सकल जैसवाल वरैया जैन समाज शमशाबाद

(आगरा)की ओरसे हुई। बायीं ओरकी वेदीमें भगवान् अभिनन्दननाथकी खड्गासन श्वेतवर्ण २१ इंच अवगाहनावाली और वीर संवत् २४८५ में प्रतिष्ठित मूर्ति है। दायीं ओरकी वेदीपर पद्मासन बिस्कुटी वर्णकी २ फुट ऊँची प्रतिमा है, जो वीर संवत् २४९० में प्रतिष्ठित हुई। मन्दिरमें अर्धमण्डप, आँगन और गर्भगृह हैं।

११. **ऋषभदेव मन्दिर**—भगवान् ऋषभदेवकी खड्गासन कृष्णवर्ण साढ़े तीन फुट अवगाहनावाली मूर्ति है। प्रतिष्ठा संवत् १८२७ है। मन्दिरमें अर्धमण्डप और गर्भगृह हैं। प्रतिष्ठाकारक हैं अग्रवाल पंचान कोलारस।

१२. **नेमिनाथ मन्दिर**—भगवान् नेमिनाथकी श्यामवर्ण, खड्गासन, पौने पाँच फुट अवगाहनावाली मूर्ति है। प्रतिष्ठा संवत् नहीं है। मन्दिरमें गर्भगृह है तथा उसके चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ बना हुआ है। प्रतिष्ठा सुमावलीकी जैन पंचानने करायी।

१३. **आदिनाथ मन्दिर**—भगवान् आदिनाथकी दो पद्मासन श्वेतवर्ण मूर्तियाँ वेदीमें विराजमान हैं। दोनो ही एक-एक फुट ऊँची हैं। बायीं ओरकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा वीर संवत् २४७० में और दायी ओरकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा विक्रम संवत् १९१० में हुई थी। मन्दिरमें गर्भगृह और अर्धमण्डप हैं।

१४. **आदिनाथ मन्दिर**—भगवान् आदिनाथकी कत्थई वर्णकी खड्गासन २१ इंच अवगाहनावाली प्रतिमा विराजमान है। वीर सं. २४६९ मे प्रतिष्ठित है। मन्दिरमें अर्धमण्डप और गर्भगृह बने हुए हैं।

१४ अ—**आदिनाथ मन्दिर**—मूर्तिके पीठासनपर ध्यानपूर्वक देखनेसे वृषभका लांछन दिखाई पड़ता है। कुछ लोग भ्रमवश उसे सिंह मानकर प्रतिमाको महावीरकी मानते हैं। यह पद्मासन श्वेतवर्ण २१ इंच ऊँची और वीर सं. २४९७ में प्रतिष्ठित हुई है। इस मन्दिरमें केवल गर्भगृह है।

इसके बगलमें एक चबूतरेपर किन्हीं मुनिराजके चरण बने हुए हैं।

१५. **मुनिसुव्रतनाथ मन्दिर**—भगवान् मुनिसुव्रतनाथकी श्यामवर्ण, खड्गासन, साढ़े तीन फुट ऊँची प्रतिमा विराजमान है। प्रतिष्ठा वि. सं. १५४४ में हुई है। इस मन्दिरमें अर्धमण्डप और गर्भगृह बने हुए हैं।

१६. **महावीर मन्दिर**—भगवान् महावीरकी बिस्कुटी वर्णकी पद्मासन प्रतिमा २७ इंच अवगाहनावाली विराजमान है। ऊपर देवियाँ पुष्पमाल लिये हुए उड़ती हुई दीख पड़ती हैं। उनसे नीचे दोनों ओर दो-दो पद्मासन तीर्थंकर-मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इनमें एक प्रतिमा नहीं रही। सम्भवतः यह शिलाफलक पंचबालयतियोंका है। यद्यपि लांछन बड़ा अस्पष्ट है, पर उसका आकार शूकर-जैसा लगता है। लेकिन ध्यानसे देखनेपर यह आकार शूकर अथवा वृषभकी अपेक्षा सिंहसे अधिक मिलता-जुलता है। अतः इस मूर्तिको महावीरकी मूर्ति मानना अधिक तर्कसंगत लगा। पंचबालयतिकी दृष्टिसे भी इसे महावीरकी मूर्ति मानना ही उचित लगता है। मूर्तिके अधोभागमें चमरेन्द्र चमर लिये हुए भगवान्की सेवा करते दीख पड़ते हैं।

मन्दिरमें केवल अर्धमण्डप और गर्भगृह हैं।

१७. **पार्श्वनाथ मन्दिर**—भगवान् पार्श्वनाथकी पद्मासन श्वेतवर्ण १५ इंच ऊँची और संवत् १७४५ में प्रतिष्ठित मूर्ति विराजमान है। मन्दिरमें अर्धमण्डप और गर्भगृह बने हुए हैं।

१८. **आदिनाथ मन्दिर**—भगवान् आदिनाथकी यह मूर्ति पद्मासन श्वेतवर्ण १५ इंच ऊँची और संवत् १९२३ की प्रतिष्ठित है। मन्दिरमें अर्धमण्डप और गर्भगृह बने हुए हैं।

१९. नेमिनाथ मन्दिर—भगवान् नेमिनाथ कायोत्सर्ग मुद्रामें ध्यानमग्न हैं, श्यामवर्ण हैं, अवगाहना सवा दो फुट है। बायीं ओर गजारूढ़ यक्ष तथा दायीं ओर नृत्यमुद्रामें यक्षी खड़ी हुई है। लेख नहीं है। मन्दिरमें अर्धमण्डप और गर्भगृह बने हैं।

२०. चन्द्रप्रभ मन्दिर—भगवान् चन्द्रप्रभ पद्मासन श्वेतवर्ण १६ इंच अवगाहनावाले वीर सं. २४७० में प्रतिष्ठित यहाँ विराजमान हैं। मन्दिरके तीन ओर बरामदे बने हुए हैं। भीतर आँगन और गर्भगृह हैं।

२१. पार्श्वनाथ मन्दिर—भगवान् पार्श्वनाथकी प्रतिमा श्वेतवर्ण पद्मासन १५ इंच ऊँची विराजमान है। इस मन्दिरकी प्रतिष्ठा सकल पंच घोंटाने संवत् १९२१ में करायी थी। मन्दिरमें गर्भगृह और अर्धमण्डप निर्मित हैं।

२२. अरहनाथ मन्दिर—भगवान् अरहनाथकी यह खड्गासन प्रतिमा बादामी वर्णकी पौने पाँच फुट अवगाहनावाली है। इनके केशवलय अद्भुत शैलीके बने हुए हैं, लगता है जैसे सिरपर सात वलयकी पगड़ी लगी हुई हो। प्रतिमाके सिरके दोनों ओर गजलक्ष्मी हैं, सिरके ऊपर छत्रत्रय सुशोभित है। ऊपर कोनोंपर पुष्पमाल लिये हुए आकाशचारी देव हैं। प्रतिमाके चरणोंके दोनों ओर चमरवाहक खड़े हैं। मन्दिरमें गर्भगृह और अर्धमण्डल बने हुए हैं।

२३. सुपार्श्वनाथ मन्दिर—भगवान् सुपार्श्वनाथकी पद्मासन श्वेतवर्ण यह प्रतिमा १६ इंच अवगाहनाकी है। सिरपर नौ सर्प-फणावली है तथा पीठासनपर स्वस्तिक लांछन बना हुआ है। इसी लांछनके आधारपर इसे सुपार्श्वनाथकी प्रतिमा माना जाता है। स्वस्तिकका आकार बड़ा अद्भुत बना हुआ है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १८८४ में भट्टारक सुरेन्द्रभूषणजीने करायी थी। प्रतिष्ठाकारक थे श्री आछेलाल बल्देव भिण्डवाले।

इस मन्दिरके एक बरामदेमें पार्श्वनाथकी प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमाके सिरपर सप्त फणावली है। प्रतिमा श्वेतवर्ण पद्मासन १५ इंच अवगाहनावाली है और संवत् १९१० में इसकी प्रतिष्ठा हुई है।

इस मन्दिरमें बरामदे, आँगन और खुला गर्भगृह है।

२४. नेमिनाथ मन्दिर—भगवान् नेमिनाथकी प्रतिमा श्यामवर्ण, खड्गासन और ४ फुट २ इंच आकारकी है। मूर्तिके सिरके ऊपर तीन छत्र तथा सिरके पीछे भामण्डल सुशोभित है। चमरेन्द्रके स्थानपर दोनों ओर दो करबद्ध भक्त खड़े हुए हैं। उनके मुकुट टोपीनुमा हैं, अतः बड़े अद्भुत प्रतीत होते हैं। इसकी प्रतिष्ठा वीर संवत् १९८६ में श्री सौभाग्यसिंह झिरिवालोंने करायी थी। मन्दिरमें गर्भगृह तथा प्रदक्षिणा-पथ बना हुआ है।

२५. मल्लिनाथ मन्दिर—भगवान् मल्लिनाथकी प्रतिमा कृष्णवर्ण, पद्मासन डेढ़ फुट अवगाहनावाली है। इसकी प्रतिष्ठा सेठ फुलझारीलाल करहलवालोंने संवत् १९२५ में करायी थी। इस मन्दिरमें गर्भगृह चार स्तम्भोंपर आधारित है तथा प्रदक्षिणा-पथ डबल बने हुए हैं।

२६. नमिनाथ मन्दिर—यहाँ नमिनाथ भगवान्‌की श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसका आकार एक फुटका है। इसके पादपीठपर नील कमलका चिह्न अंकित है। अतः इसे नमिनाथकी मूर्ति माना जाता है। इसकी प्रतिष्ठा खिरकोवाले श्री दीनदयाल घमण्डीलालने करायी थी। इस मन्दिरमें गर्भालय और अर्धमण्डप बने हुए हैं।

२७. नेमिनाथ मन्दिर—भगवान् नेमिनाथकी यह प्रतिमा कृष्ण पाषाणकी, पद्मासन और २१ इंच अवगाहनवाली है। मन्दिरमें केवल गर्भगृह और अर्धमण्डप बने हैं।

२८. **चन्द्रप्रभ मन्दिर**—भगवान् चन्द्रप्रभकी इस मूर्तिकी अवगाहना सवा पाँच फुटकी है। इसका वर्ण चितकबरा (जिसमें हरे और पीले रंगकी बूँदें हैं) है तथा यह कायोत्सर्गासनमें विराजमान है। प्रतिमाके सिरपर छत्रत्रय बने हुए हैं। सिरके दोनों ओर आकाशविहारी गन्धर्व पुष्पवर्षा कर रहे हैं। सौधर्म और ऐशान इन्द्र हाथोंमें चमर लिये हुए भक्तिमुद्रामें खड़े हुए हैं। मन्दिरमें गर्भगृह और प्रदक्षिणा-पथ बने हुए हैं। गर्भगृह चार स्तम्भोंपर आधारित एवं मण्डपनुमा इसकी प्रतिष्ठा गोरमीकी जैन पंचायतने करायी थी।

२९. **पार्श्वनाथ मन्दिर**—भगवान् पार्श्वनाथकी यह प्रतिमा चितकबरे पाषाणकी है। कायोत्सर्ग मुद्रामें स्थित है। इसका आकार छह फुट तीन इंच है। इसके सिरके दोनों ओर गजलक्ष्मी तथा पुष्पमाल लिये नभचारी गन्धर्व बने हुए हैं। मन्दिरमें अर्धमण्डप, गर्भगृह और आँगन हैं। इसके प्रतिष्ठाकारक हैं झिरिवाले श्री पातेराम पटवारी। इस मन्दिरके बगलमें एक पक्का कुण्ड है, तथा एक चबूतरा बना हुआ है जो मुनियोंके ध्यान, तपके लिए उपयोगमें आता था।

३०. **चन्द्रप्रभ मन्दिर**—कायोत्सर्गासन, वर्ण चितकबरा, अवगाहना ६ फुट। सिरपर छत्रत्रय। छत्रोंमें दोनों ओर आधारदण्ड लगा हुआ है। सिरके ऊपर दोनों ओर गजलक्ष्मी उत्कीर्ण है। गजलक्ष्मीके निकट हाथ जोड़े हुए भक्त खड़े हैं। अधोभागमें दोनों ओर चमरवाहक खड़े हैं। इस मन्दिरमें गर्भगृह और प्रदक्षिणा-पथ बने हुए हैं। इस मन्दिरके भी प्रतिष्ठाकारक झिरिवाले श्री पातेराम पटवारी हैं।

३१. **नेमिनाथ मन्दिर**—भगवान् नेमिनाथकी श्यामवर्ण, कायोत्सर्गासन तथा ४ फुट अवगाहनावाली प्रतिमा विराजमान है। सिरके ऊपर छत्रत्रयी सुशोभित है। उनके दोनों ओर गजलक्ष्मी है। मूर्तिके एक ओर कमलासीन चतुर्भुज यक्ष है तथा दूसरी ओर सिंहारूढ़ा यक्षी बनी हुई है। सम्भवतः ये गोमेद यक्ष और अम्बिका यक्षी हैं। देवीके नीचे एक वृक्ष दीख पड़ता है। सम्भवतः यह आम्रवृक्ष है जो देवीसे सम्बन्धित है। इसे बोधिवृक्ष मानना शायद संगत न होगा क्योंकि बोधिवृक्ष देवीके नीचे नहीं बनाया जाता, वह प्रायः चरण-चौकीपर अंकित किया जाता है। मन्दिरमें अर्धमण्डप और गर्भगृह हैं। इसकी प्रतिष्ठा झाँसीवाले श्री बुलाकीदासने करायी थी।

३२. **अजितनाथ मन्दिर**—सवा दो फुटके एक शिलाफलकपर भगवान् अजितनाथकी श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा बनी हुई है। सिरके ऊपर छत्रत्रयी है। उसके दोनों ओर अष्ट मंगलद्रव्य बने हैं। नीचे भगवान्‌के दोनों ओर चमरेन्द्र खड़े हैं। इसकी प्रतिष्ठा श्री नाथूराम कन्हैयालाल जयपुरवालोंने विक्रम संवत् १९९२ मे करायी थी। मन्दिरमें अर्धमण्डप और गर्भगृह बने हुए हैं।

३३. **सुमतिनाथ मन्दिर**—यह मन्दिर नं. ३२ के समान है। केवल तीर्थंकरका अन्तर है। शेष सब समान है।

इसके आगे ज्ञानगुदड़ी शिला है। उससे थोड़ा ऊपर चढ़कर एक छतरी बनी हुई है, जिसमें संवत् १९०२ के तीन चरण बने हुए हैं।

३४. **आदिनाथ मन्दिर**—भगवान् आदिनाथकी कृष्णवर्ण, खड्गासन, छह फुट अवगाहना-वाली प्रतिमा विराजमान है। सिरके ऊपर छत्र हैं, बगलमें चमर लिये गन्धर्व खड़े हैं। नीचे एक

---

१. इस क्षेत्रपर इस प्रकारके चितकबरे पाषाणकी प्रतिमाओंकी संख्या काफी है। सम्भवतः यह पाषाण इस पर्वतपर उपलब्ध नहीं होता। ऐसा प्रतीत होता है कि इन मूर्तियोंका शिल्पी एक ही व्यक्ति था, जो मूर्तिनिर्माण-कलामें अकुशल था। इस पाषाणकी प्रायः सभी मूर्तियाँ बेडौल और विषमानुपातवाली हैं। आगे इस पाषाणका वर्ण चितकबरा ही लिखा जायेगा।

ओर चतुर्भुज यक्ष (गोमुख) और दूसरी ओर यक्षी (चक्रेश्वरी) बनी हुई है। प्रतिष्ठाकारक झाँसीवाले श्री बुलाकीदास हैं।

एक अन्य वेदीमें नन्दीश्वर द्वीपकी रचना है। आकार १ फुट ८ इंच है। इसमें चारों ओर खड्गासन ५२ प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। यह रचना संवत् १२३६ की है।

इस मन्दिरके पीछे एक छतरीमे क्षेत्रपालकी खड़ी हुई मूर्ति विराजमान है, इससे कुछ आगे पेड़ोंके झुण्डमें एक चबूतरा बना हुआ है।

३५. आदिनाथ मन्दिर—भगवान् आदिनाथकी खड्गासन, चितकबरा वर्ण, साढ़े तीन फुटकी अवगाहनावाली प्रतिमा विराजमान है। संवत् १६४० में प्रतिष्ठित है।

३६. अजितनाथ मन्दिर—भगवान् अजितनाथकी यह प्रतिमा पद्मासन, मटमैला वर्ण, १५ इंच आकारकी है। जैन पंचान रानीपुरने इसकी प्रतिष्ठा करायी। मन्दिरमें केवल गर्भगृह है।

३७. नेमिनाथ मन्दिर—भगवान् नेमिनाथकी पद्मासन, श्वेतवर्ण, ११ इंच आकारकी यह प्रतिमा भट्टारक सुरेन्द्र भूषणजी द्वारा संवत् १८८४ में ब्रह्मचारी दौलतसागरजीकी ओरसे प्रतिष्ठित की गयी। मन्दिरमें केवल गर्भगृह है।

३८. आदिनाथ मन्दिर—इस मन्दिरमें तीन दरकी एक वेदीमें मूलनायक भगवान् आदिनाथकी प्रतिमा पद्मासन कृष्णवर्णकी विराजमान है। इसके दोनों ओर महावीर स्वामीकी खड्गासन २८ इंच अवगाहनावाली प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इसकी प्रतिष्ठा भट्टारक सतेन्द्रभूषण-ने संवत् ९९५० में जैन पंचान आगराकी ओरसे की। मन्दिरमें अर्धमण्डप और गर्भगृह हैं।

३९. नेमिनाथ मन्दिर—भगवान् नेमिनाथकी यह मूर्ति खड्गासन, कृष्णवर्ण है और इसकी अवगाहना सवा छह फुट है। मूर्तिके सिरपर छत्रत्रयी सुशोभित है। मध्यमें चमरेन्द्र खड़े हैं। अधोभागमे भगवान् नेमिनाथके यक्ष-यक्षी बने हुए हैं। दायी ओर पुरुषारूढ़ गोमेध यक्ष हाथ जोड़े हुए हैं तथा बायीं ओर सिंहारूढ़ा अम्बिका है। मन्दिरमें चार स्तम्भोंपर आधारित मण्डप-नुमा गर्भगृह बना हुआ है। उसके चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ है।

इसकी प्रतिष्ठा श्री नाथूराम मैनपुरीवालोंने संवत् १९४० मे करायी।

४०. नेमिनाथ मन्दिर—भगवान् नेमिनाथकी यह प्रतिमा पद्मासन और कृष्णवर्णवाली है। इसकी अवगाहना २ फुट है। इसकी प्रतिष्ठा श्री नाथूराम मैनपुरीवालोंने करायी थी। मन्दिरमे अर्धमण्डप और गर्भगृह हैं।

४१. चन्द्रप्रभ मन्दिर—चन्द्रप्रभकी प्रतिमा पद्मासन, श्वेतवर्ण, २२ इंच अवगाहनाकी है। इसकी प्रतिष्ठा डबरावाले श्री मोहनलाल मोदीने संवत् १९५५ में करायी। मन्दिरमे अर्धमण्डप और प्रदक्षिणा-पथ हैं।

४२. आदिनाथ मन्दिर—भगवान् आदिनाथकी मूर्ति खड्गासन, चितकबरे वर्ण और आठ फुट अवगाहनावाली है। इसके सिरके ऊपर छत्र, दोनों ओर छत्रके दण्डधर गज और हाथ जोड़े हुए भक्त तथा चरणोंके दोनों ओर चमरवाहक बने हुए हैं। इसका गर्भगृह चार स्तम्भोंपर आधारित है और उसके चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ निर्मित है। प्रतिष्ठाकारक है सकल जैन पंचान बामौरा।

४३. नेमिनाथ मन्दिर—यह प्रतिमा खड्गासन है, वर्ण काला-भूरा है तथा अवगाहना ६ फुट है। सिरके ऊपर छत्र हैं। मूर्तिके दोनो ओर चमरेन्द्र खड़े हैं। नीचे यक्ष-यक्षी बने हुए हैं। इसकी प्रतिष्ठा झाँसीवाले श्री बुलाकीदासने करायी थी। यह मन्दिर है, टोंकनुमा नहीं है।

४४. **चन्द्रप्रभ मन्दिर**—यह मूर्ति खड्गासन, काला-भूरा वर्ण और ५ फुट ३ इंच अवगाहनावाली है। इस मूर्तिके सिरपर छत्र हैं। दोनों ओर चमरवाहक हैं। नीचे एक ओर यक्ष हाथ जोड़े हुए खड़ा है। दूसरी ओर वृषभपर चतुर्भुजी यक्षी आरूढ़ है। इस मन्दिरका गर्भगृह चार स्तम्भोंपर आधारित है। उसके चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ बना हुआ है। इसकी प्रतिष्ठा सकल पंचान कलेसराने संवत् १८७० में करायी थी। इसके आगे एक मन्दिरमें क्षेत्रपाल स्थापित हैं। दायीं ओर भी मढ़ियामें एक क्षेत्रपाल विराजमान हैं।

४५. **पार्श्वनाथ मन्दिर**—इस मन्दिरमें पाँच वेदियाँ हैं। बायीं ओरसे (१) शान्तिनाथ—खड्गासन, कृष्णवर्ण, अवगाहना ढाई फुट। दोनों ओर चमरवाहक हैं। मूर्ति संवत् ११८२ में प्रतिष्ठित हुई तथा इसके दायें हाथका ऊपरी भाग खण्डित है। (२) पार्श्वनाथ—पद्मासन, हल्का कत्थई वर्ण, संवत् ११६३ की प्रतिष्ठित। (३) पार्श्वनाथ—खड्गासन, कृष्णवर्ण, अवगाहना ४ फुट। बायीं ओर चमरेन्द्र खड़ा है तथा दायीं ओर कमलासना चतुर्भुजी पद्मावती देवी। उसके हाथोंमें अक्ष हैं। (४) नेमिनाथ—पद्मासन, कृष्णवर्ण, सवा दो फुट आकार। संवत् १३४० में प्रतिष्ठित। (५) महावीर—खड्गासन, हल्का कत्थई वर्ण, ३ फुट अवगाहना। हाथोंसे नीचे यक्ष-यक्षी खड़े हैं। मन्दिरकी प्रतिष्ठा झाँसीवाले सिंघई अछरमलने करायी।

४६. **नेमिनाथ मन्दिर**—यह प्रतिमा पद्मासन, चितकबरा वर्ण और तीन फुट अवगाहनाकी है। ये बाटीवाले महाराज कहलाते हैं। प्रतिष्ठाकारक हैं सिंघई अछरमल झाँसीवाले।

४७. **आदिनाथ मन्दिर**—यह प्रतिमा कायोत्सर्गासन, चितकबरे वर्णवाली और सवा छह फुट अवगाहनाकी है। गर्भगृह स्तम्भोंपर आधारित है। उसके चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ बना हुआ है। इसकी प्रतिष्ठा सकल जैन पंचान, झाँसीने करायी थी।

४८. **चन्द्रप्रभ मन्दिर**—यह मूर्ति खड्गासन, चितकबरे वर्णकी और साढ़े पाँच फुट अवगाहनावाली है। इस मन्दिरका गर्भगृह मण्डपनुमा है। उसके चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ बना हुआ है। झाँसीकी जैन पंचायतने इसकी प्रतिष्ठा करायी थी।

४९. **आदिनाथ मन्दिर**—भगवान् आदिनाथकी खड्गासन, चितकबरे वर्ण और ६ फुट अवगाहनावाली मूर्ति विराजमान है। स्तम्भोंपर गर्भगृह आधारित है। उसके चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ निर्मित हैं। मन्दिरकी प्रतिष्ठा जैन पंचान, कटकने करायी।

५०. **विमलनाथ मन्दिर**—यह मूर्ति खड्गासन है, मूँगिया वर्ण है, अवगाहना ६ फुट है। मन्दिर संवत् १८३६ में प्रतिष्ठित हुआ। इसमें गर्भगृह और अर्धमण्डप बना हुआ है।

इसके बगलमें पत्थरकी पटियोंका बना हुआ एक लम्बा मण्डप है। कहते हैं, इसमें पहले जैन मूर्तियाँ विराजमान थीं। इसकी जीर्ण दशा देखकर मूर्तियाँ मन्दिर नं. ५० में पहुँचा दी गयी।

५१. **शान्तिनाथ मन्दिर**—यह प्रतिमा खड्गासन, मूँगिया वर्ण और ६ फुट अवगाहनाकी है। मन्दिरमे गर्भगृह और प्रदक्षिणा-पथ हैं।

५२. **महावीर मन्दिर**—एक शिलाफलकपर भगवान् महावीरकी प्रतिमा पद्मासन, हलके कत्थई वर्ण और ढाई फुट अवगाहनावाली है। सिरके ऊपर छत्र, सिरके पीछे भामण्डल, ऊपर कोनोंपर पुष्पमाल लिये हुए आकाशचारी गन्धर्व दिखाई पड़ते हैं। दोनों ओर चमरवाहक खड़े हैं। नीचे हाथ जोड़े हुए दो भक्त दीख पड़ते हैं। इस मन्दिरमें गर्भगृह, महामण्डप और अर्धमण्डप बने हुए हैं। यह मन्दिर प्राचीन है। बाहर दालानमें दो प्राचीन चरण बने हुए हैं।

५३. **नेमिनाथ मन्दिर**—यह प्रतिमा कायोत्सर्गासन, मूँगिया वर्ण और पौने तीन फुट अवगाहनावाली है। यह प्रतिमा एक शिलाफलकमें बनी हुई है। सिरपर छत्रत्रयी है। उसके दोनों

ओर सूँड़में माला लिये हुए गजराज खड़े हैं। भगवान्के एक ओर सौधर्मेन्द्र और दूसरी ओर उसकी शची चमर लिये हुए खड़ी है। इस शिलाफलकपर दोनों ओर दो-दो पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। प्रतिमाओंके दोनों ओर चमरवाहक खड़े हैं। चरण-चौकीपर मध्यमें शंख लांछन अंकित हैं। उसके दोनों ओर भक्त उसे हाथ जोड़ रहे हैं। वस्तुतः यह शिलाफलक पंच-बालयति तीर्थंकरोंका है।

इस मन्दिरमें गर्भगृह, अर्धमण्डप और आँगन बने हैं। इसके प्रतिष्ठाकारक हैं श्री छोटेलाल जौहरी, ग्वालियरवाले।

५४. **नेमिनाथ मन्दिर**—इस मन्दिरमें दो वेदियाँ हैं। एक वेदीपर भगवान् नेमिनाथकी संवत् ११११२ को पद्मासन, श्यामवर्ण तथा १८ इंच अवगाहनावाली प्रतिमा विराजमान है। दूसरी वेदीपर भी नेमिनाथकी मूर्ति है जो वीर संवत् २४८१ को प्रतिष्ठित है तथा जो पद्मासन, श्वेतवर्ण और ११ इंचकी है। मन्दिरमें गर्भगृह, अर्धमण्डप और आँगन हैं।

५५. **सर्वतोभद्रिका**—मन्दिर नं. ५४ के बाहर एक छतरीके नीचे एक पाषाण-स्तम्भमें सर्वतोभद्रिका प्रतिमा बनी हुई है। इसमें क्रमशः चन्द्रप्रभ, धर्मनाथ, पद्मप्रभ और महावीरकी प्रतिमाएँ हैं। अवगाहना ३ फुट है। अधोभागमें तीन तीर्थंकर प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। यह प्रतिमा लगभग ११वीं शताब्दीकी है।

५६. **आदिनाथ मन्दिर**—यह मूर्ति खड्गासन, मूँगिया वर्ण और साढ़े तीन फुट अवगाहनावाली है। मन्दिरमें केवल गर्भगृह हैं। मन्दिरके बाहर एक आलेमें चरण बने हुए हैं। मन्दिरकी प्रतिष्ठा जैन पंचायत, करहराने करायी थी।

इस मन्दिरके बाहर चौकमें एक पक्की सुन्दर छत्रीमें दो चरण-चिह्न मुनिराज नंगकुमार और मुनिराज अनंगकुमारके बने हुए हैं। इन चरण-चिह्नोंको हम यहाँसे मुक्त हुए साढ़े पाँच कोटि मुनियोंका स्मारक-प्रतीक मान सकते हैं।

५७. **चन्द्रप्रभ मन्दिर**—यह यहाँका सर्वप्रमुख मन्दिर है। इस मन्दिरमे मूलनायकके अतिरिक्त सात वेदियाँ बनी हुई हैं। बायीं ओर बरामदेमे वेदी है जिसमें भगवान् महावीरकी श्वेतवर्ण, पद्मासन, १४ इंच ऊँची, वीर संवत् २४८१ में प्रतिष्ठित प्रतिमा विराजमान है।

बरामदेके दूसरे छोरपर वेदीमें पार्श्वनाथ विराजमान हैं। ये कृष्णवर्ण, पद्मासन और १८ इंच अवगाहनावाले हैं तथा संवत् १९३० में प्रतिष्ठित हुए।

सामने बायीं ओरके गर्भगृहमें भगवान् शीतलनाथकी प्रतिमा एक पाषाण-फलकमें बनी हुई है। यह खड्गासन, मूँगिया वर्ण और सवा छह फुट अवगाहनाकी है। प्रतिमाके सिरपर छत्रत्रयी सुशोभित है। इस फलकपर दो तीर्थंकर प्रतिमाएँ और बनी हुई हैं। यह संवत् १३९२ में प्रतिष्ठित हुई थी।

इस गर्भगृहमें-से उतरकर मूल गर्भगृहमें पहुँचते हैं। यहाँ दीवालमें भगवान् चन्द्रप्रभकी भव्य प्रतिमा बनी हुई है। सम्भवतः यह प्रतिमा इसी स्थानपर पर्वतमें उकेरी गयी है। प्रतिमाके चरण तकका भाग ही दिखाई पड़ता है। उसका पीठासन भूमिके नीचे दबा हुआ है। प्रतिमाका वर्ण भूरा है, खड्गासन मुद्रामें है, मूर्तिकी अवगाहना साढ़े नौ फुट है। प्रतिमाके सिरके ऊपर छत्रत्रयी सुशोभित है तथा सिरके पीछे भामण्डल बना हुआ है। उनके दोनों ओर लेख उत्कीर्ण हैं, जो प्राचीन लेखकी नकल बताया जाता है। इस लेखके अनुसार मूर्तिकी प्रतिष्ठा संवत् ३३५में हुई थी और संवत् १८८३मे सेठ लक्ष्मीचन्द्रजी मथुरावालोंने इस मन्दिरका पुनर्निर्माण कराया। मूर्ति अत्यन्त मनोज्ञ है। यदि भक्तिपूर्वक इसकी ओर कुछ देर तक टकटकी लगाकर देखा जाये

तो लगेगा कि मूर्तिकी आँखोंमें तेज प्रस्फुटित हो रहा है, इसका रहस्यमय मौन दिव्य सन्देश विकीर्ण कर रहा है। ऐसा सन्देश, जो हृदयको छूता चला जा रहा है। यहाँके स्निग्ध वातावरणमें अलौकिक शान्ति, विराग और भक्तिका सौरभ घुला हुआ है।

इससे आगे बढ़नेपर गर्भगृहमें पार्श्वनाथकी खड्गासन, साढ़े छह फुट अवगाहनावाली प्रतिमा विराजमान है। सिरपर छत्रत्रय है। छत्रके दोनों ओर एक-एक अर्हन्त प्रतिमा बनी हुई है। नीचे गजारूढ़ चमरेन्द्र हैं। मूर्तिके अधोभागमें दो भक्त हाथ जोड़े हुए खड़े हैं।

इससे आगेको वेदीमें मूलनायक नेमिनाथके अतिरिक्त पार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ और शान्तिनाथ-की श्वेतवर्ण, पद्मासन प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

अगली वेदीपर कृष्णवर्ण पार्श्वनाथ और श्वेतवर्ण चन्द्रप्रभ विराजमान हैं।

अन्तिम छोरपर बनी हुई वेदीमें भगवान् सुपार्श्वनाथकी पद्मासन श्वेतवर्ण भव्य प्रतिमा विराजमान है। इसके सिरपर नौ फणावली सुशोभित है। नीचे स्वस्तिक चिह्न होनेके कारण इसे सुपार्श्वनाथकी प्रतिमा कहा जाता है। मूर्ति-लेखके अनुसार इसकी प्रतिष्ठा भट्टारक धर्मचन्द्रजीने संवत् १२७२ में करायी थी। इससे आगे श्रेयान्सनाथ, विमलनाथ और कुन्थुनाथ विराजमान हैं। ये तीनों मूर्तियाँ श्वेतवर्ण और पद्मासन हैं।

यह मन्दिर बहुत विशाल है। इस सम्पूर्ण मन्दिरके अन्दर और बाहर चौकमें संगमरमरका फर्श बना हुआ है।

मन्दिरके बाहर एक छतरीमें बाहुबली स्वामीकी खड्गासन श्वेत, संगमरमरकी साढ़े सात फुट ऊँची वीर संवत् २४७७ में प्रतिष्ठित प्रतिमा विराजमान है।

मन्दिरके सामने संगमरमरका बना हुआ एक समुन्नत मानस्तम्भ है। उसकी शीर्ष वेदिका-में पद्मासन चन्द्रप्रभ भगवान्‌की चारों दिशाओंमें चार प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इसकी प्रतिष्ठा वीर संवत् २४६८ में हुई थी।

मानस्तम्भसे कुछ आगे चलकर समवसरण मन्दिर बना हुआ है। समवसरणकी गन्धकुटीमें चतुर्मुखी श्वेत पाषाणकी प्रतिमा विराजमान है। इसकी प्रतिष्ठा श्री मुन्नीमल जैन, आगराने वीर संवत् २४९३ में करायी।

चन्द्रप्रभ मन्दिरके अधोभागमें संग्रहालय बनानेकी योजना है।

५८. **पार्श्वनाथ मन्दिर**—भगवान् पार्श्वनाथकी प्रतिमा खड्गासन, मूँगिया वर्ण, ६ फुट अवगाहनावाली है। इस मन्दिरमें दो कक्षोंमें दो प्रतिमाएँ और विराजमान हैं—भगवान् आदिनाथ और भगवान् महावीर। इनकी भी अवगाहना ६ फुट है। सि. देवकीनन्दन, झाँसीने इसकी प्रतिष्ठा करायी।

५९. **आदिनाथ मन्दिर**—भगवान् आदिनाथकी खड्गासन, मूँगिया वर्ण, ६ फुट अवगाहना-वाली मूर्ति है। इस मन्दिरमें गर्भगृह और प्रदक्षिणा-पथ बने हैं। प्रतिष्ठा जैन पंचान, छतरपुर-ने करायी।

६०. **पिसनहारीका मन्दिर**—यह मन्दिर चक्कीनुमा अथवा तीन कटनीवाली पाण्डुक शिला-जैसी आकृतिका बना हुआ है। इसमें भगवान् सुपार्श्वनाथकी प्रतिमा पद्मासन, हलका पीला वर्ण, २ फुट अवगाहनावाली विराजमान है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १५४९ में हुई थी।

इस मन्दिरके निर्माणके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती प्रचलित है कि यह मन्दिर एक निर्धन पिसनहारी महिलाने अपनी मजदूरीमें-से पैसे जोड़कर बनवाया था। कहते हैं, इसी कारण इस मन्दिरका आकार चक्कीके पाटों-जैसा बनाया गया। इस प्रकारकी किंवदन्तियाँ कई स्थानोंके

सम्बन्धमें प्रचलित हैं—जैसे मढ़िया (जबलपुर) का जैन मन्दिर, उदयपुर (बीना और विदिशाके बीच बारेथ स्टेशनसे छह कि. मी. दूर) का हिन्दू मन्दिर। ये दोनों ही मन्दिर पिसनहारीके मन्दिर कहलाते हैं। कहते हैं, मढ़ियाका जैन मन्दिर आटा पीसनेवाली एक स्त्रीने बनवाया था और उदयपुरका हिन्दू मन्दिर वहाँके उदयेश्वर मन्दिरके निर्माण कार्यमें मजदूरी करनेवाली एक स्त्रीने पत्थर पीसनेकी कमाईसे बनवाया। इसी प्रकारकी किंवदन्ती सोनागिरके प्रस्तुत मन्दिरके सम्बन्धमें प्रचलित है। यहाँके मन्दिरके सम्बन्धमें इस प्रकारकी किंवदन्ती प्रचलित होनेका कारण इस मन्दिरका आकार चक्की-जैसा होना बताया जाता है। किन्तु इस आकारके मन्दिर अयोध्या आदि कई स्थानोंपर पाये जाते है। हमें लगता है, यह मन्दिर मूलतः पाण्डुक शिला थी जो बादमें मन्दिरके रूपमें परिवर्तित कर दी गयी।

६१ **नेमिनाथ मन्दिर**—यह प्रतिमा कृष्णवर्ण, खड्गासन, ३ फुट अवगाहनावाली है। इस मन्दिरमे केवल गर्भगृह और प्रदक्षिणा-पथ हैं। इसकी प्रतिष्ठा जैन पंचान, मऊरानीपुरने करायी।

६२. **महावीर मन्दिर**—यह प्रतिमा मूँगिया वर्ण, खड्गासन और ६ फुट आकारवाली है। मन्दिरमें गर्भगृह और प्रदक्षिणा-पथ बने हुए हैं। प्रतिष्ठाकारक मऊरानीपुरकी जैन पंचायत है।

६३. **पार्श्वनाथ मन्दिर**—पार्श्वनाथकी मूर्ति खड्गासन, मूँगिया वर्ण और ६ फुट अवगाहनावाली है। मन्दिरमे गर्भगृह और प्रदक्षिणा-पथ है। इसकी प्रतिष्ठा श्री बरया ललितपुरने करायी थी।

६४. **पार्श्वनाथ मन्दिर**—यह मूर्ति पद्मासन, कृष्णवर्ण और १८ इंच ऊँची है। श्री पंछीलाल मैनपुरीवालोंने संवत् १९३० मे इसकी प्रतिष्ठा करायी।

६५ **चन्द्रप्रभ मन्दिर**—यह मूर्ति पद्मासन, श्वेतवर्ण और एक फुट ऊँची है। इसकी प्रतिष्ठा श्री देवाबाई, खुरजाने संवत् १९८० मे करायी। मन्दिरमें गर्भगृह और उसके चारो ओर प्रदक्षिणा-पथ बने है।

इस मन्दिरसे आगे एक छतरीमें किन्हीं मुनिराजके दो चरण-चिह्न बने हुए हैं।

६६. **सम्भवनाथ मन्दिर**—यह मूर्ति पद्मासन, श्वेतवर्ण और १० इंच ऊँची है। इसकी प्रतिष्ठा श्री अशरफीबाई, अलीगढ़ने संवत् १८८५ मे करायी। इस मन्दिरमे लघु गर्भगृह और प्रदक्षिणा-पथ है।

६७. **महावीर मन्दिर**—यह मूर्ति खड्गासन, मूँगिया वर्ण, ३ फुट ९ इंच अवगाहनावाली है। इस मन्दिरमे गर्भगृह और प्रदक्षिणा-पथ बने हुए हैं।

इस मन्दिरसे आगे एक गुफामें एक देवीकी मूर्ति है, उसकी गोदमें सात बच्चे हैं। इसके आगे दो छत्रियाँ बनी हुई है जिनमे दो चरण-चिह्न विराजमान हे।

६८. **महावीर मन्दिर**—यह मूर्ति पद्मासन, कत्थई वर्ण और २१ इंच ऊँची है। इस मन्दिरमें गर्भगृह और प्रदक्षिणा-पथ बने हुए हैं। प्रदक्षिणा-पथमे भगवान् चन्द्रप्रभकी मूर्ति विराजमान है। यह पद्मासन, कत्थई वर्ण और २ फुट अवगाहनावाली है। संवत् १८५१ मे इसकी प्रतिष्ठा हुई। इससे आगे बढ़कर एक कोनेमे एक ओर वेदी बनी हुई है, जिसमें एक शिलाफलकमे पद्मासन महावीर स्वामीकी प्रतिमा विराजमान है। सिरके ऊपर छत्रत्रयी बनी हुई है। शीर्षपर दोनों ओर गजलक्ष्मी और सर्प लिये हुए गन्धर्व दीख पड़ते है। मूर्तिके सिरके दोनों ओर खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हुई है। चरणोंके दोनों ओर चमरेन्द्र खड़े हैं। अधोभागमें दो सिंह बने हुए हैं।

६९. **आदिनाथ मन्दिर**—यह मूर्ति खड्गासन, मूँगिया वर्णकी और ३ फुट ऊँची है। श्री दयाराम, लश्करने इसकी प्रतिष्ठा करायी। मन्दिरमें गर्भगृह और प्रदक्षिणा-पथ बने हैं। यहाँसे

एक मार्ग बाजनी शिलाकी ओर गया है। रास्तेमें एक छत्रीमें क्षेत्रपाल विराजमान है। इससे आगे बढ़नेपर एक छोटा-सा कुण्ड बना हुआ है, जिसका आकार नारियल-जैसा है। इसलिए इसे नारियल-कुण्ड कहा जाता है। यह एक गज चौड़ा और लगभग १७ गज गहरा है। इसके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती है कि एक मुनिराजने प्याससे व्याकुल एक बालकको दुखी देखकर एक यात्रीसे नारियल फोड़नेके लिए कहा। नारियलके फूटते ही यहाँ एक कुण्ड उमड़ पड़ा। इसमें सभी ऋतुओंमें जल भरा रहता है। लोगोंका विश्वास है कि यदि कोई निःसन्तान व्यक्ति उस कुण्डमें बादाम डाले और बादाम जलके ऊपर तैरने लगे तो उसे अवश्य सन्तान प्राप्त होगी। इसके पास ही एक पहाड़ी शिला टिकी हुई है, जिसे बजानेसे मधुर ध्वनि निकलती है। उसे 'बाजनी शिला' कहते हैं। यह १५ फुट लम्बी और १० फुट चौड़ी है। इसके सिरेपर मनुष्यके सिरेके आकारका एक गहरा गड्ढा बना हुआ है। इनके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती प्रचलित है कि यहाँ एक मुनिराज तपस्या कर रहे थे। अकस्मात् इनके सिरपर यह शिला गिर पड़ी। पत्थरमें सिर धँस गया किन्तु मुनिराजके कोई चोट नहीं आयी। शिलामें मनुष्यके सिर समाने लायक गड्ढा है। नारियल-कुण्डके बगलमें मुनिराजके चरण बने हुए हैं।

७०. **पार्श्वनाथ मन्दिर**—मन्दिरमें एक छत्रीके नीचे ३ फुट ऊँची एक सर्वतोभद्रिका प्रतिमा विराजमान है, जिसमें चारों दिशाओंमें आदिनाथ, वासुपूज्य, अनन्तनाथ और कुन्थुनाथकी प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। वर्ण नील है।

७१. **पार्श्वनाथ मन्दिर**—यह प्रतिमा खड्गासन, मूँगिया वर्णकी और ६ फुट ऊँची है। इसकी प्रतिष्ठा चौधरी खड्गसेन बरैया करहियाने करायी। इस मन्दिरमें गर्भगृह और प्रदक्षिणा-पथ बने हुए हैं।

७२. **पार्श्वनाथ मन्दिर**—इसमें पार्श्वनाथकी खड्गासन, कृष्णवर्ण ४० इंचकी प्रतिमा विराजमान है। इसकी प्रतिष्ठा मगरौनीकी बरैया पंचायतने संवत् १८८४ में करायी थी। इसी मन्दिरमें एक और वेदी बनी हुई है, जिसके ऊपर भगवान् चन्द्रप्रभकी खड्गासन और ५ फुट ऊँची प्रतिमा विराजमान है। इसकी भी प्रतिष्ठा संवत् १८८४ में हुई। इस मन्दिरमें गर्भगृह और प्रदक्षिणा-पथ बने हुए हैं।

७३. **नेमिनाथ मन्दिर**—भगवान्की यह प्रतिमा खड्गासन, मूँगिया वर्ण और साढ़े चार फुटकी है। सिरके ऊपर तीन छत्र और सिरके पीछे भामण्डल बना हुआ है। अधोभागमें एक ओर यक्ष है तथा दूसरी ओर वृषभकी पीठपर चतुर्भुजी यक्षी आरूढ़ है। मन्दिरमें गर्भगृह और प्रदक्षिणा-पथ बने हुए है।

७४. **महावीर मन्दिर**—इस मन्दिरमें कुल सात वेदियाँ ऊपरके भागमें बनी हुई हैं। मुख्य वेदीपर भगवान् महावीरकी पद्मासन, श्वेतवर्ण, ३ फुट ऊँची प्रतिमा विराजमान है। इसकी संवत् १८३८ में प्रतिष्ठा हुई। इसके बायीं ओरकी वेदीपर कत्थई वर्ण, खड्गासन, २३ फुट ऊँची महावीर प्रतिमा विराजमान है तथा दायीं ओरकी वेदीपर मुनिसुव्रतनाथकी पद्मासन, श्वेतवर्ण, १ फुट अवगाहनावाली और संवत् १८२६ में प्रतिष्ठित प्रतिमा है। बरामदेमें पार्श्वनाथकी एक प्रतिमा विराजमान है जो कृष्णवर्ण, पद्मासन, १५ इंच ऊँची है और उसकी प्रतिष्ठा संवत् १९३० में हुई। एक दूसरे बरामदेमें गर्भगृहमें तीन वेदियाँ बनी हुई हैं। मध्य वेदीपर चन्द्रप्रभ भगवान्की श्वेतवर्ण, पद्मासन, डेढ़ फुट ऊँची प्रतिमा विराजमान है, जिसकी प्रतिष्ठा वीर संवत् २४७० में हुई। बायीं ओरकी वेदियोंपर कृष्णवर्ण, पद्मासन, १ फुट अवगाहनावाली पार्श्वनाथ प्रतिमाएँ हैं।

मन्दिरके नीचे भोंयरेमें पार्श्वनाथकी श्वेतवर्ण, पद्मासन, ४ फुट उन्नत प्रतिमा विराजमान है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १८३८ में हुई।

शान्तिनाथ भगवान्‌की एक मूर्ति श्वेतवर्ण, पद्मासन, डेढ़ फुट अवगाहनावाली यहाँ विराजमान है। इस वेदीका वीर संवत् २४९१ में जीर्णोद्धार हुआ था।

एक वेदीमे मुनिराजके चरण विराजमान हैं।

इसके कुछ आगे जानेपर क्षेत्रपालकी बड़ी मूर्ति मिलती है। इससे आगे आमने-सामने दो छत्रियाँ बनी हुई हैं। दोनोंमें चरण-चिह्न बने हुए हैं।

७५. **चन्द्रप्रभ मन्दिर**—इसमें भगवान् चन्द्रप्रभकी कृष्णवर्ण, पद्मासन, २१ फुट अवगाहनावाली मूर्ति विराजमान है, जिसकी प्रतिष्ठा संवत् १३५० में हुई। इस मूर्तिके बगलमें एक फुट ऊँची एक तीर्थंकर प्रतिमा विराजमान है। इस मन्दिरमें अर्धमण्डप और गर्भगृह बने हुए हैं।

७६ **चन्द्रप्रभ मन्दिर**—इसमें चन्द्रप्रभ भगवान्‌की प्रतिमा हलके पीले वर्णकी, खड्गासन मुद्रामें विराजमान है। यहाँ तीन मूर्तियाँ और हैं—(१) कृष्णवर्ण, पद्मासन पार्श्वनाथ, (२) श्वेतवर्ण, पद्मासन आदिनाथ और (३) श्वेतवर्ण, पद्मासन महावीर।

यहाँ गैलरीमें निकटवर्ती प्रदेशसे प्राप्त खण्डित और अखण्डित, प्राचीन मूर्तियोंका संग्रह सुरक्षित है। इनमें एक नीलवर्ण पार्श्वनाथकी पद्मासन प्रतिमा संवत् ११०१ की सम्मिलित है। प्रतिमा छोटी है किन्तु बहुमूल्य है—कलाकी दृष्टिसे भी और पुरातत्त्वकी दृष्टिसे भी।

७७. **महावीर मन्दिर**—यहाँ महावीर स्वामीकी डेढ़ फुट ऊँची श्यामवर्ण, पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसके परिकरमें हाथमें देवियाँ सर्प लिये हुए हैं, विमानमें दोनों ओर दो-दो देव-देवियाँ आ रहे हैं। चरणोंके दोनों ओर चमरेन्द्र भगवान्‌की सेवामें चमर लिये हुए खड़े हैं। पीठासनपर मध्यमें सिंह तथा दोनों ओर दो भक्त खड़े हुए हैं। इस मन्दिरमें एक दालान और गर्भगृह बने हुए हैं।

इसके सामने छत्रीमें चरण बने हुए हैं। उतरते समय मार्गमें एक छत्री और मिलती है। उसमें भी चरण है।

इस प्रकार जिस फाटकसे यात्रा प्रारम्भ की थी, उसीपर आकर पर्वतके सम्पूर्ण मन्दिरोंकी वन्दना पूर्ण होती है।

मनहरदेवके शान्तिनाथ भगवान्—मनहरदेव-क्षेत्रपर मूर्तिचोरोंने अनेक मूर्तियोंके सिर काट लिये। इससे इस निर्जन क्षेत्रपर शान्तिनाथ भगवान्‌की इस विशाल मूर्तिकी सुरक्षामें आशंका उत्पन्न हो गयी। फलतः पाड़ाशाह द्वारा प्रतिष्ठित शान्तिनाथ स्वामीकी यह प्रतिमा श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मनहरदेव चैतग्राम (जिला ग्वालियर) से विक्रम संवत् २०२५ में सोनागिरि सिद्धक्षेत्रपर लायी गयी और सुरक्षाकी दृष्टिसे भट्टारक चन्द्रभूषणजीकी कोठीमें अलग वेदी बनाकर प्रतिष्ठित की गयी। इतनी दूर लानेमें इसके होंठ और हाथमें साधारण क्षति पहुँची है। इसके दोनों ओर चमरधारिणी है। नीचे एक छोटी अर्हन्त प्रतिमा बनी हुई है।

भट्टारक गद्दी

क्षेत्रपर भट्टारकोंकी चार गद्दियाँ रही थीं। प्रायः सभी प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा इन्हीं गद्दियोंके भट्टारकों द्वारा की गयी है। यहाँकी भट्टारक गद्दी गोपाचल (ग्वालियर) के भट्टारककी एक शाखापीठ रही है। अभिलेखोंसे सिद्ध है कि भट्टारक विश्वभूषणके समय तक गोपाचल, सोनागिर और बटेश्वर ये तीनों स्थान एक ही भट्टारकके अधीन रहे। एक स्थानका भट्टारक तीनों स्थानों-

की देखभाल किया करता था। सोनागिर क्षेत्र मूलतः बलात्कारगणके भट्टारकों का था; अतः विश्वभूषणके पश्चात् यहाँकी गद्दीपर स्वतन्त्र रूपसे भट्टारक अभिषिक्त होने लगे। इस परम्परामें देवेन्द्रभूषण, जिनेन्द्रभूषण, नरेन्द्रभूषण एवं चन्द्रभूषण आदिके नाम उपलब्ध होते हैं। १५वीं शतीके अपभ्रंश भाषाके विद्वान् कवि रइधूने 'रिट्ठणेमिचरिउ' की प्रशस्तिमें सोनागिरिका उल्लेख कनकगिरिके नामसे किया है—

'कमल कित्ति उत्तम खम धारउ,
भव्वह भव-अंभोणिहि-तारउ।
तस्स पट्ट 'कणयद्दि' परिट्ठिउ,
सिरि सुहचन्द सु-तव-उक्कंठिउ।'

इसमें कमलकीर्ति भट्टारकके पश्चात् शुभचन्द्रका अभिषेक सोनागिरपर हुआ बताया गया है। कमलकीर्ति काष्ठासंघी, माथुरगच्छ और पुष्करगणके भट्टारक हेमकीर्तिके शिष्य थे। वि. सं. १५०६, १५१०, १५३० और १६३९ के अभिलेखोंसे ज्ञात होता है कि हेमकीर्तिके पट्टपर कमलकीर्ति, उनके पट्टपर शुभचन्द्र और उनके पट्टपर यशःसेन देव आसीन हुए। भट्टारक कमलकीर्तिने तत्त्वसारटीकाकी रचना की। यशःसेन द्वारा प्रतिष्ठापित एक दशलक्षण यन्त्र वि. सं. १६३९ का मिलता है।

कमलकीर्तिके दो शिष्य थे—शुभचन्द्र और कुमारसेन। सोनागिर क्षेत्रका अधिकार शुभचन्द्र और उनकी शिष्य-परम्पराके अधीन रहा। उनका अधिकार १७वीं शताब्दीके मध्य तक रहा, अर्थात् तबतक माथुरगच्छ और पुष्करगणके भट्टारक यहाँकी गद्दीके अधिकारी रहे। १७वी शताब्दीके उत्तरार्द्धसे यह क्षेत्र कुछ दिनों तक बलात्कारगणकी अटेर-शाखाके भट्टारकोंके हाथोंमें रहा।

जीर्णोद्धार

श्री चन्द्रप्रभ मन्दिरका जीर्णोद्धार संवत् १८८३ में जगत् सेठ लक्ष्मीचन्द्रजी मथुरावालोंने कराया था। उस समयके दो लेख मन्दिरमें उपलब्ध हैं। इनमें-से एक लेख, जो किसी जीर्ण मन्दिरके शिलालेखका सारांश बताया जाता है, इस प्रकार है—

मन्दिर सह राजत भये, चन्द्रनाथ जिन ईस।
पोशसुदी पूनम दिना, तीन सतक पैंतीस॥
मूल संघ अर गण करो (ह्यो) बलात्कार सम।
श्रवणसेन अरु दूसरे, कनकसेन दुइ भाई॥
नीजक अक्षर नांचके, कियो सु निश्चय राम।
और लिख्यो तो बहुत सो सो तहिं पर्यो लखाय॥
द्वादश सतक बरुतरा, पुन्यी जीवनसार।
पारसनाथ-चरण तरे, तासों विदी (धी) विचार॥

इसमें बताया है कि संवत् ३३५ पौष सुदी १५ का उक्त जीर्ण शिलालेख था। और उसमें मूलसंघ बलात्कारगणके श्रवणसेन-कनकसेन दो भाइयोंका उल्लेख था।

सम्भवतः प्राचीन लेख जीर्णोद्धारके समय चरणोंके नीचे लिखा हुआ था, उसके आधारसे यह संवत् उद्धृत किया गया और मूल लेख दब गया। यदि यह उल्लेख किन्हीं भी प्रमाणों या साक्ष्योंके आधारपर सत्य सिद्ध हो पाता तो वस्तुतः इसका ऐतिहासिक दृष्टिसे बड़ा महत्त्व होता।

किन्तु उक्त जीर्ण शिलालेख अस्पष्ट था, अतः उसका संवत् ठीक पढ़ा नहीं गया। अतः जो संवत् ३३५ दिया गया है, वह सही नहीं है। उसका कारण स्पष्ट है। लेखमें मूलसंघ बलात्कारगण दिया गया है, किन्तु ईसाकी तीसरी-चौथी शताब्दीमें बलात्कारगण था ही नहीं।

प्राचीन लेख अस्पष्ट होनेके कारण पढ़ा नहीं जा सका, यह बात लेख लिखनेवालेने भी स्वीकार की है। लगता है, यह संवत् ३३५ न होकर १०३५ रहा होगा, जो अस्पष्टताके कारण ३३५ पढ़ लिया गया। ज्योतिषकी काल-गणनाके अनुसार डॉ. नेमिचन्दजीने सिद्ध किया है कि संवत् १०३५ में पौष पूर्णिमा रविवारको पड़ती है। दिनाका अर्थ ज्योतिषशास्त्रके अनुसार रविवार भी होता है। अत. शुद्ध पाठ 'एक सहस्र पैंतीस' होना चाहिए। सारांशमें भगवान् पार्श्वनाथके पदतलके लेखका समय १२१२ संवत् दिया है अर्थात् इस संवत्की प्रतिमा उस समय यहाँ विद्यमान थी।

पुरातत्त्व

इस क्षेत्रकी मान्यता कबसे प्रचलित है अथवा यहाँ मन्दिर-निर्माणका अधिकतम काल कितना प्राचीन है, यह विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता। यहाँ सबसे प्राचीन मूर्ति वि. सं. १२३३ की है जो मन्दिर नं. १६ में विराजमान है। यदि उपर्युक्त ज्योतिष काल-गणनाके आधार-पर चन्द्रप्रभ मन्दिरके शिलालेखका काल वि सं. १०३५ मान लिया जाये तो सोनागिरिकी मान्यता ग्यारहवीं शताब्दी तक पहुँच जाती है। क्षेत्रपर चारो ओर ध्वंसावशेष बिखरा पड़ा है। उसमें-से कुछ सामग्री एक संग्रहालयमें (मन्दिर नं. ७६ में) रख दी गयी है। इस सामग्रीका अध्ययन अभी तक पूर्णतः नहीं किया गया है, किन्तु यह कहा जा सकता है कि यहाँ ११वीं शताब्दी तककी मूर्तियाँ सुरक्षित हैं।

क्षेत्रीय व्यवस्था

इस क्षेत्रकी व्यवस्था एक निर्वाचित प्रबन्धकारिणी कमेटीके अधीन है, और वह कमेटी भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटीके अन्तर्गत है। पर्वतके सभी मन्दिरोंकी व्यवस्था प्रबन्धकारिणी कमेटी करती है, जबकि तलहटीके मन्दिरों और धर्मशालाओंकी व्यवस्था विभिन्न पंचायतें करती है। धर्मशाला और दिल्लीवाले मन्दिरकी व्यवस्था प्रबन्धकारिणी कमेटी करती है।

धर्मशालाएँ—यात्रियोंको ठहरनेकी यहाँ पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध हैं। यहाँ तलहटीमे १५ धर्मशालाएँ बनी हुई हैं। यात्री इच्छानुसार किसी धर्मशालामें ठहर सकता है।

मेले—क्षेत्रपर वार्षिक मेला चैत कृष्णा १ से ५ तक भरता है। क्षेत्रपर वि. सं. १८८५ में गजरथ, वि. सं. २००७ मे मानस्तम्भ-प्रतिष्ठा और वीर सं. २४८० में बाहुबली–महामस्तकाभिषेक हुआ। इन अवसरोंपर उल्लेख-योग्य मेले भरे और हजारोंकी संख्यामे यात्री पधारे थे।

क्षेत्रपर स्थित संस्थाएँ—इस समय क्षेत्रपर नंगानंग पुस्तकालय, नंगानंग औषधालय और जैन संग्रहालय नामक तीन संस्थाएँ है। इनकी व्यवस्था क्षेत्रकी प्रबन्धकारिणी कमेटी करती है।

स्वर्णगिरि या श्रमणगिरि—प्राकृत निर्वाण-काण्डकी उपर्युक्त गाथाका तीसरा चरण कुछ विवादास्पद रहा प्रतीत होता है। इस विवादका कारण विभिन्न प्रतियोंमें पाठ-भेद है। किन्हीं प्रतियोंमे 'सुवण्णगिरिवर सिहरे' पाठ प्राप्त होता है। पहले पाठके अनुसार क्षेत्रका नाम सुवर्णगिरि है, जबकि दूसरे पाठके अनुसार इस निर्वाण-भूमिका नाम श्रमणगिरि है।

जो विद्वान् इस निर्वाण-क्षेत्रका नाम श्रमणगिरि मानते हैं, वे वर्तमान सोनागिरिको निर्वाण-क्षेत्र माननेके विरुद्ध हैं। उनका तर्क इस प्रकार है—

संस्कृत निर्वाण भक्तिके नौवें पद्यमें 'ऋष्यद्रिके' पाठ आया है। निर्वाण भक्तिकी टीका करते हुए श्री प्रभाचन्द्रने 'ऋष्यद्रिके' का अर्थ 'श्रमणगिरौ' किया है अर्थात् ऋषिगिरि ही श्रमणगिरि कहलाता था। निर्वाण भक्तिके उक्त श्लोकमें 'वैभार, विपुल और नलाहकके बीचमें' ऋषिगिरिका नाम आया है, अतः ऋषिगिरि राजगृहके पर्वतसे भिन्न नहीं हो सकता। राजगृह नगरके निकट पाँच पहाड़ हैं—वैभार, विपुल, उदय, रत्न और श्रमणगिरि (ऋषिगिरि)।

कुछ विद्वानोंने हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि भाषाओंमें 'तीर्थवन्दना' और जयमालाओं-की रचना की है। लगता है, इन कवियोंमें भी 'श्रमणगिरि' और 'सुवर्णगिरि'के बारेमें मतभेद रहे हैं। गुणकीर्ति (१५वीं शताब्दी) और चिमणा पण्डित (१७वीं शताब्दी) ने मराठी भाषामें 'तीर्थवन्दना'की रचना की है तथा मेघराज (१६वीं शताब्दी) ने गुजराती भाषामें 'तीर्थवन्दना' लिखी है। इन तीनों ही विद्वानोंने शवणागिरि, सिवनागिरि और सिवगागिरि शब्दोंका प्रयोग किया है, जिसका अर्थ होता है श्रमणगिरि। दूसरी ओर भट्टारक विश्वभूषण (१७वीं शताब्दी) ने हिन्दी-संस्कृत मिश्रित 'सर्व त्रैलोक्य जिनालय जयमाला' बनायी है तथा पं. दिलसुख (१९वीं शताब्दी) ने हिन्दी-संस्कृत मिश्रित 'अकृत्रिम चैत्यालय जयमाला' की रचना की है। इन दोनोंने ही 'सोनागिरि' शब्दका प्रयोग किया है।

यद्यपि सुवण्णगिरि, सवणागिरि, शवणागिरि, सिवणागिरि, सुवर्णगिरि और सोनागिरि आदि शब्द भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं तथा इन शब्दोंका प्रयोग करनेवाले लेखकोंमें इन शब्दोंको लेकर मतभेद प्रतीत होता है, किन्तु इन शब्दोंकी गहराईसे छानबीन करें तो कोई मतभेद प्रतीत नहीं होता। सुवर्णगिरिपर असंख्य श्रमण तपस्या करते थे, इसलिए सुवर्णगिरिको श्रमणगिरि भी कहा जाता था। ऋषिगिरिको भी श्रमणगिरि इसी अर्थमें कहा जाता था क्योंकि श्रमण साधु वहाँ तपस्या करते थे। वस्तुतः इन दोनों पर्वतोंका नाम श्रमणगिरि नहीं था, बल्कि इनका नाम तो सुवर्णगिरि और ऋषिगिरि ही था। नंग-अनंगकुमार आदि मुनि का समवसरण सुवर्णगिरिपर आया था। चन्द्रप्रभ भगवान्के चरित-ग्रन्थोंसे इसका समर्थन होता है। परम्परासे भी वर्तमान सोनागिरिको ही नंगानंगकुमार मुनियोंकी निर्वाण-भूमि होनेकी मान्यता चली आ रही है। अतः सोनागिरिको निर्वाण-भूमि माननेमें कोई बाधा नहीं है।

कुछ विद्वान् सोनागिरिके विरोधमें यह शंका प्रस्तुत करते हैं कि 'गोपाचल (ग्वालियर) में भट्टारक-पीठकी स्थापनाके पश्चात् सोनागिरिमें उसकी शाखा-पीठ स्थापित की गयी, अतः सोनागिरि गोपाचलकी शाखा-पीठके बाद तीर्थके रूपमें मान्य हुआ।' हमारी विनम्र मान्यता है कि सोनागिरिको एक निर्वाण-क्षेत्रके रूपमें उस समय भी मान्यता प्राप्त थी जबकि गोपाचल-की शाखा-पीठ वहाँ स्थापित भी नहीं हुई थी। जनता सोनागिरिको निर्वाण-क्षेत्र मानती थी, उसकी यात्रा करती थी, इसीसे तो आकर्षित होकर गोपाचलके भट्टारकने सोनागिरिमें अपनी शाखा-पीठ स्थापित की, अन्यथा उनके लिए सोनागिरिको शाखा-पीठ बनानेमें आकर्षण क्या था? दूसरी बात यह है कि गोपाचल और सोनागिरिमें कोई विशेष अन्तर नहीं है। फिर इतने निकट अपनी दूसरी गद्दी बनानेका अर्थ ही यह है कि उन दिनोंमें सोनागिरि क्षेत्रकी मान्यता बहुत अधिक थी। इसीसे प्रेरित होकर इतने निकट भट्टारकजीने अपनी दूसरी गद्दी स्थापित की। सोनागिरिकी मान्यताके लिए यह एक प्रबल तर्क है।

पनिहार-बरई

अवस्थिति और मार्ग

ग्वालियरसे आगरा-शिवपुरी रोडपर ३२ कि. मी. पर सड़कके दायीं ओर ८ फर्लांगपर बरई गाँव अवस्थित है तथा मुख्य सड़कसे बायी ओर पनिहारको मार्ग गया है। यद्यपि पनिहार ग्राम सड़कसे लगभग १ कि. मी. दूर पड़ता है, किन्तु सड़कसे लगभग ३ फर्लांग चलनेपर बायीं ओर एक टीला मिलता है। उसके बगलसे एक कच्चा मार्ग पनिहारके प्रसिद्ध मन्दिरको जाता है। यह मन्दिर अधिक दूर नहीं है।

पनिहारका चौबीसी मन्दिर

यह मन्दिर लाल पाषाणका निर्मित है। खुले आँगनके मध्यमें स्तम्भोंपर आधारित एक मण्डप (बारहदरी) बना हुआ है। मण्डपके दायीं और बायीं ओर दालान बने हुए हैं। उनमें एक-एक छोटी कोठरी है तथा भोंयरा बना हुआ है। दायीं ओरका भोंयरा तथा दोनों कोठरियाँ खाली हैं। किन्तु बायीं ओरके भोंयरेमें मूर्तियाँ हैं। मूर्तियोंकी कुल संख्या १८ है जो तीन पंक्तियोंमें विभाजित हैं। दायीं ओरकी वेदीपर ६, सामनेकी वेदीपर ५ और बायीं ओरकी वेदीपर ७। सभी मूर्तियाँ श्वेत पाषाण द्वारा निर्मित हैं और पद्मासन मुद्रामें हैं। दायीं ओरसे बायी ओर की मूर्तियोंका क्रम इस प्रकार है—

१.	ऋषभदेव	अवगाहना	पौने तीन फुट	पाठपीठपर	वृषभ	लांछन
२.	मुनिसुव्रतनाथ	,,	२ फुट ५ इंच	,,	कच्छप	,,
३.	सम्भवनाथ	,,	३ फुट	,,	घोड़ा	,,
४.	मल्लिनाथ	,,	सवा दो फुट	,,	कलश	,,
५.	ऋषभदेव	,,	साढ़े तीन फुट	,,	वृषभ	,,
६	चन्द्रप्रभ	,,	ढाई फुट	,,	चन्द्र	,,
७.	सुपार्श्वनाथ	,,	पौने तीन फुट	,,	स्वस्तिक	,,
८.	शान्तिनाथ	,,	सवा दो फुट	,,	हिरण	,,
९.	धर्मनाथ	,,	३ फुट	,,	वज्रदण्ड	,,
१०.	मुनिसुव्रतनाथ	,,	३ फुट	,,	कच्छप	,,
११.	अजितनाथ	,,	सवा दो फुट	,,	हाथी	,,
१२.	शान्तिनाथ	,,	सवा दो फुट	,,	हिरण	,,
१३.	अजितनाथ	,,	३ फुट	,,	हाथी	,,
१४.	शान्तिनाथ	,,	२ फुट २ इंच	,,	हिरण	,,
१५	पद्मप्रभ	,,	ढाई फुट	,,	कमल	,,
१६.	अनन्तनाथ	,,	पौने तीन फुट	,,	सेही	,,
१७.	अजितनाथ	,,	ढाई फुट	,,	हाथी	,,
१८.	शीतलनाथ	,,	सवा दो फुट	,,	कल्पवृक्ष	,,

इस मन्दिर और मूर्तियोंको देखकर ऐसा लगा कि यह कोई मन्दिर नहीं, यह तो निषधिका या समाधि-स्थान होगा। यहाँकी मूर्तियाँ भी इस स्थानकी नहीं लगती। सम्भव है, ये किसी दूसरे

जिनालयमें विराजमान रही होंगी और जब उस स्थानपर संकट आनेकी सम्भावना प्रतीत हुई होगी तो ये मूर्तियाँ इस मन्दिरमें और बादमें भोंयरेमें सुरक्षित पहुँचा दी गयी होंगी। इन मूर्तियोंके सम्बन्धमें जनतामें एक भ्रम व्याप्त है। मूर्तियोंकी २४ संख्याको देखकर जनतामें यह धारणा जम गयी है कि ये मूर्तियाँ चौबीस तीर्थंकरोंकी हैं, इसलिए लोग इन्हें चौबीसी कहते हैं। इन २४ मूर्तियोंमें-से २ मूर्तियाँ प्यारेलालजीका मन्दिर, मामाका बाजार, लश्करमें विराजमान कर दी गयी हैं। ४ मूर्तियाँ खण्डित कर दी गयीं जो इसी भोंयरेमें रखी हुई हैं। शेष १८ मूर्तियाँ यहाँ विराजमान हैं। इन मूर्तियोंकी चरणचौकीपर उत्कीर्ण चिह्नोंको देखनेपर यह स्वीकार करना पड़ता है कि ये सभी २४ तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ नहीं हैं, अतः उस अर्थमें इन्हें चौबीसी नहीं कहा जा सकता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये मूर्तियाँ मूर्ति-कलाका मूर्तिमान रूप हैं। इन मूर्तियोंमे अद्भुत द्वन्द्वके दर्शन होते हैं। मुखपर अद्भुत सुकुमारता झलक रही है, किन्तु उनकी भुजाएँ और श्रीवत्स लांछन-युक्त मांसल और चौड़ी छाती उनके विश्वविजयी वीर होनेका संकेत करती हैं। उनके चेहरेपर लास्ययुक्त हास्य फूटा पड़ता है किन्तु उनके होंठोंपर विरागकी अभिव्यंजना है।

इन मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा इनके मूर्ति-लेखोंके अनुसार विक्रम संवत् १४२९ में हुई। उस समय दिल्लीपर फीरोजशाह तुगलक शासन कर रहा था। वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसने कुछ मन्दिर-मूर्तियोंको तुड़वाया तथा नवीन मन्दिरोंके निर्माणपर प्रतिबन्ध लगा दिया। किन्तु जबसे उसने नन्दिसंघके भट्टारक प्रभाचन्द्रको—जो दिगम्बर मुनि थे—अपने महलोंमे बुलाकर उनसे उपदेश सुना था, लगता है, तबसे जैनोंके प्रति वह कुछ उदार बन गया था। अथवा दिल्लीसे सुदूर इस प्रदेशमे उसके आदेश कठोरतापूर्वक लागू नहीं किये जा सकते थे, अतः भक्तोंने इन भव्य मूर्तियोंका निर्माण कराया। विश्वासपूर्वक यह कह सकना कठिन है कि इन मूर्तियोंका निर्माण यहीं हुआ अथवा किसी दूसरे स्थानपर हुआ; यह भी नहीं कहा जा सकता कि इन मूर्तियोका पाषाण किस खानसे निकाला गया। किन्तु इन मूर्तियोंके अनुपम शिल्प-सौन्दर्यको देखकर यही कहा जा सकता है कि इस कालमें (१४–१५वी शताब्दीमे) मूर्ति-कला अत्यन्त समुन्नत हो चुकी थी। इन मूर्तियोंपर चन्देल कलाका प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

उस कालमें यहाँ जैनोंकी संख्या पर्याप्त रही होगी, किन्तु अब असुरक्षाका भय और जीविकोपार्जनके साधन न होनेके कारण यहाँके जैन ग्वालियर आदि नगरोंमें चले गये। पनिहार ग्राममें अब जैनोंके दो-एक घर ही शेष बचे हैं। ग्राममें जैन मन्दिर भी है। इन जैन बन्धुओंको ही ग्रामके मन्दिर और उक्त चौबीसी मन्दिरकी व्यवस्था करनी पड़ती है, अतः सन्तोषजनक व्यवस्था हो नहीं पाती।

बरई

मुख्य सड़कसे दायीं ओर एक सड़क जाती है। उससे ८ फर्लांग जाकर बरई ग्राम है। ग्राममें कोई जैन नहीं है। सम्भवतः प्राचीन कालमें यहाँ जैन अच्छी संख्यामें रहते होंगे। यहाँ जो भी मन्दिर और मूर्तियाँ मिलती हैं, वे सब तोमर शासनकालकी हैं। लगता है, जब पनिहारमें मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा हुई थी, उस समय बरईमें कोई जैन मन्दिर या मूर्ति नहीं थी। पनिहारकी मूर्तियोंके लगभग १०० वर्ष बाद बरईमें मन्दिरों और मूर्तियोंका निर्माण हुआ। इस समय यहाँ दो स्थानोंपर जैन मन्दिर उपेक्षित दशामें खड़े हुए हैं। जब मुख्य सड़कसे बरई गाँवकी ओर जाते हैं, उस समय लगभग ५ फर्लांग चलनेपर दायें हाथ एक कच्चा मार्ग जाता है। उससे ३ फर्लांग

चलनेपर एक भग्न मन्दिर मिलता है। कहते हैं, यह जैन मन्दिर था। यह तोमरवंशी मानसिंह नरेशके कालका बना हुआ है। वर्तमानमें इसमें कोई मूर्ति नहीं है।

यहाँसे लगभग ३-४ फर्लांग आगे जानेपर एक ऊँचे टीलेपर प्राचीन जैन मन्दिरोंके भग्नावशेष विस्तृत भूभागमें बिखरे पड़े हैं। भग्नावशेषोंके मध्य एक जीर्ण-शीर्ण जैन मन्दिर खड़ा हुआ है, मानो जरासे जर्जरित वह अपनी मृत्युकी घड़ियाँ गिन रहा हो। मन्दिरमें केवल गर्भगृहका ही कुछ भाग अवशिष्ट है। उसमें लगभग १८ फुट उन्नत तीर्थंकर-मूर्ति कायोत्सर्गासनमें विराजमान है। उसका सिर काट लिया गया है। इसके अतिरिक्त हाथ, लिंग और पैर भी खण्डित हैं। मूर्तिका पीठासन मिट्टीमे दबा हुआ है। मूर्तिके बायी ओर यक्षी खड़ी है। कानोंमें कुण्डल, गलेमे गलहार है। घुटनोंसे नीचेका भाग दबा हुआ है। दूसरी ओर यक्षकी मूर्ति नही है, सम्भवतः वह नष्ट कर दी गयी। मूर्तिके अभिषेकके लिए दोनों पार्श्वोंमे कुछ सीढ़ियाँ हैं। मन्दिरके ऊपर विशाल शिखर बना हुआ है जो मीलों दूरसे दिखाई देता है। मन्दिरका द्वार और मूर्तिके पृष्ठभागकी दीवार टूटी पड़ी है। गर्भगृहमें मलबा पड़ा हुआ है।

वहाँसे लौटकर उसी स्थानपर पहुँचते हैं जहाँसे कच्चा मार्ग प्रारम्भ हुआ था। वहाँसे बायी ओरको एक मार्ग एक ऊँचे टीलेकी ओर गया है। वहाँके मन्दिर और शिखर दूरसे ही दिखाई पड़ते हैं। लगभग ६ फर्लांग चलनेपर एक पक्का अहाता मिलता है, जिसमे एक ही पंक्तिमे ४ गर्भगृह बने हुए हैं तथा प्रत्येकके ऊपर विशाल शिखर निर्मित हैं। चारों ही शिखर विशाल हैं।

चारों गर्भगृहोंका परिचय दायीं ओरसे बायी ओर को—

प्रथम गर्भगृहका द्वार पाषाण-निर्मित है। द्वारके शीर्ष पर तीन कोष्ठकोंमें तीन पद्मासन (प्रत्येक कोष्ठकमें एक) अर्हन्त प्रतिमाएँ है। मध्यकी प्रतिमाका आकार सवा फुट और दोनों ओरकी प्रतिमाओंका आकार एक फुट है। द्वारके स्तम्भोंमे सूक्ष्म अलंकरण हैं तथा स्तम्भोंमें नीचेके भागमें द्वारपाल बने हुए हैं।

द्वारसे दो सीढ़ियाँ नीचे उतरकर गर्भगृहमे पहुँचते हैं। गर्भगृह लगभग १२ फुट लम्बा और इतना ही चौड़ा है। इसमे १६ फुट ऊँची तीर्थंकर-प्रतिमा कायोत्सर्गासनमे विराजमान है। प्रतिमाके दोनो ओर चमरवाहिका खड़ी हुई है। प्रतिमाका अभिषेक करनेके लिए दोनों ओर सीढ़ियाँ तथा प्रतिमाकी छातीके सामने पाषाण-पट्टिका (प्लेटफॉर्म) बनी हुई है।

दूसरे गर्भगृहके द्वारपर भी तीन पद्मासन अर्हन्त प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। गर्भगृहमें १८ फुट ऊँची खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। मूर्ति-लेखके अनुसार इसकी प्रतिष्ठा विक्रम संवत् १५२६ वैशाख सुदी ६ को हुई थी। पादपीठपर शंख-लांछन बना हुआ है। अतः यह मूर्ति बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथकी है। मूर्ति बड़ी भव्य है। मूर्तिके सिरपर अद्भुत केशवलय है। घुटनोंसे ऊपर दोनों ओर कमलपुष्प हाथमे लिये हुए दो देव खडे हैं। उनके नीचे दोनों ओर वाद्य-यन्त्र लिये और अलंकार धारण किये हुए गन्धर्व खड़े हैं। उनके नीचे यक्ष और यक्षी (गोमेद और अम्बिका) खडे हुए हैं।

बायीं ओर पीठासनपर ८ फुट ऊँची एक तीर्थंकर मूर्ति खड्गासनमें विराजमान है किन्तु मूर्तिचोर इसका सिर काटकर ले गये।

तीसरे गर्भगृहके पाषाण-द्वारके ऊपर एक अर्हन्त-प्रतिमा बनी हुई है। अन्दर १३ फुट ऊँची खड्गासन मुद्रामें तीर्थंकर-प्रतिमा विराजमान है।

चौथे गर्भगृहके द्वारमें भी एक अर्हन्त-प्रतिमा बनी हुई है। गर्भगृहमें विशाल तीर्थंकर-प्रतिमा बनी हुई है, किन्तु इसका भी सिर मूर्तिचोर काटकर ले गये।

यद्यपि इस प्राचीन मन्दिरकी दशा अभी बहुत शोचनीय नहीं है किन्तु कोई व्यवस्था और देखभाल न होनेसे मन्दिरको क्षति पहुँच रही है। अहाता टूटा हुआ है। अतः अवांछनीय लोगों और पशुओंका यहाँ अव्याहृत प्रवेश है। गर्भगृहोंमें किवाड़ नहीं हैं। गर्भगृहोंके द्वारोंपर कँटीली झाड़ियाँ लगी हुई हैं, जिस किसी प्रकार इन्हें हटाकर भीतर प्रवेश भी किया जाये तो गर्भगृहोंमें कूड़ा-कचरा पड़ा हुआ है। चमगादड़ों, ततैयों और मकड़ियोंने सारे गर्भगृहोंको अपना डेरा बना लिया है। देखभाल न होनेके कारण ही यहाँ दो मूर्तियोंके शिर कट चुके हैं। इस मन्दिरके चारों ओर जंगल है। आसपासमें भग्नावशेष बिखरे पड़े हैं। यहाँके जंगलोंमें-से भगवान् शान्तिनाथकी १८ फुट ऊँची एक मूर्तिको ले जाकर नसियाजी रामकुई, लश्करमें विराजमान कर दिया गया है। सुरक्षाकी दृष्टिसे यह कार्य बहुत प्रशंसनीय कहा जायेगा। किन्तु उचित यही है कि प्राचीन मूर्तियाँ अपने मूल स्थानपर रहें और वहीं उनकी सुरक्षाकी समुचित व्यवस्था हो। इसका अपना पृथक् ऐतिहासिक महत्त्व है।

खनियाधाना और उसके निकटवर्ती क्षेत्र

मार्ग

खनियाधाना मध्यप्रदेशमें सेण्ट्रल रेलवेके बसई स्टेशनसे ३७ कि. मी., चन्देरीसे ५३ कि. मी. और शिवपुरीसे १०२ कि. मी. दूर है।

प्राचीन मूर्तियाँ

यहाँ दो दिगम्बर जैन मन्दिर हैं। इनमें-से एक मन्दिरमें वि. सं. ११००, १२१० और १३१८ की प्राचीन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। मन्दिरके सामने एक प्राचीन मानस्तम्भ भी है।

इस क्षेत्रको चौरासी दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कहते हैं। इसकी एक कमेटी है तथा इसका कार्यालय यहींपर है। यहाँ तथा इसके निकट अनेक स्थान ऐसे हैं जहाँ जैन पुरातत्त्वकी सामग्री प्रचुर मात्रामें मिलती है। इस सामग्रीमें मन्दिर, मूर्तियाँ, मानस्तम्भ और अभिलेख सम्मिलित हैं। यह सामग्री प्रायः ईसा की दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दीके बादकी है। इनके निर्माता जैन श्रावक-श्राविका ही थे। यह काल चन्देल, कलचुरि, प्रतिहार आदि वंशोंके उत्कर्ष-अपकर्षका रहा है किन्तु इन वंशोंके नरेशोंने कला और संस्कृतिको पूर्ण प्रश्रय और संरक्षण प्रदान किया था। फलतः इस कालमें इन नरेशोंके राज्योंमें हिन्दू और जैन संस्कृति एवं कलाको पल्लवित होनेका समुचित अवसर मिला। इस काल तक बौद्ध धर्म भारतसे प्रायः लुप्त हो चुका था। अतः इस कालमें बौद्ध कला निष्क्रिय रही।

इस कालमें अन्य स्थानोंके समान खनियाधाना और उसके निकटवर्ती स्थानोंपर भी जैन कलाकी बहुविध संरचना हुई, कलाके नव-नवीन रूपोंकी उद्भावना हुई और कलाके क्षितिजपर नये आयाम प्रकाशमें आये। इस बातका समर्थन खनियाधानाके आसपास मिलनेवाली प्रचुर जैन पुरातन सामग्री और उसके भग्नावशेषोंसे सहज ही हो जाता है।

यहाँ ऐसे ही कुछ क्षेत्रोंका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। ये सब शिवपुरी जिलेमें हैं।

गूड़र

यह एक छोटा-सा गाँव है। यह खनियाधानासे ८ कि. मी. दूर एक पहाड़ीकी तलहटीमें स्थित है। यहाँ कई खेतोंमें जैन प्रतिमाएँ खण्डित दशामें पड़ी हुई हैं। कुछ प्रतिमाओं-पर की गयी ओपदार पालिश विशेष दर्शनीय है। गाँवके एक कुएँमें दो जैन प्रतिमाएँ चिनी हुई हैं। कुएँको ध्यानपूर्वक देखनेसे ज्ञात होता है कि इस कुएँमे जो सामग्री प्रयुक्त की गयी है, वह किसी या किन्ही प्राचीन जैन मन्दिरोंकी है।

यहाँपर पहाड़ीके ऊपर एक प्राचीन जैन मन्दिर बना हुआ है। इसके चारों ओर प्राचीन मन्दिरोंके भग्नावशेष बिखरे पड़े हैं। मन्दिरकी दशा ठीक है। एक मन्दिर गांवमें है, जिसकी प्रतिष्ठा वि. सं. १७१८ में हुई थी। मन्दिरके सामने वि. सं. १८१२ का बना हुआ मानस्तम्भ है। मन्दिरोंके अवशेषोंको देखकर ऐसा लगता है कि कभी यहाँपर जैनोंकी संख्या और दशा काफी अच्छी रही होगी किन्तु आजकल तो वहाँ केवल चार-पाँच ही जैन गृहस्थ रहते हैं।

गोलाकोट

यह क्षेत्र गूड़र ग्रामसे प्रायः ३ कि. मी. और खनियाधानासे ६ कि. मी. है। गूड़र ग्रामसे आधा मील चलनेपर एक रमणीय सरोवर मिलता है। इस सरोवरमें एक बाँध द्वारा पानी दिया जाता है। गोलाकोट क्षेत्रका मार्ग बाँधके ऊपर होकर ही जाता है। बाँधका मार्ग समाप्त होते ही गोलाकोट पहाड़ी मिलती है। पहाड़ीका आकार गोल है, सम्भवतः इसीलिए इसका गोलाकोट नाम पड़ा है। तलहटीमे एक भव्य सरोवर है जिसके तटपर झाँकती हुई पहाड़ी और पहाड़ीके मार्गके दोनों ओर हरसिंगारके वृक्ष यात्रीके स्वागतमें पुष्प विकीर्ण करते हुए बड़े सुन्दर प्रतीत होते हैं।

मार्ग पैदलका है। पहाड़ीपर चढ़ते ही कुछ दूरपर एक छतरी दिखाई पड़ती है। उससे कुछ आगे मन्दिरकी चहारदीवारी दीखने लगती है। यह चहारदीवारी या कोट लगभग ८० फुटका है। कहीं-कहीं कोटकी दीवार गिर चुकी है। इस कोटके भीतर ही विशाल जैन मन्दिर बना हुआ है। यहाँपर ११९ मूर्तियाँ हैं। पहले यहाँपर १४५ मूर्तियाँ थी। इन मूर्तियोंपर वि. संवत् १००० से १२०० तक अर्थात् ई. स. ९४३ से ११४३ तकके लेख मिलते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि ये मूर्तियाँ और मन्दिर १०वीं शताब्दी या उससे पूर्व निर्मित हुए थे। असुरक्षित अवस्थामे रहनेके कारण मूर्तिभंजकों और कर्तकोंने कुछ मूर्तियाँ नष्ट कर दीं।

यह क्षेत्र शिवपुरी जिलेमें है।

पचराई

श्री दिगम्बर जैन अतिशय-क्षेत्र पचराई मध्यप्रदेशके शिवपुरी जिलेमें है। यह खनियाधाना-से १६ कि. मी. है। सेण्ट्रल रेलवेके बसई स्टेशनसे यह स्थान खनियाधाना होकर ४८ कि. मी. पड़ता है। तथा कोटा-बीना लाइनपर टकनेरी स्टेशनसे ईसागढ़ होकर यह ५६ कि. मी. पड़ता है। ईसागढ़से यह कच्चे मार्गसे १७ कि. मी. है।

यहाँके सभी मन्दिर एक परकोटेके अन्दर हैं। यहाँ कुल २८ मन्दिर हैं। परकोटेके दो भाग हैं। सभी मन्दिर शिखरबद्ध हैं। मुख्य मन्दिर भगवान् शीतलनाथका है। शीतलनाथकी मूर्तिकी अवगाहना १२ फुट है और वह खड्गासन है। यहाँकी मूर्तियोंमें एक मूर्ति, जो श्वेत पाषाणकी है, नवीन है और शेष सभी मूर्तियाँ प्राचीन हैं। इन सब मूर्तियोंपर चमकदार पालिश

की हुई है, जो अभी तक यथावत् है। कहते हैं, यह पालिश हीरेकी घोटसे की हुई है। यहाँ अधिकतम प्राचीन प्रतिमा ११वीं शताब्दीकी विद्यमान है। इससे स्पष्ट है कि यह क्षेत्र ११वीं शताब्दीसे अस्तित्वमें आया है। यहाँकी कुछ मूर्तियाँ खण्डित कर दी गयी हैं।

इन मन्दिरोंके पृष्ठ भागमें एक तालाब है। परकोटेके अन्दर एक धर्मशाला और एक कुआँ है। परकोटेके आगे बहुत बड़ा मैदान है। पचराई गाँव यहाँसे आधा मील दूर है। इस गाँवमें कोई जैन नहीं है। यहाँसे २ कि. मी. पर पिपरौदा नामक गाँव है। वहाँ जैनोंके कुछ घर हैं।

यहाँ पहले प्रतिवर्ष माघ शुक्ला प्रतिपदासे पंचमी तक वार्षिक मेला लगता था। इस अवसरपर विमानोत्सव भी मनाया जाता था।

निकटवर्ती पुरातत्त्व—खनियाधानाके आसपास अनेक स्थानोंपर प्राचीन जैन मूर्तियों और मन्दिरोंके भग्नावशेष विपुल परिमाणमें उपलब्ध होते हैं। इन स्थानोंमें एक स्थान तुमैन है। प्राचीन कालमें इसका नाम सम्भवतः तुम्बवन था। ग्रीक इतिहासकार टोलेमी (Ptolemy) ने थोलोबन (Tholobana) का उल्लेख एक प्राचीन महत्त्वपूर्ण स्थानके रूपमें किया है। कनिंघमने इसकी पहचान बहुरीबन्दसे की है और लिखा है कि इस प्राचीन नगरके आसपास कई स्थानोंपर गुप्तकालके मन्दिर उपलब्ध होते हैं। किन्तु हमारी विनम्र मान्यता है कि टोलेमीका थोलोबन बहुरीबन्द नहीं है, बल्कि वर्तमान तुमैन है, जिसका कि प्राचीन नाम 'तुम्बवन' था। बहुरीबन्दमें गुप्तकालकी कोई सामग्री प्राप्त नहीं हुई, जबकि तुमैनमें गुप्त संवत् ११६ (ई. सं. ४३५) का एक संस्कृत अभिलेख उपलब्ध हुआ है, जिसमें एक हिन्दू मन्दिरके निर्माणका उल्लेख है। यहाँपर जैन मन्दिरोंके अवशेष और खण्डित जैन मूर्तियाँ मिलती हैं जिनका निर्माण-काल ईसाकी पाँचवीं शताब्दीसे लेकर ग्यारहवीं शताब्दी तक अनुमान किया जाता है। यहाँकी कई मूर्तियाँ गुप्तकालीन शैलीसे अधिक समानता रखती है। यहाँ एक विशाल पद्मासन जैन मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है, जिसे स्थानीय लोग 'बैठा देव' के नामसे पुकारते और पूजते हैं।

दूसरा गाँव है तेरही। यह स्थान महुआसे २ कि. मी. है और पचराई से ६ कि. मी.। यहाँ कुछ जैन मूर्तियाँ खेतोंमें पड़ी हुई हैं। छह फुट ऊँचा एक मानस्तम्भ भी यहाँपर है। पुरातत्त्व विभागकी ओरसे यहाँ एक संग्रहालय भी बना हुआ है। यहाँ १०वीं शताब्दीके दो मन्दिर भी बने हुए हैं। इनमें जो बड़ा मन्दिर है, वह गाँवके बीचमें बना हुआ है तथा छोटा मन्दिर गाँवके बाहर है। इस मन्दिरके सामने, मन्दिरसे २० फुट दूर अत्यन्त अलंकृत तोरणद्वार बना हुआ है। यह २० फुट ऊँचा है और मन्दिरके समान चौड़ा है।

इसके पास ही दो अभिलिखित स्तम्भ पड़े हुए हैं। दोनोंपर ही विक्रमकी दसवीं शताब्दीके लेख अंकित हैं। एक स्तम्भके लेखानुसार वि. सं. ९१० भाद्रपद वदी ४ शनिवारको मधुवनके महासामन्ताधिपति श्री गुणराज उण्ड भटने श्री चण्डी मन्दिरको भेंट की। दूसरा लेख अस्पष्ट है। जो पढ़ा जा सका, उसके अनुसार वि. सं. ९२० भाद्रपद वदी १४ शनिवारको श्री द ......भटने देवी अम्बिका भेंट की। यह स्तम्भ अम्बिका देवीके मन्दिरका होगा और सम्भवतः यह अम्बिका बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथकी यक्षी होगी। यदि हमारा यह अनुमान सही हो तो कहना होगा कि १०वीं शताब्दीमें यहाँपर तीर्थंकर नेमिनाथका मन्दिर रहा होगा और उसमें उनकी यक्षी अम्बिकाकी भी मूर्ति होगी।

इसी प्रकार निवोदा, देखो, महुआ, इन्दौर, सकर्रा, लखारी, सिमलार आदि कई निकटवर्ती स्थान हैं जहाँ जैन मूर्तियाँ मिलती हैं। निवोदा खनियाधानासे १३ कि. मी. है। यहाँ कुछ खण्डित जैन मूर्तियाँ पड़ी हुई हैं। देखो गाँव खनियाधानासे १९ कि. मी. है। यहाँ दो मूर्तियाँ पड़ी हुई हैं

जो काट दी गयी हैं। महुआ पचराईसे ५ कि. मी. है। यहाँ खण्डित जैन मूर्तियाँ मिलती हैं। इन्दौर खनियाधानासे ३२ कि. मी. है। यहाँ मन्दिरोंके भग्नावशेष बहुत दूर तक बिखरे पड़े हैं। उनसे लगता है कि प्राचीन कालमें यहाँ अनेक जैन मन्दिर रहे होंगे। आसपासके गाँवोंके बहुत-से घरोंमें दीवारोंमें जैन मूर्तियाँ चिनी हुई हैं। यह भी सुननेमें आया कि लगभग ३०-३५ वर्ष पहले यहाँसे कुछ लोग १२ लारियोंमें मूर्तियाँ भरकर ले गये थे। इसमें कहाँ तक सत्यांश है, यह नहीं कहा जा सकता। इन्दौर एक छोटा-सा ग्राम है।

सकर्रा इन्दौरसे ३ कि. मी. है। यहाँ ३ जैन मन्दिरोंके भग्नावशेष पड़े हुए हैं तथा ४ जैन प्रतिमाएँ भी है। खुले मैदानमें एक मानस्तम्भ अब तक सुरक्षित दशामें खड़ा है। लखारी गाँव खनियाधानासे २९ कि. मी. दूर है। यहाँ कई मन्दिरोंके अवशेष बिखरे पड़े हैं तथा २५ जैन मूर्तियाँ इधर-उधर पड़ी हुई हैं। सिमलार खनियाधानासे लगभग २२ कि. मी. है और लखारीके मार्गमें पड़ता है। सन् १९६० में यहाँ एक किसानको हल चलाते समय भगवान् पार्श्वनाथकी सवा फुट ऊँची एक प्रतिमा मिली थी। जैनोंको जब ज्ञात हुआ तो वे आकर उसे विनयपूर्वक ले गये और खनियाधाना-क्षेत्रपर विराजमान कर दिया जो अब भी वहाँ विद्यमान है। प्रतिमा सांगोपांग और अत्यन्त मनोज्ञ है।

बजरंगढ़

अवस्थिति

श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय-क्षेत्र बजरंगढ़ गुना मण्डलके मुख्यालय गुनासे ७ कि. मी. दक्षिण दिशाकी ओर है। यह क्षेत्र तो समतल भूमिपर अवस्थित है किन्तु चारों ओरकी पर्वतमालाओंके कारण यहाँका प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त मनोहर और नयनाभिराम हो गया है। यहाँका सबसे बड़ा अतिशय यहाँपर विराजमान भगवान् शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथकी कायोत्सर्ग मुद्रामें अवस्थित भव्य प्रतिमाएँ हैं। इनकी प्रतिष्ठा जिनेन्द्रभक्त पाड़ाशाह द्वारा संवत् १२३६ मे की गयी थी। इन प्रतिमाओंका अनिन्द्य कला-सौष्ठव, भावाभिव्यंजना और शिल्प-विधान अनुपम है। इनके दर्शन करते ही मनमें आह्लाद, भक्ति और अध्यात्मकी पावन मन्दाकिनी प्रवाहित होने लगती है। भगवान् शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ तीनों ही चक्रवर्ती थे तथा मनुष्यको उपलभ्य सम्पूर्ण सम्पदाके स्वामी थे। तीनों ही कामदेव थे, उन्हें अनिन्द्य रूपछटा उपलब्ध थी। उनके अन्तःपुरमें ९६००० स्त्रियाँ थी, मानो संसार-भरका समवेत रूप-सौन्दर्य वही एक स्थानपर आ जुटा हो। इस प्रकार उन्हें अनुपम रूप, भोगकी सामग्री और भोगकी शक्ति सब-कुछ प्राप्त थी। किन्तु संसारके इन भोगोंको क्षणिक जानकर उन्होंने संसारसे विराग ले लिया और आत्मकल्याणकी राहपर चल पड़े। उन्होंने निष्ठा, संकल्प और साधनाके द्वारा अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया और वे शुद्ध बुद्ध सच्चिदानन्द परमात्मा बन गये। इन तीनों विशाल प्रतिमाओंकी भावाभिव्यक्ति इन्हीं भावोंको लेकर हुई है। प्रतिमाओंकी मुखमुद्रा सौम्य और शान्त है। साथ ही उनके ऊपर विरागकी छवि स्पष्ट अंकित है। उनके मुखपर कामदेवकी रूप-माधुरी है। उनके शरीरमें लोकविजेताकी शक्ति है। इसी शक्तिसे उन्होंने कामदेवको भी विजित कर लिया था। इन्ही भावोंका अंकन इन प्रतिमाओंपर हुआ है।

प्रतिष्ठाकारक पाड़ाशाह

इन प्रतिमाओंके प्रतिष्ठाकारक श्री पाड़ाशाहके जीवनपर इतिहास-ग्रन्थों अथवा मूर्ति-लेखोंसे विशेष कुछ प्रकाश नहीं पड़ता है। किंवदन्तियोंसे इतना ही ज्ञात होता है कि श्री पाड़ाशाह गहोई नामक वैश्य जातिके रत्न थे। वे चन्देरी परगनेके थूबोन गांवके रहनेवाले थे। जैन धर्ममें उनकी अगाध आस्था थी। वे एक कुशल व्यापारी थे। अतः उनके ऊपर लक्ष्मीकी भी कृपा थी। इस मन्दिर और प्रतिमाओंके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती बहुप्रचलित है कि पाड़ाशाह पाड़ों (भैंसों) पर माल लादकर बनिज किया करते थे। सम्भवतः इसी कारण उनका नाम पाड़ाशाह पड़ गया। एक बार वे बजरंगढ़की ओर जा रहे थे। पठारपर उनका एक पाड़ा गुम हो गया। इससे श्री पाड़ाशाह बड़े परेशान हुए। वे पाड़ेकी खोज करते-करते पठारपर जा रहे थे, तभी उन्हें एक पारस पथरी मिली। पारस पथरी पाकर उनके मनमें धर्म-भावना प्रबल हो उठी। उन्होंने मन्दिर और मूर्तियां निर्मित करके उनकी प्रतिष्ठा करनेका संकल्प किया और सबसे प्रथम बजरंगढ़में ही पाड़ाडोह नामक स्थानसे लगभग २ कि. मी. दक्षिणमें भगवान् शान्तिनाथके भव्य जिनालयका निर्माण कराया और उसमें इन तीनों तीर्थंकरोंकी विशाल प्रतिमाएँ फाल्गुन सुदी ६ विक्रम संवत् १२३६ को प्रतिष्ठित करायी। पाड़ाशाह द्वारा निर्मित मन्दिर और मूर्तियाँ अन्य कई स्थानोंपर भी हैं। उन्होंने जो भी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित करायी हैं, वे प्रायः विशाल अवगाहना-वाली है। उनके बनवाये हुए जिनालयोंकी ठीक संख्या तो ज्ञात नहीं है, किन्तु निम्नलिखित स्थानोंपर उनके द्वारा निर्मित जिनालय अब भी विद्यमान हैं—अहारजी, खानपुर, झालरापाटन, थूबौन, भियादांत, बरीं, भामोन, सतना, सुम्मेका पहाड़, पचराई, सेरोनजी। प्रायः उन्होंने शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ तीर्थंकरोंकी प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित करायीं। उनमें सर्वत्र मूलनायक भगवान् शान्तिनाथकी प्रतिमाको ही रखा। कहीं-कहीं तो उन्होंने अकेले शान्तिनाथ भगवान्‌की प्रतिमा ही प्रतिष्ठित करायी। इससे ऐसा लगता है कि धर्मवत्सल पाड़ाशाहको यद्यपि सभी तीर्थंकरोंके प्रति अगाध श्रद्धा थी, किन्तु शान्तिनाथ भगवान्‌के प्रति उनका विशेष आकर्षण था। सम्भवतः शान्तिनाथ भगवान्‌के दर्शन, पूजन और नाम-स्मरणसे उन्हें अपेक्षाकृत अधिक शान्ति प्राप्त होती थी।

इन तीन तीर्थंकरोंकी जितनी भी प्रतिमाएँ उन्होंने प्रतिष्ठित करायीं, वे सभी हलके लाल पाषाण अथवा कत्थई वर्णकी हैं। किन्तु माणिक्यकी बनी हुई सत्रह इंच ऊँची पद्मप्रभु तीर्थंकरकी प्रतिमा भी उनके द्वारा प्रतिष्ठित हुई मिलती है जो बूढ़ी चन्देरीके जंगलमें बहनेवाली नदीके किनारे बीठलीके जैन मन्दिरमें अब तक विराजमान है।

क्षेत्र-दर्शन

गुनासे आरोन जानेवाली सड़कके किनारे श्री दिगम्बर जैन अतिशय-क्षेत्र बजरंगढ़ स्थित है। मन्दिरके सामने मैदान है जो चहारदीवारीसे घिरा हुआ है। मैदानमें १५ फुट ऊँची चौकीपर मन्दिरका पूर्वाभिमुखी प्रवेशद्वार है। द्वारपर भव्य छतरी बनी हुई है। प्रवेशद्वारपर ही क्षेत्रका कार्यालय बना हुआ है। द्वारमें प्रवेश करनेपर सामने ही एक चबूतरेपर वेदी बनी हुई है। उसके बिलकुल पीछे मुख्य गर्भगृह है जिसमें मूलनायक शान्तिनाथ विराजमान हैं। गर्भगृह साधारण है। उसमें १० सीढ़ियाँ उतरकर जाना पड़ता है। सामने दीवारके सहारे भगवान् शान्तिनाथकी मूलनायक विशालकाय प्रतिमा कायोत्सर्गासनमें विराजमान है। मूर्तिकी अवगाहना १४ फुट ६ इंच है तथा पीठासनसहित इसका आकार १८ फुट है। इसके दायीं और बायीं ओर क्रमशः

कुन्थुनाथ और अरहनाथकी मूर्तियाँ हैं। ये दोनों ही खड्गासन हैं। इनकी अवगाहना १० फुट ९ इंच तथा पीठासनसहित १७ फुट है।

शान्तिनाथ भगवान्के पीठासनपर मूर्तिका प्रतिष्ठा-काल संवत् १२३६ फाल्गुन सुदी ६ उत्कीर्ण है। तीनों ही प्रतिमाओंपर घुँघराले कुन्तल हैं। मुद्रा ध्यानमग्न है। अर्धोन्मीलित नयन, स्कन्धचुम्बी कर्ण, गोलाकार मुख, पतले होंठोंपर विरागरंजित स्मिति, चौड़ा वक्षस्थल और उसके मध्यमें श्रीवत्स लांछन, क्षीण कटिभाग इन प्रतिमाओंका वैशिष्ट्य है। मुखपर तेज, लावण्य और शान्ति है। प्रतिमाओंके हाथ जंघोंसे मिले हुए नहीं हैं, पृथक् हैं, हाथोंपर कमल भी नहीं हैं, जैसे परवर्ती कालकी ग्वालियर दुर्ग, पनिहार-बरई, सोनागिरि आदिकी विशाल मूर्तियोंमें उपलब्ध होते हैं। इन स्थानोंकी मूर्तियोंके हाथोंकी हथेलियोंपर अलगसे कमल बने हुए मिलते हैं। तीनों ही प्रतिमाओंकी भुजाएँ जानुपर्यन्त भी नहीं हैं, जैसा कि प्रायः खड्गासन तीर्थंकर-मूर्तियोंमें मिलती हैं। प्रतिष्ठा-शास्त्रोंमें तीर्थंकरोंको आजानुबाहु कहा गया है और उनकी मूर्तियाँ भी वैसी ही निर्मित करनेका विधान है। किन्तु अनेक तीर्थंकर-प्रतिमाओंकी भुजाएँ घुटनोंसे ऊपर ही तक बनी हुई देखी जाती हैं। ११-१२वीं शताब्दीमें बनी हुई अनेक प्रतिमाओंमें प्रतिष्ठा-शास्त्रोंके उक्त नियमका पालन पूर्णतः नहीं हो पाया। अस्तु।

तीनों प्रतिमाओंके हाथोंसे नीचे पृथक्-पृथक् सौधर्मेन्द्र और उनकी शची हाथोंमें चमर लिये हुए खड़े हैं। इन्द्र और इन्द्राणी दोनों विविध अलंकार धारण किये हुए हैं। तीनों प्रतिमाओंके पीठासनोंपर उनके चिह्न हरिण, छाग और मत्स्य बने हुए हैं। इन प्रतिमाओंके अभिषेकके लिए दोनों ओर दीवारोंके सहारे सीढ़ियाँ बनी हुई हैं।

दोनों ओरकी दीवारोंमें पाँच पैनल बने हुए हैं—दायीं ओरकी दीवारमें दो और बायीं ओरकी दीवारमें तीन। दायीं ओरकी दीवारके पहले पैनलकी चौड़ाई ५७ इंच और ऊँचाई ४० इंच है। इसके मध्यमें पार्श्वनाथकी मूर्ति है, जिसके नीचे सर्प लांछन बना हुआ है। मूर्तिके दोनों ओर स्तम्भ तथा चौबीस तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं। पैनलमें वाम पार्श्वमें ऋषभदेव और दक्षिण पार्श्वमें नेमिनाथकी मूर्तियाँ हैं, जिनके नीचे क्रमशः गोमुख, यक्ष और शंख बने हुए हैं जिनसे उनकी पहचान हो सकती है।

दायीं ओरकी दीवारके दूसरे पैनलमें भगवान् अजितनाथकी खड्गासन मूर्ति है। मूर्तिके नीचे दो हाथी और उनके मध्यमें अजितनाथका यक्ष महायक्ष बना हुआ है। उनके नीचे दोनों ओर दो-दो सिंह और मध्यमें भगवान्की यक्षिणी रोहिणी बनी हुई है। इस पैनलकी चौड़ाई ५७ इंच और ऊँचाई २४ इंच है।

बायीं ओरकी दीवारमें एक पैनलमें खड्गासन अजितनाथकी मूर्ति बनी हुई है। उसके नीचे दो गज और मध्यमें यक्ष है। उसके नीचे दो-दो हाथी और उनके मध्यमें यक्षी बनी हुई है।

एक अन्य पैनलमें चार खड्गासन मूर्तियाँ हैं। दोनों ओर चौबीस खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ और दो स्तम्भ हैं। नीचे सिद्धायिका यक्षी (महावीरकी यक्षी) बनी हुई है। इस पैनलकी चौड़ाई ५७ इंच तथा ऊँचाई ४२ इंच है।

तीसरा पैनल दायीं ओरकी दीवारके पैनलके समानान्तर बना हुआ है।

दायीं ओरकी दीवारके एक पैनलमें पढ़े गये लेखके अनुसार ये सभी मूर्तियाँ बड़ी मूर्तियोंके समय ही अर्थात् संवत् १२३६ में प्रतिष्ठित की गयी थीं। इस गर्भगृहके ऊपर शिखर बना हुआ है।

मूल वेदीके पीछे पाँच वेदियाँ बनी हुई हैं। बायीं ओरकी वेदीमें मूलनायकके अतिरिक्त कुछ प्राचीन मूर्तियाँ एक चबूतरेनुमा वेदीपर विराजमान हैं, जिनमें संवत् १०७५, ११५५, १२२५,

१३१२, १२२०, १३२१, १२२९ की भी मूर्तियाँ सम्मिलित हैं। इस प्रकार बायीं ओरकी चतुर्थ वेदीपर पाषाणनिर्मित कृष्णवर्णकी द्वाराकृतिमें २४ तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। यह द्वाराकृति ५८ इंच ऊँची है। द्वाराकृतिके मध्य ललाटपर छत्रत्रयी सुशोभित है। द्वाराकृतिके खुले हुए मध्यभागमें भगवान् नेमिनाथकी कृष्णवर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमा अत्यन्त मनोज्ञ है। इसकी अवगाहना २१ इंच है तथा यह संवत् १२५० में प्रतिष्ठित हुई थी। पहले इसके स्थानपर इस चौबीसीके साथ भगवान् ऋषभदेवकी खड्गासन मूर्ति विराजमान थी। यह संवत् १९०३ में प्रतिष्ठित की गयी थी। किन्तु संवत् १९४२ में आततायियोंने इस मूर्तिको खण्डित कर दिया। इस दुर्घटनामें गुफामें स्थित मूर्तियोंको भी क्षति पहुँची थी। इस काण्डके परिणामस्वरूप विमान निकालनेमें भी बाधा पड़ गयी थी। तब पारस्परिक सहमति और बोर्ड (तत्कालीन रियासती बोर्ड) से विमान निकालनेकी आज्ञा प्राप्त हुई। ऋषभदेवकी खण्डित मूर्ति जलमें प्रवाहित कर दी गयी और उसके स्थानपर भगवान् नेमिनाथकी प्राचीन मूर्ति प्रतिष्ठित कर दी गयी।

इसी पंक्तिमें अन्तिम वेदीपर पाषाणनिर्मित कृष्णवर्ण भगवान् पार्श्वनाथकी भव्य मूर्ति विराजमान है। मूलनायक मूर्तिके साथ अन्य मूर्तियाँ भी वेदीपर विराजमान हैं जो क्रमशः संवत् १५४८, १२०८ और १३२४ की प्रतिष्ठित हैं। मूलनायक प्रतिमाकी प्रतिष्ठा सं. १९४९ फाल्गुन शुक्ल ५ है। मूर्तिके सिरपर सर्प अपने ग्यारहमुखी फणों द्वारा आभा बिकीर्ण कर रहा है। इस वेदीपर काँचका कार्य कलात्मक रीतिसे किया गया है। जिसके कारण इस वेदीको 'चतुरानवाली वेदी' कहकर पुकारा जाता है।

इन तीनों वेदियोंके अतिरिक्त शेष दो वेदियोंमें-से एक वेदीकी प्रतिष्ठा संवत् १९४३ में हुई व दूसरी श्वेत संगमरमरकी छह फुट अवगाहनावाली बाहुबली स्वामीकी खड्गासन प्रतिमा विक्रम संवत् २०२५ में श्री महावीरजी के पंचकल्याणक महोत्सवमें प्रतिष्ठित कराके यहाँ प्रतिष्ठित की गयी।

इस मन्दिरकी दीवारोंपर कुशल चित्रकारों द्वारा पौराणिक आख्यान आलेखित किये गये हैं। वे बोधप्रद तो हैं ही, चित्रकलाकी दृष्टिसे दर्शनीय भी हैं। छतके ऊपर मुख्य शिखरके निकट एक स्तम्भपर एक शिलालेख है, किन्तु उसका आशय अभी तक दुर्बोध बना हुआ है। शिलालेखमें शान्तिनाथकी मूर्ति बनी हुई है तथा प्रारम्भमें शान्तिनाथका नामोल्लेख भी है किन्तु लेख अशुद्ध होनेके कारण उसे समझनेमें कठिनाई है।

इस मन्दिरका फर्श और बाहरी सीढ़ियाँ आदि मकरानेकी हैं। इसका शिखर भूमितलसे ९० फीट ऊँचा है।

इस मन्दिरके अतिरिक्त बजरंगढ़ नगरमें दो मन्दिर और हैं। दूसरा मन्दिर क्षेत्रसे कुछ ही दूर बाजारके समीप मुख्य रास्तेपर स्थित है। इस मन्दिरकी प्रतिष्ठा संवत् १९४९ में हुई थी। इस मन्दिरमें विराजमान प्रायः सभी मूर्तियाँ इसी उत्सवमें प्रतिष्ठित हुई थीं। इसमें मूलनायकके रूपमें भगवान् पार्श्वनाथकी कृष्णवर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। क्षेत्र-मन्दिरके समान इस मन्दिरका भी बाहरी भाग तथा इसके शिखर अत्यन्त समुन्नत और भव्य हैं। कहा जाता है कि इस मन्दिरका निर्माण सेठ झीलूशाहने कराया था।

इस मन्दिरके पृष्ठ भागमें धर्मशाला बनी हुई है। इसमें १४ कमरे, कुआँ, विशाल सहन आदि बने हुए हैं। कहते हैं, पहले इस नगरमें जैनोंकी संख्या विशाल थी। उस कालमें सभी धार्मिक और सामाजिक आयोजन इसी स्थानपर होते थे। किन्तु समय परिवर्तनशील है। व्यापार आदिके कारण यहाँके अधिकांश जैन अन्य नगरोंमें चले गये, यहाँ तो अब कुछ ही जैन

परिवार रह गये हैं। क्षेत्रपर आनेवाले यात्री भी प्रायः गुना शहरमें ही ठहर जाते हैं। इन सब कारणोंसे मन्दिर और धर्मशालामें पहले-जैसी रौनक नहीं रह गयी। धर्मशालामें यात्रियोंके लिए पूर्ण सुविधाएँ हैं। इसमें समय-समयपर आदर्श विवाह और गोट होती रहती है।

इस नगरका तीसरा जिनालय नगरके बाह्य अंचलमें चोपेट नदीके किनारेपर अवस्थित है। इस मन्दिरको 'टरकावाला मन्दिर' कहा जाता है। इसका निर्माण संवत् १९८० में सेठ हरिचन्द्रने कराया था। सुरक्षा आदिकी दृष्टिसे इस मन्दिरकी सभी मूर्तियाँ क्षेत्र-मन्दिरमें ले जाकर प्रतिष्ठित कर दी गयी हैं। अब इस जिनालयका उपयोग संग्रहालयके रूपमें किया जा रहा है। यहाँ आसपाससे उपलब्ध खण्डित मूर्तियाँ सुरक्षित रखी जा रही हैं।

इस मन्दिरके निर्माणके सम्बन्धमें बड़ी अद्भुत और रोचक किंवदन्ती प्रचलित है। इस मन्दिरके निर्माता सेठ हरिचन्द्र बड़े सम्मान्य और सम्पन्न व्यक्ति थे। उस समय इस नगरपर खीची राजवंशके नरेश जयसिंहका शासन था। एक बार सेठजीने राजाको अपने घरपर आमन्त्रित किया। राजाके प्रति अपनी निष्ठा और सम्मान प्रकट करनेके लिए सेठजीने राजमहलसे लेकर अपने निवास तक चाँदीके पत्रोंका बिछावा बिछवा दिया तथा राजाको स्वर्ण पात्रोंमें भोजन कराया। इस सम्मानसे सेठजीपर राजाको मुग्ध होते देख दरबारियोंने ईर्ष्यावश राजाके कान भरे कि 'सेठजीने आपको नीचा दिखाने और दुनियामें अपना वैभव प्रदर्शित करनेका प्रयत्न किया है। इस तरह आपकी अवज्ञा करके सेठने घोर अपराध किया है। इसका प्रतिकार होना आवश्यक है, अन्यथा राज्यमे राज-मर्यादा स्थिर नही रह सकेगी।'

राजा उन मत्सरी व्यक्तियोंकी बातोंमें आ गया। उसने राजापमानके अभियोगमें सेठजीको बन्दी बनाकर कारागारमें डाल दिया तथा उनके समस्त स्वर्ण और रजत-पात्रो एवं अन्य सामग्रीको जब्त करके राजकोषमें जमा करा दिया। समस्त जनताको राजाके इस व्यवहारको देखकर बड़ा आश्चर्य एवं क्षोभ हुआ। उधर सेठजीने प्रतिज्ञा की कि वे बिना देव-दर्शन किये भोजन नही करेंगे तथा कारावाससे मुक्त होते ही जिनालय बनवायेंगे।

दूसरे दिन ऐसा चमत्कार हुआ कि राजाने सेठजीको कारावाससे स्वयं ही मुक्त कर दिया, किन्तु एक शर्तके साथ कि बन्दी अपने घरपर केवल पीतलकी धातुका ही उपयोग कर सकेगा। सेठजी कारावाससे मुक्त होकर अपनी प्रतिज्ञापूर्तिमें जुट गये और पीतल बेच-बेचकर इस जिनालयका निर्माण किया।

अतिशय

इस क्षेत्रपर होनेवाले नाना प्रकारके अतिशय जनतामे किंवदन्तियोंके रूपमे प्रचलित हैं। दशलक्षण-पर्वके दिनोंमें भगवान् शान्तिनाथका पूजन करने देवगण यहाँ आते हैं। उनके भक्तिमय संगीत और वाद्योंकी मधुर ध्वनि निकटवर्ती अनेक निवासियोंने मध्य रात्रिमें सुनी है।

सं. १९४३ में जबकि ग्राममें पालकी निकल रही थी, सुनसान मन्दिर जानकर कुछ आततायियोंने मन्दिरमें प्रवेश कर गर्भगृहस्थित मूर्तियोंको क्षति पहुँचानेका दुस्साहस किया तो तत्काल अग्निवर्षा होने लगी और आततायी प्राण बचाकर भाग गये।

एक बार संवत् १९६१-६२ की बात है। क्षेत्रका बागवान भागचन्द मन्दिरकी सफाई तथा अपने कार्यसे थककर मन्दिरके अन्दर ही लेट गया। लेटते ही उसे निद्रा आ गयी। रात्रिमें देवोंने उसे मन्दिरके अन्दरसे उठाकर बाहर लाकर सुला दिया।

अनेक जैन और जैनेतर व्यक्ति मनमें कामनाएँ लेकर यहाँ आते हैं। शान्तिनाथकी भक्तिसे उनकी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। कुछ लोग कहते हैं—भगवान्‌ने उनकी सुन ली। दूसरे कहते हैं—भगवान्‌के सेवक देव लोग भक्तोंकी कामनाएँ पूर्ण करके अपने आराध्य प्रभुका माहात्म्य-विस्तार करते हैं। दोनों ही बातोंमें सत्यांश है। भगवान् शान्तिनाथकी मूर्तिको देखकर जिनकी दृष्टि भगवान्‌की वीतरागता और शुद्ध परिणतिसे आत्माके शुद्ध स्वरूपकी ओर जाती है, उन्हें आत्म-शुद्धि प्राप्त होती है। जिनकी परिणति तीर्थंकर भगवान्‌की निर्मल भक्ति द्वारा शुभोपयोगमय हो जाती है, उन्हें शुभोदयके कारण अपनी सांसारिक कामनाओंकी पूर्ति होती है। कितना बड़ा चमत्कार है यह भगवान्‌का! यहाँ आध्यात्मिक शान्ति भी मिलती है और लौकिक इच्छाओंकी भी पूर्ति होती है। वस्तुतः भगवान् या देव तो निमित्त मात्र हैं। फल अपनी भावनाओंसे मिलता है। अतिशय भगवान्‌का कहलाता है क्योंकि भक्तोंकी भावनामें जो तात्कालिक शुद्धता अथवा शुभरागता आयी, उसमें भगवान् उस समय निमित्त कारण हैं।

इस दृष्टिसे इस क्षेत्रपर कब कितने अतिशय हुए, उनका लेखा-जोखा रखना क्या सम्भव है? क्षेत्रकी एकान्त शान्ति, वीतराग भगवान्‌का सान्निध्य और भक्तिपूर्ण वातावरण इन सबने मिलकर भक्तोंके मनमें अतिशयोंकी आस्था उत्पन्न कर दी है, जिसके कारण यहाँ आते ही मनकी भावनामें अद्‌भुत परिवर्तन उत्पन्न हो जाता है और सोचा हुआ कार्य पूर्ण हो जाता है।

इतिहास

इस नगरने इतिहासके अनेक उत्थान-पतन और राजनीतिकी अनेक उथल-पुथल देखी हैं। इतिहासमें इस नगरके कई नाम प्राप्त होते हैं—जैसे मूसागढ़, झरखोन, सारखोन, बजरंगढ़, जैनागर, जयनगर। इन नामोंका अपना-अपना एक इतिहास भी है। इतिहास-ग्रन्थोंसे ज्ञात होता है कि लगभग १००० वर्ष पूर्व इस नगरका नाम मूसागढ़ था। उस समय किलेमें छोटी-सी बस्ती थी। किलेपर वैरगढ़ियोंका शासन था। एक बार झिरवार रघुवंशियोंने किलेपर आक्रमण कर दिया। युद्धमें वैरगढ़िये हार गये। किलेपर झिरवारोंका आधिपत्य हो गया। नगरका नाम बदलकर झरखोन हुआ और वह फिर बदलते-बदलते सारखोन हो गया। कुछ समय पश्चात् पुनः वैरगढ़ियोंने नगरपर अधिकार कर लिया। पर नगरका नाम सारखोन ही चलता रहा।

सारखोनके निकटवर्ती राघोगढ़ और उसके आसपासके प्रदेशपर उस समय चौहानवंशी खीची राजपूतोंका राज्य था। ये चौहान खिलचीपुरके निवासी होनेके कारण खीची कहलाते थे। इस वंशके राजा धीरजसिंह उस समय शासन कर रहे थे। धीरजसिंह महत्त्वाकांक्षी शासक थे। उस समय इस प्रदेशमें मुगल सल्तनत विच्छृंखल हो रही थी। सारा मालव प्रदेश छोटे-छोटे राज्योंमें बँट गया था। ऐसी अव्यवस्थाके समय धीरजसिंहने सारखोन पर आक्रमण कर दिया और वैरगढ़ियोंको पराजित कर दिया। किन्तु खीची चौहानोंका यह विजयोल्लास शीघ्र ही पराजयके विषादमें डूब गया। जब गढ़ीमें विजयोल्लास मनाया जा रहा था और महाराज धीरजसिंह इसमें सम्मिलित होने जा रहे थे, अकस्मात् एक वैरगढ़ियेने महाराजके ऊपर आक्रमण कर दिया और उनकी हत्या कर दी। इसके पश्चात् वैरगढ़ियोंने पुनः गढ़ीपर अधिकार कर लिया। खीची चौहान खीचीवाड़ा (राघोगढ़ और उसका निकटवर्ती प्रदेश) पर शासन करते रहे। महाराज धीरजसिंहकी हत्याकी घटना १८वीं शताब्दीके पूर्वार्धमें घटित हुई थी। किन्तु इसी शताब्दीके उत्तरार्धमें धीरजसिंहके प्रपौत्र बलवन्तसिंहने इस नगरपर आक्रमण करके वैरगढ़ियोंको मार भगाया और इस प्रकार अपने प्रपितामहकी हत्याका प्रतिशोध लिया। उसने नगरका नाम-परिवर्तन करके बजरंगढ़ कर

दिया। उसने नवीन किला बनवाया। उसके पश्चात् उसके पुत्र जयसिंहने किलेका निचला भाग बनाया और उसका नाम जैनागर रखा। इसको जयनगर भी कहते थे। उस समय इस नगरमें लगभग दो सौ घर जैनोंके थे। राज्यमें जैनोंका बड़ा सम्मान और प्रभाव था।

संवत् १८७२ में इस नगरपर ग्वालियरके सिन्धिया नरेशके सेनापति सर जॉन वैप्टिसने अधिकार करके उसे ग्वालियर राज्यमें सम्मिलित कर लिया। स्वतन्त्रताके पश्चात् देशी रियासतों-के भारतमें विलय होनेपर बजरंगढ़ मध्यप्रदेशके गुना जिलेके अन्तर्गत आ गया।

बजरंगढ़ आज भी है, उसके किले, महल आदि भी हैं, किन्तु बिलकुल श्रीहीन। नगरकी चहल-पहल और रौनक भी नहीं रही। जैन लोग भी प्रायः गुना आदि बड़े शहरोंमें जा बसे। किन्तु श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय-क्षेत्र नगरमें मस्तकपर लगे हुए सौभाग्य-बिन्दुकी तरह अब भी आकाशमें जयध्वज लहराता हुआ खड़ा है। उसके आकाशचुम्बी श्वेत शिखरोंपर स्वर्णकलश सूर्यकी खिलती धूपमें अब भी अपना तेज चारों ओर विकीर्ण कर रहे हैं। सृष्टि परिवर्तनशील है, किन्तु भगवान् शान्तिनाथके चरणोंमें लोटा हुआ बजरंगढ़ सदा जीवित है। शान्तिके अधिष्ठाता महाप्रभुका आशीर्वाद जो उसे प्राप्त है।

मार्ग

श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय-क्षेत्र बजरंगढ़ जानेके लिए पश्चिमी रेलवे लाइनके कोटा-बीना रेल-मार्ग द्वारा गुना आ सकते हैं। बस मार्गसे आगरा-बम्बई सड़कपर अथवा इन्दौर-ग्वालियर सड़कपर गुना पड़ता है। बजरंगढ़ गुना-आरोन मार्गपर गुनासे सात कि. मी. दूर है। यह क्षेत्र सड़कके निकट ही है। बजरंगढ़में यात्री प्रमुख मन्दिर बाजारके जैन मन्दिरकी धर्मशाला-में ठहर सकते हैं। अथवा गुनामें ठहरकर वहाँसे लोकल बसों द्वारा या ताँगों द्वारा बजरंगढ़ क्षेत्रकी यात्रा कर सकते हैं। गुना जिलेका मुख्यालय है और अच्छा शहर है। यहाँ एक जैन धर्मशाला और दो जैन मन्दिर हैं। गुनासे बजरंगढ़के लिए सुबहसे शाम तक लोकल बसें चलती रहती हैं।

व्यवस्था

क्षेत्रकी व्यवस्थाके लिए एक प्रबन्ध समिति बनी हुई है, जिसमें गुना और बजरंगढ़के सदस्य हैं।

थूवौन

अतिशय क्षेत्र

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र थूवौन मध्यप्रदेशके ग्वालियर संभागमें गुना जिलेके अन्तर्गत तहसील मुंगावलीमें पार्वत्य प्रदेशमें अवस्थित है। यह अतिशय-क्षेत्रके रूपमें प्रसिद्ध है। यहाँपर देवकृत अतिशयोंकी अनेक घटनाएँ किंवदन्तीके रूपमें प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि सेठ पाड़ा-शाहका राँगा यहाँ आकर चाँदी हो गया था। पाड़ाशाहको लेकर इस प्रकारकी न जाने कितनी किंवदन्तियाँ विभिन्न क्षेत्रोंपर प्रचलित हैं। बजरंगढ़में उन्हें एक पारसमणि मिली थी, जिससे वे सोना बनाकर मन्दिर बनवाया करते थे। अहारजीमें एक शिलापर राँगा उतारनेपर वह सारा राँगा चाँदी हो गया। थूवौनमें भी उनका राँगा चाँदी हो गया और भी न जाने किन-किन क्षेत्रोंपर

उनका राँगा चाँदी हुआ हो। आधुनिक समीक्षकोंका विचार है कि पाड़ाशाह राँगाके बहुत बड़े व्यापारी थे। उनके पास राँगाका बहुत बड़ा स्टाक था। परिस्थितिवश राँगा महँगा हो गया। इससे सेठ पाड़ाशाहकी चाँदी हो गयी और उस मुनाफेके धनसे उन्होंने खजुरा, बल्हारपुर, सुखाहा, भामौन, सुमेका पहाड़, खेबई, राई, पनवाड़ा, आमेट, दूबकुण्ड, थूबौन, आरा (अपरा), पचराई, गोलाकोट, सोनागिर, अहार, बजरंगढ़ आदि अनेक स्थानोंपर जैन मन्दिर बनवाये और उनकी धर्मपत्नीने—जो वैष्णव धर्मकी अनुयायी थी—वैष्णव मन्दिर बनवाये।

वास्तवमें इस क्षेत्रका अतिशय यह नहीं है कि यहाँ किसी व्यक्तिविशेषका राँगा चाँदी हो गया, वरन् क्षेत्रका अतिशय यह है कि यहाँ जो व्यक्ति भक्तिवश दर्शनार्थ आता है, उसके मानसपर यहाँकी एकान्त शान्ति, पवित्र वातावरण और भगवान् जिनेन्द्रदेवकी वीतराग मूर्तियों-का ऐसा प्रभाव पड़ता है कि वह कुछ कालके लिए सांसारिक चिन्ताओंसे मुक्त होकर आत्मिक शान्ति और आह्लादका अनुभव करने लगता है। इस शान्ति और आह्लादको पानेके लिए यहाँ देवगण भी आते हैं और यहाँ आकर वे भाव-भक्तिसे वीतराग प्रभुके दर्शन, वन्दन और पूजन करते हैं।

किन्तु साधारण जनोंके मनमें चमत्कारों और अतिशयोंके माध्यमसे भगवान्की भक्तिका अंकुरारोपण होता है। वे ऐसे चमत्कारों और अतिशयोंसे ही अतिशय प्रभावित होते हैं। इसलिए उनकी सन्तुष्टिके लिए यहाँ ऐसी कुछ घटनाओंका उल्लेख करना प्रासंगिक होगा जो किंवदन्तियों-के रूपमें इस प्रदेशमें बहुप्रचलित हैं—

—एक बार आततायियोंने इस क्षेत्रपर आक्रमण किया। वे जब मूर्तिभंजन करनेके लिए आगे बढ़े तो उन्हें मूर्ति ही दिखाई नहीं दी। तब वे लोग मन्दिरको ही क्षति पहुँचाकर वापस चले गये।

—मन्दिर नं. १५ में भगवान् आदिनाथकी ३० फुट ऊँची प्रतिमाको खड़ा करना था। सभी सम्भव प्रयत्न किये गये किन्तु सफलता प्राप्त नहीं हुई। तब प्रतिष्ठाकारक आये और मूर्तिके समक्ष बैठ गये। उन्होंने भगवान्की स्तुति करते हुए कहा—"प्रभो! क्या इसी प्रकार उपहास और लोक-निन्दा होती रहेगी!" यह कहकर भक्तिकी उमंगसे उन्होंने 'भगवान् ऋषभदेवकी जय' बोलकर मूर्तिको उठानेका प्रयत्न किया और सबने आश्चर्यके साथ देखा कि मूर्ति सुगमतासे उठ गयी है।

—क्षेत्रके चारों ओर भयानक जंगल है। पहले इसमें सिंहादि क्रूर जानवर भी रहते थे। क्षेत्रके आसपास और क्षेत्रपर पशु चरते-फिरते रहते थे, किन्तु कभी किसी पशुपर कोई बाधा आयी हो, ऐसा सुननेमें नहीं आया।

—भगवान् आदिनाथ-मन्दिर (क्रम संख्या १५) में फाल्गुन, आषाढ़ और कार्तिककी अष्टाह्निका तथा पर्यूषण-पर्वमें अर्धरात्रिमें देवोंके पूजनकी मधुर ध्वनि और वाद्य-यन्त्रोंके मधुर स्वर सुनाई पड़ते हैं।

—अनेक ग्रामीण लोग पुत्रकी कामना लेकर या अपने पशुओंके खो जानेपर यहाँ आकर आदिनाथ भगवान्के आगे मनौती मानते हैं और मनोकामना पूर्ण होनेपर भगवान्के चरणोंमें श्रीफल भेंट करते रहे हैं।

क्षेत्रका प्राकृतिक सौन्दर्य

वेत्रवती (बेतवा) की एक सहायक नदी उर्वशी (उर) से एक कि. मी. दूर एक सपाट चट्टानपर मन्दिर है। मन्दिरके उत्तरकी ओर एक छोटी-सी नदी लीलावती (लीला) है। इस प्रकार

इन युगल सरिताओंके मध्य स्थित क्षेत्रकी प्राकृतिक सुषमा अवर्णनीय है। ये नदियाँ कलकल ध्वनि करती हुई पर्वत-शिलाओंसे टकराती, उछलती, मचलती, बहती अत्यन्त लुभावनी लगती हैं। एक ओर पर्वतमालाएँ, उनपर छितराये हुए सघन वनकी हरीतिमा और उसके बीच सिर उठाकर झाँकते हुए जिनालयोंके उत्तुंग शिखर तथा उनके शीर्षपर फहराती हुई धर्म-ध्वजाएँ—ये सब मिलकर इस सारे अंचलको, सारे वातावरणको एक स्वप्नलोक-सा बना देते है। और भक्त-हृदय आध्यात्मिक साधनाके उपयुक्त इस प्रशान्त पावन लोकमें आकर सारे भौतिक अवसादोंको भूल जाता है। उसका मन अध्यात्मकी रंगीनियोंमें डूब जाता है।

क्षेत्रके नामकी व्युत्पत्ति

जिस प्रकार बौद्ध साहित्यमें 'तुम्बवन' का नाम आता है जो अब 'तूमैन' कहलाता है, उसी प्रकार प्राचीन कालमें इस क्षेत्रका नाम 'तपोवन' रहा होगा। तपोवन शब्द विकृत होकर 'थोवन' हो गया। कुछ लोग इसे थूवौन भी कहते है।

क्षेत्र-दर्शन

क्षेत्रपर मन्दिरोंकी कुल संख्या २५ है। दर्शनार्थियोंकी सुविधाके लिए मन्दिरोंपर जो क्रमांक लिखे हुए हैं, उनके अनुसार इन मन्दिरोंका विवरण इस प्रकार है—

चन्देरी—अशोकनगर सड़कके किनारे ही क्षेत्र अवस्थित है। बस क्षेत्रके प्रवेशद्वारपर रुकती है। प्रवेशद्वारमे प्रवेश करते ही क्षेत्रका कार्यालय है। यह धर्मशाला है। इसमें कुल २६ कमरे है। धर्मशालामें बिजलीकी व्यवस्था है। जलके लिए कुआँ है। इस धर्मशालासे मिली हुई एक पुरानी और कच्ची धर्मशाला है। इसमे कमरोंके ऊपर खपरैल पड़ी हुई है।

धर्मशालाके पृष्ठभागमें मन्दिरों तक जानेका मार्ग है।

मन्दिर नं. १. पार्श्वनाथ जिनालय—इसमे भगवान् पार्श्वनाथकी मूलनायक प्रतिमा लगभग १५ फुट ऊँची खड्गासन है। निकटवर्ती थूवौन ग्रामके निवासी लछमन मोदी और पंचम सिंघईने संवत् १८६४ में वैशाख शुक्ला पूर्णमासीके दिन इसकी प्रतिष्ठा करायी। मूलनायकके दोनों ओर दो खड्गासन और उनसे नीचे दो पद्मासन प्रतिमाएँ हैं तथा मन्दिरके ऊपर तीन शिखर बने हुए हैं, जिनमे तीन मूर्तियाँ विराजमान हैं। मूलनायकके सिरके ऊपर सर्पफण-मण्डप बना है। इसमे फणावली पृथक्-पृथक् सर्पोंके द्वारा अति कलापूर्ण ढंगसे बनायी गयी है। ये सर्प प्रतिमाके कन्धोंके दोनों पार्श्वोंमे स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। प्रतिमाके चरणोंके दोनों पार्श्वोंमे चमरेन्द्र खड़े हैं। गर्भगृहका आकार ११ फुट ३ इंच × १० फुट १० इंच है।

२. **पार्श्वनाथ जिनालय**—इसमें भगवान् पार्श्वनाथकी कायोत्सर्गासनमे मूलनायक प्रतिमा है। इसकी अवगाहना १२ फुट है। इसके दोनों ओर दो खड्गासन और दो पद्मासन बिम्ब है। इस मन्दिरका निर्माण थूवौननिवासी श्री खुशालराय मोदीने कराया और संवत् १८६९ मे माघ शुक्ला त्रयोदशीको प्रतिष्ठा करायी। गर्भगृहका आकार ११ फुट २ इंच × १० फुट १० इंच है।

३. **नेमिनाथ जिनालय**—इसमें मूलनायक भगवान् नेमिनाथकी खड्गासन मूर्ति विराजमान है। यह पाँच फुट ऊँची है। मूर्ति अत्यन्त मनोज्ञ है। छत्रके बगलमे दो पद्मासन बिम्ब बने हुए हैं। मूलनायककी नाक, हाथकी अँगुली और छोटी मूर्तियोंके मुख खण्डित हैं। मन्दिरके निर्माता मोहरी ग्रामनिवासी कल्ले सिंघई थे जिनके वंशज अभी पिपरई गाँवमें हैं। प्रतिष्ठा संवत् १८७२

में वैशाख शुक्ला पंचमीको हुई। मूर्तिके अधोभागमें हाथीपर चमरवाहक खड़े हैं। मन्दिर-द्वारके ललाट-बिम्बपर १ पद्मासन और २ खड्गासन प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं।

इस मन्दिरसे संलग्न दो कोठरियोंमें कुछ खण्डित-अखण्डित मूर्तियाँ वरीं ग्रामसे लाकर रखी गयी हैं। दायीं ओरकी कोठरीमें तीन खड्गासन मूर्तियाँ हैं जिनमें मध्यकी मूर्ति भगवान् सम्भवनाथकी ७ फुट ४ इंच है। मूर्तिलेखके अनुसार इसकी प्रतिष्ठा संवत् १६९४ में हुई थी। बायीं ओर भगवान् ऋषभदेवकी ४ फुट ९ इंच तथा दायीं ओर भगवान् महावीरकी ४ फुट ४ इंच ऊँची मूर्ति है। बायीं ओरकी कोठरीमें चार मूर्तियाँ रखी हैं। भगवान् चन्द्रप्रभकी मूर्ति ६ फुट ८ इंच, भगवान् सम्भवनाथकी ४ फुट ९ इंच तथा भगवान् अरनाथकी ४ फुट ६ इंच है। इन सबके पीठासनपर लांछन अंकित है। एक अन्य मूर्ति १ फुट ३ इंच की है। इसमें लांछन नहीं है। इनके अतिरिक्त तीन खण्डित मूर्तियाँ हैं।

इस मन्दिरके पीछे चबूतरेपर कुछ प्राचीन प्रतिमाएँ रखी हैं जो इधर-उधरसे एकत्रित की गयी हैं। इनमें चतुर्मुखी (सर्वतोभद्रिका), शासनदेवता, कुबेर और तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं।

४—एक हॉलमें संग्रहालय बनाया जा रहा है। इसमें कुछ प्राचीन मूर्तियाँ संग्रहीत हो चुकी हैं। इनमें एक मूर्ति कायोत्सर्गासनमें है और १२ फुट ऊँची है। इसका भामण्डल अति भव्य है। मूर्तिके दोनों ओर यक्ष-यक्षी बने हुए हैं। यह मूर्ति भामौनसे लायी गयी है। संग्रहालयके बाहर लाल पाषाणकी ५ फुट ४ इंच अवगाहनावाली पद्मासन मूर्ति रखी हुई है, जो अति भव्य है। ये मूर्तियाँ भामौन, वरीं, पाटखेड़ा आदि ग्रामोंसे संग्रहीत की गयी हैं।

५. **शान्तिनाथ जिनालय**—मूलनायक भगवान् शान्तिनाथकी खड्गासन प्रतिमा है जो १८ फुट ऊँची और ६ फुट ७ इंच चौड़ी (कन्धे से कन्धे तक) है। शीर्षके दोनों पार्श्वोंमें पुष्पमाल लिये हुए गन्धर्व हैं। उनसे नीचे दो खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। दोनों ही मूर्तियोंके दोनों पार्श्वोंमें चमरवाहक हैं। मूर्तिके अधोभागमें बायीं ओर पद्मावती देवी है और दायीं ओर अम्बिका। इनकी अवगाहना साढ़े पाँच फुट है। अम्बिकाकी गोदमें एक बालक है, दूसरा बालक उँगली पकड़े हुए खड़ा है। शीर्षपर आम्रस्तबक है और मध्यमें नेमिनाथ भगवान् विराजमान हैं। पद्मावती चतुर्भुजी है। उसके दो हाथोंमें कमल हैं, शेष दो भुजाएँ खण्डित हैं। देवी चूड़ियाँ, कड़े, गलहार, मेखला आदि रत्नाभरणोंसे सज्जित है। देवीके सिरपर सर्पफण-मण्डप है जो उसके नागकुमार जातिकी इन्द्राणी होनेका सूचक है। फणके ऊपर भगवान् पार्श्वनाथ विराजमान हैं। उनके दोनों ओर किन्नर नृत्यमुद्रामें अंकित हैं।

शान्तिनाथ भगवान्‌की मूर्ति समचतुरस्र संस्थानवाली है। उसके प्रत्येक अवयवमें समानुपातिक उभार और सौन्दर्य है। सिरके कुन्तल मोहक हैं। कर्ण स्कन्धचुम्बी हैं। मुखका लावण्य और रूपच्छटा मोहक है। इस मूर्तिके प्रतिष्ठाकारक और इस मन्दिरके निर्माता सेठ पाड़ाशाह कहे जाते हैं। इनके द्वारा प्रतिष्ठित मन्दिर-मूर्तियोंपर कहीं भी मूर्तिलेख, निर्माता और प्रतिष्ठाकारकके नाम आदि उत्कीर्ण हुए नहीं मिलते। केवल अनुश्रुतिके आधारपर ही विभिन्न स्थानोंके समान यहाँ भी उन्हें इस मन्दिर और मूर्तिका प्रतिष्ठाकारक मान लिया गया है।

इस मन्दिरके सामने सभामण्डप था जो मन्दिरके साथ ही बनाया गया होगा। उसे चारों ओरसे बन्द करके हॉलका रूप दे दिया गया है और उसमें संग्रहालय बनाया जा रहा है।

६. **छोटे पंचभइयोंका मन्दिर**—भगवान् आदिनाथकी कायोत्सर्ग मुद्रावाली ६ फुट ऊँची मूर्ति है। इनकी जटाएँ अद्भुत हैं और पादचुम्बी हैं। ऐसी पादचुम्बी जटाएँ अन्यत्र दुर्लभ हैं।

इनके दोनों ओर पार्श्वनाथ भगवान्की ४ फुट ७ इंच ऊँची खड्गासन मूर्तियाँ विराजमान हैं। पार्श्वनाथके पार्श्वमें एक पद्मासन प्रतिमा पाँच फुटकी है। द्वारपर ११ पंक्तियोंका लेख है। इससे ज्ञात होता है कि मन्दिरका निर्माण सन् १६८० में हुआ है।

७. पार्श्वनाथ मन्दिर—यह मन्दिर बड़े पँचभइयोंका कहलाता है। मूलनायक प्रतिमा भगवान् पार्श्वनाथकी है। यह खड्गासन है और इसकी अवगाहना १५ फुट है। इस प्रतिमाके दोनों ओर दो खड्गासन और दो पद्मासन मूर्तियाँ हैं। मूलनायकके हाथोंसे अधोभागमें गजपर चमरेन्द्र खडे हैं। सबसे नीचेके भागमें दोनो ओर दो-दो भक्त हाथ जोड़े बैठे हुए हैं।

बायीं ओरकी दीवारमें भगवान् चन्द्रप्रभकी १३ फुट ३ इंच तथा भगवान् नेमिनाथकी ८ फुट ऊँची मूर्तियाँ विराजमान हैं। इसी प्रकार दायी ओरकी दीवारमें भगवान् शान्तिनाथकी ८ फुट और भगवान् महावीरकी १३ फुट ३ इंच मूर्तियाँ विराजमान हैं। ये सभी मूर्तियाँ कायोत्सर्गासनमें हैं।

भगवान् महावीरकी चरणचौकीपर मूर्तिलेख अंकित है, जिसके अनुसार इसकी प्रतिष्ठा वैशाख शुक्ला ५ संवत् १६७१ को मूलसंघ, बलात्कारगणके भट्टारक धर्मकीर्तिके उपदेशसे संघपति भवानीदासने बुन्देलवंशी राय मनोहरदासके राज्यमें करायी। मूर्तिलेखमें भट्टारक धर्मकीर्तिकी गुरु-परम्परा इस प्रकार दी गयी है—भट्टारक भुवनकीर्ति, तत्पट्टे भट्टारक सहस्रकीर्ति, तत्पट्टे भट्टारक पद्मनन्दि, तत्पट्टे भट्टारक यशकीर्ति, तत्पट्टे भट्टारक ललितकीर्ति, तत्पट्टे भट्टारक धर्मकीर्ति।

८. यह गुमटी हनुमान्जीकी है। अनुश्रुति प्रचलित है कि यह मन्दिर सेठ पाड़ाशाहने अपनी वैष्णव पत्नीकी प्रसन्नताके लिए बनवाया था। जैन पुराणोंमें यद्यपि हनुमानजी कामदेव और विद्याधर बताये गये हैं किन्तु जैन धर्मानुयायी सेठने केवल अपनी पत्नीको प्रसन्न करनेके लिए ही हनुमान्जीको वानरमुख और पूँछयुक्त बनवाया। फिर भी सेठने इस वैष्णव आकारमें जैन रंग भर दिया। पुराणोंमें वर्णन मिलता है कि रामने सीताका पता लगानेके लिए हनुमान्को लंका भेजा। मार्गमे उन्होंने दो मुनियोंको जलते हुए देखा। उन्होने उनका उपसर्ग दूर किया। हनुमान्जीकी इस मूर्तिके कन्धोंपर दो मुनिराज विराजमान हैं। यह दृश्य जैन पुराणोंके उपर्युक्त उपसर्ग-निवारणके प्रसंगका स्मरण दिलाता है। यह मूर्ति ७ फुट ऊँची है।

९. शासनदेवीकी ५ फुट ३ इंच ऊँची मूर्ति है। शीर्षपर मध्यमें पद्मासन और दोनों पार्श्वोंमें खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। यह किस यक्षीकी मूर्ति है, यह स्पष्ट नहीं हो पाया।

इसके पार्श्वमें सरस्वतीकी ३ फुट ६ इंच अवगाहनावाली भव्य मूर्ति है। देवी अपने वाहन हंसके ऊपर आसीन है और अष्टभुजी है। एक हाथ अक्षमालासहित वरद मुद्रामें है। दूसरे हाथमें कमण्डलु है। शेष भुजाएँ खण्डित हैं। देवी वीणा धारण किये हुए है।

दायी-बायी ओर देवियाँ खड़ी हुई हैं। दोनों हाथ वरद मुद्रामें हैं।

दायीं दीवारके सहारे एक शिलाफलकमें अम्बिकाकी खण्डित मूर्ति है। उसकी गोदमें बालक है। उसके दायीं ओर आम्रगुच्छक लटक रहे हैं। हाथ खण्डित है तथा छातीका भी ऊपरी भाग खण्डित है।

इसी गर्भालयमें चार स्तम्भ-खण्ड रखे हुए हैं। इनमें-से दोमें तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं तथा दोमें यक्षी-मूर्तियाँ हैं। गर्भालयके प्रवेशद्वारके ललाट-बिम्बके ऊपर पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा स्थित है।

इस मन्दिरके सम्बन्धमें भी अनुश्रुति प्रचलित है कि इसे सेठ पाड़ाशाहने अपनी वैष्णव पत्नीको प्रभावित करनेके लिए बनवाया था।

१०. एक मढ़िया या छतरीमें दो पाषाण-स्तम्भ रखे हुए हैं। एक स्तम्भमें चारों ओर आठ तीर्थंकर मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। दूसरे स्तम्भमें चारों दिशाओंमें १३-१३ मूर्तियोंका अंकन है जो नन्दीश्वरके ५२ जिनालयोंका प्रतीक प्रतीत होता है।

११. एक शिलाफलकमें एक खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमा बनी हुई है। अवगाहना ७ फुट है। सिरके ऊपर छत्रत्रयी है। उसके दोनों पार्श्वोंमें दो पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। अधोभागमें चमरेन्द्र चमर लिये भगवान्की सेवा कर रहे हैं।

इसके बायीं ओर सप्तफणावलीयुक्त पार्श्वनाथ हैं तथा दायीं ओर पंचफणावलीयुक्त सुपार्श्वनाथ हैं। पीठके पीछे सर्पकुण्डली अत्यन्त कलापूर्ण ढंगसे निर्मित है।

एक शिलाफलकमें ३ फुट ९ इंच ऊँचो एक तीर्थंकर मूर्ति है। शीर्षभागके दोनों पार्श्वोंमें पुष्पमाल लिये गन्धर्व दिखाई पड़ते हैं। अधोभागमें दो करबद्ध भक्त बैठे हुए हैं। मध्यमें मुख्य प्रतिमाके दोनों ओर १० तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

एक मूर्ति भगवान् चन्द्रप्रभकी ३ फुट अवगाहनाकी है।

१२. **पार्श्वनाथ जिनालय**—इसमें भगवान् पार्श्वनाथकी १६ फुट अवगाहनावाली मूल-नायककी खड्गासन प्रतिमा है। कन्धोंसे ऊपर दोनों ओर दो पद्मासन मूर्तियाँ हैं। हाथीपर चमरवाहक खड़े हैं। यह मन्दिर रावतोंका कहलाता है। परवार जातिमें ईडरीमूरको रावत कहते हैं। किन्तु लेख न होनेसे निर्माताका नाम और निर्माणका काल ज्ञात नहीं हो पाया।

१३. **पार्श्वनाथ जिनालय**—इसमें भगवान् पार्श्वनाथकी मूलनायक प्रतिमा १६ फुट (आसनसहित) है। प्रतिमाके सिरके ऊपर नौ फणावलीवाला सर्पफण-मण्डप बना हुआ है। इस फणावलीमें नौ सर्प पृथक्-पृथक् बने हुए हैं। फणावलीके दोनों ओर दो पद्मासन मूर्तियाँ हैं। गजारूढ़ चमरेन्द्र भगवान्की सेवामें संलग्न हैं। चरणोंके दोनों ओर दो भक्त महिलाएँ भगवान्के आगे हाथ जोड़े हुए खड़ी हैं। इस मन्दिरके शिखरमें पूर्व, दक्षिण और उत्तर तीनों ओर तीन बिम्ब हैं। इसका प्रतिष्ठाकाल शकाब्द १६४५ (विक्रम संवत् १७८०) है। लगता है, यह काल आनुमानिक है। प्रतिष्ठाचार्य भट्टारक महेन्द्रकीर्तिजी थे।

१४. **शान्तिनाथ जिनालय**—मूलनायक भगवान् शान्तिनाथको मूर्ति आसनसहित १२ फुट ऊँची कायोत्सर्गासनमें विराजमान है। छत्रत्रयके दोनों ओर दो पद्मासन मूर्तियाँ हैं। सिंहासन-पीठपर हरिण, लांछन तथा मूर्तिलेख हैं। गजोंके ऊपर चमरवाहक खड़े हुए हैं। इसके शिखरमें तीन बिम्ब हैं। मूर्तिलेखके अनुसार इसकी प्रतिष्ठा माघ शुक्ला ५ संवत् १८५५ में हुई थी। यह मन्दिर साढौरावालोंका कहलाता है। साढौरा ग्राममें भी पुराना जिनालय है।

मन्दिर क्रमांक ११ से १४ तक पास-पासमें और एक पंक्तिमें हैं। क्रम-संख्या १५ कुछ दूर है और उसका द्वार भी उस पंक्तिकी विपरीत दिशामें है।

१५. **आदिनाथ जिनालय**—मूलनायक भगवान् ऋषभदेवकी २५ फुट अवगाहनावाली खड्गासन प्रतिमा है। इसके अंगोंमें शिल्पविधानके अनुसार समानुपात है। मूर्ति अत्यन्त भव्य है। गलेमें त्रिवली बड़ी सुन्दर प्रतीत होती है। छातीपर श्रीवत्स लांछन है। मूर्ति अखण्डित है। इसके दोनों ओर चमरधारी यक्ष हैं। चरणतलमें श्रावक-श्राविकाका भक्त-युगल बैठा हुआ है। सम्भवतः ये प्रतिष्ठाकारक पति-पत्नी हैं। मूर्तिके दोनों ओर दो खड्गासन और दो पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। इस मन्दिरके निर्माता खण्डेलवालजातीय सेठ बिहारीलाल काला हैं। इसकी प्रतिष्ठा वैशाख शुक्ला ५ संवत् १६७२ में हुई।

इस मन्दिरकी मूलनायक प्रतिमा अत्यन्त अतिशयसम्पन्न है। अतिशयोंके कारण यह क्षेत्र अतिशय क्षेत्र कहलाता है। यही मन्दिर यहाँका बड़ा मन्दिर कहलाता है। अनेक भक्तजन इसी मूर्तिके आगे भक्तिभावसे मनौती मानने आते हैं।

१६. अजितनाथ जिनालय—भगवान् अजितनाथकी १६ फुट ऊँची खड्गासन प्रतिमा इस मन्दिरकी मूलनायक प्रतिमा है। इसके मुखपर वीतराग-छवि और होंठोंपर मधुर स्मित अंकित है। ऊपरी भागमें दो पद्मासन प्रतिमाएँ हैं तथा अधोभागमें दोनों ओर चमरवाहक हैं। बायीं ओरकी दीवारमें ६ फुट ६ इंच ऊँची सम्भवनाथ भगवान्की खड्गासन मूर्ति है। इसकी उँगली खण्डित है। ऊपरी भागमें दो पद्मासन मूर्तियाँ हैं। इनमें एकका मुख खण्डित है। अधोभागमें चमरवाहक हैं।

इस मन्दिरकी प्रतिष्ठा मन्दिर नं. १५ के साथ ही वैशाख शुक्ला ५ संवत् १६७२ में हुई थी। प्रतिष्ठाकारक कोई पुरवार-जातीय थे, किन्तु नाम पढ़नेमें नहीं आता। पत्नीका नाम लालमणि और पुत्रका नाम दमन था। प्रतिष्ठाचार्य भट्टारक धर्मकीर्ति थे, जिन्होंने मन्दिर नं. ७ की भी प्रतिष्ठा करायी थी।

इस मन्दिरके पीछे एक मूर्ति अर्धनिर्मित दशामें रखी हुई है।

१७. अभिनन्दननाथ जिनालय—इसमे भगवान् अभिनन्दननाथकी १६ फुट ऊँची खड्गासन मूर्ति विराजमान है। ऊपरके भागमें दोनों ओर दो पद्मासन मूर्तियाँ हैं। नीचेके भागमे चमरेन्द्र हाथीपर खडे हैं। मन्दिरकी प्रतिष्ठा संवत् १७०८ में नेकानने करायी थी। इसके शिखरमें तीन ओर तीन बिम्ब हैं।

१८. अरहनाथ जिनालय—इसमे मूलनायक भगवान् अरहनाथकी ४ फुट ९ इंच ऊँची खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। मन्दिरकी प्रतिष्ठा वैशाख शुक्ला १३ संवत् १९२३ में अमरोद-निवासी श्री थोवनलाल मोदीने करायी थी।

१९ महावीर जिनालय—इसमें मूलनायक भगवान् महावीरकी ६ फुट ६ इंच ऊँची खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। चन्देरीकी श्रीमती अमरोबाईने मन्दिरकी प्रतिष्ठा वैशाख शुक्ला १३ संवत् १९२३ को मन्दिर नं. १८ के साथ करायी।

२०. चन्द्रप्रभ जिनालय—इसमें चन्द्रप्रभ भगवान्की ८ फुटकी खड्गासन प्रतिमा मूलनायक-के रूपमे विराजमान है। श्रीमती नोंवाबाईने इस मन्दिरकी प्रतिष्ठा मन्दिर नं. १८-१९ के साथ ही वैशाख शुक्ला १३ संवत् १९२३ को करायी थी।

२१ महावीर जिनालय—इसमें मूलनायक भगवान् महावीर स्वामीकी ८ फुट ऊँची खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी प्रतिष्ठा अशोकनगरकी एक वृद्धा महिलाने मन्दिर नं. १८-१९-२० के साथ ही करायी थी। एक आलेमें एक फुटकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है।

२२. शान्तिनाथ जिनालय—इस मन्दिरमें शान्तिनाथ भगवान्की मूलनायक प्रतिमा कायोत्सर्गासनमें विराजमान है। इसका आकार ८ फुट है। चन्देरीनिवासी चौधरी रामचन्द्रने मन्दिर नं. १८ के साथ इसकी प्रतिष्ठा करायी। हाथीपर चमरेन्द्र खड़े हैं। ऊपरके भागमें दो पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। मन्दिरमें एक मूर्ति १ फुट ९ इंचकी है। मन्दिरके आगे एक चबूतरेपर श्वेत पाषाणका ३० फुट ऊँचा एक मानस्तम्भ बना हुआ है, जिसका निर्माण वीर निर्वाण संवत् २४८१ में मुंगावलीके सवाई सिंघई नाथूराम राजमल परवार और ओडेरनिवासी स. सि. लखमीचन्द्रने कराया तथा उसके चारों बिम्बोंकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा दो गजरथ चलाकर पृथक-पृथक् करायी।

२३. पार्श्वनाथ जिनालय—भगवान् पार्श्वनाथकी मूलनायक प्रतिमा कायोत्सर्गासनमें विराजमान है। अवगाहना ६ फुट ३ इंच है। ऊपर दोनों ओर दो पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। नीचे चमरवाहक हैं। मन्दिरके निर्माता प्रानपुरानिवासी कोई मोदी हैं। नाम अस्पष्ट है। इस मन्दिरकी प्रतिष्ठा मन्दिर नं. १८ के साथ हुई थी। इस प्रकार मन्दिर नं. १८ से २३ तक ६ मन्दिरोंकी प्रतिष्ठा एक साथ हुई थी। ये मन्दिर एक पंक्तिमें हैं। ये मूर्तियाँ विशेष मनोज्ञ नहीं हैं। सम्भवतः सब मूर्तियोंका शिल्पकार एक ही व्यक्ति था।

२४. चन्द्रप्रभ जिनालय—यह मन्दिर आधुनिक है। इसका निर्माण किसी उदासीन श्रावकने कराया था। परन्तु मूर्ति विराजमान करानेके पूर्व ही वे स्वर्गवासी हो गये। अतः मन्दिर कुछ वर्षों तक रिक्त पड़ा रहा। फिर अथाईखेड़ानिवासी मदनलाल बुद्धूलाल सर्राफने इसमें वेदी बनवाकर संवत् १९७० के मार्गशीर्षमें पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करायी। मूलनायक भगवान् चन्द्रप्रभकी श्वेतवर्ण डेढ़ फुट ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त इस वेदीपर पाषाण और धातुकी १० प्रतिमाएँ हैं।

इस मन्दिरके बाहर बरामदेमें बाहरसे लायी हुई कुछ प्राचीन मूर्तियाँ रखी हुई हैं। एक मूर्ति बरौदिया ग्रामसे लायी गयी है, जो ३ फुट ऊँची है। इसकी चौड़ाई ढाई फुट है। यह श्वेतवर्ण है और पद्मासन है। मूर्तिके शीर्ष भागपर कोष्ठकमें अर्हन्त विराजमान है। उसके दोनों पार्श्वोंमें पुष्पवर्षा करते हुए आकाशचारी गन्धर्व हैं। चरणोंके दोनों ओर वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत चमरेन्द्र हाथमें चमर लिये हुए खड़े हैं। मूर्तिके शेष भागमें भव्य अलंकरण है।

कुछ मूर्तियाँ पुराने थूवोनसे लाकर यहाँ रखी गयी हैं। सम्भवतः ये मूर्तियाँ वहाँ उत्खननमें या खेतोंमें प्राप्त हुई थीं।

२५. ऋषभदेव जिनालय—भगवान् ऋषभदेवकी १६ फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। छत्रके दोनों ओर दो पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। नीचे चमरवाहक खड़े हैं। चरणचौकीपर दोनों ओर हाथी खड़े हैं। मध्यमें वृषभ लांछन अंकित है। इसकी प्रतिष्ठा सभासिंह (सवाई सिंह) चन्देरीनिवासीने संवत् १८७३ में वैशाख शुक्ला ३ (अक्षय तृतीया) के दिन करायी थी। इन्होंने ही इसके बीस वर्ष बाद चन्देरीकी विख्यात चौबीसीकी भी प्रतिष्ठा करायी थी। इस विशाल मूर्तिके पीठासनपर लेख उत्कीर्ण है। इस लेखसे प्रतिष्ठाकारक, प्रतिष्ठाकाल, तत्कालीन राज्यकाल आदि महत्त्वपूर्ण बातोंपर प्रकाश पड़ता है। वह लेख इस प्रकार है—

'अथ शुभ संवत्सरे विक्रमादित्य राज्योदयात् १८७३ मासोत्तम मासे वैशाखे शुभे शुक्लपक्षे ३ भौमवासरे श्री मूलसंघे सरस्वती गच्छे बलात्कारगणे कुन्दकुन्दाम्नाये प्रवर्तिते श्री महाराजाधिराज श्री दौलतराव आलीजा बहादुर राज्ये कर्नल जान वतीस (वेप्टिस) बहादुर राज्ये चौधरी सवाई राजधर हिरदेशाह चौधरी फतहसिंह वोहरा गोत्रे गुमाश्ता सवाईसिंह, भार्या कमला खण्डेलवाल वंशे बज गोत्रे एते सपरिवारो नित्यं जिनपदे प्रणमति।'

मन्दिर संख्या २४ को छोड़कर सभी मन्दिरोंकी मूर्तियाँ देशी पाषाणकी हैं और अधिकतर मूलनायक प्रतिमाएँ खड्गासन हैं।

क्षेत्रस्थ मन्दिरोंका जीर्णोद्धार समय-समयपर होता रहा है। जीर्णोद्धार करानेवालोंमें अन्यतम दानवीर साहू शान्तिप्रसादजीका नाम उल्लेखयोग्य है।

मार्ग

सेण्ट्रल रेलवेके ललितपुर स्टेशनपर उतरकर वहाँसे सड़क-मार्गसे ३४ कि. मी. चन्देरी है। चन्देरी-अशोकनगर सड़क-मार्गपर चन्देरीसे १४ कि. मी. और अशोकनगरसे लगभग ५० कि. मी. दूर पिपरौल ग्राम है। वहाँसे ८ कि. मी कच्चे मार्ग द्वारा थूवौन क्षेत्र है। दूसरा मार्ग अशोक-नगरसे सीधा २६ कि. मी. है। इस मार्गपर आठ महीने मोटरका आवागमन रहता है। पश्चिमी रेलवेकी कोटा-बीना लाइनपर मुंगावली स्टेशन उतरकर वहाँसे भी चन्देरी जा सकते हैं। इस प्रकार ललितपुर, अशोकनगर, मुगावली तीनो ही स्थानोंसे क्षेत्रपर जा सकते है और मार्गकी दूरी भी लगभग समान पड़ती है।

चन्देरी

चौबीसी मन्दिर

चन्देरी चौबीसी अर्थात् चौबीस तीर्थंकरोकी अत्यन्त कलापूर्ण और तीर्थंकरोंके ही वर्णकी मूर्तियोके कारण बुन्देलखण्डके तीर्थक्षेत्रोको पंक्तिमे अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। चौबीस तीर्थंकरोंकी ये मूर्तियाँ यहाँके बड़े मन्दिरमे विराजमान है। यहाँके एक स्तम्भ-लेखमे संवत् १३५० अंकित होनेसे यह मन्दिर इतना या इससे भी प्राचीन प्रतीत होता है। इसी मन्दिरमे चौबीस शिखरयुक्त कोठरियोंमे २४ तीर्थंकरोंकी पद्मासन मूर्तियां है। मूर्तियोका वर्ण वही है जो शास्त्रोंमे विभिन्न तीर्थंकरोंका बताया गया है, अर्थात् १६ स्वर्ण वर्णकी अथवा बादामी रंगकी, २ श्वेत वर्णकी, २ श्याम वर्णकी, २ हरित वर्णकी और २ रक्त वर्ण की। सभी मूर्तियोंकी रचना-शैली एक-सी है। ये मूर्तियां जयपुरसे बनवाकर मँगायी गयी है। इनकी कला अनुपम है। ऐसी सुन्दर और शास्त्रोक्त वर्णकी चौबीसी अन्यत्र नही है। उत्तर भारत और दक्षिणमे अनेक चौबीसी मन्दिर है जहाँ चौबीस तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ एक साथ मिलेंगी अथवा विभिन्न वेदियोपर होंगी। बहुधा सभी मूर्तियाँ श्वेत या श्याम वर्णकी मिलती है किन्तु यथावर्ण नही। चन्देरीको चौबीसीके निर्माणमें कलाकारने कलाको पराकाष्ठापर पहुँचा दिया है।

इस विख्यात चौबीसीके निर्माता संघाधिपति सवाईसिंह बजगोत्री खण्डेलवाल थे, जो सवाई चौधरी हिरदेशाह फतहसिंह फौजदारके गुमाश्ता थे। सवाईसिंहकी भार्याका नाम कमला था। इस चौबीसीकी प्रतिष्ठा संवत् १८९३ फाल्गुन कृष्णा ११ को हुई। सोनागिरिके भट्टारक चन्द्रभूषण इसके प्रतिष्ठाचार्य थे। मूर्तियोंकी चरण-चौकीपर निम्नलिखित लेख उत्कीर्ण है जिससे मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा, प्रतिष्ठाकाल, प्रतिष्ठाकारक और प्रतिष्ठाचार्यके सम्बन्धमे पूरा प्रकाश पड़ता है—"संवत् १८९३ फाल्गुन कृष्णा ११ भृगौ सुवर्णाचले भट्टारक चन्द्रभूषणस्यापदेशात् चन्द्रावत्यां सवाई सिंघई राजधर हिरदेशाह चौधरी मर्दनसिंहस्य शुभचिंतक संघाधिपति लाला सवाईसिंह नित्यं प्रणमन्ति प्रतिष्ठा कारपिता गजरथ सहित।"

इस मन्दिरके अतिरिक्त नगरमें एक दिगम्बर जैन मन्दिर, एक दिगम्बर जैन चैत्यालय और एक श्वेताम्बर जैन मन्दिर है।

भारतीय साहित्यमें चेदि जनपद

जैन पुराणों और कथाग्रन्थोंमें 'चेदि' राष्ट्रका नाम आता है। श्रीमज्जिनसेनाचार्यकृत आदिपुराणके अनुसार कर्मभूमिके प्रारम्भमें इन्द्र द्वारा जिन ५२ जनपदोंकी रचना की गयी थी, उनमें चेदि जनपद भी था। इसी प्रकार भगवान् आदिनाथने जिन देशोंमें विहार किया था, उनमें चेदिका नामोल्लेख मिलता है। आचार्य जिनसेनकृत हरिवंशपुराण १७।३६में चेदि राष्ट्रकी स्थापना हरिवंशी राजा वसुके पिता अभिचन्द्र द्वारा विन्ध्याचलके ऊपर बतायी गयी है। इसी पुराणमें शिशुपालको चेदिनरेश बताया गया है।

महाभारत आदि हिन्दू पुराणोंमें भी हैहयवंशी शिशुपालको चेदिनरेश बताया गया है। शिशुपालके पितामह चिदि थे। सम्भवतः चेदि नाम इसी चिदिके नामपर पड़ा। चिदिका उत्तराधिकारी उसका पुत्र दमघोष था। इस प्रकार जैन और हिन्दू पुराणोंमें चेदि राष्ट्रका उल्लेख तो मिलता है किन्तु चन्देरीका नाम देखनेमें नहीं आता। इन संस्कृत ग्रन्थोंके हिन्दी टीकाकारोंने चेदिका अर्थ चन्देरी किया है।

बौद्ध ग्रन्थोंमें चेदि, चेति और चेतिय शब्दोंका प्रयोग अनेक स्थानोंपर मिलता है। अंगुत्तर निकायमें सोलह महाजन जनपदोंके सम्बन्धमे सूचना मिलती है। इन सोलह जनपदोंमें अंग, मगध, काशी, कोसल, वज्जी, मल्ल, चेति, वंस (वत्स), कुरु, पांचाल, मच्छ (मत्स्य), सूरसेन, अस्सक, अवन्ती, गन्धार और कम्बोज सम्मिलित थे। इनमे चेति महाजनपदका भी नाम है। इसी जातकमे लिखा है कि बुद्धने चेति जनपदके सहजाति नगरमें भी विहार किया था। चेतिय जातकमे कहा गया है कि चेति देशके राजा उपचरके पाँच पुत्रोंने हासिपुर, अस्सपुर, सीहपुर, उत्तर पांचाल और दद्दरपुर इन पाँच नगरोंको बसाया। इसीमें एक स्थानपर बताया गया है कि चेति राज्यकी राजधानी सोत्थिवति नगरी थी। बुद्धत्व-प्राप्तिके पश्चात् बुद्धने अपना तेरहवाँ वर्षावास चेति या चेतिय राष्ट्रके चालिय या चालिक पर्वतपर किया, जो उसी राष्ट्रके प्राचीन वंसदायमे था और जिसके पास ही जन्तुगाम और किमिकाला नदी थी।

बौद्ध साहित्यके आधारपर चेति या चेतिय जनपद वंस (वत्स) जनपदके दक्षिणमें, यमुना नदीके पास, उसकी दक्षिण दिशामें स्थित था। इसके पूर्वमे काशी जनपद, दक्षिणमे विन्ध्य पर्वत, पश्चिममें अवन्ती और उत्तर-पश्चिममें मत्स्य और सूरसेन जनपद थे। वत्स जनपद और चेति जनपद दोनों एक दूसरेसे सटे हुए थे। चेति जनपदकी राजधानी सोत्थिवति बतायी गयी है। इस नगरीको नन्दोलाल डेने शुक्तिमतीसे मिलाया है। पार्जिटर और डॉ. हेमचन्दराय चौधरी आधुनिक बाँदाके समीप इसकी स्थिति मानते हैं। किन्तु वस्तुतः यह नगरी हस्तिनापुरके पश्चिममे थी। सहजाति चेति राज्यका दूसरा बड़ा नगर था। यह स्थल और जल दोनों मार्गोंपर अवस्थित था। सहजातिकी पहचान आधुनिक भीटाके भग्नावशेषोंसे की जाती है जो इलाहाबादसे ८-९ मील दक्षिण-पश्चिममे है। यह नगर गंगा-यमुनाके संगमके समीप था। इस विवरणसे यह निश्चित होता है कि चेति या चेदि राष्ट्र वर्तमान बुन्देलखण्ड और उसके आसपासके प्रदेशसे मिलकर बना था।

१. अंगुत्तर निकाय, जिल्द पहली, पृष्ठ २१३, पालि टैक्स्ट सोसाइटी।

२. अंगुत्तर निकाय, जिल्द पाँचवीं, पृ. ४१।

टाड (राजस्थान) न चन्देरीको ही चेदि माना है। आईने अकबरीके अनुसार प्राचीन कालमें चन्देरी बहुत बड़ा शहर था। कुछ इतिहासकारोंकी मान्यता है कि महाभारत-कालमें चेदि जनपदकी राजधानी शुक्तिमती थी और गुप्त-कालमें कालिंजर था। अनर्घ राघवके अनुसार कलचुरि कालमें चेदि मण्डलकी राजधानी माहिष्मती थी।

चन्देरीका नामकरण

चन्देरी नगर बहुत प्राचीन नहीं प्रतीत होता। चन्देरीका नामकरण किस प्रकार हुआ, इस सम्बन्धमे प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता एम. बी. गर्दे ने 'ए गाइड टु चन्देरी' नामक पुस्तकमें तीन विकल्प दिये हैं—

१. चेदिसे चन्देरी बन गया हो।

२. चन्द्रगिरिसे चन्देरी नाम पड़ा हो। वर्तमान चन्देरीमें जिस पहाड़ीपर किला है, वह चन्द्रगिरि माना गया है।

३. चन्देलोंकी राजधानी होनेसे इस नगरका नाम चन्देली पड़ा। चन्देलीसे चन्देरी हो गया। कुछ शिलालेखोंमें 'चन्देली' शब्द भी मिला है।

ऐतिहासिक महत्त्व

वर्तमान चन्देरीसे १४ कि. मी. उत्तर-पश्चिममें प्राचीन चन्देरीके भग्नावशेष हैं। गजेटियर और गाइडमें प्राचीन चन्देरीके लिए अँगरेजीमें 'ओल्ड चन्देरी' लिखा जाता रहा है, जिसका अनुवाद हिन्दीमे पुरानी न करके बूढ़ी कर दिया। इस प्रकार 'बूढ़ी चन्देरी' शब्द अधिक पुराना नहीं है। बूढ़ी चन्देरी वह स्थान कहलाता है जहाँ ऐतिहासिक और प्राचीन चन्देरी नगर आबाद था और वर्तमानमें जहाँपर उस प्राचीन नगरके भग्नावशेष बिखरे पड़े हैं।

ग्वालियरके गूजरी महलमे पुरातत्त्व संग्रहालय है। वहाँ चन्देरीसे प्राप्त एक शिलालेखमें प्रतिहारवंशी १३ राजाओंके नाम हैं। इनमें-से सातवें राजा कीर्तिपाल देवने प्राचीन नगरके दक्षिण-पूर्वमें एक दुर्ग बनाया और अपनी राजधानी वहीं ले गये। दुर्गका नाम राजाने अपने नामपर कीर्तिगढ़ रखा तथा दुर्गके पीछे एक सरोवर और मन्दिर बनवाया जो राजाके नामपर 'कीर्ति-नारायणका मन्दिर' कहलाया। किला और तालाब तो अभी है, पर मन्दिर नहीं है। सम्भवतः वह टूट गया। शिलालेखमे कीर्तिपालका समय अंकित नहीं है। नवीन चन्देरी बसानेकी यह घटना सम्भवतः ग्यारहवीं शताब्दीके प्रथम चरणमे हुई। सम्भवत. यह वही कीर्तिपाल अथवा कीर्तिराज था, जिसने महमूद गजनवीके समक्ष सन् १०२१ मे आत्मसमर्पण किया था। इसके पश्चात् यहाँ मुसलमानोंके जितने भी आक्रमण हुए, सभी वर्तमान चन्देरीपर ही हुए।

मुस्लिम इतिहासकारोंमें चन्देरीका सर्वप्रथम उल्लेख अलबेरुनीने किया है। यह विद्वान् महमूद गजनवीके आश्रयमें रहता था। यह महमूद गजनवीके साथ भारत आया था और यहाँसे लौटकर उसने 'किताबुल हिन्द' लिखी थी। मुस्लिम सल्तनत-कालमें अनेक बार चन्देरी दुर्गपर आक्रमण हुए। तेरहवीं शताब्दीमें चन्देरी चन्देलनरेश चाहड़देवके अधिकारमें चली गयी। सन् १२५१ में नासिरुद्दीन महमूदके प्रधानमन्त्री बलबनने चन्देरीपर आक्रमण किया और इसे हस्तगत कर लिया। किन्तु थोड़े दिनों बाद यह नगरी फिर चन्देल राजाओंके अधिकारमें चली गयी। सन् १३०४ में अलाउद्दीन खिलजीके सेनापति आइनुलमुल्कने इसपर आक्रमण किया। इसके बाद फीरोजशाह तुगलक और सिकन्दर लोदीने आक्रमण किये।

मुगल वंशके संस्थापक बाबरने चन्देरीके राजा मेदिनीराय चौहानपर आक्रमण किया। इस युद्धमें राजाने वीरगति पायी। जब मुसलमानोंने किला जीत लिया तो हजारों वीरांगनाओंने २८ जनवरी सन् १५२८ को हँसते-हँसते जौहर-व्रत किया अर्थात् अपने शीलकी रक्षाके लिए जलती हुई अग्निमें कूदकर अपने प्राण दे दिये।

जहाँगीरने ओरछानरेश मधुकरशाहके ज्येष्ठ पुत्र रामशाह बुन्देलाको राजाकी उपाधि देकर सन् १६०५ में चन्देरीका शासक बनाया। बुन्देला वंशके १२ राजाओंने इस नगरपर शासन किया। बुन्देला देवीसिंहने सिंहपुरमें, उनके पुत्र दुर्गासिंहने पंचम नगरमें, उनके पुत्र दुर्जनलालने रामनगरमें महल बनवाये। अन्तिम बुन्देला राजा मरदानसिंहने सन् १८५७ में झाँसीकी रानी लक्ष्मीबाईका साथ दिया। इस कारण अँगरेजोंने उन्हें राज्यच्युत कर दिया। मुगल कालमें चन्देरी राज्यमें १८ परगने थे और २२ लाखकी वार्षिक आय थी।

बादमें ग्वालियरके सिन्धिया राजाओंका आधिपत्य इस नगरीपर हो गया। १९४८ ई. में ग्वालियर राज्यका विलीनीकरण मध्यभारतमें हो गया और १९५६ ई. में मध्यभारत मध्यप्रदेशमें आ गया। ग्वालियर राज्यमें चन्देरी गुना जिलेमें थी और अब भी है। यहाँकी साड़ियाँ भारतमें आज भी प्रसिद्ध हैं। यहाँ राजपूत राजाओं द्वारा बनवाये हुए महल, मन्दिर और सरोवर आज भी दर्शनीय हैं और मुस्लिम शासकों द्वारा बनवाये हुए मकबरे, मसजिदें, ताल और बावड़ी भी द्रष्टव्य हैं।

यह नगर समुद्र-तलसे १७०० फुटकी ऊँचाईपर स्थित है तथा दुर्गका निर्माण नगरसे २०० फीट ऊँची पहाड़ीपर हुआ है। नगरके चारों ओर पर्वतमालाएँ हैं। पहाड़ियोंमें प्राकृतिक सरोवर और झरने हैं। इसके पूर्वमें ८ मीलपर बेतवा और पश्चिममें आठ मीलपर उर्वशी नदी बहती है।

जैन संस्कृतिका केन्द्र

विन्ध्य भूमि जैन संस्कृतिके लिए उर्वर क्षेत्र रही है। अति प्राचीन कालसे यहाँ जैनधर्मका प्रचार-प्रसार रहा है। चन्देरी भी जैन संस्कृतिका केन्द्र था। इसके चारों ओर प्रसिद्ध तीर्थस्थल हैं—जैसे सिद्धक्षेत्र श्रमणगिरि (सोनागिर) एवं अतिशय क्षेत्र देवगढ़, खजुराहो, पवा, पपौरा, सेरोन, अहार, तपोवन (थूबौन), गोलाकोट, पचराई, भियादौत, मामोन, तूमैन, आमनचार, गुरीलागिरि आदि।

क्षेत्र-दर्शन

मन्दिरके मुख्य द्वारमें प्रवेश करनेपर एक चौक मिलता है, जिसमें एक ओर पुजारियोंके लिए स्नानघर है। दालानमें स्वाध्याय और सामायिक करनेकी सुविधा है। दालानमें ही प्रवेशद्वार है। इस द्वारमें प्रवेश करनेपर दूसरा चौक मिलता है जिसमें चारों ओर बरामदोंमें १२ वेदियाँ बनी हुई हैं। इनमें ९-१०वीं वेदीमें कुछ प्राचीन मूर्तियाँ विराजमान हैं। ये कहाँसे आयीं यह ज्ञात नहीं हो सका। ये सभी मूर्तियाँ अपनी शैली आदिसे १०-११वीं शताब्दीकी प्रतीत होती हैं। यद्यपि एक मूर्तिपर लेख है किन्तु अस्पष्ट होनेके कारण पढ़नेमें नहीं आता।

इसके पश्चात् तृतीय चौकमें जाते हैं। इसीमें चारों ओर २४ गर्भगृह बने हुए हैं। प्रथम पंक्तिमें ४ गर्भगृह हैं। द्वितीय पंक्तिमें ८, तृतीय पंक्तिमें ७ और चतुर्थ पंक्तिमें ५ गर्भगृह हैं।

प्रथम गर्भगृहमें ऋषभदेव भगवान्‌की स्वर्णवर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। मूर्तिकी अवगाहना ३ फुट ५ इंच है। गर्भगृहका आकार ७ फुट ३ इंच × ५ फुट ३ इंच है।

इसके मूर्ति-लेखसे ज्ञात होता है कि मूर्तिकी प्रतिष्ठा सुवर्णाचल (सोनागिर) पर हुई थी। लेखमें प्रतिष्ठाकारकको चन्द्रावती नगरका निवासी बताया गया है। चन्देरीको सम्भवतः चन्द्रावती भी कहते थे।

अजितनाथ, सम्भवनाथ और अभिनन्दननाथकी मूर्तियोंकी अवगाहना, वर्ण और गर्भगृहका आकार प्रथम गर्भगृहके समान है।

सुमतिनाथ भगवान्‌का वर्ण स्वर्ण है और अवगाहना बिना आसनके ३ फुट १ इंच है। गर्भगृहका आकार ६ फुट ६ इंच × ४ फुट ७ इंच है।

पद्मप्रभ भगवान्‌का वर्ण रक्त है, अवगाहना ३ फुट ७ इंच है। गर्भगृह ६ फुट ४ इंच × ४ फुट ५ इंच है।

पार्श्वनाथ भगवान्‌का वर्ण हरित है तथा मूर्तिकी अवगाहना ४ फुट २ इंच है। शेष मूर्तियाँ और गर्भगृह ऋषभदेवकी मूर्ति और गर्भगृहके समान हैं। केवल वर्णमें अन्तर है। चन्द्रप्रभ और पुष्पदन्त श्वेतवर्णके, मुनि सुव्रतनाथ और नेमिनाथ नील वर्णके, वासुपूज्य और पद्मप्रभ रक्तवर्णके तथा सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ हरित वर्णके हैं। शेष तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ स्वर्ण वर्णकी हैं। प्रत्येक गर्भगृहके ऊपर शिखर है।

महावीर स्वामीके गर्भगृहके पार्श्वमें एक गन्धकुटी बनी हुई है। इसमें अधोभागमें ८, मध्यभागमें ४ और उपरिभागमें ४ एवं शीर्षवेदिकामें ४, इस प्रकार २० कलिकाएँ बनी हुई हैं। सम्भवतः निर्माणके पश्चात् इनमें कभी मूर्ति प्रतिष्ठित नहीं की गयी। इसके निर्माणका क्या उद्देश्य था, यह भी किसीको ज्ञात नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है. यह विदेह क्षेत्रके २० तीर्थंकरोंके लिए बनायी गयी होगी। निर्माताकी भावना सम्भवतः यह रही होगी कि इस युगके भरत क्षेत्र सम्बन्धी २४ तीर्थंकरोंकी असाधारण मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हो गयीं, और क्षेत्रके वर्तमान २० तीर्थंकरो (विरहमानों) की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित करके उनकी नवीनता और असाधारणतासे भक्तोंको चमत्कृत और प्रभावित किया जाये। किन्तु किसी कारणवश निर्माताकी भावना पूर्ण नहीं हो सकी। तबसे यह असाधारण रचना उपेक्षित दशामें पड़ी हुई है। हमें आश्चर्य नहीं होगा, यदि यह सुन्दर कृति शीघ्र ही जीर्णशीर्ण होकर बिखर जाये।

चौबीसी चौकके मध्यमें एक स्तम्भ है। इसके ऊपर कोई प्रतिमा नहीं है, किन्तु यह मान-स्तम्भ स्थानीय प्रतीत होता है। मन्दिरके द्वितीय चौकके बरामदेमें भूगर्भके लिए जीना बना हुआ है। यह भूगर्भमें बने हुए एक कुएँकी ओर जाता है। पहले मन्दिरके अभिषेक और पूजनके लिए इसी कुएँसे जल लाया जाता था। मन्दिर बहुत विशाल है। उसके बगलमें एक धर्मशाला बनी हुई है, जिसमें त्यागी व्रतीजनोंके ठहरनेकी व्यवस्था है। इसीमें एक पक्का कुआँ बना हुआ है। एक पृथक् धर्मशाला भी बनी हुई है, जिसमें कन्या पाठशाला चल रही है। इसीमें यात्रियोंके ठहरनेकी भी व्यवस्था है।

खन्दारगिरि

मार्ग

चन्देरीसे पुरानी कचहरी होकर लगभग दो कि. मी. कच्चा मार्ग है। अथवा सड़क कटी घाटीके पाससे मिलती है। इससे क्षेत्र लगभग ३ कि. मी. दूर पड़ता है। यह क्षेत्र चन्देरीके

किलेके दूसरे-तीसरे दरवाजेके बीचमें पड़ता है। जैनकी मूर्तियाँ और गुफाएँ यहाँकी चट्टानोंमें-से बनायी गयी हैं। इसके निकट ही बुढ़ियाखोह, भड़ियाखोह आदि गुफाएँ हैं। बुढ़ियाखोहके निकट संवत् ११३२ का एक शिलालेख और मन्दिरोंके भग्नावशेष मिलते हैं।

इतिहास

वर्तमान चन्देरीमें कुछ शताब्दी पूर्व बलात्कारगणकी जेरहट शाखाका अत्यधिक प्रभाव था। लगता है, कुछ भट्टारकोंने यहाँ अपना उपपीठ भी बना रखा था। वे समय-समयपर यहाँ आकर ठहरते थे और लोगोंको मन्दिर-निर्माण और मूर्ति-प्रतिष्ठाके लिए प्रेरित करते रहते थे। पपौराके एक मूर्तिलेखमें उल्लेख है—"संवत् १७१८ वर्षे फाल्गुने मासे कृष्णपक्षे श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ. श्री ६ धर्मकीर्ति तत्पट्टे भ. श्री ६ पद्म-कीर्ति तत्पट्टे भ. श्री ६ सकलकीर्ति उपदेशेनेयं प्रतिष्ठा कृता....।" इसी प्रकार अहारके एक मूर्तिलेखमें 'श्री धर्मकीर्ति उपदेशात्' तथा अहारके ही एक अन्य मूर्तिलेखमें 'भ. श्री सकलकीर्ति-उपदेशात्' ऐसे उल्लेख उपलब्ध होते हैं। इनसे इस बातकी पुष्टि होती है कि बलात्कारगणकी जेरहट शाखाके भट्टारकोंने पपौरा-अहार आदि क्षेत्रोंपर अनेक मन्दिरों और मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करायी थी। इन्हीं भट्टारकोंके उपदेशसे चन्देरी नगरके निकट एक पहाड़ीमें गुहा-मन्दिरोंका निर्माण किया गया। कन्दराओंके कारण ही इस स्थानको बोलचालमें कन्दराजी कहा जाता है जो बिगड़ते-बिगड़ते अब खन्दारजी कहलाने लगा है। इन भट्टारकोंमें-से कुछकी छतरी और चबूतरे यहाँ पहाड़की तलहटीमें बने हुए हैं। इनमें सबसे विशाल स्मारक भट्टारक पद्मकीर्तिका है। एक पाषाण-चरणपर संवत् १७१७ मार्गशीर्ष सुदी १४ बुधवासरे अंकित है। उपर्युक्त भट्टारकों-का भट्टारकीय काल क्रमशः धर्मकीर्ति संवत् १६४५-१६८३, पद्मकीर्ति संवत् १६८३-१७११, सकलकीर्ति संवत् १७११-१७२० है।

क्षेत्र-दर्शन

पहाड़के नीचे तलहटीमें भट्टारकोंकी छतरी और चबूतरोंके पास एक पाषाणशिलामें क्षेत्रपाल उकेरे हुए है। उसके सामने सड़कके दूसरी ओर मानस्तम्भ बना हुआ है, जिसमें चतु-र्मुखी तीर्थंकर प्रतिमा विराजमान है। इसके निकट ही धर्मशाला, कुआँ तथा पूजनादिके लिए मण्डप बना हुआ है। मानस्तम्भके निकट ऊपर पहाड़ीपर गुहा-मन्दिरों तक जानेके लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। यद्यपि यहाँ मुख्य दो गुफाएँ हैं—एक तो मुख्य मूर्तिके दायीं ओर और दूसरी उसके बायीं ओर—किन्तु कुल गुफाओंकी संख्या ६ है। इनमें-से पाँच गुफाएँ १६वीं शताब्दीमें निर्मित हुई है और मात्र एक गुफा १३वीं शताब्दीकी है।

गुफा नं. १—यह गुफा बायीं ओरकी पहाड़ीपर है। इस ओर अन्य कोई गुफा नहीं है। इसके लिए पृथक् सीढ़ियाँ बनायी गयी हैं। गुफा-द्वार बहुत ही छोटा है तथा भीतर भी खड़े होने लायक ही ऊँचाई है। यह गुफा १६वी शताब्दीकी है। इसमें मूलनायक भगवान् सम्भवनाथकी प्रतिमा पद्मासन मुद्रामें ध्यानावस्थित है और ३ फुट ६ इंच ऊँची है। इसके परिकरमें गजपर खड़े हुए चमरवाहक इन्द्र हैं जो प्रतिमाके दोनों ओर बने हुए हैं। इसके दोनों ओर तीर्थंकर प्रतिमाएँ विराजमान हैं जो ऊँचाईमें क्रमशः छोटी होती गयी हैं। मूलनायकके दायीं ओर चन्द्रप्रभ, शान्ति-नाथ (दोनों संवत् १९९१), कुन्थुनाथ (संवत् १९९०) और पुष्पदन्त (संवत् १६९०) की प्रतिमाएँ है। इसी प्रकार बायीं ओर मूलनायकसे आगे अनन्तनाथ, महावीर, पार्श्वनाथ, पद्मप्रभ और सम्भवनाथकी मूर्तियाँ हैं। ये भी क्रमशः छोटी होती गयी है।

यहाँ कायोत्सर्ग मुद्रामें बाहुबली स्वामीकी एक अद्भुत मूर्ति है। इसे ग्रामीण लोग 'औघड़ बाबा' भी कहते हैं। उनके गलेमें दो सर्प लिपटे हैं। कटिके दोनों पार्श्वोंमें भी सर्प लिपटे हुए हैं। नाभिसे ऊपर दोनों ओर दो चूहे बने हुए हैं। दोनों हाथोंपर दो छिपकली बनी हुई हैं तथा पैरोंमें जंघेपर एक घुमावके साथ सर्प बने हैं।

मूर्तियोंके दोनों ओर स्थान कम होनेके कारण दो प्रतिमाओंके बीच एक चमरवाहक बनाकर उसके दोनों हाथोंमें चमर दे दिया गया है जिससे दोनों ओर चमरधारी प्रतीत होते हैं। जहाँ स्थान अधिक है, वहाँ दोनों ओर पृथक्-पृथक् चमरेन्द्र बनाये गये हैं।

गुफा नं. २—यहाँसे नीचे उतरकर गुफा नं. २ मिलती है। यह सभीके मध्यमें है। यही गुफा यहाँकी सर्वाधिक दर्शनीय और लोकप्रिय है। इसमें एक ही चट्टानमें ३५ फुट ऊँची शान्तिनाथ भगवान्की खड्गासन प्रतिमा है। मूर्ति काले पाषाणकी है। मूर्ति खण्डित है।

इस मूर्तिके चरणोंके अधोभागमें ६ खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। उनके भी अधोभागमें ५ पद्मासन प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। चरणोंके दोनों पार्श्वोंमें हाथियोंपर खड़े चमरधारी भगवान्की सेवा कर रहे हैं।

बड़ी प्रतिमाके दायीं ओर १६ फुट उत्तुंग कायोत्सर्ग मुद्रामें तीर्थंकर मूर्ति है। बायीं ओर इतनी ही बड़ी पार्श्वनाथकी मूर्ति थी। उसे काटकर निकाल लिया गया है किन्तु सर्पफण अभी तक बने हुए हैं।

गुफा नं. ३—गुफा नं. २ से सीढ़ियों द्वारा कुछ ऊपर जानेपर प्रक्षिप्त चट्टानके नीचे पर्वतमें उकेरी हुई तीन प्रतिमाएँ हैं। इनमे श्रेयान्सनाथकी प्रतिमा १६ फुटकी है। शेष दो प्रतिमाएँ ८-८ फुटकी हैं। ये तीनों १६वीं शताब्दीकी हैं। तीनों प्रतिमाओंके दोनों पार्श्वोंमें गजपर चमरवाहक खड़े हुए हैं।

यहाँ पाषाण-चरण भी बने हुए हैं। इनपर संवत् १७१७ मार्गशीर्ष सुदी १४ बुधवासरे अंकित है।

गुफा नं. ४—गुफा नं. ३ से कुछ ऊपरको नीचे झुकी हुई चट्टानपर एक आलेमें तीन प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। मध्यमें एक तीर्थंकर प्रतिमा है और उसके दोनों ओर पार्श्वनाथ हैं। ये तीनों पद्मासनमें हैं और इनका आकार लगभग ३ फुट ६ इंच है। इनके दोनों ओर गजपर खड़े हुए चमरधारी हैं। पार्श्वनाथकी दोनों मूर्तियोंके दोनों ओर धरणेन्द्र-पद्मावती हैं तथा सिरपर सर्पफणावली है। यह गुफा १६वी शताब्दीकी है।

गुफा नं. ३ से कुछ ऊपर जानेपर एक बड़ा चबूतरा मिलता है। वहाँ खड़े होकर इन मूर्तियोंके दर्शन हो सकते हैं।

गुफा नं. ५—गुफा नं. ४ के समान चट्टानमें दो मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। एक तीर्थंकर प्रतिमा है जो पद्मासनमें ध्यानावस्थित है। दूसरी प्रतिमा बाहुबली स्वामीकी है। यह कायोत्सर्ग मुद्रामें है। गलेमें, कटिपर तथा जंघे तक सर्प लिपटे हुए हैं। श्रीवत्सके दोनों ओर नाभि तक दो चूहे बने हुए है तथा दोनों भुजाओंपर छिपकलियाँ हैं। कामदेव बाहुबलीके सुघड़ सलोने शरीरपर इन क्षुद्र जन्तुओंके कारण चित्रांकन-जैसा प्रतीत होता है।

गुफा नं. ६—गुफा नं. १ के दायें सिरेपर यह गुफा बनी हुई है। पहले इस गुफामें खड़ा होने योग्य स्थान नही था, झुककर दर्शन करने पड़ते थे। किन्तु अब उसकी छतको काटकर खड़ा होने योग्य स्थान बना दिया गया है। यही गुफा यहाँकी सबसे प्राचीन गुफा है। इसके मूर्ति-लेखोंमे संवत् १२८३ उत्कीर्ण है।

इस गुफामें १० तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं तथा २ प्रतिमाएँ यक्षीकी हैं। यक्षी प्रतिमाएँ अम्बिका-की हैं। देवी एक बालकको गोदमें लिये हुए खड़ी है, दूसरा बालक उसकी उँगली पकड़े खड़ा है। तीर्थंकर प्रतिमाओंमें एक प्रतिमा खड्गासन है, शेष सभी पद्मासन मुद्रामें हैं। ये सभी मूर्तियाँ संवत् १२८३ की हैं, इनमें-से कुछ मूर्तियाँ संवत् १२८१ में ज्येष्ठ सुदी ३ गुरुवारको अल्हेशाह लम्बकंचुक (लंबेचू) द्वारा प्रतिष्ठित हुई हैं।

इस क्षेत्रके जीर्णोद्धारका कार्य एवं सड़कका निर्माण दानवीर साहू शान्तिप्रसादजीकी ओरसे किया गया है।

वार्षिक मेला—चन्देरीके वार्षिक विमानोत्सवके दिन भगवान्का विमान खन्दारको आता है। महावीर जयन्तीका चल-समारोह भी यहाँपर आता है। वर्षा ऋतुमें जैन और जैनेतर लोग यहाँ वन-विहार और वन-भोजके लिए आते हैं। इस ऋतुमें यहाँकी प्राकृतिक छटा निराली होती है।

गुरीलागिरि

मार्ग

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र गुरीलागिरि मध्यप्रदेशके गुना जिलेमें मुंगावली तहसीलमें अवस्थित है। ललितपुर-चन्देरी मार्गपर ललितपुरसे २५ कि. मी. सड़कके किनारे प्राणपुर गाँव है। यहाँसे, पगडण्डीसे ४ कि. मी. और चन्देरीसे ६ कि. मी. दूर सिद्धपुरा नामक ग्राम है। यहाँसे पहाड़ीपर ६ फर्लांग चलनेपर यह क्षेत्र पड़ता है। प्राणपुरसे ५-६ कि. मी. कच्चे मार्गसे पैदल या बैलगाड़ी द्वारा सिरसौद ग्राम पहुँच सकते हैं। यहाँ जैन धर्मशाला और मन्दिर भी हैं। यहाँसे क्षेत्र एक-डेढ़ कि. मी. है। यहाँका जैन समाज तीर्थयात्रियोंके लिए बैलगाड़ी तथा सुरक्षाके लिए आदमीकी भी व्यवस्था कर देता है। यही मार्ग सर्वश्रेष्ठ है।

इतिहास

सेठ पाड़ाशाह १२वीं शताब्दीके विख्यात धर्मात्मा थे जिन्होंने अनेक स्थानोंपर भगवान् शान्तिनाथकी विशालकाय प्रतिमाओं और मन्दिरोंकी प्रतिष्ठा करायी। उन्होंने राँगेके व्यापारमें अपार धन अर्जित किया और उसका उपयोग मन्दिर-मूर्तियोंके निर्माणमें किया। जैनधर्मके प्रति उनकी श्रद्धा अगाध थी। अतः उन्होंने जैन मन्दिरों और मूर्तियोंका निर्माण कराया। उनकी धर्मपत्नी वैष्णव थीं। अतः उन्होंने कई स्थानोंपर वैष्णव मन्दिरोंकी प्रतिष्ठा करायी। मन्दिरों और मूर्तियोंके निर्माण तथा प्रतिष्ठाओंमें विपुल धनका व्यय होते देखकर जनतामें यह धारणा व्याप्त हो गयी कि सेठको कहींसे पारसमणि मिल गयी है और उसीसे सोना बनाकर वे मन्दिर आदि बनवाते हैं। कोई यह कहने लगा कि कहीं उन्होंने अपना राँगा सन्ध्याके समय उतारा था और देखा तो वह चाँदी हो गया था जिसे बेचकर सारा धन मन्दिरों-मूर्तियोंमें लगा दिया। इस प्रकार उनकी धर्मरुचिके सम्बन्धमें जनतामें नाना भाँतिकी किंवदन्तियाँ प्रचलित हो गयीं। इतना ही नहीं, उन्होंने जहाँ-जहाँ मन्दिर बनवाये, उनके सम्बन्धमें भी किंवदन्तियाँ फैल गयीं कि वे सभी स्थान अतिशय क्षेत्र बन गये।

इसी सेठने गुरीलागिरिके ऊपर भी एक मन्दिर बनवाया। इसमें भी भगवान् शान्तिनाथकी भव्य मूर्ति विराजमान है। यहाँ बादमें १०-१२ मन्दिर और भी बने।

पहले यहाँ कोई बड़ी बस्ती रही होगी। आज भी यहाँपर पाषाणनिर्मित सैकड़ों भवनोंकी चौकियाँ और अवशेष मन्दिरके चारों ओर बिखरे पड़े हैं। जल और व्यापार आदिकी असुविधा होनेपर यहाँके निवासी शनैः-शनैः इस स्थानको छोड़कर पहाड़की तलहटीमें जा बसे। जैनोंकी अधिकताके कारण इस गाँवका नाम सिद्धपुरा हो गया। सन् १५२८ में मुगल बादशाह बाबरने चन्देरीके हिन्दूनरेश मेदिनी रायपर भयानक वेगसे आक्रमण किया। हिन्दू ललनाओंने जौहर किया और वे अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिए अग्नि-ज्वालाओंमें हँसते-हँसते कूद पड़ीं। हिन्दू वीरोंने केसरिया बाना पहनकर मुसलमानी सेनाके साथ भयंकर युद्ध किया किन्तु प्राण देकर भी वे मातृभूमिकी रक्षा न कर सके। विजयी मुगल सैनिकोंने लूट, बलात्कार और अपहरणके काण्डों द्वारा बाबरके जिहादको सफल बनाया। मार्गमें उन्हें जो भी मन्दिर और मूर्तियाँ मिलती गयीं, उनका भंजन करते गये। लगता है, गुरीलाके मन्दिर और मूर्तियाँ इसी जिहादमें तोड़ी गयीं। वहाँके मकान भी नष्ट कर दिये गये। गुरीला और सिद्धपुराके निवासी गाँव छोड़कर भागनेपर बाध्य हुए। जिहादके इस क्रूर काण्डको औरंगजेबके समयमें भी शायद दुहराया गया।

यहाँ भग्न भवनों और मन्दिरोंको देखनेपर प्रतीत होता है कि इनमें दो प्रकारके पाषाणोंका प्रयोग किया गया है—भूरे और काले। मन्दिर जिस पाषाणके बनाये गये, उनकी मूर्तियाँ भी उसी पाषाणकी बनायी गयी हैं। मन्दिर बनानेमें ईंट-गारेका प्रयोग नहीं किया गया, केवल पाषाण ही काममें लाये गये है।

अतिशय

इस क्षेत्रके अतिशयोंके प्रति जैन और अजैन दोनोंमें ही गहरी आस्था है। ग्रामीण लोग विभिन्न अवसरोंपर यहाँ मनौती मानने आते हैं। अगर किसीका पशु खो जाता है तो सिद्धबाबा (एक शिला) को चढ़ावा (नारियल) चढ़ाता है। उसका पशु मिल जाता है। अतिवृष्टि हो या अनावृष्टि, दोनों ही अवसरोंपर यहाँ आकर ग्रामीण बन्धु कीर्तन करते हैं और उनकी कामना पूर्ण हो जाती है।

इधर एक विचित्र किंवदन्ती प्रचलित है। यदि कोई व्यक्ति इस पहाड़ीपर आकर मार्ग भूल जाता है तो उसे एक बावड़ी दिखाई देती है। उसमें-से उसे भोजन और जल मिलता है। तब कोई-न-कोई व्यक्ति आ मिलता है। फिर बावड़ी अदृश्य हो जाती है।

इस क्षेत्रके प्रति इधरकी ग्रामीण जनताके मनमें इतनी श्रद्धा है कि प्रचलित प्रथाके अनुसार प्रत्येक नवजात शिशुका मुण्डन-संस्कार यहीं कराया जाता है।

उल्लेखनीय स्थान

शान्तिनाथ मन्दिरके निकट दो स्थान विशेष उल्लेखनीय हैं, जिनसे १००० वर्षोंसे पहाड़ीपर जैनोंके धार्मिक आधिपत्य और प्रभावका पता चलता है। एक तो सिद्धबब्बा है। यह एक शिला है। यहीं लोग मनौती मानने आते हैं। यहाँके चमत्कारके सम्बन्धमें एक प्रत्यक्षदर्शीने हमें बताया—कई वर्ष पहलेकी घटना है। सिद्धबब्बापर कीर्तन हो रहा था। कीर्तनके पश्चात् प्रसाद बाँटा गया। किसी व्यक्तिने सिद्धबब्बापर ही वह प्रसाद खा लिया। देखते-देखते कहींसे कई फुट लम्बी-चौड़ी एक शिला हवामें उड़ती हुई आयी और उस व्यक्तिके पैरपर आकर गिर पड़ी। उसका सारा पैर बुरी तरह कुचल गया। तब सबने मिलकर पुनः कीर्तन किया और बाबा खुश हो गये। वह शिला जिस आकस्मिक ढंगसे आयी थी, वैसे ही वह उड़ती हुई एक स्थानपर जा गिरी।

वह व्यक्ति इसके पश्चात् पहाड़से गिर पड़ा। वह शिला अब तक वहाँ ही रखी हुई है और लोग अब उसकी भी पूजा करते हैं।

दूसरा है वह मार्ग जो पहाड़से नीचे सरोवर तक आता है। उसका नाम है पड़ाशाह घाट। यह नाम पाड़ाशाहके नामपर ही पड़ा है, जिन्होंने यहाँ मन्दिर और मूर्ति बनवाये और जो इसी मार्गसे पाड़ों (भैंसों) पर राँगा लादकर लाये थे। जनताने पाड़ाशाहके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करनेके लिए इस मार्गका नाम पाड़ाशाह-घाट रख दिया जो बोलचालकी भाषामें पड़ाशाह-घाट कहलाने लगा।

क्षेत्र-दर्शन

सिद्धपुरा ग्रामसे पहाड़ीकी चढ़ाई लगभग ३ फर्लांग है। पहाड़ीके ऊपर समतल भूमिपर भी लगभग २-३ फर्लांग चलना पड़ता है। कहते हैं, पहले यहाँ हजारों जैन प्रतिमाएँ थीं किन्तु उपेक्षा, धर्मोन्माद और निकृष्ट साधनसे धनोपार्जन करनेकी लालसाके कारण उन सभी प्रतिमाओं-का विनाश हो गया। आततायियोंने धर्म-द्वेषवश अनेक मूर्तियोंको नष्ट कर दिया। धनके लोभसे मूर्तिचोर यहाँकी अनेक मूर्तियोंके सिर काटकर ले गये। जैनोंकी उपेक्षाके कारण इस प्रकारकी निन्द्य वृत्तिवालोंको अनुकूल अवसर प्राप्त हुआ। विनष्ट होनेसे जो कुछ बच रहा है, उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

मन्दिर नं. १—यह शान्तिनाथ मन्दिर है। मन्दिरके द्वारपर ललाटबिम्बपर एक फलकमें पद्मासन मुद्रामें एक तीर्थंकर प्रतिमा उत्कीर्ण है। उसके सिरके दोनों पार्श्वोंमें दो गज बने हुए हैं जो ऐरावत प्रतीत होते हैं। वे इन्द्र भगवान्‌की सेवामें भक्ति-भावसे बैठे हुए हैं। उनके अधोभागमें उनकी इन्द्राणी भी बैठी हुई है।

इस मन्दिरमें भूरा पाषाण काममें लिया गया है। इसकी प्रतिमाएँ भी भूरे पाषाणकी हैं। इस मन्दिरमे गर्भगृह एक ही है। उसमे भगवान् शान्तिनाथकी १६ फुट ऊँची एक प्रतिमा कायो-त्सर्ग मुद्रामे ध्यानावस्थित है। यह प्रतिमा एक ही शिलासे उकेरी गयी है। मूर्तिके सिरपर तीन छत्र सुशोभित है। छत्रोंके ऊपर दुन्दुभिवादक हैं। भगवान्‌के चरणोंके दोनों ओर चमरेन्द्र सेवारत हैं। दो श्राविकाएँ, जो वस्त्रालंकारोंसे अलंकृत हैं, सामग्री लिये भगवान्‌के चरणोंमें नमन करती दीख पड़ती हैं।

एक शिलाफलकपर भगवान् नेमिनाथकी खड्गासन प्रतिमा है। इसके दोनों पार्श्वोंमें दो देवियाँ हैं। दायीं ओरकी देवी ललितासनमें बैठी हुई है। बायी ओरकी देवी खड़ी हुई है। उसकी उँगली पकड़े हुए शुभंकर बालक खड़ा है। देवी अपने दूसरे हाथसे बालक प्रीतिंकरको गोदमें लिये हुए है। इन देवियोंके दोनों ओर पार्श्वद खड़े हैं। ये देवी-मूर्तियाँ अम्बिकाकी हैं, जो मातृ-देवीका रूप है।

एक शिलाफलकमें पार्श्वनाथकी पद्मासन प्रतिमा है। फणावली खण्डित हो गयी है। पीठा-सन धरणेन्द्रपर आधारित है। प्रतिमाके दोनों ओर दो-दो खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। दायीं ओरकी एक प्रतिमा खण्डित कर दी गयी है। यह मूर्ति पंचबालयतिकी है।

पार्श्वनाथकी एक पद्मासन प्रतिमाकी केवल फणावली अवशिष्ट है। भामण्डलके ऊपर दोनों ओर गजका अंकन है।

एक फलकमें पंचबालयतिकी प्रतिमा है। मध्यकी मूर्ति पद्मासन मुद्रामें है तथा उसके दोनों पार्श्वोंमें दो-दो खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं।

एक शिलाफलकमें छह तीर्थंकरोंका अंकन है। तीर्थंकर कायोत्सर्ग मुद्रामें ध्यानमग्न हैं। २-३ प्रतिमाएँ ऐसी हैं जो अधिक क्षतिग्रस्त हैं। अतः उन्हें पहचानना कठिन है।

मन्दिर नं. २—यह चौबीसी मन्दिर कहलाता है। यह काले पाषाणका बना हुआ है। मूर्तियाँ भी काले पाषाणकी बनी हुई हैं। इनकी अवगाहना ४ फुट है। इसी आकारकी भूरे पाषाण-की बाहुबली स्वामीकी प्रतिमा भी यहाँ विराजमान है। सभी प्रतिमाओंके सिर कटे हुए हैं। कुछ सिर यहीं विद्यमान हैं। इन प्रतिमाओंके दोनों ओर एक-एक सेविकादेवी बनी हुई है। इसके गलेमें अक्षमाला और तिराना तथा कटिमे मेखला सुशोभित है। मन्दिरके स्तम्भोंपर नृत्य-मुद्रामें पुरुष और स्त्रिया प्रदर्शित हैं। मन्दिरके द्वारकी चौखटपर मध्यमें पद्मासन और दोनों कोनोंपर खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं।

दो पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ ४८ दलवाले कमलपर विराजमान हैं। इनके भी सिर कटे हुए हैं। मन्दिरकी धरनपर मध्यमें पद्मासन और उसके दोनों कोनोपर कायोत्सर्गासन तीर्थंकर प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं।

इन दोनों मन्दिरोके अतिरिक्त कुछ मन्दिर भग्न दशामें पड़े हुए हैं। इनकी लगभग ६०० मूर्तियाँ मन्दिरके परकोटेकी दीवारोंसे टिकाकर रखी हुई हैं। एक शिलाफलकपर चौबीस तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण है और अखण्डित दशामे है। कुछ वर्ष पूर्व उसे सिरसौद गाँवके मन्दिरमें प्रतिष्ठित कर दिया गया है। इस फलकमे दो पंक्तियोमे १२-१२ प्रतिमाएँ हैं। सभी खड्गासन हैं और २ इंच अवगाहना की हैं।

यहाँ मन्दिरोंके सामने एक मानस्तम्भ है जो गिर चुका है। उसमें पद्मासनमें पद्मप्रभकी प्रतिमा बनी हुई है।

यहाँकी सभी मूर्तियोंके शारीरिक अवयव समानुपातिक हैं और उनकी गठन भरावदार है।

बूढ़ी चन्देरी

मार्ग

बूढ़ी चन्देरी या प्राचीन चन्देरी वर्तमान चन्देरीसे उत्तर और उत्तर-पश्चिमकी ओर १४ कि. मी. दूर है। मार्ग इस प्रकार है—चन्देरीसे खनियाधाना-शिवपुरीकी तरफ जानेवाली सड़क-पर ९ कि. मी. दूर मोहनपुरसे ५ कि. मी. कच्चा मार्ग है। साथ ही चन्देरी-ईसागढ़-रोडपर चन्देरीसे १३ कि. मि. दूर भाण्डरीसे भियादांत होते हुए ८ कि. मी. कच्चा रास्ता है। बेतवा नदीपर बने हुए रानीघाटसे भी पश्चिम और उत्तर-पश्चिममे लगभग इतनी ही दूर यह स्थान पड़ता है। बूढ़ी चन्देरी जंगलोंसे घिरी है। मीलों तक बस्ती नही है। एक पहाड़ीपर कोट और गढ़ीके भग्नावशेष हैं। सारी पहाड़ी इन अवशेषोंसे पटी पड़ी है। चन्देरीसे बूढ़ी चन्देरीके लिए पक्की सड़क बन चुकी है।

इतिहास

शताब्दियोंसे यहाँ भग्नावशेष पड़े हुए हैं। इस विनाशको देखकर मनमे सहज ही यह प्रश्न उठता है कि ऐसा निर्मम विनाश किन हाथों द्वारा किया गया, किन्तु कोई समाधान नही मिलता। इतिहास-ग्रन्थोंको देखनेसे पता चलता है कि मालवापर जब मुसलमानोंने अधिकार किया, तभी

इस नगरपर भी उनका अधिकार हो गया था। वहाँके तत्कालीन हिन्दू शासकने अपनी राजधानी यहाँसे हटाकर नवीन चन्देरीमें स्थापित कर ली। यह समय सम्भवतः १५वीं शताब्दी था। विजयी मुसलमानोंने इस नगरको जीतकर मन्दिरों और मूर्तियोंका भीषण विनाश किया। उन्होंने यहाँ कुछ महल और मसजिदें भी बनायीं जिनके चिह्न यहाँ अब तक उपलब्ध होते हैं।

चन्देरीका सर्वप्रथम उल्लेख फारसीके इतिहासकार फरिश्ताने किया है। उसने लिखा है कि दिल्लीके नासिरुद्दीन महमूदने हिजरी सन् ६४९ (ई. सन् १२५१) में चन्देरी और मालवापर अधिकार करके वहाँ सूबेदार नियुक्त कर दिया। मुहम्मद तुगलकके कालमें, सन् १३३५ में, इब्न बतूता नामक इतिहासप्रसिद्ध यात्री भारत आया था। उसने भी इसका उल्लेख करते हुए लिखा है कि—'तब हम चन्देरी शहर पहुँचे जो एक बड़ा नगर है।' इस चन्देरीसम्बन्धी सम्पूर्ण विवरण-से लगता है कि यह उल्लेख बूढ़ी चन्देरीके लिए किया गया है।

इसके पश्चात् सन् १४३४ में महमूद खिलजीने चन्देरीपर अधिकार कर लिया। इसके आगामी वर्ष चित्तौड़नरेश राणा कुम्भाने यहाँके मुस्लिम सूबेदारको मार भगाया। तब महमूद यहाँ स्वयं युद्ध करने आया। वह आठ माह तक किलेपर घेरा डाले पड़ा रहा। आखिर महमूद विजयी हुआ। चूँकि इस घटनामें दुर्गकी विजयका उल्लेख है, अतः यह निश्चित रूपसे नवीन चन्देरी (वर्तमान चन्देरी) होनी चाहिए।

इन उल्लेखोंसे हम इस निश्चित परिणामपर पहुँच सकते हैं कि सन् १३३५ या इसके आसपास इब्न बतूताके कालमें (बूढ़ी) चन्देरी सुरक्षित और सम्पन्न नगर था। किन्तु सन् १४३४ में युद्धका केन्द्र वर्तमान चन्देरी नगर बन गया। इससे लगता है कि सन् १३३५ और १४३४ के बीच बूढ़ी चन्देरीका महत्त्व समाप्त हो गया और उसका विनाश कर दिया गया। हमारे विचारसे यह कार्य मालवाके स्वयम्भू सुलतानोंमें-से किसीका हो सकता है। इस नगरकी स्थापना महोबाके चन्देल राजाओंने की थी, जिनका शासन सन् ७०० से ११८४ तक रहा।

बूढ़ी चन्देरी एक पहाड़ीपर स्थित है। बेतवाके पश्चिमी तटपर स्थित यह पहाड़ी ३०० फुट ऊँची है। यह नगर तो अब खण्डहरोंके रूपमें पड़ा है किन्तु नगरके बिखरे हुए अवशेषोंसे प्रतीत होता है कि प्राचीन कालमें यह नगर अत्यन्त समृद्ध था। यहाँ जैन शिल्प और स्थापत्यका उल्लेखयोग्य वैभव बिखरा पड़ा है। उससे लगता है कि यह कभी जैन धर्मका बहुत बड़ा केन्द्र था। शताब्दियोंसे ये कलावशेष उपेक्षित दशामें पड़े रहे, किसीका ध्यान इनकी ओर नहीं गया। किन्तु संवत् २००१ में जैन समाजने इस ओर ध्यान दिया। तब जीर्णोद्धारका कार्य प्रारम्भ किया गया। सैकड़ों मूर्तियाँ जमीन खोदकर या जंगलोंमें खोजकर प्राप्त की गयीं। यहाँकी कलामें एक वैशिष्ट्य परिलक्षित होता है। यहाँकी मूर्तियाँ अलंकृत हैं। उनके अंग-विन्यासमें समानुपात है। वे अष्ट प्रातिहार्य और यक्ष-यक्षीसहित हैं। उनके मुखपर ईषत् मुसकान है। मूर्तिलेख और श्रीवत्स किसी मूर्तिपर नहीं है। कुछ मूर्तियोंपर लांछन भी नहीं है। विपुल परिमाणमें ऐसी सुन्दर मूर्तियाँ देवगढ़को छोड़कर अन्यत्र दुर्लभ हैं। कुछ वर्षोंसे मूर्तियोंके सिर खण्डित किये जाने लगे हैं। यह विध्वंस-लीला यहाँ भी हुई। सैकड़ों मूर्तियाँ सिरविहीन हो गयीं। तब केन्द्रीय पुरातत्त्व विभागने अवशिष्ट मूर्तियोंको चन्देरीमें लाकर एकत्र कर दिया। शासनकी ओरसे यहाँ एक संग्रहालय बनानेकी योजना है। किन्तु अब भी खण्डित और अखण्डित अनेक मूर्तियाँ वहाँ बिखरी और दबी पड़ी हुई हैं।

प्राचीन कालमें यह तीर्थक्षेत्र रहा होगा, किन्तु अब यह कोई तीर्थ नहीं रह गया है। फिर भी हम इसे कला-तीर्थ अवश्य कह सकते हैं।

आमनचार

मार्ग

आमनचार चन्देरीसे लगभग २९ कि. मी. है। मुंगावली रोड-पर पथौरा तक २६ कि. मी. पक्की सड़क है तथा ३ कि. मी. कच्चा मार्ग है। चन्देरी और मुंगावली रोडके मध्य सेहराई गाँव है। दोनों स्थानोंसे यह १९ कि. मी. है। वहाँसे क्षेत्र ३ कि. मी. है।

पुरातत्त्व

यहाँ गाँवके भीतर और बाहर, गली-बाजारमें, घरोंमें, कुओंपर, पेड़ोंके नीचे सब जगह जैन मूर्तियाँ पड़ी हुई हैं। गाँवमें एक जैन मन्दिर है। इसमें प्राचीन कालका एक सहस्रकूट चैत्यालय है। यह शिल्प-सौष्ठवका अद्भुत नमूना है।

मूर्तियोंकी शैली आदिसे ऐसा अनुमान है कि वे ११-१२वीं शताब्दीकी हैं।

भामौन

मार्ग

भामौन बीठलासे ६ कि. मी. है। ईसागढ़से १३ कि. मी. और महोलीसे ८ कि. मी. है। सभी मार्ग कच्चे हैं।

पुरातत्त्व

अन्तिम ३ कि. मी. भागमें भामौन तक और उसके चारों ओर मन्दिरोंके भग्नावशेष पड़े हुए हैं। इन अवशेषोंमें जैन मूर्तियाँ भी बड़ी संख्यामें हैं। लगभग १०० मूर्तियोंके खण्डित भाग भी मिलते हैं। भामौनके आसपासकी पहाड़ियोंपर भी प्राचीन मूर्तियाँ मिलती हैं।

मार्ग

भियादांत मध्यप्रदेशमें चन्देरी-ईसागढ़ रोडसे १३ कि. मी. दूर भाण्डरी गाँवसे ५ कि. मी. की दूरीपर उर्वशी नदीके किनारे एक पहाड़ीपर स्थित है। यह क्षेत्र गुना जिलेकी मुँगावली तहसीलमें है। इसका निकटतम रेलवे स्टेशन मुंगावली (कोटा-बीना लाइन) ५३ कि. मी. है तथा अशोकनगर ५० कि. मी. है। साथ ही चन्देरी-ईसागढ़ रोडसे १७ कि. मी. दूर महोलीसे ५ कि. मी. कच्चे मार्गपर है।

पुरातत्त्व

यहाँ जैन पुरातत्त्व और कलाकी सामग्री विपुलतासे मिलती है। यहाँके मन्दिरमें पद्मासन तीर्थंकर-मूर्ति मूलनायकके रूपमें प्रतिष्ठित है। ग्रामीण लोग इसे 'बैठा देव' कहते हैं। प्रतिमा अत्यन्त आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक है। इस प्रतिमाके कारण ही लोग इस स्थानको अतिशय

क्षेत्र कहते हैं। अहीर और गूजर इसे भीमसेन बाबा कहते हैं। जब उनकी गाय-भैंस बच्चे देती है, तब ये लोग आकर यहाँ भगवान्‌के ऊपर दूध चढ़ाते हैं।

यहाँ एक गुफा है जो मीलों तक चली गयी है। उसके सिरेपर एक तालाब है।

बीठला

मार्ग

चन्देरीसे ईसागढ़ जानेवाले रोडपर १३ कि मी. पर भाण्डरी गाँवसे ८ कि. मी. भियादाँत होते हुए बीठला क्षेत्र है। चन्देरीसे १७ कि. मी. दूर सड़कपर महोली है। वहाँसे यह क्षेत्र ६ कि. मी. है। मार्ग कच्चा है। यह क्षेत्र गुना जिलेमें है।

पुरातत्त्व

इस गाँवसे दो फर्लांगपर एक प्राचीन जैन मन्दिर खड़ा हुआ है। इसके आसपास कई जैन मन्दिरोंके भग्नावशेष पड़े हुए हैं। इन अवशेषोंमें कुछ तीर्थंकरोंकी खण्डित मूर्तियाँ पड़ी हुई हैं। मूर्ति-चिह्नोंसे सम्भवनाथ और मुनिसुव्रतनाथकी मूर्तियाँ पहचानी जा सकती हैं। ये मन्दिर और मूर्तियाँ लगभग १२वीं शताब्दीकी प्रतीत होती हैं।

आसपासमें इस प्रकारके कई स्थान हैं जहाँ प्राचीन मन्दिरोंके अवशेष मिलते है तथा जहाँ खण्डित-अखण्डित मूर्तियाँ इधर-उधर पड़ी हुई हैं, जैसे नादारी, इन्सारी।

पपौरा

स्थिति और मार्ग

पपौरा अतिशय क्षेत्र है। यह मध्यप्रदेशके टीकमगढ़ जिलेमें कानपुर-सागर-मार्गपर टीकमगढ़से पूर्व दिशामें ५ कि. मी. है। यहाँ जानेके लिए सेण्ट्रल रेलवेके ललितपुर स्टेशनपर उतरना होता है। यहाँसे टीकमगढ़ ५८ कि. मी. है और वहाँ तक पक्की सड़क है। बसें बराबर मिलती हैं। टीकमगढ़से पपौरा तक भी सड़क पक्की है। बस, ताँगे या स्कूटर द्वारा वहाँ जा सकते हैं। सड़कसे क्षेत्र लगभग एक फर्लांग है।

मन्दिरोंकी नगरी

सुरम्य वृक्षावलीसे घिरे हुए विशाल मैदानके बीचमें एक परकोटेके अन्दर १०७ गगनचुम्बी मन्दिर है। मन्दिर नं. २४ अ और ब को एक ही माना है। इन्हें दो मन्दिर माननेपर १०८ मन्दिर हो जाते हैं। किन्तु वस्तुतः मन्दिरोंकी संख्या इतनी नहीं है क्योंकि नवनिर्मित बाहुबली मन्दिरमें २४ तीर्थंकरोंकी २४ मन्दरियाँ बनी हुई है। वे भी पृथक् मन्दिरोंके रूपमें उक्त संख्यामें सम्मिलित कर ली गयी हैं। इसी प्रकार मन्दिर नं. ७६ मे २४ तीर्थंकरोंके पृथक्-पृथक् गर्भगृह बने हुए है। इन्हें २४ मन्दिर मानकर मन्दिरोंकी गणना कर ली गयी है। यदि बाहुबली मन्दिर और चौबीसी मन्दिरको एक-एक मन्दिर मानें तो क्षेत्रपर मन्दिरोंकी संख्या १०७ न होकर ६०

रह जायेगी क्योंकि तब ४७ मन्दिर कम हो जायेंगे। मन्दिरोंकी इस नगरीमें श्वेत मन्दिरोंपर श्वेत उत्तुंग शिखर, शिखरोंपर हवामें झूमती-लहराती ध्वजाएँ कितनी भव्य प्रतीत होती हैं ! जैन मन्दिरोंकी यह नगरी अपने प्राकृतिक सौन्दर्य और शान्त वातावरणके कारण आत्मसाधकों और भक्त श्रावकोंके लिए तो आकर्षणका केन्द्र है ही, साथ ही यह कलाप्रेमियों, शोध-छात्रों और इतिहासकारोंको भी अपनी ओर आकर्षित कर लेती है।

यहाँके मन्दिरोंको कालकी दृष्टिसे विभाजित करना चाहें तो यह कहा जा सकता है कि यहाँ १ मन्दिर १२वी शताब्दीका, १ मन्दिर १४वी शताब्दीका, ३ मन्दिर १५वी शताब्दीके, ४ मन्दिर १७वी शताब्दीके, १ मन्दिर १८वी शताब्दीका, ६१ मन्दिर १९वीं शताब्दीके और ३३ मन्दिर २०वी शताब्दीके हैं। ४ मन्दिरोके निर्माण-कालका पता नही चलता। उनके लेख या तो अस्पष्ट हैं, अथवा हैं ही नही। १२वी शताब्दीका जो मन्दिर बताया गया है, वह मन्दिर नहीं, भोंयरा है। सम्भव है, यहाँके किसी मन्दिरमे इन मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा हुई हो, और आततायियोंके आतंकसे मूर्तियोंकी सुरक्षाके लिए बादमे भोंयरा बनाया गया हो, यह अनुमान मात्र ही है क्योंकि यहाँ कोई मन्दिर १२वी शताब्दीका प्रतीत नही होता, न ही उस कालके भग्नावशेष यहाँ उपलब्ध होते है। इस विषयमें शोधकी आवश्यकता है। यहाँके सबसे प्राचीन चार मन्दिर हैं—महावीर मन्दिर (मन्दिर क्रमांक ५), चन्द्रप्रभ मन्दिर (मन्दिर क्रमांक ७), पार्श्वनाथ मन्दिर (क्रमांक ४१) और चन्द्रप्रभ मन्दिर (क्रमांक ४२), ये चारों ही मन्दिर संवत् १४३०, १५२४ और १५४२ के हैं। इनमें दो मेरु-मन्दिर हैं। लगभग इसी कालमें मेरु-मन्दिरोंकी इसी प्रकारकी रचना अहार और सोनागिरमे हुई। अहारका मेरु-मन्दिर संवत् १५४८ मे बनकर प्रतिष्ठित हुआ और सोनागिरिके मेरु-मन्दिरकी प्रतिष्ठा (जिसे पिसनहारीका मन्दिर कहा जाता है) संवत् १५४९ मे हुई। खजुराहो, रेशन्दीगिरि, द्रोणगिरि, पटनागंज आदि क्षेत्रोंपर मेरु-मन्दिरोंकी रचना इन्हींकी अनुकृतिपर हुई। मेरु-मन्दिरकी अन्तःपरिक्रमावाली रचनाका प्रारम्भ कब और कहाँ हुआ, यह अभी विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता, किन्तु मध्यप्रदेशके मेरु-मन्दिरोमे सर्वाधिक प्राचीन पपौराके ये दो मेरु-मन्दिर लगते हैं जिनका अनुकरण अन्य कई तीर्थोंपर किया गया।

इन मन्दिरोंको छोड़कर केवल ५ मन्दिर ही ऐसे हैं जो १७-१८वी शताब्दीके हैं, शेष तो १९-२०वी शताब्दीके हैं। शिल्पकारोंके समक्ष मन्दिरोकी नानाविध शैलियाँ, रूप और प्रकार विद्यमान थे। इसलिए उन्होंने पपौराके मन्दिर-शिल्पमे उनका अनुकरण करके उसे वैविध्य प्रदान किया है। इसलिए हमें यहाँ एक ओर नागर-शैलीके मन्दिरोके दर्शन होते हैं, दूसरी ओर यहाँके मन्दिरोंके कई शिखरोंपर द्रविड़ शैलीकी भी छाप पड़ी है। यहाँका शिल्पी पारम्परिक सीमाओंमें बँधकर चलता दीख पड़ता है किन्तु फिर भी वह शिल्पको नयी विधा देनेमे सफल रहा है। मन्दिरको रथ या मुकुलित कमलका आकार देनेमें शिल्पीकी प्रतिभाका परिचय मिलता है। मन्दिरकी चौबीसीके निर्माणमें भी विशिष्ट कल्पना और सूझबूझ झलकती है।

यहाँके मन्दिरोंकी प्रतिष्ठा कब हुई, इस सम्बन्धमें कही कोई लेख प्राप्त नही होता। किन्तु प्रायः मूलनायककी प्रतिष्ठाके समय ही मन्दिर और वेदीकी प्रतिष्ठा होती है। अतः प्रत्येक मन्दिरकी मूलनायक प्रतिमाके लेखके द्वारा उस मन्दिरका भी प्रतिष्ठा-काल ज्ञात हो जाता है। इस आधारपर मन्दिरोंकी प्रतिष्ठाका इस प्रकार वर्गीकरण कर सकते हैं—संवत् १४३० में १ मन्दिर और संवत् १५२४ में १ मन्दिरको प्रतिष्ठा हुई; संवत् १५४२ में २ मन्दिरों की; १६८४ में १; १६८७ में १; १७१६ में १; १७१८ में १; १७७९ में १; १८६० में १; १८६५ में १; १८६९ में १; १८७२ में २; १८७५ में १; १८७६ मे १; १८८२ में २; १८८३ में ३; १८८८ में १; १८९०

में १; १८९२ में ६; १८९३ में ३; १८९४ में १; १८९७ में २; १९०० में २; १९०३ में १; १९१६ में २६; १९३९ में १; १९४० में १; १९४२ में २; १९५५ में १; २०१६ में १ और संवत् २०२५ में मन्दिर नं. ४४ से ६८ तकके २५ मन्दिरोंकी प्रतिष्ठा की गयी। १२ मन्दिरोंका प्रतिष्ठा-काल ज्ञात नहीं हो सका है। इस विवरणसे यह निष्कर्ष निकलता है कि १४वीं शताब्दीसे १८वीं शताब्दी तक यहाँ कुल ९ जिनालय निर्मित हुए। यह गणना मूर्तिलेखोंके आधारपर की गयी है। किन्तु मूर्तिलेखोंका सूक्ष्म अध्ययन करनेपर ज्ञात होता है कि १८वीं शताब्दी तकके किसी मूर्तिलेखमें पपौरा क्षेत्रका नामोल्लेख नहीं किया गया। संवत् १८६० के मूर्तिलेखमें सर्वप्रथम पपौराका उल्लेख प्राप्त होता है, और वह भी क्षेत्र पपौराके रूपमें। इसके उत्तरकालीन मूर्तिलेखोंमें क्षेत्र पपौराका उल्लेख बराबर मिलता है।

कुछ उल्लेखनीय विशेषताएँ

इस क्षेत्रपर कई चीजें ऐसी हैं जो ऐतिहासिक और पुरातात्त्विक दृष्टिसे उल्लेख योग्य कही जा सकती हैं और दर्शक जिनकी उपेक्षा नहीं कर सकता। ऐसी कुछ विशेषताओंका उल्लेख यहाँ किया जा रहा है—

भोंयरे

यहाँ दो भोंयरे (भू-गर्भगृह) हैं। एक भोंयरेमें तीन कमरे हैं। भोंयरा काफी विशाल है। कमरोंकी छतें भी बहुत ऊँची हैं। इन कमरोंमें एक कमरेकी लम्बाई-चौड़ाई २० फुट ९ इंच है। किन्तु इस भोंयरेमे कोई मूर्ति नहीं है।

एक दूसरा भोंयरा भी है जो यहाँका सबसे प्राचीन स्थान है। इसमें भगवान् आदिनाथकी कृष्ण पाषाणकी पालिशदार प्रतिमा अति मनोज्ञ है। भगवान्‌के मुखपर वीतरागता, शान्ति और सौन्दर्यका अद्‌भुत संगम है। ऐसी मनोज्ञ मूर्तियाँ भारतमें बहुत कम प्राप्त होती हैं।

इस मूर्तिके दोनों ओर दो मूर्तियाँ ८०० वर्षसे कुछ अधिक प्राचीन हैं। जैसा कि उनके पीठासनोंपर अंकित लेखोंसे प्रकट होता है, दोनों ही मूर्तियाँ संवत् १२०२ की हैं। दायीं ओर की मूर्तिकी प्रतिष्ठा संवत् १२०२ आषाढ़ वदी १० बुधवारको गोलापूर्वी साहु गल्ले और उनकी स्त्रीने करायी। दूसरी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा इसी मुहूर्तमें गोलापूर्व साहु टुडा और उनके परिवारने करायी। ये तीनों ही मूर्तियाँ अपने शिल्प-सौन्दर्य और प्राचीनताकी दृष्टिसे बहुमूल्य है।

इस भोंयरेसे ऐसा लगता है कि अहार, बन्धा, पपौरा आदि स्थानोंके भोंयरे एक ही कालमें बने हुए हैं। उस समय इस क्षेत्रपर कोई मन्दिर आदि नहीं था। भोंयरे कोई कलाकी वस्तु नहीं थे। उनके निर्माणका उद्देश्य मूर्तियोंकी सुरक्षा करना था। वह काल ऐसा था, जब बाहरसे आने-वाले मुसलमानोंके आक्रमण शुरू हो चुके थे और वे आक्रमण करते समय मन्दिरों और मूर्तियोंका भी विध्वंस कर रहे थे। इन आततायियोंका आतंक उत्तर भारतमें सर्वत्र फैल चुका था। ऐसे ही कालमें उन स्थानोंपर भोंयरे बनाये गये, जो प्राकृतिक दृष्टिसे सुरक्षित थे और जिनकी ओर आततायियोंका ध्यान न जा सके। नगरोंमें कुछ मन्दिरोंके नीचे गर्भगृह बनाये गये और कुछ गर्भ-गृह पर्वतों, वनों और एकान्त स्थानोंमें बनाये गये। स्थानीय स्तरपर ही ये प्रयत्न किये गये। अतः भोंयरोंकी संख्या अधिक नहीं हो सकी। बुन्देलखण्डके भोंयरोंका अध्ययन करनेपर हम इस निष्कर्ष-पर पहुँचते हैं कि केवल सुरक्षित स्थान देखकर ही वहाँ ये भोंयरे बनाये गये। भोंयरोंके निर्माणसे पूर्व यहाँ कोई मन्दिर रहा हो अथवा तीर्थकी मान्यता रही हो, ऐसा भी नहीं लगता। यही कारण

है कि इन स्थानोंपर ११-१२वीं शताब्दीमे पूर्वके कोई मन्दिर नहीं मिलते। इस सम्भावनाको भी इनकार नही किया जा सकता कि १० से १२वी शताब्दी तक की जो मूर्तियाँ इन भू-गर्भालयोंमें उपलब्ध होती हैं, वे उस स्थानकी न हों जहाँ वे वर्तमान हैं, बल्कि अन्यत्रसे लाकर प्रतिष्ठित कर दी गयी हों।

प्राचीन समुच्चय

यह यहाँका सबसे प्राचीन स्थान माना जाता है। इस स्थानके बीचमें एक मन्दिर बना हुआ है और उसके चारों ओर पुराने ढंगके बारह मठ है। लोग इस स्थानको 'सभा-मण्डप' कहते हैं।

चौबीसी—मूर्तियोंकी चौबीसी तो कई स्थानोंपर मिलती है किन्तु यहाँ मन्दिरोंकी चौबीसी बनी हुई है। एक मन्दिरके चारो ओर अर्थात् चारो दिशाओंमे छह-छह मन्दिरोंकी पंक्तियाँ हैं। मन्दिरोंकी ऐसी चौबीसी शायद अन्यत्र कही नही है।

क्षेत्रपर अतिशय

इस क्षेत्रके अतिशयोंके सम्बन्धमे अनेक किंवदन्तियाँ जनतामें प्रचलित हैं। कई किंवदन्तियाँ तो ऐसी भी हैं जो अन्य कई क्षेत्रोंपर भी प्रचलित हैं, जैसे बावड़ी द्वारा बरतनोंका दान, महिलाका सूखे कुएँमे उतरना और उसके ऊपर आनेपर जलका ऊपर आना आदि। इसलिए यह नही कहा जा सकता कि इन किंवदन्तियोंमें कितना सत्यांश और कितनी कल्पना है। यदि इनमे कुछ सत्यांश भी है तो ये घटनाएँ वस्तुत: किस क्षेत्रपर घटित हुईं, यह नहीं कहा जा सकता।

यहाँ जो किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं, उनमे-से कुछ इस प्रकार हैं—

१. यहाँ एक पुरानी बावड़ी है। जब किसी यात्रीको बरतनोंकी जरूरत पड़ती थी तो वह एक पर्चीपर बरतनोंके नाम लिखकर उसे उस बावड़ीमे डाल देता था। थोड़ी देरमे बरतन पानीके ऊपर आ जाते थे। काम पूरा होनेपर वह उन बरतनोंको पुन: पानीमे डाल देता था। एक बार एक यात्रीकी नीयत खराब हो गयी। उसने बरतन पानीमे नही डाले। तबसे बावड़ीने बरतन देना बन्द कर दिया।

२. मन्दिर नं. १ बन रहा था। एक वृद्ध महिला इस मन्दिरका निर्माण करा रही थी। मन्दिरकी नीव भरी जा चुकी थी। भोज होनेवाला था। किन्तु कुएँका पानी सूख गया। वह वृद्धा रस्सोंसे बँधी चौकीपर बैठकर भगवान्के नामकी माला फेरती हुई कुएँमे उतरी। जब वह वापस आने लगी तो जैसे-जैसे वह ऊपर आती गयी, कुएँका पानी चौकीको छूता हुआ ऊपर उठने लगा। जब वह महिला बाहर निकली तो कुएँका पानी भी कुएँसे बाहर बहने लगा। भोजका काम सानन्द सम्पन्न हुआ। वह कुआँ अब भी मौजूद है और उसका नाम तबसे ही 'पतराखन' हो गया है।

३. अनेक लोग भोंयरे और चन्द्रप्रभ मन्दिरमें मनोकामना लेकर आते हैं। स्त्रियाँ सन्तान-की इच्छासे यहाँ मनौती मानती है और हाथके छापे लगाती हैं।

ऐतिहासिक सामग्री

यहाँकी मूर्तियोंके पीठासनोंपर लेख उत्कीर्ण हैं। उनमे इतिहासकी प्रचुर सामग्री भरी पड़ी है। उपलब्ध मूर्ति-लेखोंका अध्ययन और विश्लेषण करनेपर अनेक बातोंपर प्रकाश पड़ता है, जैसे

भट्टारक-परम्परा, राजाओंके नाम, प्रतिष्ठाकारकोंके परिवार, उनकी जाति, गोत्र, वंश आदि। यहाँ विस्तृत विवेचन न करके उनके केवल नाम ही दिये जा रहे हैं—

भट्टारक—धर्मकीर्ति तत्पट्टे पद्मकीर्ति तत्पट्टे सकलकीर्ति, चन्द्रपुरी पट्टे भट्टारक नरेन्द्र-कीर्ति। ललितकीर्ति तत्पट्टे रत्नकीर्ति।

ओरछा-नरेश—(महाराजकुमार महेन्द्र बहादुर महाराजाधिराज यह पदवी सभी राजाओं-के साथ है) विक्रमाजीत, धर्मपाल, तेजसिंह, सुजानसिंह, हमीरसिंह, उद्योतसिंह।

नगरोंके नाम—टेहरी, पपौरा, टीकमगढ़, छत्रपुर, चन्देरी, भोपाल, परतापगंज, सुनवारा, भामोन।

जाति—परवार, गोलालारे, गोलापूर्व, पौरपट्ट।

गोत्र—कोछल्ल, वासल्ल, भारल्ल, गोइल्ल, गोहिल्ल, कासिल्ल, वाछल्ल, वेरिया, कासिय, वाझल्ल, पड़ैले, श्वान बिहार।

मूर—ओछल्लि, बहुरिया, भारु, वैशाखिया, मागेर, नारद, देवा, गोदू, रकिया, डेरिया।

क्षेत्र-दर्शन

मुख्य सड़कसे थोड़ा चलकर विशाल गोपुर (मुख्य द्वार) मिलता है। इस द्वारके ऊपर ही रथाकार जिनालय बना हुआ है। द्वारसे प्रवेश करते ही दोनों ओर दो-दो मानस्तम्भ दिखाई पड़ते हैं जिनकी वेदीमें चार-चार प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित है। दायी ओर वीर विद्यालय भवन और छात्रावास है तथा बायीं ओर विशाल हॉल और व्रती भवन है। आगे बढ़नेपर दोनो ओर प्राचीन और नवीन क्षेत्र-कार्यालय है। पुराने कार्यालयके निकट ही पतराखन कुआँ है और आगे भोजनशाला। सामने मैदान पार करके धर्मशाला है। नवीन कार्यालयके निकट ही मन्दिरोकी तालिका प्रारम्भ हो जाती है। प्रत्येक मन्दिरपर क्रम-संख्या लिखी हुई है। इससे यात्रीको दर्शन करनेमें असुविधा नही होती। इन मन्दिरोका क्रमशः परिचय इस प्रकार है—

१. आदिनाथ मन्दिर—भगवान् ऋषभदेवकी १० फुट ऊँची स्वर्णवर्ण खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। सिरपर छत्र और पीछे भामण्डल हैं। सिरके दोनों ओर गगनविहारी देवियाँ पुष्पवर्षा कर रही हैं। चरणोंके दोनों ओर चमरेन्द्र खड़े हैं। उनसे नीचे चतुर्भुजी गोमेद यक्ष और अष्टभुजी चक्रेश्वरी यक्षी है। बिलकुल अधोभागमे दोनों ओर भक्तगण है।

इसके अतिरिक्त पाषाणकी २ तथा धातुकी १० प्रतिमाएँ है। प्रतिष्ठा-संवत् १८७२ है।

२. सुपार्श्वनाथ मन्दिर—एक गन्धकुटीमें भगवान् चन्द्रप्रभकी श्वेतवर्ण पद्मासन मूर्ति विराजमान है। अवगाहना डेढ़ फुट है। एक धातु-मूर्ति भी इसके आगे आसीन है।

मुख्य वेदीमें सुपार्श्वनाथकी कृष्ण पाषाणकी सवा दो फुट ऊँची पद्मासन मूर्ति विराजमान है। प्रतिष्ठाका संवत् मिट गया है। वह संवत् १८८३ प्रतीत होता है।

३. चन्द्रप्रभ मन्दिर—भगवान् चन्द्रप्रभकी २ फुट उत्तुंग कृष्णवर्ण पद्मासन प्रतिमा विराज-मान है। प्रतिष्ठाका संवत् १८९२ है।

४. श्रेयान्सनाथ मन्दिर—भगवान् श्रेयान्सनाथकी ३ फुट ७ इंच उत्तुंग कृष्णवर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। प्रतिष्ठा-काल संवत् १८८२ है। इसके आगे श्वेत पाषाणकी चन्द्रप्रभ-प्रतिमा विराजमान है जो २ फुट २ इंच ऊँची है।

५. महावीर मन्दिर—एक वेदीमें मूलनायक भगवान् महावीरकी श्वेत पाषाणकी पद्मासन

प्रतिमा विराजमान है। इसकी अवगाहना २ फुट ७ इंच है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९९४ में हुई थी। इसके समवसरणमें श्वेत पाषाणकी ५ पद्मासन प्रतिमाएँ हैं।

उपर्युक्त मन्दिरमें ऊपरकी मंजिलमें भी वेदी है, जिसमें मध्यमें श्यामवर्ण पार्श्वनाथ आसीन हैं। यह मूर्ति संवत् १९०४ में प्रतिष्ठित हुई। बायीं ओर एक शिलाफलकमें २४ तीर्थंकरोंकी प्रतिमाएँ रखी हुई हैं। प्रथम पंक्तिमें १ पद्मासन, दूसरी पंक्तिमें ५ पद्मासन, तीसरी पंक्तिमें ४ खड्गासन, चौथी पंक्तिमें ४ पद्मासन, पाँचवी पंक्तिमे ४ खड्गासन, छठी पंक्तिमें ४ पद्मासन तथा मध्यमें १ पद्मासन मूर्ति है। मध्य मूर्तिके सिरके ऊपर छत्र, उसके ऊपर दुन्दुभिवादक तथा दोनों ओर धर्मचक्रका अंकन है। इस मूर्तिके नीचे तीन गन्धर्व नृत्यमुद्रामे अंकित किये गये है। इसके लेखके अनुसार इसकी प्रतिष्ठा संवत् १४३० में हुई थी। भगवान् पार्श्वनाथके दायी ओर सात इंचके एक शिलाफलकमें एक पद्मासन मूर्ति बनी हुई है।

६. मेरु मन्दिर—अन्तःपरिक्रमावाला मेरु-मन्दिर है। इसमे लाल पाषाणकी पद्मासन मुद्रामें पार्श्वनाथ मूर्ति विराजमान है। अवगाहना १ फुट ५ इंच और प्रतिष्ठा-काल संवत् १८९० है।

७. मेरु-मन्दिर—यह भी पूर्ववत् मेरु-मन्दिर है। इसमें चन्द्रप्रभकी श्वेतवर्ण १ फुट ३ इंच ऊँची पद्मासन मूर्ति आसीन है। प्रतिष्ठा संवत् १५४२ मे हुई।

८. पार्श्वनाथ मन्दिर—यहाँ संवत् १९०३ में प्रतिष्ठित ३ फुट ऊँची पार्श्वनाथ-प्रतिमा पद्मासनमें ध्यानलीन है। इस मन्दिरमे परिक्रमा-पथ भी बना हुआ है।

९. चन्द्रप्रभ मन्दिर—पार्श्वनाथ मन्दिरमे ही ऊपरकी मंजिलमे चन्द्रप्रभ भगवान्‌की श्वेत-वर्ण २ फुट १ इंच अवगाहनावाली पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। प्रतिष्ठा-काल संवत् १९४२ है।

१०. आदिनाथ मन्दिर—ऋषभदेव भगवान्‌की संवत् १९४२ मे प्रतिष्ठित श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है।

११. आदिनाथ मन्दिर—भगवान् आदिनाथकी कृष्ण पाषाणकी संवत् १९३९ में प्रतिष्ठित और १ फुट ३ इंच अवगाहनावाली पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इनके आगे ८ इंच लम्बे देशी पाषाणके चरण हैं।

१२ विमलनाथ मन्दिर—मूलनायक विमलनाथ कृष्णवर्ण पद्मासनमें आसीन है। अवगाहना २ फुट ८ इंच है और प्रतिष्ठा संवत् १९०६ मे हुई। उनके इधर-उधर श्वेतवर्णके पार्श्वनाथ और आदिनाथ विराजमान है जो क्रमशः संवत् १९०० और १९०३ मे प्रतिष्ठित हुए हैं।

१३. आदिनाथ मन्दिर—भगवान् आदिनाथकी ५ फुट ३ इंच प्रतिमा स्वर्णवर्णकी कायोत्सर्गासन मुद्रामे है और संवत् १७१८ में प्रतिष्ठित हुई है। इधर-उधर दो आलोंमें बायी ओर अभिनन्दननाथ और दायीं ओर अजितनाथ विराजमान है जो क्रमशः संवत् १८७२ और १९३१ मे प्रतिष्ठित हुए। ये दोनों ही मूर्तियाँ श्वेत पाषाणकी पद्मासन है।

१४. पार्श्वनाथ मन्दिर—पाषाणके एक चौखटेमे पार्श्वनाथ भगवान्‌की ४ फुट १० इंच ऊँची श्वेतवर्ण खड्गासन प्रतिमा विराजमान है जिसकी प्रतिष्ठा संवत् १९१६ में हुई है। दोनों पार्श्वोंमें चमरेन्द्र सेवा कर रहे है। यह प्रतिमा पैरोसे ऊपर खण्डित है। इस मन्दिरमें वेदी और फर्शपर टाइल्स लगे हुए हैं।

१५ अरहनाथ मन्दिर—वेदीमे श्वेत पाषाणकी २ फुट ५ इंच ऊँची अरहनाथकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १८९२ में हुई। मूर्तिका पीठासन २ फुट ९ इंच है।

१६. आदिनाथ मन्दिर—आदिनाथ भगवान्‌की १ फुट १ इंच अवगाहनावाली संवत् १८९२ में प्रतिष्ठित पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसका वर्ण श्वेत है।

१७. आदिनाथ मन्दिर—भगवान् ऋषभदेवकी श्यामवर्ण और २ फुट २ इंच उत्तुंग पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। प्रतिष्ठाका संवत् १९०० है। इसकी चरणचौकी २ फुट ७ इंच ऊँची है।

१८. मेरु-मन्दिर—इसमें रक्ताभ पार्श्वनाथकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है जो संवत् १८७२ में प्रतिष्ठित हुई।

१९. सम्भवनाथ मन्दिर—इस मन्दिरकी वेदी शिखरके मूलको स्पर्श करती है। इसमें भगवान् सम्भवनाथकी २ फुट ७ इंच उत्तुंग श्यामवर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसका प्रतिष्ठा-काल संवत् १८९२ है।

२०. चन्द्रप्रभ मन्दिर—२ फुट ६ इंच ऊँची इस प्रतिमाकी प्रतिष्ठा संवत् १८९२ में हुई थी। यह श्वेतवर्ण है और पद्मासन मुद्रामें है।

२१. आदिनाथ मन्दिर—यह खाकी वर्णकी ५ फुट २ इंच अवगाहनावाली पद्मासन प्रतिमा संवत् १६८७ में प्रतिष्ठित हुई। दोनों पार्श्वोंमें चमरधारी इन्द्र खड़े हैं। बायीं ओर एक वेदीमें सुपार्श्वनाथकी कृष्ण पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा है, जिसकी प्रतिष्ठा संवत् १९१८ में हुई।

२२. नेमिनाथ मन्दिर—एक गुमटीमें नेमिनाथकी सवा फुट ऊँची बादामी वर्णकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसका प्रतिष्ठा-काल संवत् १७१६ है।

२३. भोंयरा (भूगर्भगृह)—इस भोंयरेमें एक चबूतरेपर सुन्दर पालिशवाली और २ फुट ८ इंच अवगाहनाकी तीन तीर्थंकर मूर्तियाँ विराजमान हैं। इनके ऊपर लांछन और लेख कुछ भी नहीं है। बगलकी दोनों मूर्तियाँ भी इसी वर्ण और पालिशकी हैं। इनका प्रतिष्ठा-काल, मूर्ति-लेखके अनुसार, संवत् १२०२ (ई. सन् ११४५) है। ये ही मूर्तियाँ इस क्षेत्रपर सर्वाधिक प्राचीन मानी जाती हैं। इनकी अवगाहना लगभग सवा दो फुट है।

२४. अ—नेमिनाथ मन्दिर—यह कृष्ण वर्णवाली २ फुट ७ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा संवत् १९४० में प्रतिष्ठित की गयी।

२४. ब—महावीर मन्दिर—एक ३ फुट १ इंच ऊँचे शिलाफलकमें रक्ताभवर्ण महावीरकी खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। सिरके ऊपर छत्रत्रयी सुशोभित है। उसके दोनों ओर तथा ऊपर गन्धर्व वाद्य-यन्त्र लिये हुए दीख पड़ते हैं। उनसे कुछ नीचे दोनों ओर हाथीपर अभिषेक-कलश लिये हुए सौधर्म एवं ऐशान स्वर्गोंके इन्द्र बैठे हैं। उनसे नीचे दो पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियों-का अंकन है। चरणोंके दोनों पार्श्वोंमें नृत्यमुद्रामें चमरवाहक खड़े हुए हैं। इनके पृष्ठ भागमें खड्गासन मुद्रामें तीर्थंकर प्रतिमा है। इनके निकट भक्त-श्राविकाएँ हाथ जोड़े हुए बैठी हैं। सबसे अधोभागमे सिंहत्रयी बनी हुई है।

इस मूर्तिसे ऊपर दीवारमें गन्धर्व और किन्नरियाँ भक्तिविभोर होकर नृत्यगानमें मग्न हैं। दोनों ओर दीवारोंमें २ खड्गासन और २ पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ अवस्थित हैं। ये सब मूर्तियाँ कहीं भूगर्भसे निकली प्रतीत होती हैं।

२५. पार्श्वनाथ मन्दिर—लगभग दो फुट ऊँची यह श्वेतवर्ण पद्मासन पार्श्वनाथ प्रतिमा संवत् १८७५ में प्रतिष्ठित हुई है।

२६. इस मन्दिरमें श्याम वर्णकी तीन मूर्तियाँ विराजमान हैं। तीनोंपर ही कोई लांछन नहीं है। मध्यकी मूर्ति ५ फुट ३ इंच है, बायीं ओरकी ५ फुट २ इंच तथा दायीं ओरकी ४ फुट ५ इंच है। ये तीनों अलग-अलग अलमारीनुमा वेदियोंमें अवस्थित हैं। इनके अतिरिक्त डेढ़ फुट ऊँची पार्श्वनाथकी और एक फुट ऊँची चन्द्रप्रभकी एक-एक मूर्ति और हैं।

२७. भोंयरा—भगवान् नेमिनाथकी कृष्णवर्णकी २ फुट २ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। मूर्ति-लेखमें संवत् १७७९ अंकित लगता है। इसके बायी ओर रक्ताभ-वर्ण सम्भवनाथकी ७ इंचकी मूर्ति है। दायीं ओर २ फुट १ इंच ऊँची मूर्ति है। पादपीठपर कोई लांछन नहीं है। संवत् भी अस्पष्ट है। एक १ फुट ७ इंच ऊँचे स्तम्भमें दो खड्गासन मूर्तियाँ बनी हुई हैं। एक अन्य १ फुट ६ इंच ऊँचे स्तम्भमें ६ मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। एक शिलाफलकमें १ फुट १० इंच ऊँची पार्श्वनाथ मूर्ति बनी हुई है। नेमिनाथकी एक छोटी मूर्ति अन्य मूर्तियोंके आगे रखी हुई है।

२८. चन्द्रप्रभ जिनालय—भगवान् चन्द्रप्रभकी कृष्ण पाषाणकी १ फुट ६ इंच अवगाहना-वाली पद्मासन प्रतिमा है। मूर्ति-लेख नही है।

२९. से ३५. तक सात गुमटियाँ बनी हुई हैं, जिसमें क्रमशः आचार्य पुष्पदन्त, भूतबलि, कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समन्तभद्र, पूज्यपाद, शिवसागर और श्रुतसागरके श्वेत पाषाणके चरण-चिह्न बने हुए हैं।

३६. पार्श्वनाथ मन्दिर—इसकी वेदी ३ फुट ४ इंच ऊँची है। इसपर भगवान्‌की श्यामवर्ण पद्मासन मूर्ति विराजमान है। इसकी अवगाहना ३ फुट ३ इंच है। इसका प्रतिष्ठा-काल संवत् १८८८ है।

३७. पुष्पदन्त मन्दिर—भगवान् पुष्पदन्तकी ८ फुट उत्तुंग स्वर्ण वर्णवाली प्रतिमा कायोत्सर्गासनमे विराजमान है, जिसकी प्रतिष्ठा सवत् १८६९ में हुई है। प्रतिमाके सिरके दोनों पार्श्वोंमें चमरेन्द्र खड़े हैं तथा चरणोंके दोनों ओर भगवान्‌के सेवक अजित यक्ष और महाकाली (भृकुटि) यक्षी भगवान्‌की सेवामे उपस्थित हैं। ये दोनों ही चतुर्भुजी हैं।

३८. पार्श्वनाथ मन्दिर—यह मन्दिर ऊपरकी मंजिलपर है। पार्श्वनाथ भगवान्‌की कृष्ण-वर्ण ४ फुट अवगाहनावाली पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १८९४ मे की गयी। फणावलीमे ९ फण हैं।

३९. चन्द्रप्रभ मन्दिर—७ फुट ऊँचे एक शिलाफलकमें चन्द्रप्रभ तीर्थंकरकी खड्गासन प्रतिमा है। शीर्षभागके दोनों पार्श्वोंमें पुष्पमाल लिये नभचारी देव दिखाई पड़ते हैं। चरणोंके दोनों ओर चमरवाहक खड़े हैं। अधोभागमे भक्तयुगल सम्भवतः प्रतिष्ठाकारक और उनकी धर्मपत्नी करबद्ध मुद्रामें अवस्थित हैं। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १६८४ में की गयी। मन्दिरमें परिक्रमा-पथ भी बना हुआ है।

४०. पार्श्वनाथ मन्दिर—२ फुट १० इंच उत्तुंग श्वेतवर्ण और संवत् १८९३ में प्रतिष्ठित पद्मासन मुद्रामें पार्श्वनाथ-मूर्ति विराजमान है। इसका पीठासन २ फुट १० इंच ऊँचा है।

४१. पार्श्वनाथ मन्दिर—पार्श्वनाथकी यह पद्मासन प्रतिमा श्वेत पाषाणकी है और संवत् १५४२ मे इसकी प्रतिष्ठा हुई है।

४२. चन्द्रप्रभ मन्दिर—यह ७ फुट ३ इंच उत्तुंग बादामी वर्णकी खड्गासन प्रतिमा संवत् १५२४ में प्रतिष्ठित हुई है। सिरपर छत्रत्रय सुशोभित है। उसके दोनों ओर गजलक्ष्मी और पुष्पवर्षा करते हुए गन्धर्व प्रदर्शित किये गये हैं। चरणोंके दोनों ओर चमरधारी इन्द्र खड़े हैं। अधोभागमे भक्त-श्राविका हाथ जोड़े हुए बैठी है।

इस मूलनायक प्रतिमाके अतिरिक्त इस गर्भगृहमें ९ मूर्तियां और हैं, जिनमें ६ मूर्तियाँ मूलनायकके दोनों ओर विराजमान हैं तथा ३ मूर्तियाँ बायी ओर आलोंमे रखी हुई हैं। इन ९. मूर्तियोंमें ८ मूर्तियां मूलनायकके समकालीन लगती हैं। उनका पाषाण भी वही है जो

मूलनायकवत् है। चन्द्रप्रभ भगवान्‌की श्वेतवर्ण एक पद्मासन प्रतिमा संवत् १९११ की प्रतिष्ठित है। मूलनायक चन्द्रप्रभकी प्रतिमा अत्यन्त मनोज्ञ और अतिशयसम्पन्न है। अनेक स्त्री-पुरुष इसके आगे मनौतियाँ मानने आते हैं।

मन्दिरके बाहर चार स्तम्भोंपर आधारित मण्डप है। मन्दिरके प्रवेश-द्वार, तोरण और आधार-स्तम्भोंमें नृत्य-मुद्रामें मिथुन, संगीत-समाज और कौतुक भंगिमायें नर्तकियोंका भव्य अंकन किया गया है। यह दृश्यांकन खजुराहोकी कलाके अनुकरणपर किया गया लगता है।

४३. पद्मावती मन्दिर—यहाँ देवी पद्मावती सुखासनमें आसीन है। देवी चतुर्भुजी है। ऊपरके हाथोंमें अंकुश और कमल हैं तथा नीचेके हाथोंमें माला और बिजौरा हैं। नीचे उसका वाहन हंस खड़ा है। देवी अलंकारमण्डित है। कानोंमें कुण्डल, भुजाओंमें भुजबन्ध, हाथों तथा पैरोंमें कड़े और गलेमें गलहार हैं। देवीके ऊपर नागकुमार देवोंकी इन्द्राणीका सूचक सप्त फणच्छत्र है। उसके ऊपर सिंहासनपर भगवान् पार्श्वनाथ विराजमान हैं। यह देवी-मूर्ति पालिशदार श्वेत पाषाणकी है। इसके चारों ओर पाषाणका चौखटा बना हुआ है, जिसमें चार तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। पार्श्वनाथ और देवी दोनोंके दोनों पार्श्वोंमें चमरवाहक खड़े हुए हैं। अधोभागमें दोनों ओर कुत्तेपर आरूढ़ भैरव क्षेत्रपाल हैं। वे एक हाथमें गदा उठाये हुए हैं। दायें हाथमें त्रिशूल है जो कन्धेपर रखा हुआ है तथा बायें हाथमें सम्भवतः कन्दुक है जो कुत्तेके मुखपर रखा हुआ है। मूर्तिके शिलाफलककी माप २ फुट १० इंच है।

४४. मुनिसुव्रतनाथ मन्दिर—मुनिसुव्रतनाथकी २ फुट ६ इंच ऊँची कृष्णवर्ण पद्मासन प्रतिमा संवत् १८९२ में प्रतिष्ठित हुई है। मन्दिरमें परिक्रमा-पथ बना हुआ है।

४५. चन्द्रप्रभ मन्दिर—आसनसहित इस मूर्तिकी ऊँचाई ८ फुट है। यह स्वर्णवर्णवाली खड्गासन मूर्ति संवत् १८७६ में प्रतिष्ठित की गयी। प्रतिमाके सिरके पीछे भामण्डल और ऊपर छत्रत्रयी सुशोभित है। शीर्षके दोनों ओर गज बने हुए हैं। भगवान्‌के चरणोंके दोनों ओर चमरेन्द्र और नृत्यमुद्रामें देवियाँ प्रदर्शित हैं। अधोभागमें अरहनाथ और शीतलनाथकी खड्गासन मूर्तियाँ हैं। बायी ओर चन्द्रप्रभ भगवान्‌का यक्ष श्याम कपोतपर आसीन है। उसके एक हाथमें माला है और दूसरे हाथमें कमलपुष्प है। उसके बगलमें भगवान्‌का चमरवाहक खड़ा है। दायीं ओर अष्टभुजी ज्वालामालिनी यक्षी है। वह महिषपर आरूढ़ है। दो दायें हाथोंमें त्रिशूल और एकमें बाण हैं तथा एक हाथ महिषके मुखपर है। एक बायें हाथमें नागपाश और दूसरेमें धनुष है, तीसरा हाथ वक्षपर रखा है और चौथा मुट्ठी बाँधे लटका हुआ है। इनके अधोभागमें हाथ जोड़े हुए स्त्रियाँ और सिंहपीठके सिंह बैठे हैं। इस मन्दिरमें परिक्रमा-पथ बना हुआ है।

४६. बाहुबली मन्दिर—यह अभी निर्माणाधीन है। संवत् २०२५ में इसकी प्रतिष्ठा हो चुकी है। बाहुबली स्वामीकी मकरानाकी श्वेत मूर्ति लगभग ८ फुट ऊँची है। मुखपर पारम्परिक विरागरंजित मुसकान। भुजाओं और जंघोंपर माधवी लताएँ लिपटी हुई हैं।

मन्दिर गोलाकार बना हुआ है और वह ३८ स्तम्भोंपर आधारित है। मन्दिरके चबूतरेपर चारों ओर घेरेमें २४ मन्दरियाँ बनी हुई हैं। इनमें २४ तीर्थंकरोंकी २४ पद्मासन प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं। प्रतिमाओंका वर्ण वही है जो तीर्थंकरोंका है। प्रत्येक प्रतिमाका आकार २ फुट २ इंच है। इन २४ मन्दरियोंको स्वतन्त्र मन्दिर मानकर इस मन्दिरकी संख्या ४६ से ७० तक लिख दी गयी है।

७१. चन्द्रप्रभ मन्दिर—यह मूर्ति स्वर्णवर्ण और खड्गासन है। अवगाहना ८ फुट १० इंच है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १८६५ में हुई। मूर्तिके सिरपर तीन छत्र हैं। गजलक्ष्मी भगवान्‌का

अभिषेक कर रही है और गन्धर्व आकाशमें वाद्य-यन्त्र बजा रहे हैं। अधोभागमें भगवान्‌के यक्ष-यक्षी श्याम और ज्वालामालिनी हैं। यक्ष कपोतपर आसीन है। हाथोंमें चमर और कमलपुष्प हैं। यक्षी अष्टभुजी है। दायें हाथोंमें त्रिशूल, शक्ति और कमल हैं। बायें हाथोंमें चमर और शक्ति हैं। एक हाथ पेटपर है और चौथा मुट्ठी बन्द करके लटका हुआ है। चौथा हाथ महिषपर रखा हुआ है। मन्दिरमें परिक्रमा-पथ बना हुआ है।

७२. नेमिनाथ मन्दिर—भगवान् नेमिनाथकी कृष्ण पाषाणकी ३ फुट ४ इंच ऊँची यह प्रतिमा पद्मासनमें ध्यानमुद्रामें विराजमान है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १८९७ में हुई थी। इस मन्दिरमें परिक्रमा-पथ बना हुआ है।

७३. ऋषभदेव मन्दिर—ऋषभदेव भगवान्‌की श्यामवर्ण पद्मासन प्रतिमा संवत् १८८३ में प्रतिष्ठित हुई।

७४. चन्द्रप्रभ मन्दिर—रक्ताभ वर्णकी चन्द्रप्रभ मूर्ति डेढ़ फुट अवगाहनाकी पद्मासनमें स्थित है। इसके सिरके पीछे भामण्डल और ऊपर छत्र हैं। दोनों पार्श्वोंमें चार खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। चरणोंके निकट चमरेन्द्र भगवान्‌की सेवामें खड़े हुए हैं। अधोभागमें दो भक्त-महिलाएँ हाथ जोड़े हुए बैठी हैं।

७५. ऊपर छतपर एक मन्दरियामें आचार्य शान्तिसागरजी और वीरसागरजी महाराजके संवत् २०१६ के प्रतिष्ठित चरण-चिह्न हैं। इसके पीछे भगवान् नेमिनाथकी कृष्णवर्ण पद्मासन मूर्ति है।

७६ से ९९. चौबीसी मन्दिर—इस मन्दिरमें २४ गर्भगृह बने हुए हैं। इन सबको पृथक् मन्दिरोंके रूपमें मान लिया है। इन सबकी प्रतिष्ठा संवत् १९१६ में हुई है। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

१. ऋषभदेव भगवान्		पद्मासन	श्यामवर्ण	२ फुट ८ इंच	अवगाहना
२. अरनाथ	"	"	"	२ फुट ४ इंच	"
३. सुपार्श्वनाथ	"	"	श्वेतवर्ण	२ फुट २ इंच	"
४. पार्श्वनाथ	"	"	श्यामवर्ण	२ फुट १ इंच	"
५. "	"	"	श्वेतवर्ण	२ फुट ३ इंच	"
६. "	"	"	"	१ फुट ९ इंच	"
७. "	"	"	कृष्णवर्ण	३ फुट	"
८. नेमिनाथ	"	"	"	२ फुट	"
९. पार्श्वनाथ	"	"	"	२ फुट ३ इंच	"
१०. चन्द्रप्रभ	"	"	श्वेतवर्ण	२ फुट ११ इंच	"
११. वासुपूज्य	"	"	"	२ फुट	"
१२. चन्द्रप्रभ	"	"	"	२ फुट	"
१३. "	"	"	"	१ फुट ७ इंच	"
१४. पार्श्वनाथ	"	"	कृष्णवर्ण	२ फुट ४ इंच	"
१५. नेमिनाथ	"	"	"	२ फुट ८ इंच	"
१६. मुनिसुव्रतनाथ	"	"	श्वेतवर्ण	१ फुट ४ इंच	"
१७. पार्श्वनाथ	"	"	कृष्णवर्ण	२ फुट ४ इंच	"
१८. नेमिनाथ	"	"	श्वेतवर्ण	२ फुट ६ इंच	"

१९.	पार्श्वनाथ भगवान्	पद्मासन	कृष्णवर्ण	२ फुट १० इंच	अवगाहना
२०.	चन्द्रप्रभ ,,	,,	श्वेतवर्ण	२ फुट ४ इंच	,,
२१.	ऋषभदेव ,,	,,	,,	२ फुट ११ इंच	,,
२२.	,, ,,	,,	,,	१ फुट ७ इंच	,,
२३.	सुपार्श्वनाथ,,	,,	कृष्णवर्ण	२ फुट ६ इंच	,,
२४.	ऋषभदेव ,,	,,	श्वेतवर्ण	२ फुट ७ इंच	,,

१०० चन्द्रप्रभ मन्दिर—भगवान् चन्द्रप्रभकी बादामी वर्णकी यह खड्गासन प्रतिमा ६ फुट ११ इंच ऊँची है। संवत् १८६० में इसकी प्रतिष्ठा हुई है। सिरके पीछे प्रभावलय है और सिरके ऊपर तीन छत्र हैं। छत्रके दोनों ओर चमरवाहक हैं। अधोभागमें भगवान्‌के यक्ष-यक्षी श्याम और ज्वालामालिनी हैं। यक्ष कपोतासीन है और द्विभुजी है। यक्षी अष्टभुजी है और सुखासनमें बैठी हुई है। दोनोंके हाथोंमें ७१ नम्बरके मन्दिरके यक्ष-यक्षियोंके समान आयुध आदि हैं।

१०१. चन्द्रप्रभ मन्दिर—इसमें श्वेतवर्ण चन्द्रप्रभकी पद्मासन प्रतिमा आसीन है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९५५ में की गयी।

१०२. पार्श्वनाथ मन्दिर—वेदीमें तीन मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। मूलनायक पार्श्वनाथकी मूर्ति मध्यमें है। यह मूर्ति ४ फुट ३ इंच उन्नत है, पद्मासन है और कृष्णवर्णकी है। इसकी फणावलीमें २५ फण हैं। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १८३३ में हुई है।

मध्य मूर्तिके दोनों ओर श्वेत पाषाणके ऋषभदेव विराजमान हैं। अवगाहना २ फुट ९ इंच है।

१०३ पार्श्वनाथ मन्दिर—चार फुट ऊँची पार्श्वनाथकी कृष्णवर्ण पद्मासन मूर्ति ऊँची वेदीपर प्रतिष्ठित है। संवत् १८८३ में इसकी प्रतिष्ठा हुई है।

१०४. पार्श्वनाथ मन्दिर—पार्श्वनाथ भगवान्‌की ३ फुट ऊँची श्वेत पाषाणकी यह पद्मासन प्रतिमा संवत् १८९७ को प्रतिष्ठित है। सिरके पृष्ठ भागमें सुन्दर भामण्डल है। इसके अतिरिक्त माढ़ूमरसे आयी हुई धातुकी ४५ और पाषाणकी २ प्रतिमाएँ रखी हुई हैं।

१०५. ऋषभदेव मन्दिर—कृष्ण पाषाणकी २ फुट ७ इंच उन्नत यह पद्मासन प्रतिमा संवत् १८९३ में प्रतिष्ठित हुई।

१०६. ऋषभदेव मन्दिर—इस प्रतिमाका वर्ण बादामी है और खड्गासन है। संवत् १८९२ में इसकी प्रतिष्ठा हुई।

१०७. नेमिनाथ मन्दिर—भगवान् नेमिनाथकी यह पद्मासन प्रतिमा ३ फुट ९ इंच उन्नत है। इसका वर्ण कृष्ण है तथा इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९१६ में हुई।

मानस्तम्भ

क्षेत्रपर चार मानस्तम्भ बने हुए हैं। प्रथम मानस्तम्भका निर्माण श्री वंशीधर सिधगुवांवालोंकी ओरसे संवत् १९९९ में हुआ। द्वितीय मानस्तम्भ सि. सुन्दरलाल मडावरा-निवासीने संवत् २००६ में बनवाया। तीसरा मानस्तम्भ संवत् २०१३ में श्री मूलचन्द जावन-सकरारनिवासीकी ओरसे तैयार हुआ। चौथा मानस्तम्भ बरखेड़ानिवासी चौधरी रघुनाथप्रसाद जीवनलालकी ओरसे संवत् २०१५ में निर्मित हुआ।

धर्मशालाएँ

क्षेत्रपर ५ धर्मशालाएँ हैं, जिनमें १२५ कमरे हैं तथा ५ हॉल हैं। विद्यालय और छात्रावास-के २५ कमरे इनसे पृथक् हैं। जलके लिए कुएँमें मोटर लगाकर नल लगाये गये हैं। यों भी क्षेत्रपर

११ कुएँ और २ बावड़ी हैं। २ बगीचे भी हैं। यात्रियोंके लिए निवास, जल, रोशनी आदिकी समुचित व्यवस्था है।

संस्थाएँ

क्षेत्रपर निम्नलिखित संस्थाएँ हैं—

श्री दिगम्बर जैन वीर विद्यालय, श्री ऋषभ दिगम्बर जैन उदासीनाश्रम और श्री मोतीलाल वर्णी सरस्वती सदन।

वार्षिक मेला

क्षेत्रपर प्रतिवर्ष कार्तिक शुक्ला १३ से १५ तक वार्षिक मेला लगता है।

अहार

स्थिति

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र अहारजी मध्यप्रदेशके अन्तगत जिला टीकमगढ़से पूर्वकी ओर स्थित है। टीकमगढ़ बलदेवगढ़ रोडपर टीकमगढ़से १९ कि. मी. पर अहार तिगोलकी पुलिया है। यहाँसे मदन सागर सरोवरके बांधको पार कर पर्वतमालाओं और वनोंके बीच ५ कि. मी. दूर यह क्षेत्र स्थित है। टीकमगढ़से क्षेत्र तक पक्की सड़क है। बसें क्षेत्र तक जाती हैं। छतरपुरसे भी सीधी सड़क क्षेत्र तक है।

अतिशय क्षेत्र

यह क्षेत्र अतिशय क्षेत्रके रूपमें प्रसिद्ध है। किंवदन्तीके अनुसार प्रख्यात व्यापारी पाड़ाशाह लासपुर नगरसे पाड़ोंपर राँगा लादकर ला रहे थे। विश्रामके लिए उन्होने इस स्थानकी एक शिलापर अपना सामान उतारा। किन्तु पाड़ाशाहने बड़े आश्चर्यके साथ देखा कि उनका राँगा चाँदी हो गया है। निर्लोभी वृत्तिवाले श्रावक पाड़ाशाहको यह भ्रम हुआ कि लासपुरके व्यापारीने भूलसे राँगाके स्थानपर चाँदी दे दी है। यह विचारकर उन्होंने विश्रामका विचार त्याग दिया और राँगाको पुनः पाड़ोंपर लादकर वे लासपुर पहुँचे। जिस व्यापारीसे उन्होने राँगा खरीदा था, उससे जाकर बोले—"बन्धुवर! आपने भूलसे राँगाके स्थानपर चाँदी दे दी थी। मैने तो आपसे राँगा माँगा था और मूल्य भी राँगाका ही दिया था। अतः मैं आपका माल वापस करने आया हूँ। कृपा करके आप मुझे राँगा दे दीजिए।"

पाड़ाशाहकी बात सुनकर व्यापारीको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह बोला—"आर्य! मैंने तो आपको राँगा ही दिया था। मेरे यहाँ चाँदीका व्यापार भी नहीं होता। आपके पुण्योदयसे ही राँगा चाँदी हो गया है। इस मालपर मेरा कोई अधिकार नहीं है। माल आपका ही है। सम्भव है, आपने यह माल कही उतारा हो और वहाँ किसी पारस पत्थरके संसर्गसे आपका राँगा चाँदी हो गया हो।"

पाड़ाशाहकी समझमें यह बात आ गयी। वे फिर अहार लौटे और उन्होंने अपना माल पुनः उसी शिलापर उतारा जिसपर पहले उतारा था। वहाँ पुनः पूर्ववत् चमत्कार हुआ। पुनः उनका राँगा चाँदी हो गया। तब उन्होंने उस चाँदीके मूल्यसे वहाँपर शान्तिनाथ भगवान्का मन्दिर बनवाया और उसमें भगवान् शान्तिनाथकी अत्यन्त मनोज्ञ मूर्ति स्थापित की।

तबसे यह अतिशय क्षेत्र कहलाने लगा।

यहाँ अब भी कभी-कभी अतिशय होते देखे जाते हैं, ऐसी अनुश्रुति है।

कभी-कभी पहाड़ीसे अर्धरात्रिको दो देव आकाशमार्गसे आते हैं। उनके दोनों हाथोंमें प्रज्वलित दीपक और सिरपर कलश रहते हैं। वे शान्तिनाथ मन्दिरमें दो घण्टे रहते हैं। इसके पश्चात् लौटकर वे उसी पहाड़ीपर चले जाते हैं।

कभी-कभी रात्रिमें मन्दिरमें बाजोंकी ध्वनि सुनाई देती है। अनेक भक्तजन शान्तिनाथ स्वामीके समक्ष मनौती मानने आते हैं और उनकी कामना पूर्ण होती है।

सिद्ध क्षेत्र

कुछ व्यक्ति यह मानते हैं कि यह स्थान सिद्ध क्षेत्र भी है। उनके मतसे भगवान् मल्लिनाथके तीर्थमें इस स्थानसे मदनकुमार केवली मुक्त हुए तथा भगवान् महावीरके तीर्थमें आठवें अन्तःकृत केवली श्री विष्कंवल यहींसे मोक्ष पधारे। इन दोनों केवलियोंकी मोक्षप्राप्तिके स्थानके सम्बन्धमें कोई उल्लेख हमारे देखनेमें नहीं आया है। इस विषयमें खोज करनेपर जो कुछ ज्ञात हुआ, वह अत्यन्त रोचक है।

किन्हीं ब्रह्मचारीजीने बताया कि मैंने एक शास्त्र-भण्डारमें हस्तलिखित शास्त्र देखा था। उस शास्त्रका नाम है 'चौबीस कामदेव शास्त्र' (पुराण) इसके रचयिता हैं अन्तिम अवधिज्ञानी मुनि 'श्री'। यह ग्रन्थ प्राकृत गाथाओंमें निबद्ध है। इसके हिन्दी-टीकाकार हैं पं. धर्मदास।

कहा जाता है कि उक्त शास्त्रमें सन्धि १७ गाथा ३५ में वर्णन है कि १७वें कामदेव नलराज अपरनाम मदनकुमार मल्लिनाथके पीछे और मुनिसुव्रतनाथके पहले हुए थे। गाथा ३७ के अनुसार वे बुन्देलखण्डके गगनचुम्बी वलयाकार पर्वतसे मोक्ष पधारे। वहीं पासमें गगनपुर शहर था। उस समय इस नगरपर विघ्नवर्धन राजा राज्य करता था। उसकी रानीका नाम शान्तिदेवी था। उस रानीने प्रभाचन्द्र मुनिके उपदेशसे पहाड़पर शान्तिनाथ भगवान्का जिन-मन्दिर बनवाया। उसमें शान्तिनाथ भगवान्की ९ फुट ऊँची देशी पाषाणकी खड्गासन प्रतिमा स्थापित की और उसकी प्रतिष्ठा अगहन सुदी १५ बुधवारको पंचकल्याणपूर्वक कर दी। इन्हींके वंशमें निषिद्धपुर नगरमें राजा नीसधर और रानी विरलादेवीसे नलराज (मदनकुमार) का जन्म हुआ था। उसका विवाह कुण्डलपुरके राजा भीमसेन और रानी पुष्पदत्ताकी पुत्री दमयन्तीके साथ हुआ। पिताके बाद मदनकुमारने शासन किया। उसने मदनपुर नगर बसाया और मदनसागरका निर्माण कराया। किसी मुनिके उपदेशसे प्रभावित होकर उसने संन्यास ग्रहण कर लिया और घोर तप द्वारा अपने कर्मोंका नाश करके अहारसे मुक्ति प्राप्त की।

महावीरके तीर्थमें आठवें अन्तःकृत केवली श्री विष्कंवल किसी श्रेष्ठीके पुत्र थे। किसी मुनिराजके उपदेशको सुनकर श्रेष्ठी और उसकी पत्नीने दीक्षा ले ली। विष्कंवल मुनि होकर अन्तःकृत केवली हुए और अहारसे मुक्त हुए। सेठ-सेठानी कल्पवासी स्वर्ग (सम्भवतः तीसरे स्वर्गमें) देव-देवी हुए। वे अहार क्षेत्रका माहात्म्य प्रकट करनेके लिए स्वर्गसे प्रति एक हजार वर्ष बाद यहाँ आकर पीतलको सोना अथवा राँगाको चाँदी करके अतिशय दिखाते हैं। सेठ पाड़ाशाहके राँगाको इन्हीं वैमानिक देव-देवीने चाँदी बना दिया था। इससे पूर्व उन्होंने विक्रमसिंह राजाके समयमें साहू लूहड़के पीतलको सोना कर दिया था।

इस कहानीको पढ़-सुनकर मनमें जिज्ञासा जागृत हुई कि—

१. क्या श्री नामक कोई अन्तिम अवधिज्ञानी मुनि हुए हैं जिन्होंने 'चौबीस कामदेव पुराण' की रचना की हो। यदि हुए हैं तो यह ग्रन्थ कसायपाहुड और षट्खण्डागमसे भी पूर्वका मानना होगा। किन्तु इसमें १२वी शताब्दीके पाड़ाशाहका भी उल्लेख मिलता है और उस कालमें कोई अवधिज्ञानी मुनि नहीं हुआ।

२. क्या वैमानिक देव भी इस पंचम कालमें अतिशय प्रकट करनेके उद्देश्यसे भरतक्षेत्रमें आते हैं?

३. कामदेव नलराज सिद्धवरकूटसे मुक्त हुए, ऐसा माना जाता है। दूसरी ओर तथाकथित 'कामदेव पुराण' के अनुसार वे अहारसे मुक्त हुए माने जाते हैं। इन दोनों स्थानोंमें-से वस्तुतः उन्होंने किस स्थानसे निर्वाण प्राप्त किया, यह निर्णय होना अभी शेष है।

४. इतिहास ग्रन्थोंसे यह सिद्ध होता है कि चन्देल नरेश मदनवर्मनने चेदि-विजयके उपलक्ष्यमें मदनसागरका निर्माण कराया था। इसी सरोवरके नामपर यहांकि गाँवका नाम मदनेश सागरपुर पड़ गया। अहारके मूर्ति-लेखोंमें भी ये दोनों नाम मिलते हैं। दूसरी ओर 'कामदेव पुराण' में ऐसा वर्णन बताया जाता है कि मदनसागरका निर्माण कामदेव मदनकुमारने १९वें तीर्थंकर मल्लिनाथके बादमें कराया। राजा मदनवर्मनसे पूर्व किसी ग्रन्थ, शिलालेख अथवा मूर्ति-लेखमें इस सागर (सरोवर) और नगरका नाम उपलब्ध नही होता। ऐसी स्थितिमें क्या यह उचित होगा कि उक्त कथित ग्रन्थका तत्सम्बन्धी विवरण मान्य किया जाये?

५. निर्वाणकाण्ड, निर्वाणभक्ति, किसी पुराण अथवा कथाकोशमें अहारका उल्लेख निर्वाण क्षेत्रके रूपमे नही मिलता।

६. 'चौबीस कामदेव पुराण' नामक किसी ग्रन्थका अस्तित्व है, यह भी सन्दिग्ध है। यदि यह ग्रन्थ विद्यमान है तो स्वीकार करना होगा कि यह रचना अति आधुनिक है और रचयिता कोई विद्वान् नहीं है, अन्यथा सिद्धान्त और परम्परा-विरुद्ध बातें उसमें न होती। इस ग्रन्थका उल्लेख भी किसी ग्रन्थमें नही मिलता।

जबतक इन बातोंका सन्तोषजनक समाधान प्राप्त न हो जाये, तबतक अहारको सिद्ध क्षेत्र स्वीकार नहीं किया जा सकता। उसके लिए कल्पित शास्त्रोंके बजाय कुछ ठोस शास्त्रीय आधार ढूँढ़ने होंगे। हमारी विनम्र मान्यता है कि अहार एक ऐतिहासिक अतिशय क्षेत्रमें लगभग एक हजार वर्षोंसे मान्य रहा है। इस क्षेत्र और यहांके भगवान् शान्तिनाथके प्रति जनताके मनमें अपार श्रद्धा है। उसे बलात् सिद्ध क्षेत्रका नाम देनेसे जन-श्रद्धामे कोई वृद्धि नही होती।

इस प्रकारकी प्रवृत्ति अन्य कई अतिशय क्षेत्रोंके सम्बन्धमें भी चल पड़ी है। ठोस शास्त्रीय या अभिलेखीय प्रमाण उपलब्ध होनेपर ही किसी अतिशय क्षेत्रको सिद्ध क्षेत्रके रूपमे मान्यता मिलनी चाहिए।

पाड़ाशाह का मन्दिर

पाड़ाशाहने अनेक तीर्थोंपर शान्तिनाथ जिनालय बनवाये थे। उन सभी तीर्थोंपर उनके धनके सम्बन्धमे विभिन्न और विचित्र किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। अहारके शान्तिनाथ जिनालयका निर्माण राँगाके चाँदी हो जानेपर उस चाँदीके मूल्यसे कराया था। अनुश्रुति है कि उन्होंने शान्तिनाथकी प्रतिष्ठा गजरथ महोत्सवपूर्वक की थी। उसमें इतनी जनता एकत्र हुई थी कि पंक्ति-भोजमें ५२ मन पिसी मिर्चें भी कम पड़ गयी थी। किन्तु पाड़ाशाहका मन्दिर और मूर्ति कहाँ हैं, यह ज्ञात नहीं हो सका। क्योंकि मूर्ति-लेखके अनुसार वर्तमान मन्दिर गल्हणने बनवाया और

उनके पुत्र जाहड़ और उदयचन्द्रने शान्तिनाथकी मूर्ति बनवाकर उसकी संवत् १२३७ में प्रतिष्ठा करायी। सम्भवतः कुन्थुनाथ और अरनाथकी मूर्तियोंका निर्माण मल्हणने कराया था। ऐसी स्थितिमें पाड़ाशाहके मन्दिर और मूर्तियोंकी खोज होना आवश्यक है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

इतिहास-ग्रन्थोंमें इस स्थानका नाम 'मदनेशसागरपुर' मिलता है। यहाँ चन्देलवंशीय राजा मदनवर्मनने एक विशाल सरोवरका निर्माण कराया था जिसका नाम मदनवर्मनके नाम पर 'मदनसागर' पड़ गया। इस सरोवरके निकटवर्ती नगरको 'मदनेशसागरपुर' नाम मिला। इस राजाके सम्बन्धमें इतिहास-ग्रन्थोंसे कुछ जानकारी प्राप्त होती है। मदनवर्मनके ताऊ सल्लक्षण-वर्मन वीर पुरुष थे। वे चन्देलवंशी राजाओंकी राजधानी कालिंजरमें रहकर शासनसूत्रका संचालन करते थे। उन्होंने परमारवंशी नरवर्मनको पराजित करके मालवापर अधिकार कर लिया और चेदिनरेश कलचुरि यशःकर्णको भारी पराजय दी। गाहड़वालोंको हराकर सम्पूर्ण अन्तर्वेदी (गंगा-यमुनाका मध्यवर्ती प्रदेश) पर अधिकार कर लिया। लगभग सन् १११७ में सल्लक्षणवर्मनका पुत्र जयवर्मन गद्दीपर बैठा। थोड़े दिन शासन करनेके पश्चात् उसे अपने चाचा पृथ्वीवर्मनके लिए राजगद्दी छोड़नी पड़ी। पृथ्वीवर्मनका उत्तराधिकारी उसका पुत्र मदनवर्मन हुआ, जिसने सन् ११२९ से ११६३ तक शासन किया। शिलालेखोंसे ज्ञात होता है कि उसके राज्यमें भिलसा, मऊ (झाँसी जिला), अजयगढ़, छतरपुर, खजुराहो, महोबा और कालिंजर शामिल थे। परमारनरेश यशोवर्मनको पराजित करके उसने भिलसापर अधिकार किया। कलचुरि गयकर्णको करारी हार देकर चेदिपर अपना अधिकार जमाया। जब गुजरातके चालुक्य जयसिंह सिद्धराजने धारपर विजय प्राप्त करके महोबापर आक्रमण किया, तब मदनवर्मनने वीरतापूर्वक युद्ध करके अपनी राजधानीको तो बचा लिया, किन्तु इस युद्धमें भिलसा उसके हाथसे निकल गया। मदनवर्मनके पश्चात् कालिंजरकी गद्दीपर उसका पौत्र और यशोवर्मनका पुत्र परमर्दी सन् ११६५ से कुछ पहले बैठा।

कहते हैं, इसी चन्देलनरेश मदनवर्मनने चेदि-विजयके पश्चात् इस स्थानपर उक्त 'मदन-सागर' बनवाया था और उसीके कारण यहाँके नगरका नाम मदनेशसागरपुर पड़ा। मदनेश-सागरपुर नामका समर्थन शान्तिनाथ भगवान्के मूर्ति-लेखसे भी होता है, जिसमें 'येन श्री मदनेश-सागरपुरे तज्जन्मनो निर्मिमे' इस प्रकारका पाठ है। एक मूर्ति-लेखमें 'तटे मदनसागर निर्मलम्' पाठ है।

किन्तु मदनेशसागरपुर नाम प्राप्त करनेसे पूर्व भी यह स्थान आत्मसाधन करनेके अभि-लाषी मुमुक्षु जनोंके आकर्षणका केन्द्र था, क्योंकि यहाँपर मदनवर्मनके राज्यकालसे पूर्वकी, संवत् ११२३ और संवत् ११३६ तक की, मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं।

अहारका नामकरण

इस स्थानका नाम 'अहार' कैसे पड़ा, इस सम्बन्धमें भी एक रोचक किंवदन्ती प्रचलित है। कहते हैं, पाड़ाशाह इसी स्थानपर एक दिन आहारके समय किसी सत्पात्रकी प्रतीक्षामें खड़े थे। किन्तु आहारकी बेला टलती जा रही थी और किसी सत्पात्रके दर्शन नहीं हो रहे थे। इससे श्रावकशिरोमणि पाड़ाशाहको बड़ा मनःक्लेश हो रहा था। वे अपने अशुभ कर्मोंको ही इसका उत्तरदायी मानकर पश्चात्ताप कर रहे थे। तभी उन्हें मासोपवासी निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि ईर्यापथ

विशुद्धिपूर्वक जंगलसे आते हुए दिखाई पड़े। भक्त श्रावकका रोम-रोम हर्षसे पुलकित हो उठा। उन्होंने नवधा भक्तिपूर्वक वीतराग मुनिका प्रतिग्रहण किया। मुनिका निरन्तराय आहार हुआ। वे मुनि मासोपवासी थे। किन्तु मुनि बननेपर उनकी गृहस्थ-दशाकी पत्नीको अपने पतिके ऊपर बड़ा क्रोध आया और आर्तध्यानसे मरकर व्यन्तरी हुई। वह प्रतिशोध लेनेके उद्देश्यसे मुनिके पारणाके समय अन्तराय डाल दिया करती थी, जिससे छह माससे मुनिराज बिना आहार किये ही लौट आते थे। किन्तु भक्तप्रवर पाड़ाशाहके प्रबल पुण्योदय और क्षेत्रके प्रभावसे इस बार उस व्यन्तरीकी एक नहीं चली और मुनिराजका आहार निर्विघ्न हुआ। व्यन्तरीको भी अपने कुकृत्यपर पश्चात्ताप हुआ और मुनिराजके चरणोंमें आकर उसने अपने अपराधके लिए क्षमा माँगी।

इस घटनाके फलस्वरूप अर्थात् मुनिराजके आहारके कारण इस स्थानका नाम ही 'आहार' हो गया। 'आहार' ही बिगड़ते-बिगड़ते 'अहार' बन गया।

इस किंवदन्तीमें तथ्यांश कितना है, यह कहना कठिन है। इसकी सत्यताकी परीक्षा करनेका भी कोई साधन या पुरातत्त्व-साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। सम्भव है, अहार नामसे ही प्रेरित होकर इस किंवदन्तीका जन्म हुआ हो।

इस नामका कारण जो भी रहा हो, किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि इस क्षेत्रकी प्राकृतिक सुषमा, एकान्त शान्ति और मनोहर दृश्यावलीने इसे एक सुरम्य तपोवनकी महत्ता प्रदान कर दी है और एक ऐसे आध्यात्मिक वातावरणका स्वतः ही सृजन हो गया है, जहाँ पहुँचकर मन सांसारिक प्रलोभनोंसे विरक्त होकर आत्माके निःश्रेयसकी ओर ललक उठता है। इस क्षेत्र और ऐसे ही अन्य अतिशय क्षेत्रोंके अतिशय मनकी इसी निभृत निगूढ़ अध्यात्मभावनासे उद्भूत होते हैं। मनकी चपल चंचल गति जहाँ पहुँचकर स्वतः ही आत्मोन्मुख हो उठे, यह संसारका ऐसा सबसे बड़ा अतिशय है। अतिशय क्षेत्र अहारमें भी इस प्रकारके अतिशयोंके दर्शन होते हैं।

ऐतिहासिक सामग्री

इस क्षेत्रपर तथा इसके निकटवर्ती भूभागपर पुरातत्त्व-सामग्री विपुल परिमाणमें उपलब्ध होती है। यहाँ भूगर्भसे तथा बाहर अनेक खण्डित और अखण्डित जैन मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। अनेक मूर्तियोंकी चरणचौकीपर लेख अंकित हैं जिनसे अनेक ऐतिहासिक तथ्योंपर प्रकाश पड़ता है, जैसे भट्टारकोंकी परम्परा, जैन समाजमें प्रचलित अन्वय, प्रतिष्ठाकारक भक्तजन, तत्कालीन राजवंश, मूर्तिकार, कलाका क्रमिक विकास आदि।

भट्टारक-परम्परा

यहाँकी कुछ मूर्तियोंके लेखोंसे भट्टारकोंके नामों और उनकी परम्परापर प्रकाश पड़ता है—जैसे कुटकान्वयके पण्डित श्री मंगलदेव और उनके शिष्य भट्टारक पद्मदेव, कुटकान्वयके पण्डित लक्ष्मणदेव और उनके शिष्य आर्यदेव, पण्डित श्री यशकीर्ति, सिद्धान्ती सागरसेन, भट्टारक माणिक्यदेव, गुणदेव, भट्टारक जगेन्द्रषेण, भट्टारक जिनचन्द्रदेव, भट्टारक धवलकीर्ति, भट्टारक सकलकीर्ति, भट्टारक धर्मकीर्ति, भट्टारक शीलसूत्रदेव, भट्टारक ज्ञानसूत्रदेव, भट्टारक गुणकीर्ति, भट्टारक मलयकीर्ति, भट्टारक विशालकीर्ति, भट्टारक पद्मकीर्ति, भट्टारक मंगलदेव।

भट्टारकोंके नामोल्लेखोंका अध्ययन करनेपर एक विशेषताकी ओर ध्यान आकृष्ट हुए बिना नहीं रहता कि ग्यारहवींसे पन्द्रहवीं शताब्दी तकके जिन मूर्तिलेखोंमें भट्टारकोंका नामोल्लेख किया गया है, उनके साथ संघ, गण, गच्छ और आम्नायका उल्लेख नहीं किया गया। किन्तु संवत्

१५०२ के एक मूर्तिलेखमें भट्टारकके नामके साथ काष्ठासंघ दिया है तथा संवत् १६४९ से १८६९ तकके कई मूर्तिलेखोंमें मूलसंघ, बलात्कारगण, सरस्वतीगच्छ और कुन्दकुन्दान्वयका उल्लेख मिलता है। इसका अर्थ यह है कि गण, गच्छ, अन्वय आदिके उल्लेखकी परम्परा बहुत बादमें प्रचलित हुई।

भट्टारकोंके नामोंके साथ कहीं 'पण्डित' शब्दका भी प्रयोग किया गया है और उनके शिष्यको भट्टारक कहा गया है। यह कहना कठिन है कि जिनके साथ 'भट्टारक' शब्द न लगाकर 'पण्डित' शब्द प्रयुक्त है, वे भट्टारक थे या नहीं। किन्तु भट्टारकके गुरु भट्टारक ही होने चाहिए, इस कारण ऐसे पण्डितोंका नाम भी भट्टारक-सूचीमें दे दिया गया है।

भट्टारकोंका नामोल्लेख बारहवीं शताब्दीसे अठारहवीं, उन्नीसवीं शताब्दी तकके मूर्तिलेखोंमें मिलता है। लगता है, ये उल्लिखित भट्टारक अन्य स्थानोंके थे। इन्होंने मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करायी। जैसे भट्टारक धर्मकीर्ति, शीलसूत्र (शीलभूषण), ज्ञानसूत्र (ज्ञानभूषण), बलात्कारगण अटेर-शाखाके भट्टारक थे। भट्टारक विशालकीर्ति और भट्टारक पद्मकीर्ति बलात्कारगणकी लातूर-शाखाके भट्टारक थे। भट्टारक गुणकीर्ति, यशःकीर्ति और मलयकीर्ति काष्ठासंघकी माथुर-गच्छ-शाखा और पुष्करगणके थे। एक गुटकेमें इनकी परम्परा इस प्रकार पायी जातीहै—माहबसेन, उद्धरसेन, देवसेन, विमलसेन, धर्मसेन, भावसेन, सहस्रकीर्ति, गुणकीर्ति, यशःकीर्ति, मलयकीर्ति, गुणभद्र, गुणचन्द्र, ब्रह्ममाण्डण। इसी प्रकार अन्य भट्टारक भी अहारके नहीं, बाहरके ही थे। इस क्षेत्रपर भी (जैसे मदनसागरके तटपर अवस्थित जिनालयमें) उन्होंने मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करायी। कई मूर्तिलेखोंमें अन्य स्थानोंपर प्रतिष्ठा होनेके स्पष्ट उल्लेख उपलब्ध होते हैं। उदाहरणतः एक यन्त्रलेखसे ज्ञात होता है कि इस यन्त्रकी प्रतिष्ठा अकबर जलालुद्दीनके राज्यमें फीरोजाबाद नगरमें हुई। कई मूर्तियाँ जीवराज पापड़ीवालने भट्टारक जिनचन्द्र द्वारा प्रतिष्ठित करायी थीं और वे यहाँ लाकर स्थापित की गयीं। ये मूर्तियाँ संवत् १५४८ की हैं।

इतना होनेपर भी भगवान् शान्तिनाथ आदिकी विशाल मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा यहीं हुई होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

आर्यिकाओंके नाम

इन मूर्ति-लेखोंमे भट्टारकोंके साथ या स्वतन्त्र रूपसे कुछ आर्यिकाओंके नामोंका भी उल्लेख मिलता है, जैसे ज्ञानश्री, जयश्री, त्रिभुवनश्री, लक्ष्मश्री, चारित्रश्री, रत्नश्री, शिवणी, शिवश्री, सिद्धान्ती देवश्री आदि।

एक और भी तथ्यपर प्रकाश पड़ता है कि आर्यिकाओंने भट्टारकोंके साथ अथवा स्वतन्त्र रूपसे भी मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करायी। कई आर्यिकाओंके नामके साथ सिद्धान्ती-जैसे पाण्डित्यसूचक विशेषण भी लगे हुए हैं। इससे यह प्रकट होता है कि ये आर्यिकाएँ परम विदुषी, विधि-विधानमें निष्णात और सिद्धान्त शास्त्रोंकी मर्मज्ञ थी।

दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि प्रतिष्ठा करानेवाली इन आर्यिकाओंका नामोल्लेख बारहवी शताब्दीकी मूर्तियोंके लेखोंमें मिलता है, बादके मूर्तिलेखोंमें नहीं।

अन्वय और गोत्र

इन मूर्ति-लेखोंमें प्रतिष्ठाकारकोंके अन्वयों और गोत्रोंका भी नामोल्लेख मिलता है। कुछ अन्वय और गोत्र तो बड़े विचित्र हैं; अनेक अन्वय ऐसे है, जो अश्रुतपूर्व हैं। मूर्ति-लेखोंमें जो

अन्वय मिलते हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—खण्डेलवाल, जैसवाल, मेडवाल, लमेंचू, पौरपाट, गृहपति, गोलापूर्व, गोलाराड, अवधपुरिया, गर्गराट्, माथव, महडितवाल, कुटक, अग्रवाल, ओसवाल, वैश्य, माहेश्वर, देववाल, माथुरवंश, श्रीमलयकीर्ति देवान्वय, भट्टारकान्वय, महिषण पुरवाड़ान्वय, मड़वाल, मधुक, महवर्य, भट्टारक विशालकीर्ति अन्वय, भट्टारक सकलकीर्ति अन्वय, भट्टारक जिनचन्द्र अन्वय आदि।

इनमें कुछ अन्वय तो व्यक्तियोंके नामपर हैं, जिनका उल्लेख सम्भवतः अन्यत्र नहीं मिलता।

नगरोंके नाम

इन मूर्ति-लेखोंमें कुछ नगरोंके नाम भी आये हैं, जैसे—बाणपुर, वसुहाटिका, नन्दपुर। सम्भवतः ये नगर अहार (मदनेशसागरपुर) के निकट ही रहे होंगे। इन लेखोंमें अहारके लिए मदनेशपुर और मदनसागरपुर नामोंका भी प्रयोग किया गया है।

क्षेत्र-दर्शन

इस क्षेत्रपर कुल मन्दिरोंकी संख्या १३ है तथा २ प्राचीन मानस्तम्भ हैं। इन मन्दिरोंमें क्षेत्रपर ७ मन्दिर हैं तथा पर्वतपर ६ मन्दरियाँ हैं। क्षेत्रके चारों ओर अहाता बना हुआ है। मन्दिर और धर्मशाला इसी अहातेके अन्दर हैं।

मन्दिर नं. १

प्रथम मन्दिर सबसे प्राचीन है। यह भगवान् शान्तिनाथका मन्दिर कहलाता है। इस मन्दिरका निर्माण श्री गल्हणने मदनेशसागरपुरमें कराया था। इन्होंने नन्दपुर नामक नगरमें भी एक शान्तिनाथ जिनालय बनवाया था। मदनेशसागरपुरके जिनालयमें श्री गल्हणके श्री जाहड़ और श्री उदयचन्द्र नामक पुत्रोंने भगवान् शान्तिनाथका बिम्ब स्थापित किया और संवत् १२३७ में अगहन सुदी ३ शुक्रवारको उसकी प्रतिष्ठा करायी। इस विशाल मूर्तिकी रचना वाल्हणके पुत्र पापट शिल्पीने की थी।

पहले यह मन्दिर बाहरसे छोटा दिखाई पड़ता था, किन्तु भीतर ६ फुटकी गहराई होनेके कारण काफी विशाल था। प्रवेशद्वार दो थे। प्रथम द्वारके बाहर एक सुन्दर पैरकार था। इसके आजू-बाजू और बीचमें तीन बड़े कमरे थे। दक्षिण बाजूके कमरेमें एक तलहट था। मन्दिरके दोनों पार्श्व भागोंमें २–२ तथा पश्चिममें १ गन्धकुटी थीं। इस मन्दिरके तीन ओरके दालान गिर पडे थे। उनकी खुदाई करनेपर २९ मनोज्ञ प्रतिमाएँ निकली थीं।

इस मन्दिरकी दशा अत्यन्त खराब हो गयी थी। अतः इसका जीर्णोद्धार जैन समाजके विख्यात साहू शान्तिप्रसादजी की ओरसे हुआ। मन्दिरमें विशाल हॉल और मध्यमें गर्भगृह है। गर्भगृहमें भगवान् शान्तिनाथकी स्वर्णवर्णवाली खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी अवगाहना १८ फुट है। हाथकी हथेलीपर सुन्दर कमल बना हुआ है। चरणोंके दोनों ओर चमरेन्द्र विनत मुद्रामें खड़े हैं। चरणचौकीपर रत्नाभरणमण्डित दो राजपुरुष या श्रेष्ठी करबद्ध खड़े हैं। ये सम्भवतः प्रतिष्ठाकारक जाहड़ और उदयचन्द्र हैं। आसनपर दोनों ओर दो हिरण अंकित हैं। आसनके दोनों ओर दो यक्षियोंकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं, किन्तु उनके अंग खण्डित हैं। इस विशाल मूर्तिके ऊपर पन्नेकी पालिश की गयी थी। जब आततायियोंने यहाँके मन्दिरों और मूर्तियोंका जो निर्मम विध्वंस किया, उसमें यह मूर्ति भी नहीं बच पायी। इसका दायाँ हाथ खण्डित कर दिया गया है। नाक, पैरोंके अँगूठे आदि कई अंगोपांगोंको भी क्षति पहुँची है। बादमें कभी

खण्डित अंशोंको जोड़ दिया गया। हथौड़ोंकी चोटोंसे मूर्तिकी पालिश चटक गयी थी। पं. पन्नालाल शास्त्री सादूमलवालोंने ७२ तोला पन्ना प्राप्त करके इस मूर्तिपर पुनः पालिश करायी। इससे पालिशमें द्वैविध्य आ गया है। हाथ आदिके जोड़के चिह्न पालिशसे छिप नहीं सके, वे स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं।

इस प्रतिमाकी मुख-छटा देखते ही बनती है। इसके ऊपर जो प्रसन्न गाम्भीर्य, सौम्यता और स्मितके भाव छिटक रहे हैं, वे वस्तुतः अनुपम हैं। कठोर पाषाणमें इतने गाम्भीर्य और वीतराग छविका अंकन आश्चर्यजनक है।

इसकी चरणपीठिकापर एक मूर्तिलेख उत्कीर्ण है। यह लगभग ४ इंच लम्बा और ९ इंच चौड़ा है। मूर्तिलेख अत्यन्त ऐतिहासिक महत्त्वका है। इससे प्रतिष्ठाकारकका वंश-परिचय, प्रतिष्ठा-काल, तत्कालीन शासन, मूर्तिकार आदि महत्त्वपूर्ण बातोंपर प्रकाश पड़ता है। वह लेख इस प्रकार है—

ॐ नमो वीतरागाय ॥
गृहपतिवंश सरोरुह-सहस्र रश्मिः सहस्रकूटं यः।
वाणपुरे व्यधितासीत् श्रीमानिह देवपाल इति ॥१॥
श्रीरत्नपाल इति तत्तनयो वरेण्यः, पुण्यैकमूर्तिरभवत् वसुहाटिकायां।
कीर्तिर्जगत्त्रयपरिभ्रमणश्रमार्ता यस्य स्थिराजनि जिनायतनच्छलेन ॥२॥
एकस्तावदनून बुद्धिनिधिना श्री शान्तिचैत्यालयो,
दिष्ट्यानन्दपुरे परः परनरानन्दप्रदः श्रीमता।
येन श्री मदनेशसागरपुरे तज्जन्मनो निर्मिमे,
सोऽयं श्रेष्ठिवरिष्ठ गल्हण इति श्री रल्हणाख्यादभूत् ॥३॥
तस्मादजायत कुलाम्बरपूर्णचन्द्रः श्रीजाहडस्तदनुजोदयचन्द्र नामा।
एकः परोपकृतिहेतुकृतावतारो धर्मात्मकः पुनरमोघसुदानसारः ॥४॥
ताभ्यामशेषदुरितौघशमैकहेतुं निर्मापितं भुवनभूषणभूतमेतत्।
श्रीशान्ति चैत्यमिति नित्यसुखप्रदानात् मुक्तिश्रियो वदनवीक्षण लोलुपाभ्याम् ॥५॥
संवत् १२३७ मार्ग सुदि ३ शुक्रे श्रीमत्परमर्द्धिदेव विजयराज्ये
चन्द्रभास्करसमुद्रतारका यावदत्र जनचित्तहारकाः।
धर्मकारिकृतशुद्धकीर्तनं तावदेव जयतात् सुकीर्तनम् ॥६॥
वाल्हणस्य सुतः श्रीमान् रूपकारो महामतिः।
पापटो वास्तुशास्त्रज्ञस्तेन बिम्बं सुनिर्मितम् ॥७॥

इस मूर्ति-लेखका आशय यह है कि गृहपति-वंशमें श्रेष्ठी देवपाल हुए, जिन्होंने बानपुरमें सहस्रकूट जिनालयका निर्माण कराया। उनके पुत्र रत्नपाल हुए। रत्नपालके पुत्र रल्हण थे। रल्हणके पुत्र गल्हण हुए, जिन्होंने नन्दपुर तथा मदनेशसागरपुरमें शान्तिनाथ जिनालय बनवाये। गल्हणके दो पुत्र हुए—जाहड़ और उदयचन्द्र। इन दोनों भाइयोंने शान्तिनाथकी मूर्ति बनवायी, जिसकी प्रतिष्ठा महाराज परमर्द्धिके राज्यमें अगहन सुदी ३ शुक्रवार संवत् १२३७ में करायी। इस मूर्तिका निर्माण वाल्हणके पुत्र वास्तुशास्त्रके ज्ञाता पापटने किया।

इस प्रतिमाके बायें पार्श्वमें भगवान् कुन्थुनाथकी मूर्ति विराजमान है। यह मूर्ति १३ फुटके शिलाफलकमें १० फुट अवगाहनावाली खड्गासन मुद्रामें उत्कीर्ण है। इस मूर्तिकी भी नासिका,

उपस्थ, इन्द्रिय तथा पैरोंके अँगूठे खण्डित हैं। बायाँ हाथ पुनः जोड़ा हुआ है। मूर्ति-लेखका बहुभाग खण्डित है। इस मूर्तिपर बकरेका लांछन है। पालिश मटियाले रंग या स्वर्णकी है। इसके पाठपीठपर जो लेख उत्कीर्ण है, उसका आशय इस प्रकार है—

श्री रल्हणकी नवविवाहिता पत्नीका नाम गंगा था। उसके तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें-से दो छोटे भाइयोंके स्वर्गवासके कारण बड़े भाईके मनमें संसारसे निर्वेद हो गया। धन, जीवन और यौवनको क्षणभंगुर समझकर उसने अपना सम्पूर्ण धन आत्म-हितके लिए व्यय किया। उसने ही इस मूर्तिका निर्माण कराया। इसकी प्रतिष्ठा भगवान् शान्तिनाथ-मूर्तिके साथ ही संवत् १२३७ में हुई थी।

भगवान् शान्तिनाथके दायें पार्श्वमें भगवान् अरहनाथकी मकराना पाषाणकी १० फुट ऊँची श्यामवर्ण प्रतिमा विराजमान है। संवत् १२३७ में शान्तिनाथ भगवान्के साथ जो मूर्ति प्रतिष्ठित की गयी थी, उसे आततायियोंने खण्डित कर दिया। तब सन् १९५८ में प्रान्तके जैन समाजने यह मूर्ति मँगवाकर प्रतिष्ठित की।

इस गर्भगृहके बाहर चार वेदियोंमें चार प्राचीन प्रतिमाएँ हैं। मन्दिरके हॉलमें चारों ओर बरामदे हैं और दीवारोंमें वेदियाँ बनी हुई हैं। इनमें तीन चौबीसीकी ७२ मूर्तियाँ और विदेह क्षेत्रके २० तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ हैं। इस प्रकार कुल ९२ मूर्तियाँ हैं। सभी मूर्तियाँ पद्मासन हैं और प्रत्येककी अवगाहना १ फुट ७ इंच है।

इस मन्दिरके शिखरकी शुकनासिकापर एक रथिकामें ५ फुट ऊँची खड्गासन मूर्ति बनी हुई है।

२. **महावीर मन्दिर**—संग्रहालयके ऊपर यह मन्दिर बना हुआ है। इसमें भगवान् महावीर-की श्वेतवर्ण १ फुट १० इंच (मय आसन) अवगाहनावाली पद्मासन मूर्ति मूलनायकके रूपमें विराजमान है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् २५०० में की गयी। यहाँ ३ पाषाण और १ धातुकी मूर्तियाँ हैं। इनमें-से एक मूर्ति संवत् १७१३ की है।

३. **पार्श्वनाथ मन्दिर**—इसमें भगवान् पार्श्वनाथकी सिलहटी वर्णकी २ फुट २ इंच ऊँची पद्मासन मूर्ति विराजमान है।

इसके अतिरिक्त दो वेदियाँ और हैं। बायीं ओरकी वेदीमें पार्श्वनाथ भगवान्की सिलहटी वर्णकी १ फुट ८ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। फणके ऊपर दोनों पार्श्वोंमें पुष्पवर्षा करते हुए नभचारी देव दिखाई पड़ते हैं। उनसे नीचे एक-एक गज बना हुआ है। नीचे एक-एक पद्मासन मूर्ति है। अधोभागमें भगवान्के दोनों ओर चमरवाहक इन्द्र खड़े हैं।

इसके आगे भगवान् नेमिनाथकी श्वेतवर्ण १ फुट २ इंचकी मूर्ति रखी हुई है। दायीं वेदीमें कत्थई वर्णकी १ फुट ६ इंच ऊँची पार्श्वनाथकी पद्मासन मूर्ति है। प्रतिष्ठा-काल संवत् १८६९ है। इसके आगे पार्श्वनाथकी श्वेत मूर्ति है।

४. **मेरु-मन्दिर**—संग्रहालयके बगलमें यह मन्दिर स्थित है। तीन परिक्रमावाली कटनियाँ बनी हुई हैं। वेदीमें कृष्ण पाषाणकी १ फुट ७ इंच अवगाहनावाली पद्मासन मूर्ति है। मूर्तिके पादपीठपर लेख या लांछन कुछ भी नहीं है। उसके आगे १ फुट ऊँची पुष्पदन्त भगवान्की श्वेतवर्ण पद्मासन मूर्ति विराजमान है। यह संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित की गयी।

५. **नया मन्दिर**—कहा जाता है कि शान्तिनाथकी प्रतिष्ठाके समय इसमें हवनकुण्ड था। यह आठ खम्भोंका मठ था। बादमें इसे मन्दिरका रूप दे दिया गया।

६. बाहुबली मन्दिर—प्रथम कामदेव बाहुबली स्वामीकी श्वेत मकरानेकी प्रतिमा कायोत्सर्गासनमें विराजमान है। मूर्तिपर पारम्परिक माधवी लताएँ लिपटी हुई हैं। मूर्तिकी अवगाहना ७ फुट है तथा इसका कमलासन २ फुट २ इंच ऊँचा है। इसकी प्रतिष्ठा विक्रम संवत् २०१४ में हुई थी।

७. भूगर्भ जिनालय—नीचे कुछ सीढ़ियाँ उतरकर भूगर्भमें एक चबूतरेपर मूर्तियाँ हैं, जिनमें २० पाषाण की, ५१ धातु की, १ मेरु धातुकी और ४ चरणचिह्न हैं। इनमें-से कई मूर्तियाँ जीवराज पापड़ीवाल द्वारा संवत् १५४८ मे प्रतिष्ठित की हुई हैं।

मानस्तम्भ—बाहुबली मन्दिरके सामने लाल पाषाणके दो मानस्तम्भ हैं। ये एक ही शिलासे निर्मित हैं। इनके अभिलेखानुसार इनकी प्रतिष्ठा विक्रम संवत् १०१३ में हुई थी। सम्भवतः उस कालमें यहाँ एकाधिक मन्दिर रहे होंगे, जिनके सामने ये मानस्तम्भ निर्मित किये गये थे। यह भी सम्भव है कि ये मानस्तम्भ निकटकी पहाड़ीपर निर्मित मन्दिरोंके सामने बने हों। मन्दिर ध्वस्त हो गये, तब उन्हें वहाँसे हटाकर भक्त श्रावकोंने संवत् १९५३ में यहाँ लाकर स्थापित कर दिया। इस सम्भावनाकी कल्पनाका तर्कसंगत आधार यह है कि जब यहाँ शान्तिनाथ जिनालयका निर्माण हुआ, उस समय कोई पूर्ववर्ती जिनालय यहाँ नहीं था। जिनालयके अभावमें अकेले मानस्तम्भोंकी कल्पना नही की जा सकती। यहाँ जिनालय न होनेका मुख्य हेतु यह है कि यहाँ उस कालके अवशेष उपलब्ध नही होते, न जिनालय ही प्राप्त होते हैं। अवशेष उपलब्ध होते हैं पहाड़ीपर। अतः ये मानस्तम्भ भी वहींके होने चाहिए। किन्तु जो मूर्तियाँ अब तक प्राप्त हुई हैं, उनमें-से कोई मूर्ति संवत् १०१३ की नही मिली। सम्भव है, भविष्यमें संवत् १०१३ या उसके पूर्वकालकी कोई मूर्ति यहाँ मिल जाये।

उत्तर दिशाके मानस्तम्भकी आधार-चौकी ६ फुट ९ इंच तथा मानस्तम्भ १२ फुट ऊँचा है। इसके अधोभागमें चारों दिशाओंमे क्रमशः चक्रेश्वरी, अम्बिका, सरस्वती और पद्मावतीकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इनसे ऊपर एक खड्गासन तीर्थंकर मूर्ति है। इससे कुछ ऊपर चारों दिशाओंमें चार पद्मासन अर्हन्त प्रतिमाएँ बनी हुई है। शीर्ष वेदीपर चार तीर्थंकर मूर्तियाँ विराजमान हैं।

दूसरे मानस्तम्भकी रचना भी प्रायः इसीके समान है। अन्तर इतना है कि इसकी चौकी ७ फुट ऊँची है तथा मानस्तम्भकी ऊँचाई ११ फुट है।

पहाड़ीके मन्दिर—क्षेत्रके दक्षिण द्वारसे निकलकर लगभग दो फर्लांग कच्चा मार्ग तय करनेपर एक पहाड़ी टीलेपर छह लघु मन्दिर या मन्दरियाँ मिलती हैं। इनमें-से दो मन्दिरोंमे मदनकुमार और विष्कंवल मुनियोके हलके गुलाबी वर्णके चरण-चिह्न बने हुए हैं। कहा जाता है कि इन दोनोंने इसी स्थानपर निर्वाण प्राप्त किया था। इन चरणोंका आकार १० इंच है। इनकी प्रतिष्ठा विक्रम संवत् २०२४ में मार्ग शुक्ला १५ को की गयी। शेष चार मन्दिरोंमें भी चरण-चिह्न हैं। ये श्वेतवर्ण है और इनकी लम्बाई ७ इंच है।

सिद्धोंकी गुफा—क्षेत्रसे लगभग २ कि. मी. दूर पर्वतोंके मध्य एक विशाल गुफा है जो सिद्धोंकी गुफा कहलाती है। यही झालरकी टौरिया है।

संग्रहालय—अहार क्षेत्रपर एक संग्रहालय है। सन् १९१३ में यहाँ खुदाई करायी गयी थी जिसमें सैकड़ों मूर्तियाँ और उनके खण्ड निकले थे। वे सब तथा निकटवर्ती स्थानोंसे उत्खननमें प्राप्त पुरातन सामग्री यहाँ सुरक्षित हैं। इस सामग्रीमें पुरातत्त्व और कलाकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण १२२७ कलाखण्ड सम्मिलित हैं। इन कलाखण्डोंमें तीर्थंकर मूर्तियाँ, यक्ष-यक्षीकी मूर्तियाँ, स्तम्भ,

वेदिका, तोरण, घड़े आदि सम्मिलित हैं। यह सामग्री प्रायः संवत् ११२३ से १८६९ तककी है। इस सामग्री और मूर्तिलेखोंका अध्ययन करनेपर कुछ रोचक निष्कर्ष निकलते हैं, जो इतिहासके परिप्रेक्ष्यमें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। यथा—

१. चन्देल नरेश मदनवर्मनने यहाँपर जो विशाल मदनसागर नामक सरोवर बनवाया था, उसके कारण इस नगरको मदनसागरपुर या मदनेशसागरपुर कहा जाने लगा था। ये नाम संवत् १२०९ और संवत् १२३७ के मूर्तिलेखोंमें दो मूर्तियोंपर अभिलिखित मिलते हैं। मदनवर्मनका राज्य संवत् ११८६ से १२२० तक रहा। उसके पश्चात् उसका पौत्र और यशोवर्मनका पुत्र परमर्दी गद्दीपर बैठा जिसका शासन संवत् १२५९ तक रहा। इसका अर्थ यह समझा जा सकता है कि नगरके ये नाम इन दोनों नरेशोंके राज्यकालमें कुछ ही समय तक प्रचलनमें रहे। सम्भव है, ये नाम बोलचालमें बिलकुल प्रचलित न हुए हों, केवल अभिलेखोंमें ही कवियोंकी कृपासे स्थान पा गये हों।

२. मूर्तिलेखोंका वर्गीकरण करनेपर लगता है कि संवत् ११२३ से इस स्थानको एक तीर्थक्षेत्रके रूपमें मान्यता प्राप्त हो गयी और संवत् १२३७ तक यह जनता की श्रद्धा और आकर्षणका महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा। इन ११५ वर्षोंमें ही, वर्तमानमें उपलब्ध मूर्तियोंके आधारपर कहा जा सकता है कि २५ बार यहाँ पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा हुई। इन वर्षोंमें भी संवत् १२०३ से १२३७ के मध्य २० प्रतिष्ठाएँ हुईं। इन वर्षोंमें भी संवत् १२०३ में ३ बार प्रतिष्ठा हुई; १२०९ में २ बार, १२१३ में २ बार, १२१६ में ३ बार बिम्ब-प्रतिष्ठा हुई। संवत् १२०३, १२०७ और १२१३ में बानपुरमें विशाल प्रतिष्ठा-समारोह हुआ था। वहाँ भी अनेक मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा कराके उन्हें यहाँ रख दिया गया था। यद्यपि संवत् १२३७ के पश्चात् भी यहाँ जब-तब प्रतिष्ठाएँ होती रहीं, किन्तु इन ३५ वर्षोंमें प्रतिष्ठाओंकी अधिक संख्या और बहुसंख्यक मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा तथा इस कार्यमें अनेक जातियोंके सक्रिय सहयोगसे ऐसा लगता है कि उक्त अवधिमें अहार तीर्थक्षेत्रकी ख्याति अपने चरम बिन्दुपर पहुँच चुकी थी। हमें आश्चर्य है कि किसी मूर्तिलेखमें अहार क्षेत्रका नाम नहीं मिलता; बानपुरमें संवत् १२०७ और १२१३ की प्रतिष्ठित कुछ प्रतिमाओंको छोड़कर प्रतिष्ठा-स्थानका भी नामोल्लेख नहीं मिलता। सम्भव है, जिन मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा अहारमें हुई थी, उनकी प्रतिष्ठा वस्तुतः कहीं अन्यत्र हुई हो। किन्तु इससे स्थितिमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। असन्दिग्ध शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि अहार क्षेत्रने उत्कर्षका एक लम्बा स्वर्णिम युग देखा है और उसने शताब्दियों तक महान् ख्यातिका भोग किया है।

३. यहाँ कभी भट्टारकोंकी गद्दी रही हो, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता। किन्तु इस क्षेत्रके साथ भट्टारकोंका कुछ सम्बन्ध अवश्य रहा है और उनके द्वारा प्रतिष्ठित अनेक मूर्तियाँ यहाँ प्राप्त होती हैं। किन्तु यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि यहाँ यक्ष-यक्षियोंकी मूर्तियाँ अत्यल्प संख्यामें उपलब्ध हैं। यहाँ उपलब्ध पुरातत्त्वमें इनकी संख्या बिलकुल नगण्य है।

४. यहाँकी मूर्तियोंको ध्यानपूर्वक देखनेपर विभिन्न कालकी कलाका अन्तर पकड़में आ सकता है। अतः यह संग्रहालय ११वीं शताब्दीसे १९वीं शताब्दी तकके कला-परिवर्तनका अध्ययन करनेमें बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। मूर्तियोंको देखकर लगता है कि तीर्थंकर मूर्तियोंपर अष्ट प्रातिहार्य और परिकरकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया किन्तु उनके अलंकरणकी उपेक्षा नहीं की गयी।

५ संग्रहालयमें एक मूर्तिलेख नं. ८११ इस प्रकार है—'संवत् ५८८ माघ सुदी १३ गुरौ पुष्य नक्षत्रे गोलापूर्वान्वये साहु रामल सुत साहु गणपति साहु, मामदेव हींगरमल सुत वंशी मदनसागर तिलकं नित्यं प्रणमति'। इसमें 'मदनसागर तिलक' यह पद शान्तिनाथ भगवान्‌के लिए प्रयुक्त

हुआ है। इस लेखमें संवत् ५८८ गलत है। इसके तीन कारण हैं—(१) उस समय यहाँ मदनसागर नहीं था। उसका निर्माण १२वीं शताब्दीमें हुआ था। (२) उस समय गोलापूर्व जाति नहीं थी। (३) इस लेखकी लिपिसे यह लेख १६वीं शताब्दीका लगता है। अतः यह संवत् १५८८ होना चाहिए।

दर्शनीय स्थल

यहाँ पहली पहाड़ीपर छह छोटे-छोटे मन्दिर बने हुए हैं। यहाँसे दूसरी पहाड़ीपर जानेपर एक सरोवर दिखाई पड़ता है जो बड़ा कोटा सरोवर कहलाता है। किंवदन्तीके अनुसार इसी सरोवरके किनारे किसी शिलापर पाड़ाशाहका राँगा चाँदी हो गया था। इस पहाड़ीपर तथा आसपास प्राचीन मन्दिरोंके अवशेष बिखरे पड़े हैं। ये अवशेष विशाल भूभागमें बिखरे हुए हैं। इससे ऐसा लगता है कि यहाँ कभी अनेक जिनालय रहे होंगे जो कालक्रमसे क्रूर दाढ़ोंमें फँसकर अथवा धर्मोन्मादियोंके हाथों विनष्ट हो गये। यहाँकी पहाड़ियोंमें कुछके नाम हैं मुड़िया, रिछारी बन्दरोंई, सुनाई, भड़गुल्ला आदि। इन नामोंसे ही प्रतीत होता है कि किसी जमानेमें यहाँ भयंकर जंगल थे, जहाँ रीछ, बन्दर, भेड़िये आदि जंगली जानवर रहते थे। इन सभी स्थानोंपर मन्दिरोंके अवशेष मिलते हैं। यह वह काल था जब लोगोंका आवागमन यहाँ कम हो गया था। धीरे-धीरे मन्दिर धराशायी हो गये और मूर्तियाँ मलबेमें या झाड़ियोंमें दब गयीं। इसी कालमें शान्तिनाथ भगवान्‌की विशाल मूर्ति भी खण्डहरोंमें पड़ी रही और लोग मूड़ादेव कहा करते थे। जैन समाज इस जैन केन्द्रको भूल ही चुका था। ग्रामके चरवाहोंसे पता लगनेपर संवत् १८८४ में कुछ उत्साही धर्मप्रेमी बन्धु वहाँके ग्रामवासियोंके सहयोगसे शान्तिनाथ भगवान्‌की मूर्ति तक पहुँचे। उन्होंने समाजके सहयोगसे वहाँ तक जानेका मार्ग बनवाया और इस क्षेत्रको पुनः प्रकाशमें लाये। यहाँ दर्शनीय वस्तुओंमें मदनसागर और एक बावड़ी है जो मदनबेरके नामसे प्रसिद्ध है।

धर्मशालाएँ

यहाँकी धर्मशालाओंमें १०० कमरे बने हुए हैं। धर्मशालाओंमें बिजली है, पक्के कुएँमें मोटर लगी हुई है। क्षेत्र तक पक्की सड़क बनी हुई है।

क्षेत्रस्थित संस्थाएँ

वर्तमानमें क्षेत्रपर निम्नलिखित संस्थाएँ हैं—शान्तिनाथ सरस्वती भवन, शान्तिनाथ संस्कृत विद्यालय एवं छात्रावास, शान्तिनाथ व्रती आश्रम, शान्तिनाथ महिलाश्रम, शान्तिनाथ दिगम्बर जैन संग्रहालय। क्षेत्र तथा सभी संस्थाओंकी प्रबन्धकारिणी कमेटी एक है किन्तु संग्रहालय-की कमेटी पृथक् है।

बन्धा

स्थिति और मार्ग

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बन्धा, मध्यप्रदेशके टीकमगढ़ जिलेमें बम्होरी-बराना नामक ग्रामसे दस किलोमीटर दूर दक्षिणकी ओर सुरम्य पहाड़ियोंके बीचमें स्थित है। टीकमगढ़से निवाड़ी होते हुए झाँसी जाते समय मार्गमें बम्होरी-बराना पड़ता है। टीकमगढ़से बन्धा ५० कि. मी. दूर है। इसका पोस्ट आफिस बम्होरी-बराना है।

क्षेत्र-दर्शन

इस क्षेत्रके चारों ओरका दृश्य अत्यन्त मनोरम है। कहा जाता है कि बुन्देलखण्डमें सात भोंयरे बहुत प्रसिद्ध रहे हैं। ये सातों भोंयरे पवा, देवगढ़, सीरौन, करगुवाँ, बन्धा, पपोरा और थूवौनमें स्थित हैं। ऐसी भी अनुश्रुति है कि ये सातों भोंयरे देवपत और खेवपत नामक दो भाइयोंने निर्मित कराये थे। इन भोंयरोंका निर्माण काल क्या है, यह अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है। किन्तु इन भोंयरोंमें कुछ मूर्तियाँ ११वीं-१२वी शताब्दीकी भी उपलब्ध होती हैं। ये मूर्तियाँ मूलतः इन भोंयरोंमे ही प्रतिष्ठित की गयी थीं, यह विश्वासपूर्वक कहना कठिन है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमिके सन्दर्भमें विचार करनेपर ऐसा लगता है कि भोंयरे उस कालकी उपज हैं जब आततायी मुस्लिम शासक देवालय और देव-प्रतिमाओंका विध्वंस करने लगे थे। ऐसे संकट-कालमें देव-प्रतिमाओंकी सुरक्षाकी चिन्ता होना स्वाभाविक था। देवालयोंकी सुरक्षा होना कठिन जानकर देव-प्रतिमाओं-की सुरक्षाके प्रयत्न किये गये और भूगर्भमे वेदियाँ या चबूतरे बनाकर वही देवालयकी मूर्तियाँ विराजमान कर दी गयीं। कुछ स्थानोंपर इस प्रकारकी भी घटनाएँ हुईं कि आततायियोंने देवालयको ही नष्ट कर दिया। सतत आतंकके कारण जैन समाजने उन विध्वस्त मन्दिरोंका पुनर्निर्माण नहीं कराया। धीरे-धीरे समाज उन ध्वंसावशेषोंके नीचे दबे हुए भोंयरेको भी भूल गया। कही-कही खुदाई कराते समय ऐसे भोंयरे और उनमें स्थित मूर्तियाँ सुरक्षित रूपमें मिली हैं। भोंयरे-निर्माणका एक अन्य उद्देश्य तपःसाधनाके लिए शान्तिपूर्ण वातावरणकी सृष्टि भी रहा होगा।

बन्धा क्षेत्रमें भी एक भोंयरा है। इसकी रचना-शैली उपर्युक्त गर्भगृह-समकसे बहुत कुछ मिलती-जुलती है। इस भोंयरेमें मूलनायक प्रतिमा भगवान् अजितनाथकी है। लेखसे स्पष्ट है कि इस प्रतिमाकी प्रतिष्ठा चैत्र शुक्ला त्रयोदशीको वि. संवत् ११९९ (ई. स ११४२) मे हुई थी। यह मूर्ति अत्यन्त प्रभावक है। इसके नेत्रोंमे प्रशान्त स्निग्धता है, मुख-मुद्रा अत्यन्त सौम्य है। दर्शन करनेपर अनुभव होता है कि प्रभु करुणाकी वर्षा कर रहे हैं।

इस मूर्तिके एक ओर भगवान् ऋषभदेव और दूसरी ओर भगवान् सम्भवनाथ खड्गासनमें ध्यानलीन हैं। इन दोनोंका प्रतिष्ठा-काल संवत् १२०९ है। प्राचीन प्रतिमाओमे दो प्रतिमाएँ और भी उल्लेखनीय हैं। वे हैं भगवान् सम्भवनाथ और भगवान् नेमिनाथकी। इन दोनोके पीठासनोंपर संवत् १२०९ के अभिलेख उत्कीर्ण हैं।। एक मूर्ति भगवान् ऋषभदेवकी है जिसके पादपीठपर लेख तो है किन्तु संवत् पढ़नेमें नही आता। लगता है, यह भी उपर्युक्त मूर्तियोंकी समकालीन है। यहाँ अन्य भी अनेक मूर्तियाँ हैं, किन्तु ये इस कालके बादकी हैं। इस गर्भगृहके निकट एक विशाल शिखरबद्ध मन्दिर है।

शिखरबद्ध मन्दिरके निकट ही एक और मन्दिर है। यह पहले सम्भवत जैन मठ था, जिसमें बारह द्वारिया हैं। ऐसा लगता है, प्राचीन कालमें जैन साधुओंकी समाधि (निषधिका) के रूपमे इसका उपयोग होता होगा। यहाँ एक स्तम्भपर अभिलेख भी अंकित है, किन्तु अस्पष्ट होनेसे वह पढ़नेमें नही आता। यहाँ तीन प्राचीन मूर्तियाँ विराजमान हैं, जो अनुमानतः ११-१२वीं शताब्दी की हैं।

शिखरबद्ध मन्दिरकी ऊँचाई लगभग ६५ फुट है। इस मन्दिरका निर्माण १८वी शताब्दीमें बम्हौरी बरानानिवासी स. सि. गिरधारीलालजीकी मातेश्वरीने कराया था। वे धर्मनिष्ठ महिला थी। उनके आदेशसे निर्माणके समय मन्दिरके काममें आनेवाला जल पहले छान लिया जाता था।

क्षेत्रपर अतिशय

इस क्षेत्रके अतिशयोंके बारेमें जनतामें अनेक प्रकारकी किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। मन्दिरसे लगभग १०० मीटर दूर एक बावड़ी है। उसके पास ही एक खेत है। कुछ वर्ष पूर्व इस खेतके मालिकको हल जोतते समय एक जैन मूर्ति मिली थी। खेतके बीचमें एक पाषाण-खण्ड पड़ा हुआ है। जब भी खेतका मालिक इस पाषाणको वहाँसे हटाकर अन्यत्र डाल देता है, तभी उसका परिवार बीमार पड़ जाता है। जनतामें धारणा है कि उस स्थानके नीचे कोई गर्भगृह है और यह वहाँकी मूर्तियों या किसी मूर्तिका अतिशय है।

इस प्रदेशकी जनतामें एक अनुश्रुति यह भी प्रचलित है कि एक बार मुगल बादशाहकी आज्ञासे कुछ धर्मान्ध सैनिकोंने यहाँकी मूर्तियोंको तोड़नेके लिए हथियार उठाये। तभी क्षेत्र-रक्षक देवने उन्हें कीलित कर दिया। उनको छुटकारा तभी मिला, जब उन्होंने इस प्रकारके दुष्कृत्य करनेसे तोबा की। कहते हैं, सैनिक यहाँ बँधे थे, इसलिए तबसे इस स्थानका नाम भी बन्धा पड़ गया।

संवत् १८९० में एक बार एक मूर्तिकार एक मूर्ति बेचनेके लिए बम्हौरी होकर जा रहा था। जब वह बम्हौरीमें बड़े पीपलके निकट पहुँचा तो उसकी गाड़ी अचल हो गयी। गाड़ी अनेक प्रयत्न करनेपर भी नहीं चली। किसीने बम्हौरीके सवाई सिंघईजीसे वह मूर्ति खरीदकर बेचारे मूर्तिकारका संकट दूर करनेका आग्रह किया। सवाई सिंघईजी मूर्ति खरीदनेको तो राजी हो गये किन्तु एक ही शर्तपर कि मूर्ति बन्धाजी पहुँच जाये। आश्चर्यकी बात कि गाड़ी बन्धाजीकी ओर मोड़ी गयी तो मजेसे चलने लगी और बन्धाजी पहुँच गयी। वह मूर्ति आज भी बड़े मन्दिरमें विराजमान है।

सन् १९५३ में आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराजका संघके साथ यहाँ पदार्पण हुआ। उस समय यहाँका कुआँ सूखा हुआ था। इससे बड़ी असुविधा हो रही थी। क्षेत्रके अधिकारियोंने आचार्यश्रीसे इस सम्बन्धमें निवेदन किया। तब आचार्यश्रीने भगवान् अजितनाथका अभिषेक कराया और गन्धोदक लेकर कुएँमे डाल दिया। देखते-देखते कुएँमें जल भर गया। इस घटनाके प्रत्यक्षदर्शी अनेक लोग आज भी विद्यमान हैं।

यहाँ अनेक जैन और जैनेतर व्यक्ति अब भी अपनी मनोकामनाओंकी पूर्तिके लिए आते रहते हैं। झांसीवालोंकी धर्मशाला सेठानीकी मनोकामना पूर्ण होनेपर ही यहाँ निर्मित करायी गयी। इस प्रकार यहाँ अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाएँ होती रहती हैं जिनके कारण इस प्रदेशकी जनता इस क्षेत्रके प्रति अत्यधिक श्रद्धा रखती है और इसे अतिशय क्षेत्र मानती है।

पुरातत्त्व

यह क्षेत्र तथा इसके आसपासका समूचा प्रदेश पुरातत्त्वकी दृष्टिसे अत्यन्त समृद्ध है। इस प्रदेशमें खेतोंमें, सरोवरोंमें और प्राचीन भवनों या देवायतनोंके अवशेषोंमें पुरातत्त्वकी जैन सामग्री विपुल परिमाणमें बिखरी हुई है। इस क्षेत्रके निकट ही एक टीला है, जिसे लोग 'धर्मटीला' कहते हैं। निकटवर्ती ग्रामोंके कुछ उत्साही लोगोंने कुछ वर्ष पूर्व इस टीलेकी खुदाई की। परिणाम-स्वरूप इसमें-से कुछ प्राचीन जैन मूर्तियाँ निकलीं। वे क्षेत्रपर स्थित संग्रहालयमें रख दी गयीं। यदि इस टीलेकी पूरी तरह खुदाई की जाये तो अब भी इसमें-से जैन सामग्री मिलनेकी पर्याप्त सम्भावना है।

इस क्षेत्रके निकटवर्ती ग्रामोंके कुछ हिन्दू मन्दिरों, विशेषतः जगदम्बा-मन्दिरोंमें प्राचीन जैन मूर्तियाँ रखी हुई हैं। इनमें-से कुछ मूर्तियाँ खण्डित हैं और कुछ अखण्डित हैं। हिन्दू लोग इन्हें महामाई और जगदम्बा मानकर पूजते हैं। बन्धासे डेढ़ मील दूर कुम्हैड़ी गाँवके एक हिन्दू मन्दिरमें एक पाषाण-स्तम्भ लगा हुआ है, जिसपर जैन तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ अंकित हैं। ग्रामीण लोग इसे भी जगदम्बा मानते हैं और जल ढारकर पूजा करते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि चन्देलवंशी राजाओंके शासन-कालमें संस्कृति और कलाको अत्यधिक प्रोत्साहन और विकासका अवसर मिला। धार्मिक जनताने इस प्रदेशमें नये तीर्थोंकी स्थापना करके अथवा पाषाणोंमें कलाको अवतरित करके इस अवसरका खूब लाभ उठाया। अहार, पपौरा आदिकी शृंखलामें बन्धा क्षेत्र भी है। इन क्षेत्रोंका उदय प्रायः एक ही कालमें हुआ लगता है। इन क्षेत्रोंकी कला भी प्रायः समान है। इतिहास और पुरातत्त्व भी सममामयिक लगते हैं। प्रायः चन्देल राजाओंके शासन-कालमें ही ये तीर्थ बने और यहाँ मन्दिर और मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हुईं। उसके पश्चात् यहाँ अनेक मन्दिर बनते रहे। यहाँकी प्रारम्भिक कालकी मूर्तियों-पर चन्देल और कलचुरि शैलीकी छाप स्पष्ट परिलक्षित होती है। अतः यह स्वीकार करनेमें कोई बाधा प्रतीत नहीं होती कि बन्धा क्षेत्रका उदय चन्देल वंशके शासन-कालमें हुआ और मुस्लिम-कालमें यहाँ गर्भगृहका निर्माण हुआ।

संग्रहालय

क्षेत्रके अधिकारियोंने एक स्तुत्य प्रयास किया है। क्षेत्रके निकटवर्ती प्रदेशमें जो मूर्तियाँ खेतों और जंगलोंमें असुरक्षित दशामें पड़ी हुई थीं, उन्हें लाकर उन्होंने यहाँ एक स्थानपर रख दिया है और इस मूर्ति-संग्रहको एक लघु संग्रहालयका रूप प्रदान कर दिया है। इन मूर्तियोंका अपना एक विशेष ऐतिहासिक और कलात्मक महत्त्व है। यदि सभी तीर्थक्षेत्रोंके अधिकारी इसी प्रकार अपने तीर्थके निकटवर्ती प्रदेशमें पड़ी हुई मूर्तियोंका संग्रह अपने क्षेत्रपर कर लें तो इससे हजारों जैन मूर्तियों और प्राचीन कलावशेषोंकी सुरक्षा अल्प व्यय और साधारण श्रममें ही हो सकती है।

क्षेत्रपर स्थित संस्थाएँ

(१) क्षेत्रपर सन् १९६७ में श्री अजितनाथ दिगम्बर जैन विद्यालयकी स्थापना की गयी। तबसे यह विद्यालय बराबर चल रहा है।

(२) सन् १९६८ में क्षेत्रपर उपर्युक्त संग्रहालयकी स्थापना की गयी।

(३) यहाँ प्रकाशन-विभाग भी चालू किया गया है। अभी तक उसकी ओरसे बन्धा क्षेत्र-सम्बन्धी कई पुस्तिकाएँ, रिपोर्ट और शतवर्षीय कलेण्डर निकल चुके हैं।

धर्मशाला

यात्रियोंके ठहरनेके लिए एक धर्मशालाका निर्माण हो चुका है, जिसमें १० कमरे हैं।

व्यवस्था

क्षेत्रकी व्यवस्था एक कार्यकारिणी समिति करती है। इसी समितिके हाथमें क्षेत्र और वहाँपर स्थित संस्थाओंकी व्यवस्था है।

खजुराहो

मार्ग और अवस्थिति

खजुराहो मध्यप्रदेशके छतरपुर जिलेमें स्थित है और अत्यन्त कलापूर्ण भव्य मन्दिरोंके कारण विश्व-भरमें प्रसिद्ध पर्यटन-केन्द्र है। एक हजार वर्ष पूर्व यह चन्देलोंकी राजधानी था, किन्तु आज तो यह एक छोटा-सा गाँव है जो खजुराहो सागर अपरनाम निनौरा तालनामक झीलसे दक्षिण-पूर्वी कोनेमें बसा है। यह स्थान महोबासे ५५ कि. मी. दक्षिणकी ओर, हरपालपुरसे ९८ कि. मी. तथा छतरपुरसे ४६ कि. मी. पूर्वकी ओर, सतनासे १२० कि. मी. व पन्नासे ४३ कि. मी. पश्चिमोत्तर दिशामें है। इन सभी स्थानोंसे खजुराहो तक पक्की सड़क है और नियमित बस-सेवा है। रेलसे यात्रा करनेवालोंके लिए हावड़ा-बम्बई लाइनपर सतना स्टेशनसे तथा झाँसी-मानिकपुर लाइनपर हरपालपुर और महोबासे यहाँके लिए बसें नियमित चलती हैं। इसी प्रकार इलाहाबाद, कानपुर, झाँसी, ग्वालियर, बीना, सागर, भोपाल, जबलपुर आदिसे बस द्वारा छतरपुर होते हुए खजुराहो पहुँच सकते हैं।

इण्डियन एयर लाइन्स कारपोरेशनकी हवाई सेवा दिल्ली-आगरा होते हुए खजुराहो जानेके लिए प्रतिदिन उपलब्ध है। जैन बन्धुओंके ठहरनेके लिए बस-अड्डेसे ३ कि. मी. दूर क्षेत्रपर धर्मशालाएँ हैं। पर्यटकोंके लिए पर्यटक बँगला (श्रेणी १), विश्राम-भवन, पर्यटक बँगला (श्रेणी २) तथा होटल आदिमें ठहरनेकी सुविधा है। यहाँका बस अड्डा खजुराहो सागर (निनौरा ताल) के किनारे अवस्थित है। इसके सामने ही शैव-वैष्णव मन्दिरोंका पश्चिमी समूह, संग्रहालय, होटल और छोटा-मोटा बाजार हैं।

नामकरण

भारतीय वास्तु और शिल्पकलाके क्षेत्रमें खजुराहोका विशिष्ट स्थान है। चन्देलकालीन उत्कृष्ट शिल्पकलाका निदर्शन यहाँ मिलता है। खजुराहो नामके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती प्रचलित है कि प्राचीनकालमें इस नगरके चारों ओर पक्की दीवार थी और इसके मुख्य द्वारपर सोनेके दो खजूरके पेड़ लगाये हुए थे। इस किंवदन्तीका क्या आधार है, यह ज्ञात नहीं हो सका है। सम्भव है, यह नगर कभी खजूरके वृक्षोंके बीचमें बसा हो और इन वृक्षोंके बाहुल्यके कारण नगरका नाम खर्जूरपुर पड़ गया हो। वर्तमानमें तो यहाँ खजूरके पेड़ बहुत विरल हैं। शिलालेखों और प्राचीन इतिहास-ग्रन्थोंमें इस नगरके कई नाम उपलब्ध होते हैं जैसे खर्जूरवाटिका, खर्जूरपुर, खजुरा, खजुराहा। वि. सं. १०५६ (सन् ९९९) के गण्डदेवके एक शिलालेखमें संवत्के पश्चात् निम्न वाक्य उल्लिखित है—'श्री खर्जूरवाटिका राजा धंगदेव राज्ये।'

अबू रिहान नामक मुस्लिम इतिहासकारने सन् १०३१ में इसका नाम खर्जूरपुर और इसे जेजाहुतिकी राजधानी लिखा है। इसका समर्थन दो शिलालेखोंसे भी होता है। इनमें-से एक है कीर्तिवर्माके कालका और दूसरा परमर्दिके कालका है। पहला शिलालेख महोबामें उपलब्ध हुआ था, जिसमें इस प्रदेशका नाम जेजाख्य अथवा जेजाभुक्ति लिखा है। दूसरेमें इसका नाम जेजाकभुक्ति दिया हुआ है। इसीका अपभ्रंश होते-होते जैजाकहुति और जेजाहुति बन गये। इब्न बतूताने इसे खजुरा लिखा है और लिखा है—'वहाँ एक मील लम्बी झील है, जिसके चारों ओर मन्दिर बने हुए हैं। उनमें मूर्तियाँ रखी हुई हैं।' बतूताने सन् १३३५ में यहाँकी यात्रा की थी। उस समय खजुराहो और अजयगढ़पर चन्देल राजाओंका अधिकार था, जबकि कालिंजर और महोबापर मुसलमानोंका अधिकार हो चुका था।

वर्तमानमें खजुराहो एक छोटा-सा गाँव है। किन्तु पर्यटन-केन्द्र होनेके कारण यहाँ देश-विदेशके अनेक पर्यटक और यात्री आते रहते हैं।

क्षेत्र-दर्शन

खजुराहोके हिन्दू और जैन मन्दिर चन्देल राजाओंके शासन-कालकी समुन्नत शिल्पकलाके उत्कृष्ट नमूने हैं। यहाँ जितने मन्दिर तथा चन्देलोंसे सम्बन्धित स्थान हैं, वे राहिल वर्मा (लगभग सन् ९००) से लेकर मुसलमानों द्वारा कालिंजरकी विजय (ई. स. १२१३) तकके कालके हैं।

यहाँ एक शिलालेखका एक भाग मिला है, जिसपर कुटिला लिपिमें हर्षदेव और क्षितिपाल-देव नृपतिका उल्लेख है। ये हर्षदेव यशोवर्माके पिता और धंगराजके पितामह थे। अतः यह शिलालेख ई. स. ९०० के लगभगका माना जाता है।

चन्देल राजाओंमें प्रारम्भके कुछ राजा विष्णु-भक्त थे किन्तु अधिकांश राजा शिवके उपासक थे। जैन धर्मके प्रति वे कभी असहिष्णु नहीं रहे। बल्कि उनके शासन-कालमें उनकी उदार नीतिके फलस्वरूप जैन धर्म और जैन कलाको विकास और प्रसारका पूरा अवसर मिला। यही कारण है कि चन्देलोंके शासन-कालमें अनेक स्थानोंपर उच्चकोटिके जैन कलायतन निर्मित हुए।

जनश्रुतिके अनुसार यहाँ ८५ मन्दिर थे, किन्तु अब तो प्राचीन मन्दिरोंमेंसे केवल ३० मन्दिर ही विद्यमान हैं, शेष मन्दिर नष्ट हो गये। चन्देल राजाओंके शासनसे पूर्व ही बौद्ध धर्म भारतसे लुप्तप्राय हो गया था, अतः बौद्धोंका कोई मन्दिर यहाँ नहीं मिलता। एक महाकाय बुद्ध-मूर्ति अवश्य मिली है। उसपर नौवीं-दसवीं शताब्दीके अक्षरोंमें बौद्ध मन्त्र अंकित है। इस मूर्तिको छोड़कर शेष सभी मन्दिर और मूर्तियाँ हिन्दू धर्म और जैन धर्मसे ही सम्बन्धित हैं।

यहाँके मन्दिरोंको सुविधाके लिए तीन भागोंमें बाँट सकते हैं—(१) पश्चिमी समूह, (२) पूर्वी समूह, (३) दक्षिणी समूह।

पश्चिमी समूह

मन्दिरोंका यह समूह मीठा-राजनगर सड़कके पश्चिममें स्थित है और दो श्रेणियोंमें विभक्त है। इस समूहमें सबसे पहला है चौंसठ योगिनी मन्दिर। यह छतरहित है तथा शिवसागर झीलके दक्षिण-पश्चिममें बना हुआ है। वर्तमानमें इस मन्दिरमें केवल तीन योगिनी मूर्तियाँ हैं और वे भी अपने वास्तविक स्थानोंपर नहीं हैं। अष्टभुजी महिषासुर मर्दिनी मुख्य वेदीमें विराजमान हैं। बगलकी वेदियोंमें-से एकमें माहेश्वरी है और दूसरीमें चतुर्भुज ब्रह्माणी।

इस मन्दिर-समूहमें लाल गुआन महादेव मन्दिर, कन्दारिया मन्दिर, महादेव मन्दिर, जगदम्बा मन्दिर, चित्रगुप्त या भरत मन्दिर, विश्वनाथ और नन्दी मन्दिर, पार्वती मन्दिर, लक्ष्मण मन्दिर, मातगेश्वर मन्दिर और वराह मन्दिर सम्मिलित हैं। इनमें लाल गुआन महादेव मन्दिर चौंसठ योगिनी मन्दिरसे पश्चिममें तीन फर्लांग दूर है। कन्दारिया मन्दिर चौंसठ योगिनी मन्दिर-के उत्तरमें है और खजुराहोके मन्दिरोंमें सबसे बड़ा है। यह १०२ फुट लम्बा, ६७ फुट चौड़ा और १०२ फुट ऊँचा है। इसमें पूर्ण विकसित मन्दिरोंके सभी तत्त्व विद्यमान हैं, यथा अर्धमण्डप, मण्डप, महामण्डप, अन्तराल, गर्भगृह और प्रदक्षिणा-पथ। महादेव मन्दिर जीर्ण-शीर्ण दशामें है और वह कन्दारिया मन्दिरके पास है। इसके उत्तरमें देवी जगदम्बा या कालीका मन्दिर है। इसके उत्तरमें थोड़ी दूरपर चित्रगुप्त मन्दिर है। इसके उत्तर-पश्चिममें एक छोटा तालाब है। विश्वनाथ और नन्दी मन्दिर पश्चिमी समूहकी पूर्वी कतारके उत्तरी सिरेपर अवस्थित हैं। ये

मन्दिर नौवींसे बारहवीं शताब्दी तक निर्मित हुए थे, यह बात विश्वनाथ मन्दिरके मण्डपकी दीवारमें लगे हुए एक शिलालेखसे प्रमाणित होती है। पार्वती मन्दिर, विश्वनाथ मन्दिरके दक्षिण-पश्चिममें निकट ही स्थित है। इसके निकट छतरपुर महाराज द्वारा बनवाया हुआ लगभग सौ वर्ष प्राचीन एक मन्दिर है। लक्ष्मण मन्दिर पार्वती मन्दिरके दक्षिणमें है और आयाममें विश्वनाथ मन्दिरके समान है। एक लेखके अनुसार यह मन्दिर यशोवर्मन (अपरनाम लक्ष्मवर्मन) ने बनवाया था। यह लेख मण्डपकी दीवारमें एक शिलापर उत्कीर्ण है। यह लेख सन् ९५३-५४ का सिद्ध होता है। लक्ष्मण मन्दिरके पास ही मातंगेश्वर मन्दिर है। इस मन्दिरमें ३ फुट ८ इंच व्यासका और ८ फुट ४ इंच ऊँचा अत्यन्त चमकीला विशालकाय लिंग स्थापित है। खजुराहोके हिन्दू मन्दिरोंमें यह मन्दिर सर्वाधिक पूज्य माना जाता है। मातंगेश्वर मन्दिरके सामने वराह मन्दिर बना हुआ है। इस मन्दिरमें ८ फुट ९ इंच लम्बी और ५ फुट ९ इंच ऊँची एक वराह मूर्ति है जो एक ही पाषाणसे निर्मित है।

पूर्वी समूह

इस समूहमें हनुमान् मन्दिर, ब्रह्मा मन्दिर, वामन मन्दिर, जवारी मन्दिर ये तो हिन्दू मन्दिर हैं और घण्टई मन्दिर, आदिनाथ मन्दिर, पार्श्वनाथ मन्दिर और शान्तिनाथ मन्दिर ये चार जैन मन्दिर हैं।

दक्षिणी समूह

मन्दिरोंके दक्षिणी समूहमें दुलादेओ मन्दिर और चतुर्भुज मन्दिर हैं।

यहाँ जैन मन्दिरोंके सम्बन्धमें कुछ प्रकाश डालना उपयोगी होगा।

घण्टई मन्दिर—यह मन्दिर गाँवके दक्षिणमें है। इस मन्दिरका यह नाम सम्भवतः इसलिए पड़ा है कि इसके स्तम्भोंपर घण्टा और जंजीरके अलंकरण उत्कीर्ण हैं। यह मन्दिर दसवीं शताब्दीमें निर्मित हुआ था। यहाँके संग्रहालयमें इसी कालकी कुछ मूर्तियाँ रखी हुई हैं, जिनके अभिलेखमें 'घण्टई' शब्द अंकित है। इससे प्रतीत होता है कि इस मन्दिरका 'घण्टई' नाम प्रारम्भसे प्रचलित रहा है। यह मन्दिर ४२ फुट १० इंच पूर्वसे पश्चिमकी ओर और २१ फुट ६ इंच उत्तरसे दक्षिणकी ओर था। इसका द्वार पूर्वाभिमुखी है। जैन समूहके मन्दिरोंसे यह १ कि. मी. की दूरीपर है। प्रारम्भमें इस मन्दिरमें अर्धमण्डप, महामण्डप, अन्तराल और गर्भगृह समाविष्ट थे। एक प्रदक्षिणापथ भी था। किन्तु अब तो उसकी बाहरी दीवार नष्ट हो चुकी है। केवल अर्धमण्डप और महामण्डप ही अवशिष्ट हैं। इसकी रचना-शैली पार्श्वनाथ मन्दिरसे बहुत कुछ मिलती-जुलती है। पहले इस मन्दिरमें २४ स्तम्भ थे और प्रत्येकमें एक-एक दीवारगीर बनी हुई थी। सम्भवतः इनके निर्माणका उद्देश्य प्रत्येकमें एक-एक तीर्थंकर-मूर्ति स्थापित करना हो। किन्तु अब तो इसमें २० स्तम्भ ही अवशिष्ट हैं। ये १४ फुट ६ इंच ऊँचे हैं।

इन स्तम्भोंकी अलंकरण-सज्जा और शिल्प-सौन्दर्य अनूठा है। इन स्तम्भोंपर कीर्तिमुखोंसे किंकणीजाल और मुक्तामालाएँ झूल रही हैं। इनका अंकन विविध रूपोंमें हुआ है—कहीं क्षुद्र घण्टिकाएँ मालाओंमें उलझ रही हैं, कहीं मालाएँ परस्पर गुँथ रही हैं। वृत्ताधोंमें साधुओं, विद्याधरों और मिथुनोंकी मूर्तियाँ बनी हुई है। घण्टई मन्दिरके स्तम्भोंकी इस अलंकरण-कलाकी उपमा सम्भवतः अन्यत्र कहीं नहीं है।

इन स्तम्भोंकी चौकियाँ अठपहलू और शीर्ष गोलाकार हैं। अर्धमण्डपके चारों स्तम्भ

प्रतीकात्मक भव्य अलंकरणोंसे सज्जित हैं। स्तम्भोंकी चौकियाँ पत्रावलीसे अलंकृत हैं। अर्थ-मण्डपकी छत कटोरेके आकारकी है, किन्तु छतका कुछ भाग नष्ट हो गया है। छतमें दिलहे बने हुए हैं और उनमें नृत्य और संगीत-समाजका सुन्दर अंकन किया गया है।

महामण्डपका प्रवेशद्वार दर्शनीय है। उसकी चौखटोंके दोनों ओर यक्ष-दम्पती विभिन्न प्रेमातुर मुद्राओंमें अंकित हैं। चौखटके अधोभागमें शासन-देवियोंकी बड़े आकारकी मूर्तियाँ हैं। पद्मावतीके सिरके ऊपर सर्प-फण है जो खण्डित है। देव-देवियोंके अलंकार अत्यन्त कलात्मक ढंगसे अंकित किये गये हैं। कई देवियोंके स्तन और सिर कटे हुए हैं।

द्वारके सिरदलपर मध्यमें प्रथम तीर्थंकर आदिनाथकी गरुड़वाहिनी अष्टभुजी चक्रेश्वरी विराजमान है। देवी अपने हाथोंमें चक्र, वज्र, मातुलिंग फल लिये हुए है और एक हाथ अभयमुद्रामें उठा हुआ है। सिरदलके दोनों सिरोंपर पद्मासन जैन तीर्थंकर-प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। ऊपरके तोरणमें दक्षिण और वाम कोनोंमें नवग्रह उत्कीर्ण हैं। सिरदलके ऊपर बनी हुई पट्टीमें तीर्थंकर माताके सोलह स्वप्नोंका अंकन किया गया है।

मन्दिर जीर्ण-शीर्ण दशामें है। इस मन्दिरकी मूलनायक प्रतिमा भगवान् ऋषभदेवकी रही होगी। इस अनुमानके कई कारण हैं। (१) प्रवेश-द्वारके ललाट-बिम्बपर गरुड़ारूढ़ा अष्टभुजी चक्रेश्वरीकी मूर्ति उत्कीर्ण है जो ऋषभदेव तीर्थंकरकी यक्षी है। (२) यहाँके सभी जैन मन्दिरोंमें भगवान् ऋषभदेवकी ही प्रतिमा मूलनायकके स्थानपर विराजमान है। यहाँ तक कि पार्श्वनाथ मन्दिरमें भी मूलनायकके रूपमें ऋषभदेवकी ही प्रतिमा विराजमान थी, जिसका चिह्न वृषभ अब भी पार्श्वनाथकी चरण-चौकीपर अंकित है।

यहाँ दो शिलालेख प्राप्त हुए हैं जो अस्पष्ट होनेके कारण पढ़े नहीं जा सके। इनमें-से एक लेख एक स्तम्भपर उत्कीर्ण है। इसमें केवल 'नेमिचन्द्र' शब्द पढ़ा जा सका है। अक्षरोंकी शैलीसे यह १०वीं शताब्दीका सिद्ध होता है। इसी प्रकार दूसरे लेखमें 'स्वस्ति श्री साधु पालना' शब्द पढ़े जा सके हैं। सन् १८७६-७७ में यहाँ खुदाईमें १३ जैन मूर्तियां उपलब्ध हुई थीं।

जैन मन्दिरोंका समूह

गाँवके दक्षिण-पूर्वमें जैन मन्दिरोंका समूह है। वे मन्दिर एक आधुनिक चहारदीवारीसे घिरे हैं। आदिनाथ, पार्श्वनाथ और शान्तिनाथ मन्दिरोंके अतिरिक्त कई आधुनिक जैन मन्दिर हैं जो प्राचीन मन्दिरके ध्वंसावशेषोंपर बनाये गये हैं। तीर्थंकरोंकी अनेक प्राचीन मूर्तियाँ मन्दिरोंमें तथा अहातेमें खुले संग्रहालयके रूपमें रखी हुई हैं। इनमें-से कई मूर्तियोंपर तिथिवाले लेख अंकित हैं।

यहाँके हिन्दू मन्दिरों और जैन मन्दिरोंमें वास्तुकलाकी दृष्टिसे समानता पायी जाती है। इसका कारण सम्भवतः यह है कि दोनों धर्मोंके मन्दिर-निर्माता स्थपति एक ही थे। इन दोनों धर्मोंके मन्दिरोंमें जो अन्तर है, वह सूक्ष्म दृष्टिसे ही पकड़में आ पाता है। हिन्दू मन्दिरोंमें प्रकाश-के लिए खिड़कियोंवाले पक्षावकाश बनाये गये, जबकि जैन मन्दिरोंमें छेदोंवाले झरोखे बनाये गये हैं। यहाँके नवीन जैन मन्दिरोंमें प्राचीन जैन मन्दिरोंकी सामग्रीका उपयोग हुआ है।

(१) शान्तिनाथ मन्दिर—पार्श्वनाथ मन्दिरके निकट ही दक्षिणमें शान्तिनाथ मन्दिर है। इसका निर्माण अनेक प्राचीन जैन मन्दिरोंकी सामग्रीसे किया गया है। किन्तु पुरातत्त्ववेत्ता कनिंघमकी मान्यता है कि इस मन्दिरमें शान्तिनाथकी जो मूर्ति विराजमान है, वह अपने मूल स्थानपर ही है। फलतः यह मन्दिर ११वीं शताब्दीमें निर्मित होना चाहिए। इससे लगता है कि

शान्तिनाथ मन्दिर प्राचीन है। यह जीर्ण-शीर्ण हो गया था। १९वीं शताब्दीमें प्राचीन जैन मन्दिरोंकी सामग्रीका उपयोग करके इसका जीर्णोद्धार किया गया। किन्तु चूना-सफेदीके कारण मन्दिरकी प्राचीनता दब गयी और यह आम धारणा बन गयी कि मन्दिर १९वीं शताब्दीमें निर्मित हुआ है। इसमें तीन गर्भगृह तो अभी तक अपने मूल रूपमें सुरक्षित हैं।

इस मन्दिरमें मूलनायक सोलहवें तीर्थंकर भगवान् शान्तिनाथकी १६ इंच ऊँची भव्य प्रतिमा विराजमान है। यह प्रतिमा कायोत्सर्गासनमें बादामी वर्णकी है। इसकी चरण-चौकीपर एक पंक्तिका लेख है, जिसके अनुसार इस मूर्तिकी प्रतिष्ठा विक्रम संवत् १०८५ में आचक्षके पुत्र श्रिय ठाकुर और देवधरके पुत्र श्री शिवि एवं श्री चन्दयदेवने करायी थी। चरण-चौकीके मध्यमें हरिण लांछन है। प्रतिमाके सिरके ऊपर छत्रत्रय विभूषित है। सिरके दोनों पार्श्वोंमें हाथीपर कलश लिये हुए इन्द्र स्थित हैं। इनके अतिरिक्त दोनों ओर पाँच-पाँच पद्मासन और एक-एक खड्गासन प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। चमरेन्द्र हाथमें चमर लिये हुए भगवान्‌की सेवामें रत हैं। चरणोंके दोनों पार्श्वोंमें भक्त श्रावक-श्राविका जो सम्भवतः प्रतिष्ठाकारक दम्पती हैं, हाथ जोड़े बैठे हैं। किन्तु उनके सिर खण्डित हैं। मूर्तिका अभिषेक करनेके लिए लोहेकी सीढ़ियाँ दोनों ओर रखी हुई हैं।

मूलनायकके दोनों पार्श्वोंमें पद्मासन और खड्गासन मुद्रामें अनेक छोटी मूर्तियाँ हैं। गर्भगृहमें बायीं और दायीं ओरकी दीवारमें ६-६ पैनल बने हुए हैं, जिनमें तीर्थंकर-मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। मूलनायकके परिकरमें दो मूर्तियाँ हमारा ध्यान बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं। एक तो है पार्श्वनाथकी छोटी पद्मासन प्रतिमा। इसमें आसनसे लेकर फणावलि तक सर्पका गुंजलक बड़ा मनोरम है। दूसरी मूर्ति है आदिनाथकी। इसमें भगवान्‌के भव्य रूपको जटाओंने अत्यधिक निखार दिया है। इसके पीठासनपर नवग्रहोंका अंकन मिलता है।

मन्दिर नं. २—एक शिलाफलकमें ४ फुट २ इंच उन्नत महावीरकी पद्मासन प्रतिमा है। परिकरमें पुष्पवर्षी गन्धर्व, हाथीपर कलश लिये हुए इन्द्र, चमरवाहक, यक्ष और यक्षी हैं। पीठिकापर सिंह लांछन है। अधोभागमें सिद्धायिका (महावीर भगवान्‌की यक्षी) अंकित है।

मन्दिर नं. ३—खड्गासन दो तीर्थंकर-मूर्तियाँ ३ फुट ७ इंच आकारकी हैं। शीर्षपर ३ खड्गासन और इधर-उधर ६-६ तीर्थंकर-मूर्तियाँ हैं। दोनों मूर्तियोंके परिकरमें छत्र, गन्धर्व, गजारूढ़ इन्द्र कलश लिये हुए, चमरेन्द्र, दो-दो श्रावक-श्राविकाएँ हैं। एक मूर्तिमें एक श्रावक नहीं है तथा एक श्रावकका सिर खण्डित है। इस गर्भगृहमें और भी कई मूर्तियाँ हैं। इसका शिखर अत्यन्त कलापूर्ण है।

मन्दिर नं. ४—कृष्ण पाषाणकी ३ फुट ६ इंच ऊँची पार्श्वनाथकी पद्मासन प्रतिमा है। बायीं ओर एक खण्डित स्तम्भमें १७ मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। सम्भवतः इसमें २४ तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ रही होंगी। दायीं ओर १ फुट ५ इंच ऊँचे पाषाण-फलकमें मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

मन्दिर नं. ५—पाँच फुटके शिलाफलकमें पार्श्वनाथकी खड्गासन प्रतिमा उत्कीर्ण है। फण खण्डित है। दोनों कोनोंमें ऊपरकी ओर ३-३ गन्धर्व पुष्पमाला लिये हुए और हाथीपर कलश लिये हुए इन्द्र हैं। दोनों ओर २-२ खड्गासन मूर्तियाँ और चमरेन्द्र हैं तथा चरणोंके पास दोनों ओर हाथ जोड़े हुई श्राविकाएँ प्रतिमाके परिकरमें हैं।

१. संवत् १०८५ श्रीमदाचार्य पुत्र श्री ठाकुर श्री देवधर सुत श्री शिवि श्री चन्द्रयदेवः श्रीशान्तिनाथस्य प्रतिमाकारि।

बायीं ओर एक स्तम्भमें पार्श्वनाथकी खड्गासन प्रतिमा है। स्तम्भका आकार ३ फुट ७ इंच है। मूर्तिकी फणावलीके ऊपर छत्र, उनके दोनों ओर पुष्पमाल लिये आकाश-विहारी गन्धर्व, दायीं ओर ऊपर-नीचे दो सिंह-व्याल हैं। एक खड्गासन मूर्ति है। उसके दोनों पार्श्वोंमें यक्ष-यक्षी हैं। यक्ष खण्डित है। पादपीठपर वीणाधारिणी सरस्वती है।

दायीं ओर ३ फुट १० इंच ऊँचे स्तम्भमें खड्गासन पार्श्वनाथ प्रतिमा है। चमरवाहक हैं और भक्त श्रावक-श्राविका हाथ जोडे हुए बैठे हैं। नीचे सिंह बना हुआ है।

मन्दिर नं. ६—इसके प्रवेश-द्वारके सिरदलपर, एक मध्यमें तथा एक-एक दोनों कोनोंमें पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। ऊपर तोरणमें देवियोंका समाज जुड़ा हुआ है। वह नृत्य-वाद्यमें लीन है। देवियाँ विविध अलंकार धारण किये हुई हैं। उनका केश-विन्यास आकर्षक है।

वेदीपर भगवान् नेमिनाथकी एक श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा है। यह संवत् १९२० में प्रतिष्ठित हुई थी। इसके लेखमें अतिशय क्षेत्र खजराहा लिखा है। इसके समवसरणमें ३३ पाषाणकी और २३ धातुकी मूर्तियाँ विराजमान हैं। इनमें २४ पाषाण-प्रतिमाएँ प्राचीन हैं।

गन्धकुटी नं. ७—भगवान् नेमिनाथकी कृष्ण वर्णकी संवत् १९४३ में प्रतिष्ठित पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसका आकार १ फुट ६ इंच है।

मन्दिर नं. ८—कृष्ण पाषाणकी २ फुट ८ इंच उन्नत चन्द्रप्रभ भगवान्‌की पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी पीठिकापर निम्नलिखित लेख उत्कीर्ण है—

'संवत १२१५ माघ सुदी ५ रवौ देशी गणे पण्डित श्री राजनन्दि तत् शिष्य पण्डित श्री भानुकीर्ति अजिका मेरुश्री प्रतिनंदन श्रीमतं नित्यं प्रणमति।'

इस मूर्तिकी पालिश कहीं-कहीं उखड़ गयी है।

इस प्रतिमाके बायीं ओर एक ३ फुट २ इंच ऊँची खड्गासन प्रतिमा है। यह काफी घिस गयी है। दायीं ओर २ फुट ३ इंच ऊँचे और १ फुट ९ इंच चौड़े शिलाफलकमें तीन खड्गासन तीर्थंकर-मूर्तियाँ हैं। तीनोंके चमरवाहक और चमरवाहिका अलग-अलग हैं।

मन्दिर नं ९—किसी प्राचीन प्रतिमाके पीठासनपर संवत् १९१९ में प्रतिष्ठित और १ फुट ८ इंच उन्नत शान्तिनाथ बिम्ब है। बायीं ओर १ फुट ६ इंच ऊँचे एक पाषाण-फलकमें एक पद्मासन और उसके दोनों पार्श्वोंमें खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। इस फलकका शीर्ष भाग शिखराकार है। दायीं ओर ११ इंच ऊँचे शिलाफलकपर एक पद्मासन तीर्थंकर-मूर्ति है। उसके दोनों बाजुओंमें चमरेन्द्र हैं।

मन्दिर नं. १०—इसका प्रवेशद्वार अत्यन्त कलापूर्ण है। सिरदलपर तीन पद्मासन जिन प्रतिमाएँ हैं—१ मध्यमें और १-१ कोनोंपर। मध्यमूर्तिके नीचे कीर्तिमुख है। चौखटोंपर मिथुन-मूर्तियाँ है। अन्य भी अनेक देवी-मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

गर्भगृहमे भगवान् चन्द्रप्रभकी श्वेत पाषाणकी पद्मासन मूर्ति है। बायीं ओर २ फुट २ इंच ऊँचे शिलाफलकमे एक पद्मासन प्रतिमा है। सिरके ऊपर छत्र, उनके दोनों ओर गज और नभचारी देव हैं। चमरेन्द्र भगवान्‌की सेवामे रत है। पीठासनपर नेमिनाथकी यक्षी अम्बिका और यक्ष गोमेद बने हुए हैं। गोदमे एक बालक है। इससे लगता है कि यह मूर्ति नेमिनाथ तीर्थंकरकी है। दायी ओर ऋषभदेवकी २ फुट २ इंच उन्नत पद्मासन प्रतिमा है। सिरपर जटाजूट है तथा पीठासनपर वृषभ चिह्न अंकित है।

मन्दिर नं. ११—बायीं ओर ३ फुट ११ इंच ऊँचे शिलाफलकमें दो खड्गासन मूर्तियाँ उकेरी हुई हैं। इसमें ऊपरका कुछ भाग खण्डित है। परिकरमें दो छत्र, दो गज, विमानमें माला लिये हुए दो देव, दो पद्मासन मूर्तियाँ और अनेक भक्त स्त्री-पुरुष हाथ जोड़े हुए बैठे हैं।

४ फुट ४ इंच उन्नत एक शिलाफलकमें भगवान् पार्श्वनाथके यक्ष-यक्षी धरणेन्द्र और पद्मावतीकी सुन्दर मूर्ति है। दोनों ही अलंकारोंसे विभूषित हैं और ललितासनमें आसीन हैं। देवीके दायें हाथमें बिजौरा फल है और बायें हाथमें एक बालक है। यक्षके दक्षिण हस्तमें फल है और वाम हस्त भग्न है। दोनोंके बायें-दायें चमरवाहक हैं। नीचे भक्त हाथ जोड़े हुए खड़े हैं। शीर्षपर सिंहासनपर भगवान् पार्श्वनाथ आसीन हैं। शीर्षके कोनोंमें पुष्पमाल लिये हुए देव-देवी हैं। यह मूर्ति अत्यन्त आकर्षक है। भावांकन इसमें उच्च कोटिका है। यद्यपि देवियोंमें अम्बिका वात्सल्यकी गरिमासे मण्डित देवी मानी जाती है किन्तु यहाँ कलाकारने यह प्रतिष्ठा पद्मावतीको दी है जो वस्तुतः भक्तोंके ऊपर सदा अपनी करुणा बरसाती रहती है और इसलिए यह भक्त-वत्सला मानी जाती है।

गर्भगृहमें वेदीपर खड्गासन प्रतिमा २ फुट १० इंच अवगाहनाकी है। फलकपर दोनों ओर स्तम्भ बने हुए है। दोनों कोनोंपर गज हैं। चमरवाहक चमर लिये हुए खड़े हैं।

वेदीकी जगतीपर सामने पद्मावती देवी उत्कीर्ण है। ऊपर शीर्षपर फण है। देवी एक हाथमे श्रीफल और दूसरे हाथमें कमण्डलु लिये हुई हैं। इस मन्दिरके आगे चार खम्भोंपर आधारित मण्डप है। द्वार और मण्डप अलंकृत हैं। द्वारपर मिथुन-मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

मन्दिर नं. १२—एक छोटे गर्भगृहमें भगवान् शान्तिनाथकी २ फुट ७ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। सिरपर छत्र, सिरके पीछे भामण्डल, छत्रके उभय पार्श्वोंमें आकाशगामी गन्धर्व माला लिये हुए हैं। भगवान्के दोनों ओर चमरेन्द्र खड़े हैं।

मन्दिर नं. १३—भगवान् चन्द्रप्रभकी २ फुट ८ इंच उन्नत पद्मासन प्रतिमा है जो संवत् १९६७ में प्रतिष्ठित हुई। वेदीपर बायी ओर १ फुट २ इंच ऊँचे और १ फुट १ इंच चौड़े शिला-फलकपर पद्मासनासीन तीर्थंकर-प्रतिमा है। इसके दोनों पार्श्वोंमें इन्द्र-इन्द्राणी हैं। बायी ओर २ फुट ३ इंच शिलाफलकपर खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमा है। परिकरमें छत्र, गन्धर्व, गज, सिंह और चमरवाहक है।

इसके दालानमें किसी मूर्तिका पादपीठ रखा हुआ है।

मन्दिर नं. १४—भगवान् पार्श्वनाथ श्वेतवर्ण, पद्मासन मुद्रामें विराजमान हैं। अवगाहना १ फुट ८ इंच है तथा इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९२७ में हुई है।

इस वेदीके उभय पार्श्वोंमें एक-एक वेदी है। इनपर श्वेतवर्ण पार्श्वनाथकी पद्मासन प्रतिमा है।

मन्दिर नं. १५—मन्दिर नं. १३-१४-१५ परस्पर मिले हुए हैं। इनमें एकसे दूसरे मन्दिरमें जानेके लिए दरवाजे बने हुए हैं। १४-१५ को विभक्त करनेवाले केवल खम्भे हैं। इन दोनों मन्दिरोंमें लगभग ३० प्राचीन खण्डित-अखण्डित मूर्तियाँ, स्तम्भ, चरण-चौकी आदि रखे हुए हैं।

इस मन्दिरमें तीन दरकी वेदीमें भगवान् पार्श्वनाथकी ३ फुट १ इंच ऊँची कृष्णवर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसका प्रतिष्ठा-काल संवत् १९२७ है। इसके दोनों ओर कृष्ण पाषाणकी २ पद्मासन प्रतिमाएँ हैं।

ये सभी मन्दिर शान्तिनाथ मन्दिरके अन्दर ही हैं। एक प्रकारसे इन्हें अलग-अलग गर्भगृह कहा जा सकता है। मन्दिरका नाम शान्तिनाथ मन्दिर है। इसके सभी मन्दिरों अथवा गर्भगृहोंके

ऊपर ११ समुन्नत शिखर हैं। इनमें-से कितने मन्दिर नवीन निर्मित हुए हैं और कितने अपने मूल रूपको सुरक्षित रखे हुए हैं, यह कहना कठिन है। मन्दिरके द्वारपर विशाल सिंह बैठे हुए हैं। द्वारके ऊपर तिदरीपर दो हाथी बैठे हैं। इस मन्दिरकी उत्तरवाली भित्तिपर गोमुख यक्ष, चक्रेश्वरी यक्षी चतुर्भुजी, धरणेन्द्र-पद्मावती तथा कुछ अन्य यक्षियाँ बनी हुई हैं।

मन्दिर नं. १६—प्रवेश-द्वारके सिरदलपर पार्श्वनाथकी मूर्ति बनी हुई है। इसके सिरपर फण है। सिरदलके दोनों कोनोंपर कोष्ठकोंमें खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। मध्यवर्ती भागमें दो हाथियों-पर इन्द्र बैठे हुए हैं। हाथोंमे कलश हैं। उनके पीछे माला लिये हुई देवियाँ प्रमोदसे पूरित हो चल रही हैं, मानो इन्द्र और देवियाँ भगवान्के अभिषेकके लिए जा रही हों।

मन्दिरमें मूलनायक भगवान् महावीरकी २ फुट ६ इंच पद्मासन प्रतिमा है। सिरके ऊपर छत्र हैं। उनके बगलमें पुष्पवर्षी गन्धर्व हैं। कोनोंमें दो खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। नीचे चमर-वाहक हैं। इनके बगलमें दो खड्गासन मूर्तियाँ हैं। एक ओर मातंग यक्ष है और दूसरी ओर सिद्धायिका यक्षी है। पादपीठपर सिंह लांछन अंकित है।

मन्दिर नं. १७—भगवान् ऋषभदेवकी पद्मासनासीन प्रतिमा ३ फुट ४ इंच ऊँचे एक प्रस्तर-खण्डपर उत्कीर्ण है। शीर्ष कोनोंपर पद्मासन मूर्तियाँ हैं। नीचे चमरेन्द्र बने हुए हैं। उनकी पार्श्व-पट्टिकापर दो-दो खड्गासन मूर्तियाँ हैं। उनसे नीचे बायीं ओर गोमुख यक्ष तथा दायीं ओर चक्रेश्वरी यक्षी है। ऋषभदेव प्रतिमाके सिरपर उनकी दीर्घ तपस्याको सूचित करनेवाली जटाएँ हैं। उनके स्कन्धपर भी केश राशि शोभित है।

दीवारपर तीन कोष्ठक बने हुए हैं। मध्य कोष्ठकके शीर्ष भागपर पद्मासन अर्हन्त-प्रतिमा है। मध्यमे अष्ट मातृकाएं हैं। दोनों कोनोंके कोष्ठकोंमें विभिन्न देवियाँ हैं। नीचे इधर-उधर यक्ष-यक्षी अंकित हैं। वेदीके अधिष्ठानपर सामने चक्रेश्वरी देवीका भव्य अंकन है।

मन्दिर नं. १८—तीन दरकी वेदीपर मध्यमें एक शिलाफलकपर भगवान् पद्मप्रभकी पद्मासन प्रतिमा है। दोनों ओर स्तम्भ बने हुए हैं। सिरके ऊपर छत्रत्रय हैं। आकाशचारी देव दोनों ओरसे छत्रोंको सहारा दिये हुए हैं। उनके नीचे ऐरावतके प्रतीक गज उत्कीर्ण हैं। उनसे नीचे चमरवाहक हैं। सिंहासनके सिंहोंके दोनों पार्श्वोंमें दो-दो पद्मासन मूर्तियाँ हैं।

वेदीके दो दर खाली है। बायीं ओरके स्तम्भपर दो पद्मासन और तीन खड्गासन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इसी प्रकार दायी ओरके स्तम्भपर पार्श्वनाथकी एक खड्गासन मूर्ति है। मूर्ति और फण खण्डित हैं।

प्रवेश-द्वारके ऊपर ललाट-बिम्बपर पद्मासन जिन-मूर्ति है। उसकी ओर पीठ किये भक्त बैठे हैं। कोई हाथ जोड़े हुए हैं और किसीके हाथमें पूजाकी सामग्री है। दोनों चौखटोंपर देव-देवियोंका अंकन है।

मन्दिर नं १९—इस मन्दिरके आगे चार स्तम्भोंपर एक मण्डप बना हुआ है। मन्दिरका प्रवेश-द्वार अलंकृत है। वेदीपर एक शिलाफलकमें भगवान् विमलनाथकी भव्य प्रतिमा उत्कीर्ण है। उसका लांछन सूअर चरण-चौकीपर अंकित है। प्रतिमाके दोनों ओर स्तम्भ बने हुए हैं जिनपर मध्यमें पद्मासन और दोनों ओर खड्गासन मूर्तियाँ बनी हैं। भगवान्के सिरपर छत्र हैं। छत्रदण्डको देव थामे हुए हैं। उनके नीचे गज और उनसे नीचे चमरवाहक हैं। पादपीठपर सामने सिंहोंके बगलमें दोनों ओर दो-दो पद्मासन मूर्तियाँ हैं।

मन्दिर नं. २०—वेदी तीन दरकी है। मध्यमें एक शिलाफलकमें भगवान् मुनिसुव्रतनाथकी २ फुट ११ इंच उन्नत प्रतिमा कायोत्सर्गासनमें स्थित है। भगवान्के सिरके पीछे भामण्डल है।

सिरके ऊपर छत्र है, जिसके दण्डको देव पकड़े हुए हैं। भक्त हैं। बायीं ओर पद्मासन जिन-मूर्ति है। दायीं ओर शार्दूलमुख व्याल बना हुआ है। उसके नीचे एक मनुष्य और भैंसा है। व्याल मूर्तियाँ प्रतीकात्मक होती हैं। यह मूर्ति इस बातका प्रतीक है कि मनुष्यका आसुरी और तामसिक प्रवृत्तियोंपर साहसके द्वारा विजय प्राप्त की जा सकती है। अधोभागमें छह पंक्तियोंमें दो-दो भक्त हाथ जोड़े बैठे हैं। बायी ओर एक भक्त श्राविका है। दायीं ओरका भाग खण्डित है।

वेदीके दो दर खाली हैं।

प्रवेश-द्वारके सिरदलपर पद्मासन जिन-मूर्ति विराजमान है। दोनों ओर भक्त हाथ जोड़े हुए बैठे हैं। दोनों कोनोंपर यक्ष-यक्षी हैं। चौखटोंपर युगल मूर्तियाँ प्रेम-क्रीड़ाओंमें मग्न हैं। अधोभागमें यक्ष-यक्षी हैं। यक्षी अंशतः खण्डित है किन्तु यक्ष तो नष्ट कर दिया गया है। द्वारके आगे मण्डप है।

मन्दिर नं. २१—शिलाफलकमें भगवान् सुमतिनाथकी खड्गासन प्रतिमा उत्कीर्ण है। भामण्डल, छत्र, हाथी छत्रोंको सूँड़ द्वारा आधार दिये हुए हैं। नीचे पद्मासन और खड्गासन मूर्तियाँ है। उनसे नीचे चमरवाहक, एक पार्श्वमें श्रावक और दूसरे पार्श्वमें श्राविका हैं।

प्रवेश-द्वारपर मध्यमें और कोनोंपर यक्षियाँ उत्कीर्ण हैं। चौखट एकल और युगल मूर्तियोंसे अलंकृत है। चौखटके अधोभागमें बायीं ओर तीन नाग-पुरुष और स्त्रियाँ हैं तथा दायीं ओर २ नाग-पुरुष और ४ नाग-कन्याएँ हैं।

द्वारके आगे अर्धमण्डप है। इसमें भी विविध अलंकरण हैं।

मन्दिर नं. २२—३ फुट ५ इंच उन्नत एक शिलाफलकमें भगवान् आदिनाथकी पद्मासन प्रतिमा उकेरी हुई है। प्रतिमाके सिरपर जटाएँ हैं। सिरके पीछे भामण्डल और ऊपर छत्र हैं। छत्रोंके ऊपर पद्मासन और उसके पार्श्वके कोनोंमें खड्गासन जिन-मूर्तियाँ हैं। कई मूर्तियोंके सिर खण्डित हैं। छत्रोंके दोनों पार्श्वोंमें मालाधारी गन्धर्व, गज, उनके नीचे दो-दो खड्गासन मूर्तियाँ और चमरवाहक हैं। उनके बगलकी पट्टीपर दो-दो शार्दूल व्याल, नीचे हाथी, उनसे नीचे चार कोष्ठकोंमें दो-दो खड्गासन मूर्तियाँ हैं। इनमें-से एक खण्डित है। सबसे नीचे यक्ष और यक्षीका अंकन है।

प्रवेश-द्वारपर ऊपर पाँच कोष्ठकोंमें और दोनों ओर चौखटोंपर तीन-तीन कोष्ठकोंमे यक्षी-मूर्तियाँ बनी हुई हैं। अनेक देवियाँ नृत्य-मुद्रामें दर्शित हैं। चौखटोंके अधोभागमें दोनों ओर पद्मावती देवीकी खड़ी मूर्तियाँ हैं जिनके सिरपर सर्प-फण है। बगलमें मंगल-कलश लिये हुई देवी और परिचारिका हैं। इसके आगे अलंकृत मण्डप है।

मन्दिर नं. २३—२ फुट ९ इंच ऊँचे एक शिलाफलकमें आदिनाथकी कृष्ण वर्णकी पद्मासन प्रतिमा उत्कीर्ण है। कहीं-कहींसे पालिश उखड़ गयी है। इसके पीठासनपर संवत् १२१५ का महत्त्वपूर्ण मूर्ति-लेख है। गर्भगृहकी छत पद्मशिलासे अलंकृत है। इसके प्रवेश-द्वारके उत्तरंगपर पाँच बड़े एवं चार मध्यवर्ती कोष्ठकोंमें तथा दोनों ओरकी बाहरी चौखटोंपर ४-४ कोष्ठकोंमें यक्षी-मूर्तियाँ हैं तथा उनके इधर-उधर नृत्यमुद्रामें हाथ जोड़े हुई देवियाँ हैं। नीचे दोनों ओर भी यक्षी-मूर्तियाँ हैं। कई मूर्तियोंके सिर कटे हुए हैं। उनसे नीचे दोनों ओर मंगल-कलश लिये हुए चार व्यक्ति हैं तथा दो-दो कोष्ठकोंमें यक्षी हैं। आगे मण्डप है।

मन्दिरके बाह्य भागमें जंघापर रूप-पट्टिका है। उसमें भिन्न-भिन्न रथिकाओंमें कई तीर्थंकरोंकी यक्षी-मूर्तियाँ और विद्या-देवताओंकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। शिखरके शेष भागमें वास्तु

एवं शिल्पका सूक्ष्मांकन है। शिखरका शीर्ष भाग खजुराहोकी तत्कालीन कलाका सुन्दर निदर्शन है।

मन्दिर नं. २४—तीन दरकी वेदीमें २ फुट ७ इंच × १ फुट ७ इंच चौड़े शिलाफलकमें खड्गासन तीर्थंकर-प्रतिमा है। सिरके ऊपर छत्र हैं। उसके बायें पार्श्वमें पुष्पवर्षा करती हुई देवियाँ हैं और दायीं ओरका भाग खण्डित है। दायीं ओरका गज है और बायीं ओरका गज खण्डित है। उसके नीचे दोनों पार्श्वोंमें चार-चार खड्गासन तथा बगलमें तीन-तीन खड्गासन और चार-चार पद्मासन जिन-प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। भगवान्‌के दोनों बाजुओंमें चमरवाहक खड़े हुए हैं। उनके बराबरमें दो भक्त श्राविका हाथ जोड़े हुई हैं। अधोभागमें यक्ष-यक्षी (भगवान् श्रेयान्सनाथके सेवक कुमार और गौरी) अंकित हैं।

वेदीके दो दर खाली हैं। मन्दिरके आगे अर्धमण्डप बना हुआ है। तोरण और चौखटोंपर मिथुन-मूर्तियों और यक्षी-मूर्तियोंका भव्य अंकन है। चौखटोंके अधोभागमे सर्पफणमण्डित पद्मावती देवी तथा अन्य देवियाँ हैं।

मन्दिर नं २५—खजुराहोके वर्तमान जैन मन्दिरोंमें पार्श्वनाथ मन्दिर सबसे विशाल और सबसे सुन्दर है। वह ६८ फुट २ इंच लम्बा और ३४ फुट ११ इंच चौड़ा है। यह मन्दिर पूर्वाभिमुख है। खजुराहोके समस्त हिन्दू और जैन मन्दिरोंमें भी कला-सौष्ठव और शिल्पकी दृष्टिसे यह अन्यतम माना जाता है। खजुराहोका कन्दारिया मन्दिर अपनी विशालता एवं लक्ष्मण मन्दिर उत्कीर्ण-मूर्ति-सम्पदाकी दृष्टिसे विख्यात हैं। किन्तु पार्श्वनाथ मन्दिरके कलागत वैशिष्ट्य एवं अद्भुत शिखर-संयोजनाकी समानता वे मन्दिर नहीं कर सकते। प्रसिद्ध विद्वान् फर्गुसनने इस मन्दिरके सम्बन्धमें जो उद्गार प्रकट किये हैं, उनसे वास्तविक स्थितिपर प्रकाश पड़ता है।

'वास्तवमें समूचे मन्दिरका निर्माण इस दक्षताके साथ हुआ है कि सम्भवतः हिन्दू स्थापत्य-में इसके जोड़की कोई रचना नहीं है जो इसकी जगतीकी तीन पंक्तियोंकी मूर्तियोंके सौन्दर्य, उत्कृष्ट कोटिकी कला-संयोजना और शिखरके सूक्ष्मांकनमें इसकी समानता कर सके।'[1]

कन्दारिया महादेव मन्दिरके साथ पार्श्वनाथ मन्दिरकी तुलना करते हुए फर्गुसन आगे लिखते हैं--

'कन्दारिया महादेव मन्दिरके साथ पार्श्वनाथ मन्दिरकी तुलना करें तो हम यह स्वीकार किये बिना नहीं रह सकते कि पार्श्वनाथ मन्दिर कहीं अत्यधिक श्रेष्ठ है।'[2]

इसी प्रकार पार्श्वनाथ मन्दिरके साथ लक्ष्मण मन्दिरकी तुलना करते हुए खजुराहोके कला-विशेषज्ञ श्री रामाश्रय अवस्थीने लिखा है[3]—

१. In fact, the entire temple is so exquisitely wrought that there is nothing probably in Hindu Architecture that surpasses the richness of its three-storeyed base combined with the extreme elegance outline and delicate detail of the upperpart.

Fergusson in the Khajuraho, by Kanwarlal, p. 66.

२. If we compare the Parshwanath with Kandariya Mahadeo, we can not but admit that the former is by far the most elegant.

Ibid, p. 66.

३. खजुराहोकी देव-प्रतिमाएँ, प्रथम खण्ड, पृ. १५।

'लक्ष्मणकी अपेक्षा पार्श्वनाथकी वास्तुकला अधिक विकसित है। लक्ष्मण मन्दिरके विपरीत, जिसके शिखरमें उर:श्रृंगोंकी मात्र एक पंक्ति और कर्णश्रृंगोंकी दो पंक्तियाँ हैं। इस मन्दिरमें उर:श्रृंगोंकी दो और कर्णश्रृंगोंकी तीन पंक्तियाँ देखनेको मिलती हैं। इसके अतिरिक्त लक्ष्मण मन्दिरकी जंघामें दो मूर्ति-पंक्तियाँ हैं किन्तु इसमें तीन पंक्तियाँ हैं और सबसे ऊपरी पंक्तिमें विद्याधरों और उनके युग्मोंके चित्रण हैं। ऊर्ध्व पंक्तिमें विद्याधरोंका चित्रण परवर्ती खजुराहो मन्दिरोंकी एक विशिष्टता है जिसका श्रीगणेश इसी मन्दिरसे हुआ है।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि पार्श्वनाथ मन्दिर खजुराहोके मन्दिर-समूहमें सर्वश्रेष्ठ और अद्वितीय है।

पार्श्वनाथ मन्दिरका निर्माण-काल प्राय: सभी विद्वान् १०वीं शताब्दी मानते हैं। द्वारके बायें खम्भेपर १२ पंक्तियोंका एक लेख है, जिसमें प्रतिष्ठा-काल संवत् १०११ दिया गया है। लिपि-के आधारपर यह लेख किसी प्राचीनतर लेखकी उत्तरकालीन प्रतिलिपि माना जाता है। यह प्रतिलिपि लुप्त मूल अभिलेखके एक शती बाद लिखी गयी ऐसा माना जाता है। लक्ष्मण मन्दिरके अभिलेखका संवत् भी १०११ ही है, किन्तु लक्ष्मण और पार्श्वनाथके एक ही संवत्के अभिलेखोंकी लिपिमें अवश्य अन्तर है। अभिलेख चन्देल नरेश धंगके शासन-कालमें लिखे गये थे। द्वार-अभिलेख-के अतिरिक्त कुछ पूर्ववर्ती तीर्थयात्री-लेख भी इस मन्दिरमें कई स्थानोंमें अंकित हैं। लिपिके आधारपर उन्हें दसवीं शताब्दीके मध्यका माना जा सकता है। द्वार-अभिलेख १२ पंक्तियोंका है। वह अभिलेख इस प्रकार है—

"ओं संवत् १०११ समये। निजकुल धवलोयं दि
व्यमूर्ति: स्वशीलसमदमगुणयुक्त सर्व्वं-
सत्वानुकंपी स्वजनजनिततोषो धांगराजेन
मान्य: प्रणमति जिननाथोयं भव्य पाहिल
नामा ॥१॥ पाहिल वाटिका १ चन्द्रवाटिका २
लघुचन्द्रवाटिका ३ संकरवाटिका ४ पंचाई
तलवाटिका ५ आम्रवाटिका ६ धंगवाड़ी
पाहिलवंसे तु क्षये क्षीणे अपरवंसोय: कोपि
तिष्ठति तस्य दासस्य दासोयं मम दत्ति तु पाल
येत् महाराजगुरु स्रीबासवचन्द्र वेसाख
सुदि ७ सोमदिने ॥

अर्थात्, संवत् १०११। भव्य पाहिल जिननाथको नमस्कार करता है, जो अपने कुलमें श्रेष्ठ है, दिव्य मूर्ति है, शीलवान् है, समता और इन्द्रियदमनके गुणोंसे युक्त है, सब जीवोंपर दया करने-वाला है, अपने परिवारके सभी स्वजनोंको सन्तुष्ट कर दिया है और धंग नरेश द्वारा मान्य है। (इस मन्दिरके लिए) पाहिलवाटिका, चन्द्रवाटिका, लघुचन्द्रवाटिका, संकरवाटिका, पंचाईतल-वाटिका, आम्रवाटिका और धंगवाड़ी (इन सात वाटिकाओंका दान करता हूँ।) पाहिलवंश के क्षीण होनेपर जो भी अन्य वंश (इस मन्दिरकी व्यवस्था करेगा) मैं उसका दासानुदास हूँ। वह मेरे दिये हुए दानकी रक्षा करे। महाराजगुरु श्री वासवचन्द्र (के आशीर्वादसे) वैशाख सुदी ७ सोमवार।

इस अभिलेखसे कई आवश्यक बातोंकी जानकारी मिलती है। वह यह कि इस मन्दिरका निर्माण पाहिल श्रेष्ठीने चन्देल नरेश धंगके शासन-कालमें कराया था। वह राजमान्य व्यक्ति था।

मन्दिरकी प्रतिष्ठा संवत् १०११ (ई. सन् ९५४) में वैशाख सुदी ७ सोमवारको हुई। पाहिल श्रेष्ठीने अभिलेखमें अत्यन्त विनम्रता और निरभिमान वृत्तिका परिचय यह कहकर दिया है कि जो व्यक्ति या वंश भविष्यमें मन्दिर और वाटिकाओंकी व्यवस्था करेंगे, मै उनका दासानुदास हूँ।

इस द्वारकी बायीं चौखटपर एक छोटा-सा अभिलेख है—"श्री हाटपुत्र श्रीमाहुल श्री आचार्य श्री देवचन्द्र शिष्य: कुमुदचन्द्र। हाटपुत्र श्री गोलल।"

इसी प्रकार दायीं चौखटपर अभिलेख है—"हाटपुत्र श्री देवसम्मेसिरि जयतु।"

इस अभिलेखके ऊपर बायीं ओर एक चौंतीसा यन्त्र बना हुआ है। इसमे १६ अंक बने हुए हैं। इसे चाहे जिधरसे भी जोड़ा जाये, अंकोंका योग ३४ ही आता है। ऐसी जनश्रुति इसके सम्बन्धमें प्रचलित है कि यदि किसी स्त्रीको प्रसव-वेदना हो तो इस यन्त्रको केशरसे काँसेकी थालीमें लिखकर शुद्ध जलसे उसे घोलकर पिला देनेसे प्रसव बिना कष्टके हो जाता है। बालकोंके उदर-शूलमें भी यह लाभकारी है।

वह यन्त्र इस प्रकार है—

७	१२	१	१४
२	१३	८	११
१६	३	१०	५
९	६	१५	४

द्वारके बायी ओर मकरवाहिनी गंगा और दाहिनी ओर कूर्मवाहिनी यमुनाके साथ चतुर्भुज द्वारपाल स्थित हैं। गंगा-यमुनाके पार्श्वोंमें विभिन्न वाद्य-यन्त्र बजाते गन्धर्व और यक्ष-मिथुन अंकित किये गये हैं। ऊपर तोरणके ललाट-बिम्बपर दसभुजी चक्रेश्वरी गरुड़पर आसीन अंकित है। खजुराहोमें दसभुजीके रूपमें चक्रेश्वरीका अंकन केवलमात्र यही है। देवीकी दक्षिण भुजाओंमें सम्भवत: पद्म, चक्र, गदा, खड्ग और वरद मुद्रा प्रदर्शित है। तथा वाम भुजाओंमें चक्र, धनुष, खेटक, गदा और शंख हे। तोरणपर वाम पार्श्वमें चतुर्भुजी त्रिमुख ब्रह्माणीकी मूर्ति उत्कीर्ण है। देवी हंसपर आरूढ़ है। दक्षिण पार्श्वमे भी इसी प्रकारकी ब्रह्माणीकी मूर्तिका अंकन है। इसमें उसका वाहन हंस उसके निकट ही अंकित है। ये देवी-प्रतिमाएँ दोनों ओर नवग्रहोंसे आवेष्टित हैं।

इसके ऊपरी तोरणके मध्य ललाट-बिम्बपर आदिनाथकी तथा उनके दोनों पार्श्वोंमे एक-एक तीर्थंकर प्रतिमा बनी हुई है। इस तोरणके दोनों कोनोंमे ६-६ दिगम्बर मुनि तीर्थंकरोंकी वन्दना करते दिखाई पड़ते है।

इस द्वारके बाहर चबूतरेपर एक अर्धमण्डप बना हुआ है। यह चार स्तम्भोंपर आधारित है। इसकी छत उलटे कमलपुष्प अथवा कटोरीके आकारकी है। इस छतके केन्द्रसे एक डण्डीमें झूमती हुई शृंखलाएँ और पुष्पवल्लरियाँ अंकित हैं। इनके नीचे दो विद्याधर-मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

मण्डपके चेहरेके तोरणपर देवियाँ, यक्ष-मिथुन, नाग-नागी, मंगल-कलश लिये हुई देवियाँ, हाथी और सिंहके युद्ध आदिके दृश्य अंकित हैं।

मन्दिरके तीन आन्तरिक भाग हैं—महामण्डप, अन्तराल और गर्भगृह। इन तीनोंके चारों ओर एक साझा प्रदक्षिणा-पथ है। उसके चारों ओर दीवार है। प्रदक्षिणा-पथपर प्रकाशके लिए छेददार झरोखोंका प्रयोग किया गया है। इनसे प्रकाश और वायुका संचार होता है। इन झरोखोंसे न तो पूर्ण प्रकाश ही हो पाता है और न अन्धकार ही पूर्णतः नष्ट हो पाता है। इससे मण्डप और प्रदक्षिणा-पथमें एक अद्भुत रहस्यमय और पवित्र वातावरणकी सृष्टि हो जाती है।

महामण्डप भी चार स्तम्भोंपर आधारित है। इसकी छत पद्मशिलासे अलंकृत है। स्तम्भों और छतोंपर यक्ष-यक्षियों तथा देवियोंका अंकन है। महामण्डपमें सात प्राचीन मूर्तियाँ या तोरणके भाग रखे हुए हैं। एकमें गोमेद और अम्बिकाकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। कई मूर्तियोंके सिर काट लिये गये हैं। इस महामण्डपकी छतपर बना पद्मपुष्प कलाका सुन्दर उदाहरण कहा जा सकता है।

अर्ध-मण्डप, महामण्डप और अन्तराल, तीनोंके ऊपर शिखर बने हुए हैं। इससे इस मन्दिरकी शिखर-संयोजना अद्भुत, अनुपम और अधिक सुन्दर हो गयी है। कलाको इस अद्भुत विधाने सौन्दर्यको नये आयाम प्रदान किये हैं।

अन्तरालसे बढ़नेपर गर्भगृहका प्रवेश-द्वार मिलता है। द्वार अत्यन्त अलंकृत है। द्वारके दोनों स्तम्भों (चौखटों) पर गंगा, यमुना, यक्ष, मिथुन और द्वारपालका अंकन है। बायीं ओर एक चतुर्भुज देवीका अंकन है। उसके हाथोंमें सनाल कमल, अभय-मुद्रा और कमण्डलु प्रदर्शित है। कमलोंके ऊपर गज अंकित हैं। कमल और गजसे इसकी पहचान लक्ष्मीके रूपमें की जाती है। द्वारके दायीं ओर सरस्वतीकी चतुर्भुजी मूर्ति बनी हुई है। देवीके हाथोंमें सनाल कमल, पुस्तक और वीणा हैं। इसके उत्तरांगपर दो रूप-पट्टिकाएँ बनी हुई हैं। अधःपट्टिकाके ललाट-बिम्ब-पर भगवान् चन्द्रप्रभकी मनोज्ञ पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। पट्टिकाके दोनों कोनोंपर कायो-त्सर्गासनमें तीर्थंकर प्रतिमाएँ अंकित हैं। उनके दोनों ओर चामरधारिणी यक्षियाँ हैं। ऊपरी पट्टिकामें ५ पद्मासन, ६ कायोत्सर्गासन तीर्थंकर-मूर्तियाँ और नवग्रह बने हुए हैं।

गर्भगृह अत्यन्त सादा है। आकुल मनको यहाँ पहुँचते ही शान्तिका अनुभव होता है। गर्भगृहका आकार ७ फुट × ८ फुट है। वेदीके माथेपर वृषभ लांछन बना हुआ है। इससे लगता है कि यह मन्दिर मूलतः आदिनाथ मन्दिर था। किसी कारणवश आदिनाथ भगवान्‌की प्रतिमा खण्डित हो गयी। तब उसके स्थानपर पार्श्वनाथकी यह मूर्ति (संवत् १९१७ की) प्रतिष्ठित कर दी गयी। मूर्तिके सिरके पीछे भामण्डल, छत्र, छत्रके ऊपर दुन्दुभिवादक, उसके ऊपर कोष्ठकोंमें, उनके बगलमें, ऊपर तथा नीचे ३९ तीर्थंकर-मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। दोनों ओर पार्श्वनाथ-की खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। परिकरमें गज, मालाधारिणी देवियाँ और चमरेन्द्र हैं। गोमुख यक्ष और चक्रेश्वरी देवीका भव्य अंकन है। इससे भी इस बातका समर्थन होता है कि इस वेदीपर मूलनायक भगवान् आदिनाथकी प्रतिमा विराजमान थी। जब पार्श्वनाथकी मूर्ति मूलनायकके रूपमें यहाँ विराजमान कर दी गयी, तबसे यह मन्दिर पार्श्वनाथ मन्दिर कहा जाने लगा।

गर्भगृहसे निकलकर प्रदक्षिणा-पथपर जाते हुए प्रदक्षिणा-पथकी भित्तियोंपर शासन-देव-देवियों और गन्धर्वोंकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं। उनके मध्य ८ मनोज्ञ जिन-प्रतिमाएँ विराजमान हैं। बाहुबली स्वामीकी तपस्यारत एक सुन्दर प्रतिमा दर्शकका ध्यान बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। प्रतिमाकी टाँगोंसे लिपटे भयानक विषधरों और शरीरपर रेंगते हुए खतरनाक

वृश्चिकोंके बावजूद बाहुबली निर्भय और अडिग भावसे अपनी साधनामें लीन हैं, यह देखकर मस्तक अनायास उस महायोगीके चरणोंमें नमित हो जाता है।

गर्भगृहकी बाह्य भित्तियों, विशेषतः उत्तरी माथेपर सुरसुन्दरियोंकी विभिन्न मुद्राओंका अंकन मूर्तिकलाका उत्कृष्ट उदाहरण है। इन अंकित मूर्तियोंमें शिशुको दुलार करती हुई वात्सल्य-मयी जननी, पतिको पत्र लिखनेमें मग्न प्रोषितपतिका, अँगड़ाई लेती हुई अलसितवदना, आँखोंमें अंजन आँजती, माथेपर कुंकुम लगाती, सीमन्तमें सिन्दूर भरती और दर्पणमें अपना रूप निहारती रूपगर्विता शृंगारिका एवं अँगियाके बन्द बांधती कामिनीके मनोमुग्धकारी रूप सम्मिलित हैं।

सुरसुन्दरीके एक मोहन दृश्यका अंकन करनेमें तो कलाकारकी सूझबूझ और कला नैपुण्यमें मानो स्पर्धा हो गयी। दृश्य है—एक फूल-सी कोमल अल्हड़ यौवनाके पैरमें काँटा चुभ गया। युवती पैर पकड़कर रह गयी। उसकी आँखोंमें व्यथा तैर आयी। वह संगियोंको रुकनेका संकेत करती-सी लगती है। करुण भाव और व्यथाने मिलकर उसके सौन्दर्यमें अतिशय वृद्धि कर दी है। निकटवाले दूसरे फलकमें नाई द्वारा काँटा निकालनेका दृश्य है। इस दृश्यांकनमें कलाकारने अपनी कलाको अपने चरम बिन्दु तक पहुँचा दिया है। नाईकी पेटीके उपकरण और पैरमें गड़ा काँटा तक पाषाणमे उजागर हो उठे हैं।

इन कठोर पाषाणोंमें लोक-जीवनके सरस आह्लादकारी रूपोंके भावपूर्ण अंकनको देखकर यहाँके कलाकारके सौन्दर्य-बोध और अभिरुचिका पता चलता है। कहना होगा कि खजुराहोका वह कलाकार 'सत्यं' और 'शिवं' के साथ 'सुन्दरं' का भी उपासक था। तभी तो उसके ललित-कला-बोधने पाषाणोमे अलौकिक लालित्य और शिल्पकलामें जीवन भर दिया।

गर्भगृहकी बाह्य दक्षिणी भित्तिपर षड्भुजी सरस्वतीकी एक सुन्दर मूर्ति है। देवी एक ऊँचे पीठपर ललितासनमे आसीन है। उसका एक पैर कमलपर स्थित है। देवीके हाथोंमें कमल, पुस्तक, वीणा, वरद मुद्रा और कमण्डलु प्रदर्शित हैं। देवी वस्त्र और अलंकार धारण किये हुई है। उसके शीर्ष भागपर कायोत्सर्ग मुद्रामें दो तीर्थंकर मूर्तियाँ ध्यानमग्न हैं। देवीके परिकरमें चमरधारी, पुष्पमाल लिये आकाशचारी गन्धर्व और हाथ जोड़े हुए देवीके उपासक भक्त हैं। सरस्वतीकी ऐसी ही एक मूर्ति उत्तरी भित्तिके अधिष्ठानपर अंकित है। यह मूर्ति अंशतः खण्डित है।

इस मन्दिरकी बाह्य भित्तियाँ कला-सौष्ठवकी दृष्टिसे बेजोड़ हैं। इसकी जंघामें समानान्तर तीन रूप-पट्टिकाएँ हैं। प्रथम पट्टिकामें तीर्थंकर-मूर्तियोंकी प्रधानता है। किन्तु उनके सेवकके रूपमें कुबेर, दिक्पाल और विभिन्न वाहनोंपर आरूढ़ जैन शासन-देवताओंका अंकन है। मध्यवर्ती रथिकाओंमे लोक-जीवनके सरस दृश्य भी अंकित हैं, यथा पैरोंमे आलता लगाती हुई शृंगारिका, नेत्रोमें अंजन-शलाकासे अंजन लगाती हुई कामिनी, प्रियतमकी प्रेम-पाती पढ़नेमें तन्मय प्रोषित-पतिका, घुँघरू बाँधती हुई नृत्यांगना, बालकको दूध पिलाती हुई वात्सल्य मूर्ति जननी आदि।

मध्यवर्ती पट्टिकामें मुख्यतः जैन यक्ष-यक्षियोंका आर्षानुसारी अंकन है। इसमे किसी-किसी यक्ष या यक्षीको द्विमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख, अष्टमुख, द्विभुज, चतुर्भुज, षड्भुज, अष्टभुज, दशभुज, द्वादशभुज, षोडशभुज, चतुर्विंशतिभुज, त्रिनेत्र, वक्रमुख, गोमुख, सर्पोपनीत, सर्पफण-मण्डित, मस्तकपर धर्मचक्र आदि रूपोमें भी दिखाया गया है। इनके वाहन, आभरण, आयुध, आसन आदि भी अद्भुत किन्तु निश्चित हैं। इस पट्टिकामें कुछ पौराणिक दृश्योंका भी भव्य अंकन है, यथा उत्तरकी ओर एक रथिकामें राम और सीताका अंकन है। दोनों ही त्रिभंग मुद्रामें खड़े हैं। रामके कन्धेपर धनुष, पीठपर तरकस और हाथमें बाण हैं। निकट ही हनुमान् खड़े हैं। इसी प्रकार दक्षिणी भित्तिपर अशोकवाटिकामें सीताका अंकन किया गया है। सामने हनुमान् उनसे रामका

सन्देश निवेदन कर रहे हैं। पीछे खड्गहस्त राक्षस और राक्षसियाँ पहरेपर सतर्क खड़े हैं। तृतीय पट्टिकामें आकाशमें विहार करते हुए विद्याधर, नृत्य-गान करते हुए किन्नर-किन्नरियाँ, पुष्पमाल हाथोंमें लिये देव आदि प्रदर्शित हैं। इन पट्टिकाओंसे ऊपर उरु-शृंगोंके अधोभागमें भी जैन देव-देवियाँ और विद्याधरोंकी मूर्तियाँ हैं।

जैन शासन-देवताओंके स्वरूप और जैन पौराणिक आख्यानोंसे परिचित न होनेके कारण कई विद्वान् भ्रमवश उन मूर्तियोंको हिन्दू या बौद्ध मूर्तियाँ मान लेते हैं। इस भ्रमका कारण अज्ञान तो है ही, एक दूसरा भी कारण है। जैन, हिन्दू और बौद्ध देव-देवियोंके रूप और नाममें इतना अधिक साम्य है कि जैन देव-देवियोंको झट हिन्दू या बौद्ध कह दिया जाता है। किन्तु यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि जिस प्रकार जैन मन्दिरोंमें स्थित जैन देव-देवियोंको हिन्दू या बौद्ध देव-देवी कहने-लिखनेके उदाहरण मिलते हैं, उस प्रकार किसी हिन्दू या बौद्ध मन्दिरमें स्थित हिन्दू या बौद्ध देव-देवीको जैन देव-देवी कहने-लिखनेका उदाहरण हमारे देखनेमें नहीं आया। अस्तु। खजुराहोके मन्दिरोंमें उत्कीर्ण ये मूर्तियाँ जैन शासन-देवताओंके स्वरूपको समझने और उनपर शोध-खोज करनेके सर्वोत्तम साधन हैं।

मन्दिर नं. २६—कलागत वैशिष्ट्य और शिल्पगत सौन्दर्यके अतिरिक्त भी पार्श्वनाथ मन्दिरकी अपनी एक विशेषता है। इसके गर्भगृहके पीछे एक अतिरिक्त छोटा मन्दिर संयुक्त है। इस मन्दिरमें गर्भगृह और अर्धमण्डप ही हैं। अर्धमण्डप सम्भवतः बादमें बनाया गया है। गर्भगृहके प्रवेशद्वारका अलंकरण पार्श्वनाथ मन्दिरके अनुरूप ही है। इसके सिरदलके मध्यमें एक कोष्ठकमें लक्ष्मीकी चतुर्भुजी मूर्ति बनी हुई है। उसके हाथोंमें कमल और कमण्डलु दीख पड़ते हैं। देवीकी निचली दायी भुजा खण्डित है। बायीं ओरके कोष्ठकमें कमल, पुस्तक और वीणाधारिणी सरस्वती-का भव्य अंकन है। इसी प्रकार दायीं ओरके कोष्ठकमें भी सरस्वतीकी मूर्ति उत्कीर्ण है। चौखटों-पर यक्ष-मिथुन और देवियाँ उत्कीर्ण हैं।

पार्श्वनाथ मन्दिरके अर्धमण्डप और महामण्डपकी छतें कोण-स्तूपाकार हैं। इनके ऊपर बने हुए उरुश्रृंगों और कर्णश्रृंगोंने गर्भगृहके ऊपर निर्मित शिखर-संयोजनाकी सौन्दर्य-वृद्धि कर दी है। शिखरकी चूड़ापर आमलक, स्तूपिका, उसपर कलश और बीजपूरक हैं। इतनी भव्य और अलंकृत शिखर-संयोजना खजुराहोमें दूसरी नहीं है।

शिखरों और मूर्तियोंके ऊपर व्यालों और शार्दूलोंकी मूर्तियोंका वैविध्य चन्देल कलाका अपना वैशिष्ट्य है। ऐसी मूर्तियाँ खजुराहोके मन्दिरोंपर विपुल संख्यामें उपलब्ध होती हैं। जैन मन्दिरोंमें भी ये मूर्तियाँ बहुतायतसे मिलती हैं। इनका धड़ सिंहके शरीर-जैसा होता है किन्तु मुख विभिन्न प्रकारके मिलते हैं, जैसे सिंहमुख, व्याघ्रमुख, गजमुख, वृषभमुख, यहाँ तक कि मानवमुख भी। इनका मुख रौद्र होता है, क्रोध उनके शरीरके हर अंगसे टपकता है। उनके पैरोंके नीचे मनुष्य या कोई पशु होता है। एक मानव-मूर्ति व्यालकी पीठपर बैठी हुई दीख पड़ती है। यह प्रतीकात्मक है। इसे तन्त्रवेत्ता मन्दिर-मूर्तियोंके लिए अरिष्ट निवारक मानते हैं। अध्यात्मवेत्ता इसे मनुष्यकी शुभाशुभ वृत्तियों और सात्त्विक-तामसिक भावनाओंके द्वन्द्वका प्रतीक मानते हैं जिसमें शुभ और सात्त्विक वृत्तिकी विजय होती है। इस प्रकार इन व्याल और शार्दूल-मूर्तियोंकी अनेक व्याख्याएँ की जाती हैं। इनकी व्याख्या कुछ भी हो, इतना निश्चित है कि चन्देल युगकी यह भी एक विधा थी, जिसका प्रारम्भ सम्भवतः खजुराहोसे हुआ और कुछ स्थानों तक उसका प्रसार भी हुआ। किन्तु लगता है, इस अशोभन शिल्पकी विधाकी व्याख्या उस युगमें भी सन्तोष-जनक नहीं हो पायी, अतः शिल्पमें यह विधा अधिक लोकप्रिय नहीं हो सकी।

प्राचीन कालमें यहाँ अनेक जिनालयोंका निर्माण हुआ था। वे सब अब नहीं रहे। उनकी सामग्रीसे यहाँ नये मन्दिर बन गये। उन मन्दिरोंमें प्राचीन प्रतिमाएँ विराजमान की गयीं। किन्तु यह स्थान तो, लगता है, चन्देलोंके राज्य-कालमें जैन केन्द्र था। इसलिए यहाँ और निकटवर्ती प्रदेशमें जैन पुरातत्त्व विपुल परिमाणमें बिखरा हुआ है। उस पुरातत्त्वको एकत्रित करके (अभी संग्रहालय तो नहीं बन पाया है) पार्श्वनाथ मन्दिरके खुले अहातेमें, दीवारमें या चबूतरोंपर व्यवस्थित रूपसे सजा दिया गया है। इसमें पद्मासन और कायोत्सर्गासन दोनों मुद्राओंमें तीर्थंकर मूर्तियाँ (प्रायः खण्डित), अपने परिकरसहित जैन शासन-देव-देवियाँ ,मन्दिरोंके तोरण, स्तम्भों और द्वारोंके भाग, शिखरकी चूड़ा आदि सामग्री सम्मिलित है। इनकी कला यहाँके मन्दिरों और मूर्तियोंकी कलासे अभिन्न है। कुछ मूर्तियाँ कई मन्दिरोंके अन्दर और पृष्ठभागमे रखी हुई हैं।

संग्रहालयकी कई मूर्तियोंकी चरण-चौकीपर अभिलेख हैं। एक मूर्तिका प्रतिष्ठा-काल संवत् १२०५ है। भगवान् महावीरकी एक मूर्तिपर संवत् १२१२ अंकित है। इसमें मूर्तिकारका नाम कुमारसिंह दिया हुआ है। संवत् १२१५ के एक मूर्ति-लेखके अनुसार यह मूर्ति चन्देल नरेश मदनवर्माके राज्यमें प्रतिष्ठित हुई। अजितनाथकी एक मूर्तिपर संवत् १२२० अंकित है। यहाँकी मूर्तियोके ऊपर सबसे अन्तिम लेख संवत् १२३४ का है। ऐसा प्रतीत होता है कि मदनवर्माका उत्तराधिकारी एवं पौत्र परमर्दिदेव (अपर नाम परमाल, राज्य-शासन ई. सन् ११६३–१२०३) ने पृथ्वीराज चौहानके साथ हुए युद्धमें (सन् ११८०) या इसके आसपास खजुराहोसे हटाकर अपनी राजधानी कालिंजरमे बना ली। राजधानी हटनेसे खजुराहोका सम्पन्न और व्यापारी-वर्ग भी यहाँसे हट गया और इस प्रकार धीरे-धीरे खजुराहो उजड़ गया। जबतक यहाँ राजधानी रही, तबतक यहाँ मन्दिरों और मूर्तियोंका निर्माण और प्रतिष्ठा भी होती रही।

मन्दिर नं. २७—यह मन्दिर पार्श्वनाथ मन्दिरसे आकारमें छोटा है और उसकी उत्तर दिशामें स्थित है। इसमें केवल तीन भाग हैं—शिखरयुक्त गर्भगृह, अन्तराल और अर्धमण्डप। अर्धमण्डप आधुनिक है। गर्भगृहके प्रवेशद्वारके सिरदलपर चतुर्भुजी चक्रेश्वरी ललितासनमे आसीन है जिसका एक पैर नीचे लटका हुआ है और दूसरा पैर आसनपर स्थित है। देवीकी ऊपरी दायी और बायीं भुजाओंमें वज्र और चक्र दिखाई पड़ते हैं, जबकि निचली भुजाओंमे अभयमुद्रा और मातुलिंग-फल हैं। देवी गरुड़पर आरूढ़ है। देवीके दाहिने पैरके पास एक भग्न आकृति है जो सम्भवतः देवीका भक्त है। देवीके सिरके दोनों पार्श्वोंमे पुष्पमाला लिये हुए आकाशचारी देव प्रदर्शित हैं।

चक्रेश्वरी देवीकी इस मूर्तिके कारण ही यह अनुमान किया जाता है कि इस मन्दिरमें मूलनायकके रूपमें भगवान् आदिनाथकी मूर्ति विराजमान थी। किन्तु प्राचीन प्रतिमा यहाँसे कब लुप्त हो गयी, यह कहना कठिन है। उसके स्थानपर भगवान् ऋषभदेवकी आधुनिक मूर्ति विराजमान कर दी गयी है।

सिरदलके बायें कोनेपर चतुर्भुजी अम्बिकाकी मूर्ति उत्कीर्ण है। देवी ललितासनसे बैठी है। देवीके दायी ओर उसका वाहन सिंह बना हुआ है। देवीकी बायी गोदमें उसका छोटा पुत्र प्रियंकर बैठा है। देवी उसे निचली भुजाका सहारा दे रही है। बालक देवीके स्तनका स्पर्श कर रहा है। देवीके शिरोभागके दोनों ओर आम्रवृक्ष हैं और उनके ऊपर आम्र-गुच्छक लगे हुए हैं।

सिरदलके दायें कोनेपर चतुर्भुज देवी ललितासन मुद्रामें बैठी है। उसके सिरपर सर्पफण-मण्डल है। यह पद्मावती देवीकी मूर्ति है। देवीकी ऊपरी भुजाओंमें पाश और कमल हैं और नीचे-की भुजाओंमें अभयमुद्रा और कमण्डलु प्रदर्शित हैं।

चक्रेश्वरीके दोनों ओर दो चतुर्भुज देवियाँ अंकित हैं। उनके हाथोंमें कमल, कमण्डलु तथा एक हाथ वरदमुद्रामें अंकित हैं। देवियाँ ललितासनसे बैठी हैं। वे अर्ध-स्तम्भोंसे निर्मित रथिकाओंमें आसीन हैं।

द्वार-शाखाओंके ऊपर बायीं ओर चार-चार देवी-मूर्तियाँ अंकित हैं। इसी प्रकार चौखटके दोनों कोनोंपर चतुर्भुज देव-मूर्तियाँ बनी हुई हैं। बायीं ओर देव-मूर्तिकी बगलमें एक रथिकामें गजलक्ष्मीकी चतुर्भुजी देवी-मूर्ति दिखाई पड़ती है। देवीका वाहन कूर्म प्रदर्शित है तथा सिरके ऊपर तीन सर्पफणोंका घटाटोप दीख पड़ता है। द्वार-शाखाओंके नीचे गंगा और यमुनाका अंकन मिलता है, जो खजुराहोकी कलाका अभिन्न अंग मालूम पड़ता है। यहाँ गंगा और यमुना चतुर्भुजी बनी हैं। उनके पीछे उनके वाहन मकर और कच्छप दीख पड़ते हैं।

सिरदलके ऊपरी भागमें तीर्थंकर माता द्वारा देखे गये १६ मंगल स्वप्नोंका अंकन किया गया है। खजुराहोके सभी जैन मन्दिरोंमें १६ स्वप्नोंका अंकन मिलता है। यहाँ जो स्वप्नोंका चित्रण किया गया है, वह अत्यन्त स्पष्ट है। सभी स्वप्नोंको इतनी स्पष्टताके साथ अंकित किया गया है कि उनको पहचाननेमें कोई बाधा नहीं होती। स्वप्न-दर्शनसे पूर्व तीर्थंकर माता शय्यापर लेटी हुई हैं और देवियाँ उनकी सेवा कर रही हैं। एक पुरुष और एक स्त्रीको वार्तालाप करते हुए दिखाया गया है जो इन्द्र और इन्द्राणी प्रतीत होते हैं। फिर गज, वृषभ, सिंह, कमलासीन चतुर्भुजी लक्ष्मी, पुष्पमाल, चन्द्र, द्विभुज सूर्य, मत्स्य-युगल, दो कलश, दिव्य सरोवर, कूर्म-मत्स्य आदिसे पूर्ण समुद्र, दो सिंहोंपर आधारित और मध्यमें धर्मचक्रसे युक्त सिंहासन, विमानमें देव, नागेन्द्र-भवनमें सर्प-फणसे युक्त द्विभुज नाग-नागी, धन-राशि और अग्नि-शिखाओंके भामण्डलसे युक्त अग्निकी श्मश्रुयुक्त आकृति इस प्रकार १६ स्वप्नोंका अंकन है।

गर्भगृहमें वेदीपर एक ४ फुट ६ इंच ऊँचे शिलाफलकमें भगवान् ऋषभदेवकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसके सिरपर छत्र तथा पीछे भामण्डल सुशोभित हैं। छत्रके दोनों पार्श्वोंमें पुष्पमाल लिये हुए गन्धर्व, गजारूढ़ इन्द्र, उनके अधोभागमें दो खड्गासन मूर्तियाँ और चमरवाहक हैं। पीठिकापर नृत्य-गानमें निरत देव-समाज अंकित है। इस मूर्तिके दोनों पार्श्वोंमें २ फुट ३ इंच उन्नत एक-एक खड्गासन प्रतिमा है।

एक अन्य वेदीमें कृष्ण पाषाणकी ४ फुट १० इंच ऊँची सम्भवनाथ भगवान्की पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। चरण-चौकीपर लांछन है। इसपर उत्कीर्ण मूर्ति-लेख इस भाँति है—

'ओं संवत् १२१५ माघ सुदि ५ श्रीमान् मदन
वर्मदेव-प्रवर्धमान-विजय-राज्ये
गृहपतिवंशे श्रेष्ठी देदु तत्पुत्र पाहिल्ल:
पाहिल्लांग रुह साधु साल्हेनेदं प्रतिमा कारापिता
तत्पुत्रा: महागण महाचन्द्र सनिचन्द्र
जिनचन्द्र उदयचन्द्र प्रभृति
संभवनाथं प्रणमति नित्यम्। मंगल
महाश्री रूपकार रामदेव ॥

इस मूर्ति-लेखसे ज्ञात होता है कि सम्भवनाथकी इस मूर्तिकी प्रतिष्ठा चन्देल नरेश मदनवर्माके राज्य-कालमें माघ सुदी ५ संवत् १२१५ को हुई थी। प्रतिष्ठाकारक थे गृहपति-वंशके सेठ देदु, उनके पुत्र पाहिल्ल और उनके वंशज साल्ह। साल्हके पुत्रोंके नाम थे महागण, महाचन्द्र, शनिचन्द्र, जिनचन्द्र, उदयचन्द्र आदि। मूर्तिकारका नाम रामदेव था। पार्श्वनाथ मन्दिर पाहिल्ल

नामक जिस श्रेष्ठीने निर्मित कराया था, सम्भवनाथकी इस मूर्तिकी प्रतिष्ठा उसी पाहिल्लके वंशधर साल्हू और उसके पुत्रोंने करायी।

इस मन्दिरके मण्डपमें अनेक प्राचीन मूर्तियाँ, स्तम्भ खण्ड, तोरण-खण्ड रखे हुए हैं।

इस मन्दिरकी शिखर-संयोजना अनूठी है। इसकी शिखर-संयोजनामें उरुशृंग और कर्ण-शृंगको स्थान नहीं मिला है। इसका शिखर ऊँचे अधिष्ठानपर सीधा खड़ा है। उसमें उठान कहीं नहीं है। किन्तु वह अत्यन्त अलंकृत है। इस मन्दिरमें न प्रदक्षिणा-पथ है, न इसकी भीतरी भित्तियोंपर मूर्तियोंका अंकन किया गया है। मूर्तियोंका अंकन बाह्य भित्तियों, जंघा और शिखर-पर किया गया है। पार्श्वनाथ मन्दिरसे इसकी मूर्तियाँ यद्यपि आकारमें छोटी हैं किन्तु हैं अत्यन्त भावपूर्ण, सुडौल एवं सुघड़। इसकी जंघामें भी तीन समानान्तर रूप-पट्टिकाएँ बनी हुई हैं। ऊपरकी पट्टिकामें विद्याधर, किन्नर और गन्धर्व हैं। शेष दो पट्टिकाओंमे शासन-देवता, यक्ष-मिथुन और सुरसुन्दरियोंका अंकन है। मध्य पट्टिकापर कोष्ठकोंमें १६ देवियोंका अंकन किया गया है। देवियाँ ललितासनसे बैठी हुई हैं। देवियाँ अपने वाहनोंपर अपने समस्त आयुधोंको लेकर अवस्थित हैं। इनमें-से दो मूर्तियाँ अपने स्थानसे गायब हैं। लगता है, ये १६ विद्यादेवियाँ हैं जिनका जैन शास्त्रोमें वर्णन मिलता है। ये जैन शास्त्रानुकूल तो निर्मित हुई ही हैं, इनमें जो लावण्य, शिल्प-सौष्ठव और भावाभिव्यंजना है, ऐसा अन्यत्र कहीं १६ विद्यादेवियोंकी मूर्तियोंमें देखनेमें नहीं आया।

इस मन्दिरके एक वैशिष्ट्यकी ओर दर्शकका ध्यान बरबस खिंच जाता है। इन पट्टिकाओं-के कोनोंपर आदिनाथके सेवक यक्ष गोमुखका भव्य अंकन मिलता है। यह मन्दिरके चारों कोनोंपर अंकित है। यह चतुर्भुज है, खड़ी हुई मुद्रा है और मनुष्याकार है। इसके आयुध, अलंकार, यज्ञो-पवीत स्पष्ट पहचाने जा सकते हैं।

सुरसुन्दरियोंका अंकन तो बड़ा ही सजीव बन पड़ा है। इनके मुखपर मोहन रूपराशि और भाव-भंगिमा, इनकी विलास और शृंगारप्रियता, इनकी सुकुमार देहकी गठन और लोच, इनके यौवनका उभार और त्रिभंग मुद्राका मनभावन रूप सभी कुछ जैसे साँचेमें ढाला गया हो। आरसी देखती हुई सीमन्तमें सिन्दूर भर रही सौभाग्यवती, आरसीके सामने नयनोंमे काजल लगाती हुई शृंगारिका और नृत्यांगनाओंकी नृत्यमुद्राकी नाना छवियाँ—इन सब रूपोंमें नारी-सौन्दर्यका जो सरस रूप उजागर हुआ है, वही नारीका सर्वस्व नहीं है, यही प्रदर्शित करनेके लिए ममतामयी माँके उस रूपका भी अंकन किया गया है, जिसमे माता अपने शिशुका चुम्बन लेती हुई प्रदर्शित है। नारीकी चरम और परम सार्थकता मातृत्वके इस वात्सल्यमें ही है।

मध्य पंक्तिमें चपल पगोंसे नृत्य करती हुई एक नृत्यांगनाका अंकन है। सम्भवतः यह नृत्यांगना पुराणप्रसिद्ध नीलांजना ही होगी।

इस मन्दिरका शिखर और उसकी चूड़ापर बना आमलक, सूचिका और कलश अत्यन्त भव्य लगते हैं। मध्यप्रदेशमें ५वीं-६ठी शताब्दीमें शिखर-शैलीका विकास प्रारम्भ हुआ और ८वीं शताब्दीमे यहाँ नागर शैली उजागर हुई। मध्यप्रदेशकी भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि उसपर पूर्व और पश्चिम दोनोंका ही प्रभाव पड़ सकता है। सम्भवतः प्रस्तुत मन्दिरकी शिखर-शैलीपर पूर्वका, विशेषतः उड़ीसाका प्रभाव पड़ा प्रतीत होता है।

मन्दिर नं. २८—आदिनाथ मन्दिरमें-से इस मन्दिरके लिए मार्ग है। ६ फुट ८ इंच ऊँचे शिलाफलकमें ऋषभदेव भगवान्‌की पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमाका केश-विन्यास मनोहर है। इसके परिकरमें भामण्डल, छत्र, माला लिये गन्धर्व, गजपर आरूढ़ इन्द्र, चमरवाहक,

शार्दूल, दोनों ओर खड्गासन जिन-प्रतिमा, यक्ष-यक्षी और चैत्य हैं। इस प्रतिमाके वाम पार्श्वमें ४ फुट ९ इंच उन्नत और दक्षिण पार्श्वमें ४ फुट ९ इंच उन्नत पार्श्वनाथ प्रतिमाएँ हैं।

इस मन्दिरमें कई प्राचीन प्रतिमाएँ रखी हुई हैं।

मन्दिर नं. २९—तीन दरकी वेदीमें २ फुट ९ इंच अवगाहनाकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। सिरके ऊपर छत्र, सिरके पीछे भामण्डल, पुष्पमाल लिये आकाशचारी गन्धर्व, गजपर खड़े हुए इन्द्र, उनसे अधोभागमें पद्मासन जिन-मूर्तियाँ और चमरवाहक परिकरमें हैं। वेदीके दो दर खाली हैं। यहाँ भी प्राचीन प्रतिमाएँ रखी हुई हैं।

मन्दिर नं. ३०—वेदीपर २ फुट ६ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसके परिकरमें पूर्ववत् है। इसमें फलकपर दो खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। गर्भगृहके आगे अर्धमण्डप है।

मन्दिर नं. ३१—यह मेरु मन्दिर है। इसमें २ फुट १० इंच ऊँची खड्गासन प्रतिमा विराजमान है।

मन्दिर नं. ३२—३ फुट २ इंच ऊँचे एक शिलाफलकमें भगवान् चन्द्रप्रभकी पद्मासन प्रतिमा फलकके मध्यमें बनी हुई है। इसके परिकरमें छत्र, भामण्डल, मालाधारी गन्धर्व, गज, मूलनायकके दोनों ओर पद्मासन प्रतिमाएँ, चमरवाहक, कोणोंपर शार्दूल, पार्श्वमें खड्गासन प्रतिमाएँ, यक्ष और यक्षीका अंकन है।

फलकके ऊपरके भागमें एक कोष्ठकमें भगवान् पार्श्वनाथकी पद्मासन प्रतिमा है। उसके इधर-उधर ४ मूर्तियाँ हैं तथा २४ मूर्तियोंका अंकन पट्टिकाओंमें किया गया है। इनमें दो मूर्तियाँ पद्मासन हैं, शेष २२ मूर्तियाँ खड्गासन हैं।

बायी ओर दीवारमें तीन कोष्ठक ऊपर-नीचे बने हुए हैं। नीचेके कोष्ठकमें गोमेद यक्ष है, मध्य कोष्ठकमें अम्बिका है और ऊपरका कोष्ठक खाली है। और भी कई देवी-मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

इस मन्दिरका गर्भगृह छोटा और साधारण है।

शान्तिनाथ मन्दिरके बाहर कुएँके निकट किसी प्राचीन मन्दिरके सिरदल रखे हुए हैं। उनके ऊपर नवग्रह, तीर्थंकर माताके सोलह स्वप्न और शासन-देवियोंका भव्य अंकन किया गया है।

संग्रहालय

बस अड्डेके पास सरकारी संग्रहालय है। इसमें प्रायः खजुराहोके प्राचीन मन्दिरोंके भग्नावशेषोंमें-से प्राप्त पुरातत्त्व-सामग्री संग्रह की गयी है। उसमें-से कुछ सामग्री तो यहाँ व्यवस्थित रूपसे सुरक्षित है, किन्तु अधिकांश सामग्री हिन्दू मन्दिर-समूहके पास एक खुले अहातेमें पड़ी है।

संग्रहालयमें सुरक्षित सामग्रीमें जैन पुरातन सामग्री भी है। इसमें तीर्थंकर मूर्तियाँ और शासन-देवताओंकी मूर्तियाँ हैं। जैन सामग्रीके लिए अलगसे एक जैन कक्ष बना हुआ है। प्रमुख कक्षमें भी दो जैन मूर्तियाँ सुरक्षित हैं। एक तो भगवान् ऋषभदेवकी है और दूसरी शासन-सेवक यक्ष और यक्षीकी है।

जैन कक्षमें वर्तमानमें कुल १२ जैन मूर्तियाँ सुरक्षित हैं। उनका संक्षिप्त ब्योरा इस प्रकार है—

(१) पार्श्वनाथ, (२) महावीर, (३) जैन मन्दिरके द्वारका सिरदल, (४) जैन तीर्थंकर, (५) बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथकी यक्षी अम्बिका अपने दोनों पुत्रोंके साथ, (६) सत्तरहवें तीर्थंकर

कुन्थुनाथ, (७) ऋषभदेव, (८) यक्ष-दम्पति, (९) जैन मातृका, (१०) तीसरे तीर्थंकर सम्भवनाथ, (११) पद्मप्रभ भगवान्‌को शासन-देवी मनोवेगा, (१२) सर्वतोभद्रिका।

धर्मशालाएँ

खजुराहो विख्यात पर्यटक-केन्द्र है। यहाँ हजारों व्यक्ति प्राचीन भारतकी कलाका दर्शन करने आते हैं। अनेक जैन इस क्षेत्रके दर्शन करने और पूर्वजोंके कला-प्रेम एवं कलाको देखने आते हैं। यों तो यहाँ श्रेणी १ और २ के होटल, रेस्ट हाउस, डाक-बँगला, लॉज आदि हैं जिनमें यात्री ठहरते हैं, किन्तु जैन यात्रियोंकी सुविधाके लिए समाजके सहयोगसे यहाँ ६ धर्मशालाओंका निर्माण किया गया है। इनमें दो विभाग कर दिये गये हैं। एक तो सामान्य धर्मशाला है जिसमें यात्री निःशुल्क ठहर सकते हैं। दूसरा विश्रान्ति-भवन, जिसमें निश्चित शुल्क देकर ठहर सकते हैं। धर्मशालामें ११ कमरे और विश्रान्ति-भवनमें ८ कमरे हैं। इनमें कुओं और शौचालयोंकी व्यवस्था है। क्षेत्रपर विद्युत्प्रकाशकी भी व्यवस्था है। यात्रियोंकी सुविधाके लिए बरतन, इन्धन, कोयले, ओढ़ने-बिछानेके वस्त्र आदिकी भी व्यवस्था है।

मेला

क्षेत्रका वार्षिक मेला चैत्र मासके शुक्ल पक्षमें होता है। इसी अवसरपर विधानानुसार क्षेत्रकी प्रबन्ध-समितिका भी चुनाव होता है। यहाँ आश्विन कृष्णा ३ को प्रतिवर्ष पालकी निकाली जाती है। यह उत्सव छतरपुर रियासतके कालसे प्रतिवर्ष मनाया जा रहा है। दोनों ही उत्सवोंमें जैन जनता बड़ी संख्यामें एकत्र होती है।

द्रोणगिरि

स्थिति और मार्ग

द्रोणगिरि मध्यप्रदेशके छतरपुर जिलेमें विजावर तहसीलमें स्थित है। द्रोणगिरि क्षेत्र पर्वत-पर है। वहाँ पहुँचनेके लिए २३२ सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। सीढ़ियाँ पक्की बनी हुई हैं। पर्वतकी तलहटीमें सेंधपा नामक एक छोटा-सा गाँव है। यहाँ पहुँचनेके लिए मध्य रेलवेके सागर या हरपालपुर स्टेशनपर उतरना चाहिए। सुविधानुसार मऊ, महोबा या सतना भी उतर सकते हैं। प्रत्येक स्टेशनसे क्षेत्र लगभग १०० कि. मी. पड़ता है। सभी स्थानोंसे पक्की सड़क गयी है। कानपुर-सागर रोड अथवा छतरपुर-सागर रोडपर मलहरा ग्राम है। मलहरासे द्रोणगिरि ७ कि. मी. है। वहाँ तक पक्की सड़क है। सागरसे मलहरा तक बसें चलती हैं। बस द्वारा मलहरा पहुँच-कर वहाँसे नियमित बस द्वारा क्षेत्र तक जा सकते हैं। बसका टिकट सेंधपाके लिए लेना चाहिए। गाँवका नाम तो सेंधपा है, किन्तु पर्वतका नाम द्रोणगिरि है। सेंधपाके बस अड्डेसे जैन धर्मशाला लगभग १०० गज दूर गाँवके भीतर है। वहीं गाँवका मन्दिर और गुरुदत्त संस्कृत विद्यालय है।

सेंधपा ग्राम काठिन और श्यामली नामक नदियोंके बीच बसा हुआ है। निरन्तर प्रवाहित होनेवाली इन नदियोंने इस स्थानकी प्राकृतिक सुन्दरताको अत्यन्त आह्लाददायक बना दिया है। ग्राममें जाते ही मनमें शान्ति अनुभव होने लगती है। ग्रामसे सटा हुआ द्रोणगिरि पर्वत है। यहाँ प्रकृतिने तपोभूमिके उपयुक्त सुषमाका समस्त कोष सुलभ कर दिया है। सघन वृक्षावलि, निर्जन

प्रदेश, वन्य पशु, चन्द्रभागा नदी (काठिन नदी), पर्वतसे झरते हुए निर्झरोंसे बने दो निर्मल कुण्ड—ये सभी मिलकर इसे तपोभूमि बनाते हैं।

निर्वाण-भूमि

द्रोणगिरि निर्वाण-क्षेत्र है। प्राकृत निर्वाण-काण्डमें इस सम्बन्धमें निम्नलिखित उल्लेख मिलता है—

> फलहोडी बड़गामे पच्छिम भायम्मि द्रोणगिरि सिहरे।
> गुरुदत्तादि मुणिन्दा णिव्वाण गया णमो तेसिं॥

अर्थात्, फलहोड़ी बड़गांवके पश्चिममें द्रोणगिरि पर्वत है। उसके शिखरसे गुरुदत्त आदि मुनिराज निर्वाणको प्राप्त हुए। उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ।

संस्कृत निर्वाण-भक्तिमें केवल क्षेत्रका नाम द्रोणिमान् दिया हुआ है। उसका कोई परिचय अथवा वहाँसे मुक्त होनेवाले मुनिका नाम नहीं दिया गया है।

भट्टारक श्रुतसागरने बोधप्राभृतकी २७वीं गाथाकी टीकामें २७ तीर्थोंका नामोल्लेख किया है और उसमें द्रोणगिरिका भी नाम दिया है। ये भट्टारक मूलसंघ बलात्कारगण सूरतशाखाके सुप्रसिद्ध भट्टारक विद्यानन्दिके शिष्य थे। अतः इनका समय ईसाकी १५वीं शताब्दी है।

मराठीके १५वीं शताब्दीके प्रसिद्ध लेखक गुणकीर्तिने अपनी मराठी 'तीर्थवन्दना'में लिखा है—'फलहोड़ि ग्रामि आहूठ कोडि सिद्धासि नमस्कार माझा' अर्थात् फलहोड़ी ग्रामसे साढ़े तीन कोटि मुनियोंने मुक्ति प्राप्त की, उनको नमस्कार है। इसमें गुणकीर्तिने न द्रोणगिरिका उल्लेख किया है, न गुरुदत्त मुनिका ही। इसमें तो द्रोणगिरिके निकटवर्ती फलहोड़ी ग्रामको ही सिद्धक्षेत्र मानकर लेखकने वहाँसे मुक्त होनेवाले मुनियोंकी संख्या साढ़े तीन कोटि बतलायी है, जबकि उनकी निश्चित संख्याका कुन्दकुन्द, पूज्यपाद, शिवकोटि आदि किसी पूर्ववर्ती आचार्यने उल्लेख नहीं किया है।

मराठी जैन साहित्यके लेखक और १५वीं-१६वीं शताब्दीकी सन्धिके प्रमुख विद्वान् चिमणा पण्डितने 'तीर्थवन्दना' नामक स्तोत्रमें इस क्षेत्रके सम्बन्धमें लिखा है—"बडग्राम सुनाम पच्छिम दिसा। द्रोणागिरि पर्वत कैलास जैसा॥ तेथे सिद्ध झाले मुनि गुरुदत्त। ऐसे तीर्थ वंदा तुम्ही एकचित्त॥१९॥" इसमें कविने द्रोणगिरिको फलहोड़ीके स्थानपर बड़ग्रामकी पश्चिम दिशामें बतलाया है तथा वहाँसे गुरुदत्त मुनिको मुक्त हुआ माना है। किन्तु इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। फलहोड़ी और बड़ग्राम दोनों एक ही थे, भिन्न नहीं। प्राकृत निर्वाण-काण्डमें फलहोड़ी बड़ग्राम देकर आचार्यने इस तथ्यको स्पष्ट कर दिया है।

निर्वाण-काण्डमें द्रोणगिरिकी पूर्व दिशामें जिस फलहोड़ी बड़गाँवका उल्लेख किया गया है, वह गाँव आजकल नहीं मिलता। वर्तमान द्रोणगिरिके निकट सेंधपा ग्राम है, जिसका कहीं कोई उल्लेख नहीं है। कल्पना की जाती है कि यहाँ प्राचीन कालमें फलहोड़ी बड़गाँव रहा होगा और वह किसी कारणवश नष्ट हो गया होगा। वास्तवमें सेंधपा गाँव विशेष प्राचीन प्रतीत नहीं होता। कहा तो यह जाता है कि जिस भूमिपर यह ग्राम बसा हुआ है, वह पहले निकटवर्ती ग्रामकी श्मशान-भूमि थी। इस गाँवके निकट किसी प्राचीन ग्रामके अवशेष प्राप्त होते हैं जो काफी बड़े क्षेत्रमें फैले हुए हैं। पर्वतकी तलहटीमें इन्हीं अवशेषोंके बीच एक भग्न प्राचीन जैन चैत्यालय अब भी खड़ा है, जिसे लोग बँगला कहते हैं। यदि यहाँ खुदाई की जाये तो यहाँपर पुरातत्त्वकी विपुल सामग्री मिलनेकी सम्भावना है।

निर्वाण-काण्डके उल्लेखसे यह ज्ञात होता है कि यहाँसे न केवल गुरुदत्त मुनि ही मोक्ष पधारे हैं, अपितु अन्य मुनि भी मुक्त हुए हैं। भाषा-कवियोंने इनकी संख्या साढ़े तीन कोटि दी है। वास्तवमें तपोभूमिके उपयुक्त रमणीयताको देखते हुए प्राचीन कालमें यहाँ तपस्याके लिए आना अधिक सम्भव था और अनेक मुनियोंका यहाँसे निर्वाण प्राप्त करना असम्भव नहीं था।

द्रोणगिरि नामक एक पर्वत ऋषिकेशसे नीती घाटीकी ओर जाते हुए १६९ मील दूर जुम्भासे दिखाई पड़ता है। यह कुमायूँमें है। इसे दूनगिरि कहते हैं। किन्तु इस पर्वतके निकट भी फलहोड़ी नामक कोई ग्राम कभी रहा था, ऐसे प्रमाण नहीं मिलते। अतः यह द्रोणगिरि गुरुदत्तादि मुनियोंकी तपोभूमि रहा हो, ऐसी सम्भावना प्रतीत नहीं होती। हिन्दू परम्परामें वाल्मीकि तथा तुलसीकृत रामायणोंमें लक्ष्मणके शक्ति लगनेपर हनुमान् द्वारा जिस द्रोणगिरि पर्वतसे संजीवनी बूटी लानेके उल्लेख मिलते हैं, वह द्रोणगिरि हिमालय-शृंखलामें स्थित यही द्रोणगिरि था, ऐसी मान्यता प्रचलित है। दूनगिरि पर्वत यहाँका प्रचलित नाम है। यह दूनगिरि ही हिन्दू पुराणवर्णित द्रोणगिरि है। यहाँके लोढ़मूना जंगलमें गर्ग ऋषिका आश्रम था। गागस नदी इसी जंगलसे निकलती है और धौलीमें जाकर गिरती है।[१] हिन्दू लोग इसी दूनगिरिको अपना तीर्थ मानते हैं। कूर्मांचल (कुमायूँ) में विष्णुने मन्दराचलको साधनेके लिए कूर्मावतार लिया, ऐसी उनकी मान्यता है। वह स्थान लोहाघाटके निकट माना जाता है।

कुछ विद्वानोंकी मान्यता है कि वर्तमान सेंधपा ग्रामके निकटस्थ द्रोणगिरि ही वह पर्वत है, जहाँसे हनुमान् संजीवनी बूटी ले गये थे। इन विद्वानोंकी धारणा है कि श्री रामचन्द्र वनवासके समय ओरछा भी पधारे थे। वे इसके निकट 'रमन्ना' (रामारण्य) वनमें ठहरे थे और उस समय वे द्रोणगिरि पर्वतपर भी आये थे। किन्तु यह सब केवल कल्पना-भर है।

प्राचीन शास्त्रोंमें द्रोणगिरिका उल्लेख

निर्वाण-काण्ड और निर्वाण-भक्तिके अतिरिक्त द्रोणगिरि या द्रोणिमान् पर्वतका उल्लेख भगवती-आराधना, आराधनासार, आराधना-कथाकोष आदि ग्रन्थोंमें आया है। भगवती-आराधनामें आचार्य शिवकोटि इस प्रकार वर्णन करते हैं—

हत्थिणपुर गुरुदत्तो संबलिथालीव दोणिमंतम्मि।
उज्झंतो अधियासिय पडिपण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५५२॥

अर्थात्, हस्तिनापुरके निवासी गुरुदत्त मुनिराज द्रोणिमान् पर्वतके ऊपर सम्भलिथालीके समान जलते हुए उत्तम अर्थको प्राप्त हुए।

सम्भलिथालीका अर्थ है—एक बरतन जिसमें घास-फूँस भरा हो, उसका मुख नीचेकी ओर हो और सूखे पत्तों आदिसे ढँका हो तथा उसके चारों ओर अग्नि लगी हो। अग्नि लगनेपर जिस प्रकार भीतरका घास-फूँस जलने लगता है, उसी प्रकार द्रोणिमान् पर्वतके ऊपर गुरुदत्त मुनिराज भी जलकर मुक्त हुए।

इसी प्रकार आराधनासार ग्रन्थमें इस घटनाका उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

वास्तव्यो हास्तिने धीरो द्रोणीमति महीधरे।
गुरुदत्तो यतिः स्वार्थं जग्राहानलवेष्टितः ॥

अर्थात्, हस्तिनापुरके निवासी गुरुदत्त मुनिने दोणिमान् पर्वत पर अग्नि लगनेपर आत्माके प्रयोजन (स्वार्थ) को सिद्ध किया।

---

१. Geographical Dictionary of Ancient India, by Nandolal Dey.

पौराणिक आख्यान

भगवती-आराधना और आराधनासार नामक शास्त्रोंमें द्रोणगिरि पर्वतपर गुरुदत्त मुनिराजके ऊपर हुए जिस उपसर्गकी ओर संकेत किया गया है, उसके सम्बन्धमें हरिषेणकृत कथाकोशमें विस्तृत कथानक दिया गया है, जो इस प्रकार है—

श्रावस्ती नगरीका शासक उपरिचर पद्मावती, अमितप्रभा, सुप्रभा और प्रभावती नामक चारों रानियोंके साथ प्रमदवनमें विहारके लिए गया। वे जब सुदर्शना बावड़ीमें क्रीड़ा कर रहे थे, तभी विद्युद्दंष्ट्र नामक एक विद्याधर अपनी पत्नी मदनवेगाके साथ विमानसे आकाशमें जा रहा था। विद्याधरी जल-क्रीड़ा करते हुए राजा और रानियोंको देखकर बोली—"धन्य हैं ये रानियाँ जो अपने पतिके साथ जल-क्रीड़ामें आसक्त हैं।" पत्नीके मुखसे अन्य पुरुषकी प्रशंसा सुनकर विद्याधरको बड़ा बुरा लगा। गुस्सेके मारे वह विमानको लौटा ले गया और अपनी पत्नीको अपने घर छोड़कर वह पुनः उसी बावड़ीके पास आया और एक बड़ी भारी शिलासे बावड़ीको ढक दिया। इससे दम घुटकर पाँचों प्राणी मर गये। राजा क्रोधमें भरकर साँप बना तथा चारों रानियाँ सम्यग्दर्शनके प्रभावसे स्वर्गमें देवियाँ बनीं। वहाँ अवधिज्ञानसे पूर्वभवका वृत्तान्त जानकर एक दिन वे अपने पूर्वभवके पतिके जीवको सम्बोधन करने आयीं। उसी समय उस राजाका पुत्र अनन्तवीर्य उस वनमे विहार करने आया। वहाँ उसने एक शिला-तलपर विराजमान अवधिज्ञानी सागरसेन नामक मुनिराजको देखा। राजा अनन्तवीर्य उनके निकट आया और दर्शन-वन्दना करके उनके पास बैठ गया। उसने मुनिराजसे प्रश्न किया—"भगवन्! मेरे पिता मरकर किस गतिमें उत्पन्न हुए हैं?" मुनिराज बोले—"वापीमें तेरा पिता रानियोंके साथ जब जल-क्रीड़ा कर रहा था, तभी विद्युद्दंष्ट्र विद्याधरने शिलासे वापीको ढक दिया, जिससे मरकर वह यहीं निकट ही साँप हुआ है। तू जा और उससे कहना 'उपरिचर! तू साधुके निकट जा।' तेरी बात सुनकर वह बिलसे निकलकर धर्मग्रहण करेगा।"

मुनिराजके वचन सुनकर राजा अनन्तवीर्य बिलके निकट जाकर मुनिराजके आदेशके अनुसार बोला। उसकी बात सुनकर वह सर्प मुनिराजके समीप गया। मुनिने उसे उपदेश दिया। उपदेश सुनकर सर्पको जाति-स्मरण ज्ञान हो गया। उसने अपनी आयु अल्प जानकर हृदयसे धर्म ग्रहण कर लिया और कुछ दिनों बाद अनशन करते हुए उसकी मृत्यु हो गयी। शुभ भावोंसे मरकर वह नागकुमार-जातिका देव हुआ। अवधिज्ञानसे अपने पूर्वभव जानकर वह देव अनन्तवीर्यके पास आया और अपने पूर्व-जन्मका वृत्तान्त बताया। देवके वचन सुनकर अनन्तवीर्यको वैराग्य हो गया। उसने अपने सुवासु नामक पुत्रको राज्य देकर सागरसेन मुनिके समीप जाकर निर्ग्रन्थ मुनि-दीक्षा धारण कर ली और घोर तप द्वारा कर्मोंका नाश करके मुक्त परमात्मस्वरूपको प्राप्त किया।

नागकुमार सुमेरु पर्वत आदिपर जाकर जिनालयोंकी वन्दना किया करता था। एक दिन विमानमें जाते हुए उसे विद्युद्दंष्ट्र विद्याधर दिखाई पड़ा। पूर्व-जन्मकी घटनाका स्मरण आते ही उसे भयानक क्रोध आया और उसे स्त्री सहित ले जाकर समुद्रमें डुबा दिया। विद्युद्दंष्ट्र अशुभ परिणामोंसे मरकर प्रथम नरकमें नारकी बना। वहाँसे आयु पूर्ण होनेपर वह द्रोणगिरिपर सिंह हुआ।

नागकुमार मरकर हस्तिनापुरनरेश विजयदत्तकी विजयारानीसे गुरुदत्त नामक पुत्र हुआ। जब गुरुदत्त यौवनावस्थाको प्राप्त हुआ तो उसके पिता उसका राज्याभिषेक करके मुनि हो गये। गुरुदत्त आनन्दपूर्वक राज्य-शासन करने लगा। एक बार उसने लाट देशमें द्रोणगिरिकी पूर्वोत्तर

दिशामें स्थित चन्द्रपुरी नगरीके राजा चन्द्रकीर्तिसे उसकी छोटी कन्या अभयमती माँगी। किन्तु राजाने अपनी कन्याका विवाह गुरुदत्तके साथ करनेसे इनकार कर दिया। इससे रुष्ट होकर गुरुदत्तने चन्द्रकीर्तिपर आक्रमण कर दिया। अन्तमें चन्द्रकीर्तिको बाध्य होकर अपनी पुत्रीका विवाह गुरुदत्तके साथ करना पड़ा। गुरुदत्त कुछ समय वहीं ठहर गया।

एक दिन ग्रामके कुछ लोग गुरुदत्त नरेशके पास आये और हाथ जोड़कर कहने लगे—"देव! द्रोणिमान् पर्वतपर एक व्याघ्रने बड़ा उत्पात कर रखा है। उसने हमारे न केवल गोकुलको, अपितु कई मनुष्योंको भी खा लिया है। आप हमारी रक्षा करें।" प्रजाकी करुण पुकार सुनकर राजा गुरुदत्त सैनिकोंको लेकर द्रोणिमान् पर्वतपर पहुँचा। सेनाके कलकलसे घबराकर वह सिंह एक गुफामें घुस गया। उसे मारनेका अन्य कोई उपाय न देखकर सैनिकोंने गुफामें ईन्धन इकट्ठा करके उसमें आग लगा दी। सिंह धुएँ और आगके कारण उसी गुफामें मर गया और मरकर चन्द्रपुरीमें भवधर्म नामक ब्राह्मणके घरमें कपिल नामक पुत्र हुआ।

राजा गुरुदत्त अपनी पत्नीको लेकर सैनिकोंके साथ हस्तिनापुर लौट आया और शासन करने लगा। एक बार सात सौ मुनियोंके साथ आचार्य श्रुतसागर नगरके निकट पधारे। उनका उपदेश सुनकर राजा और रानी दोनोंने दीक्षा ले ली। एक दिन मुनि गुरुदत्त विहार करते हुए द्रोणिमान् पर्वतके निकटस्थ चन्द्रपुरी नगरीके बाहर ध्यान लगाये खड़े थे। कपिल अपनी स्त्रीसे मध्याह्न वेलामें भोजन लानेके लिए कहकर खेत जोतने चला गया। उसी खेतमें गुरुदत्त मुनि ध्यानारूढ़ थे। वह खेत पानीसे भरा होनेके कारण जोतने लायक नहीं था। अतः वह दूसरे खेतको जोतने चला गया और मुनिसे कहता गया कि स्त्री भोजन लेकर आयेगी तो उससे कह देना कि मैं दूसरे खेतपर गया हूँ। उसकी स्त्री मध्याह्नमे भोजन लेकर आयी और वहाँ पतिको न पाकर उसने मुनिसे पूछा। किन्तु मुनिने कोई उत्तर नही दिया तो वह घर लौट गयी।

सन्ध्या तक कपिल भूखा रहा। भूखके मारे गुस्सेमें भरा हुआ वह घर लौटा और अपनी स्त्रीको डाँटते हुए कहने लगा—"दुष्टे, तुझसे रोटी लानेको कह गया था। तू फिर भी रोटी नही लायी। मैं सारे दिन भूखा मरता रहा।" स्त्री भयाक्रान्त होकर बोली—"मैं तो रोटी लेकर गयी थी किन्तु तुम वहाँ मिले ही नहीं। मैंने वहाँ खड़े हुए नंगे बाबासे भी तुम्हारे बारेमें पूछा लेकिन उसने भी कोई जवाब नहीं दिया तो मैं क्या करती, लौट आयी।"

स्त्रीकी बात सुनकर अज्ञ कपिलको साधुपर क्रोध आया और विचारने लगा—"सारा दोष उस साधुका है। उसीके कारण मुझे भूखा रहना पड़ा। अतः उसे इसका पाठ पढ़ाना चाहिए।" यह विचारकर वह फटे-पुराने कपड़े, तेल और आग लेकर फिर खेतमें पहुँचा। उसने सिरसे पैर तक मुनिराजके शरीरपर चिथड़े लपेट दिये और उनपर तेल छिड़ककर आग लगा दी। आग लगते ही मुनिराजका शरीर जलने लगा। किन्तु वे आत्म-ध्यानमे लीन थे। उन्हें बाह्य शरीरका ज्ञान ही नही था। वे शुद्ध भावोंमें लीन रहकर शुक्ल ध्यानमे पहुँच गये। तभी उन्हें लोकालोक-प्रकाशक केवलज्ञान हो गया। चारों निकायके देव गुरुदत्त मुनिराजके केवलज्ञानकी पूजाके लिए वहाँ आये। योगीश्वर गुरुदत्तका यह चमत्कार और प्रभाव देखकर कपिल ब्राह्मण भयसे काँपता हुआ उनके चरणोंमें जा गिरा और क्षमा-याचना करने लगा। वीतराग भगवान्को न तो उसके अपराधपर रोष ही था और न उसकी क्षमा-याचनापर हर्ष। वे तो रोष-हर्ष आदिसे ऊपर थे। फिर कपिलने भगवान् केवलीके मुखसे उपदेश सुनकर जन्म-जन्मान्तरोंका वैर त्यागकर उन्हींके चरणोंमे दीक्षा ले ली।

विचारणीय प्रश्न

इस कथानकमें तीन बातें विचारणीय हैं। एक तो यह कि गुरुदत्त केवली किस स्थानसे मुक्त हुए, कथानकमें इस बातका कोई उल्लेख नहीं है। फिर यह कि इस कथानकमें द्रोणिमान् या द्रोणगिरिको तोणिमान् पर्वत कहा गया है तथा उसका उल्लेख चन्द्रपुरीके सन्दर्भमें इस प्रकार किया गया है—

लाटदेशाभिधे देशे चारुलोकधनान्विते। पूर्वोत्तरदिशाभागे तोणिमद्भूधरस्य च।
आसीच्चन्द्रपुरी रम्या सितप्रासादसंकुला। बहुलोकसमाकीर्णा धनधान्यसमन्विता॥

—हरिषेण कथाकोश–कथा १३९, श्लोक ४५-४६

इसमें चन्द्रपुरी नगरीका वर्णन करते हुए उसे लाट देशमें और तोणिमान् पर्वतकी पूर्वोत्तर दिशा (ईशानकोण) में बताया है। इससे ऐसा आभास होता है कि तोणिमान् पर्वत लाट देशमें था।

इस कथानकसे एक नया प्रश्न भी उभरता है कि उनको केवलज्ञान द्रोणिमान् (तोणिमान्) पर्वतपर नहीं हुआ था। वह चन्द्रपुरी नगरीके बाहर खेतोंमें हुआ था।

इन तीन प्रश्नोंका समाधान मिलना तथा भगवती आराधनासे उसका सामंजस्य स्थापित होना अत्यन्त आवश्यक है। भगवती आराधनाके अनुसार द्रोणिमान् पर्वतके ऊपर जलते हुए गुरुदत्त मुनिने उत्तमार्थ प्राप्त किया। आराधनासारमें भी इसी आशयकी पुष्टि की गयी है। इसमें भी द्रोणिमान् पर्वतके ऊपर अग्नि लगनेपर उनके आत्म-प्रयोजनकी सिद्धि बतायी गयी है। कथाकोश ग्रन्थोंमें द्रोणिमान् पर्वतके ऊपर उपसर्ग होनेका प्रायः उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु उस पर्वतके निकट किसी स्थानपर यह भयंकर उपसर्ग हुआ, ऐसा प्रतीत होता है। निर्वाण-काण्डमें द्रोणगिरिके शिखरसे गुरुदत्त मुनिको निर्वाण प्राप्त करनेका उल्लेख है। इसमें उपसर्ग होनेका या उपसर्ग-स्थानका कोई उल्लेख नहीं है। इससे स्पष्ट है कि उपसर्गके तत्काल बाद ही गुरुदत्तको निर्वाण प्राप्त नहीं हुआ। उपसर्ग द्रोणगिरिपर हुआ। भगवती आराधना और आराधनासारमें उपसर्गका उल्लेख करते हुए द्रोणिमान् पर्वतपर जिस आत्मार्थकी प्राप्ति या आत्म-प्रयोजनकी सिद्धिका उल्लेख किया गया है, उससे आचार्योंका अभिप्राय केवलज्ञानकी प्राप्तिसे ही है, जैसा कि कथाकोश ग्रन्थोंसे भी समर्थन होता है। हरिषेण-कथाकोशमें चन्द्रपुरीके निकट जिस स्थानपर यह घटना घटी, वह, लगता है, द्रोणगिरिके निकट ही था। इसलिए उसे द्रोणगिरिकी उपत्यका न लिखकर द्रोणगिरि ही लिख दिया गया। निर्वाण काण्डकी स्पष्ट सूचनासे हरिषेण-कथाकोशकी अधूरी सूचनाकी पूर्ति हो जाती है। वह यह कि गुरुदत्तको मुक्ति द्रोणगिरिपर हुई।

अब सबसे अधिक विचारणीय समस्या यह रह जाती है कि द्रोणगिरि कहाँपर था। हरिषेण-की सूचनाके अनुसार वह लाट देशमें था। यदि तोणिमान्को चन्द्रपुरीके निकट न मानकर उससे अत्यधिक दूर खींचनेका प्रयत्न करें तो सहज ही प्रश्न उठ सकता है कि फिर द्रोणगिरिका उल्लेख वहाँ करनेकी आवश्यकता क्या थी? और उस स्थितिमें भगवती आराधना आदि ग्रन्थोंके वर्णनकी संगति किस प्रकार बैठायी जा सकेगी। एक कल्पना यह भी हो सकती है कि तोणिमान् पर्वत, द्रोणिमान् या द्रोणगिरिसे भिन्न था। किन्तु इस कल्पनाके माननेपर गुरुदत्त मुनि दो मानने पड़ेंगे। फिर तोणिमान्पर घटित घटनाका उपयोग द्रोणिमान् पर्वतके लिए नहीं हो सकेगा। इसलिए यह माननेमें कोई हानि नहीं है कि द्रोणगिरिके कई नाम थे। उसे द्रोणगिरिके अतिरिक्त द्रोणाचल, द्रोणिमान् और तोणिमान् भी कहते थे।

किन्तु कठिनाई यह रह जाती है कि लाट देश (गुजरात) में किसी द्रोणगिरिके होनेकी

कोई सूचना नहीं है। किसी प्राचीन स्थलकोशसे भी इसका समर्थन नहीं होता। इसी प्रकार वर्तमानमें जहाँ द्रोणगिरि (छतरपुरके निकट) माना जाता है, उसके निकट फलहोड़ी गाँवका पता सरकारी कागजोंसे भी नहीं लगता। कुछ विद्वान् फलहोड़ी और फलौधी (मारवाड़) की किंचित् समानताके कारण फलहोड़ीकी पहचान फलौधीसे करते हैं और उसको द्रोणगिरिके साथ सम्बद्ध करनेका निष्फल प्रयास करते हैं, जबकि वहाँ द्रोणगिरि नामक पर्वत है ही नहीं। इन सब स्थितियोंपर विचार करनेपर हमें लगता है कि कुछ शताब्दियोंसे तो द्रोणगिरि (छतरपुरके निकट-वाला) तीर्थक्षेत्र माना ही जा रहा है। सम्भव है, वहाँपर मन्दिर बनानेवालोंको मान्यता-विषयक परम्पराका समर्थन मिला हो।

सभी सम्भावनाओं और फलितार्थोंपर विचार करनेके पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि शताब्दियोंसे जिसे सिद्धक्षेत्रके रूपमें मान्यता और जनताकी श्रद्धा प्राप्त है, वह तीर्थक्षेत्र तो है ही। विशेषतः उस स्थितिमें, जबकि किसी दूसरे द्रोणगिरिकी सम्भावना नहीं है। अतः वर्तमान द्रोणगिरि ही सिद्धक्षेत्र है, यह मान लेना पड़ता है।

क्षेत्र-दर्शन

द्रोणगिरिकी तलहटीमें सेंधपा गाँव बसा हुआ है। गाँवमें एक जैन मन्दिर है। यहीं जैन धर्मशालाएँ बनी हुई हैं। धर्मशालासे दक्षिणकी ओर दो फर्लांग दूर पर्वत है। पर्वतके दायें और बायें बाजूसे काठिन और श्यामली नदियाँ सदा प्रवाहित रहती हैं। ऐसा प्रतीत होता है, मानों ये सदानीरा पार्वत्य सरिताएँ इस सिद्धक्षेत्रके चरणोंको पखार रही हों। पर्वत विशेष ऊँचा नहीं है। पर्वतपर जानेके लिए २३२ पक्की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। चारों ओर वृक्षों और वनस्पतियोंने मिलकर क्षेत्रपर सौन्दर्य-राशि बिखेर दी है।

पर्वतके ऊपर कुल २८ जिनालय बने हुए हैं। इनमें तिगोड़ावालोंका मन्दिर सबसे प्राचीन है। इसे ही बड़ा मन्दिर कहा जाता है। इसमें भगवान् आदिनाथकी एक सातिशय प्रतिमा संवत् १५४९ की विराजमान है। सम्मेदशिखरके समान यहाँपर भी चन्द्रप्रभ टोंक, आदिनाथ टोंक आदि टोंक हैं। यहाँ १३॥ फुट ऊँची एक प्रतिमाका भी निर्माण हुआ है।

अन्तिम मन्दिर पार्श्वनाथ स्वामीका है। उसके नीचे ३ गज ऊँची, १॥ गज चौड़ी और ४-५ गज लम्बी एक गुफा बनी हुई है। इस गुफाके सम्बन्धमें विचित्र प्रकारकी विविध किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। एक किंवदन्ती यह है कि सेंधपा गाँवका रहनेवाला एक भील प्रतिदिन इस गुफामें जाया करता था और वहाँसे कमलका एक सुन्दर फूल लाया करता था। उसका कहना था कि गुफाके अन्तमें दीवारमें एक छोटा छिद्र है। उसमें हाथ डालकर वह फूल तोड़कर लाता था। उस छिद्रके दूसरी ओर एक विशाल जलाशय है। उसमें कमल खिले हुए हैं। वहाँ अलौकिक प्रभा-पुंज है। बिलकुल इसी प्रकारकी किंवदन्ती मांगीतुंगी क्षेत्रपर भी प्रचलित है।

एक दूसरी किंवदन्ती है कि यह गुफा १४-१५ मील दूर भीमकुण्ड तक गयी है।

पर्वतकी तलहटीसे एक मील आगे जानेपर श्यामली नदीका भराव है, जिसे कुंडी कहते हैं। वहाँ दो जलकुण्ड पास-पासमें बने हुए हैं, जिनमें एक शीतल जलका है और दूसरा उष्ण जलका। यहाँ चारों ओर हर्र, बहेड़ा, आँवला आदि वनौषधियोंका बाहुल्य है। यहाँका प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त आकर्षक है। इस वनमें हरिण, नीलगाय, रोज आदि वन्य पशु निर्भयतापूर्वक विचरण करते हैं। कभी-कभी सिंह, तेंदुआ या रीछ भी इधर जल पीने आ जाते हैं।

पर्वतपर स्थित जिनालयोंका विवरण इस प्रकार है—

१. सुपार्श्वनाथ मन्दिर—प्रतिमा श्वेतवर्ण, २ फुट ४ इंच ऊँची, पद्मासन। प्रतिष्ठा-काल संवत् १९३८।

२. चन्द्रप्रभ मन्दिर—प्रतिमा श्वेतवर्ण, पद्मासन, १ फुट ७ इंच अवगाहना। वि. संवत् २०२१ में प्रतिष्ठित।

३. पार्श्वनाथ मन्दिर—पाषाणकी कृष्णवर्ण, २ फुट ७ इंच ऊँची, पद्मासन प्रतिमा। विक्रम संवत् १९१८ माघ सुदी ५ चन्द्रवारको प्रतिष्ठित। इस प्रतिमाके ऊपर सहस्र फणावलि सुशोभित है।

४. आदिनाथ मन्दिर—कृष्णवर्ण, पद्मासन, ३ फुट ३ इंच उत्तुंग प्रतिमा। विक्रम संवत् १९१८ माघ सुदी ५ चन्द्रवारको प्रतिष्ठित। एक दीवारमें संवत् १९१८ का एक शिलालेख है।

५. अजितनाथ मन्दिर—मूँगिया वर्ण, पद्मासन, १ फुट १० इंच अवगाहनावाली प्रतिमा। विक्रम संवत् १९१८ माघ सुदी ५ चन्द्रवासरमें प्रतिष्ठित।

६. आदिनाथ मन्दिर—श्वेतवर्ण, १ फुट १० इंच उत्तुंग, पद्मासन प्रतिमा। वि. सं. १९१८ माघ सुदी ५ को प्रतिष्ठित।

७. चन्द्रप्रभ मन्दिर—श्वेतवर्ण, १ फुट १० इंच अवगाहनावाली पद्मासन प्रतिमा। वि. सं. १८९२ में प्रतिष्ठित। वेदी ३ दरकी है।

८. चन्द्रप्रभ मन्दिर—श्वेतवर्ण, २ फुट २ इंच अवगाहनावाली पद्मासन प्रतिमा। वि. सं. १९८१ माघ सुदी १४ को प्रतिष्ठित।

९. पार्श्वनाथ मन्दिर—मूँगिया वर्ण, पद्मासन प्रतिमा, ३ फुट ३ इंच अवगाहना, वि. सं. १९०७ फागुन सुदी १० शुक्रवारको प्रतिष्ठित। सप्त-फणवाली है।

१०. पार्श्वनाथ मन्दिर—शुक्लवर्ण, पद्मासन प्रतिमा, २ फुट ६ इंच अवगाहना। वि. सं. १९०७ फागुन वदी १० को प्रतिष्ठित। सप्त-फणवाली है।

११. पार्श्वनाथ मन्दिर—प्रतिमा श्वेतवर्ण, पद्मासन, २ फुट ८ इंच अवगाहना। लेख नहीं है। नौ फणवाली है।

१२. नेमिनाथ मन्दिर—कृष्णवर्ण, पद्मासन, २ फुट ६ इंच उत्तुंग प्रतिमा। वि. सं. १९३७ चैत्र सुदी २ रविवारको प्रतिष्ठित।

१३. चन्द्रप्रभ मन्दिर—श्वेतवर्ण, पद्मासन, १ फुट ९ इंच उत्तुंग प्रतिमा। वि. सं. १९७५ चैत्र सुदी ५ सोमवारको प्रतिष्ठित।

१४. महावीर मन्दिर—श्वेतवर्ण, पद्मासन, १ फुट ११ इंच उत्तुंग प्रतिमा। वि. सं. २०११ में प्रतिष्ठित।

१५. पार्श्वनाथ मन्दिर—श्वेतवर्ण, पद्मासन, १ फुट १० इंच उत्तुंग प्रतिमा। वि. सं. १५४५ में प्रतिष्ठित। दूसरी वेदीमें भी पार्श्वनाथ हैं।

१६. नमिनाथ मन्दिर—कृष्णवर्ण, पद्मासन प्रतिमा। वि. सं. १८२५ में प्रतिष्ठित।

१७. शान्तिनाथ मन्दिर—कृष्णवर्ण, पद्मासन, १ फुट १० इंच उत्तुंग प्रतिमा। वि. सं. १९५२ फागुन वदी २ सोमवारको प्रतिष्ठित।

१८. अटारीपर—आदिनाथ मन्दिर—श्वेतवर्ण, पद्मासन, २ फुट ४ इंच उत्तुंग प्रतिमा। मूर्ति-लेख नहीं है।

१९. आदिनाथ बड़ा मन्दिर—श्वेतवर्ण, पद्मासन, २ फुट ७ इंच उत्तुंग प्रतिमा। वि. सं.

१५४९। यह मन्दिर सबसे प्राचीन है। प्रतिमा अत्यन्त मनोज्ञ है। लोग इसे ही बड़े बाबाके नामसे पुकारते हैं और यहींपर विशेष रूपसे पूजनादि करते हैं।

२०. सुपार्श्वनाथ मन्दिर—कृष्णवर्ण, पद्मासन, २ फुट २ इंच ऊँची प्रतिमा। वि. सं. १९०७ फागुन बदी १२ शुक्रवारको प्रतिष्ठित। पादपीठपर स्वस्तिक चिह्न उलटा है।

२१. मेरु मन्दिर—३ कटनीका मेरु बना हुआ है। १ फुट १० इंच ऊँची श्वेतवर्ण पाषाणकी प्रतिमा है। प्रतिमा भगवान् ऋषभदेवकी है। यह देशी पाषाणकी खड्गासन है। प्रतिमाके सिरके पीछे भामण्डल और सिरके ऊपर छत्रत्रयी है। प्रतिमाके सिरपर जटाएँ हैं जो कन्धेपर लहरा रही हैं। सिरके दोनों पार्श्वोंमें गन्धर्व पुष्पवर्षा कर रहे हैं। हाथीकी पीठपर इन्द्र बैठे हुए हैं। त्रिभंग मुद्रामें ऋषभदेवकी सेवामें चमरेन्द्र खड़े हैं। उनके नीचे करबद्ध मुद्रामें भक्त श्रावक-श्राविका हैं। बगलमें वृषभ लांछन है।

२२. पार्श्वनाथ मन्दिर—कृष्णवर्ण, पद्मासन, ३ फुट ऊँची प्रतिमा। फाल्गुन कृष्णा १२ संवत् १९०७ को प्रतिष्ठित। यह ११ फणावलियुक्त है।

२३. आदिनाथ मन्दिर—कुछ श्याम, पद्मासन, १ फुट १ इंच अवगाहनावाली प्रतिमा। संवत् १९०१ माघ सुदी ५ सोमवारको प्रतिष्ठित। जटाएँ कन्धोंपर लहरा रही हैं।

२४. मानस्तम्भ—भूरे देशी पाषाणका, ९ फुट ६ इंच ऊँचा यह गोलाकार स्तम्भ ६ फुट २ इंच × ६ फुट २ इंचके कमरेमें बीच अवस्थित है। इसके शीर्षपर तीन दिशाओंमें खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ है और एक दिशामें पद्मासन। उनके ऊपर २-२ पंक्तियोंमें १२-१२ खड्गासन मूर्तियाँ हैं जो प्रायः ३ इंचकी हैं। फर्शमें एक फुट नीचे तक स्तम्भका भाग खुला हुआ है। स्तम्भके इस भागमें चारों दिशाओंमें पद्मावती चक्रेश्वरी आदि चार शासन-देवियाँ उत्कीर्ण हैं। इसका जीर्णोद्धार साहू जैन ट्रस्टकी ओरसे हो चुका है।

२५. चन्द्रप्रभ मन्दिर—श्वेतवर्ण, पद्मासन, ९ इंच अवगाहनावाली प्रतिमा। वि. सं. १८११ में प्रतिष्ठित।

२६. नेमिनाथ मन्दिर—कृष्णवर्ण, पद्मासन, ११ इंच अवगाहनावाली प्रतिमा। वि. सं. १९३१ चैत सुदी ४ को प्रतिष्ठित हुई।

२७. पार्श्वनाथ मन्दिर—श्वेतवर्ण, पद्मासन, १० इंच अवगाहनावाली प्रतिमा। सं. १५४८ में प्रतिष्ठित। मूर्तिपर फण नहीं हैं। सर्प लांछन है।

२८ पार्श्वनाथ मन्दिरके पास पर्वतपर जो गुफा है, उसके बायीं ओर इन्दौरकी सेठानी प्यार कुँवरबाईजीने संवत् १९९६ में एक कमरेमें ३ हाथ ऊँची और ४ हाथ चौड़ी देशी पाषाणकी वेदीपर गुरुदत्त मुनिराजके चरण विराजमान कराये थे। वे अब वहाँसे उठाकर मूर्तियोंके आगे रख दिये गये हैं। इस कमरेमें दलीपुर और गोलगंज ग्रामोंसे लायी हुई कुछ प्राचीन मूर्तियाँ रखी हैं। इन मूर्तियोंमें मन्दिर नं. २ की वह पार्श्वनाथ मूर्ति भी है, जिसे किसी अज्ञ ग्वालेने लाठोसे दायीं भुजा और कन्धेको खण्डित कर दिया था और मन्दिरमें इस मूर्तिके स्थानपर अन्य मूर्ति विराजमान कर दी थी। पार्श्वनाथकी यह मूर्ति कृष्णवर्ण, पद्मासन है और इसकी अवगाहना ३ फुट ६ इंच है।

निर्वाण-गुफा

अन्तिम पार्श्वनाथ मन्दिरके नीचे एक प्राकृतिक गुफा है। वह विशेष लम्बी-चौड़ी नहीं है। उसकी गहराई जाननेका कोई साधन भी नहीं है। गुफाके बाह्य भागमें गुरुदत्तादि मुनियोंके

चरण-चिह्न विराजमान हैं। विश्वास किया जाता है कि इसी गुफामें तपस्या करते हुए उन्हें मुक्ति प्राप्त हुई थी।

ग्राम-मन्दिर

सेंधपा ग्राममें केवल एक आदिनाथ मन्दिर है। इसमें दो वेदियाँ बनी हुई हैं, जिनपर क्रमशः ऋषभदेव और शान्तिनाथ मूलनायकके रूपमें विराजमान हैं। भगवान् ऋषभदेवकी प्रतिमा श्वेतवर्ण, पद्मासन है जो वि. संवत् १९०३ में प्रतिष्ठित हुई। यह २ फुट १० इंच उन्नत है। इसके समवसरणमें पाषाणकी २ और धातुकी ५९ मूर्तियाँ विराजमान हैं। इसी प्रकार दूसरी वेदीपर शान्तिनाथ भगवान्की मूर्ति श्वेतवर्ण, पद्मासन और १ फुट ७ इंच ऊँची है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् २०११ में हुई थी।

द्रोणगिरि और वर्णीजी

पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णीको ईसरीके बाद द्रोणगिरि ही सबसे प्रिय क्षेत्र था। वे प्रायः कहते थे कि यह छोटा सम्मेदशिखर है। उन्होंने अपनी जीवन-गाथामें लिखा है—"द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र बुन्देलखण्डके तीर्थक्षेत्रोंमें सबसे अधिक रमणीय है। हरा-भरा पर्वत और बहती हुई युगल नदियाँ देखते ही बनती हैं। पर्वत अनेक कन्दराओं और निर्झरोंसे सुशोभित है। श्री गुरुदत्त आदि मुनिराजोंने अपने पवित्र पादरजसे इसके कण-कणको पवित्र किया है। यह उनका मुक्ति-स्थान होनेसे निर्वाण-क्षेत्र कहलाता है। यहाँ आनेसे न जाने क्यों मनमें अपने-आप असीम शान्ति का संचार होने लगता है।"

धर्मशालाएं

क्षेत्रपर कुल ३ धर्मशालाएँ हैं, जिनमें कुल ३ कमरे बने हुए हैं। क्षेत्रपर बिजली है तथा जलके लिए कुएँ हैं। क्षेत्रपर गद्दे, रजाइयाँ, बरतन, चारपाई आदिकी व्यवस्था है तथा क्षेत्रसे आटा, दाल आदि खाद्य वस्तुएँ भी मिल सकती हैं।

वार्षिक-मेला

क्षेत्रपर प्रतिवर्ष फाल्गुन कृष्णा १ से ५ तक वार्षिक मेला होता है।

क्षेत्र-व्यवस्था

इस क्षेत्रकी व्यवस्था निर्वाचित प्रबन्ध समिति करती है। क्षेत्रकी सारी व्यवस्थाके अतिरिक्त क्षेत्रपर स्थित श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय और मलहरामें स्थित जनता उच्चतर माध्यमिक विद्यालयकी व्यवस्था भी यही समिति करती है। इनके अतिरिक्त क्षेत्रपर अन्य जो भी संस्थाएँ हैं, उनका भी संचालन यही समिति करती है।

क्षेत्रपर स्थित संस्थाएँ

इस क्षेत्रपर निम्नलिखित संस्थाएँ कार्य कर रही हैं—श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय और दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम। द्रोणगिरि क्षेत्रके विद्यालयकी एक शाखा गुरुकुलके रूपमें मलहरा ग्राममें चल रही थी। कुछ वर्षोंसे वह जनता उच्चतर माध्यमिक विद्यालय बन गया है। उसके साथ ही श्री गणेशप्रसाद वर्णी दिगम्बर जैन छात्रावास भी है। उदासीनाश्रम क्षेत्रसे लगभग तीन फर्लांग दूर है। उसका अपना सुन्दर भवन है। उसके सामने एक विशाल

जिनालयका निर्माण हो रहा है जिसमें बाहुबली स्वामीके अतिरिक्त २४ तीर्थंकर मूर्तियाँ विराजमान की जायेंगी।

क्षेत्रपर शिकार-निषेधका राजकीय आदेश

बिजावर-नरेश राजा भानुप्रताप (रियासतोंके विलीनीकरणसे पूर्व) के समयसे इस तीर्थपर शिकार आदि खेलना राज्यकी ओरसे निषिद्ध है। इससे सम्बन्धित फरमान, जो राजदरबारसे जारी किया गया था, इस प्रकार है—

"नकल हुकम दरबार बिजावर इजलास जनाव येतमाहराम मुंशी शंकरदयाल साहब दीवान रियासत मुसवते दरख्वास्त जैन पंचान सभा सेंधपा जरिये दुलीचन्द वैशाखिया अजना संरक्षक जैन सभा मारु जे २२ मई सन् १९३१ (ईसवीय दरख्वास्त फर्माये जाने हुकम न खेलने शिकार क्षेत्र द्रोणगिरि वाके मौजा सेंधपापर अनीज इसके कि बिला इजाजत जैन सभा दीगर कौमके लोग क्षेत्र मजकूरपर न जा सकें हुकमी इजलास खास रकम जदे २५ मई सन् १९३१ ईसवीय ऐमाद कराये जाने मुस्तहरी कोई शख्स बगैर इजाजत जैन सभा पर्वतपर न जाये न शिकार खेले। (मुहर)

हुकम हुआ जरिये परवा मुहकमा जंगल अ मुहकमा पुलिसके वास्ते तामील इत्तला दी जावे। तारीख २८ मई सन् १९३१ ई।"

इस फरमान द्वारा द्रोणगिरि पर्वतपर जैन समाजका पूरा अधिकार माना गया है तथा जैन सभाकी आज्ञाके बिना शिकार खेलनेपर पाबन्दी लगा दी गयी है। यद्यपि रियासतोंके समाप्त होनेपर उनके कानून और आदेश भी समाप्त हो गये हैं किन्तु यह आदेश कानूनके रूपमें नहीं, परम्पराके रूपमें अब भी प्रचलित और मान्य है।

दुखद घटनाएँ

इस शताब्दीमें क्षेत्रपर दो अत्यन्त दुखद घटनाएँ घटित हुईं। एक तो वीर संवत् २४२० में। इस समय एक चरवाहेने पार्श्वनाथ मन्दिरमें प्रतिमाके हाथोंके बीचमें लाठी फँसाकर उसे खण्डित कर दिया था। दूसरी घटना वीर संवत् २४५७ के लगभग हुई। उस समय किसीने पार्श्वनाथ स्वामीकी मूर्तिकी नासिकासे खण्डित कर दिया था। अपराधी बादमें पकड़ा गया था और उसे दण्ड भी दिया गया था। ये घटनाएँ अपराधियोंकी अज्ञानतासे हुई थीं।

रेशन्दीगिरि

निर्वाण-क्षेत्र

श्री रेशन्दीगिरि निर्वाण-क्षेत्र है। इस क्षेत्रका दूसरा नाम नैनागिरि भी है। प्राकृत निर्वाण-काण्डमें इस क्षेत्रके विषयमें निम्नलिखित उल्लेख आया है।

'पासस्स समवसरणे सहिया वरदत्त मुणिवरा पंच।
रिस्सिदे गिरिसिहरे णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥१९॥'

अर्थात्, भगवान् पार्श्वनाथके समवसरणमें स्वहितके इच्छुक वरदत्त आदि पाँच मुनिराज रेशन्दीगिरिके शिखरसे मोक्ष गये। उन्हें नमस्कार है।

ये वरदत्त आदि पाँच मुनिवरोंके क्या नाम थे, यह किसी पुराण-ग्रन्थमें देखनेमें नहीं आया। किन्तु इस क्षेत्रके पर्वतस्थित प्रथम मन्दिरमें उन पाँचों मुनियोंकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं और उनके नाम इस प्रकार अंकित हैं—मुनीन्द्रदत्त, इन्द्रदत्त, वरदत्त, गुणदत्त और सागरदत्त। इस गाथासे इतना ज्ञात होता है कि ये पाँच मुनि भगवान् पार्श्वनाथके समवसरणमें और उनके मुनि-संघमें थे।

इस गाथाके अर्थ और पाठके सम्बन्धमें विद्वानोंमें कुछ मतभेद है। कुछ विद्वान् इस गाथासे यह आशय निकालते हैं कि पार्श्वनाथ भगवान्का समवसरण इस क्षेत्रपर आया था। उनके इस प्रकारका आशय निकालनेका आधार सम्भवतः भैया भगवतीदास द्वारा किया हुआ इस गाथाका पद्यात्मक हिन्दी अनुवाद है जो इस प्रकार है—

'समवसरण श्री पार्श्व जिनंद। रेसिंदीगिरि नयनानंद।
वरदत्तादि पंच ऋषिराज। ते बन्दौ नित धरम जिहाज॥'

इस हिन्दी अनुवादमें रेशन्दीगिरिपर पार्श्वनाथके समवसरणके आगमनविषयक कोई क्रिया-पद नहीं है और न वरदत्त आदि पाँच मुनियोंके वहाँसे मुक्ति-गमनसे सम्बन्धित ही कोई क्रियापद है। सम्भवतः इसीसे कुछ लोग यह आशय निकालते हैं कि पार्श्वनाथका समवसरण इस क्षेत्रपर आया था। वस्तुतः यह हिन्दी अनुवाद त्रुटिपूर्ण है। मूल गाथासे ऐसा कोई आशय व्यक्त नहीं होता। किन्तु कुछ विद्वान् यह कहते हैं कि इस गाथाको देखते हुए यह निश्चित धारणा जमती है कि रेशन्दीगिरिपर पार्श्वनाथका समवसरण आया था क्योंकि इस गाथामें स्पष्ट उल्लेख है कि पार्श्वनाथके समवसरणमें स्थित वरदत्त आदि पाँच मुनि रेशन्दीगिरिसे मुक्त हुए, क्योंकि यदि पार्श्वनाथका समवसरण यहाँ न आया होता तो आचार्य 'पार्श्वनाथके समवसरणमें स्थित' यह विशेष पद क्यों रखता। आचार्यने यह पद वस्तुतः एक विशेष उद्देश्यसे दिया है। वह उद्देश्य यह है कि इस क्षेत्रपर पार्श्वनाथका समवसरण जब आया, तभी पाँच मुनियोंने तप किया और शुक्लध्यान द्वारा कर्मोंका नाश कर यहाँसे निर्वाण प्राप्त किया। इसी स्थितिमें 'पार्श्वनाथके समवसरणमें स्थित' इस पदकी सार्थकता है।

कुछ विद्वान् 'रिस्सिन्दे' इस पाठको अशुद्ध मानकर इसके स्थानपर 'रिस्सद्धि' शुद्ध पाठ मानते है और उसका अर्थ ऋष्यद्रि अर्थात् ऋषिगिरि करते हैं। ऋषिगिरि राजगृहीके पाँच पहाड़ों-में-से एक पहाड़ है। ये विद्वान् वरदत्त आदि मुनियोंका निर्वाण-स्थान रेशन्दीगिरि न मानकर ऋषिगिरिको मानते हैं। इन विद्वानोंने इस पाठ-भेदकी कल्पना किस आधारपर की, यह स्पष्ट नही हो पाया। लगता है, संस्कृत निर्वाण-भक्तिके 'ऋष्यद्रिके च विपुलाद्रि बलाहके च' इस पदके 'ऋष्यद्रिके' पाठसे उन्हें ऐसी कल्पना करनेकी प्रेरणा प्राप्त हुई होगी। किसी प्रतिमें 'रिस्सद्धि' यह पाठ नहीं मिलता।

वस्तुतः 'रिस्सिन्दे' पाठ सर्वथा शुद्ध है। उसका संस्कृत रूप 'रिष्यन्दे अथवा ऋष्यन्दे' बनता है। ऋष्यन्दगिरिका अपभ्रंश होकर रेशन्दगिरि, फिर बोलचालमें रेशन्दीगिरि हो गया।

पं. पन्नालालजी सोनी द्वारा सम्पादित 'क्रियाकलाप'में यह गाथा निम्नलिखित रूपमें दी गयी है—

पासस्स समवसरणे गुरुदत्तवरदत्तपंचरिसिपमुहा।
गिरिसिंदे गिरिसिहरे णिव्वाण गया णमो तेसिं॥

इस पाठके अनुसार पार्श्वनाथके समवसरणमें स्थित गुरुदत्त, वरदत्त आदि पाँच मुनि गिरीशेन्द्र (हिमालय)के शिखरसे मुक्त हुए। इस मान्यताका समर्थन किसी अन्य स्रोतसे नहीं होता।

१७वीं शताब्दीमें हुए पं. चिमणा पण्डितने मराठी भाषामें 'तीर्थवन्दना' लिखी है। उसमें उन्होंने भी गुरुदत्त और वरदत्त मुनियोंका नामोल्लेख करके उनका मुक्ति-स्थान रेशन्दीगिरि ही माना है। इसका मूल पाठ इस प्रकार है।

'समोसरनरम्य श्री पासोजीचे। रीसिंदेगिरि आले होते तयाचे।
तेथे गुरुदत्त मुनि वरदत्त। तपे झाले पंच यति मुक्तिकांत ॥२४॥'

इसी प्रकार सोलहवीं शताब्दीके विद्वान् मेघराजने मराठीमें तीर्थवन्दना लिखी है। उसमें उन्होंने भी रेशन्दीगिरिका ही नाम दिया है। इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

'वलि मुनि सिद्ध वहुत वरदत्त रंग आदि करीए।
रीसंदीगिरिवर जाण तेहु वांदु भाव धरीए ॥१४॥'

गुरुदत्त-वरदत्तसम्बन्धी पाठभेद विशेष महत्त्वका नहीं है। सम्भव है, पाँच मुनियोंमें गुरुदत्त और वरदत्त नामक दो मुनि भी रहे हों। किन्तु 'रिस्सिन्दे'के स्थानपर 'रिस्सद्धि' या अन्य किसी पाठकी कल्पना बड़ी क्लिष्ट कल्पना है। परम्परागत रूपसे रेशन्दीगिरिको ही निर्वाण-स्थान माना जाता है। तीर्थवन्दनसम्बन्धी सभी पाठोंमें रेशन्दीगिरिका ही नाम आता है।

रेशन्दीगिरिका नाम नैनागिरि क्यों और किस प्रकार पड़ा, इसका कोई युक्ति-संगत कारण नहीं मिलता। किसी ग्रन्थमें रेशन्दीगिरिका नाम नैनागिरि आया हो, ऐसा भी देखनेमें नहीं आया। भैया भगवतीदासने निर्वाण-काण्डका जो भाषानुवाद किया है, उसमें 'रेशन्दीगिरि नैनानन्द' आया है। इसमें नैनानन्द रेशन्दीगिरिका विशेषण-परक पद है। सम्भव है, भैया भगवतीदासके कालमे रेशन्दीगिरिको नैनागिरि भी कहा जाता हो और नैनानन्द पदसे उसीकी ओर संकेत किया गया हो।

हमे इसमें तो तनिक भी सन्देह नहीं है कि वर्तमान रेशन्दीगिरि ही निर्वाण-क्षेत्र रहा है और किसी कारणसे भी हो, इसे ही नैनागिरि कहा जाता है।

पुरातत्त्व

यहाँ क्षेत्रपर तथा उसके आसपास कुछ पुरातत्त्व-सामग्री प्राप्त होती है। यहाँ जो मूर्तियाँ खुदाईमें निकली हैं, वे अनुमानतः ११वीं शताब्दीकी हैं। अनुश्रुति है कि लगभग १०० वर्ष पहले बम्होरीनिवासी चौधरी श्यामलालजीको स्वप्न आया। उसमे उन्होंने रेशन्दीगिरि पर्वतपर एक मन्दिर देखा। जब उनकी नींद खुली तो उन्होंने अपने स्वप्नकी चर्चा अन्य धर्म-बन्धुओंसे की। तब निश्चय हुआ कि क्षेत्रपर जाकर खुदाई करायी जाये। क्षेत्रपर स्वप्नमे देखे हुए स्थानपर खुदाई करायी गयी। वहाँ एक प्राचीन मन्दिर भूगर्भसे उत्खननके फलस्वरूप निकला। यह पार्श्वनाथ मन्दिर कहलाता है। क्षेत्रपर जो प्राचीन मूर्तियाँ निकली हैं, वे भी इसी मन्दिरमें रखी हुई है। यही मन्दिर यहाँका सबसे प्राचीन मन्दिर कहलाता है। एक शिलालेखके अनुसार, जो मन्दिरकी दीवारमे लगा हुआ है, इस मन्दिरका निर्माण सं. ११०९ मे हुआ है। इस प्रकार यह मन्दिर एक हजार वर्षसे भी अधिक प्राचीन है।

इस मन्दिरमें भूगर्भसे प्राप्त १३ प्राचीन मूर्तियाँ रखी हुई हैं। वे अपनी रचना-शैलीसे ही मन्दिरकी समकालीन प्रतीत होती हैं। पुरातत्त्व-सामग्रीमें एक वेदिका भी है जो क्षेत्रसे लगभग एक मील दूर जंगलमें है। इसे भी ११वीं-१२वीं शताब्दीका बताया जाता है, यद्यपि यह इतनी प्राचीन नहीं है। इसके अतिरिक्त यहाँ और कोई पुरातत्त्व-सामग्री नहीं मिली है।

क्षेत्र-दर्शन

यह पहाड़ी साधारण ऊँची है। यहाँ ३६ जिनालय पहाड़ीके ऊपर हैं और १५ जिनालय मैदानमें सरोवरके निकट हैं। इस प्रकार यहाँ जिनालयोंकी कुल संख्या ५१ है तथा १ मानस्तम्भ है। इनमें-से ३७ मन्दिर शिखरबद्ध हैं। एक मन्दिर सरोवरके मध्यमें पावापुरीके समान बना हुआ है। इसे जल-मन्दिर कहते हैं।

तलहटीके मन्दिर एक परकोटेके अन्दर बने हुए हैं।

यह क्षेत्र अपनी प्राकृतिक सुषमाके साथ आध्यात्मिक साधनाका केन्द्र रहा है। इसी प्राकृतिक वैभवसे आकर्षित होकर इस एकान्त निर्जन स्थानमें वरदत्त आदि मुनीश्वरोंने इसे अपनी साधना-स्थली बनाया और यहाँसे मुक्ति प्राप्त करके इसे सिद्धक्षेत्र होनेका गौरव प्रदान किया।

पर्वतके मन्दिर

१. पार्श्वनाथ मन्दिर—भगवान् पार्श्वनाथकी बादामी वर्णकी यह खड्गासन प्रतिमा ११ फुटकी (आसनसहित १६ फुट) है। इसकी प्रतिष्ठा वीर सं. २४७८ (विक्रम सं. २००९) में हुई। इस प्रतिमाके सिरपर सर्प-फणावली नहीं है। चरण-चौकीपर सर्पका लांछन है जो पार्श्वनाथ तीर्थंकरका लांछन है। सिरके पृष्ठभागमें सुन्दर भामण्डल है तथा ऊपर छत्रत्रयी सुशोभित है। परिकरमें विमानमें बैठे हुए देव, चमरेन्द्र और वाद्यवादक हैं।

मुख्य वेदियोंके अतिरिक्त ६ वेदियाँ और २२ लघु वेदिकाएँ (आले) हैं, जिनमें २४ तीर्थंकरोंकी संवत् २४८२ की प्रतिमाएँ हैं। इसके अलावा पार्श्वनाथके गर्भगृहके दरवाजेपर एक ओर ५ फुट ६ इंच ऊँची बाहुबली स्वामीकी खड्गासन प्रतिमा है। एक वेदीमें यहाँसे मुक्त हुए मुनिराज मुनीन्द्रदत्त, इन्द्रदत्त, वरदत्त, गुणदत्त और सायरदत्तकी खड्गासन श्वेत वर्णकी मूर्तियाँ विराजमान हैं। इस मन्दिरमें मूर्तियोंकी कुल संख्या ३८ है।

भक्तजन इस मन्दिरको 'बड़े बाबाका मन्दिर', 'चौबीसी जिनालय' आदि कई नामोंसे पुकारते हैं। यह मन्दिर बहुत विशाल है।

२. पार्श्वनाथ मन्दिर—ऊपर दूसरी मंजिलपर यह मन्दिर है। इसमें भगवान् पार्श्वनाथकी कृष्ण पाषाणकी १ फुट ४ इंच अवगाहनावाली पद्मासन प्रतिमा विराजमान है, जिसकी प्रतिष्ठा वीर संवत् २४६५ में हुई।

३. नेमिनाथ मन्दिर—भगवान् नेमिनाथकी श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा है। इसकी प्रतिष्ठा सं. २०१२ में हुई।

४. चन्द्रप्रभ मन्दिर—चन्द्रप्रभ भगवान्की श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा है, जिसकी अवगाहना १ फुट ३ इंच है।

५. अजितनाथ जिनालय—कृष्ण पाषाणकी अजितनाथ भगवान्की १ फुट १० इंच ऊँची प्रतिमा है। मूर्ति-लेख नहीं है।

६. आदिनाथ जिनालय—१ फुट ६ इंच अवगाहनावाली आदिनाथ भगवान्की कृष्ण पाषाणकी यह पद्मासन प्रतिमा संवत् १८५८ में प्रतिष्ठित हुई।

७. आदिनाथ जिनालय—आदिनाथ भगवान्की श्वेत पाषाणकी यह प्रतिमा आसनसहित ३ फुट ७ इंच है। यह पद्मासन है और इसकी प्रतिष्ठा संवत् १८५८ में हुई है। इसके आगे वरदत्तादि मुनियोंके दो चरण-चिह्न विराजमान हैं।

८ शान्तिनाथ जिनालय—भगवान् शान्तिनाथकी श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा २ फुट ५ इंच उन्नत है। यह वीर सं. २४९० में प्रतिष्ठित हुई है। इसके आगे तीन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। तीनों ही साढ़े सात इंच ऊँची हैं और सं. १५४८ में प्रतिष्ठित हुई हैं। इनमें चन्द्रप्रभकी दो श्वेत वर्णकी हैं और पार्श्वनाथकी एक कृष्ण वर्णकी है।

९. शान्तिनाथ जिनालय—इसमें शान्तिनाथ भगवान्की श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा है। इसकी अवगाहना १ फुट ७ इंच है तथा इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९४३ में हुई।

१०. चन्द्रप्रभ मन्दिर—मूँगिया वर्णकी चन्द्रप्रभ भगवान्‌की यह प्रतिमा १ फुट ४ इंच ऊँची है और संवत् १९४२ की प्रतिष्ठित है। इसके पार्श्वमें नमिनाथ भगवान्की साढ़े नौ इंच ऊँची श्वेत वर्णकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १५४८ में हुई है।

११. यह मन्दिर 'बड़ा मन्दिर' कहलाता है। यह उत्खननके फलस्वरूप भूगर्भसे १०० वर्ष पूर्व निकला बताया जाता है। यही वह मन्दिर है जिसकी चर्चा जैन पुरातत्त्वके सन्दर्भमें पूर्वमें की जा चुकी है। मन्दिरके साथ १३ मूर्तियाँ भी भूगर्भसे प्राप्त हुई थी और वे भी इसी मन्दिरमें विराजमान हैं। इस मन्दिर और मूर्तियोंकी प्राचीनता बतानेवाला एक शिलालेख इस मन्दिरकी एक दीवारमें लगा हुआ है जिसमें प्रतिष्ठा-काल संवत् ११०९ अंकित है।

मन्दिरकी मूलनायक प्रतिमा भगवान् पार्श्वनाथकी है। यह ४ फुट ७ इंच उन्नत है, खड्गासन है और संवत् २०१५ में इसकी प्रतिष्ठा हुई। भूगर्भसे प्राप्त १३ मूर्तियोंमें-से ९ मूर्तियाँ मुख्य वेदीपर विराजमान हैं और शेष ४ मूर्तियाँ अलग-अलग चबूतरोंपर हैं। इन मूर्तियोंमें एक गोमेद यक्ष और अम्बिकाकी मूर्ति है जो ३ फुट ऊँची है। यह देशी पाषाणकी और भूरे वर्णकी है। देवी गोदमें बालक लिये हुए है। यक्ष-यक्षी दोनों ही अलंकारोंसे सज्जित है। दोनोंके किरीट अत्यन्त कलात्मक है। दोनोंके ऊपर जो आम्र-स्तवक है, उसकी कला भी असाधारण है। आम्र-शाखाओंपर एक बानर चढ़ता हुआ दिखाई देता है। उसके ऊपर नेमिनाथ तीर्थंकरकी पद्मासन प्रतिमा है। मूर्तिके हाथ खण्डित हैं।

एक मूर्ति ४ फुट ऊँची है। यह ऋषभदेवकी पद्मासन प्रतिमा है। प्रतिमाके सिरपर तीन छत्र हैं। सिरके दोनों ओर गजराज खड़े हुए है। छत्रोंके दोनों पार्श्वोंमें माला लिये हुए नभचारी गन्धर्व है। उनके नीचे ४ खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। चरणोंके दोनों ओर चमरेन्द्र विनय-मुद्रामें खड़े है।

एक मूर्तिकी अवगाहना ३ फुट ८ इंच है। इस शिलाफलकमें दोनों ओर जो हाथी बने है, उनमें-से एक खण्डित है। चमरवाहकोंके नीचे दो भक्त हाथ जोड़े हुए बैठे है। मूर्तिके अधोभागमें यक्ष-यक्षी भी उत्कीर्ण है। मूर्तिकी छातीपर श्रीवत्स है। मूर्तिका एक कान खण्डित है।

५ फुटकी एक अन्य मूर्ति ऋषभदेवकी है। परिकर अन्य मूर्तियोंके समान है। मूर्तिके हाथ, पैर, नाक वगैरह खण्डित हैं। छत्रत्रयीके बगलमें एक ओर गज नहीं है। एक चमरेन्द्रका सिर खण्डित है।

१२. चन्द्रप्रभ जिनालय—इसमे भगवान् चन्द्रप्रभकी २ फुट ऊँची कृष्णवर्ण पद्मासन प्रतिमा है जो संवत् २००२ में प्रतिष्ठित की गयी। इस वेदीमें दो मूर्तियाँ और हैं। इनके अतिरिक्त दो प्राचीन मूर्तियाँ अलग-अलग वेदियोंमें विराजमान हैं।

१३. अभिनन्दननाथ मन्दिर—यहाँ अभिनन्दननाथ भगवान्‌की कृष्ण पाषाणकी २ फुट ७ इंच ऊँची पद्मासन मूर्ति है। इसका संवत् पढ़ा नहीं गया। इसके अतिरिक्त ३ पाषाण-मूर्तियाँ और हैं।

१४. मुनिसुव्रतनाथ मन्दिर—इसमें भगवान् मुनिसुव्रतनाथकी कृष्ण पाषाणकी पद्मासन मूर्ति वीर संवत् २४५१ में प्रतिष्ठित हुई। इसकी अवगाहना २ फुट ५ इंच है। पांच मूर्तियां और हैं। इस मन्दिरके आगे मानस्तम्भ है।

१५. मुनिसुव्रतनाथ मन्दिर—यहाँ श्वेत वर्णकी भगवान् मुनिसुव्रतनाथकी पद्मासन प्रतिमा है। यह २ फुट ६ इंच ऊँची है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९४३ में हुई।

१६. नेमिनाथ मन्दिर—यहाँ नेमिनाथकी १ फुट ३ इंच उन्नत कृष्ण वर्णकी पद्मासन प्रतिमा है। यह संवत् १९५५ में प्रतिष्ठित हुई।

१७. मुनिसुव्रतनाथ मन्दिर—इस मन्दिरमें विराजमान मुनिसुव्रतनाथ मूर्तिकी अवगाहना ३ फुटकी है। यह कृष्ण पाषाणकी है, पद्मासन है और वीर संवत् २४८२ में प्रतिष्ठित हुई है।

१८. चन्द्रप्रभ मन्दिर—भगवान् चन्द्रप्रभकी श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमाकी अवगाहना १ फुट ५ इंच है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९८३ में हुई।

१९. अजितनाथ मन्दिर—इस मन्दिरमें प्रतिष्ठित प्रतिमाकी ऊँचाई २ फुट ८ इंच है। यह श्वेत पाषाणकी पद्मासन है और संवत् १९४३ में इसकी प्रतिष्ठा हुई।

२०. नेमिनाथ मन्दिर—यहाँ वीर संवत् २४६४ में प्रतिष्ठित नेमिनाथकी १ फुट ३ इंच उन्नत कृष्ण पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा है।

२१. चन्द्रप्रभ मन्दिर—इसमे मूंगिया वर्णकी चन्द्रप्रभ भगवान्की प्रतिमा है। यह १ फुट ७ इंच ऊँची है, पद्मासन है और संवत् १९४३ में प्रतिष्ठित हुई है।

२२. पार्श्वनाथ मन्दिर—इस मन्दिरकी मूलनायक प्रतिमा भगवान् पार्श्वनाथकी है, पद्मासन है, कृष्ण पाषाणकी निर्मित है और संवत् १९४३ में इसकी प्रतिष्ठा हुई है। इस वेदीपर एक कृष्ण वर्णवाली मूर्ति और विराजमान है।

२३. नेमिनाथ मन्दिर—यहाँ भगवान् नेमिनाथकी १ फुट ७ इंच ऊँची श्वेत पाषाणकी प्रतिमा है। यह पद्मासनमें आसीन है और संवत् १९४३ में प्रतिष्ठित करायी गयी है।

२४. चन्द्रप्रभ मन्दिर—इस मन्दिरमें श्वेत पाषाणकी १ फुट उन्नत चन्द्रप्रभकी मूर्ति है। यह पद्मासन मुद्रामें आसीन है और संवत् १९४२ में प्रतिष्ठित हुई है।

२५. पार्श्वनाथ जिनालय—यहाँ भगवान् पार्श्वनाथकी श्वेत वर्णकी प्रतिमा है। यह पद्मासन है, २ फुट समुन्नत है और संवत् १९४३ में प्रतिष्ठित हुई है।

२६. चन्द्रप्रभ जिनालय—यहाँ भगवान् चन्द्रप्रभकी श्वेत पाषाणकी प्रतिमा है। यह पद्मासन है। इसका माप १ फुट २ इंच है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९४२ में हुई है। इस मूर्तिके अलावा एक कृष्ण पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा और विराजमान है।

२७. चन्द्रप्रभ जिनालय—यह प्रतिमा पद्मासन मुद्रामें विराजमान है। यह श्वेत वर्णकी है और १ फुट ऊँची है। इस मूर्तिके पीठासनपर लेख नहीं है।

२८. पार्श्वनाथ मन्दिर—इस मन्दिरमें पार्श्वनाथ भगवान्की श्वेत पाषाणकी संवत् १९९५ की प्रतिष्ठित प्रतिमा विराजमान है।

२९. चन्द्रप्रभ मन्दिर—यहाँ भगवान् चन्द्रप्रभकी यह मूर्ति १ फुट ५ इंच उत्तुंग श्वेतवर्ण और पद्मासन है।

३०. अजितनाथ मन्दिर—इस मन्दिरमें भगवान् अजितनाथकी ५ फुट अवगाहनावाली कृष्ण पाषाणकी प्रतिमा है। यह संवत् १९४८ में प्रतिष्ठित हुई है।

३१. एक गुमटीमें वरदत्तादि मुनियोंके चरण-चिह्न विराजमान है।

३२. ऋषभदेव मन्दिर—यहाँ ऋषभदेव भगवान्‌की श्वेतवर्ण, २ फुट ३ इंच ऊँची पद्मासन मूर्ति है। संवत् १९५२ में प्रतिष्ठित हुई है।

३३. चन्दप्रभ मन्दिर—इसमे चन्द्रप्रभ भगवान्‌की श्वेतवर्ण तथा १ फुट ३ इंच उत्तुंग पद्मासन प्रतिमा है। मूर्तिलेख न होनेसे प्रतिष्ठा-काल ज्ञात नहीं हुआ।

३४. अभिनन्दननाथ मन्दिर—श्वेतवर्णकी वीर संवत् २४७८ में प्रतिष्ठित और २ फुट २ इंच ऊँची अभिनन्दननाथकी पद्मासन प्रतिमा इस मन्दिरमें विराजमान है।

३५. मेरु मन्दिर—इस मन्दिरमें चरणचिह्न विराजमान हैं।

३६. मेरु मन्दिर—इस मन्दिरमें अन्तःप्रदक्षिणा-पथसे गन्धकुटी तक पहुँचते हैं। गन्धकुटीमें चन्द्रप्रभकी श्वेत पाषाणकी १ फुट २ इंच ऊँची प्रतिमा विराजमान है। यह पद्मासन है और संवत् २००८ में प्रतिष्ठित हुई है।

मानस्तम्भ—मेरु मन्दिरके निकट ही मानस्तम्भ बना हुआ है।

इस पहाड़ीपर जैन मन्दिरोंका यह गुच्छक अधिक विस्तृत भूभागमें फैला हुआ नहीं है। इसलिए दर्शन करनेमें अधिक समय नही लगता। यहाँकी प्रबन्ध समितिकी उदारताके कारण एक हिन्दू बाबाने जैन मन्दिर-गुच्छकके प्राय. मध्यमें एक हनुमान् मन्दिर बना लिया है और कुछ ही वर्षोंमे उसे काफी बढ़ा लिया है, अस्तु। मन्दिरो तक जानेका मार्ग पक्का है। प्रथम मन्दिरके बाहर कुछ प्राचीन मूर्तियाँ रखी हुई हैं जो भूगर्भसे प्राप्त हुई हैं। उनमें अम्बिकाकी भी एक सुन्दर मूर्ति है। ये मूर्तियाँ प्रायः ११वीं शताब्दीकी प्रतीत होती हैं। ये समस्त मन्दिर एक अहातेके अन्दर हैं।

पहाड़ीपर खड़े होकर सरोवरकी ओर दृष्टिपात करनेपर दृश्य बड़ा आकर्षक प्रतीत होता है। मध्यमें जल-मन्दिर, उस ओर मैदानके शिखरबद्ध जिनालय और इस ओर पर्वतकी मन्दिर-माला, जिनपर उत्तुंग शिखर शोभायमान हैं।

तलहटीके मन्दिर

१. जल-मन्दिर—एक विशाल सरोवरके मध्यमें एक भव्य मन्दिर बना हुआ है। मन्दिर तक जानेके लिए पुल है। पुलसे जानेपर सर्वप्रथम चबूतरा मिलता है। चबूतरेपर एक पक्का कुआँ बना हुआ है। मन्दिरमें मूलनायक भगवान् महावीरकी श्वेत वर्णकी पद्मासन प्रतिमा है जो २ फुट ऊँची है और वीर सं. २४८२ में प्रतिष्ठित हुई है। समवसरणमें ५ पाषाणकी और ९ धातु-की मूर्तियाँ हैं।

पुलके पास सड़कके किनारे पाषाणका एक सूचना-पट लगा हुआ है। उसमें राज्यकी ओरसे सरोवरमें मछली पकड़ने तथा पर्वत और जंगलमें किसी पशु-पक्षीका शिकार करनेपर कड़ा प्रति-बन्ध लगाया गया है और इसकी अवहेलना करनेपर कठोर दण्डकी व्यवस्था है।

२. सुमतिनाथ मन्दिर—यहाँ भगवान् सुमतिनाथकी श्वेत वर्णकी २ फुट ऊँची प्रतिमा संवत् २००८ में प्रतिष्ठित हुई। यह पद्मासनासीन है। वेदीपर एक धातु-प्रतिमा भी है।

३. नेमिनाथ मन्दिर—नेमिनाथकी कृष्ण पाषाणकी १ फुट ८ इंच ऊँची यह पद्मासन मूर्ति संवत् १९७९ में प्रतिष्ठित हुई।

४. नेमिनाथ मन्दिर—यह मूर्ति १ फुट ५ इंच ऊँची है और इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९६६ में हुई। शेष सब कुछ मन्दिर नं. ३ की मूर्तिके समान है।

५. चन्द्रप्रभ मन्दिर—श्वेतवर्ण, १ फुट १० इंच ऊँची इस पद्मासन मूर्तिकी प्रतिष्ठा संवत् १९५५ में हुई। इस मन्दिरमें ४ पाषाणकी तथा २० धातुकी छोटी मूर्तियाँ हैं।

६. पार्श्वनाथ मन्दिर—यहाँ पार्श्वनाथकी सिलेटी वर्णकी, २ फुट २ इंच ऊँची पद्मासन मूर्ति है और इसका प्रतिष्ठा-काल संवत् १९१७ है। इस वेदीपर मूलनायकके अतिरिक्त २ पाषाणकी और ५ धातुकी प्रतिमाएँ हैं।

७. पार्श्वनाथ मन्दिर—यहाँ चाँदीकी एक वेदीमें धातुकी साढ़े-सात इंच ऊँची एक पार्श्वनाथकी प्रतिमा विराजमान है। यह संवत् १८८१ की है। इस प्रतिमाके अतिरिक्त इस वेदीमें २ तीर्थंकर मूर्तियाँ और दो चमरवाहकोंकी धातु-मूर्तियाँ हैं।

८. चन्द्रप्रभ मन्दिर—मूलनायक भगवान् चन्द्रप्रभकी प्रतिमा श्वेत पाषाणकी है। इसकी अवगाहना २ फुट है। इसका प्रतिष्ठा-काल संवत् १९६७ है। यह पद्मासन मुद्रामें है। इसके अतिरिक्त ३ पाषाणकी और २१ धातुकी मूर्तियाँ हैं।

९. चन्द्रप्रभ मन्दिर—इसमें श्वेत पाषाणकी १ फुट ४ इंच उन्नत पद्मासन मूर्ति है। यह संवत् १९५५ में प्रतिष्ठित हुई है।

१०. नेमिनाथ मन्दिर—इसकी वेदीपर मूलनायक नेमिनाथकी तथा ४ अन्य पाषाण-प्रतिमाएँ विराजमान हैं। मूलनायकका वर्ण श्वेत है। इसकी माप १ फुट ३ इंच है। संवत् १९४८ में यह प्रतिष्ठित हुई। यह पद्मासन है।

११. पार्श्वनाथ मन्दिर—यहाँकी पार्श्वनाथकी प्रतिमा पूर्वोक्त नेमिनाथ प्रतिमाके साथ प्रतिष्ठित हुई। इसका वर्ण कृष्ण है और इसकी अवगाहना २ फुट २ इंच है। यह भी पद्मासन है।

१२. पार्श्वनाथ मन्दिर—यहाँकी पार्श्वनाथकी मूर्ति भी संवत् १९४८ में प्रतिष्ठित हुई। यह श्वेतवर्ण, पद्मासन और १ फुट ९ इंच अवगाहनाकी है।

१३. ऋषभदेव मन्दिर—ऋषभदेवकी इस पाषाण-प्रतिमाकी प्रतिष्ठा भी संवत् १९४८ में हुई है। इसका वर्ण श्वेत है।

१४. पीतलकी एक वेदीमें कृष्ण वर्णकी तीन पाषाण-प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

१५. ऋषभदेव मन्दिर—इसकी भी प्रतिष्ठा संवत् १९४८ में हुई थी। यह श्वेतवर्ण एवं पद्मासन है और इसकी माप १ फुट ८ इंच है। इसके अतिरिक्त वेदीपर तीर्थंकरोंकी ४ पाषाण-प्रतिमाएँ हैं और सिद्ध भगवान्‌की २ धातु-प्रतिमाएँ हैं।

अतिशय

कभी-कभी इस क्षेत्रपर ऐसी घटना भी घटित हो जाती है जिसके कार्य-कारणका पता साधारण बुद्धि द्वारा नहीं चल पाता। ऐसी असाधारण घटनाको ही बोलचालकी भाषामें अतिशय या चमत्कार कहा जाने लगता है।

घटना अद्भुत है। यह प्रत्यक्षदर्शियोंसे सुनी हुई है। ४० वर्ष पहलेकी बात है। एक बैल मन्दिर नं. २ मे जीनेसे ऊपर चढ़ गया और कार्निशपर आ गया। जब लोगोंको पता चला तो वहाँ एकत्र हो गये, किन्तु सभी किंकर्तव्यविमूढ़ थे। बैल न पीछे लौट सकता था, न मुड़ सकता था, और गिरते ही उसके मरनेका भय था। लाचार होकर उपद्रवकी शान्तिके लिए मन्दिरमें शान्तिविधान और हवन किया गया। हवन करते समय आवाज आयी—तुम लोग चिन्ता मत करो, बैल सकुशल उतर जायेगा। सब लोग निश्चिन्त होकर धर्मशालामें लौट आये। जब लोग लौट रहे थे, तब सबने आश्चर्यसे देखा कि बैल तालाबमें चर रहा था।

इस प्रकारकी अद्भुत बातें यहाँ अनेक बार देखनेको मिली हैं।

दर्शनीय स्थल

क्षेत्रके निकट नदीकी धाराके मध्यमें ५० फुट ऊँची एक पाषाण-शिला है। कहा जाता है कि इसी शिलापर तप करते हुए वरदत्त आदि पाँच मुनिराज मुक्त हुए थे। अतः यह शिला सिद्ध-शिला कही जाती है। इसके अतिरिक्त क्षेत्रसे लगभग एक मील दूर जंगलमें एक वेदिका है जो काफी विशाल है। देखनेसे प्रतीत होता है कि वेदिका काफी प्राचीन है।

धर्मशालाएँ

क्षेत्रपर ३ धर्मशालाएँ हैं—(१) सेठ शोभाराम मलैया सागर द्वारा निर्मित, (२) सिं. मूलचन्द गिरधारीलाल बिलाई द्वारा निर्मित और (३) सागरवालोंकी। इन धर्मशालाओंमें कुल मिलाकर ५२ कमरे और ३ हॉल है। क्षेत्रपर बिजली है, जलके लिए सरोवर और कुएँ हैं। बस्ती बहुत छोटी-सी है, किन्तु क्षेत्रपर खाद्य-सामग्री मिल जाती है। क्षेत्र दलपतपुर-बकस्वाहा सड़कके बिलकुल किनारे है।

मेला

क्षेत्रका वार्षिक मेला प्रतिवर्ष अगहन सुदी ११ से १५ तक होता है। इस अवसरपर रथोत्सव भी होता है।

क्षेत्रपर तीन उत्सवोंके अवसरपर लगे मेले विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रथम उत्सव संवत् १९४३ में हुआ। इस वर्ष यहाँ तीन गजरथ चले थे। दूसरा उत्सव संवत् २००८ में था। उस वर्ष यहाँ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई थी। तीसरा उत्सव संवत् २०१३ में हुआ और उस वर्ष यहाँ एक गजरथ चला था। इन उत्सवोंमें पंचकल्याणकपूर्वक बिम्ब-प्रतिष्ठाएँ हुई थी। इन प्रतिष्ठोत्सवोंमें सहस्रों व्यक्तियोंने भाग लिया था।

व्यवस्था

क्षेत्रकी व्यवस्था प्रान्तीय समाज द्वारा निर्वाचित प्रबन्ध समिति करती है। प्रबन्ध समिति-का चुनाव हर तीसरे वर्ष वार्षिक मेलेके अवसरपर होता है।

अवस्थिति और मार्ग

रेशन्दीगिरि (नैनागिरि) सिद्धक्षेत्र मध्यप्रदेशके छतरपुर जिलेमें अवस्थित है। यहाँ पहुँचनेका मार्ग इस प्रकार है—सागर-कानपुर रोडपर सागरसे ४५ कि. मी. दूर दलपतपुर गाँव है। यहाँसे पूर्वकी ओर दलपतपुर-बकस्वाहा मार्गपर दलपतपुरसे १२ कि. मी. दूर यह क्षेत्र अव-स्थित है। सड़क पक्की है। दलपतपुरमें क्षेत्रकी धर्मशाला भी है। सागरसे रेशन्दीगिरिके लिए सीधे बस भी जाती है। प्रथम सागर-बकस्वाहा और द्वितीय सागर-बिजावर मार्ग, दोनों ही बस-मार्गोंपर रेशन्दीगिरि पड़ता है।

पजनारी

मार्ग और अवस्थिति

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पजनारी जिला सागरमें बण्डासे पश्चिम दिशाकी ओर, बण्डा-शाहगढ़ रोडपर ८ कि. मी. दूर बाकरई नदीके तटपर स्थित है। इसी प्रकार सागरसे

कानपुर-रोडपर २२ कि. मी. कन्दारी ग्राम है, वहाँसे यह क्षेत्र ५ कि. मी. है। ग्राम छोटा-सा है। ग्राममें कृषकोंकी आबादी है। मन्दिर छोटी-सी पहाड़ीपर है जो ५०० फुट ऊँची है।

क्षेत्र-दर्शन

मन्दिरके चारों ओर १०० फुट लम्बा अहाता है। मन्दिर ऊँची चौकीपर बना हुआ है। गर्भगृहमें मूलनायक भगवान् शान्तिनाथकी देशी पाषाणकी ४ फुट ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। उसके दोनों पार्श्वोंमें कुन्थुनाथ और अरहनाथकी ६ फुट ऊँची खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। मन्दिरके निकट एक मठ था। किन्तु गाँववालोंने नदी-तटपर जैन धर्मशालाके निकट शिव मन्दिर बनवाते समय मठके कलापूर्ण पाषाण निकालकर उस मन्दिरमें लगा दिये। ये पाषाण इस मन्दिरमें अब भी लगे हुए हैं। मठके भग्नावशेष तालाबके किनारे बिखरे पड़े हैं। मठके समीप एक गुफा है। यह गुफा कितनी लम्बी है और इसका अन्त कहाँ होता है यह ज्ञात नहीं हो सका। ३० फुट अन्दर जानेपर गुफा मुड़ती है और वहाँसे २० फुट सीधा मार्ग है। यहाँ निकटवर्ती प्रदेशमें यह किंवदन्ती प्रचलित है कि पहले मठमें एक योगी रहता था। वह भोंहरीके मार्गसे दो मील भीतर जाकर जल लाया करता था।

पहाड़ीकी तलहटीमें उद्यान है तथा इसके निकट ही सरोवर है। उद्यानमें प्राचीन बावड़ी है। बाकरई नदी पहाड़ीके चरणोंको तीन ओरसे धोती हुई बहती है। सुना जाता है कि ४०-५० वर्ष पूर्व तक पहाड़ीपर कुछ खण्डित जैन प्रतिमाएँ पड़ी हुई थीं जिन्हें सम्भवतः उस समय इस नदीमे विसर्जित कर दिया गया। पहले मन्दिरके निकट आबादी थी। आज वहाँ भवनोंके खण्डहर इस बातके साक्षी हैं।

पहाड़ीके निकट नदी-तटपर जैन धर्मशाला बन चुकी है। मन्दिर और मूर्तियोंकी निर्माण-शैलीसे ज्ञात होता है कि १०वी-११वीं शताब्दीमें (चन्देलोंके शासन-कालमें) मन्दिर और मूर्तियों-का निर्माण हुआ था।

बीना-बारहा

मार्ग

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बीना-बारहा मध्यप्रदेशके सागर जिलेके अन्तर्गत रहली तहसीलमें स्थित है। यहाँ जानेके लिए मध्य रेलवेके सागर या करेली—कटनी-बीनासे आनेवालों-को सागर और जबलपुर-इटारसीसे आनेवालोंको करेली—स्टेशनपर उतरना चाहिए। सागर-करेली-नरसिंहपुर रोडपर सागरसे देवरीकलाँ ६६ कि. मी. है और रहलीसे ३२ कि. मी है। सड़क पक्की है। नियमित बस-सेवा है। देवरीकलाँसे बीना वाया खेरी ६ कि. मी. है। मार्ग कच्चा है। बैलगाड़ी द्वारा जा सकते हैं। पक्की सड़क बननेवाली है। इसका पोस्ट ऑफिस देवरीकलाँ है।

मन्दिर-निर्माणका इतिहास

इस क्षेत्रपर ६ जैन मन्दिर हैं। उनमें मुख्य मन्दिर भगवान् शान्तिनाथका है। भगवान् शान्तिनाथकी खड्गासन प्रतिमा १५ फुट अवगाहनावाली है। इस प्रतिमाके चमत्कारोंके सम्बन्धमें नाना भाँतिकी अनुश्रुतियाँ प्रचलित हैं।

यह क्षेत्र किस प्रकार प्रकाशमें आया और भगवान् शान्तिनाथका यह मुख्य मन्दिर कब, किसने बनवाया, इसके सम्बन्धमें कोई प्रमाण नहीं मिलते। इतिहासके नामपर कुछ किंवदन्तियाँ इस सम्बन्धमें प्रचलित हैं। इन किंवदन्तियोंमें कितना तथ्य है, यह जाननेका भी कोई साधन सुलभ नहीं है। अतः क्षेत्रके इतिहासके लिए हमें इन किंवदन्तियोंपर ही निर्भर रहना पड़ता है।

इस सम्बन्धमें एक किंवदन्ती बहुत प्रचलित है जो इस प्रकार है—

गोंडवानेमें सत्तापर जब गोंडोंका प्रभुत्व था, तब बेनु नामक कोई छोटा-सा राजा यहाँ राज्य करता था। वह बड़ा न्यायपरायण और वीर था। उसीके नामपर इस नगरका नाम बीना पड़ गया। उसकी रानीका नाम कमलावती था। वह रूप और शीलके साथ ही वीरताकी भी खान थी। युद्धके समय वह राजाके साथ युद्धपर जाती और शत्रुओंसे मोर्चा लेती थी। उसके पास एक पंखा था जिसका कोई भाग तोड़नेपर शत्रु-सेना खण्ड-खण्ड हो जाती थी। कमलके पत्तोंपर चलकर वह पानी भरकर लाती थी। राजा-रानी दोनोंकी जैन धर्मपर पूर्ण आस्था थी।

बीनाके निकट मलखेड़ा ग्राममें एक धर्मात्मा जैन रहते थे। वे बंजी करके अपनी जीविका चलाते थे। बंजीके सिलसिलेमें उन्हें बीना भी जाना पड़ता था। किन्तु जब वे बीना जाते तो एक स्थानपर बराबर उन्हे ठोकर लगती थी। एक दिन उन्हें जोरकी ठोकर लगी। वे जब वापस अपने घर पहुँचे तो उस ठोकरके सम्बन्धमें ही विचार कर रहे थे। उसी रातको उन्हें स्वप्न आया। स्वप्नमें उनसे कोई दिव्य पुरुष कह रहा था—"तुम्हें जहाँ ठोकर लगी है, वहाँ खुदाई करो। वहाँ तुम्हें भगवान् शान्तिनाथके दर्शन होंगे।" स्वप्न समाप्त होते ही उनकी नींद खुल गयी और वे शेष रात्रिमें उस स्वप्नके बारेमें ही विचार करते रहे। उन्हें स्वप्नकी सत्यतापर विश्वास हो गया। उन्होंने दूसरे दिन जाकर खुदाई करनेका निश्चय कर लिया।

दूसरे दिन वे किसीसे कुछ कहे-सुने बिना फावड़ा लेकर ठोकरवाले स्थानपर पहुँचे और खुदाई करने लगे। उन्होंने इस प्रकार तीन दिन तक बड़े परिश्रमपूर्वक खुदाई की। तीसरे दिन रात्रिमें उन्हें फिर स्वप्न दिखाई दिया। स्वप्नमें वही दिव्य पुरुष उनसे कह रहा था—"तुम्हें कल भगवान् शान्तिनाथके दर्शन होंगे। तुम भगवान् शान्तिनाथको जिस स्थानपर विराजमान करना चाहो, वहाँ चले जाना। मूर्ति स्वयं तुम्हारे पीछे-पीछे आ जायेगी। किन्तु मुड़कर देखनेकी भूल हरगिज न करना।"

दूसरे दिन उन्होंने फिर खुदाई प्रारम्भ कर दी और साधारण परिश्रमसे ही उन्हें भगवान् शान्तिनाथकी उस अत्यन्त प्रशान्त, सौम्य और सातिशय प्रतिमाके दर्शन हुए। दर्शन करके वे आह्लादसे भर उठे और भक्तिके आवेगमें बरबस उनके मुखसे निकला—"भगवान् शान्तिनाथकी जय।' वे प्रभुके चरणोंमें लोट गये और बहुत समय तक वे भक्तिप्लावित हृदयसे भक्ति-गान और स्तुति करते रहे।

उनका मन उस समय श्रद्धाच्छन्न था। उनकी समग्र चेतना प्रभु-चरणोंमें समर्पित थी। वे ऐसी ही भावाविष्ट दशामें वहाँसे चल दिये। शायद मील-भर चले होंगे कि उन्होंने मुड़कर पीछेकी ओर देखा—भगवान् आ रहे हैं या नहीं। उन्हें यह देखकर हार्दिक सन्तोष हुआ कि भगवान् कुछ दूरपर विद्यमान हैं। वे पुनः चल दिये। किन्तु भगवान् तो जहाँ थे, वहीं थे। वे अचल हो गये थे। वे वहाँसे रंचमात्र भी नहीं हटे, प्रयत्न करनेपर भी नहीं हटे। भक्तको अपनी भूलपर भारी दुःख हुआ, आँखें बरसने लगीं, किन्तु भगवान् तो जैसे वहीं समाधिलीन हो गये थे।

यह घटना चर्चा बनकर जैन समाजमें चारों ओर फैल गयी। हजारों भक्तोंकी भीड़ जुट

गयी। तब वहींपर मन्दिर-निर्माण करनेका निश्चय हुआ। कुछ दिनोंमें ही वहाँ एक भव्य मन्दिरका निर्माण हुआ और भगवान् शान्तिनाथ उसमें प्रतिष्ठित कर दिये गये।

भगवान् शान्तिनाथकी यह मूर्ति चमत्कारी है। इसके चमत्कारोंकी कहानियाँ अब भी सुनी जाती हैं। जैन और जैनेतर जनता यहाँ मनौती मानने अब भी आती रहती है।

शान्तिनाथकी मूर्ति मन्दिर-निर्माणसे पूर्व कालकी है। यह भूगर्भसे निकाली गयी है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ पहले कोई जिनालय था, जो किन्हीं कारणोंसे ध्वस्त हो गया और मूर्ति मलबेमें दब गयी। इस मन्दिरका निर्माण संवत् १८०३ में पाण्डे जयचन्दने कराया। इस संवत्की प्रतिष्ठित कुछ मूर्तियाँ भी इस मन्दिरमें विद्यमान हैं।

क्षेत्र-दर्शन

क्षेत्रपर पहुँचनेसे पूर्व ग्रामके बाहर एक छोटी नदी मिलती है, जिसका नाम सुखचैन है। इसपर पुल नहीं है। नदी पार करनेपर ग्राममें प्रवेश करते हैं। ग्राममें प्राचीन भग्नावशेष बिखरे हुए हैं। कई स्थानोंपर मन्दिरोंके स्तम्भ, तोरण और मूर्तियाँ पड़ी हुई हैं। यहाँके कई मकानोंमें प्राचीन मन्दिरोंके इन स्तम्भों और पाषाणोंका उदारताके साथ उपयोग किया गया है। अज्ञानताके कारण, शताब्दियों पूर्वका यह कला-वैभव उपेक्षित दशामें गली-कूचोंमें पड़ा हुआ है।

गाँवके एक सिरेपर क्षेत्र है। क्षेत्रपर कोई प्रवेश-द्वार नहीं है। वहाँ अहाता भी नहीं है। सर्वप्रथम क्षेत्रका प्राचीन कुआँ मिलता है, किन्तु यह कुआँ ग्रीष्मकालमें अथवा उत्सवके अवसरपर जलकी पूर्ति नहीं कर पाता। दायीं ओर जिनालय और दालाननुमा धर्मशालाएँ हैं। बायीं ओर क्षेत्र-कार्यालय और कमरोंवाली धर्मशाला है।

मन्दिर नं. १—प्रथम मन्दिर भगवान् महावीरका है। इसे मामा-भानजेका मन्दिर भी कहते हैं। यह अद्भुत नाम क्यों पड़ा, यह बात भी बड़ी रोचक है। इस मन्दिरमें दो बड़ी मूर्तियाँ हैं—महावीर और चन्द्रप्रभकी। महावीरकी मूर्ति गर्भालयमें सामनेकी दीवारमें चिनी हुई है। यह १३ फुट ऊँची और १२ फुट ४ इंच चौड़ी है। इसके आगे चन्द्रप्रभकी ६ फुट ९ इंच ऊँची मूर्ति विराजमान है। दोनों ही मूर्तियाँ पद्मासन हैं। ग्रामीण जनतामें यह कहनेका प्रचलन हो गया है कि चन्द्रप्रभ महावीरकी गोदमें बैठे हैं। इसी कारण इसे लोग मामाके संरक्षण या गोदमें भानजेको मानकर इस मन्दिरको मामा-भानजेका मन्दिर कहने लगे हैं। इस मन्दिरका निर्माण गाढ़ाघाटके सिंघई सेवकरामने कराया था।

प्रथम मन्दिरका द्वार विशाल है। प्रवेश-द्वारके ऊपर नौबतखाना बना हुआ है। इसके बाद एक लम्बा दालान और सहन मिलता है। तब गर्भगृहमें प्रवेश करते हैं। गर्भगृहमे सामने दीवारमें भगवान् महावीरकी ईंट-चूनेकी बनी हुई कृष्ण वर्णकी पद्मासन मूर्ति है। मूर्तिके आसनपर लेख नहीं है। चिह्न भी स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ता। अनुश्रुतिके आधारपर इसे महावीर भगवान्की मूर्ति माना जाता है। मूर्तिके ऊपर नारियलकी जली हुई जटाओंको घीमें मिलाकर उसका लेप किया जाता है। इसकी अवगाहना १३ फुट है तथा चौड़ाई १२ फुट ४ इंच है। मूर्तिकी छातीपर श्रीवत्स लांछन है।

इसके आगे भगवान् चन्द्रप्रभकी रक्ताभ पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसके कन्धोंपर केशोंकी लटें पड़ी हुई हैं। इसके केश मुकुटाकार हैं। छातीपर श्रीवत्स चिह्न है। इसके पीठासन-पर अर्धचन्द्र लांछन है। इस कारण यह चन्द्रप्रभ भगवान्की मूर्ति मानी जाती है। मूर्तिकी चरण-चौकीपर संस्कृत भाषामें लेख भी अंकित है। लेखका आशय इस प्रकार है—गोमिल देशमें

सदाशिवके राज्यमें संवत् १८३२ फाल्गुन शुक्ला १३ बुधवारको परवार-ज्ञातीय गोहिल-गोत्री बीनानगर निवासी मोदी हरिसेवकके पुत्र मतिरामने इस मूर्तिकी प्रतिष्ठा करायी। यह मूर्ति ६ फुट ९ इंच ऊँची है।

यह लिखना अप्रासंगिक न होगा कि बीना-बारहामें दो बातें विशेष उल्लेख योग्य हैं। प्रथम तो यह कि यहाँ ईंट-चूनेसे मूर्ति निर्मित की गयी है। दक्षिण भारतमें इस प्रकारकी अनेक मूर्तियाँ मिलती हैं, जिनकी भावाभिव्यंजना और कमनीयताको देखकर कोई यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि मूर्तियाँ ईंट-चूनेकी बनी हुई हैं। किन्तु उत्तर भारतमें इस प्रकारकी मूर्तियोंका प्रचलन प्रायः नहीं रहा। इधर यह ऐसा प्रथम प्रयोग था, ऐसा लगता है। मूर्तिको देखकर यह भी प्रतीत होता है कि इस मूर्तिको गढ़नेवाला सम्भवतः मूर्तिकार न होकर कोई राजशिल्पी रहा होगा। द्वितीय उल्लेखनीय बात, जिसकी ओर दर्शकका ध्यान सहज ही आकर्षित हो जाता है, यह है कि यहाँ केशोंकी लटें केवल ऋषभदेवकी मूर्तियों तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि मूर्तिशिल्पीने अन्य भी कई तीर्थंकर-मूर्तियोंके स्कन्धों तक लटोंका अंकन कर दिया है। इसीलिए यहाँ ऋषभदेवके अतिरिक्त महावीर, अजितनाथ, चन्द्रप्रभ, नेमिनाथ और पार्श्वनाथकी मूर्तियोंपर भी लटें और केश-किरीट दिखाई देते हैं। शास्त्रीय नियमों और परम्पराओंको स्वतन्त्रचेता कलाकारकी यह एक खुली चुनौती थी।

बड़ी मूर्तिके दोनों ओर दीवारमें दो मूर्तियाँ है, दायी ओर भगवान् ऋषभदेवकी और बायी ओर भगवान् अजितनाथकी। ऋषभदेवकी मूर्ति कत्थई वर्णकी है। सिरके दोनों पार्श्वोंमें गजलक्ष्मी हैं तथा देवियाँ पारिजात पुष्पोंकी माला लिये हुए आकाशमें दृष्टिगोचर हो रही हैं। भगवान्‌के दोनों ओर चमरेन्द्र सेवामें खड़े हुए हैं। भगवान् अजितनाथका वर्ण और परिकर भी ऐसा ही है।

बायी ओरकी दीवारमे तीन पैनल हैं। दायीं ओरके पैनलमें ऋषभदेवकी कायोत्सर्गासन प्रतिमा है। सिरके पीछे भामण्डल सुशोभित हो रहा है और सिरके ऊपर छत्रत्रयी है। छत्रोके ऊपर दुन्दुभिवादक हैं। उसके दोनों ओर गज हैं। सिरके दोनों पार्श्वोंमें पुष्पमाल लिये नभचारी देव दीख पड़ते हैं। नीचे चमरवाहक खड़े है। पीठासनपर मध्यमे लांछनके रूपमे ऋषभ बना हुआ है तथा कोनोंपर दो भक्त बैठे हुए हैं।

मध्य पैनलमें भगवान् पार्श्वनाथ खड्गासन मुद्रामे विराजमान हैं। अवगाहना ३ फुट ३ इंच है। परिकरमे छत्र, पुष्पमाल लिये गन्धर्व और चमरेन्द्र हैं।

बायी ओरके पैनलमें नेमिनाथकी खड्गासन मूर्ति है। अवगाहना ३ फुट ५ इंच है। भगवान्‌के ऊपर तीन छत्र सुशोभित हैं। छत्रोंके ऊपर पद्मासन अर्हन्त प्रतिमा है। उसके दोनों ओर फूलमाला लिये हुए गन्धर्व आकाशमें दिखाई पड़ रहे हैं। भगवान्‌के चरणोंके दोनों ओर चमरवाहक खड़े हैं।

दायी ओरकी दीवारमें भी तीन पैनल बने हुए हैं। बायी ओरके पैनलमें ऋषभदेवकी ३ फुट उत्तुंग पद्मासन प्रतिमा है। कन्धेपर जटाओंकी लटें बिखरी हुई हैं। छत्र, गन्धर्व और चमरवाहक परिकरमें यथापूर्व हैं।

मध्य पैनलमें भी ऋषभदेवकी जटायुक्त प्रतिमा है। अवगाहना २ फुट १० इंच है। परिकर-में छत्र, गज, मालाधारी गन्धर्व और चमरवाहक इन्द्र हैं।

दायीं ओरके पैनलमें पार्श्वनाथकी ३ फुट ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। मूर्तिके सिरपर सप्त-फणावली है। उसके ऊपर तीन छत्र हैं। उनके दोनों ओर पुष्पवर्षाके लिए पुष्प लिये हुए देव हैं तथा अधोभागमें चमरवाहक खड़े हैं।

मुख्य वेदीपर मुख्य प्रतिमाके अतिरिक्त ६ पाषाण-मूर्तियाँ हैं, जिनमें-से दो मूर्तियाँ संवत् १५४८ की हैं। धातुके दो मेरुओंमें चौबीस तीर्थंकर-मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

इस मन्दिरके गर्भगृहके नीचे इसके समान आकारवाला कमरा बना हुआ है। इसे भोंयरा कहते हैं। आपत्कालीन स्थितिमें इसका प्रयोग मूर्तियोंकी सुरक्षाके लिए किया जाता था। इसमें जानेके लिए मन्दिरके उत्तरी हिस्सेमें, सहनमें जीना बना हुआ है। कहा जाता है, यह एक सुरंग है जो नदी तक गयी है। सुरंगका द्वार अलंकृत है। इसके सिरदलपर ११ यक्ष-मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। चौखटोंपर मिथुन बने हुए हैं। चौखटोंके अधोभागमें देवियाँ बनी हुई हैं। दीवारमें एक यक्ष बना हुआ है।

मन्दिरमें गर्भगृहके बाहर प्रदक्षिणा-पथ बना हुआ है। मन्दिरके चारों ओर ऊँची दीवार है। मन्दिरके चारों कोनों और द्वारपर लघु शिखर बने हुए हैं तथा मन्दिरके ऊपर विशाल शिखर है। द्वारपर क्षेत्रपाल बने हुए हैं।

मन्दिर नं. २—प्रथम मन्दिरसे निकलकर दूसरे मन्दिरमें प्रवेश करते हैं। यहाँ एक चबूतरानुमा वेदीपर मूलनायक भगवान् सुपार्श्वनाथ विराजमान हैं। मूर्ति पद्मासन है और ३ फुट २ इंच ऊँची है। मूर्तिके आसनपर स्वस्तिक चिह्न अंकित है। मूर्तिके हाथ खण्डित हैं। मूर्ति प्राचीन है। इसके अतिरिक्त दो पद्मासन मूर्तियाँ और हैं। एक १० इंचकी है और दूसरी ९ इंचकी। इसके बरामदेके स्तम्भों और बाहरी दीवारपर २ तीर्थंकर मूर्तियाँ पद्मासन मुद्रामें हैं। कुछ मूर्तियाँ शासन-देवताओंकी भी हैं।

इसकी बगलमें एक टिन शेडमें तीन वेदियाँ बनी हुई हैं। मध्य वेदीपर ऋषभदेव भगवान्‌की ३ फुट ८ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। प्रतिमाके परिकरमें भामण्डल, छत्र, दुन्दुभिवादक, ऊपर कोनोंपर एक देव और देवी पुष्पमाल लिये हुए और भगवान्‌के दोनों ओर चमरवाहक हैं।

दायीं वेदीमें भगवान् शीतलनाथकी ३ फुट १० इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। परिकर पूर्व मूर्तिके समान है। अन्तर इतना है कि सिंहासनके सिंहोंके इधर-उधर शीतलनाथका सेवक ब्रह्मा यक्ष और मानवी यक्षी सुखासनमें बैठे हुए हैं।

बायीं वेदीमें भगवान् नेमिनाथकी २ फुट ९ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। भगवान्‌के सिरके पृष्ठभागमें भामण्डल है।

मन्दिर नं. ३—टिन शेडके पृष्ठभागमें भगवान् शान्तिनाथका मन्दिर है। यह गर्भगृह १५ फुट ४ इंच लम्बा और ११ फुट २ इंच चौड़ा है। इसमें भगवान् शान्तिनाथकी १५ फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। यह प्रतिमा देशी पाषाणकी है। मध्यप्रदेशमें अहार, थूबौन, बजरंगढ़, पावागिरि, खजुराहो आदि अनेक स्थानोंपर शान्तिनाथकी विशालकाय प्रतिमाएं विराजमान हैं। बीना-बारहाकी यह भव्य सातिशय प्रतिमा उसी श्रृंखलाकी एक समर्थ कड़ी है। इस मूर्तिपर निकटवर्ती प्रदेशमें सर्वसाधारणकी बड़ी श्रद्धा है। लोगोंका विश्वास है कि शान्तिनाथके दर्शन करनेसे समस्त चिन्ता और दुःख दूर हो जाते हैं। स्त्रियाँ तो मनौती मानकर मन्दिरकी बाहरी दीवारपर हल्दीके छापे लगाती हैं।

इस गर्भगृहमें दायीं और बायीं ओरकी दीवारोंमें ९ प्रतिमाएँ जड़ी हुई हैं, जिसमें ८ खड्गासन हैं और १ पद्मासन है। सभी मूर्तियाँ कृष्णवर्ण हैं। इनके ऊपर कभी-कभी घीका अथवा नारियलकी जली हुई जटाओंको घीमें मिलाकर उसका लेप किया जाता है। प्रथम मन्दिरकी महावीर स्वामीकी प्रतिमा तथा इन प्रतिमाओंका अभिषेक नहीं किया जाता। कभी-कभी केवल लेप ही किया जाता है।

इस गर्भगृहके द्वारपर दो खड्गासन और एक पद्मासन मूर्तियाँ बनी हुई हैं। द्वारकी चौखट-पर मिथुन-मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इससे आगे बढ़नेपर टिन शेडवाले जिनालयके दूसरी ओर दालान है। इसके एक सिरेपर ३ फुट १० इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसके परिकरमें भामण्डल, छत्र, दुन्दुभिवादक, गज, गन्धर्व, चमरवाहक, यक्ष-यक्षी और दो पद्मासन मूर्तियाँ हैं। दालानके स्तम्भोंपर भी देव-देवियोंकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

मन्दिर नं. ४—टिन शेडके पास ही जीना है। उससे जाकर ऊपर एक कोठरीमें एक वेदी है। वेदीपर भगवान् नेमिनाथकी कृष्ण पाषाणकी एक पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी अवगाहना १ फुट ४ इञ्च है।

मन्दिर नं. २, ३ और ४ एक ही अहाते में हैं, बल्कि कहना चाहिए कि ये तीनों मन्दिर एक ही मन्दिरके पृथक्-पृथक् भाग हैं।

मन्दिर नं. ५—इस मन्दिरसे निकलनेपर एक कुआँ मिलता है। उसके निकट ही गन्धकुटी मन्दिर है। इसमें पहुँचनेके लिए ५ मार्ग हैं। प्रत्येक दिशामें ४० सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। पाँचवाँ मार्ग मेरु मन्दिरोंके समान चक्राकार प्रदक्षिणा-पथ है। गर्भगृह छोटा है और गोलाकार है। मध्य वेदीपर एक पाषाण-स्तम्भमे तीन दिशाओंमें अर्हन्त प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। चौथी दिशामें उपा-ध्यायकी मूर्ति उत्कीर्ण है। एक हाथमें वे शास्त्र लिये हुए हैं तथा दूसरा हाथ उपदेश-मुद्रामे उठा हुआ है। उनके पीठासनमें कमण्डलु और पीछी बनी हुई हैं। इस मूर्ति-स्तम्भकी बगलमें दो श्वेतवर्ण तीर्थंकर मूर्तियाँ संवत् १५४८ की प्रतिष्ठित हैं।

दायी ओरकी वेदीमे एक पाषाण-फलकमें भगवान् चन्द्रप्रभकी कायोत्सर्गासनमें ३ फुट ६ इंच अवगाहनावाली मूर्ति अंकित है। भगवान्के ऊपर छत्रत्रय है। उनके दोनों ओर देव आकाशसे पुष्पवर्षा करनेके लिए पुष्प लिये हुए हैं। भगवान्के दोनों ओर चमरेन्द्र सेवामें खड़े हुए हैं।

बायीं ओरकी वेदीमे ऋषभदेवकी खड्गासन मूर्ति एक शिलाफलकमें उत्कीर्ण है। अव-गाहना ३ फुट ६ इंच है। भगवान्के परिकरमे भामण्डल, तीन छत्र, गज, गन्धर्व और चमर-वाहक हैं।

इस मन्दिरके परिक्रमा-पथमें दीवारों और द्वारोंके सिरदलोंपर कुछ मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इन मूर्तियोंपर सफेदी पोती हुई है। इससे मूर्तियोंका सौन्दर्य तो नष्ट हो ही गया है, उनके विवरण भी धूमिल पड़ गये हैं। इन मूर्तियोंका परिचय इस प्रकार है—

(१) गोमेद यक्ष और अम्बिका यक्षी सुखासनासीन हैं। उनके शीर्ष भागपर नेमिनाथ तीर्थंकर पद्मासनमें विराजमान हैं।

(२) यह भी गोमेद, अम्बिका और नेमिनाथकी पूर्ववत् मूर्तियाँ हैं।

(३) तीर्थंकर माता लेटी हुई हैं। दिक्कुमारिकाएँ माताकी चरण-सेवा कर रही हैं। ऊपर पद्मासनमें तीर्थंकर-मूर्ति बनी हुई है।

(४) तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथकी माता वामादेवी शय्यापर लेटी हुई हैं। उनके सिरके ऊपर सर्प-फणमण्डप है। देवी चरण-सेवा कर रही है। मूर्तिके शीर्ष भागपर पद्मावती देवी बैठी है। उसके ऊपर उसका चिह्न सर्पफण भी बना हुआ है। इससे ऊपर देवियाँ नृत्य-गान करके अपना मोद प्रकट कर रही हैं। सम्भवतः माता वामादेवीकी यह मूर्ति पार्श्वनाथके गर्भावस्थाकी है। माता वामादेवीकी यह मूर्ति अद्भुत है। ऐसी अन्य कोई मूर्ति अभी तक देखनेमें नहीं आयी।

(५) द्वारके सिरदलपर अष्ट मातृकाओंकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इन अष्टमातृकाओंके नाम इस प्रकार हैं—इन्द्राणी, वैष्णवी, कौमारी, वाराही, ब्रह्माणी, महालक्ष्मी, चामुण्डी और भवानी।

(६) चक्रेश्वरी देवी ललितासनमें बैठी है। दायीं ओर भी चक्रेश्वरी देवी त्रिभंग मुद्रामें खड़ी है।

(७) सिरदलपर मध्यमें सरस्वती विराजमान है। बायीं ओर अष्ट मातृकाएँ बनी हुई हैं तथा दायीं ओर नवदेवता बने हुए हैं।

मन्दिर नं. ६—मन्दिर नं. १ के सामने एक छोटा मन्दिर बना हुआ है। उसके ऊपर शिखर नहीं है, जबकि अन्य सभी मन्दिर शिखरबद्ध हैं।

मानस्तम्भ

अभी तक क्षेत्रपर मानस्तम्भ नहीं था। अतः मानस्तम्भकी आवश्यकताका अनुभव करके अब यहाँ उसके निर्माणकी तैयारियाँ चल रही हैं। मानस्तम्भका समूचा ढाँचा खण्डोंमें मकरानेसे आ चुका है। मानस्तम्भकी नींव खुद गयी है और चौकी तैयार हो रही है। आशा है, यह शीघ्र तैयार हो जायेगा।

पुरातत्त्व

यहाँ कुछ प्राचीन मूर्तियोंका संग्रह किया गया है। कुछ मूर्तियाँ गन्धकुटीकी सीढ़ियोंके पास खुले मैदानमें रखी हुई हैं। कुछ मूर्तियाँ मन्दिरोंकी बाह्य भित्तियों, स्तम्भों और शिखरोंमें जड़ दी गयी हैं। जो मूर्तियाँ मैदानमें रखी हुई हैं, वे धूल, वर्षा और धूपसे विरूप होती जा रही हैं और जो भित्तियों आदिमें जड़ी गयी हैं, उन्हें चूना-सफेदी पोतकर विरूप कर दिया गया है।

ये मूर्तियाँ प्रायः खण्डित हैं। इनमें-से कुछ मूर्तियाँ अखण्डित भी हैं। किन्तु इन सभी प्रकारकी मूर्तियोंका पुरातात्त्विक और कलात्मक महत्त्व है। ये मूर्तियाँ मेड़खेड़ा, अमरगढ़, ईश्वरपुर, बिजौरा, बोना आदि निकटवर्ती स्थानोंसे प्राप्त हुई हैं। इनमें-से कुछ मूर्तियाँ भूगर्भसे प्राप्त हुईं, कुछ नदीसे तथा कुछ मूर्तियाँ ईश्वरपुरके जैन मन्दिरकी हैं। पहले वहाँ जैन मन्दिर था। गाँवमें जैनोंकी आबादी थी। भगवान्‌की पूजा यथावस्थित रीतिसे होती रहती थी। किन्तु आजीविका आदिके कारणोंसे ईश्वरपुरके जैन अन्य नगरोंमें चले गये। धीरे-धीरे मन्दिर नष्ट हो गया। तब वहाँकी मूर्तियाँ यहाँ लाकर रख दी गयीं। इन तमाम मूर्तियोंमें तीर्थंकर-प्रतिमा, देवता-मूर्ति और स्तम्भ आदि हैं। जिन्होंने इन मूर्तियोंका यहाँ संग्रह किया है, उन्होंने वस्तुतः बड़ा स्तुत्य कार्य किया है।

तीर्थंकर-मूर्तियोंमें ८ मूर्तियाँ खड्गासन हैं और ४ पद्मासन हैं। कुछ तीर्थंकर मूर्तियोंके कुछ खण्डित भाग रखे हुए हैं। ये मूर्तियाँ १ फुट ६ इंच से लेकर ३ फुट ७ इंच तककी मापकी हैं। इनमें-से किसीका मुख खण्डित है, किसीका कोई अन्य भाग। इनमें महावीर और ऋषभदेवकी ही प्रतिमाएँ हैं। कुछ प्रतिमाओंके चिह्न अस्पष्ट हैं या उनकी चरण-चौकी ही नहीं है।

पंचांग नमस्कार करती हुई एक स्त्रीकी पाषाण-मूर्ति भी यहाँ रखी हुई है। स्त्री अलंकारोंसे सुसज्जित है। उसके एक हाथमें कटार है। उसकी पीठपर स्त्रीका पंजा बना हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह मूर्ति गोंडवानानरेश बेनुकी रानी कमलावतीकी है। उसके सम्बन्धमें यह अनुश्रुति प्रसिद्ध है कि वह शीलवती थी। उसे पद्मावती या अन्य किसी देवीका इष्ट था। देवीके प्रसादसे उसके पास एक पंखा था, जिसे तोड़ने मात्रसे शत्रु-सेना नष्ट हो जाती थी। प्रस्तुत मूर्ति

उस समयकी है, जब रानी युद्धमें जानेसे पूर्व भगवान्‌को नमस्कार कर रही है। उसकी भक्तिसे प्रसन्न होकर देवी उसे आशीर्वाद दे रही है। स्त्रीकी पीठपर बना हुआ पंजा देवीके आशीर्वादका ही प्रतीक है।

यहाँ एक चबूतरेपर एक शिलाफलकमें भी स्त्रीका एक पंजा बना हुआ है। पंजा आशीर्वाद-मुद्रामें है। शिलाफलकके पंजे और स्त्रीकी पीठपर बने पंजेमें निश्चय ही सम्बन्ध है और दोनों एक ही घटना-शृंखलाकी कड़ी प्रतीत होते हैं। कुछ लोग इसे सती-चौरा कहते हैं।

धर्मशालाएँ

यहाँ यात्रियोंके लिए कई लम्बे दालान बने हुए हैं तथा ४० कमरे भी हैं। क्षेत्रपर बिजली है। जलके लिए कुआँ है। मेले आदिके अवसरोंपर गाँवके कुएँसे टंकियोंमें जल मँगाया जाता है।

वार्षिक मेला

क्षेत्रका वार्षिक मेला प्रत्येक वर्ष २५ दिसम्बरसे १ जनवरी तक होता है। इस अवसरपर ४–५ हजार व्यक्ति एकत्र हो जाते हैं। सन् ११३९ में शान्तिनाथ भगवान्‌का महामस्तकाभिषेक-समारोह हुआ था। इस अवसरपर सहस्रों व्यक्ति यहाँ एकत्र हुए थे।

व्यवस्था

क्षेत्रकी व्यवस्था मेलेके अवसरपर एकत्र समाजमें-से चुनी हुई प्रबन्ध समिति करती है। क्षेत्रकी आर्थिक दशा सन्तोषजनक है। क्षेत्रके पास कुछ भूमि भी है। उसमें खेती करायी जाती है, जिससे क्षेत्रको अच्छी आय हो जाती है।

पटनागंज

अवस्थिति और मार्ग

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पटनागंज सागर जिलेमें रहलीके पास अवस्थित है। मध्य रेलवेकी बीना-कटनी लाइनपर सागर है, जहाँसे ४२ कि. मी. दूर रहली है। दमोहसे रहली ५३ कि. मी. है। वहाँ तक पक्की सड़क है। बसें बराबर मिलती हैं। रहली सुवर्णभद्र नदीके तटपर बसा हुआ है और तहसीलका मुख्यालय यहींपर है। नदीके उस तटपर मैदानमें पटनागंज क्षेत्र है। नदीपर पुल बना हुआ है। क्षेत्रके पास भी बस्ती है किन्तु व्यापार रहलीमें है। इसका पोस्ट ऑफिस भी रहली है।

क्षेत्र-दर्शन

इस क्षेत्रपर कुल मिलाकर २५ मन्दिर हैं। इनके चारों ओर पक्का अहाता बना हुआ है। यहाँका प्राकृतिक दृश्य आकर्षक है। सदातोया स्वर्णभद्रा नदी इस क्षेत्रके चरणोंको धोती है। मन्दिरोंके पृष्ठभागमें खेतोंकी हरियाली सुषमा बिखेरती है। कोलाहलसे दूर, एकान्त शान्तिपूर्ण वातावरणमें व्यक्तिके मनमें भगवान्‌की भक्ति मुखर हो उठती है। ऐसा ही है यहाँका वातावरण, किन्तु फिर भी निर्जनता नहीं है।

यहाँ एक सभा-भवन है। यह भवन शास्त्र-सभा अथवा व्याख्यान-सभाके उद्देश्यसे सेठ नारायणदासजीकी धर्मनिष्ठ माता केशरबाईने निर्मित कराया था। दीवारोंपर पौराणिक आख्यान चित्रित किये गये हैं। नीतिपरक छन्द भी लिखे गये हैं।

यहाँके मन्दिरों और मूर्तियोंका विवरण इस प्रकार है—

मन्दिर नं. १—भगवान् शान्तिनाथकी पीत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। अवगाहना ३ फुट ४ इंच है। मूर्ति-लेखके अनुसार प्रतिष्ठा-काल सं. १८६४ है।

मन्दिर नं. २—भगवान् चन्द्रप्रभ पीतवर्ण, पद्मासन हैं। अवगाहना ३ फुट है और संवत् १८३४ में प्रतिष्ठित हुई है।

मन्दिर नं. ३—यह मेरु-मन्दिर है। गन्धकुटी तीन कटनियोंके ऊपर स्थित है और गन्ध-कुटी तक पहुँचनेके लिए चक्राकार परिक्रमा-पथ बना हुआ है। गन्धकुटीमें शान्तिनाथ भगवान्की श्वेत पाषाणकी १० इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९५१ में हुई।

मन्दिर नं. ४—इस मन्दिरमें १ फुट १० इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। पादपीठपर कोई लांछन नहीं है।

मन्दिर नं. ५—इसमें नन्दीश्वर जिनालय और समवसरणकी रचना है। नन्दीश्वरके मेरु रंगीन हैं। इनकी रचना कोनीके नन्दीश्वर जिनालयकी अनुकृतिपर हुई लगती है। इसका निर्माण-काल संवत् १८३५ है। समवसरणकी रचना इसीके निकट है और उसके समकालीन है।

मन्दिर नं. ६—मूलनायक भगवान् महावीरकी कत्थई वर्णकी यह प्रतिमा पद्मासनमें ध्यानावस्थित है। इसकी ऊँचाई ४ फुट है और इसकी प्रतिष्ठा संवत् १८३५ में हुई थी। इस वेदी-में संवत् १८३५ और संवत् १५४८ की अनेक मूर्तियाँ हैं। दो मूर्तियाँ दायीं और बायीं ओरकी दीवारमें कायोत्सर्गासनमें अवस्थित हैं। इन दोनों मूर्तियोंपर कलचुरि शैलीका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। सम्भवतः ये मूर्तियाँ १२वीं शताब्दीकी हैं। दायीं ओरकी शिलामें पाँच मूर्तियाँ खड्गासन मुद्रामें उत्कीर्ण हैं—१ मध्यमें और २-२ दोनों पार्श्वोंमें। इसके परिकरमें छत्र, भामण्डल, ऊपर दोनों कोनोंपर देव-देवियाँ कमलपुष्प लिये हुए पुष्पवर्षाके लिए तैयार प्रतीत होते हैं। नीचे गजारूढ़ चमरेन्द्र भगवान्की सेवामें स्थित हैं। बायीं ओरकी मूर्ति भी खड्गासन मुद्रामें है।

इस वेदीपर पाषाणकी ६१ और धातुकी १० मूर्तियाँ हैं। पाषाणके ढाँचेमें २० धातुकी छोटी मूर्तियाँ जड़ी हुई हैं। पाँच मेरु हैं। पाषाणकी दो चौबीसी हैं।

मन्दिर नं. ७—यह मन्दिर सहस्रकूट जिनालय कहलाता है। यह ९ फुट ऊँचा है और इसकी गोलाई ३२ फुट है। इसमें १००८ अर्हन्त-मूर्तियाँ बनी हुई हैं। ये दोनों ही आसनोंमें उत्कीर्ण हैं—खड्गासन और पद्मासन। एक दीवार-वेदीमें तीन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। उनमें-से एक प्रतिमा पार्श्वनाथकी है। दो प्रतिमाओंपर कोई लेख या लांछन नहीं है। ये प्रतिमाएँ सोनागिरकी कुछ प्रतिमाओंकी शैलीकी हैं।

मन्दिर नं. ८—भगवान् ऋषभदेवकी लगभग १ फुट ऊँची प्रतिमा है। यह पद्मासन है और संवत् १८४२ की प्रतिष्ठित है।

मन्दिर नं. ९—भगवान् महावीरकी यह पद्मासन प्रतिमा १ फुट ४ इंच ऊँची है और संवत् १८४२ में प्रतिष्ठित है।

मन्दिर नं. १०—भगवान् सम्भवनाथकी १ फुट ७ इंच ऊँची यह पद्मासन प्रतिमा संवत् १८४२ में प्रतिष्ठित हुई।

इन मन्दिरोंके सामने ९ फुट ऊँचा एक मानस्तम्भ या स्तम्भ बना हुआ है, किन्तु उसके ऊपर कोई मूर्ति विराजमान नहीं है।

मन्दिर नं. ११—एक कक्षमें तीन प्राचीन मूर्तियाँ रखी हैं जो खण्डित हैं। इनमें ऋषभदेवकी मूर्ति पद्मासन है। इस शिलाफलकमें भामण्डल, छत्र, पुष्पवर्षा करनेवाले गन्धर्व, २ तीर्थंकर मूर्तियाँ, चमरवाहक और शार्दूल दिखाई पड़ते हैं। दूसरी मूर्ति २ फुट १० इंच ऊँची है। यह खड्गासन है और गजलक्ष्मी भगवान्‌का अभिषेक कर रही है। यह मूर्ति भगवान् श्रेयांसनाथकी है। तीसरी मूर्ति भगवान् शान्तिनाथकी है। यह खड्गासन है। गजलक्ष्मी भगवान्‌का अभिषेक करती हुई दिखाई पड़ती है।

मन्दिर नं. १२—यह प्रतिमा किस तीर्थंकरकी है, यह ज्ञात नहीं हो सका। चिह्न नीचे दब गया है। यह मूर्ति खड्गासन है। इसकी अवगाहना ३ फुट ९ इंच है। गजलक्ष्मी भगवान्‌का अभिषेक कर रही है। सिरके ऊपर तीन छत्र हैं। भगवान्‌के दोनों पार्श्वोंमें चमरेन्द्र खड़े हुए हैं।

मन्दिर नं. १३—भगवान् पार्श्वनाथकी २ फुट ऊँची यह पद्मासन मूर्ति है। बायीं ओर अरहनाथकी मूर्ति है तथा दायी ओरकी मूर्तिमें चिह्न नहीं है। अतः यह किस तीर्थंकरकी मूर्ति है, यह ज्ञात नहीं होता।

मन्दिर नं. १४—मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथ। अवगाहना २ फुट। पद्मासनमें विराजमान। उनके पार्श्वमें १ फुट ४ इंच ऊँची चन्द्रप्रभ भगवान्‌की मूर्ति है।

मन्दिर नं. १५—भगवान् मल्लिनाथकी ३ फुट ८ इंच अवगाहनाकी यह मूर्ति पद्मासनस्थ है और संवत् १४७२ में प्रतिष्ठित हुई है। इसकी नाक खण्डित है।

बायीं ओर एक स्तम्भमें १ फुट ३ इंच आकारको १ पद्मासन और २ खड्गासन मूर्तियोंका अंकन किया गया है।

मन्दिर नं. १६—पद्मासनस्थ भगवान् अभिनन्दननाथको प्रतिमाकी अवगाहना ४ फुट है। प्रतिष्ठा-संवत् १८७१ है। बायी ओर भगवान् शान्तिनाथकी १ फुट १० इंच आकारको प्रतिमा है तथा दायीं ओर १ फुट ११ इंच आकारकी तीर्थंकर मूर्ति है। इसके आसनपर चिह्न नही हैं।

मन्दिर नं. १७—वेदीपर भगवान् नेमिनाथकी श्यामवर्ण प्रतिमा विराजमान है। इसकी ऊँचाई १ फुट ९ इंच है। लगता है, यह वेदी किसी और मूर्तिको है।

मन्दिर नं. १८—एक तीर्थंकर मूर्ति २ फुट २ इंच ऊँची पद्मासनमे अवस्थित है और श्यामवर्ण है।

मन्दिर नं. १९—कत्थई वर्णकी एक तीर्थंकर मूर्ति १ फुट ६ इंच ऊँची है और पद्मासन है।

मन्दिर नं. २०—२ फुट १० इंच उत्तुंग कत्थई वर्णकी तीर्थंकर मूर्ति है और पद्मासनमें स्थित है।

मन्दिर नं. २१—एक दीवार-वेदीमें श्वेत पाषाणकी ५ इंच ऊँची तीर्थंकर-मूर्ति विराजमान है। दायीं ओर तीन वेदियाँ बनी हुई हैं जिनमें क्रमशः चन्द्रप्रभ, नेमिनाथ और चन्द्रप्रभ विराजमान हैं।

मन्दिर नं. २२—यह महावीर मन्दिर कहलाता है और महावीरको 'बड़ेदेव' कहा जाता है। यह पद्मासन प्रतिमा भूरे वर्णकी है। यह १३ फुट ७ इंच ऊँची और १० फुट १० इंच चौड़ी है। इसकी चरण-चौकीपर मध्यमें सिंहका अस्पष्ट लांछन प्रतीत होता है। इसीलिए इसे महावीरकी मूर्ति माना जाता है। 'बड़ेदेव' के बायी ओर गदा लिये हुए तथा दायीं ओर एक हाथमें नाल-

सहित कमल तथा दूसरे हाथमें विकसित कमल लिये हुए पार्श्वद खड़े हैं। बड़ी मूर्तिके अभिषेकके लिए लोहेकी सीढ़ीकी व्यवस्था है।

बड़ी मूर्तिके दोनों ओर विक्रम संवत् १८४२ की मूर्तियाँ विराजमान हैं। दायीं ओर ऋषभदेव और बायीं ओर सम्भवनाथकी मूर्तियाँ हैं और दोनों ही संगमूसा हैं।

बायीं ओर एक वेदी है। उसमें सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथकी मूर्तियाँ विराजमान हैं। दायीं ओर एक दीवारमें महावीर और पार्श्वनाथकी पद्मासन मूर्तियाँ हैं। दोनोंका ही वर्ण सलेटी है। महावीरकी मूर्ति संवत् १८५६ की है। दायीं ओर वेदी है। उसमें वेदीके बाहर १ फुट ७ इंच ऊँची तीर्थंकर-मूर्ति विराजमान है।

इस मन्दिरके द्वारपर बने हुए द्वारपालोंकी बगलमें पार्श्वनाथकी दो मूर्तियाँ विराजमान हैं। बायीं ओरकी मूर्तिके सप्त फण हैं तथा दायीं ओरकी मूर्ति नौ फणयुक्त है।

इस क्षेत्रपर बड़ा मन्दिर यही कहलाता है। 'बड़ेदेव' के कारण ही यह क्षेत्र अतिशय क्षेत्र कहलाता है। यहाँ स्त्रियाँ अपनी गोद भरनेकी कामना लेकर आती हैं और पुरुष अन्य सांसारिक मनौतियाँ मनाते हैं। उनकी भक्तिकी मात्रापर उनकी कामनाकी सिद्धि निर्भर करती है।

मन्दिर नं. २३—यह पार्श्वनाथ मन्दिर कहलाता है। यह यहाँका विख्यात और दर्शनीय मन्दिर है। यहाँ सहस्र-फणयुक्त पार्श्वनाथ विराजमान हैं। उनके सहस्र फणोंकी रचना अद्भुत और अनुपम है। फण-मण्डप सिर तथा दोनों भुजाओंको आवृत किये हुए हैं। फणावली अन्य मूर्तियोंके समान नहीं है, उनसे भिन्न है। मूर्तिके सिर और भुजाओंको तीन ओरसे घेरे हुए पाषाण-मण्डपमें १००० सर्पफणोंका कलात्मक अंकन है। मूर्ति कृष्णवर्ण और पद्मासन है। ४ फुट ४ इंच ऊँची और २ फुट ८ इंच चौड़ी है। इसका प्रतिष्ठा-संवत् १८४२ है।

इसके आगे निचाईपर एक अन्य पार्श्वनाथ-मूर्ति विराजमान है। यह भी सहस्र-फणवाली, कृष्णवर्ण और पद्मासन है। इसकी माप ४ फुट ४ इंच × २ फुट ७ इंच है। इसके सिरके ऊपर बना हुआ सर्पफण-मण्डप विशाल है और वह केवल सिरमें ऊपर ही तना हुआ है। किन्तु यह भी अपने प्रकारका एक ही है।

मूलनायकके दोनों ओर पार्श्वनाथकी नौ फणावलीसहित दो पद्मासन मूर्तियाँ विराजमान हैं। उपर्युक्त सभी मूर्तियाँ संवत् १८४२ की प्रतिष्ठित हैं। उसी संवत्की प्रतिष्ठित १२ मूर्तियाँ इस वेदीपर और विराजमान हैं। तीन मूर्तियाँ संवत् १५४८ की जीवराज पापड़ीवाल द्वारा प्रतिष्ठित विराजमान हैं। पापड़ीवालने ये मूर्तियाँ प्रतिष्ठित कराकर यहाँ भिजवायी थी। उन्होंने अनेक मन्दिरोंमें इस प्रकार प्रतिष्ठित मूर्तियाँ भेजकर विराजमान करायी थी। स्थान-स्थानपर उनकी मूर्तियाँ अब भी उपलब्ध होती हैं।

इन सभी मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा भट्टारक जिनचन्द्रके द्वारा हुई थी। ये बलात्कारगणकी दिल्ली-जयपुर-शाखाके थे। इनका भट्टारक-काल संवत् १५०७ से १५७१ है। इनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ भारतके कोने-कोनेमें मिलती हैं। सिर्फ नागपुरके जैन मन्दिरोंमें ही इनकी संख्या १०० से ऊपर है।

इस मन्दिरके आगे एक मण्डपमें तीन छतरियाँ बनी हुई हैं। सम्भवतः इनका निर्माण चरण विराजमान करनेके लिए किया गया था, किन्तु आजकल ये खाली हैं।

मन्दिर नं. २४—एक बड़ी वेदीपर भगवान् पार्श्वनाथकी श्वेतवर्ण पद्मासन मूर्ति विराजमान है। यह ११ फणोंसे मण्डित है। इसकी अवगाहना ४ फुट है और संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित

हुई है। इसके दोनों ओर संवत् १५४८ की चार मूर्तियाँ विराजमान हैं। इसका शिखर बड़ा भव्य एवं विशाल है।

मन्दिर नं. २५—यह पार्श्वनाथ मन्दिर है। भगवान् पार्श्वनाथकी कृष्ण पाषाणकी पद्मासन मूर्ति विराजमान है। इसकी अवगाहना ३ फुट है। मूर्ति-लेखके अनुसार इसका प्रतिष्ठा-काल संवत् १८३७ है। इसके समवसरणमें तीर्थंकरोंको ५ पाषाण-मूर्तियाँ और हैं।

पुरातत्त्व

किसी क्षेत्रपर उपलब्ध पुरातत्त्वसे क्षेत्र, मन्दिर और मूर्तिके रचना-काल और इतिहासपर प्रकाश पड़ता है। इस क्षेत्रपर इस प्रकारका कोई पुरातत्त्व मूर्ति, लेख, स्तम्भ आदिके रूपमें नहीं है जिसे अधिक प्राचीन कहा जा सके। यहाँकी उल्लेखनीय मूर्तियाँ महावीर और सहस्र-फणवाली पार्श्वनाथकी हैं। किन्तु उनका निर्माण-काल संवत् १८४२ है। संवत् १५४८ की कुछ मूर्तियाँ कई मन्दिरोंमें मिलती हैं, किन्तु वे सब प्रतिष्ठित होकर मडासा नगरसे आयी हैं, वे इस क्षेत्रपर प्रतिष्ठित नहीं हुईं। उन मूर्तियोंके प्रतिष्ठाकारक शाह जीवराज पापड़ीवाल और प्रतिष्ठाचार्य भट्टारक जिनचन्द्र थे। उनका इस क्षेत्रके साथ कभी कोई सम्पर्क हुआ हो, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता। मन्दिर नं. १५ में मल्लिनाथ स्वामीकी संवत् १४७२ (ई. स. १४१५) की प्रतिमा विराजमान है। इसमें सन्देह नहीं है कि यह मूर्ति अपने प्रतिष्ठा-कालसे यहाँ पर विराजमान रही है। अतः यह कहा जा सकता है कि इस स्थानपर ईसाकी १५वीं शताब्दीमे दिगम्बर जैन मन्दिर था। लगता है, प्राचीन कालमें यहाँ कोई नगर रहा होगा। उसी नगरमें यह मन्दिर और मूर्ति रही होगी। इन मूर्तियोंके सिवा और जितनी मूर्तियाँ यहाँ मिलती हैं, वे प्रायः ईसाकी १८वीं-१९वीं शताब्दीकी हैं। इससे ऐसा लगता है कि यहाँके अधिकांश मन्दिरोंका निर्माण इन्हीं शताब्दियोंमे हुआ। मन्दिर नं. ६ की भित्ति-मूर्तियाँ और मन्दिर नं. ११ की खण्डित मूर्तियाँ सम्भवतः किसी अन्य स्थानसे यहाँ लायी गयी हैं, ऐसा प्रतीत होता है। जिस मन्दिरकी दीवारमें मूर्तियाँ विराजमान हैं, वह मन्दिर ही १८वीं शताब्दी का है। मन्दिर नं. ११ को खण्डित मूर्तियाँ भी किसी स्थानीय मन्दिरकी प्रतीत नहीं होतीं। अतः यह कहा जा सकता है कि पटनागंजमें मन्दिरोंका निर्माण १५वीं शताब्दीमें होना प्रारम्भ हो गया था, किन्तु उसे अतिशय-क्षेत्रका रूप महावीर मन्दिरके निर्माणके पश्चात् मिला।

धर्मशाला

क्षेत्रपर मन्दिरोंके सामने एक धर्मशाला है, जिसमें १५ कमरे हैं। रहलीमें भी जैन मन्दिर और धर्मशाला है। यात्रियोंके लिए यही ठहरना सुविधाजनक है। क्षेत्रपर बिजली है। जलके लिए कुआँ और नदी है। रहलीके बाजारसे क्षेत्र प्रायः एक मील पड़ता है। नदीके पुलके पश्चात् कुछ मार्ग कच्चा है।

वार्षिक मेला

यहाँ वार्षिक मेलेकी कोई तिथि निश्चित नहीं है। माघ मासमें कभी भी मेला हो सकता है। नैमित्तिक मेले कई बार विशाल समारोहके साथ हो चुके हैं। एक बार सन् १९४४ में मेला भरा था, जब यहाँ पूज्य गणेश प्रसादजी वर्णी पधारे थे। दूसरी बार सन् १९६८ में एक

उल्लेखनीय मेला हुआ। इस अवसरपर यहाँ पंचकल्याणकपूर्वक बिम्ब-प्रतिष्ठा एवं गजरथका आयोजन हुआ। इस मेलेमें यहाँ कई लाख व्यक्ति एकत्र हुए थे।

व्यवस्था

क्षेत्रकी व्यवस्था मेलेके अवसरपर निर्वाचित प्रबन्ध समिति करती है।

अजयगढ़

स्थिति और मार्ग

अजयगढ़ पन्ना जिलेमें एक छोटा-सा गाँव है। गाँवके निकट एक पहाड़ीपर चन्देल राजाओंका बनवाया हुआ एक प्राचीन किला है। यह सड़क-मार्गसे कालिंजरके दक्षिण-पश्चिममें लगभग ३२ कि. मी. है। यह किला समतल भूमिसे ७००-८०० फुट ऊँचा बना हुआ है। यह उत्तर-से दक्षिणकी ओर एक मील लम्बा और पश्चिमसे पूर्वकी ओर इससे कुछ कम चौड़ा है।

अजयगढ़का निर्माण किसी अजयपाल नामक राजाने कराया था। किन्तु यहाँके उपलब्ध शिलालेखोंमें इसका नाम कहींपर भी अजयगढ़ नहीं दिया गया है, बल्कि इन शिलालेखोंमें सर्वत्र जयपुर दुर्ग दिया हुआ है। इस दुर्गमें दो द्वार हैं—एक उत्तरकी ओर, जिसे दरवाजा कहते हैं। शिलालेखोंमें इसका नाम कहीं-कहीं कालिंजर-द्वार भी दिया हुआ है क्योंकि यहींसे सीधा कालिंजर-को मार्ग जाता है और वह यहाँसे केवल ३२ कि. मी. है। दूसरे द्वारका नाम 'तारहौनी द्वार' है। यह दक्षिण-पूर्वकी ओर है। यहाँसे पहाड़की तलहटीमें बसे हुए तारहौन गाँवको रास्ता जाता है, इसीसे द्वारका नाम 'तारहौनी द्वार' पड़ गया।

उत्तरी द्वारमें प्रवेश करते ही चट्टानोंमें खुदे हुए दो तालाब मिलते हैं। इनका गंगा-यमुना नाम प्रचलित है। दुर्गके बीचों-बीच एक बहुत बड़ा तालाब बना हुआ है। इसे 'अजयपालका तालाब' कहते हैं। तालाब काफी प्राचीन लगता है। इस तालाबके किनारे अजयपालका मन्दिर है, जिसमें काले पाषाणकी चतुर्भुजी विष्णुकी मूर्ति है। तालाबके दूसरी ओर घिरी हुई चौकोर दीवारमें भगवान् शान्तिनाथकी खड्गासन प्रतिमा है। यह लगभग १५ फुट ऊँची है और ११वीं-१२वीं शताब्दीकी लगती है। तालाबके आसपास प्राचीन जैन मन्दिरोंके भग्नावशेष और खण्डित प्रतिमाएँ बिखरी पड़ी हैं। दुर्गके दक्षिणी सिरेपर एक बड़ा ताल है जिसे परमाल ताल कहा जाता है। इसके निकट चन्देल राजाओंके कालके तीन जीर्ण-शीर्ण मन्दिर खड़े हैं। इनमें सबसे बड़ा मन्दिर ६० फुट × ४० फुट है और इसका द्वार पश्चिमाभिमुखी है। इसके उत्तरी भाग-की दीवारें तो गिर चुकी हैं किन्तु जो दीवारें अभी तक खड़ी हैं, उनकी शिल्पकला और उच्च कोटिका अलंकरण दर्शनीय है। दूसरा मन्दिर भी इतना ही लम्बा-चौड़ा है तथा तीसरा मन्दिर इनसे कुछ छोटा ५४ फुट × ३६ फुट है।

तारहौनी द्वारके निकट एक चट्टानपर अष्ट-देवी-मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं, जिन्हें अष्टशक्ति कहा जाता है। ये श्री चण्डी, श्री चामुण्डा, श्री कालिका आदि हैं। इनके नाम भी मूर्तियोंके नीचे अंकित हैं। इनके निकट ७ फुट लम्बा और २ फुट ४ इंच चौड़ा चित्र-वर्णमें लिखा हुआ एक शिलालेख चट्टानमें खुदा हुआ है। इसमें चन्देल वंशके कीर्तिवर्मासे लेकर भोजवर्मा तकके राजाओं-के नाम मिलते हैं।

इसके निकट ही चट्टानोंमें उकेरी हुई जैन तीर्थंकरोंकी पद्मासन मूर्तियाँ मिलती हैं। इनकी कई पंक्तियाँ हैं। संख्यामें ये ५० के लगभग होंगी। इनके पास ही एक गाय और बछड़ा बने हुए हैं और एक सुखासीन चतुर्भुजी देवी बनी हुई है। उसकी गोदमें एक बालक है। उसके दायीं ओर एक-दूसरेके ऊपर पाँच शूकर बने हुए हैं। इसी प्रकार उसके बायीं ओर जोड़ोंमें आठ शूकर एक-दूसरेके ऊपर बने हुए हैं। सम्भवतः यह षष्ठी देवी है।

किलेमें एक भव्य मानस्तम्भ बना हुआ है। उसके ऊपर सैकड़ों जैन प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। इस पहाड़के चारों ओर तलहटीमें और जंगलमें अनेक जैन मूर्तियाँ बिखरी पड़ी हैं। अजयगढ़ गाँवमें एक प्राचीन मन्दिर है। यहाँ दिगम्बर जैनोंके कुछ घर हैं।

शिलालेख

यहाँ दुर्गमें छोटे-बड़े मिलाकर १६ शिलालेख उपलब्ध हुए हैं जो वि. सं. १२०८ से वि. सं. १३७२ तकके हैं। ये सभी चन्देल राजाओंके कालमे लिखे गये हैं। इनसे कई ऐतिहासिक महत्त्वकी बातोंपर प्रकाश पड़ता है तथा चन्देल राजाओंकी वंशावली भी ज्ञात होती है। इनमे-से एक शिलालेखमें, जो १५ पंक्तियोंका है तथा संवत् १३१२ का है, चन्देल राजा कीर्तिवर्मासे चन्देलवंशी राजाओं तकके नाम दिये गये हैं। वे इस प्रकार हैं—

चन्द्रवंशमें उत्पन्न राजा कीर्तिवर्मा, सुलक्षण वर्मा (जिसने मालवापर विजय प्राप्त की थी)। जयवर्मा, पृथ्वीवर्मा, मदनवर्मा, त्रैलोक्यवर्मा और उसके दो पुत्र–यशोवर्मा और वीरवर्मा। इन दोनोंमें-से वीरवर्मा राजा बना।

कारीतलाई

अवस्थिति

कारीतलाई गाँव कैमूर पर्वत-श्रेणियोंकी पूर्वी मालाओंमें, मैहरसे दक्षिण-पूर्वमें ३५ कि. मी., कटनीसे ४६ कि. मी. उत्तर-पूर्वमें और उचहरासे दक्षिणमें लगभग ५० कि. मी. है।

कारीतलाईका प्राचीन नाम कर्णपुर या कर्णपुरा था।

अवशेष

वर्तमान कारीतलाई गाँवके उत्तरमें पहाड़ीके किनारे जैन और हिन्दू मन्दिरोंके अवशेष विद्यमान हैं। उन अवशेषोंके पूर्वमें आधा मील लम्बा सागर ताल है। इन कलावशेषोंमें बहुत-सा सामान—पाषाण, स्तम्भ और मूर्तियाँ—गाँववालोंने अपने घरोंमें लगा लिया है। कुछ खण्डित-अखण्डित प्रतिमाएँ तालाबके किनारे पड़ी हुई हैं तथा कुछ मूर्तियाँ, अभिलेख, ताम्रपट आदि जबलपुर और रायपुरके संग्रहालयोंमें सुरक्षित रखे हुए हैं।

गाँववालोंने ईंट-पत्थरोंके लिए यहाँके कई स्थानोंपर खुदाई की है। इसमें ८ फुट गहराई तक प्राचीन ईंटोंकी दीवार मिली है। कहते हैं, विजय-राघोगढ़के किलेका निर्माण कारीतलाईके प्राचीन पत्थरोंसे हुआ था।

तीर्थकी प्राचीनता

कारीतलाई प्राचीन कालमें एक प्रसिद्ध तीर्थ और समृद्ध नगर रहा है, ऐसे प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। गुप्त-कालमें यहाँ मन्दिरों और मूर्तियोंका निर्माण तथा उनकी प्रतिष्ठा हुई थी। त्रिपुरीके कलचुरि नरेश लक्ष्मणराज (द्वितीय) के शासन-कालमें इस क्षेत्रका पर्याप्त विकास हुआ। इस कालमें जैन, वैष्णव, शैव और बौद्ध मन्दिरों और मूर्तियोंका निर्माण यहाँ हुआ।

कारीतलाईके निकटवर्ती प्राचीन स्थानोंमें प्रख्यात भरहुत, शंकरगढ़, उछहरा, खो, भुमारा आदि हैं जहाँ मौर्य-कालसे लेकर परिहार और कलचुरि-काल तकके अभिलेख और मूर्तियाँ मिलती हैं। भरहुतमें मौर्यकालीन स्तूपके अवशेष मिले हैं। शंकरगढ़में भरहुत स्तूपके वेदिका-स्तम्भ और उसके अन्य अंश प्राप्त हुए हैं। उछहरा, खो और भुमारामें गुप्तकालीन ताम्र-अभिलेख प्राप्त हुए हैं जो गुप्त-संवत् १५६ से २१४ तकके हैं। इन अभिलेखोंमें राजा हस्तिन्, राजा जयनाथ, राजा सर्वनाथ और राजा संक्षोभके उल्लेख मिलते हैं।

कारीतलाई भी इसी शृंखलाकी एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। यहाँकी कुछ गुफाओंमें ब्राह्मी-लिपिमें २००० वर्ष प्राचीन अभिलेख प्राप्त हुए हैं।[1] सन् १८५० में एक ताम्र-अभिलेख यहाँके भग्न वराह मन्दिरके अवशेषोंमें-से प्राप्त हुआ था जो संवत् १७४ का है। कनिंघमने इसे गुप्त-संवत्[2] माना है। इसमें महाराज जयनाथके भूमि-दानका उल्लेख है। कारीतलाईके निकटस्थ भुमारा नामक एक ग्राममें एक शिलालेख उपलब्ध हुआ है जिसमें गुप्त-शैलीमें ८ पंक्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इसमें पृथक् वंशोंके हस्तिन् और सर्वनाथ नामक राजाओंका उल्लेख है। सर्वनाथ महाराज जयनाथका पुत्र था। इस शिलालेखसे प्रमाणित होता है कि राजा हस्तिन् और राजा सर्वनाथ दोनों समकालीन थे। राजा हस्तिन्के गुप्तकालीन ताम्र-अभिलेख कई स्थानोंपर उपलब्ध हुए हैं। अतः कारीतलाईमें उपलब्ध ताम्र-अभिलेखका संवत् असन्दिग्ध रूपसे गुप्त-संवत् ही सिद्ध होता है।

कारीतलाईमें कलचुरि-कालके भी कुछ अभिलेख प्राप्त हुए हैं। इस कालका एक अभिलेख संग्रहालयमें सुरक्षित है। इसमें युवराजदेव और लक्ष्मणराजका नामोल्लेख मिलता है। लक्ष्मणराज-को चेदीन्द्र और चेदिनरेन्द्र भी कहा गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि कारीतलाई चेदिके कलचुरि-शासकोंके राज्यमें था। यहाँका एक शिलालेख रायपुर संग्रहालयमें सुरक्षित है। इस शिलालेखसे यह ज्ञात होता है कि कलचुरि-कालमें कारीतलाईको सोमस्वामिपुर भी कहा जाता था।

प्राचीन कारीतलाईका वर्तमान अवशेष करनपुरा है जो एक छोटा-सा गाँव है। यहाँ एक वृक्षके नीचे अम्बिका देवीकी एक सुन्दर प्रतिमा रखी हुई है। इसे गोंड़ लोग 'खेरमाई'के नामसे पूजते हैं। कारीतलाई और इसके निकटवर्ती स्थानोंपर अति प्राचीन कालसे जैन मन्दिरों और मूर्तियोंके अस्तित्वके प्रमाण मिलते हैं। किन्तु ज्ञात नहीं, किस शताब्दीमें ये भग्नावशेषोंके रूपमें परिवर्तित हो गये। यहाँके सहस्राधिक अवशेषोंको लोग उठाकर ले गये और कहीं किसी चबूतरेके ऊपर अथवा किसी वृक्षके नीचे रखकर पूजने लगे। जैन शासन-देवियोंकी अनेक मूर्तियोंको खेरमाई-के नामसे अब भी इस क्षेत्रमें पूजा जाता है। वरहटा गाँवमें खेरमाईकी प्रतिमाओंके ढेरमें अनेक जैन मूर्तियाँ मिली हैं।

---

१. बालचन्द्र जैन—कारीतलाईका कला-वैभव, 'जैन सन्देश', १९-११-१९५९।

२. Report of the Archaeological Survey of India, 1973-74 & 1974-75, Vol. IX.

कारीतलाईकी जैन मूर्तियाँ

वर्तमानमें कारीतलाईमें कोई अखण्डित जैन मन्दिर नहीं है। अतः जैन मूर्तियाँ भी व्यवस्थित रूपमें नही मिलती। यहाँकी अधिकांश मूर्तियाँ जबलपुर और रायपुर संग्रहालयोंमें पहुँचा दी गयी है। कुछ प्रतिमाओंको आसपासके लोग उठा ले गये तथा अनेक प्रतिमाएँ यहींपर खण्डित-अखण्डित दशामें पड़ी हुई हैं। यहाँकी प्रतिमाओंमे अधिकांशतः तीर्थंकरों और शासन-देवताओंको प्रतिमाएँ है। तीर्थंकरोंमें भी प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेवकी प्रतिमाएँ अधिक हैं। शासन-देवताओंमं अम्बिका, पद्मावती और सरस्वतीकी प्रतिमाएँ मिलती हैं। विशेष प्रतिमाओंमें द्विमूर्तिकाएँ, त्रिमूर्तिकाएँ, सर्वतोभद्रिका और सहस्रकूट जिनालय अथवा नन्दीश्वर जिनालयकी प्रतिकृति-प्रतिमाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। रायपुर संग्रहालयमें यहाँकी उपर्युक्त सभी प्रकारकी जैन मूर्तियाँ सुरक्षित हैं। वे गुप्त-कालसे कलचुरि-काल तकके अनूठे नमूने हैं।

कारीतलाईकी जो प्रतिमाएँ रायपुर संग्रहालयको प्राप्त हुई हैं, उनमें-से ३९ कलाकृतियाँ, प्रतिमाएँ आदि जैनोंसे सम्बन्धित हैं। जैन प्रतिमाओंमे ६ प्रतिमाएँ ऋषभदेवकी हैं। ७ द्विमूर्तिकाएँ, ४ नन्दीश्वर जिनालय या सहस्रकूट जिनालय, पंचबालयति, सर्वतोभद्रिका, चक्रेश्वरीकी १, अम्बिकाकी २, सरस्वतीकी १ तथा अन्य प्रतिमाएँ सम्मिलित हैं। इनमें-से कुछ विशेष मूर्तियोंका परिचय यहाँ दिया जा रहा है—

ऋषभदेव प्रतिमाएँ

एक प्रतिमा ३ फुट ९ इंच ऊँची है और पद्मासन मुद्रामें ध्यानमग्न है। ऋषभदेवकी सभी प्रतिमाएँ अष्ट प्रातिहार्ययुक्त हैं। मस्तकके ऊपर त्रिछत्र और मस्तकके पीछे भामण्डल, वक्षपर श्रीवत्स लांछन, सेवकके रूपमें सौधर्म और ईशान स्वर्गके इन्द्र तीर्थंकरके दोनों पार्श्वोंमें हाथमें चमर धारण किये हुए, गोमुख यक्ष और चक्रेश्वरी यक्षी चरणोंके दोनों ओर, चरण-चौकीपर मध्यमें ऋषभदेवका लांछन वृषभ, उसके नीचे धर्मचक्र और उसके दोनों ओर सिंह यह परिकर यहाँकी सभी ऋषभदेव प्रतिमाओंमें मिलता है। उपर्युक्त प्रतिमामें भी इस परिकरका सुन्दर अंकन किया गया है। इसमे सिंहयुगलके साथ गजयुगलका भी अंकन करके विशेषता प्रदान की गयी है।

एक अन्य प्रतिमा ४ फुट ६ इंच उन्नत है और पद्मासनासीन है। इसकी दक्षिण भुजा और वाम घुटना खण्डित हैं। शेष परिकर यथापूर्व है। भगवान्का शासन-देव गोमुख दक्षिण पार्श्वमें और सेविका यक्षी चक्रेश्वरी वाम पार्श्वमे ललितासनसे बैठे है। एक अन्य प्रतिमामें देवी अपने वाहन गरुड़पर आरूढ़ है। एक प्रतिमामें चक्रेश्वरीके स्थानपर अम्बिका यक्षीकी प्रतिमा बनायी गयी है। मध्य कालमें नेमिनाथकी यक्षी अम्बिकाको विशेष महत्त्व प्राप्त हो गया। फलतः इस कालमें सभी तीर्थंकरोंके साथ अम्बिकाकी प्रतिमा बनानेकी परम्परा चल पड़ी।

चौबीसी प्रतिमाएँ

एक प्रतिमा २ फुट ३ इंच ऊँची पद्मासनस्थ है। इसके स्कन्धोंपर लहराते हुए केशोंका अंकन अत्यन्त कलापूर्ण है। इस प्रतिमाके दोनों पार्श्वोंमें २३ तीर्थंकरोंकी लघु मूर्तियाँ हैं। दक्षिण पार्श्वकी मूर्तियाँ पद्मासनमें और वाम पार्श्वकी मूर्तियाँ खड्गासनमें हैं। चौकीके मध्यमें वृषभ लांछन और उसके नीचे चक्र अंकित है। चक्रके दोनो ओर सिंह और उसकी बगलमें कोनोंपर यक्ष-यक्षी बने हुए हैं।

एक अन्य चतुर्विंशतिपट्टमें पार्श्वनाथ मूलनायकके रूपमें पद्मासनासीन हैं। उनके मस्तकपर सर्पके सात फण फैले हुए हैं। अधोभागमें चमरेन्द्र सेवामें खड़े हुए हैं। तीन ओरकी पट्टिकाओंपर शेष २३ तीर्थंकरोंकी प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं।

द्विमूर्तिकाएँ

रायपुर संग्रहालयमें ७ जैन प्रतिमाएँ ऐसी हैं, जिनमें दो-दो तीर्थंकरोंकी कायोत्सर्ग मुद्रा-वाली प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। इन द्विमूर्तिकाओंमें एक प्रतिमा ऐसी भी है जिसमें अम्बिका और पद्मावती ललितासनसे बैठी हैं। तीर्थंकरकी युगल मूर्तियोंमें अष्ट प्रातिहार्यके अलावा तीर्थंकरोंके लांछन और उनके शासनदेवता भी अंकित हैं। ये युगल प्रतिमाएँ इस प्रकार हैं—ऋषभनाथ-अजितनाथ, अजितनाथ-सम्भवनाथ, पुष्पदन्त-शीतलनाथ, धर्मनाथ-शान्तिनाथ, मल्लिनाथ-मुनि-सुव्रतनाथ, पार्श्वनाथ-नेमिनाथ। इनके अतिरिक्त एक द्विमूर्तिकामें अम्बिका और पद्मावती हैं।

ऋषभनाथ-अजितनाथ—३ फुट ७ इंच ऊँचे श्वेत बलुआ पाषाणमें दोनों तीर्थंकरोंकी खड्गासन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। दोनों मूर्तियोंके परिकर पृथक्-पृथक् हैं। परिकरमें त्रिछत्र, भामण्डल, दुन्दुभि, हस्ति, पुष्पवृष्टि करते हुए विद्याधर, वक्षपर श्रीवत्स लांछन, चमरेन्द्र और भक्त हैं। दोनों मूर्तियोंके मुख और हाथ खण्डित हैं। ऋषभनाथकी चरण-चौकीपर उनका लांछन, वृषभ और यक्ष-यक्षी गोमुख-चक्रेश्वरी बने हुए हैं। इसी प्रकार अजितनाथकी पीठिकापर उनका चिह्न हाथी तथा उनके यक्ष-यक्षी महायक्ष-रोहिणी अंकित हैं। इस प्रतिमाका काल १०वीं शताब्दी प्रतीत होता है।

अजितनाथ-सम्भवनाथ—४ फुट ७ इंच ऊँचे शिलाफलकमें दोनों तीर्थंकरोंकी कायोत्स-र्गासन प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। दोनोंके परिकरमें छत्र, प्रभामण्डल, दुन्दुभि, गजयुगल, पुष्पमालाएँ लिये विद्याधर, चमरवाहक और भक्त हैं। दोनोंके पादपीठपर उनके लांछन हस्ति एवं घोड़ा तथा उनके यक्ष-यक्षी (अजितनाथके महायक्ष और रोहिणी तथा सम्भवनाथके त्रिमुख और प्रज्ञप्ति) अंकित हैं। चौकीपर सिंहोंके जोड़े एवं धर्मचक्र बने हुए हैं। दोनों तीर्थंकरोंके हाथ और मस्तक खण्डित हैं।

पुष्पदन्त-शीतलनाथ—३ फुट ७ इंच ऊँचे एक श्वेत बलुआ शिलाफलकमें दोनों तीर्थंकरों-की कायोत्सर्गासन मूर्तियाँ हैं। पुष्पदन्तका दक्षिण हस्त एवं शीतलनाथका वाम हस्त खण्डित हैं। चौकियोंपर पुष्पदन्तका चिह्न मगर और उनके यक्ष-यक्षी अजित और महाकाली तथा इसी प्रकार शीतलनाथका लांछन कल्पवृक्ष और उनके यक्ष-यक्षी ब्रह्म और मानवी अंकित हैं।

धर्मनाथ-शान्तिनाथ—३ फुट ७ इंच ऊँचे शिलाफलकमें दोनों तीर्थंकरोंकी खड्गासन मूर्तियाँ हैं। उनकी चरण-चौकीपर धर्मनाथका लांछन वज्रदण्ड और शान्तिनाथका लांछन हिरण अंकित हैं। धर्मनाथके यक्ष किन्नर तथा यक्षी मानसी तथा शान्तिनाथके यक्ष गरुड़ और यक्षी महामानसी तीर्थंकर मूर्तिके साथ अंकित हैं।

मल्लिनाथ-मुनिसुव्रतनाथ—एक शिलाफलकमें दोनोंकी कायोत्सर्ग मुद्रामें ध्यानस्थ मूर्तियाँ हैं। मल्लिनाथका दक्षिण एवं मुनिसुव्रतनाथका वाम हस्त खण्डित हैं। दोनोंके वक्षपर श्रीवत्स अंकित हैं। दोनोंकी चौकियोंकी लटकती हुई झूलपर दोनोंके अलग-अलग कलश एवं कच्छप लांछन बने हुए हैं। मल्लिनाथकी चौकीपर उनका यक्ष कुबेर और यक्षी अपराजिता एवं मुनि-सुव्रतनाथकी चौकीपर उनका यक्ष वरुण एवं यक्षी बहुरूपिणी ललितासनमें स्थित हैं।

पार्श्वनाथ-नेमिनाथ—यह द्विमूर्तिका भी कारीतलाईसे प्राप्त हुई थी और इस समय 'फिलाडेलफिया म्यूजियम ऑफ आर्ट' में सुरक्षित है। इन सभी प्रतिमाओंका काल १०-११वीं शताब्दी माना जाता है।

पंचबालयति

ऐसी प्रतिमाओंमें एक तीर्थंकरकी मूलनायक प्रतिमाके अतिरिक्त प्रायः चारों कोनोंपर चार अन्य तीर्थंकरोंकी प्रतिमाएँ उत्कीर्ण होती है। पंचबालयति वे तीर्थंकर हैं जो आजीवन बाल-ब्रह्मचारी रहे। ये कुमार प्रव्रजित भी कहलाते हैं। उनके नाम हैं—वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर। ऐसी एक प्रतिमामें भगवान् महावीरकी पद्मासन प्रतिमाको केन्द्र बनाकर चार अन्य तीर्थंकर प्रतिमाएँ उत्कीर्ण है। ये सभी पद्मासन हैं। पीठिकाके मध्यमें महावीरका लांछन सिंह बना हुआ है। उसके नीचे धर्मचक्रका अंकन है। लांछनके दोनों ओर भी सिंह बने हुए हैं। महावीरका यक्ष मातंग वाम पार्श्वमें करबद्ध खड़ा हुआ है और यक्षी सिद्धायिका चमर लिये हुई है। इनके दोनों ओर पूजा करते हुए भक्त प्रदर्शित हैं।

सर्वतोभद्रिका

यह एक शिखराकार चैत्य है, जिसके स्तम्भमें चारों दिशाओंमें एक-एक तीर्थंकर प्रतिमा बनी हुई है। सभी प्रतिमाएँ कायोत्सर्गासनमें है। इनमें-से एक तो पार्श्वनाथकी प्रतिमा है जिसकी पहचान उसके सर्पफणसे हो जाती है। शेष प्रतिमाएँ सम्भवतः ऋषभदेव, नेमिनाथ और महावीरकी हैं।

ऐसे ही कुछ शिखराकार लघु स्तूपोंपर तीर्थंकरोंकी लघु मूर्तियाँ बनी हुई है जो सम्भवतः नन्दीश्वर जिनालय अथवा सहस्रकूट चैत्यालयके प्रतीक हो सकती है।

शासन-देवियाँ

तीर्थंकर प्रतिमाओंके साथ तो शासन देव-देवियोंकी मूर्तियाँ मिलती ही हैं, किन्तु कुछ देवियोंकी स्वतन्त्र मूर्तियाँ भी यहाँ है। ये मूर्तियाँ कारीतलाईसे ही प्राप्त हुई थीं। देवी अम्बिकाकी एक मूर्ति द्विभुजी है। देवी अपने वाहन सिंहपर ललितासनसे बैठी हुई है। वह बायें हाथसे अपने छोटे पुत्र प्रियंकरको गोदमें लिये हुए है। दूसरे हाथमें आम्र-गुच्छक है। बड़ा पुत्र शुभंकर अपनी माताके पैरोंके पास बैठा है। देवी नाना रत्नाभरणोसे विभूषित है।

एक अन्य अम्बिका मूर्ति है। देवी आम्रवृक्षके नीचे त्रिभंग मुद्रामें खड़ी हुई है। उसका वाहन सिंह उसके पीछे बैठा हुआ है। आम्रवृक्षके ऊपर नेमिनाथ तीर्थंकरकी प्रतिमा है।

कारीतलाईके किसी जैन मन्दिरके द्वारका एक फ्रेम है। उसकी चौखटोंके अधोभागमें अम्बिका और पद्मावती ललितासनसे बैठी हुई हैं। अम्बिकाकी गोदमें बालक है और पद्मावतीके मस्तकपर फण है। चौखटके ऊपरी भागमें तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ अवशेषोंमें-से सरस्वतीकी एक अत्यन्त सुन्दर मूर्ति प्राप्त हुई है।

पतियानदाई

सतना नगरसे दक्षिण-पश्चिममें लगभग ९ कि. मी. पर सिन्दूरिया पहाड़ी है। उसके एक साधारण ऊँचे टीलेपर एक प्राचीन मन्दिर जीर्ण-शीर्ण अवस्थामें खड़ा हुआ है। स्थानीय लोग

इसे 'कुबरीकी मढ़िया' या 'पतियानदाई'' के नामसे जानते हैं। यह मन्दिर छोटा ही है—कुल ६ फुट १० इंच लम्बा और ६ फुट ६ इंच चौड़ा, और भीतरसे कुल ५ फुट लम्बा और ४ फुट चौड़ा है। इसकी छत पूर्व-गुप्त-कालके मन्दिरोंकी शैलीकी बनी हुई है। यह ७ फुट ८ इंच लम्बी और ७ फुट ४ इंच चौड़ी एक पाषाण-शिलासे बनायी गयी है। मन्दिरको सुरक्षित रखनेका बहुत-कुछ श्रेय इसी छतको दिया जा सकता है। इस मन्दिरके पाषाण इसी पहाड़ीके हैं। भरहुतके प्रसिद्ध स्तूपमें भी इसी पहाड़ीके पत्थर काममें आये हैं।

यह मन्दिर उत्तराभिमुख है। इसका द्वार १ फुट १०॥ इंच चौड़ा और ३॥ फुट ऊँचा है। द्वारके दोनों ओर मकरवाहिनी गंगा और कूर्मवाहिनी यमुनाका मनोहर अंकन है। इन देवियोंके एक हाथमें कलश और दूसरे हाथमें चमर प्रदर्शित हैं। त्रिभंग मुद्रामें खड़ी हुई इन देवियोंका अंकन कलाकारकी कुशलताका द्योतक है। देवियोंके रत्नाभरणोंकी संयोजना भी कलापूर्ण है। दोनों देवियोंके पार्श्वमें चतुर्भुज यक्ष-मूर्ति प्रदर्शित है। देवियोंके ऊपरी भागमें कल्पवल्लरीका अंकन किया गया है।

द्वारके तोरणमें तीन कोष्ठक बने हुए हैं। मध्य कोष्ठकमें आदिनाथ तीर्थंकर पद्मासन मुद्रामें आसीन हैं। उनकी चरण-चौकीपर वृषभ लांछन अंकित है तथा दोनों ओरके कोष्ठकोंमें फणावलियुक्त पार्श्वनाथ विराजमान हैं। पीठिकापर सर्प लांछन बना हुआ है। तीनों ही प्रतिमाएँ पद्मासनमें हैं तथा ५ फुट ऊँची हैं।

मन्दिरकी वेदी वर्तमानमें प्रतिमारहित है। कनिंघमने जब सन् १८७४ में इस स्थानकी यात्रा की थी, उस समय उन्होंने इस वेदीपर एक शिलाफलकमें उत्कीर्ण चौबीस जैन यक्षियोंकी मूर्तियाँ देखी थीं। वह मूर्ति आजकल प्रयाग संग्रहालयमें सुरक्षित है। उस मूर्तिका कई दृष्टियोंसे असाधारण महत्त्व है। सबसे प्रथम यह कि चौबीस यक्षियोंकी मूर्ति है, अर्थात् यह ऐसी दुर्लभ प्रतिमा है जिसमें समस्त तीर्थंकर यक्षियाँ एक स्थानपर अंकित हैं और दोनों पार्श्वोंमें तीर्थंकर-मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। दूसरा महत्त्व यह है कि यह चौबीस यक्षियोंका स्वतन्त्र मन्दिर था। जैन शासन-देवियों और यक्षियोंके स्वतन्त्र मन्दिरोंके निर्माणके इतिहासकी दृष्टिसे इस मूर्ति और मन्दिरका अपना विशेष महत्त्व है। अस्तु। इस मूर्तिका विवरण इस प्रकार है—

६८ फुट × ३९ इंच ऊँचे एक शिलाफलकमें २४ यक्षियोंकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। मध्यमें मुख्य देवी अम्बिकाकी खड़ी मूर्ति है। देवी त्रिभंग मुद्रामें खड़ी है। वह अलंकारोंसे सज्जित है। देवी चतुर्भुजी है किन्तु दुर्भाग्यसे उसकी चारों ही भुजाएँ खण्डित हैं। सिरपर वह मुकुट धारण किये हुई है। मस्तकके पीछे प्रभावली है। नाक खण्डित होनेके बावजूद मुख-सौन्दर्यमें कमी नहीं आने पायी है। देवीके अलंकारों और शाटिकाकी चुन्नटोंमें कलाका जो सूक्ष्म अंकन हुआ है और शिल्प-सौन्दर्यकी जो अभिव्यक्ति हुई है, वह अन्यत्र कहीं देखनेमें नहीं आयी। इसका आकार ४१ फुट है।

देवीके कण्ठमें हँसुली, रत्नहार एवं तिलड़ी मौक्तिक माला है। भुजाओंमें भुजबन्ध हैं। कटि-प्रदेशमें कई प्रकारकी कटि-मेखलाएँ सुशोभित हैं। आभूषणोंकी खुदाई इतनी स्पष्ट है कि एक-एक लड़ी और एक-एक कड़ी गिनी जा सकती है। देवी पैरोंमें कड़े और पाजेब धारण किये हुई है। देवीके दायीं ओर एक बालक सिंहपर आरूढ़ है तथा बायीं ओर एक बालक देवीका हाथ पकड़े हुए खड़ा है। ये दोनों बालक देवीके पुत्र प्रियंकर और शुभंकर हैं। दोनोंके निम्न भागमें स्त्री-पुरुष अंजलिबद्ध अंकित हैं।

मूल प्रतिमाके समान इसका परिकर भी अत्यधिक सुन्दर है। देवीके दोनों पार्श्वों एवं ऊर्ध्व भागमें लघु स्तम्भों द्वारा कोष्ठक बनाये गये हैं। इनमें २३ तीर्थंकरोंकी शासन-रक्षिका २३ यक्षियोंका अंकन किया गया है। इन सभी यक्षियोंकी मूर्तियोंके नीचे चौखटेपर उस यक्षीका नाम भी अंकित है। ऊपरी भागमें ५ यक्षी मूर्तियाँ है जिनके नाम हैं—बहुरूपिणी, चामुण्डा, पद्मावती, विजया और सरस्वती। वाम पार्श्वमें ७ यक्षियाँ हैं जिनके नाम हैं—अपराजिता, महामानुषी, अनन्तमती, गान्धारी, मानसी, ज्वालामालिनी और मानुजी। दक्षिण पार्श्ववर्ती देवियोंके नाम हैं—जया, अनन्तमती, वैराटी, गौरी, काली, महाकाली और वज्र-शृंखला। अधोभागमें ४ देवी-मूर्तियाँ हैं। उनके नाम (सम्भवतः) रोहिणी, प्रज्ञप्ति, पुरुषदत्ता और सिद्धायिनी हैं। इन नामोंमें अनन्तमतीका नाम दो बार आया है। सरस्वती विद्यादेवी है, यक्षी नहीं। सम्भवतः इस नामका उपयोग चक्रेश्वरीके लिए हुआ है। मानुजी नामकी कोई देवी नहीं है। लगता है, 'मानवी' के स्थानपर 'मानुजी' नाम दिया गया है।

देवीके शिरोभागपर ५ तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हुई हैं, जिनमें ३ पद्मासन और २ खड्गासन हैं। पद्मासन प्रतिमाओंमें मध्यकी प्रतिमाके सिरपर छत्र और पीठिकापर वृषभ लांछन अंकित हैं। अतः यह प्रतिमा आदिदेव ऋषभदेवकी है। दायीं ओरकी प्रतिमाके शीर्षपर सप्त-फणावली है। अतः यह पार्श्वनाथ प्रतिमा है। बायीं ओर पंच-फणावली होनेसे वह सुपार्श्वनाथकी प्रतिमा है। दक्षिण और वाम पार्श्वोंमें ८ खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। इस प्रकार कुल १३ जिन-प्रतिमाएँ अंकित हैं। इनके अतिरिक्त नवग्रह और चक्रधारी यक्ष-मूर्ति भी अंकित हैं। देवीकी इतनी सुन्दर मूर्ति अन्यत्र दुर्लभ है। वस्तुतः इसे जैन शिल्पकी एक मौलिक देन कहा जा सकता है।

इस मन्दिरकी निर्माण-शैली प्रारम्भिक गुप्तकालीन मन्दिरोंकी शैलीसे बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। इसलिए इसका निर्माण निश्चित रूपसे गुप्त-कालमें हुआ होगा। यह सम्भव हो सकता है कि इस मन्दिरमें देवी-मूर्ति बादमें विराजमान की गयी हो। मन्दिरका द्वार अलंकृत है। द्वारके दोनों ओर द्वारपाल खड़े हैं। सिरदलपर तीन कोष्ठक बने हुए हैं। मध्य कोष्ठकमें पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति विराजमान है तथा दोनों कोनोंके कोष्ठक खाली पड़े हुए हैं। सम्भवतः ये मूर्तियाँ नष्ट कर दी गयीं या चुरा ली गयी। मन्दिरकी बनावटसे लगता है कि मन्दिरके आगे अर्धमण्डप रहा होगा, जिसमें ४ स्तम्भ होंगे।

इस विषयमें सन्देह करनेका कोई अवकाश नहीं है कि यह मन्दिर मूलतः जैन मन्दिर है। यह शक्ति-मन्दिर या हिन्दू मन्दिर नहीं है, जैसी कि कुछ पुरातत्त्ववेत्ताओंने आशंका प्रकट की है। मन्दिरके गर्भ-द्वारके सिरदलपर तीर्थंकर मूर्तियोंका अंकन इसे जैन मन्दिर माननेको बाध्य करता है।

इस मन्दिरका नाम किस प्रकार 'पतियानदाई मन्दिर' हो गया, यह अवश्य अनुसन्धानका विषय है। कुछ विद्वानोंकी रायमें यह मन्दिर पहले 'पद्मावती देवी मन्दिर' कहलाता था। इसीका अपभ्रंश होकर 'पतियानदाई मन्दिर' हो गया। किन्तु अपभ्रंशवाली यह बात तर्कसंगत नहीं लगती क्योंकि मूलनायक देवीके अतिरिक्त जिन २३ देवियोंके नाम देवियोंके पादपीठपर अंकित मिलते हैं, उनमें पद्मावतीका भी नाम मिलता है। इसका अर्थ यह है कि मूलनायक देवी अन्य ही कोई है। हमारी सम्मतिमें वह देवी अम्बिका है। इसकी पहचान उसके दो पुत्रों—शुभंकर और प्रियंकर, तथा उसके वाहन सिंहसे हो जाती है।

सुकोशल जनपद

कुण्डलपुर
लखनादौन
मढ़िया
त्रिपुरी
बरहटा
कोनीजी
पनागर
बहोरीबन्द
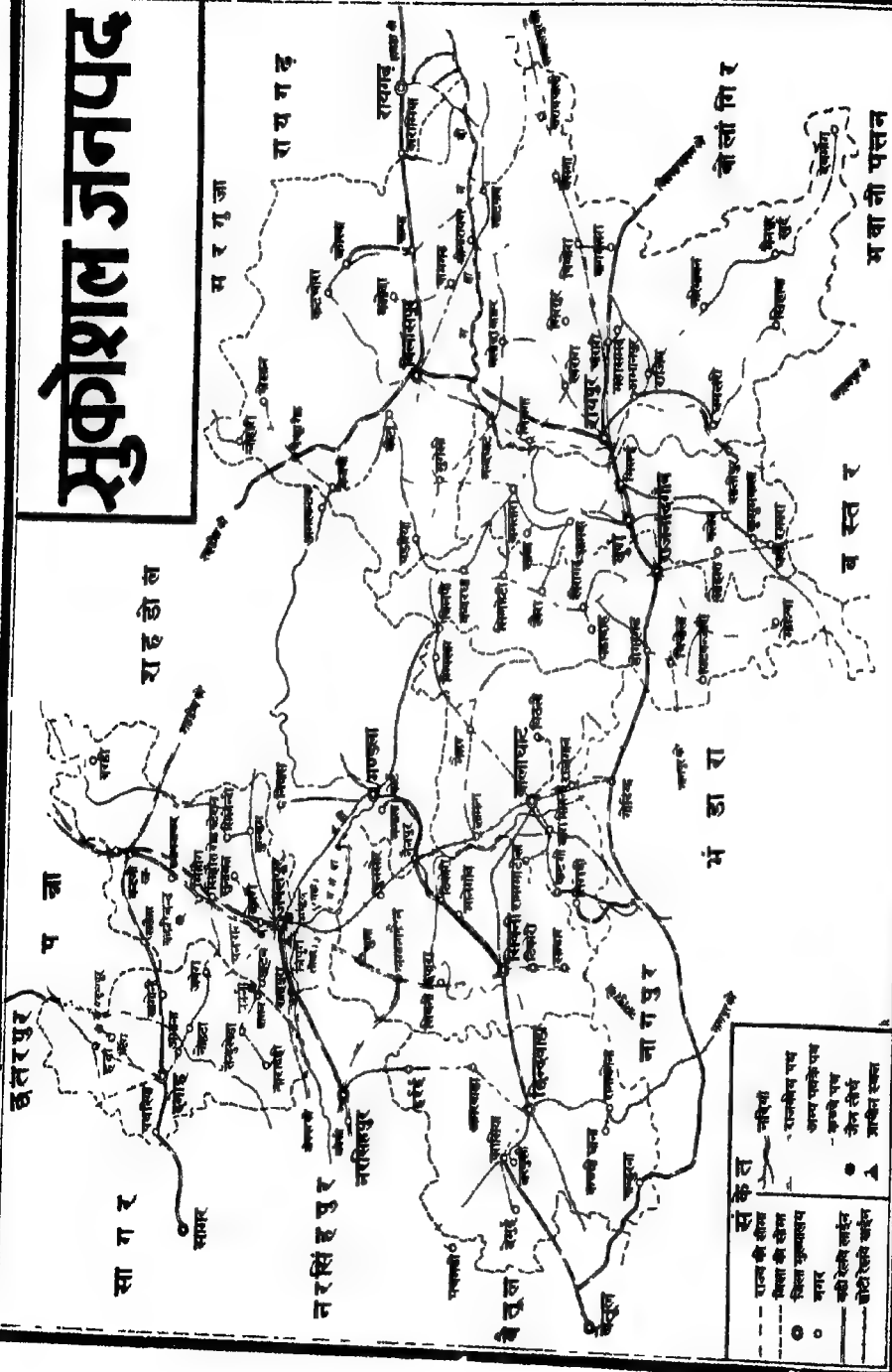
१. भारतके महासर्वेक्षककी अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभागीय मानचित्रपर आधारित। © भारत सरकारका प्रतिलिप्यधिकार, १९७६

२. मानचित्रमें दिये गये नामोंका अक्षर-विन्यास विभिन्न सूत्रोंसे लिया गया है।

कुण्डलपुर

मार्ग और अवस्थिति

कुण्डलपुर क्षेत्र मध्यप्रदेशके दमोह जिलेमें अवस्थित है। यह बीना-कटनी रेल-मार्गके दमोह स्टेशनसे ईशान कोणमें ३५ कि. मी. और दमोह-पटेरा रोडपर पटेरासे ५ कि. मी. दूर है। सड़क पक्की है। कटनीसे सगौनी होकर भी जा सकते हैं। कुण्डलपुर एक छोटा-सा ग्राम है। इसका पोस्ट ऑफिस कुण्डलपुर ही है। यहाँके मन्दिर एक गोलाकार छोटी पहाड़ीके उत्तरी सिरेपर अवस्थित हैं।

कुण्डलपुर समुद्री सतहसे तीन हजार फुट ऊँची पर्वतमालाओंसे घिरा हुआ है। यहाँकी पर्वतमाला कुण्डलाकार है। सम्भवतः इसीलिए इस स्थानका नाम कुण्डलपुर पड़ गया प्रतीत होता है। यहाँके दृश्य अत्यन्त मनोरम हैं। मध्यमें वर्धमान सागर नामक एक विशाल सरोवर है तथा उसके तीन ओर पर्वतपर और चौथी ओर किनारेपर भी मन्दिरोंकी पाँत है। सरोवरपर पक्का घाट होनेके कारण यह स्थान अत्यन्त सुन्दर बन गया है। पहाड़पर जानेके लिए तीन मार्ग हैं। पहले और दूसरे मार्गसे पाँच सौ सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं तथा तीसरा मार्ग मन्दिरोंके बीचसे होकर जाता है। इस मार्गसे उतरने-चढ़नेमें कोई कठिनाई नहीं होती। यहाँका प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त चित्ताकर्षक एवं आह्लादक है।

कुण्डलपुरके बड़े बाबा

यहाँ पर्वतके ऊपर और नीचे तलहटीमें मन्दिरोंकी कुल संख्या ६० है। इनमें-से मुख्य मन्दिर 'बड़े बाबा' का मन्दिर कहलाता है। यह पहाड़पर मन्दिर नं. ११ है। बड़े बाबाकी मूर्ति पद्मासन है। इसकी ऊँचाई १२ फुट ६ इंच तथा चौड़ाई ११ फुट ४ इंच है। इस मूर्तिको आम जनतामें महावीर भगवान्‌की मूर्तिके रूपमें मान्यता प्राप्त है। यह धारणा शताब्दियोंसे चली आ रही है, ऐसा लगता है। बड़े बाबाके मन्दिरमें संवत् १७५७ का एक शिलालेख है। उसमें मन्दिरके सन्दर्भमें श्लोक नं. २ तथा १० में 'श्रीवर्द्धमानस्य' और 'श्री सन्मतेः' दिया हुआ है, जिसका आशय यह है कि उस कालमें अर्थात् १७वीं–१८वीं शताब्दीमें यह मन्दिर महावीर मन्दिर कहलाता था। इससे यह स्पष्ट है कि इस मन्दिरकी मूलनायक प्रतिमा भगवान् महावीरकी होगी और उसके कारण ही यह मन्दिर महावीर मन्दिर कहलाता होगा। सम्भवतः 'बड़े बाबा' की यह मूर्ति ही उस कालमें महावीरकी मूर्ति कहलाती होगी।

ध्यानपूर्वक देखनेसे प्रतीत होता है कि बड़े बाबा और पार्श्ववर्ती दोनों पार्श्वनाथ-प्रतिमाओं-के सिंहासन मूलतः इन प्रतिमाओंके नहीं हैं। बड़े बाबाका सिंहासन दो पाषाण-खण्डोंको जोड़कर बनाया गया प्रतीत होता है। इसी प्रकार पार्श्वनाथ-प्रतिमाओंके आसन किन्हीं खड्गासन प्रतिमाओंके अवशेष-जैसे प्रतीत होते हैं। इससे दो ही निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—(१) पीठासन अपने मौलिक रूपमें हों किन्तु उनके ऊपरकी मूर्तियाँ अन्य विराजमान कर दी गयी हों।

(२) मूर्तियाँ मूलतः ये ही रही हों किन्तु किसी कारणवश पीठासन कभी बदले गये हों। यदि ऐसी कोई सम्भावना भी हो, तो यह बात आततायियोंके आक्रमणके बादकी ही हो सकती है। तथ्य कुछ भी हो, यह तो स्वीकार करना ही होगा कि इधरकी दो-तीन शताब्दियोंमें मूलनायकके गर्भगृहमें कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये हैं। उदाहरणतः इस गर्भगृहकी दीवारोंपर जिस ढंगसे प्रतिमाएँ लगी हुई हैं, उसमें कोई व्यवस्था या योजना नहीं मालूम पड़ती है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यहाँसे ५ कि. मी. दूरस्थ वरँट नामक स्थानसे, ये मूर्तियाँ, वहाँका मन्दिर ध्वस्त हो जानेपर, लाकर यहाँ विराजमान की गयी है।

वर्तमानमें मूलनायक भगवान्‌की जो स्थिति है, उसे देखते हुए अवश्य आश्चर्य होता है कि इस मन्दिरको उपर्युक्त शिलालेखमे वर्धमान मन्दिर अथवा सन्मति-मन्दिर क्यों लिखा गया है और यह कि परम्परागत अनुश्रुतिके अनुसार मूलनायक प्रतिमाको महावीरकी प्रतिमा क्यों कहा जाता है, जबकि प्रतिमाकी चरण-चौकीपर महावीर तीर्थंकरका लांछन सिंह या अन्य कोई प्रतीक अंकित नहीं है। चरण-चौकीपर दोनों पार्श्वोंमे दो सिंह अवश्य उकेरे गये हैं किन्तु ये चौबीसवें तीर्थंकरके लांछन या प्रतीक नही है, अपितु ये सिंहासनके सिंह हैं, जैसे कि प्रायः अन्य सभी प्रतिमाओंकी चरण-चौकीपर अंकित मिलते हैं। इसके विपरीत कुछ ऐसे ठोस आधार हैं जो बड़े बाबाको महावीर-मूर्ति माननेकी मान्यताके विरुद्ध पड़ते हैं। प्रथम तो यह कि मूर्तिके कन्धेपर जटाओंकी दो-दो लटें लटक रही हैं। सामान्यतः तीर्थंकर मूर्तियोंके केशकुन्तल घुँघराले और छोटे होते हैं, उनके जटा एवं जटाजूट नही होते। किन्तु भगवान् ऋषभदेवकी कुछ प्रतिमाओंमें प्रायः इस प्रकारके जटाजूट अथवा जटा देखनेमें आती है। ऋषभदेव-प्रतिमाओंका यह जटायुक्त रूप शास्त्रसम्मत भी है। आचार्य जिनसेनने 'हरिवंश पुराण' मे ऋषभदेवके जटायुक्त मनोहर रूपके सम्बन्धमें जो प्रशंसापरक उद्‌गार प्रकट किये हैं, वे ध्यान देने योग्य हैं और मूर्ति-शिल्पमें उसका विशेष महत्त्व है। सम्बद्ध श्लोक इस प्रकार है—

> सप्रलम्बजटाभारभ्राजिष्णुर्जिष्णुराबभौ।
> रूढप्रारोहशाखाग्रो यथा न्यग्रोधपादपः॥९-२०४

अर्थात्, लम्बी-लम्बी जटाओंके भारसे सुशोभित आदिनाथ जिनेन्द्र उस समय ऐसे वटवृक्षके समान सुशोभित हो रहे थे, जिसकी शाखाओंसे जटाएँ लटक रही हों।

इसी प्रकार आचार्य रविषेणने पद्मपुराण (३।२८८) मे भगवान्‌की जटाओंका वर्णन किया है। इनकी बातका समर्थन अन्य आचार्योंने भी किया है। किन्तु किसी अन्य तीर्थंकरकी जटाओंका कोई वर्णन किसी ग्रन्थमें नही मिलता। ऋषभदेवके तपस्यारत रूपमें जटाओंका होना अपवाद है। यही कारण है कि ऋषभदेवके अतिरिक्त अन्य किसी तीर्थंकर मूर्तिके सिरपर जटाभार नही मिलता। केवल ऋषभदेवकी अनेक मूर्तियोंके सिरपर नानाविध जटाजूट, जटागुल्म और जटाएँ प्राप्त होती है। कुण्डलपुरके बड़े बाबाके कन्धेपर भी जटाएँ लहरा रही है। अतः यह मूर्ति निस्सन्देह ऋषभदेवकी है, महावीरकी नही।

दूसरा कारण और भी प्रबल और स्पष्ट है, जिससे इसे ऋषभदेवकी मूर्ति स्वीकार करनेके सिवा अन्य कोई चारा नहीं है। इसकी वेदीके अग्रभागमें भगवान् ऋषभदेवके यक्ष-यक्षी गोमुख और चक्रेश्वरी बने हुए हैं।

ये दोनों ही कारण और तर्क इतने पुष्ट हैं, जिनसे बड़े बाबाकी मूर्ति महावीरकी न होकर ऋषभदेवकी सिद्ध होती है।

अतिशय क्षेत्र

बहुत समयसे कुण्डलपुर एक अतिशय क्षेत्रके रूपमें विख्यात है। यहाँके बड़े बाबाके चमत्कारोंके सम्बन्धमें अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है, एक मुगल बादशाहने कुण्डलपुरपर आक्रमण कर दिया। जब उसने 'बड़े बाबा' के हाथको तोड़नेके लिए हथौड़ेसे प्रहार किया तो प्रतिमाके खण्डित अँगूठेसे दूधकी धारा बह निकली। उसी समय उसकी सेनापर मधुमक्खियोंने भीषण आक्रमण कर दिया, जिससे सेना वहाँसे अपनी जान बचाकर भाग गयी।

इसी प्रकार किंवदन्ती है कि यहाँ केशरकी वर्षा कई बार हुई है। रात्रिमें देवगण पर्वतके मन्दिरोंमें पूजनके लिए आते रहे हैं। कहा जाता है कि उनके गीत-वाद्यकी मधुर ध्वनि अनेक लोगोंने सुनी है। अनेक जैन और जैनेतर व्यक्ति यहाँ मनोकामना-पूर्तिके निमित्त आते हैं और अनेक लोगोंकी मनोकामनाएँ पूरी होती हैं। ऐसी किंवदन्तियोंके कारण यह अतिशय क्षेत्र माना जाता है।

महाराज छत्रसाल द्वारा जीर्णोद्धार

इस क्षेत्रके प्रति इतिहासप्रसिद्ध महाराज छत्रसाल विशेष रूपसे आकृष्ट हुए थे, इस प्रकारके प्रमाण भी उपलब्ध होते है। घटना १७वी-१८वीं शताब्दीके मध्यकी है। भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति, जो मूलसंघ बलात्कारगण सरस्वतीगच्छके थे, अपनी शिष्यमण्डलीसहित हिण्डोरिया पधारे। वे देव-दर्शन किये बिना आहार ग्रहण नहीं करते थे। आसपास कहीं जैन मन्दिर नहीं था। तभी उन्हें लोगोंसे कुण्डलपुरका परिचय मिला जो वहाँसे १९ कि. मी. दूर था। वे एक भीलको लेकर कुण्डलपुर पहुँचे। उस समय यह क्षेत्र उपेक्षित दशामें पड़ा हुआ था। इसकी दुर्दशा देखकर भट्टारकजीको बड़ा खेद हुआ। किन्तु जब भगवान् आदिनाथकी इस अतिशयसम्पन्न विशाल मूर्तिके दर्शन उन्होंने किये तो उन्हें अत्यन्त आह्लाद हुआ। तभी उनकी आज्ञा लेकर उनके शिष्य श्री शुभचन्द गणीने क्षेत्रके उद्धारका बीड़ा उठाया। कुछ समय बाद उनका देहावसान हो गया। तब उनके गुरुबन्धु श्री ब्र. नेमिसागरजीने उनके अधूरे कार्यको पूरा करनेका संकल्प किया।

एक बार महाराज छत्रसाल मुगल बादशाहसे पराजित होकर कुण्डलपुर आ निकले। वहाँ उनकी भेंट ब्रह्मचारी नेमिसागरजीसे हुई। ब्रह्मचारीजीने इस हिन्दू नरेशसे क्षेत्रके जीर्णोद्धारके लिए सहायताकी याचना की। किन्तु नरेश स्वयं ही सहायताकी तलाशमें थे। फिर भी उन्होंने यह वचन दिया कि यदि वे अपना खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त कर लेंगे तो राज्य-कोषसे यहाँका जीर्णोद्धार करा देंगे। उन्होंने बड़ी भक्तिके साथ 'बड़े बाबा' के दर्शन किये और प्रच्छन्न रूपसे कुछ समय तक यहीं रहे।

इसके कुछ दिनों पश्चात् मुगल सेनासे महाराज छत्रसालकी मुठभेड़ हुई। उस युद्धमें विजयश्री वीर छत्रसालको प्राप्त हुई। उन्हें खोया हुआ राज्य मिल गया। उन्हें अपना वचन स्मरण था। उन्होंने यहाँके वर्धमानसागरके चारों ओर पक्का घाट बनवाया और मन्दिरका जीर्णोद्धार कराया। जीर्णोद्धारका कार्य पूरा होनेपर माघ शुक्ला १५ सोमवार वि. सं. १७५७ को पंचकल्याणक प्रतिष्ठाका विशाल समारोह किया। इस समारोहमें महाराज स्वयं भी पधारे थे। इस अवसरपर उन्होंने मन्दिरमें सोने-चाँदीके छत्र, चमर और पूजाके बरतन भेंट किये, जो अब तक मन्दिरमें वर्तमान बताये जाते हैं। उन्होंने मन्दिरके लिए पीतलका दो मनका एक घण्टा भी भेंट किया।

महाराज छत्रसाल द्वारा किये गये जीर्णोद्धार और उपकरणादि भेंट किये जानेके बारेमें एक शिलालेख भी मिलता है जो मन्दिरके प्रवेश-द्वारपर अब भी लगा हुआ है। इस शिलालेखमें कुल २४ पंक्तियाँ हैं। यह लेख संवत् १७५७ माघ सुदी १५ सोमवार (३१ दिसम्बर सन् १७०० सोमवार) को उत्कीर्ण किया गया था। इस शिलालेखमें कुन्दकुन्दान्वयमें हुए यशःकीर्ति, ललित-कीर्ति, धर्मकीर्ति, पद्मकीर्ति और सुरेन्द्रकीर्ति भट्टारकोंका उल्लेख करके बताया गया है कि उनके शिष्य शुभचन्द्र गणी हुए जिन्होंने इस स्थानको जीर्ण-शीर्ण देखकर भिक्षावृत्तिसे एकत्रित धनसे इसका जीर्णोद्धार कराया। पश्चात् उनके शिष्य ब्र. नेमिसागरने वि. सं. १७५७ माघ सुदी १५ सोमवारको सब छतोंका काम पूरा किया। भट्टारकोंकी यह परम्परा बलात्कारगण जेरहट-शाखा-की है। इस शाखाका प्रारम्भ १५वीं शताब्दीमें हुआ था।

क्या यह क्षेत्र निर्वाण-क्षेत्र है ?

आचार्य यतिवृषभ विरचित 'तिलोयपण्णति' में निम्नलिखित गाथा आयी है—

"कुण्डलगिरिम्मि चरिमो केवलणाणीसु सिरिधरो सिद्धो ॥" ४।१४७९

अर्थात्, केवलज्ञानियोंमें सबसे अन्तिम श्रीधर हुए जो कुण्डलगिरिसे मुक्त हुए।

श्रीधर मुनि केवलियोंकी परम्परामें अन्तिम अननुबद्ध केवली थे, क्योंकि इससे पूर्वकी दूसरी गाथामें 'तत्थ वि सिद्धिपयण्णे केवलिणो णत्थि अणुबद्धा' इस वाक्य द्वारा यह सूचित किया है कि जम्बू स्वामीके बाद कोई अनुबद्ध केवली नहीं हुआ। श्रीधर मुनिका उल्लेख इसके बाद हुआ है। इसलिए अध्याहार द्वारा यह अर्थ निकलता है कि वे अन्तिम अननुबद्ध केवली थे। भगवान् महावीरके समवसरणमें जो ७०० केवली थे, उनमें ३ अनुबद्ध और शेष अननुबद्ध केवली थे, और श्रीधर उनमें सबसे अन्तिम थे।

उपर्युक्त गाथाके आधारपर कुछ विद्वान् प्रस्तुत कुण्डलपुरको श्रीधर केवलीकी निर्वाण-भूमि मानकर उसे निर्वाण-क्षेत्र बताते हैं। यह वस्तुतः विचारणीय है। श्रीधर मुनिकी निर्वाण-भूमि कौन-सी है, अब तक इस ओर ध्यान प्रायः कम गया है और तत्सम्बन्धी उल्लेख केवल शास्त्रोंमें दिखाई पड़ता है, किन्तु उनकी निर्वाण-भूमिका निर्णय नहीं हो पाया।

आचार्य पूज्यपादकृत संस्कृत निर्वाण-भक्तिमें एक श्लोक मिलता है जो अवश्य विचारणीय प्रतीत होता है। वह श्लोक इस प्रकार है—

द्रोणीमति-प्रबल कुण्डल-मेढ्रके च, वैभारपर्वततले वरसिद्धकूटे।
ऋष्यद्रिके च विपुलाद्रि-बलाहके च, विन्ध्ये च पोदनपुरे वृषदीपके च ॥

इस श्लोकमें 'प्रबल कुण्डल मेढ्रके च' इस पदका अर्थ आचार्य प्रभाचन्द्रने 'क्रियाकलाप' में 'प्रबल कुण्डले प्रबल मेढ्रके च' दिया है, जिसका अर्थ है श्रेष्ठ कुण्डलगिरि और श्रेष्ठ मेढ्रगिरि। इस श्लोकमें कई सिद्ध तीर्थोंका नामोल्लेख किया गया है, यथा द्रोणिमान्, कुण्डलगिरि, मेढ्रगिरि, वैभारगिरि, ऋषिगिरि, विपुलगिरि, बलाहक, विन्ध्यगिरि, पोदनपुर और वृषदीपक। इनमें कुण्डलगिरिका उल्लेख द्रोणिमान् पर्वतके पश्चात् और मेढ्रगिरिसे पूर्व किया गया है। उसके पश्चात् राजगृहके चार पर्वतोंका उल्लेख किया गया है जिनके नाम हैं—वैभारगिरि, ऋषिगिरि, विपुलाचल और बलाहक। सम्भवतः राजगृहीका पाँचवाँ पर्वत निर्वाण-भूमि नहीं रहा है, इसलिए उसका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कुण्डलगिरि भी सिद्ध क्षेत्र था तथा तिलोयपण्णत्ति, जयधवला आदि ग्रन्थोंके अनुसार वहाँसे श्रीधर केवली मुक्त हुए जो महावीर भगवान्के अन्तिम अननुबद्ध केवली थे।

कुण्डल नामके कई स्थान हैं—(१) कुण्डलपुर अथवा कुण्डग्राम, वैशाली (वर्तमान बसाढ) के निकट जिसका वर्तमान नाम वासुकुण्ड है। इसका नाम महावीर-कालमें कुण्डग्राम था। दिगम्बर जैनाचार्योंने इसका नाम कुण्डलपुर भी लिखा है।

(२) नालन्दाके निकट कुण्डलपुर। वस्तुतः गाँवका नाम कुण्डलपुर नहीं है, बड़ागाँव है। वैशालीके कुण्डग्रामके स्थानपर इसी गाँवको कुण्डलपुर क्षेत्र मानकर यहाँ मन्दिर बना दिया गया था।

(३) कुण्डलपुर, महाराष्ट्रके सतारा जिलेमें पूना-सतारा रेलमार्गपर किर्लोस्कर गढ़ी स्टेशनसे पाँच कि. मी. है। यह तीर्थक्षेत्र है। यहाँ पहाड़पर झरी पार्श्वनाथ और गिरि पार्श्वनाथ नामक दो मन्दिर हैं।

(४) कुण्डलगिरि—दमोह जिलेका वर्तमान क्षेत्र।

इन उक्त चारों स्थानोंको तीर्थ-क्षेत्र माना जाता है। किन्तु आश्चर्य है कि कुछ समय पूर्व-तक इनमें-से किसीको भी सिद्धक्षेत्र नहीं माना जाता था। इधर कुछ वर्षोंसे दमोह जिलेके कुण्डल-गिरिको सिद्धक्षेत्र घोषित करनेके प्रयत्न किये जा रहे हैं।

इन चारोंमें-से कौन-सा कुण्डल सिद्धक्षेत्र है, यह सिद्ध करना अभी शेष है। दमोह जिलेके कुण्डलगिरिको सिद्धक्षेत्र माननेके लिए प्रमाण-रूपमें वे चरणचिह्न उपस्थित किये जाते हैं जिनकी चौकीपर आगेकी ओर लिखा है—'कुण्डलगिरौ श्रीधर स्वामी'। किन्तु इन चरणोंको देखकर लगता है कि ये १२वीं-१३वीं शताब्दी या उसके बादके हैं और लेख तो विशेष प्राचीन प्रतीत नहीं होता। यह कोई प्रतिष्ठा-लेख भी नहीं लगता क्योंकि अन्य लेखोंके समान इसमें प्रतिष्ठा-काल, प्रतिष्ठाचार्य और प्रतिष्ठाकारक किसीका भी उल्लेख नहीं है। यह सब क्यों नहीं दिया गया, यह नहीं कहा जा सकता। कुछ वर्ष पूर्व तक यह लेख किसी व्यक्तिकी दृष्टिमें भी नहीं आया था। इन सब कारणोंसे इस लेखको अधिक प्रामाणिक माननेकी स्थिति नहीं बनती। फिर भी इस क्षेत्रको सिद्धक्षेत्र माननेमें इसकी प्राकृतिक स्थिति सहायक बन सकती है। यह स्थिति अन्य किसी कुण्डलपुरको प्राप्त नहीं है। तिलोयपण्णत्तिमें जिस स्थानका नाम कुण्डलगिरि दिया गया है, उसी-का उल्लेख पूज्यपादने निर्वाण-भक्तिमें प्रबल कुण्डलके नामसे दिया है। इस उल्लेखमें प्रबल तो विशेषणपद है, स्थानका नाम तो कुण्डल ही है। किन्तु तिलोयपण्णत्तिके कुण्डलगिरि-उल्लेखसे लगता है कि यह क्षेत्र कोई नगर न होकर पर्वत है। वैशाली कुण्डग्राम और नालन्दाके निकटवाला कुण्डलपुर तो गाँव हैं, पर्वत नहीं। इसलिए उन्हें तो विचारकोटिमें रखा ही नहीं जा सकता। सतारा जिलेका कुण्डल और दमोह जिलेका कुण्डल इन दोनोंपर विचार करते समय हमें संस्कृत निर्वाण-भक्तिमें दिये गये निर्वाण-क्षेत्रोंके क्रमको एकदम उपेक्षित या गौण नहीं समझ लेना चाहिए। इसमें द्रोणिमान्, कुण्डल और मेढ्रक इस क्रमसे तीन तीर्थ दिये हुए हैं। लगता है, यह क्रम निरुद्देश्य नहीं है। यदि हम इस क्रमको सोद्देश्य और सार्थक मान लें तो द्रोणिमान् और मेढ्रकके मध्य कुण्डलकी अवस्थिति स्वीकार करनी होगी। भौगोलिक दृष्टिसे वर्तमानमें द्रोणगिरि और मेढ्रक अर्थात् मुक्तागिरिके मध्यमें कुण्डलपुर अवस्थित है। अतः संस्कृत निर्वाण-भक्तिका सिद्धक्षेत्र प्रबल कुण्डल और तिलोयपण्णत्तिमें वर्णित श्रीधर केवलीका निर्वाण-क्षेत्र कुण्डलगिरि वस्तुतः दमोह जिलेका यह वर्तमान कुण्डलपुर सिद्धक्षेत्र है।

कई विद्वानोंने एक नयी प्रस्थापना की है। उनका अभिमत है कि निर्वाण भक्तिके उपर्युक्त श्लोकमें राजगृहीके चार पर्वतोंका तो उल्लेख किया गया है किन्तु पाँचवें पर्वतका नामोल्लेख तक नहीं किया गया। इससे लगता है कि प्रबल कुण्डल पद राजगृहीके पाँचवें पर्वतके लिए प्रयुक्त हुआ

है। इस पदका प्रयोग भी सोद्देश्य किया गया है। यतः राजगृहीके पंचपहाड़ बिलकुल गोलाकार है जैसा कि कुण्डल गोल होता है। किन्तु यह मत हमें कोई राह नहीं दिखाता। न तो राजगृहके पाँच पहाड़ोंमें कुण्डल नामका कोई पर्वत ही है, और न वहाँके पहाड़ कुण्डलाकार ही हैं। इसके अतिरिक्त पद-रचनामें राजगृहके चारों पर्वतोंके साथ कुण्डलका उल्लेख भी नहीं किया गया। अतः कुण्डलगिरि राजगृहका कोई पर्वत रहा होगा, इस कल्पनाको प्रामाणिक माननेमें सहज ही संकोच होता है।

इस विवेचनके पश्चात् हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि जबतक कोई प्रबल और विरोधी प्रमाण प्राप्त नहीं होता, दमोह जिलेका कुण्डलपुर ही वह सिद्धक्षेत्र है जहाँसे अन्तिम अननुबद्ध केवली श्रीधर मुनि मुक्त हुए।

क्षेत्र-दर्शन

इस क्षेत्रपर कुल ६० मन्दिर बने हुए हैं, जिनमें-से पहाड़पर ४० और नीचे मैदानमें २० बने हुए हैं। मैदानके मन्दिरोंमें केवल एक मन्दिर धर्मशालाओंके मध्य बना हुआ है। यह महावीर मन्दिर कहलाता है। शेष मन्दिर वर्धमानसागरके तटपर बने हुए हैं। धर्मशालाओंके मध्य मैदानमें एक विशाल संगमरमरका मानस्तम्भ बना हुआ है।

यहाँ धर्मशालाके निकट वर्धमानसागर नामक एक विशाल सरोवर बना हुआ है। इसके किनारेपर पाषाणकी सीढ़ियाँ और घाट बने हुए हैं। सीढ़ियों और घाटोंका निर्माण इतिहास-प्रसिद्ध महाराज छत्रसालने कराया था, ऐसा कहा जाता है।

क्षेत्रकी वन्दनाके लिए जाते हुए तालाबके किनारेपर चन्द्रप्रभ भगवान्‌की गुमटी पड़ती है। यही प्रथम मन्दिर है। क्षेत्रकी वन्दना यहींसे प्रारम्भ होती है।

मन्दिर नं. १.—चन्द्रप्रभ मन्दिर—भगवान् चन्द्रप्रभकी श्वेतवर्ण, १ फुट २ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है, जिसकी प्रतिष्ठा संवत् १८८९ में हुई।

२. नेमिनाथ मन्दिर—भगवान् नेमिनाथकी पद्मासन, श्वेतवर्ण १ फुट ऊँची प्रतिमा है। प्रतिष्ठा संवत् १९०१ में हुई। यह एक गुमटी है। इसके पास एक छोटी छतरीमें चरण विराजमान हैं।

३. एक गुमटीमें डेढ़ फुटके एक शिलाफलकमें चरणचिह्न उत्कीर्ण हैं। चरण ८ इंच लम्बे हैं और एक दीवारमें जड़े हुए हैं।

इसके आगे पहाड़की चढाई प्रारम्भ हो जाती है। पक्की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। कुछ सीढ़ियाँ चढ़नेपर एक द्वार मिलता है। उसके बाद लगभग २०० सीढ़ियाँ चढ़नेके बाद फिर एक द्वार आता है। यह एक प्रकारसे विश्रामस्थल है। यहाँसे लगभग २०० सीढ़ियाँ चढ़नेके बाद चन्द्रप्रभ मन्दिर मिलता है।

४. चन्द्रप्रभ मन्दिर—इसमें चन्द्रप्रभकी श्वेतवर्ण पद्मासन, २ फुट ११ इंच उत्तुंग प्रतिमा विराजमान है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १५४८ मे हुई। बायी ओर एक वेदीमें चन्द्रप्रभ २ फुट ९ इंच ऊँचे स्वर्ण-वर्ण विराजमान हैं। इस मन्दिरके बाहर चारों कोनोंपर गुमटियाँ बनी हुई हैं। इनमें श्यामवर्ण, १ फुट ७ इंच ऊँची, पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसमें लांछन और लेख नहीं हैं।

५. पार्श्वनाथ मन्दिर—यहाँ तीन दरकी वेदी है। मध्यमें कृष्णवर्ण पद्मासन पार्श्वनाथ विराजमान हैं। अवगाहना २ फुट ९ इंच है और प्रतिष्ठाकाल है संवत् १९०२। बायीं ओर

मुनिसुव्रतनाथकी श्वेतवर्ण, पद्मासन, संवत् १९०२ में प्रतिष्ठित और २ फुट ३ इंच अवगाहनावाली प्रतिमा है। दायीं ओर आदिनाथकी कृष्णवर्ण, २ फुट ३ इंच उन्नत, पद्मासन और संवत् १९०२ में प्रतिष्ठित प्रतिमा विराजमान है।

६. पार्श्वनाथ मन्दिर—मन्दिर विशाल है। पार्श्वनाथकी कृष्णवर्ण, संवत् १८८८ में प्रतिष्ठित, २ फुट ९ इंच ऊँची, पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। बायीं ओर श्वेतवर्णके चन्द्रप्रभ हैं। अवगाहना २ फुट ५ इंच है और प्रतिष्ठाकाल संवत् १८८८ है। दायीं ओर इसी वर्ण और कालकी ऋषभदेव-प्रतिमा है।

७. नेमिनाथ मन्दिर—२ फुट ८ इंच ऊँची, कृष्ण पाषाणकी, संवत् १८८२ में प्रतिष्ठित पद्मासन मूर्ति है। बायीं ओर ऋषभदेव और दायीं ओर महावीरकी श्वेतवर्ण प्रतिमाएँ हैं।

८. पार्श्वनाथ मन्दिर—संवत् १८७१ में प्रतिष्ठित और ३ फुट १० इंच ऊँची, कृष्णवर्ण, पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इधर-उधर वेदी खाली है।

९. अजितनाथ मन्दिर—अजितनाथ भगवान्‌की श्वेतवर्ण, पद्मासन, १ फुट ९ इंच ऊँची और संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित प्रतिमा विराजमान है।

१०. चन्द्रप्रभ मन्दिर—भगवान् चन्द्रप्रभ श्यामवर्ण, १ फुट २ इंच उन्नत और पद्मासन विराजमान हैं। वक्षपर श्रीवत्स सुशोभित है। लेख नहीं है। इसके पार्श्वमें भगवान् अनन्तनाथकी पद्मासन, संवत् १८९७ में प्रतिष्ठित और २ फुट १ इंच ऊँची प्रतिमा विराजमान है। यहाँ दो प्राचीन मूर्तियाँ भी विराजमान हैं।

११. बड़े बाबाका मन्दिर—इस मन्दिरकी मूलनायक प्रतिमा भगवान् ऋषभदेवकी है। यह लाल वर्णकी पद्मासन है। इसकी ऊँचाई १२ फुट ६ इंच तथा चौड़ाई ११ फुट ४ इंच है। इसके दोनों पार्श्वोंमें पार्श्वनाथ भगवान्‌की ११ फुट १० इंच ऊँची खड्गासन मूर्तियाँ हैं। पार्श्वनाथके ऊपर सप्त फणावली सुशोभित है। ऋषभदेव प्रतिमाको ही 'बड़े बाबा' कहते हैं। बड़े बाबाके अभिषेकके लिए दोनों ओर लोहेकी सीढ़ियाँ लगी हुई हैं।

ऋषभदेव भगवान्‌के मुखपर सौम्यता, भव्यता और दिव्य स्मित है। ध्यानपूर्वक कुछ देर देखते रहनेपर मुखपर अद्भुत लावण्य, अलौकिक तेज और दिव्य आकर्षण प्रतीत होता है। भगवान्‌की छातीपर श्रीवत्स सुशोभित है, कन्धोंपर जटाओंकी दो-दो लटें दोनों ओर लटक रही हैं। भगवान्‌के सिंहासनके नीचे दो सिंह बने हुए हैं, जो आसनके सिंह हैं। ये तीर्थंकरके लांछन नहीं हैं। पादपीठके अधोभागमें अर्थात् वेदीके सामनेके भागमें ऋषभदेवके सेवक यक्ष गोमुख और यक्षी चक्रेश्वरी उत्कीर्ण हैं। यक्ष द्विभुजी है। उसके एक हाथमें परशु और दूसरे हाथमें बिजौरा फल है। यक्षका मुख गाय-जैसा है। दायीं ओर चक्रेश्वरी है। वह चतुर्भुजी है। उसके ऊपरके दो हाथोंमें चक्र हैं। नीचे दायाँ हाथ वरद मुद्रामें है। बायें हाथमें शंख है।

इस गर्भगृहमें दायीं ओरकी दीवारपर छह शिलाफलकोंपर तीर्थंकर मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं, जिनमें क्रमशः बायीं ओरसे दायीं ओरको ऋषभदेव, अभिनन्दननाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा छठे फलकमें ऊपर कुन्थुनाथ तथा नीचे ऋषभदेव हैं। इनमें पहली, तीसरी और चौथी प्रतिमाएँ खड्गासन हैं, शेष पद्मासन हैं।

बड़े बाबाके सामने दीवारपर—वाम भागमें ऋषभदेवकी खड्गासन प्रतिमा है। दूसरी प्रतिमाका चिह्न ज्ञात नहीं हो सका। दक्षिण भागमें ऋषभदेव और चन्द्रप्रभकी खड्गासन मूर्तियाँ हैं।

बायीं ओरकी दीवारमें ऋषभदेव, कुन्थुनाथ और पार्श्वनाथकी चार मूर्तियाँ हैं। प्रत्येकके साथ पुष्पवर्षी देव और चमरवाहक हैं।

गर्भगृहके प्रवेशद्वारके बायी ओर एक शिलालेख अंकित है। यह १ फुट ११ इंच चौड़ा और १ फुट ७ इंच ऊँचा है। यह ऐतिहासिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसी शिलालेखमें महाराज छत्रसाल द्वारा क्षेत्रको दिये गये बहुमूल्य सहयोग और भेटका उल्लेख है।

इसी प्रवेशद्वारके आगे एक चबूतरेपर गुलाबी पाषाणके चरणचिह्न उत्कीर्ण है। इनके पादपीठपर सामनेकी ओर आधुनिक लिपिमे 'कुण्डलगिरौ श्रीधर स्वामी' लिखा हुआ है। चरणोंकी बगलमें ४ फुट २ इंचका और मेरुके आकारका एक पाषाण-स्तम्भ रखा हुआ है। इसके दो भाग इस प्रकार हो गये हैं मानो यह मध्यभागसे चीर दिया गया हो। दोनों भागोंपर २० मूर्तियाँ उकेरी हुई हैं। इनमें-से दो मूर्तियाँ नही हैं। इसके ऊपर संवत् १८९२ का एक लेख अंकित है।

मन्दिरमे चार वेदियाँ बनी हुई है। मन्दिरके मुख्य प्रवेशद्वार पर दायी ओर क्षेत्रपाल विराजमान हैं। उनकी खड़ी मुद्रा है, चार भुजाएँ है, जिनमे-से एकमे फल, दूसरेमे पुष्प, तीसरे हाथमें दण्ड और चौथे हाथसे अपने वाहन कुत्तेको पकड़े हुए है। यहाँसे नीचे धर्मशालाको जानेका मार्ग भी है। यहाँ अनेक जैन और जैनेतर स्त्री-पुरुष बच्चोंका मुण्डन कराने और मनौती मानने आते है।

१२. नेमिनाथ मन्दिर—नेमिनाथ भगवान्की यह प्रतिमा सलेटी वर्णकी है और खड्गासन है। भगवान्के ऊपर तीन छत्र है। उनके दोनों ओर गज बने हुए है। उनके नीचे भक्त हाथ जोड़े हुए है। चरणोंके दोनों ओर चमरेन्द्र सेवा-मुद्रामे खड़े हुए है। यह एक गुमटी है।

१३. महावीर मन्दिर—यह भी एक गुमटी है। इसमें स्वर्ण वर्णकी पद्मासन महावीर-मूर्ति विराजमान है। मूर्तिके सिरके पीछे प्रभावलय है, किन्तु यह खण्डित है। बायी ओर चार पद्मासन और दायी ओर छह पद्मासन मूर्तियाँ बनी हुई है। यह शिलाफलक १ फुट १० इंच ऊँचा है, किन्तु खण्डित है। मूर्तिकी नाक और होठ भी खण्डित है।

१४ पार्श्वनाथ मन्दिर—भगवान् पार्श्वनाथकी कृष्णवर्ण, २ फुट ६ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। मूर्तिपर लेख नही है।

१५ अजितनाथ मन्दिर—यह मूर्ति पद्मासन, श्वेतवर्ण, १ फुट ४ इंच ऊँची है तथा संवत् १५८४ की प्रतिष्ठित है।

१६. पद्मप्रभ मन्दिर—मूलनायक प्रतिमा श्वेत पाषाणकी, १ फुट ३ इंच अवगाहनाकी पद्मासन है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १५४८ मे हुई। दो वेदियाँ और है, जिनमे चन्द्रप्रभ भगवान्की श्वेतवर्ण प्रतिमाएँ विराजमान है।

१७. अजितनाथ मन्दिर—अजितनाथ भगवान्की यह खड्गासन प्रतिमा एक शिलाफलकमे उत्कीर्ण है। प्रतिमा प्राचीन प्रतीत होती है किन्तु मूर्तिपर लेख नही है। मूर्तिके सिरके ऊपर छत्रत्रयी सुशोभित है। सिरके पीछे भामण्डल विराजमान है। भामण्डलके इधर-उधर दो गज हैं तथा दो भक्त हाथ जोड़े हुए बैठे हैं। भगवान्की सेवामें एक चमरवाहक और एक चमरवाहिका खड़े है। मूर्ति प्राचीन प्रतीत होती है।

१८ शान्तिनाथ मन्दिर—शान्तिनाथ भगवान्की यह प्रतिमा ४ फुट ५ इंच ऊँची है और संवत् १५४८ में इसकी प्रतिष्ठा हुई है। यहाँ मन्दिरके अहातेमें कुछ प्राचीन मूर्तियाँ रखी हुई हैं जो कुँवरपुर (बाँसा तारखेड़ा) गाँवके मन्दिरसे लायी गयी है।

१९. महावीर मन्दिर—महावीर स्वामीकी यह पद्मासन प्रतिमा कृष्ण पाषाणकी बनी हुई है।

२०. चन्द्रप्रभ मन्दिर—यह श्वेतवर्ण प्रतिमा है।

२१. आदिनाथ मन्दिर—भगवान् ऋषभदेवकी कृष्ण पाषाणकी यह ४ फुट ५ इंच उन्नत पद्मासन प्रतिमा है। इस मूर्तिके ऊपर कोई लेख नहीं है।

२२. पुष्पदन्त मन्दिर—यह प्रतिमा २ फुट ४ इंच अवगाहनावाली है। यह श्वेतवर्ण और पद्मासन है तथा संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित हुई है। बायीं ओर पद्मावती देवीकी मूर्ति है तथा दायीं ओर आदिनाथकी प्रतिमा विराजमान है।

२३—चन्द्रप्रभ मन्दिर—भगवान् चन्द्रप्रभकी यह प्रतिमा सलेटी वर्णकी है। इसका आकार ९ इंचका है, पद्मासन है और संवत् १८८१ की प्रतिष्ठित है। यह मन्दिर पिसनहारीकी मढ़िया कहलाती है।

२४. पार्श्वनाथ मन्दिर—संवत् १८७० में प्रतिष्ठित और २ फुट ९ इंच उन्नत पार्श्वनाथकी यह प्रतिमा पद्मासन है और सलेटी वर्णकी है।

२५. सुमतिनाथ मन्दिर—यह मूर्ति १ फुट ३ इंच ऊँची है, श्वेत पाषाणकी है और पद्मासन है। इसका प्रतिष्ठा-संवत् १७९४ है। इधर-उधर दो वेदियाँ हैं। उनमें पार्श्वनाथ भगवान् विराजमान हैं। इनमें एक मूर्तिपर प्रतिष्ठा-काल संवत् १२५७ माघ सुदी १५ सोमवार उत्कीर्ण है।

२६. पार्श्वनाथ मन्दिर—पार्श्वनाथकी कृष्ण पाषाणकी प्रतिमा पद्मासन है और इसकी अवगाहना ३ फुट २ इंच है। इसके पीठासनपर कोई लेख नहीं है। बायी ओर सम्भवनाथ विराजमान हैं। ये कृष्णवर्ण हैं। अवगाहना ५ फुट ७ इंच है। ये कायोत्सर्गासनमें हैं।

मन्दिरके बाहर एक कमरेमें क्षेत्रपाल विराजमान हैं।

२७. पार्श्वनाथ मन्दिर—पार्श्वनाथकी यह पद्मासन प्रतिमा कृष्ण वर्णकी है और १ फुट २ इंच ऊँची है। इसकी चरण-चौकीपर कोई लेख नहीं है। इधर-उधर दो वेदियाँ और हैं जिनमें श्वेत वर्णके आदिनाथ विराजमान हैं।

२८. पार्श्वनाथ मन्दिर—पार्श्वनाथकी यह श्वेतवर्ण प्रतिमा पद्मासन है। यह संवत् १८१३ में प्रतिष्ठित हुई है और इसकी अवगाहना १ फुट ७ इंच है। एक अन्य वेदीमें पद्मप्रभ विराजमान हैं। ये श्वेत वर्णके हैं और पद्मासन हैं। ऊँचाई ११ इंच है और संवत् १५४८ प्रतिष्ठा-काल है।

२९. चन्द्रप्रभ मन्दिर—चन्द्रप्रभ भगवान्की कृष्ण पाषाणकी यह २ फुट ८ इंच ऊँची प्रतिमा संवत् १९३५ में प्रतिष्ठित की गयी। इसके इधर-उधर दोनों ओर दो वेदियाँ हैं जिनमे चन्द्रप्रभ और आदिनाथकी श्वेत पाषाणकी प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

३०. चन्द्रप्रभ मन्दिर—यह प्रतिमा श्वेतवर्ण और पद्मासन है। १ फुट ऊँची है और संवत् १९०३ में इसकी प्रतिष्ठा हुई।

३१ अरहनाथ मन्दिर—यह श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा १ फुट २ इंच उन्नत है तथा संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित हुई है।

३२. नेमिनाथ मन्दिर—भगवान् नेमिनाथकी यह मूर्ति कृष्णवर्ण, पद्मासन और १ फुट २ इंच ऊँची है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९५२ में हुई। इस मूर्तिके दोनों पार्श्वोंमें चन्द्रप्रभ और श्रेयांसनाथकी श्वेतवर्ण मूर्तियाँ विराजमान हैं।

३३. पार्श्वनाथ मन्दिर—पार्श्वनाथ भगवान्‌की रक्ताभ वर्णकी यह पद्मासन प्रतिमा ३ फुट ऊँची है और संवत् १८५८ में प्रतिष्ठित हुई है। इधर-उधरको दो वेदियोंमें इसी पाषाण और कालकी चन्द्रप्रभ भगवान्‌की प्रतिमाएँ हैं।

३४. पार्श्वनाथ मन्दिर—यह प्रतिमा कृष्णवर्ण, पद्मासन और २ फुट ९ इंच अवगाहनावाली है और संवत् १८९७ की प्रतिष्ठित है। इधर-उधर दो वेदियोंमें शान्तिनाथ और कुन्थुनाथकी कृष्ण पाषाणकी पद्मासन प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

३५. ऋषभदेव मन्दिर—संवत् १८८९ में प्रतिष्ठित आदिनाथकी पद्मासन मूर्ति श्वेत वर्णकी है और १ फुट अवगाहनाकी है। उसके दोनों पार्श्वोंमें भगवान् मुनिसुव्रतनाथ और नेमिनाथकी क्रमशः श्वेत वर्ण और कत्थई वर्णकी मूर्तियाँ विराजमान हैं।

३६. चन्द्रप्रभ मन्दिर—चन्द्रप्रभकी श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा १ फुट ७ इंच ऊँची है तथा संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित हुई है।

३७. नेमिनाथ मन्दिर—संवत् १९०० में प्रतिष्ठित २ फुट अवगाहनाकी यह श्वेतवर्ण पाषाण-मूर्ति पद्मासन मुद्रामें विराजमान है। इसके दोनों ओर वेदियाँ है जिसमें मुनिसुव्रतनाथकी मूर्तियाँ विराजमान हैं।

३८. पार्श्वनाथ मन्दिर—यह मूर्ति १ फुट १० इंच ऊँची है, संवत् १६११ में प्रतिष्ठित, श्वेत वर्णकी और पद्मासन है। इसके एक पार्श्वमें पार्श्वनाथकी तथा दूसरे पार्श्वमें एक अन्य मूर्ति विराजमान है जो संवत् १७४२ की प्रतिष्ठित है।

३९. सम्भवनाथ मन्दिर—यह मूर्ति खड्गासन, सलेटी वर्णकी और ४ फुट ऊँची है।

४०. ऋषभदेव मन्दिर—यह ऋषभदेवकी श्वेत पद्मासन मूर्ति १ फुट ३ इंच ऊँची है और संवत् १९९६ की प्रतिष्ठित है। इधर-उधर दो वेदियाँ और हैं, जिनमें दो मूर्तियाँ विराजमान हैं।

ये सब मन्दिर पहाड़पर बने हुए हैं। इन मन्दिरोंके दर्शनके लिए पत्थरकी सीढ़ियाँ तथा सड़क बनी हुई है। मन्दिरोंके बाहर मन्दिरका नाम और क्रमसंख्या लिखी हुई है। इसलिए नवागन्तुक यात्रीको पर्वतके मन्दिरोंकी वन्दना करनेमें कोई असुविधा नही होती। पहाड़के मन्दिरोंमे कुछ मन्दिर ऐसे है जो वस्तुतः पहाड़पर न होकर तलहटीमें बने हुए हैं। पहाड़के सभी मन्दिर मन्दिर नही है, इनमें कुछ मढ़िया या टोंक-जैसे लघु आकारके भी हैं। किन्तु वे सभी मन्दिर ही कहलाते हैं।

मैदानके अधिकांश मन्दिर प्रायः एक ही अहातेमें बने हुए हैं। यहाँके सभी मन्दिर शिखरबद्ध हैं। मन्दिर नं. ४१ से ४७ तकके मन्दिर लघु मन्दिर हैं। ये सब पहाड़ोकी तलहटीमें सरोवरके किनारेसे कुछ हटकर बने हुए हैं। मन्दिर नं. ४८ से ६० तक के मन्दिर विशाल और शिखरबद्ध हैं। अब उनका परिचय इस प्रकार है—

४८. पार्श्वनाथ मन्दिर—भगवान् पार्श्वनाथकी श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा ३ फुट ११ इंच उन्नत है। इस वेदीमें दो पाषाण-मूर्तियाँ और रखी हुई हैं।

४९. पार्श्वनाथ मन्दिर—यह मूर्ति कृष्ण पाषाणकी, ३ फुट ऊँची और पद्मासन है। इसकी फणावलीमें नौ फण हैं। मूर्तिके पादपीठपर लेख नही है।

मूलनायकके अतिरिक्त वेदीपर ६ पाषाण-मूर्तियाँ विराजमान हैं। उनका परिचय (बायीं ओरसे दायीं ओर) इस भाँति है :

१—१० इंचके शिलाफलकमें तीन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। मध्यकी मूर्ति पद्मासन है तथा बायीं ओरकी खड्गासन है और दायी ओरकी खण्डित है।

२—भगवान् चन्द्रप्रभकी श्वेतवर्ण, १ फुट ऊँची, पद्मासन प्रतिमा है। संवत् १९४५ में प्रतिष्ठा की गयी।

३—८ इंचके शिलाफलकमें पंचबालयति।

४—भगवान् पार्श्वनाथकी कृष्णवर्ण पद्मासन प्रतिमा जो १ फुट १ इंच ऊँची और संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित है।

५—नेमिनाथ भगवान्‌की श्वेत पाषाणकी ११ इंच ऊँची प्रतिमा।

६—२ फुट १ इंचके शिलाफलकमें मध्यमें खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमा है। उसके ऊपर छत्र हैं। उसके दोनों पार्श्वोंमें गन्धर्व पुष्पमाल लिये हुए हैं। उससे नीचे पद्मासन तीर्थंकर-मूर्ति है। इससे नीचे चमरवाहक खड़े हुए हैं।

५०. नेमिनाथ मन्दिर—भगवान् नेमिनाथकी कृष्ण पाषाणकी २ फुट ४ इंच उन्नत पद्मासन प्रतिमा विराजमान है और संवत् १९३७ की प्रतिष्ठित है। इसके दोनों ओर पार्श्वनाथ भगवान्‌की श्वेतवर्ण, पद्मासन और संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

५१. पार्श्वनाथ मन्दिर—संवत् १९४८ की प्रतिष्ठित २ फुट २ इंच ऊँची पार्श्वनाथ भगवान्‌की श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इनकी बगलमें १ फुट ९ इंच ऊँचे शिलाफलकमें पंचबालयतिकी मूर्तियाँ हैं। मध्यमें पद्मासन और दोनों ओर एक-एक खड्गासन और एक-एक पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। मध्य प्रतिमाके सिरपर छत्रत्रय है और उनके दोनों पार्श्वोंमें पुष्पवर्षा करते हुए नभचारी देव प्रदर्शित हैं।

इनके अतिरिक्त पाँच पाषाण-प्रतिमाएँ और हैं।

५२. महावीर मन्दिर—मूलनायक भगवान् महावीरकी यह प्रतिमा श्वेतवर्ण, पद्मासन और २ फुट ४ इंच ऊँची है और संवत् १९३५ की प्रतिष्ठित है। इसके अतिरिक इस वेदीपर ४ पाषाण और ९ धातुकी प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

५३. अजितनाथ मन्दिर—अजितनाथ भगवान्‌की पद्मासन, कृष्णवर्ण और संवत् १९४२ की प्रतिष्ठित प्रतिमा है। इसकी अवगाहना २ फुट १० इंच है। इसके अतिरिक्त वेदीमें २ पाषाण-प्रतिमाएँ और हैं।

५४. ४ फुट ऊँचे एक चौकोण पाषाण-स्तम्भमें सर्वतोभद्रिका प्रतिमाएँ हैं। प्रतिमाएँ १ फुट-की हैं। प्रतिमाओंके सिरके दोनों ओर चमरेन्द्र खड़े हैं। प्रतिमाके नीचे दो सिंह बने हुए हैं जो सिंहासनके हैं। उससे नीचे सर्प लांछन है। उसके दोनों ओर पार्श्वनाथ भगवान्‌के यक्ष-यक्षी धरणेन्द्र और पद्मावती हैं।

५५. अजितनाथ मन्दिर—अजितनाथ भगवान्‌की प्रतिमा २ फुट १ इंच ऊँची, श्वेतवर्ण और पद्मासन है और संवत् १९४२ की प्रतिष्ठित है। इस वेदीमें मूलनायकके अतिरिक दो पाषाण-की और दो धातुकी प्रतिमाएँ और हैं।

५६. महावीर मन्दिर—भगवान् महावीरकी श्वेतवर्णकी पद्मासन प्रतिमा ३ फुट २ इंच उन्नत है और संवत् १९३५ में प्रतिष्ठित हुई है। इस वेदीपर मूलनायकके अतिरिक्त १ पाषाणकी और १५ धातुकी मूर्तियाँ हैं।

५७. चन्द्रप्रभ मन्दिर—भगवान् चन्द्रप्रभकी पद्मासन—श्वेतवर्ण प्रतिमा मूलनायकके रूपमें विराजमान है। इसके अतिरिक्त ३ पाषाणकी और ४ धातुकी प्रतिमाएँ हैं।

५८. आदिनाथ मन्दिर—इस मन्दिरमें तीन दरकी वेदी है। इसमें मध्यमें भगवान् ऋषभ-

देवकी श्वेत वर्णकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसके अतिरिक्त इसमें ३ पाषाणकी तथा कुछ धातुकी मूर्तियाँ विराजमान हैं।

५९. समवसरण मन्दिर—यह गोलाकार नवीन मन्दिर बहुत भव्य बन रहा है। इसके मध्यमें गन्धकुटी है, जिसमे चार कृष्णवर्ण मूर्तियाँ विराजमान हैं। इनकी अवगाहना २ फुट है। चारों ओर २४ तीर्थंकरोंकी टोकें बनायी गयी हैं। चारों दिशाओंमें चार मानस्तम्भ हैं। समवसरणकी रचना अत्यन्त आकर्षक और भव्य है। द्वादश सभाओंकी रचना भी शास्त्रोक्त पद्धतिसे की गयी है। वस्तुतः समवसरण मन्दिर, मन्दिरोंकी मालामें हीरक-मणि प्रतीत होता है।

६०. महावीर मन्दिर—धर्मशालाओंके मध्यमें और क्षेत्रके मुख्य द्वारके निकट यह मन्दिर अवस्थित है। इसमे भगवान् महावीरकी पद्मासनमे विराजमान श्वेत वर्णकी मूलनायक प्रतिमा है। भगवान्‌के समवसरणमे १२ धातुकी और ६ पाषाणकी प्रतिमाएँ हैं।

बड़े बाबाकी विशाल प्रतिमा, कलाकी दृष्टिसे देखनेपर, १०-११वीं शताब्दी की प्रतीत होती है। उसी मन्दिरके गर्भगृहमे बादमे लगायी गयी तीर्थंकर प्रतिमाएँ ११वीं–१२वीं शताब्दीकी हैं।

ऊपर वर्णित प्रतिमा-लेखोंसे हम पाते हैं कि विक्रम संवत् १६११ (१५५४ ईस्वी) के आसपास यह स्थान तीर्थक्षेत्रके रूपमे विख्यात था और तबसे यहाँ मन्दिर और वेदीका निर्माण और मूर्ति प्रतिष्ठा समय-समयपर होती रही है। मन्दिर क्रमांक ४, ९, १६, १८, २२, २८, ३१ और ३६ मे सवत् १५४८ की जो प्रतिमाएँ हैं, वे वैशाख सुदी ३ सं. १५४८ को जीवराज पापड़ीवाल द्वारा प्रतिष्ठित यहाँ लाकर रखी गयी हैं।

मानस्तम्भ

महावीर मन्दिरके सामने, धर्मशालाओंके मध्य प्रांगणमें मानस्तम्भ खड़ा है, मानो क्षेत्रका समुन्नत गौरव ही मस्तक उठाकर खड़ा हो। यह श्वेत मकराना पाषाणका बना हुआ है। इसकी शीर्ष वेदीपर ४ पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ विराजमान हैं। गजरथ-महोत्सवपूर्वक इसकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा फरवरी सन् १९७५ में हो चुकी है, जिसमें लाखों व्यक्ति सम्मिलित हुए थे।

क्षेत्रपर स्थित संस्थाएँ

क्षेत्रकी एकान्त और शान्ति ध्यान, अध्ययन और साधनाके लिए अत्यन्त उपयुक्त है। इसी दृष्टिसे वीर संवत् २४४४ में ब्र. गोकुलदासजीने समाजके सहयोगसे क्षेत्रपर एक उदासीनाश्रमकी स्थापना की थी। आश्रममे कुछ उदासीन त्यागी व्रती रहते हैं और ध्यानाध्ययनमे काल-यापन करते हैं।

यहाँ एक सरस्वती भण्डार भी है।

धर्मशालाएँ

क्षेत्रपर कुल ११ धर्मशालाएँ है। सब मिली हुई हैं। सबमें मिलाकर कुल १०० कमरे हैं। क्षेत्रपर जल और बिजलीकी पर्याप्त सुविधा है। यहाँ २ सरोवर, ३ कुएँ एवं ८ बावड़ी हैं। सबपर पक्के घाट बने हुए है। क्षेत्रके पास ८० एकड़ कृषि भूमि है।

वार्षिक मेला

यहाँ प्रतिवर्ष माघ सुदी ११ से १५ तक विशाल मेला लगता है। महावीर जयन्ती और दीवालीपर भी काफी जन-समुदाय एकत्र होता है।

दर्शनीय स्थल

क्षेत्रके निकट प्राचीन स्थानोंमें एक रुक्मिणी मठ है। यह वस्तुतः प्राचीन कालमें जैन मन्दिर था। इसमें जैन मूर्तियाँ थीं। ये प्रतिमाएँ सुरक्षाकी दृष्टिसे बड़े बाबाके मन्दिरमें पहुँचा दी गयी हैं। कनिंघमने इस मन्दिरके भग्नावशेषोंमें ४ फुट ऊँचा और २ फुट चौड़ा एक पाषाण देखा था जिसपर किसी शासन-देवता, सम्भवतः धरणेन्द्र-पद्मावतीकी मूर्ति थी। यह मूर्ति एक चैत्य वृक्षके नीचे दिखाई पड़ती थी और चैत्य वृक्षके ऊपर भगवान् पार्श्वनाथकी प्रतिमा बनी हुई थी। वह प्रतिमा आज भी वहीं पड़ी है। कहते हैं, रुक्मिणी मठकी बहुत-सी प्राचीन सामग्री कुण्डलपुर और बरंढके बीच एक पुलियामें कूटकर लगायी गयी थी।

नाम-साम्यके कारण कुछ लोग रुक्मिणी मठ और बरंटका सम्बन्ध कृष्णकी पटरानी रुक्मिणीसे जोड़ते हैं। उनका विचार है कि यही वह कुण्डलपुर है जहाँ कृष्णने रुक्मिणीका हरण किया था तथा बरंट कृष्णकालीन विराट है। किन्तु किसी भी साक्ष्यसे कुण्डलपुर रुक्मिणीका जन्म-नगर सिद्ध नहीं होता। वस्तुतः रुक्मिणीके जन्म-नगरका नाम कुण्डिनपुर था। वह विदर्भमें था। इसका अपर नाम विदर्भपुर था। वर्तमानमें कुण्डिनपुरकी पहचान देवलवाड़ासे की जाती है जो महाराष्ट्रके चाँदा जिलेमें वर्धा नदीके किनारेपर है और नरोरासे ११ मील है। यहाँ रुक्मिणी मन्दिर बना हुआ है और प्रतिवर्ष वहाँ मेला भरता है। प्राचीन कालमें कुण्डिनपुरका विस्तार वर्धा नदीसे अमरावती तक था। कहते हैं, अमरावतीमें भवानीका मन्दिर अब भी बना हुआ है जहाँसे कृष्णके द्वारा रुक्मिणीका हरण होना बताया जाता है। डॉ. [3]फ्यूरर विदर्भके कोण्डाविरको प्राचीन कुण्डिनपुर मानते हैं। डॉसैन इसकी पहचान अमरावतीसे ४० मील दूर अवस्थित कुण्डपुर-से करते हैं। जैन और हिन्दू पुराण भी रुक्मिणीके जन्म-नगरका नाम कुण्डनपुर या कुण्डिनपुर मानते हैं और उसे विदर्भमें अवस्थित मानते हैं।

जैन और हिन्दू पुराणोंके अनुसार रुक्मिणीके भाई और विदर्भके राजकुमार रुक्मने गिरिव्रजके सम्राट् जरासन्धकी प्रेरणासे अपनी बहनका सम्बन्ध चेदि-नरेशके साथ कर दिया था। रुक्मके पिता भीष्मको भी अपने पुत्रके निर्णयसे सहमत होना पड़ा। इस विवाह-सम्बन्धने राज-नैतिक रूप ले लिया। शिशुपाल और भीष्म, जरासन्धके करदया माण्डलिक नरेश थे। दूसरी ओर नारद कृष्णके पक्षधर थे जो तोड़-जोड़की नीतिमें निष्णात थे। कृष्ण जरासन्धके प्रतिद्वन्द्वी थे। नारदने भीष्मके महलोंमें जाकर पहले रुक्मिणीकी बुआको कृष्णके पक्षमें किया, फिर कृष्णका चित्रांकन करके उसे रुक्मिणीको दिखाया और वार्तालापकी अपनी अनुपम कला द्वारा रुक्मिणीके मानस-मन्दिरमें कृष्णका मोहन रूप प्रियतमके रूपमें विराजमान कर दिया। रुक्मिणीने अपनी बुआके परामर्श और सहयोगसे कृष्णके नाम प्रेम-पत्र भेजा और उन्हें उसी दिन आनेका अनुरोध किया जिस दिन उसका विवाह शिशुपालके साथ होनेवाला था। यथासमय कृष्ण संकेतस्थान (जैन पुराणोंके अनुसार मदन-मन्दिर और हिन्दू पुराणोंके अनुसार इन्द्राणी-मन्दिर) में आकर छिप गये। रुक्मिणी भी अपने वचनानुसार वहाँ आयी। वहींसे कृष्ण रुक्मिणीको रथमें लेकर चल दिये। कन्या-पक्षने प्रतिरोध भी किया, किन्तु कृष्णने उसके सारे विरोध-प्रतिरोधोंको निष्प्रभ

---

१. हरिवंश पुराण २, महाभारत वन पर्व ७३
२. Report of the Archaeological Survey of India, Vol. IX, p. 133.
३. Monumental Antiquities and Inscriptions, by Dr. Fuhrer.
४. Dowson's Classical Dictionary, 4th Ed., p. 171.

कर दिया। इससे कृष्णको स्त्रीरत्न तो मिला ही, साथ ही उन्हें तत्कालीन जटिल और जरासन्धके आतंकसे व्याप्त राजनीतिपर अपना वर्चस्व स्थापित करनेका एक स्वर्ण अवसर भी प्राप्त हुआ। यह घटना विदर्भमें घटित हुई थी।

यहाँ विचारणीय यह है कि रुक्मिणीका जन्म-नगर विदर्भमें था। शिशुपाल चेदिका शासक था। चेदि ही प्राचीन कालमें दहल-मण्डल[2] या बुन्देलखण्ड कहलाती थी। शिशुपालके समय चेदिकी राजधानी चन्देरी थी। गुप्त-कालमें चेदिकी राजधानी कालिंजर था। महाभारत-कालमें शुक्तिमती राजधानी थी और कलचुरि-कालमें इसकी राजधानी माहिष्मती थी। कुछ कालतक दहलमण्डलकी राजधानी त्रिपुरी[3] (जबलपुरसे ११ कि. मी. दूर वर्तमान तेवर) भी रही। कुण्डलपुर चेदि या दहलमण्डलके ही अन्तर्गत था। शिशुपालके समय कुण्डलपुर उसके राज्यमें सम्मिलित था। भीष्म विदर्भके प्रभावशाली नरेश थे। चेदि और विदर्भ दोनों पृथक्-पृथक् राज्य थे। अतः यह तर्कसंगत तथ्य है कि कुण्डलपुरके साथ रुक्मिणीका कोई सम्बन्ध नहीं था। रुक्मिणी मठ नामक जैन मन्दिरके साथ रुक्मिणीका नाम कैसे जुड़ गया, यह शोधका एक पृथक् विषय हो सकता है। सम्भव है, इस मन्दिरका निर्माण एवं प्रतिष्ठा रुक्मिणी नामक किसी उदार महिलाने करायी हो। जो भी हो, इतना तो सुनिश्चित है कि कृष्णकी महारानी रुक्मिणी-का कोई सम्बन्ध इस कुण्डलपुरके साथ नहीं रहा।

वर्तमानमें रुक्मिणी मठ कुछ स्तम्भोंपर आधारित भग्न दशामें खड़ा है। यह पाषाणका मण्डप-जैसा प्रतीत होता है। इसके चारों ओर भग्नावशेष विशाल भूभागमें बिखरे पड़े हैं।

लखनादौन

मार्ग

यह स्थान मध्यप्रदेशके जबलपुर-नागपुर रोडपर जबलपुरसे ८३ किलोमीटर है और राष्ट्रीय मार्ग नं २६ एवं न. ७ के संगमपर स्थित है। भविष्यमें यहाँसे भोपाल-रायपुर राष्ट्रीय मार्ग तथा लखनादौन-गोंदिया राष्ट्रीय मार्ग बननेवाला है। इन्हीं राष्ट्रीय मार्गोंके चौराहेपर महावीर कीर्ति-स्तम्भ निर्मित है। यह सिवनी जिलेकी एकमात्र तहसीलका मुख्यालय है।

पुरातत्त्व-सामग्री

लखनादौन नगर तथा इसके आसपास २०-२५ मीलके वृत्तमें प्राचीन भवनोंके भग्नावशेष बिखरे हुए पड़े हैं। नगरके अनेक मकानोंमें प्राचीन मूर्तियाँ जड़ी हुई हैं। अनेक मकान ऐसे भी मिलेंगे, जिनके निर्माणमें प्राचीन भवनोंके स्तम्भों, अलंकृत पाषाणों एवं पुरातात्त्विक महत्त्वकी सामग्रीका स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग किया गया है। यहाँ अब भी कभी-कभी खेत जोतते समय या

१. स्कन्द पुराण, रेवा खण्ड, पर्व ५६।
२. Journal of the Asiatic Society of Bengal, Vols. XV and LXXI.
३. Epigraphia Indica, Vol. I, pp. 220–253.
Alberuni's India, Vol. I, p. 202.

किसी स्थानकी खुदाई करते समय जैन मूर्तियाँ मिल जाती हैं। यहाँसे उपलब्ध दो तीर्थंकर प्रतिमाएँ नागपुर तथा कलकत्ताके संग्रहालयोंमें भेजी जा चुकी हैं। वर्तमानमें लखनादौनकी भगवान् महावीर २५ सौवाँ निर्माण-महोत्सव समितिने तीन सौसे ज्यादा जैन अवशेष लखनादौन तहसीलमें खोजे हैं जो कि पुरातत्त्वकी दृष्टिसे महत्त्वके हैं। ये अवशेष ग्रामीणों द्वारा अजैन देवी-देवताओंके रूपमें पूजे जाते हैं और कुछ बुद्धिजीवियोंके बैठकखानोंकी शोभा बढ़ाते हैं।

प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता स्वर्गीय रायबहादुर डॉ. हीरालालजीने अपनी पुस्तक 'इन्स्क्रिप्शन्स इन सी. पी. एण्ड बरार' के पृष्ठ ६९ पर लखनादौनसे प्राप्त एक अभिलिखित द्वार-शिलाखण्डकी सूचना दी है तथा उक्त अभिलेखका विश्लेषण करते हुए उन्होंने यह मत व्यक्त किया है कि इस क्षेत्रमें जैन मन्दिर अवश्य रहा है और यह द्वार-शिलाखण्ड उसी जैन मन्दिरका होगा। उन्होंने लेखके आधारपर मन्दिर-निर्माताको अमृतसेनका प्रशिष्य तथा त्रिविक्रमसेनका शिष्य बताया है। निर्माताका नाम विक्रमसेन बताया गया है। लिपिके आधारपर उन्होंने उक्त अभिलेखको ९वीं-१०वीं शताब्दीका प्रमाणित किया है।

स्व. डॉ. हीरालालजीके इस उल्लेखसे यह प्रमाणित होता है कि लखनादौन नगरके उस क्षेत्रमें जहाँ यह द्वार-शिलाखण्ड उपलब्ध हुआ है, ८वीं और १०वीं शताब्दियोंके बीच अर्थात् कलचुरि-कालमें कोई भव्य जैन मन्दिर अवश्य रहा है जिसके इर्दगिर्द आज तक ये अवशेष मिल रहे हैं।

इन सम्भावनाओंकी पुष्टि जुलाई सन् १९७१ में यहाँसे उपलब्ध एक तीर्थंकर-प्रतिमासे होती है। यह प्रतिमा मूल काछी-परिवारके श्री शारदाप्रसाद हरदियाको खेत जोतते हुए मिली थी। यह प्रतिमा ४ फुट ऊँचे और २। फुट चौड़े एक शिलाफलकपर अत्यन्त कलात्मक ढंगसे उत्कीर्ण है। जैन समाजने इसे लाकर स्थानीय जैन मन्दिरमें विराजमान कर दिया है और मार्च १९७४ मे इसकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हो चुकी है। यह अष्टप्रातिहार्य-युक्त षट्-समकोणीय प्रतिमा है जो कि मूर्तिकलाकी दुर्लभ कृति मानी जाती है। इस प्रतिमाका अंकन अत्यन्त सजीव और भव्य है। इसका शिल्प सौष्ठव प्रभावक है। इसकी भावाभिव्यंजना, अंगविन्यास और कला अत्यन्त मनोहर है। यह प्रतिमा मूर्ति-शिल्पकी दृष्टिसे सुन्दरतम प्रतिमाओंमें-से एक है, यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है।

भगवान् चार खम्भोंपर निर्मित सिंहपीठिकापर पद्मासन मुद्रामें ध्यानावस्थित हैं। अर्धोन्मीलित प्रशान्त नयन, सिरपर घुँघराला केशगुल्म और सिरके पृष्ठभागमें अलंकृत प्रभामण्डल है। भगवान्‌के दोनों पार्श्वोंमें चमरेन्द्र चमर लिये भगवान्‌की सेवामें खड़े हैं। सिरके ऊपर त्रिछत्र प्रदर्शित है। त्रिछत्रके दोनो ओर गजारूढ़ इन्द्र-दम्पती अंकित हैं। गजराजके ऊपरी भागमें दोनों गन्धर्व पुष्पवर्षा करते हुए दीख पड़ते हैं। पीठिकाके सिंहोंसे सटे खड़े दोनों ओर यक्ष मातंग एवं सिद्धायनी यक्षी हैं। मध्यमे धर्मचक्रका अंकन है।

स्व. डॉ. हीरालालजीने मूर्ति, यक्ष-यक्षी, प्रभामण्डल, अलंकरण तथा शाल-वृक्षके पत्तों एवं फूल (जो कि प्रभामण्डलपर स्पष्ट दिखाई देते हैं) को आधार मानकर इसे भगवान् महावीर-की प्रतिमा माना है। अन्य कई विद्वानोंने भी इस मतकी पुष्टि की है।

विद्वानोंका एक वर्ग लखनादौनको पुलकेशी द्वितीयके समयका मानता है जिसका कि राज्य नर्मदाके ५० कोस दक्षिणमें था। आधुनिक कुछ विद्वान् इसको लक्ष्मणद्रोण नामक महाभारतयुगीन ग्राम मानते हैं।

मढ़िया

अवस्थिति और मार्ग

जबलपुर नगरकी गणना मध्यप्रदेशके प्रमुख नगरोंमें की जाती है। यह औद्योगिक, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक सभी दृष्टियोंसे महाकोशलका सबसे बड़ा नगर है। जैन समाजका तो यह केन्द्र ही है। यहाँ जैनोंके लगभग दो हजार घर हैं तथा ३६ दिगम्बर जैन मन्दिर और ३ चैत्यालय हैं।

जबलपुर नगरसे ६ कि. मी. दूर जबलपुर-नागपुर रोडपर दक्षिण-पश्चिमकी ओर पुरवा और त्रिपुरीके बीचमें एक छोटी-सी पहाड़ी है। यह धरातलसे ३०० फुट ऊँची है। 'पिसनहारीकी मढ़िया' अथवा मढ़िया इसी पहाड़ीपर है। पहाड़ीपर जानेके लिए २६५ सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इसके पास ही मेडिकल कालेज बना हुआ है। जबलपुर शहरसे यहाँ आनेके लिए बसों और टेम्पुओंकी सुविधा है। यहाँका पता इस भाँति है—पिसनहारी मढ़िया ट्रस्ट, नागपुर रोड, जबलपुर।

क्षेत्रका इतिहास

यह स्थान लगभग ५०० वर्षसे प्रकाशमें आया है। यद्यपि इसके आसपास चारों ओर प्राचीन कला-सामग्री बिखरी पड़ी है, किन्तु मढ़ियामें इससे पूर्वका कोई पुरातत्त्व नहीं मिलता। इस क्षेत्रके नाम और निर्माणके सम्बन्धमें अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। एक किंवदन्ती यह है—

५०० वर्ष पूर्व इस भूभागपर गोंड राजाओंका राज्य था। राजदरबारमें एक जैनधर्मावलम्बी पेशवा था। उसने जिनेन्द्र भगवान्‌के नित्य दर्शनके लिए इस एकान्त पहाड़ीपर जैन मन्दिरका निर्माण कराया। इसके कारण कुछ समय तक यह 'पेशवाकी मढ़िया' नामसे प्रसिद्ध रहा। धीरे-धीरे यह नाम बदल कर 'पिसनहारीकी मढ़िया' हो गया।

किन्तु यह किंवदन्ती कुछ अधिक विश्वसनीय नहीं लगती। यह तो सम्भव है कि किसी जैन पेशवाने यहाँ मन्दिर-निर्माण कराया हो और उसके कारण इस स्थानका नाम 'पेशवाकी मढ़िया' पड़ गया हो। किन्तु 'पेशवाकी मढ़िया' ही बदलते-बदलते 'पिसनहारीकी मढ़िया' कहलाने लगी हो, यह बुद्धिगम्य नहीं है।

इस सम्बन्धमें एक दूसरी भी किंवदन्ती प्रचलित है, जो अधिक प्रामाणिक लगती है तथा जो अधिक जनविश्रुत भी है। कहते हैं, जबलपुर नगरके मध्यमें कमानिया द्वार (त्रिपुरीस्मारक द्वार) के निकट एक निर्धन पिसनहारी विधवा रहती थी। वह आटा पीसकर अपना निर्वाह करती थी। एक दिन उसने जैन मुनिका उपदेश सुना। उपदेश सुनकर उसने तभी मनमें एक जैन मन्दिरका निर्माण करानेका संकल्प कर लिया। किन्तु समस्या थी धनकी। जिसने जीवनमें दूसरोंके समक्ष कभी हाथ नहीं पसारा, जो अपने श्रमपर ही निर्भर रहकर अपना जीवन-यापन करती थी, वह मन्दिरके लिए दूसरोंसे भिक्षा कैसे माँगती। उसका संकल्प अखण्ड था। उसने निश्चय कर लिया कि श्रम द्वारा धन-संग्रह करके मन्दिर-निर्माण कराना है, और मन्दिर अवश्य बनेगा चाहे इसके लिए कितना ही श्रम क्यों न करना पड़े।

बस, इस संकल्पका सम्बल लेकर वह श्रम करनेमें जुट गयी। वह घर-घर जाती और वहाँसे अन्न लाकर पीसती। सुबहसे शाम तक उसकी चक्की कभी विराम न लेती। चक्कीकी मधुर ध्वनिमें उसका अडिग संकल्प गानोंके रूपमें गूँजता। वृद्ध शरीर और अथक परिश्रम। किन्तु

संकल्पकी संजीवनी उसे श्रान्त-क्लान्त न होने देती। ज्यों-ज्यों धन-संचय होता जाता, त्यों-त्यों उसमें एक नवीन स्फूर्ति तरंगित होती जाती। लोग उसके इस दुस्साहस पर हँसते, किन्तु वह लोक-निन्दा या उपहाससे निर्लिप्त बनी अपनी साधनामें निरत रहती।

वह दिन भी आ पहुँचा, जब लोगोंने देखा कि बूढ़ा पिसनहारी कुदाल-फावड़ा लेकर मढ़ियाकी पहाड़ीपर वन्य झाड़ियों और वृक्षोंको काट-काटकर मन्दिरके लिए ऊबड़-खाबड़ भूमिको समतल बनानेमें जुटी हुई है। तब राज आये, मजदूर आये, ईंट-चूना और पत्थर लाये गये और मन्दिरका निर्माण आरम्भ हो गया। उसकी निन्दा करनेवाले अब उसकी प्रशंसा करने लगे। जो उसका उपहास उड़ाते थे, वे उसे सहयोग देनेको तत्पर हो गये। किन्तु उस तपस्विनीको यह सब देखने-सुननेका अवकाश कहाँ था। वह तो मजदूरोंके संग ईंट-गारा इधर से उधर पहुँचानेमें जुटी रहती। प्रातः से सन्ध्या तक मजदूरोंके साथ वह काम करती, उनके कामकी देखभाल करती, और रात्रि होते ही उस निर्जन नीरव जंगलमें खटिया डालकर चौकसी करती।

तब वह दिन भी आ पहुँचा, जब मन्दिर तैयार हो गया। उसके ऊपर शिखरका मुकुट लग गया। किन्तु मुकुटमें मणि नहीं थी, जो बड़ी भारी कमी थी। स्वर्ण-कलशके बिना शिखर सूना-सूना-सा लग रहा था। एक निर्धन असहाय अबलाके पास इतनी पूँजी कहाँ थी जिससे वह स्वर्ण-कलश चढ़ा पाती। तब उस पुण्यशीला महाभागाने ऐसा कलश चढ़ाया, जैसा संसारने न कभी देखा था, न कभी सुना था। उसने अपनी चक्कीके दोनों पाट शिखरमें चिनवा दिये। जिन पाटोंने उसे जीवनमें रोटी दी, जिन पाटोंने उसके संकल्पको मूर्त रूप दिया, वे ही तो उसकी एकमात्र पूँजी थे। भगवान्‌के लिए उसने अपनी समग्र पूँजी समर्पित कर दी।

किन्तु इतिहास उसका नाम सुरक्षित न रख पाया, यह कैसी विडम्बना है। फिर भी जन-जनकी श्रद्धाने इस क्षेत्रको 'पिसनहारीकी मढ़िया' के रूपमें सदा-सर्वदाके लिए अमर कर दिया।

उपर्युक्त दोनों किंवदन्तियोंमें हमें कुछ भी अस्वाभाविकता नहीं लगती। दोनों किंवदन्तियों-को संयुक्त करके देखें तो इस क्षेत्रका एक इतिहास बनता है। पहले किसी पेशवाने यहाँ मन्दिर बनवाया। उससे यह 'पेशवाकी मढ़िया' कहलाने लगा। फिर किसी पिसनहारीने एक मन्दिर बनवाया। तबसे इस क्षेत्रका नाम 'पिसनहारीकी मढ़िया' हो गया।

इस मन्दिरमें गुम्बजके नीचेके आलेमें दो मूर्तियाँ विराजमान हैं। इनके सिंहासन-पीठपर प्रतिष्ठा-संवत् १५८७ उत्कीर्ण है। ये ही यहाँकी सर्वप्राचीन मूर्तियाँ हैं। इनसे पूर्ववर्ती एक मूर्ति संवत् १५४८ की है। किन्तु वह शाह जीवराज पापड़ीवाल द्वारा प्रतिष्ठित है। उन्होंने विभिन्न स्थानोंपर इसी प्रतिष्ठा-संवत्‌की अनेक मूर्तियाँ भेजी थीं। उक्त मूर्ति पापड़ीवालजी द्वारा भेजी हुई है। संवत् १५८७ में निर्मित मन्दिर और मूर्तियोंके अतिरिक्त यहाँ अन्य कोई पुरातत्त्व-सामग्री नहीं है। शेष मन्दिर और मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा तो वीर संवत् २४८३ और २४८४ में हुई है। लगता है, इस अन्तरालमें (वीर संवत् २०५६ से २४८३ तक) ४२७ वर्ष तक यहाँ कोई दूसरा मन्दिर नहीं बना और न इसे तीर्थक्षेत्रके रूपमें मान्यता मिली।

संवत् १९३९ में जबलपुरके जैन समाजकी दृष्टि इस ओर गयी। वह यहाँके प्राकृतिक सौन्दर्य, ऐतिहासिक महत्त्व और आध्यात्मिक साधनाके उपयुक्त वातावरणसे प्रभावित होकर आकृष्ट हुआ। धीरे-धीरे यहाँ निर्माण-कार्य प्रारम्भ हो गया। सीढ़ियाँ बनीं, धर्मशालाएँ बनीं। फिर संवत् १९७६ में यहाँ दो गजरथ-महोत्सव सम्पन्न हुए। इन उत्सवोंमें सहस्रों व्यक्तियोंने सम्मिलित होकर इस स्थानके महत्त्वको समझा। संवत् १९८४ में चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शान्ति-सागरजी महाराजका यहाँ पदार्पण हुआ। पूज्यपाद क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी तो यहाँ पर्याप्त

समय तक रहे। इन दोनों आध्यात्मिक सन्तोंके पुण्य प्रसाद और प्रभावसे इस स्थानका द्रुत गतिसे विकास हुआ, क्षेत्रके रूपमे इसकी ख्याति हुई और अनेक नवीन मन्दिर-मन्दरियोंका निर्माण करने-की प्रेरणा जगी।

यहाँका एक चामत्कारिक जलकुण्ड अवश्य उल्लेखनीय है। यहाँ एक शुष्क गड्ढा था। पूज्य वर्णीजीकी कृपासे वह जलपूर्ण हो गया और एक जलकुण्ड बन गया। वह जलकुण्ड अब भी विद्यमान है। जनताने उसका नाम वर्णी-कुण्ड रख लिया है।

क्षेत्र-दर्शन

जबलपुर-नागपुर सड़कके किनारे एक विशाल अहातेके मध्यमें क्षेत्रका कार्यालय, धर्मशाला तथा क्षेत्रस्थित संस्थाओंके भवन अवस्थित हैं। यहाँ एक जिनालय और मानस्तम्भ भी है। इसके पृष्ठभागमे पहाड़ी है, जिसपर मन्दिरोंकी श्वेत पंक्ति, उन्नत शिखर और उनके ऊपर लहराती ध्वजाएँ बरबस ध्यान आकर्षित कर लेती हैं।

कार्यालयसे कुछ दूर चलनेपर पहाड़ीकी चढ़ाई प्रारम्भ हो जाती है। पहाड़ीपर चढ़नेके लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। चढ़ाई सुगम है।

मन्दिर नं. १—एक छोटे-से कमरेमें वेदीपर भगवान् पद्मप्रभकी श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। पादपीठपर कमलका चिह्न अंकित है। प्रतिष्ठा-संवत् वीर नि. संवत् २४८३ है। इस मन्दिरके पास एक कमरा खाली है।

मन्दिर नं. २—इससे कुछ सीढ़ियाँ चढ़नेपर पार्श्वनाथ मन्दिर मिलता है। यह मूर्ति कृष्ण पाषाणकी है और पद्मासन है। इसकी अवगाहना २ फुट ७ इंच है। यह वीर संवत् २४८३ में प्रतिष्ठित हुई। इस चबूतरानुमा वेदीपर २ पाषाणकी और ४ धातु-प्रतिमाएँ विराजमान हैं। यहाँ भगवान् पार्श्वनाथके वीर सं. २४८३ में प्रतिष्ठित चरण-चिह्न भी विराजमान हैं।

मन्दिर नं. ३—भगवान्की कृष्ण पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी माप ४ फुट २ इंच है और वीर सं. २४८३ में प्रतिष्ठित हुई है। इसके आगे चरण-चिह्न बने हुए हैं। काँचकी एक छोटी आलमारीमे धातुकी ११ छोटी-छोटी मूर्तियाँ रखी हुई हैं।

मन्दिर नं. ४—भगवान् महावीरकी प्रतिमा पद्मासन मुद्रामें ध्यानावस्थित है। श्वेत पाषाणकी यह प्रतिमा १ फुट ३ इंच ऊँची है और विक्रम संवत् २०२ मे प्रतिष्ठित हुई है। इसके आगे एक धातु-प्रतिमा विराजमान है।

इस क्षेत्रपर प्रत्येक तीर्थंकरकी एक मन्दरिया बनी हुई है। इस प्रकार २४ तीर्थंकरोंकी २४ टोंकें बनी हुई हैं, किन्तु ये सब न तो एक ही स्थानपर हैं और न मधुवन या पपौराके बाहुबली मन्दिरके समान किसी एक मूर्तिको केन्द्र बनाकर गोलाकार बनी हुई हैं। यहाँ ये २४ मन्दिरियाँ कुछ गुच्छकोंमें बँटी हुई हैं। इनकी सभी मूर्तियाँ आकारमें १ फुट ९ इंच ऊँची, पद्मासन हैं और वीर संवत् २४८४ में इनकी प्रतिष्ठा हुई है। इन मूर्तियोंका वर्ण तीर्थंकरोंके मूल वर्णानुसार ही है। अतः सब मूर्तियोंमें समानता होनेपर भी वर्णमें कहीं-कहीं वैषम्य है। मन्दरियाँ जहाँ जैसे हैं, उनका वर्णन वैसे ही किया जायेगा। साथ ही मन्दरियोंकी क्रम-संख्या मन्दिरोंसे पृथक् रखी जायेगी।

मन्दरिया नं.	१	ऋषभदेव	प्रतिमा,	स्वर्ण वर्ण।
,,	२	अजितनाथ	,,	,,
,,	३	सम्भवनाथ	,,	,,

मन्दरिया नं. ४	अभिनन्दननाथ प्रतिमा,	स्वर्ण वर्ण।
,, ५	सुमतिनाथ	,,	,,
,, ६	पद्मप्रभ	,,	,,
,, ७	सुपार्श्वनाथ	,,	,,
,, ८	चन्द्रप्रभ	,,	,,
,, ९	पुष्पदन्त	,,	,,

इससे आगे एक स्थानपर दीवार में ५ प्राचीन छोटी तीर्थंकर मूर्तियां हैं।

मन्दिर नं. ५—भगवान् महावीर की मकरानेकी श्वेतवर्ण, पद्मासन प्रतिमा ४ फुट उत्तुंग हैं और वीर संवत् २४८४ में प्रतिष्ठित हुई है। इसके आगे धातुकी एक तीर्थंकर-मूर्ति विराजमान है।

मन्दरिया नं. १०	शान्तिनाथ	स्वर्ण वर्ण
,, ११	श्रेयांसनाथ	,,
,, १२	वासुपूज्य	लाल वर्ण

मन्दिर नं. ६—बाहुबली स्वामी कायोत्सर्ग मुद्रामें ध्यानमग्न हैं। उनकी अवगाहना ६ फुट ९ इंच है। इनका वर्ण श्वेत है और इनकी प्रतिष्ठा वीर सं. २४८४ में की गयी।

मन्दरिया नं. १३	विमलनाथ	स्वर्ण वर्ण
,, १४	अनन्तनाथ	,,
,, १५	धर्मनाथ	,,

मन्दिर नं. ७—यह कांचका मन्दिर है। इसमें ऊपर, नीचे और दीवारोंमें कांच कलात्मक ढंगसे जड़े हुए हैं। कक्षके मध्यमें समवसरणकी रचना है। इस रचनामें भी कांचका ही प्रयोग किया गया है। इसके मानस्तम्भ और इन्द्र कांचके न होकर सीमेण्ट और संगमरमरके बने हुए हैं। यह मन्दिर ऊपरकी मंजिलमें है। मन्दिर दर्शनीय है।

मन्दिर नं. ८—भगवान् आदिनाथकी श्वेत मकराना पाषाणकी यह प्रतिमा पद्मासनासीन है, ३ फुट ९ इंच ऊँची है। इसकी प्रतिष्ठा वीर संवत् २४८४ में हुई। इसके आगे श्वेत संगमरमरका २ फुट ऊँचा एक चैत्य विराजमान है। इसमें चारों दिशाओंमें चार तीर्थंकर-प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। इसके निकट धातुकी दो तीर्थंकर-मूर्तियां विराजमान हैं।

मन्दरिया नं. १६	शान्तिनाथ	प्रतिमा	स्वर्ण वर्ण
,, १७	कुन्थुनाथ	,,	,,
,, १८	अरहनाथ	,,	,,
,, १९	मल्लिनाथ	,,	,,
,, २०	मुनिसुव्रतनाथ	,,	श्याम वर्ण
,, २१	नमिनाथ	,,	स्वर्ण वर्ण
,, २२	नेमिनाथ	,,	श्याम वर्ण
,, २३	पार्श्वनाथ	,,	हरित वर्ण, नौ फण हैं।
,, २४	महावीर	,,	स्वर्ण वर्ण

मन्दिर नं. ९—भगवान् शान्तिनाथकी यह पद्मासन मूर्ति मटमैले रंगकी है। पाषाणपर कुछ काली धारियाँ हैं। वीर संवत् २४८३ में प्रतिष्ठित हुई है। चरण-चौकीपर अष्ट मंगल द्रव्य बने हुए हैं। मूर्तिके आगे चरण विराजमान हैं।

मन्दिर नं. १०—एक गुफामें मुनिराज सुकोशल स्वामीकी तपस्याका दृश्य उत्कीर्ण है। मुनिराज सुकोशल आत्मध्यानमें लीन हैं। एक सिंहनी और उसके शावक मुनिराजका सानन्द भक्षण कर रहे हैं।

मन्दिर नं. ११—श्वेत पाषाणकी मल्लिनाथ भगवान्की यह प्रतिमा पद्मासन है। वीर संवत् २४८३ में इसकी प्रतिष्ठा हुई।

मन्दिर नं. १२—कमलासनपर भगवान् पार्श्वनाथकी १ फुट १० इंच ऊँची मूर्ति पद्मासन-में विराजमान है। वीर संवत् २४८४ में इसकी प्रतिष्ठा हुई। इसके आगे भगवान् चन्द्रप्रभकी संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित मूर्ति विराजमान है।

इस मन्दिरके बगलसे नीचे धर्मशालाके लिए पगडण्डी भी जाती है। उक्त प्रकारसे पर्वतपर १२ मन्दिर और २४ मन्दरियाँ बनी हुई हैं, अर्थात् पहाड़ोंपर कुल ३६ (१२+२४) मन्दिर हैं।

मन्दिर नं. १३—यह मन्दिर धर्मशालाके निकट मैदानमें है। यह महावीर मन्दिर कहलाता है। एक बड़े हॉलमें चबूतरानुमा वेदीमें भगवान् महावीरकी श्वेत मकरानेकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी अवगाहना ४ फुट है। इसकी प्रतिष्ठा वीर संवत् २४८४ में हुई। मन्दिर भव्य एवं विशाल है।

मूलनायकके आगे दो सिंहासनोंमें एक पाषाणकी तथा ५ धातुकी प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

मन्दिरके आगे संगमरमरका विशाल मानस्तम्भ है जिसके शीर्षपर चार तीर्थंकर-प्रतिमाएँ विराजमान है।

क्षेत्रस्थित संस्थाएँ

क्षेत्रपर पूज्य वर्णीजीकी प्रेरणासे स्थापित वर्णी जैन गुरुकुल और छात्रावास हैं। विद्यालय और छात्रावासके भवन गुरुकुलके अपने हैं। यहाँ निकट ही मेडिकल कालेज है। इस दृष्टिसे गुरु-कुलके महत्त्व और उपयोगिताका सहज ही मूल्यांकन किया जा सकता है।

धर्मशालाएँ

क्षेत्रस्थित धर्मशालाओं में ६० कमरे हैं। धर्मशालाओंमें प्रकाशके लिए बिजलीकी व्यवस्था है। जलके लिए कई कुएँ और हैण्डपम्प हैं। क्षेत्रपर आवश्यक वस्तुओंकी व्यवस्था है, जैसे बरतन, बिस्तर आदि। जबलपुर, भेड़ाघाट आदिके लिए बस और टेम्पो यहाँ बराबर मिलते हैं।

व्यवस्था

यहाँकी व्यवस्थाके लिए 'पिसनहारी मढ़िया ट्रस्ट' नामक एक ट्रस्ट है। इसके पदाधिकारियों और सदस्योंका चुनाव जबलपुरके जैन समाज द्वारा होता है।

त्रिपुरी

अवस्थिति

त्रिपुरी भारतकी प्राचीन नगरियोंमें एक महत्त्वपूर्ण नगरी है। हैमकोषमें इसका अन्य नाम चेदि नगरी भी मिलता है। यह नगरी चेदिके कलचुरि-नरेशोंकी राजधानी थी। हिन्दू और जैन पुराणोंमें भी चेदि देशके उल्लेख मिलते हैं।

महाभारत और रामायण आदि प्राचीन साहित्यसे ज्ञात होता है कि बुन्देलखण्डके दक्षिण और पूर्वका प्रदेश पहले यादववंशी राजाओंके अधिकारमें था। इनकी राजधानी माहिष्मती थी। सहस्रार्जुन यहींका प्रतापी नरेश था। उसके वंशज आगे चलकर हैहयवंशी कहलाने लगे। हैहय-वंश आगे चलकर कई शाखाओंमें विभक्त हो गया। महाभारत-कालमें माहिष्मतीमें राजा नील राज्य करता था। इस वंशका एक अन्य नरेश शिशुपाल था। सम्भवतः इस शाखाकी राजधानी त्रिपुरी थी। यह शाखा इतिहासमें चेदिके कलचुरि नामसे प्रसिद्ध है। जैन मान्यतानुसार ऋषभदेव भगवान्‌ने जिन ५२ जनपदोंकी स्थापना की थी, उनमें चेदि नामका भी एक जनपद था।

वर्तमान इतिहासमें चेदिकी प्रसिद्धि ९वीं-१०वीं शताब्दीमें उसके राजनैतिक महत्त्वके कारण हुई। इस कालमें चेदि देशकी राजधानी त्रिपुरी थी। आजकल त्रिपुरीका नाम तेवर है जो वर्तमानमें एक छोटा गाँव रह गया है। यह बम्बई-रोडकी दक्षिण दिशामें जबलपुरसे पश्चिममें ९ कि. मी. दूर है।

इतिहास

१०वीं-११वीं शताब्दीमें चेदिके शासक कलचुरिवंशी नरेश थे। इस कालमें जबलपुरके आस-पासका प्रदेश दहल कहलाता था। कलचुरि कोकल्ल द्वितीयके पुत्र गांगेयदेवके शासन-कालमें त्रिपुरीकी शक्ति और प्रतिष्ठा आकाशको छूने लगी थी। इस नरेशने अपने जीवनमें अनेक युद्ध किये और अपने साम्राज्यका चारों ओर विस्तार करके 'विक्रमादित्य' की गौरवपूर्ण उपाधि धारण की। उसने परमार भोज और राजेन्द्र चोलसे सन्धि करके चालुक्य जयसिंह द्वितीयके राज्यपर आक्रमण कर दिया। सन् १०१९ के एक शिलालेखसे ज्ञात होता है कि चालुक्य-नरेशने इन सबको युद्धमें भगा दिया। इसके पश्चात् गांगेयदेवने कोसल-नरेश सोमवंशी महाशिवगुप्त ययाति और उत्कल-नरेशको जीतकर 'त्रिकलिंगाधिपति' का विरुद धारण किया। तत्पश्चात् उसने बघेलखण्ड और बनारसको अपने राज्यमें मिलाया। सन् १०३४ में महमूद गजनवीके पंजाब प्रदेशके गवर्नर अहमद निगलगीतने बनारसपर आक्रमण किया और अपार सम्पत्ति लूट ले गया। गांगेयदेवने इसका प्रतिशोध किरदेश (वर्तमान कांगड़ा घाटी) को मुसलमानी आधिपत्यसे मुक्त करके लिया।

गांगेयदेवके स्वर्ण, रजत और ताँबेके सिक्के बहुत बड़ी संख्यामें मिलते हैं। कुम्हीमें प्राप्त एक ताम्रलेखके अनुसार उसकी मृत्यु १९० पत्नियोंके साथ प्रयागमें अक्षयवटके नीचे हुई बतायी जाती है। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र लक्ष्मीकर्ण (कर्णके नामसे विख्यात) हुआ। उसने अपने पिताका श्राद्ध-तर्पण सन् १०४१ में किया।

इसके पश्चात् कर्णने त्रिपुरी राज्यके प्रभाव, प्रतिष्ठा और समृद्धिका खूब विस्तार किया। उसने बनारस जीता, राढ (पश्चिम बंगाल) पर विजय प्राप्त की, प्रतिहार यशपालसे प्रयाग छीना और किरदेशमें जाकर मुसलमानोंको हराया। उसने पालवंशी नरेश नयपालसे सन्धि करके

उसके युवराज विग्रहपाल तृतीयके साथ अपनी पुत्री यौवनश्रीका विवाह कर दिया। इस बातकी पुष्टि उसके सन् १०४८ के रीवाँ-शिलालेखसे भी होती है। इसके बाद उसने कलिंगको रौंद डाला, चोल राजेन्द्रसे काँची विषय छीन लिया। नोलम्बबाड़ीके पल्लव, सलेमके कुंग, मलाबार-तटवर्ती युरल और मदुराके पाण्ड्य नरेशोंको उसके चरणोंमें अपने मुकुट झुकाने पड़े। चालुक्य सोमेश्वर प्रथमको उसने करारी पराजय दी। रीवाँ-शिलालेखके अनुसार उसकी दक्षिण-विजय सन् १०४८ में समाप्त हुई। सन् १०५१ में उसने चन्देल कीर्तिवर्मनको हराकर बुन्देलखण्डपर अधिकार कर लिया। किन्तु कुछ समय पश्चात् चन्देल-नरेशके सामन्त गोपालने उससे बुन्देलखण्ड छीन लिया। फिर कर्णने मालवाके उत्तर-पश्चिममें स्थित हूण-मण्डलपर आक्रमण किया। उसने चालुक्य भीम प्रथमके साथ मिलकर परमार नरेश भोजपर पूर्व और पश्चिमकी ओरसे आक्रमण कर दिया। इसी बीचमें सन् १०५५ में भोजकी मृत्यु हो गयी और इन दोनोंने मालवापर अधिकार कर लिया। यह अधिकार थोड़े ही समय तक रहा। बादमें उसका झगड़ा भीमके साथ हो गया। भीमने उससे भोजकी सुनहरी मण्डपिका, हाथी और घोड़े छीन लिये। कुम्हीके ताम्रलेखसे ज्ञात होता है कि कर्णने कर्णावती नगर बसाया था। कर्णावती ही अब कारीतलाई कहलाती है।

इस प्रकार कर्ण जीवन-भर युद्ध करता रहा, किन्तु प्रयागको छोड़कर उसे कोई विशेष भौतिक लाभ नहीं हुआ। उसने 'त्रिकलिंगाधिपति' का विरुद धारण किया, जबलपुरके निकट एक नये नगरकी स्थापना की और हूण परिवारकी अवल्लदेवीके साथ विवाह किया, जिससे यशःकर्णका जन्म हुआ। सन् १०७३ में उसने अपने पुत्रके लिए राजगद्दी छोड़ दी।

यशःकर्ण अपने पिताके समान वीर नहीं था। उसके ऊपर चालुक्य जयसिंह और गाहड़वाल चन्द्रदेवने आक्रमण करके बनारस और प्रयाग छीन लिये। परमार लक्ष्मणदेवने उसकी राजधानी त्रिपुरीपर अधिकार करके रीवाँमें कुछ समय तक पड़ाव भी डाला। इन आक्रमणोंके कारण त्रिपुरीका कलचुरि राज्य बहुत निर्बल हो गया।

बारहवीं शताब्दीके प्रथम चरणमें उसका पुत्र गयकर्ण राजसिंहासनपर आरूढ़ हुआ। आचार्य मेरुतुंगने 'कुमारपाल प्रतिबोध' में लिखा है—

'दहलके नरेश कर्ण (गयकर्ण) ने गुजरात-नरेश कुमारपालपर बड़ी भारी सेना लेकर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमणके दौरान कर्ण एक रात हाथीपर सो रहा था। हाथी चला जा रहा था। उसके गलेका हार एक वृक्षकी शाखामें उलझ गया जिससे कर्णके प्राण-पखेरू उड़ गये।'

सन् ११५५ में उसका बड़ा पुत्र नरसिंह गद्दीपर बैठा। फिर सन् ११५९ और ११६७ के बीच उसका छोटा भाई जयसिंह त्रिपुरीका शासक हुआ। उसने तुर्क खुसरू मलिकके आक्रमणका वीरताके साथ मुकाबला किया और उसे असफल कर दिया। सन् ११७७ और ११८० के बीच उसका पुत्र विजयसिंह शासनारूढ़ हुआ। यह कलचुरि-वंशकी त्रिपुरी-शाखाका अन्तिम नरेश था। इस राजाके उपलब्ध शिलालेखोंसे यह प्रमाणित होता है कि वह सन् १२११ तक दहल-मण्डल और बघेलखण्डके ऊपर अपना अधिकार बनाये रखनेमें सफल रहा। किन्तु एक वर्षके भीतर ही चन्देल त्रैलोक्य वर्मनने उसे बघेलखण्डसे और सम्भवतः दहल-मण्डलसे भी खदेड़ दिया।[1]

इसके पश्चात् त्रिपुरीका राजनैतिक महत्त्व सम्भवतः समाप्त हो गया। कलचुरि-शासनका अन्त होनेपर दहल-मण्डल चन्देल नरेश त्रैलोक्य वर्मनके एक पौत्र हम्मीर वर्मनके राज्यमें मिल गया। उस समय उसकी राजधानी काकरेदिल (वर्तमान काकेरी, जो पन्ना और रीवाँकी सीमा-

---

१. The struggle for Empire, pp. 61-64, Bharatiya Vidya Bhawan, Bombay.

पर स्थित है) में बनायी गयी। हम्मीर वर्मनका एक शिलालेख सन् १३०८ का मिलता है। सन् १३०९ में अलाउद्दीन खिलजीने दमोह जिला उससे छीन लिया। इसके पश्चात् दहल-मण्डलका प्रभाव भी समाप्त हो गया।

यद्यपि त्रिपुरीका वास्तविक इतिहास कलचुरि-कालसे प्रारम्भ होता है, तथापि इससे पूर्व भी यह एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। रामायणमें वर्णित त्रिपुरा नामक राक्षसका वध कदाचित् यहीं हुआ था। यहाँपर ईसासे तीन शताब्दी पूर्वके पाये हुए सिक्कोंमें रेवाकी मूर्ति मिलती है। ईसाकी ५वीं-६ठी शताब्दी तक यहाँ परिव्राजक और उच्चकल्प राजाओंका शासन रहा। वाकाटकोंने भी इसपर शासन किया।

त्रिधर्मोंकी त्रिवेणी

यहाँ बौद्ध, हिन्दू और जैन, तीनों धर्मोंके मन्दिर, मूर्तियाँ अथवा उनके अवशेष प्राप्त होते हैं। इससे प्रमाणित होता है कि यह नगरी तीनों धर्मोंकी क्रीडा-स्थली रही है।

बौद्ध धर्म

चीनी यात्री ह्वेन्त्सांगने त्रिपुरीका उल्लेख करते हुए अपने यात्रा-विवरणमें लिखा है कि त्रिपुरीका राजा क्षत्रिय है और वह बौद्धधर्मका अनुयायी है। त्रिपुरी तथा उसके निकटवर्ती गोपालपुरमें बौद्धोंकी तान्त्रिक मूर्तियाँ प्रचुर संख्यामें मिलती हैं। इससे लगता है कि यह वज्रयानियोंकी गुह्यसाधनाका प्रमुख केन्द्र रहा है।

बौद्धोंमें तान्त्रिक प्रणालीका प्रचलन और प्रारम्भ बुद्धके आटानाटीय सूत्रके प्रवचनसे ही हो गया था। पालिके वत्यजात सूत्रसे मालूम होता है कि शाक्य मुनिके समयमें गान्धारी और आवर्तिनी विद्याका बड़ा प्रचार था तथा तथागतके परिनिर्वाणके बाद सौगत तन्त्रने बड़ा जोर पकड़ा था।

यहाँ बोधिसत्त्वोंकी अनेक मुद्राओंवाली प्रतिमाएँ मिली हैं। वज्रपाणिकी भी एक प्रतिमा मिली है। वज्रपाणि एक यक्ष था जो बोधिसत्त्वके पदपर पहुँच गया था। लगता है, त्रिपुरी आठवीं शताब्दीसे पूर्व तक वज्रयानियोंका महान् केन्द्र था।

हिन्दू धर्म

कलचुरि-नरेश शैव धर्मके अनुयायी थे। यद्यपि वे सभी धर्मोंके प्रति उदार और सहिष्णु रहे, किन्तु शैवधर्मको उन्होंने राजाश्रय दिया। फलतः त्रिपुरी लकुटीश पाशुपतोंकी केन्द्र बन गयी। यहाँके पाशुपत सिद्धोंमें सद्भाव शम्भु और सोम शम्भु अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। इन्होंने वर्णाश्रम-व्यवस्था और जाति-प्रथाका डटकर विरोध किया और एक ऐसी सामाजिक व्यवस्थापर बल दिया जिसमें शूद्र और उच्च वर्णके लोगोंमें किसी प्रकारका अन्तर न रहे।

त्रिपुरीके निकटवर्ती भेड़ाघाटमें चौंसठ योगिनी मन्दिर, गोलकी मठ तथा बिलहरीमें नोहलेश्वरका मन्दिर पाशुपत सम्प्रदायके तत्कालीन प्रभावके द्योतक हैं। चौंसठ योगिनियोंकी मूर्तियोंपर लिखे हुए नाम[1] देवी भागवत, चामर तन्त्र आदि पुस्तकोंमें नहीं पाये जाते। ये मत्तमयूर

---

१. चौंसठ योगिनी मन्दिरकी योगिनी-मूर्तियोंपर लिखे हुए नाम इस प्रकार हैं—सिंहासिंहा, शाणिणी, कामदा, रणाजिरा, अन्तकारी,...., एरुडी, नन्दिनी, बीभत्सा, वाराही, मन्दोदरी, सर्वतोमुखी, थिरचित्ता, खेमुखी, जाह्नवी,...., औडारा....यमुना, ..., ...पाण्डवी, नीलडम्बरा, ..., तेरम्बा, थण्डिनी,

सम्प्रदायके अपने नाम हैं। पाशुपतोंकी मत्तमयूर शाखा वाममार्गी शाखा है। इस सम्प्रदायका प्रभाव यहाँ पायी जानेवाली अश्लील मूर्तियोंके रूपमें स्पष्ट परिलक्षित होता है। एक ऐसी मूर्ति यहाँ प्राप्त हुई है, जिसमें कृष्ण बाँसुरी बजा रहे हैं और उन्हें नग्न गोपियाँ घेरे हुई हैं। खजुराहोके मन्दिरोंमें पायी जानेवाली अश्लील मूर्तियोंके समान यहाँ भी मिथुन-मूर्तियाँ प्रचुर संख्यामें प्राप्त हुई हैं।

जैन धर्म

त्रिपुरीमें अब तक जो पुरातन कलाकृतियाँ अथवा अवशेष उपलब्ध हुए हैं, उनसे यह प्रतीत होता है कि उस कालमें जैन कला विकासके उच्च शिखरपर थी। मध्ययुग जैन कलाका स्वर्णकाल कहा जा सकता है। इस कालमें मध्यप्रदेशमें, विशेषतः त्रिपुरीके आसपास जैन शिल्पको नया रूप, नया आयाम और वैविध्य प्राप्त हुआ। इस कालमें अनेक स्थानोंपर जैन तीर्थ बने। वहाँ अनेक मन्दिर और मूर्तियाँ निर्मित हुईं। यहाँ तक कि एक-एक तीर्थपर १०-२० मन्दिरोंसे लेकर ७०-८० मन्दिर तक बन गये। केवल संख्याकी दृष्टिसे ही नहीं, कला-सौष्ठवकी दृष्टिसे भी इन मन्दिरों और मूर्तियोंका महत्त्व असाधारण है।

यद्यपि कलचुरियोंका आदिपुरुष बोधराज जैन धर्मानुयायी था, किन्तु उसके कालमें त्रिपुरीमे कलचुरियोंका अस्तित्व प्रमाणित नही होता। जैन कला सदा स्वतन्त्र रही है। उसे कभी राजाश्रय नही मिला, वह सर्वसाधारणकी भक्ति और सद्भावनाके बलपर ही विकसित हुई है।

त्रिपुरीमें जो जैन कला-सामग्री प्राप्त हुई है, उसमें तीर्थंकरों और यक्ष-यक्षियोंकी मूर्तियाँ शामिल हैं। अधिकांश जैन कलावशेष सड़कों, पुलों, निजी मकानों और मन्दिरोंमें लगा दिये गये हैं, कुछ कलाकृतियाँ रायपुर आदिके संग्रहालयोंमें पहुँचा दी गयी हैं।

वर्तमान तेवर गाँवके पूर्वमें बालसागर नामक एक विशाल सरोवर है। उसके चारों ओर पक्की चहारदीवारी बनी हुई है। सरोवरके मध्यमें एक टीलेपर एक शैव मन्दिर बना हुआ है। उसमें पुत्रसहित एक मातृ-मूर्ति नेमिनाथ तीर्थंकरकी यक्षिणी अम्बिका देवीकी है। उसकी चरणचौकीपर लिखा है—'मानादित्यकी पत्नी सोम तुम्हें रोज प्रणाम करती है।' इस मन्दिरमें दीवारोंके बाह्य भागमें जैन देवी चक्रेश्वरीकी कई मूर्तियाँ लगी हैं।

यहाँकी एक जैन प्रतिमा हनुमान् ताल (जबलपुर) के दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ बड़ा मन्दिरमें विराजमान है। इस प्रतिमाको हम कलचुरिकालीन कलाकी प्रतिनिधि रचना अथवा कलाकी उत्कृष्ट कृतियोंमें-से एक कृति कह सकते हैं। यह प्रतिमा ५ फुट ऊँचे और ३॥ फुट चौड़े एक शिलाफलकपर बनी हुई है। प्रतिमा पद्मासन मुद्रामे है। दृष्टि नासाग्र है। केश कुंचित हैं।

पिंगला, ब्रह्मवला, ..., ..., मासवर्धनी, ..., रिद्धालीदेवी, गणेश, छत्रसंवरा, अजिता, चण्डिका, ..., गहनी, ब्रह्माणी, माहेश्वरी, टंकारी, रूपिणी, पद्महंसा, हंसिनी, ..., ..., ..., ...ईश्वरी, ठाणी, इन्द्रजाली, तपनी, ..., गांगिणी, ऐंगिणी, उत्ताला, णालिनी, लम्पटा, डेहुरी, ऋतसमाद्वा, गान्धारी, जाह्नवी, डाकिनी, बन्धणी, दर्पहारी, ..., रंगिणी, जहा, टीक्किणी, घण्टाली, ढड्ढरी, ... वैष्णवी, भीषणी, सतनुसम्बरा, क्षत्रधर्मिणी, ..., फणेन्द्री, वीरेन्द्री और ठाकिणी।

इन मूर्तियोंपर १०वी शताब्दीकी लिपिमें देवियोंके नाम खुदे हुए हैं। यहाँ एक मूर्ति कुषाणकालकी है और लाल पाषाणकी मूर्तियाँ ८वी शताब्दीकी हैं। इससे ज्ञात होता है कि यहाँ १०वीं शताब्दीसे पूर्व भी मन्दिर थे।

वण स्कन्धचुम्बी हैं। श्रीवत्स लांछन नहीं है किन्तु छातीपर उसका चिह्न अवशिष्ट है। इससे लगता है कि श्रीवत्स अवश्य रहा होगा। प्रतिमाके सिरके पीछे अलंकृत भामण्डल है। सिरके ऊपर छत्रत्रयी सूक्ष्म शिल्पांकनसे अलंकृत है। छत्रोंके दोनों पार्श्वोंमें गज खड़े हैं जिनकी सूँड़ छत्रोंका आधार बनी हुई है। गज एक विकसित पुष्पपर अवस्थित हैं। पुष्पसे नीचे मालाधारी देव-देवी और गन्धर्वबाला आकाश-विहार कर रही हैं। ये सभी रत्नाभरणोंसे सज्जित हैं। देव गलेमें दो-दो मालाएँ, भुजाओंमें भुजबन्ध, कड़े, करधनी, मुद्रिका धारण किये हुए हैं। देवियाँ माला, कुण्डल, केयूर, कंगन, मेखला और मुद्रिका धारण किये हुई हैं। गन्धर्वबालाएँ दो मौक्तिक माल और रत्नहार धारण किये हुई हैं। इनसे नीचेकी ओर प्रतिमाके दोनों पार्श्वोंमें सौधर्म और ऐशान इन्द्र अपनी इन्द्राणियों सहित अलंकृत दशामें खड़े हैं। हाथमें चमर धारण किये हुए हैं। उनके आभरणोंमें किरीट, कुण्डल, केयूर, कंगन, करधनी, मुद्रिका और रत्नहार सम्मिलित हैं। इन्द्राणी भी अलंकार-विभूषित है। इसकी चरण-चौकी पर कमलका लांछन अंकित है। अतः यह पद्मप्रभ तीर्थंकरकी प्रतिमा है किन्तु महावीर भगवान्की मानी जाती है। यद्यपि सिंह लांछन पादपीठपर अंकित नहीं है, किन्तु कहा जाता है कि यह आसन इस प्रतिमाका नहीं है। इसका मूल आसन उपलब्ध नहीं हो पाया।

एक अन्य प्रतिमा देवी पद्मावतीकी है जो इसी मन्दिरमें विराजमान है। देवी कमलासनपर आसीन है। इसका वर्ण लाल है। सिरपर किरीट और गलेमें मौक्तिक माला धारण किये हुई है। किरीटके ऊपर सप्तफणावली और उसके ऊपर पद्मासनमें तीर्थंकर प्रतिमा है। देवी चतुर्भुजी है। ऊपरके दोनों हाथोंमें अंकुश और कमल धारण किये हुई है तथा नीचेके दोनों हाथोंमें माला और सम्भवतः मूसल लिये हुई है। देवीके दोनों पार्श्वोंमें दो चमरधारी देव खड़े हैं। उनके नीचे इधर-उधर श्वानपर बैठे हुए देव हैं जो सम्भवतः भैरव क्षेत्रपाल हैं।

त्रिपुरीकी कुछ मूर्तियाँ नागपुर संग्रहालयमें सुरक्षित हैं। एक कृष्ण पाषाणकी तीर्थंकर प्रतिमाके पीठासनपर यह लेख उत्कीर्ण है—'माथुरान्वये साधुधोलू सुत देवचन्द्र संवत् ९०० ।' इसमें कौन-सा संवत् अभिप्रेत है, यह उल्लेख नहीं है। सम्भवतः यह कलचुरि संवत् होगा। इसी संवत् और अन्वयकी एक प्रतिमा और है, जिसकी प्रतिष्ठा मथुराके जसदेव और जयधवलने करायी थी। इसी संग्रहालयमें एक प्रतिमा महावीर स्वामीकी सुरक्षित है। यह १०वीं शताब्दीकी बतायी जाती है।

कुछ मूर्तियाँ पेड़ोंके नीचे तथा इधर-उधर पड़ी हुई हैं।

इससे प्रतीत होता है कि मध्यकालमें इस प्रदेशमें चारों ओर जैन धर्मका व्यापक प्रचार था तथा कलात्मक और नयनाभिराम मूर्तियोंका निर्माण यहीं होता था। यदि यहाँ उत्खनन किया जाये तो भूगर्भसे अनेक जैन कलाकृतियाँ प्रकाशमें आ सकती हैं और वे इतिहासको एक नया दिशा-बोध दे सकती हैं।

बरहटा

मार्ग और अवस्थिति

नरसिंह जिलेके गोटेगाँवसे लगभग ४० कि. मी. दूर यह स्थान है। पक्की सड़क है। नरसिंहपुरसे बसें जाती हैं। यह एक सम्पन्न कस्बा है।

जैन पुरातत्त्व

कुछ लोगोंकी धारणा है कि यह महाभारत कालका वह विराटनगर है जो विराट-नरेशकी राजधानी था और जहाँ पाँचों पाण्डव द्रौपदीके साथ अपने अज्ञातवासके समय रहे थे। इसी धारणाके कारण जनताने यहाँ पाण्डवों और द्रौपदीकी मूर्तियाँ बनवायी हैं। यहाँ द्रौपदीके नामपर एक मन्दिर भी बना हुआ है। यह भ्रमित धारणा नामसाम्यके कारण हुई है। महाभारतमें जिस विराटनगरका वर्णन आया है, वह मत्स्यदेशमें था। मत्स्यदेशमें वर्तमान अलवर, भरतपुर जिले तथा जयपुरके कुछ भाग सम्मिलित थे। पाण्डवोंने जिस विराटनगरमें अज्ञातवास किया था, वह विराटनगर जयपुरसे उत्तरकी ओर ६४ कि. मी. और दिल्लीसे दक्षिणकी ओर १६८ कि. मी. है। यह नगर इन्द्रप्रस्थके निकट था। पाण्डवोंने अपने अज्ञातवासके लिए इस नगरको इसलिए पसन्द किया था कि यह इन्द्रप्रस्थके निकट था। यहाँ रहकर वे अपने शत्रु दुर्योधनकी गतिविधियों-पर नजर रख सकते थे।[1] यहाँकी पाण्डु पहाड़ीपर मीलों तक खण्डहर हैं। पहाड़ीपर प्राकृतिक गुफाएँ हैं। इनमे एक गुफाका नाम भीमगुफा है। इस पहाड़ीपर सम्राट् अशोकका एक शिलालेख भी उपलब्ध हुआ है। यहाँ मौर्य और मित्रवंशी राजाओंके कालके सिक्के भी प्राप्त हुए हैं।

कुछ लोग दिनाजपुरको विराटनगर मानते हैं। उसके निकट कान्तनगरमें विराट-नरेशका उत्तर गोगृह और मिदनापुरमें दक्षिण गोगृह मानते हैं। यह मान्यता भी आधारहीन है।

बरहटा गाँवके बाहर दो मील लम्बे-चौड़े भू-भागमें प्राचीन सामग्री बिखरी हुई है। यहाँके मालगुजार ठाकुर सबलसिंहने यहाँ कुछ समय पूर्व खुदाई करायी थी। फलतः यहाँ अनेक प्राचीन मूर्तियाँ निकली थीं। ये मूर्तियाँ उनके निजी मकानमें अभी भी सुरक्षित हैं।

यहाँ एक अर्ध-भग्न प्राचीन जैन मन्दिर है। मन्दिरका हॉल ३५ फुट लम्बा और २५ फुट चौड़ा आज भी टूटी-फूटी अवस्थामें खड़ा हुआ है। इसकी छत गिर चुकी है। यहाँ कुल ८ तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। इनकी अवगाहना प्रायः ५-६ फुट है। ये पद्मासन मुद्रामें हैं और श्याम वर्ण देशी पाषाणकी बनी हुई हैं।

यहाँपर जो पाँच तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं उन्हे जैनेतर लोग पाँच पाण्डव भगवान् कहकर पूजते हैं। 'पाँच-पाण्डव' के नामसे यहाँ प्रतिवर्ष मेला लगता है। मन्दिरके दरवाजेपर स्थित छह फुट ऊँची पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा बहुत मनोज्ञ है। यहाँपर पाषाणका एक तीन फुटका वृत्ताकार धर्मचक्र रखा हुआ है।

मन्दिरके निकट एक तालाब और कुआँ बना हुआ है। अब तक मन्दिर और मूर्तियाँ उपेक्षित दशामें पड़ी हुई हैं।

इस स्थानके समीप ही तालाबके किनारे जो द्रौपदी-मन्दिर है वहाँ भी तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। इसके आगेकी दो मीलकी लम्बी-चौड़ी जमीन बहुत मजबूत है। जब भी वहाँ कोई खुदाई होती है तो प्राचीन जैन-बौद्ध मूर्तियाँ निकलती हैं। यहाँकी बहुत-सी सामग्री तो देशके बाहर चली गयी है। यहाँकी कुछ जैन मूर्तियाँ नरसिंहपुरके सरकारी बागमें सुरक्षित रखी हुई हैं।

---

१. महाभारत, विराटपर्व, सभापर्व ३०।

कोनीजी

मार्ग

श्री कोनीजी क्षेत्र 'जबलपुर-पाटन-दमोह मार्ग' पर कैमूर पर्वतमालाकी तलहटीमें हिरन सरिताके तटपर अवस्थित है। जबलपुरसे पाटन बत्तीस किलोमीटर है और पाटनसे कोनीजी पाँच किलोमीटर है। मुख्य सड़कसे 'बासन' ग्राम तक आकर बासन ग्रामसे दायीं ओरको कोनीजी तक पक्की सड़क जाती है। मध्य रेलवेके जबलपुर स्टेशनसे तथा दमोह स्टेशनसे दिन-भर मोटरें मिलती हैं। कोनीजीमें नौ शिखरबन्द दिगम्बर जैन मन्दिर हैं।

प्राचीन क्षेत्र

यह क्षेत्र पर्याप्त प्राचीन लगता है। यहाँके कुछ मन्दिरों और मूर्तियों पर १०वीं-११वीं शताब्दीकी कलचुरिकालीन कलाका प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। कलचुरि शैलीमें मन्दिरके बहिर्भागमें अलंकरणकी प्रधानता रहती थी, द्वार अलंकृत रहते थे। शिखरकी ऊँचाई भी अधिक रहती थी। पंचायतन शैलीको इसी कालमें पूर्णता प्राप्त हुई।

ये विशेषताएँ यहाँके कुछ मन्दिरोंमें भी देखनेको मिलती हैं।

यहाँकी प्रतिमाओंमें विघ्नहर पार्श्वनाथकी प्रतिमा अत्यन्त भव्य और प्रभावोत्पादक है। यहाँकी प्रतिमाएँ दोनों ही ध्यानासनोंमें मिलती हैं—पद्मासन एवं कायोत्सर्गासन। इन प्रतिमाओं-की चरण-चौकीपर अभिलेख भी उत्कीर्ण हैं।

उनके अनुसार यहाँ कुछ प्रतिमाएँ १०वीं-११वीं शताब्दीकी भी उपलब्ध हैं।

यहाँ की विशेष उल्लेखनीय रचनाओंमें सहस्रकूट जिनालय तथा नन्दीश्वर द्वीपकी रचना है। ये रचनाएँ अपनी विशिष्ट शैलीके कारण अत्यन्त कलापूर्ण बन पड़ी हैं। कलाकारके कुशल हाथोंके कौशलकी छाप इनकी प्रत्येक मूर्तिपर स्पष्ट अंकित है। ऐसी मनोहर रचना कम ही मन्दिरोंमें देखनेको मिलेगी।

बहुत वर्षों तक यह तीर्थ अत्यन्त उपेक्षित दशामें पड़ा रहा। उस कालमें वन्य पशु-पक्षियोंने मन्दिरोंको अपना सुरक्षित आवास बना लिया था। जंगली लताओं, झाड़ियों और इन पशु-पक्षियोंने मन्दिरोंको दुर्गम और वीरान बना दिया था। मन्दिरोंकी छतें और भित्तियाँ मरम्मतके अभावमें जीर्ण-शीर्ण हो गयी थीं। जहाँ-तहाँसे वर्षाका पानी अपना मार्ग बना लेता था, किन्तु इधर कुछ वर्षोंसे 'पाटन जैन समाज' का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट हुआ है और अब यहाँके मन्दिरोंकी दशा सन्तोषजनक रूपसे सुधरती जा रही है।

अतिशय क्षेत्र

इस क्षेत्रकी ख्याति एक अतिशय क्षेत्रके रूपमें है। यहाँका 'गर्भमन्दिर' दैवी चमत्कारोंके लिए विशेष प्रसिद्ध है। शिशिर ऋतुमें भी इस मन्दिरमें प्रवेश करनेपर शीतका अनुभव नहीं होता। विघ्नहर पार्श्वनाथ मन्दिरमें जैन और जैनेतर जनता मनौती मनाने आती है और उनके विश्वासके अनुरूप उनकी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं।

यहाँके नन्दीश्वर मन्दिरके प्रति जैनाजैन जनताकी अत्यधिक श्रद्धा है। यह भी जनश्रुति है कि इस मन्दिरमें अष्टाह्निका पर्वमें देवगण आकर गीत-नृत्यपूर्वक पूजन किया करते थे और मन्दिरमें 'केशर' की वर्षा करते थे।

शान्तिकी जैसी अभिलाषा और जिनेन्द्रभक्ति धार्मिकजनोंमें देखी जाती है, वैसी अनेक देवोंमें भी होती है, ऐसा माना जाता है। अतः यह अस्वाभाविक नहीं है। निश्चय ही इन तीर्थ भूमियों पर आकर विविध आधि-व्याधियोंसे व्याकुल प्राणियोंको शान्ति प्राप्त होती है।

क्षेत्र-दर्शन

क्षेत्रमें प्रवेश करनेके लिए विशाल प्रवेश-द्वार बना हुआ है और उसके ऊपर नौबतखाना है। क्षेत्र स्थित मन्दिरोंके चारों ओर अहाता बना हुआ है। यहाँ कुल नौ मन्दिर हैं जिनका विवरण इस प्रकार है—

मन्दिर क्रमांक १—जीर्णोद्धार कार्य होकर नवीन आकर्षक वेदीका निर्माण हुआ है। फरवरी १९७६ में वार्षिक मेलाके अवसरपर वेदी-प्रतिष्ठा होकर श्री जिनबिम्ब विराजमान किये गये हैं। इस मन्दिरमें तीन आधुनिक और दो प्राचीन प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

मूल नायक श्री नेमिनाथ भगवान्‌की लाल पाषाण (मूँगा वर्ण) की प्रतिमा भव्य एवं चित्ताकर्षक है। एक फुट आठ इंच ऊँचे एक शिला-स्तम्भमें तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं जो प्राचीन हैं। एक पद्मासन प्राचीन प्रतिमा है जो १ फुट ५ इंच ऊँची है। तीर्थंकरके दोनों पार्श्वोंमें चमरवाहक खड़े हुए हैं। चन्द्रप्रभ भगवान्‌की दो पद्मासन प्रतिमाएँ हैं, जिनमें एक वह अतिशय सम्पन्न प्रतिमा है, जिसपर एक बार पसीनेकी भाँति जलकण दिखाई दिये थे।

मन्दिर क्रमांक २—बहुत समयसे खाली पड़ा है, जीर्णोद्धारककी राह देख रहा है।

मन्दिर क्रमांक ३—नवीन आकर्षक वेदीका निर्माण सन् १९६९ में क्षेत्रकी वर्तमान प्रबन्ध समितिने कराया है, जिसमें मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथकी श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। मूर्ति लेखके अनुसार इस प्रतिमाकी प्रतिष्ठा विक्रम संवत् १८८५ में हुई थी। इसके समवसरणमें मूलनायकके अतिरिक्त पाँच प्रतिमाएँ और विराजमान हैं जिनमें तीन प्रतिमाएँ प्राचीन हैं। इनमे, एक फुट दो इंच ऊँचे एक पाषाण-फलकमे २० तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हुई है, जिनमें दो पद्मासन और शेष खड्गासन हैं। यह विदेह क्षेत्रके २० तीर्थंकरोंकी परिकल्पना है। २ फुट ५ इंच ऊँची एक शिखराकृतिमें एक पद्मासन और दो खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। २ फुट ५ इंच ऊँची अवगाहनाकी एक खड्गासन तीर्थंकर मूर्ति है। इसके परिकरमें आकाश-विहारी गन्धर्व और चमरवाहक दीख पड़ते हैं।

मन्दिर क्रमांक ४—खाली किया गया है। जीर्णोद्धारका कार्य हो रहा है। यहाँ भगवान् महावीर स्वामीकी विशाल प्रतिमा प्रतिष्ठा कराकर विराजमान किये जानेकी योजना है जिसके लिए यहाँ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा आयोजित होगी। जीर्णोद्धार श्री सिंघई रतनचन्द पाटन द्वारा हो रहा है।

मन्दिर क्रमांक ५—जीर्णोद्धार-कार्य सम्पन्न होकर नवीन चित्ताकर्षक वेदीका निर्माण सम्पन्न हुआ है। अभी फरवरी १९७६ में आयोजित वार्षिक मेलामें वेदी-प्रतिष्ठा होकर श्री जिनबिम्ब विराजमान किये गये हैं। मूलनायकके रूपमें सुन्दर काले पाषाणकी २ फुट ६ इंच ऊँची तीर्थंकर चौबीसी विराजमान है जिसमें मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथ हैं। इस वेदीमें विराजित तीनों प्रतिमाएँ एक-से काले पाषाण का चुनी गयी हैं। चौबीसीके दोनों ओर काले पाषाणकी तीर्थंकर मूर्तियाँ विराजमान हैं। वेदीमें दोनों ओर इस प्रकार विशाल दर्पण लगाये गये हैं, जिससे उनमें अनेक प्रतिमाएँ दिखाई देती हैं।

मन्दिर क्रमांक ६—इस मन्दिरको 'गर्भ-मन्दिर' कहा जाता है। शीत ऋतुमें इस मन्दिरमें उष्णता रहती है। यद्यपि मन्दिरमें पवनावकाश बने हुए हैं किन्तु मन्दिरकी ऊष्माका क्या रहस्य है यह अब तक अविदित ही बना हुआ है। भक्तजन श्रद्धावश इसे वातानुकूलित कहते हैं। इस मन्दिरमें समय-समयपर अतिशय भी होते रहते हैं। पहले इस मन्दिरमें भगवान् चन्द्रप्रभुकी मूर्ति विराजमान थी। प्रत्यक्षदर्शियोंके अनुसार इस प्रतिमापर एक बार पसीनाकी भाँति जल-कण दिखाई दिये थे। सूखे छन्नेसे पोंछनेपर वह गीला हो गया था। अब उस प्रतिमाको यहाँसे अन्य मन्दिरमें विराजमान कर उसके स्थानपर सहस्रकूट चैत्यालय विराजमान कर दिया गया है। पहले यह चैत्यालय ऊपर मन्दिर नं. ८ में था। जबलपुरके सवाई सिंघई नेमीचन्दजीने इस मन्दिर-का जीर्णोद्धार कराकर सहस्रकूट चैत्यालयको यहाँ विराजमान किया है जिसके उपलक्ष्यमें क्षेत्रकी प्रबन्ध समितिने उन्हें 'तीर्थभक्त' की उपाधिसे सम्मानित किया है।

यह चैत्यालय एक अष्टकोण स्तम्भमें बना हुआ है। इसमें तीन कटनियाँ हैं। इस चैत्यालय-की कटनियोंपर मेरु भी विराजमान थे, किन्तु वे किसी समय खण्डित हो गये तब मूर्तियोंकी संख्या पूरी करनेके लिए नन्दीश्वर जिनालयकी रचनामें-के कुछ मेरुओंको यहाँ इस चैत्यालयमें विराजमान कर दिया है। अब सहस्रकूट चैत्यालयकी इस रचनाकी मूर्तियोंकी गणनाका योग इस प्रकार है—

नीचेकी कटनीमें चारों दिशाओंमें	५१ × ८ = ४०८	१ फुट १० इंच
मध्यकी कटनीमें चारों दिशाओंमें	४५ × ८ = ३६०	१ फुट ११ इंच
ऊपरकी कटनीमें „ „	१५ × ८ = १२०	१ फुट ११ इंच
मेरुओंकी मूर्ति संख्या	४ × ८ = ३२	
मेरुओंकी मूर्ति संख्या	२० × ४ = ८०	
मेरुओंकी मूर्ति संख्या	२ × ४ = ८	
	कुल योग १००८	

इन मेरुओंका माप इस प्रकार है—

ऊपरका मेरु	२ फुट २ इंच
चारों दिशाओंके मेरु क्रमशः	१ फुट ८ इंच, १ फुट ९ इंच, १ फुट १० इंच, १ फुट ११ इंच
पूर्व दिशाका एकमात्र मेरु	८ इंच

सहस्रकूट जिनालय कई स्थानोंपर मिलते हैं। दिगम्बर परम्परामें इन जिनालयोंमें १००८ मूर्तियाँ बतायी जाती हैं जबकि श्वेताम्बर परम्परामें १००० मूर्तियोंका प्रचलन है। बाणपुर, पटना-गंज, सम्मेदशिखर, दिल्ली आदि कई स्थानोंपर प्राचीन सहस्रकूट जिनालय हैं। इन सभीमें १००८ मूर्तियाँ हैं। सहस्रकूट जिनालयोंका प्रचलन कबसे है, निश्चित रूपसे यह कहना कठिन है, किन्तु १०वीं-१२वीं शताब्दीसे इसका प्रचलन निश्चित रूपसे रहा है। गुप्तोत्तर युगमें मूर्ति-शिल्पमें वैविध्य दृष्टिगोचर होता है। यह वैविध्य शैली, सज्जा और शासन देवताओंकी मूर्तियोंमें तो दृष्टिगोचर होता ही है, तीर्थंकरों और मन्दिरोंके प्रतीक रूपोंमें भी दिखाई पड़ता है। इन प्रतीकात्मक विधाओंमें ही सहस्रकूट चैत्यालयोंकी गणना की जा सकती है। ये चैत्यालय किसी तीर्थंकर विशेषका प्रतिनिधित्व नहीं करते। इसलिए इन चैत्यालयोंमें मूर्तियोंके नीचे किसी लांछनका अंकन नहीं मिलता।

तब मनमें यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि इन चैत्यालयोंमें मूर्तियोंकी संख्या १००८ रखानेका प्रयोजन क्या है। इसके लिए कोई शास्त्रीय साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। कुछ विद्वान् १००८ प्रतिमाओंको भगवान्‌के १००८ गुणोंका प्रतीक बताते हैं। कुछ विद्वान् पंच परमेष्ठीके साथ इसका सम्बन्ध बताते हैं। एक मान्यताके समाधान अनेक हो सकते हैं। हमारी विनम्र मान्यता है कि गुणोंकी प्रतीकात्मकताके लिए तीर्थंकर मूर्तियोंकी कल्पना अधिक बुद्धिसंगत नहीं लगती। गुणों और धर्मोंकी मूर्तियाँ बनानेकी परम्परा कभी रही हो, ऐसा भी उल्लेख पुरातत्त्व और इतिहासमें नही मिलता। लगता है, वैष्णव सम्प्रदायमें जब बहुदेवतावादका जोर था और उसके आधारपर अनेक देवी-देवताओंकी मूर्तियोंका निर्माण हो रहा था उन्हीं दिनों जैनोंमें विष्णु-वैष्णवों और जैनोंकी सैद्धान्तिक मान्यताओंमें मौलिक अन्तर था। वैष्णवोंमें एक विष्णुके अनेक रूप हैं, जैनोंमें किसी एक ऐसी तीर्थंकरकी मान्यता नहीं रही जिसके अनेक रूप होते हैं। यहाँ तो २४ तीर्थंकरों-का भी एक रूप है। तथापि सभी तीर्थंकरोंका एक नाम होता है 'जिन' और जिनके सहस्रनाम होते हैं। 'आदिपुराण' पर्व २५, श्लोक २२४ में इन्द्र भगवान् ऋषभदेवकी स्तुति सहस्रनामों द्वारा करता हुआ कहता है :

"हे भगवन्! हम लोग आपकी नामावलीसे बने हुए स्तोत्रोंकी मालासे आपकी पूजा करते हैं।" बहुदेवतावादके इस कालमें इन्द्र द्वारा की गयी नामावली स्तुतिके प्रत्येक नामको एक रूप या आकार देकर १००८ आकार या मूर्तियोंका एक समवेत चैत्यालय बनाकर भगवान्‌की पूजा करनेकी पद्धतिका विकास हुआ। सहस्रनाम स्तोत्रमें सहस्र शब्द होते हुए भी १००८ नामोंमें भगवान्‌की स्तुति की गयी है। इन्द्रने जो स्तुति की थी, वहाँ भगवान् एक थे, उनके नाम १००८ थे। सहस्रकूट चैत्यालयमे भगवान् एक हैं और उनकी मूर्तियाँ १००८ हैं। उनके प्रत्येक नामकी एक मूर्ति है। स्तोत्रमें १००८ नाम एक स्थानपर प्राप्त हैं। सहस्रकूट चैत्यालयमे १००८ मूर्तियाँ एक स्थानपर प्राप्त हैं। दोनों ही स्थानोंपर भगवान् एक हैं। सम्भवतः सहस्रकूट चैत्यालय निर्माण-के पीछे यही भावना काम करती प्रतीत होती है।

यदि उपर्युक्त कल्पनामें कोई तथ्य है, तो निष्कर्षमें यह भी मानना होगा कि जिस बहु-देवतावादसे सहस्रकूट चैत्यालयके निर्माणकी प्रेरणा मिली थी, वह जैन धर्मके अनुकूल नहीं था। अतः सहस्रकूट चैत्यालयके निर्माणकी परम्परा जैन समाजमें अधिक लोकप्रिय नहीं हो सकी।

इसमें एक बात विशेष रूपसे विचारणीय है। 'सहस्रकूट चैत्यालय' में 'कूट' शब्द हमारा ध्यान आकर्षित करता है। सम्मेदशिखरपर तीर्थंकरोंके कूट बने हुए है, जैसे—नाटककूट, संकुल-कूट, सुप्रभकूट, मोहनकूट, ललितकूट आदि। इन नामोंकी क्या सार्थकता है, यह तो ज्ञात नही है किन्तु इन नामोंके साथ जो 'कूट' शब्द है, उसका अर्थ है 'चोटी' सबसे ऊपर का भाग। 'तिलोय-पण्णत्ति' अध्याय ४ में लोकमें चैत्यालयोंका अवस्थान बताते हुए लिखा है--भवनवासी देवोंके सात करोड़ बहत्तर लाख भवनोंकी वेदियोके मध्यमे स्थित प्रत्येक कूटपर एक-एक जिन-भवन है। रत्नप्रभा पृथ्वीमें स्थित व्यन्तरदेवोंके तीस हजार भवनोंके मध्य वेदीके ऊपर स्थित कूटोंपर जिनेन्द्र प्रासाद हैं। हिमवान् पर्वतके दस कूटोंपर व्यन्तरदेवोंके नगर है। इनमें जिन-भवन हैं। इस प्रकार 'कूट' शब्दका प्रयोग कई स्थानोंपर जिनालयोंके प्रसंगमें मिलता है। लेकिन सभी स्थानोंपर कूट शब्दका प्रयोग 'चोटी या ऊपरका भाग' इस अर्थमे ही मिलता है। लोकोंमें कूटोंकी संख्या करोड़ोंमें है। यदि उन करोड़ों कूटोंके प्रतीकके रूपमें जिनालयोंका निर्माण किया गया है, तब तो 'सहस्रकूट जिनालय' के स्थानपर 'कोटिकूट जिनालय' नाम होना चाहिए।

यद्यपि इस प्रकारकी शंकाकी सम्भावना हो सकती है, तथापि तथ्य यही प्रतीत होता है

कि उन कोटिकूट जिनालयोंकी एक प्रतीकात्मक विधाका विकास हुआ है और उसका नाम 'सहस्रकूट चैत्यालय' रखा गया।

मन्दिर क्रमांक ७—भगवान् पार्श्वनाथकी श्वेत पाषाणकी, सप्त फणावली-मण्डित, पद्मासनस्थ चार फुट ऊँची प्रतिमा मूलनायककी है। जिन्हें विघ्नहर पार्श्वनाथ भी कहा जाता है। यद्यपि आसनमें कमल चिह्न अंकित है। मन-वचन-कायसे इनका जप किये जानेपर विघ्नोंके नष्ट हो जानेका अतिशय अनेक बार देखा-सुना गया बताया जाता है। मूर्ति-लेखके अनुसार इस प्रतिमाकी प्रतिष्ठा विक्रम संवत् १८६३ में हुई। वर्तमान प्रबन्ध समिति द्वारा सन् १९६९ में इस मन्दिरका जीर्णोद्धार कराकर नवीन वेदी आकर्षक एवं खुली हुई बनायी गयी है।

इस वेदीमें कलचुरिकालीन प्रतिमाएँ भी विराजमान हैं। एक शिलाफलकमें २ फुट ७ इंच अवगाहनाकी महावीर भगवान्‌की कायोत्सर्ग आसनवाली प्राचीन प्रतिमा है। आकाशमें गन्धर्व पुष्पवर्षाके लिए तैयार जान पड़ते हैं। भगवान्‌के दोनों ओर चमरवाहक इन्द्र खड़े हुए हैं। २ फुट ३ इंच ऊँची भगवान् शान्तिनाथकी प्रतिमा अपनी शान्त छविसे दर्शकका मन मोह लेती है। इनके अतिरिक्त ५ और पाषाण मूर्तियाँ तथा कुछ धातुकी मूर्तियाँ और मेरु हैं। इस मन्दिरको 'बड़ा मन्दिर' कहते हैं।

मन्दिर नं. ८—जीनेसे ऊपर जाकर, बायें—इस मन्दिरमें पहले सहस्रकूट चैत्यालय विराजमान था। अब उसके नीचे मन्दिर नम्बर ६ में चले जानेसे उसके रिक्त स्थानपर एक सुन्दर चबूतरा निर्मित कराकर 'पाषाण स्तम्भ' में अंकित तीर्थंकर चौबीसी जिसे 'सर्वतोभद्र प्रतिमा' भी कहते हैं, विराजमान कर दी गयी है।

मन्दिर नं. ९—जीनेसे ऊपर जाकर, बायें—इस मन्दिरमें नन्दीश्वर द्वीपके ५२ जिनालयोंकी रचना है। यह रचना चार स्तम्भोंपर आधारित एक वेदी मण्डपके नीचे है। एक कमलासन पर, मध्यमें एक स्तम्भमें बीस प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। चारों दिशाओंमें चार स्तम्भ हैं, जिनमें प्रत्येकमें बीस प्रतिमाएँ हैं। तीन स्तम्भ चौबीस मूर्तियोंवाले हैं और एक स्तम्भ सोलह मूर्तियोंवाला है। ५२ जिनालयोंके कुछ खण्डित भाग, जो इस रचनाकी शोभाकी कहानी सुना रहे हैं, कुछ एक स्थानपर इसी प्रकोष्ठमें रखे हुए हैं। इसके कुछ मेरु सहस्रकूट चैत्यालयमें विराजमान हैं। वस्तुतः यह रचना उपर्युक्त कारणोंसे अधूरी है जिसे पूर्ण किया जाना चाहिए। प्रबन्ध समिति-के पदाधिकारियोंने बताया कि इस मन्दिरका जीर्णोद्धार कराने एवं खण्डित मूर्तियोंका निर्माण करानेके लिए श्री शिखरचन्दजी, विनीत टाकीज, जबलपुर वचनबद्ध हैं। यथाशीघ्र यह कार्य प्रारम्भ होगा।

नन्दीश्वर जिनालय

तिलोयपण्णत्ति और त्रिलोकसार ग्रन्थोंके अनुसार नन्दीश्वर द्वीपकी रचना इस प्रकार है—

मध्य लोकमें लोकद्वीपोंकी शृंखलामें आठवाँ द्वीप नन्दीश्वर है। इसके बहुमध्य भागमें पूर्व दिशामें काले रंगका एक अंजनगिरि है। उस अंजनगिरिके चारों ओर चार वापियाँ हैं। प्रत्येक वापीके चारों दिशाओंमें अशोक, सप्तच्छद, चम्पक और आम्र नामक चार वन हैं। प्रत्येक वापीमें सफेद रंगका एक-एक दधिमुख पर्वत है। प्रत्येक वापीके बाह्य दोनों कोनोंपर चार रतिकर पर्वत हैं। (जिनमन्दिर केवल बाहरवाले दो रतिकरोंपर ही होते हैं, आभ्यन्तर रतिकरोंपर देवगण क्रीड़ा करते हैं।) इस प्रकार एक दिशामें एक अंजनगिरि, चार दधिमुख, आठ रतिकर ये सब मिलकर तेरह पर्वत हैं। इनके ऊपर तेरह जिनमन्दिर स्थित हैं। इसी प्रकार शेष तीन

दिशाओंमें भी सम्पूर्ण रचना इसी प्रकार है। कुल मिलाकर ५२ जिनालय, १६ वापियाँ और ६४ वन हैं। अष्टाह्निका पर्वमें सौधर्म आदि इन्द्र एवं अन्य देवगण बड़ी भक्तिसे इन मन्दिरोंकी पूजा करते हैं। पूर्व दिशामें कल्पवासी, दक्षिणमें भवनवासी, पश्चिममें व्यन्तर और उत्तरमें ज्योतिष्क देव पूजा करते हैं। नन्दीश्वर द्वीपकी इसी परिकल्पनाकी रचना कोनीजीमें की गयी है।

कोनी दहनका दुःखद इतिहास

कोनी कभी नगर रहा होगा, ऐसा विश्वास होता है। यद्यपि वर्तमानमें जैन मन्दिर-समूहके अतिरिक्त वहाँ इने-गिने कुछ घर हैं। किन्तु इस क्षेत्रके चारों ओर बिखरे हुए भग्नावशेषों, ईंट-पत्थरोंसे ऐसा प्रतीत होता है कि इस स्थानने कभी किसी युगमें वैभवके दिन देखे हैं। इस स्थान-पर कभी कोई नगर आबाद था, इसके लिए अधिक प्रमाणोंकी आवश्यकता नहीं है। क्षेत्रके निकट सड़कके दोनों ओरके टीलोंको एक बालिश्त भी खोदें तो वहाँ राखके अतिरिक्त कुछ भी उपलब्ध नहीं होगा। विशाल भू-भागमें फैली हुई यह राख अपने आँचलमें यहाँका इतिहास संजोये हुए है। यह निश्चय ही दग्ध नगरकी राख है। यह राख ही हमें यह सोचनेके लिए विवश करती है कि यह दुष्कर्म धर्मान्ध आततायियोंका नहीं है, यदि उनका यह कार्य होता तो वे मन्दिरों-को परिवर्तित करते अथवा मूर्तियोंको भग्न और खण्डित करते। किन्तु इस प्रकारकी विध्वंस-लीला यहाँ दिखाई नहीं देती। यहाँकी विनाश-लीलाका रूप कुछ और ही प्रकारका है। सत्ताके उन्मादने इस समूचे नगरको जलाकर भस्म कर दिया हो, ऐसा लगता है।

अक्टूबर, सन् १८५७ में पाटन तहसीलका समीपी गाड़ाघाट ग्राम अंग्रेजी शासनके विरुद्ध, जन-विद्रोहका केन्द्र बना हुआ था। गाड़ाघाट ग्रामके वीर गजराजसिंहके नेतृत्वमें जन-सेनाके हाथों अंग्रेजी सेना और देशद्रोहियोंकी निर्वीर्य जमात कई बार करारी मात खा चुकी थी। तब तोपों और शस्त्रास्त्रोंसे सज्जित अंग्रेजी घुड़सवार सेना गाड़ाघाटपर चढ़ दौड़ी। उसमें असंख्य देशभक्त काम आये। तब क्रुद्ध अंग्रेजोंने जनतासे भीषण प्रतिशोध लिया। जबलपुरके तत्कालीन कमिश्नर एसकिनने अपनी रिपोर्टमें लिखा है—"हमारी विजयी सेनाओंने क्रान्तिकारियोंके ग्रामों-को भस्मसात् करनेमें कोई कसर नहीं छोड़ी....जो भी ग्रामवासी वृद्ध, स्त्री, बच्चे सामने पड़े, निर्दयतापूर्वक मार डाये गये।" गाड़ाघाट, कोनी, पाटन, भिड़ारी, नीमी, मिहगवाँ, जटवाँ, बासन, उमरिया, रमपुरा आदि गाँवोंके देशभक्त या तो मार दिये गये या वे नगर-गाँवोंको छोड़-कर भाग गये। उन नगरों-गाँवोंको अंग्रेजोंने आग लगाकर नष्ट कर दिया। आज गाड़ाघाटकी पूर्व-कालीन वैभवपूर्ण स्थिति नहीं रही। वहाँके विशाल जैन मन्दिरोंकी मूर्तियाँ पाटन पहुँचा दी गयी। कोनी नगर जलाकर भस्म कर दिया गया था। वहाँके निवासी पुनः लौटकर नहीं आये। किसीने उस नगरके पुनर्निर्माणका प्रयत्न नहीं किया। यही है कोनीके भस्मावशेषका इतिहास।

पुरातत्त्व

क्षेत्रके आसपास प्राचीन मन्दिरोंकी शिलाएँ, स्तम्भ तथा अन्य सामग्री बिखरी पड़ी है। मन्दिरोंके पृष्ठ भागमें किसी मन्दिरके सिरदल या तोरणका भाग पड़ा है। इसके ललाट-बिम्बपर पद्मासन प्रतिमा बनी हुई है। उसके दोनों पार्श्वोंमें भग्न दशामें चमरेन्द्र खड़े हैं। बायीं ओर अष्ट मातृकाएँ उत्कीर्ण हैं और दायीं ओर नवदेवताओं अथवा नवग्रहोंका प्रतीकात्मक अंकन है। नीचेकी पंक्तिमें नृत्यमुद्रामें देवियाँ दिखाई पड़ती हैं। दोनों सिरोंपर देवियाँ खण्डित हैं। मन्दिरोंके अहातेके निकट कुछ शिलाएँ पड़ी हुई हैं जो किसी प्राचीन मन्दिरके ध्वंसावशेष प्रतीत होते हैं।

मन्दिर-प्रांगणके बाहर एक शिलापर लोक जीवनका सरस चित्रफलक है। एक पुरुष दीपक हाथमें लिये खड़ा है, मध्यमें किसी स्त्रीका हाथ (पंजा) बना है। उसका पैर स्त्रीकी जंघापर रखा है। स्त्री उसका पादमर्दन कर रही है। अधोभागमें एक घोड़ेपर धनुष चढ़ाये हुए एक पुरुष और स्त्री बैठे हुए हैं। घोड़ेके सामने तूणीर-सज्जित, धनुष-बाण धारण किये हुए और कवच पहने हुए पुरुष मार्ग रोके खड़ा है। यह शिलांकन 'सत-भगिनी' का कहलाता है। लगता है यह सती-चौरा है। इस प्रकारके शिलांकन इस प्रान्तमें कई स्थानोंपर देखनेमें आये। पठारी (विदिशा) में ऐसे अनेक सती-चौरा हैं। राजस्थान उत्तरप्रदेश आदि प्रान्तोंमें स्त्रियाँ दीवारोंपर गोबरसे ऐसे सती-चौरा बनाकर पूजती हैं।

'कोनी' का सम्पूर्ण पुरातत्त्व ११वीं-१२वीं शताब्दीका प्रतीत होता है। सहस्रकूट चैत्यालय और नन्दीश्वर जिनालय भी इनके समकालीन अथवा कुछ उत्तरकालीन लगते हैं। यह सन्तोषकी बात है कि यहाँके मन्दिर अपने मूल रूपमें, समयके थपेड़ों और झंझावातोंके बावजूद अब भी सुरक्षित हैं। वे जीर्ण-शीर्ण हो गये हैं तथापि इस रूपमें भी तत्कालीन इतिहास और कलाको अपनेमें सँजोये हुए, प्राणीमात्रको जीवनोद्धारके लिए आह्वान करते हुए, प्रकाश स्तम्भकी भाँति खड़े हैं। अब उनका जीर्णोद्धार किया जा रहा है, जो अत्यन्त आवश्यक है जिससे अब उनके उस मौलिक स्वरूपकी सुरक्षा सम्भव प्रतीत होने लगी है।

वार्षिक मेला

यहाँ जनवरीमें प्रति वर्ष वार्षिक मेला होता है।

प्रबन्ध समिति

क्षेत्रकी व्यवस्थाके लिए एक प्रबन्ध समिति सन् १९४३ से 'श्री दिगम्बर जैन-अतिशय क्षेत्र कोनीजी जीर्णोद्धार समिति'के नामसे पाटनमें है जो मध्यप्रदेश सार्वजनिक न्यास अधिनियमके अन्तर्गत पंजीयत है। इसका निर्वाचन वार्षिक मेलाके अवसरपर होता है।

पनागर

मार्ग और अवस्थिति

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पनागर मध्यप्रदेशके जबलपुर जिलेमें जबलपुरसे उत्तरकी ओर १६ कि. मी. दूर अवस्थित है। यह सागर-जबलपुरके मध्यमें मध्य रेलवेके देवरी नामक स्टेशनसे एक मील दूर है तथा कटनी-जबलपुर रोडके किनारे है। यहाँ पोस्ट ऑफिस, थाना, हाई-स्कूल आदि हैं। यह अच्छा कसबा है। प्रति शनिवारको यहाँ हाट लगती है।

अतिशय क्षेत्र

यह कई शताब्दियोंसे अतिशय क्षेत्रके रूपमें माना जा रहा है। पहले यहाँ भट्टारकोंकी गद्दी भी थी। कहते हैं, रात्रिमें एक भट्टारकजीको स्वप्न दिखाई दिया। स्वप्नमें उन्होंने जमीनमें दबी हुई एक प्रतिमा देखी। प्रातःकाल होते ही उन्होंने अपने स्वप्नकी चर्चा श्रावकोंसे की। तब सब जैन बन्धु भट्टारकजीके साथ गाजे-बाजे और अष्ट द्रव्य लेकर कछियानेकी बाड़ीमें (स्वप्नमें

निर्दिष्ट स्थान) पहुँचे। वहाँ सबने मिलकर भूमिकी खुदाई की। कुछ समय बाद एक मूर्ति दिखाई पड़ी। उसे सबने मिलकर बाहर निकाला। मूर्तिको देखकर सबके मन हर्ष और भक्तिसे भर उठे। मूर्तिको वहीं विराजमान करके सबने भक्तिभावसे पूजन किया। तत्पश्चात् मूर्तिको वहाँसे उठाकर ले गये और रेलवे लाइनके किनारे पंचायती मन्दिरमें विराजमान कर दिया।

यह सातिशय मूर्ति भगवान् शान्तिनाथकी कही जाती है। यह सिलेटी वर्णकी खड्गासन मूर्ति ८ फुट ३ इंच ऊँची और ३ फुट १० इंच चौड़ी है और देशी पाषाणसे निर्मित है। इस मूर्ति-पर कोई लेख या चिह्न नहीं है। इस मूर्तिके अतिशयोंके सम्बन्धमें जनतामें अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं।

क्षेत्र-दर्शन

जबलपुर-कटनी मार्गपर स्थित इस नगरमें कई स्थानोंपर मन्दिर हैं। महल्ला बजरियामें ४ मन्दिर हैं, महल्ला बाजारमें २ मन्दिर हैं तथा रेलवे लाइनके किनारे एक अहातेमें ८ मन्दिर हैं और ३ मन्दिर अहातेके बाहर हैं। रेलवे लाइनके किनारेके मन्दिर-समूहमें कुल १२ वेदियाँ बनी हुई हैं और ११ शिखर हैं। पंचायती मन्दिर ही अतिशय क्षेत्र कहलाता है।

पंचायती मन्दिरमें भगवान् पार्श्वनाथकी एक श्वेतवर्ण प्रतिमा पद्मासन मुद्रामें अवस्थित है। यह ४ फुट ८ इंच ऊँची और ३ फुट ३ इंच चौड़ी है। यह संवत् १८५८ की है। कानसे छाती तक मूर्तिपर धारियाँ हैं। ये धारियाँ पाषाणकी हैं और पालिशसे भी ये दब नहीं पायी हैं। मूर्ति आकर्षक और भव्य है।

इस क्षेत्रकी मुख्य मूर्ति भगवान् ऋषभदेवकी है। यह कायोत्सर्गासन मुद्रामें ध्यानावस्थित है। इसकी ऊँचाई ८ फुट ३ इंच तथा चौड़ाई ३ फुट १० इंच है। यह सलेटी वर्णके देशी पाषाणसे निर्मित है। चरणोंके नीचेका भाग पृथ्वीमें दबा हुआ है। अतः इसका लांछन दिखाई नहीं पड़ता। परम्परागत अनुश्रुतिके आधारपर इसे शान्तिनाथ भगवान्‌की मूर्ति माना जाता है। किन्तु मूर्तिकी बढ़ी हुई जटाओं और स्कन्धोंपर पड़ी हुई तीन लटोंसे यह मूर्ति ऋषभदेव तीर्थंकरकी प्रतीत होती है। चरण-चौकी भूमिके नीचे दबी होनेके कारण लांछनके समान लेख भी अपठित ही बना हुआ है। जबतक शान्तिनाथ भगवान्‌का लांछन हरिण स्पष्ट दिखाई न दे जाये अथवा जटाओंके रहने-पर भी अन्य कोई स्पष्ट प्रमाण प्राप्त न हो जाये, तबतक इस मूर्तिको ऋषभदेव भगवान्‌की मूर्ति मानना ही संगत होगा।

मूर्ति यद्यपि अखण्डित है किन्तु सिरके पास शिलाका भाग कुछ खण्डित है। गन्धर्व, चमरेन्द्र और छत्र नहीं हैं। परिकरमें केवल व्याल ही कहे जा सकते हैं जो मूर्तिके दोनों ओर बने हुए हैं। भामण्डल आधुनिक लगा हुआ है। मूर्तिकी कलापर मध्यकालकी कलचुरि-कलाका प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, अतः हम यह मूर्ति ११वीं-१२वीं शताब्दीकी मान सकते हैं।

एक वेदीमें नन्दीश्वर जिनालयकी मनोज्ञ रचना है। ऊँचाई २ फुट १ इंच है। मूर्ति कृष्ण पाषाणकी है। इसी वेदीपर संवत् १५४८ की पार्श्वनाथकी और संवत् १८३८ की शान्तिनाथकी मूर्तियाँ विराजमान हैं। यहीं कृष्ण पाषाणकी तीन प्राचीन मूर्तियाँ एक शिलाफलकमें बनी हुई हैं। ये किसी मूर्तिका ऊपरी भाग मालूम पड़ती हैं।

बरामदेमें एक प्राचीन मूर्ति १ फुट ४ इंच अवगाहनाकी और १ फुट १० इंच चौड़ी रखी हुई है। यह श्यामवर्ण है। इसके परिकरमें भामण्डल, छत्र, गज, नभसे पुष्पवर्षा करते हुए विद्या-धर, चमरेन्द्र आदिका अंकन मिलता है तथा मूर्तिके दोनों पार्श्वोंमें खड्गासन तीर्थंकर-मूर्तियाँ हैं।

भट्टारक-पीठ

इस नगरके हरिसिंह सिंघईके मन्दिरमें तथा नन्दीश्वरद्वीप जिनालयमें कई मूर्तियोंपर भट्टारक देवेन्द्रभूषण और भट्टारक नरेन्द्रभूषणके नाम मिलते हैं। इन मूर्ति-लेखोंमें इन भट्टारकोंका काल क्रमशः संवत् १८९३ और १८७५ मिलता है।

जैन क्षेत्रके निकट 'बलेहा' तालाबके किनारे छह या आठ स्तम्भोंपर आधारित तीन मण्डप बने हुए हैं। इन मण्डपोंमें चरण-चिह्न विराजमान हैं। ये चरणचिह्न भट्टारकोंके बताये जाते हैं।

क्षेत्रके बड़े मन्दिरमें अब भी 'जती बाबा' (भट्टारक) की गद्दी बनी हुई है।

उपर्युक्त कारणोंसे प्रतीत होता है कि यहाँ भट्टारक-पीठ था। मूर्ति-लेखोंमें जिन भट्टारकोंका नामोल्लेख हुआ है अर्थात् जिनके उपदेशसे अथवा जिनके द्वारा यहाँ मूर्ति-प्रतिष्ठा हुई, उनके गण-गच्छ आदिका उल्लेख इस भाँति हुआ है—"श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये", अर्थात् यहाँके भट्टारक मूलसंघ, बलात्कारगण, सरस्वतीगच्छ और कुन्दकुन्दाचार्यान्वयसे सम्बन्धित थे। मूर्तिलेखोंमें यहाँकी पट्टावली इस भाँति दी गयी है—श्री मुनीन्द्रभूषणदेवास्तत्पट्टे जिनेन्द्रभूषणदेवास्तत्पट्टे देवेन्द्रभूषणदेवास्तत्पट्टे नरेन्द्रभूषणदेवाः। इस पट्टावलीसे ज्ञात होता है कि पनागर क्षेत्रके भट्टारक बलात्कारगणकी सोनागिरि-शाखाके थे। भट्टारक मुनीन्द्रभूषण, जो विक्रम संवत्की उन्नीसवीं शताब्दीके मध्यमें हुए, की परम्परामें सोनागिरिके पट्टपर क्रमशः जिनेन्द्रभूषण, देवेन्द्रभूषण, नरेन्द्रभूषण, सुरेन्द्रभूषण, चन्द्रभूषण आदि भट्टारक हुए। ये भट्टारक यद्यपि सोनागिरि-पीठके थे, किन्तु इनके कुछ उपपीठ भी थे और उन स्थानोंपर ये लोग कुछ कालके लिए जाते रहते थे। पनागर भी इन भट्टारकोंका उपपीठ अथवा अस्थायी पीठ था। सोनागिरिके भट्टारक यहाँ समय-समयपर आया करते थे और मन्दिर-निर्माण, मूर्ति-प्रतिष्ठा आदि धर्मप्रभावनाके कार्य किया करते थे। पनागरका पंचायती मन्दिर समाजके सहयोगसे किन्हीं भट्टारकका बनवाया हुआ है, ऐसा कहा जाता है।

यहाँ भट्टारक-पीठ कितने समय तक स्थापित रहा, इस बातका कोई निश्चित साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता। किन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि बलात्कारगणकी सोनागिरि-शाखाके भट्टारकोंका ही यहाँके साथ सम्बन्ध रहा है। अतः यहाँका भट्टारक-पीठ ईसवी सन्‌की १८वीं शताब्दीके अन्तिम भाग अथवा १९वीं शताब्दीके प्रारम्भमें स्थापित हुआ और २०वीं शताब्दीके कुछ दशकों तक कार्यरत रहा।

पुरातत्त्व

पनागर किसी कालमें बहुत वैभवसम्पन्न नगर था। इसके आसपासमें प्राचीन कलचुरि-शिल्पके सुन्दर जैन मन्दिरों और मूर्तियोंके अवशेष पर्याप्त मात्रामें उपलब्ध होते हैं। जैन क्षेत्रके समीप कुछ जैन शिल्पावशेष एक बाड़ेमें विद्यमान हैं। इन अवशेषोंमें खण्डित तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं, शासन-देवियोंकी मूर्तियाँ हैं तथा अलंकृत स्तम्भ हैं। आदिनाथकी एक सिरविहीन मूर्ति है। इसकी ग्रीवाकी तीन आवलियों एवं स्कन्धोंपर केशावलीका अंकन अत्यन्त सधे हुए हाथोंसे हुआ है। अधोभागमें दोनों कोनोंपर गोमुख यक्ष और चक्रेश्वरी यक्षीका अंकन किया गया है। चरण-चौकीके मध्यमें वृषभ लांछन अंकित है।

यहाँ कई मूर्तियोंके केवल शिरोभाग, कई मूर्तियोंके केवल धड़ और कुछ मूर्तियोंके आसनमात्र ही मिलते हैं।

शासन-देवियोंमें अम्बिकाकी दो मूर्तियाँ मिलती हैं। एकमें देवी अलंकारोंसे सज्जित है। वह बायें हाथसे एक बालकको पकड़े हुए है। दूसरी ओर दो खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। एक दूसरी प्रतिमामें एक खण्डित मुखवाला सिंह है। एक देवी-मूर्ति है जिसके गलेमें रत्नहार है। सिरके पीछे भामण्डल है। गोदमें बालक है। देवीके शीर्ष भागपर तीर्थंकर-प्रतिमा बनी हुई है। परिकरमें आकाश-विहारी देव-देवियाँ हैं।

थानेके पास 'खेरदय्या' का स्थान है। ढाई फुट ऊँचे एक शिलाफलकमें देवी बनी हुई है। उसके पृष्ठभागमें आम्रवृक्षका सुन्दर अंकन किया गया है। देवीके सिरके ऊपर आम्रवृक्षमें गुच्छक लटक रहे हैं। देवी ललितासनमें बैठी हुई है। उसकी गोदमें एक बालक है। मूर्तिके शीर्ष भागपर भगवान् नेमिनाथकी प्रतिमा विराजमान है। उसके दोनों पार्श्वोंमें पार्श्वनाथ और चन्द्रप्रभकी खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। यह देवी-मूर्ति निश्चय ही अम्बिकाकी है। इसे ही हिन्दू लोग 'खेरदय्या' या 'खेरमाई'के नामसे पूजते हैं।

इस प्रकार यहाँ और भी जैन पुरातत्त्व पर्याप्त परिमाणमें मिल सकता है। ज्ञात होता है कि १२वीं-१३वीं शताब्दीमें यह स्थान जैन संस्कृतिका केन्द्र था। सम्भवतः यहाँ उपलब्ध होनेवाला पुरातत्त्व इसी कालका है।

धर्मशालाएँ

यहाँ दो धर्मशालाएँ हैं। बिजली और नल आदिकी सुविधा है। बड़ा नगर होनेसे सभी वस्तुएँ सुविधापूर्वक मिल जाती हैं।

वार्षिक मेला

यहाँपर शरत्पूर्णिमा अर्थात् असोज शुक्ला पूर्णिमाको वार्षिक मेला होता है। उस दिन बड़ी मूर्तिका मस्तकाभिषेक होता है।

व्यवस्था

यहाँकी पंचायत प्रति तीसरे वर्ष दिगम्बर जैन प्रबन्धकारिणी सभाका चुनाव करती है। वही इन मन्दिरों और स्थानीय संस्थाओंकी समस्त व्यवस्था करती है।

बहोरीबन्द

स्थिति

अतिशय क्षेत्र बहोरीबन्द मध्यप्रदेशके जबलपुर जिलान्तर्गत सिहोरा तहसीलमें स्थित है। इसका पोस्ट आफिस बहोरीबन्द तहसील सिहोरा है। यह सेण्ट्रल रेलवेके सिहोरा रोड स्टेशनसे २४ किलो मीटर है तथा सिहोरा रोडपर है। जबलपुरसे यह ६४ कि. मी. दूर है।

यह कैमूर पहाड़ीपर स्थित है। कैमूर पहाड़ी पूर्वकी ओर मैदानसे ५२ फुटके लगभग ऊँची है। कहीं-कहीं यह कुछ ऊँची और भी है। इसके चरणोंको सुहार नदी पखारती है। बहोरीबन्दका नामकरण सम्भवतः बहुत-से बाँधोंके कारण पड़ा है। इस पहाड़ीके चारों ओर ४५ बाँध या जलाशय हैं, जिनमें वर्षाका पानी एकत्र हो जाता है। इनमें-से कुछ जलाशय तो झील बन गये हैं।

जनश्रुतिके अनुसार किसी जमानेमें यहाँ एक बड़ा नगर बसा हुआ था। इसकी पुष्टि इस बातसे भी होती है कि यहाँ पहाड़ोंपर प्राचीन कालकी टूटी ईंटें और मिट्टीके टूटे बरतन चारों ओर बिखरे हुए हैं। प्रसिद्ध ग्रीक इतिहासकार टौलमी (पटौलमी) ने सम्भवतः इसी स्थानको थोलवन लिखा है। इस ग्रीक उच्चारणको इंगलिशमें बोलवन कहा जा सकता है जो कि बहुलवनके अतिनिकट है। बहोरीबन्द ही बहुलवन हो सकता है।

टौलमीने लिखा है कि यह परिहार नरेशोंके आधिपत्यमें था।

पुरातत्त्व

यह स्थान मध्यकालमें एक प्रसिद्ध सांस्कृतिक केन्द्र था, ऐसा प्रतीत होता है। यह तथा इसके आसपासका सम्पूर्ण क्षेत्र सांस्कृतिक और धार्मिक केन्द्र था। इस क्षेत्रमें भारतकी तीनों संस्कृतियाँ—जैन, ब्राह्मण और बौद्ध उन्नतिकी सद्भावपूर्ण स्पर्द्धामें रत थीं। इस प्रदेशमें जो पुरातत्त्व सामग्री उपलब्ध हुई है, वह सम्राट् अशोकके कालसे लेकर कलचुरि राजाओं तथा उसके बादके भी काल तककी है। बहोरीबन्दसे उत्तरकी ओर दो मील दूर तिगवाँ नामक गाँव है। यहाँ अनेक देवालयोंके अवशेष बिखरे हुए हैं। केवल एक मन्दिर बचा हुआ खड़ा है। इसमें केवल गर्भगृह है और चार स्तम्भोंपर आधारित है। इसके आगे अर्धमण्डप है। इसकी शैली उदयगिरि और ऐरनके गुप्तकालीन देवालयोंसे मिलती-जुलती है। यहाँ ३६ मन्दिरोंकी नींव तो अब भी देखी जा सकती है। कहते हैं, रेलवेका कोई ठेकेदार इन मन्दिरके ईंट-पत्थर तक उखाड़कर ले गया। इस इलाकेमें रेलवेके ठेकेदारोंने ईंट-पत्थरोंके लोभमें कई प्राचीन भव्य मन्दिरोंको तुड़वा दिया।

तिगवाँका अर्थ तीन गाँवोंका समूह है। इस समूहमें इस गाँवके अतिरिक्त अंगोवा और देवरी थे। ये तीनों गाँव बहोरीबन्दके उपनगर थे, ऐसा कहा जाता है।

उस गाँवसे तीन मील दूर कैमूर पहाड़ोंकी शृंखलामें रूपनाथ है। यहाँ पहाड़पर सम्राट् अशोकका शिलालेख है तथा पहाड़पर-से तीन जलधाराएँ गिरती हैं और उनके कारण तीन कुण्ड बन गये हैं। इनके नाम रामकुण्ड, लक्ष्मणकुण्ड और सीताकुण्ड हैं। महादेवका भी प्रसिद्ध मन्दिर है। किन्तु इस स्थानको ख्याति मिली है मौर्य सम्राट् अशोकके अभिलिखित शासनादेशके शिलालेखके कारण।

इसके निकट ककरहटा ग्राममें प्राङ्मौर्यकालीन सभ्यताके अवशेष प्राप्त हुए हैं। पुरातन सभ्यताके केन्द्रोंकी इस कड़ीमें बहोरीबन्द भी है जो जैन धर्म और जैन संस्कृतिका केन्द्र था। यहींपर भगवान् शान्तिनाथकी एक हजार वर्ष प्राचीन प्रतिमा है। यह १३ फुट ९ इंच ऊँची और ३ फुट १० इंच चौड़ी है। लगभग ३ फुट ८ इंच ऊँचे सिंहासनपर यह विराजमान है। इसकी चरण-चौकीपर सात पंक्तियोंका एक महत्त्वपूर्ण लेख है। वह काफी घिस गया है। यह इस प्रकार पढ़ा जा सकता है—

"स्वस्ति संवत् १० फाल्गुन बदि ९ भौमे श्रीमद् गयकर्णदेव विजयराज्ये राष्ट्रकूटकुलोद्भव-महासामन्ताधिपति-श्रीमद्गोल्हणदेवस्य प्रवर्धमानस्य श्रीमद्गोल्लापूर्वाम्नाये वेल्लप्रभाटिकायामुरु-कृताम्नाये तर्कतार्किकचूडामणिः श्रीमन्माधवनन्दिनानुगृहीतः साधुः श्रीसर्वधरः तस्य पुत्रः धर्म-दानाध्ययने रतः महाभोजः। तेनेदं कारितं रम्यं शान्तिनाथस्य मन्दिरम्।

स्वलात्यमसंज्ञक सूत्रधारः श्रेष्ठिनामा तेन वितानं च महाश्वेतं निर्मितमतिसुन्दरं श्रीचन्द्र-कराचार्याम्नाये समस्तविद्याविनयानन्दितविद्वज्जनाः प्रतिष्ठाचार्याः श्रीमन्तः सुभद्राः चिरं जयन्तु।"

इस मूर्ति-लेखके अनुसार यहाँ गयकर्णदेवके राज्यमें उसके महासामन्त राष्ट्रकूटवंशी गोल्हण देवका शासन था। यह गयकर्णदेव कलचुरिवंशका नरेश था। इस राजाके सम्बन्धमें कई स्थानोंपर शिलालेख उपलब्ध हुए हैं। भेड़ाघाट शिलालेख इसी राजाके शासनकाल संवत् ९०९ का है। गयकर्णके त्रिपुरी शिलालेखमें संवत् ९०२ दिया गया है। बहोरीबन्दके मूर्तिलेख और उक्त शिलालेखोंके कालमें लगभग १०० वर्षका अन्तर पड़ता है। इससे कई विद्वानोंको भ्रान्ति होना स्वाभाविक है।

कलचुरि राजवंशका इतिहास देखनेसे ज्ञात होता है कि जबलपुरके निकटवर्ती भूभागमें दहलके कलचुरियोंने कोकल्ल द्वितीयके पुत्र गांगेयदेवके शासनकालमें अपनी प्रतिष्ठा और शक्ति काफी बढ़ा ली थी। उसने परमार भोज और राजेन्द्र चोलसे सन्धि कर ली, कोसल नरेश (महा-शिवगुप्त ययाति) को परास्त किया, उत्कलको रौंदता हुआ समुद्र-तट तक आ पहुँचा। बनारस-को पालवंशी महीपाल प्रथमसे छीनकर अपने राज्यमें मिला लिया। उसने अंग, मगध और त्रिमुक्तिपर भी आक्रमण किया। किन्तु सफल नहीं हो सका। उसने विक्रमादित्य और त्रिकलिंगा-धिपति-जैसे विरुद धारण किये।

इस राजाके सोने, चाँदी और ताँबेके अनेक सिक्के प्राप्त हुए हैं। इसकी मृत्यु अनुमानतः सन् १०३४ या उसके आसपास हुई। इसके पश्चात् इसका पुत्र कर्ण गद्दीपर बैठा। उसका रीवाँ शिलालेख सन् १०४८ का है। सन् १०७३ में उसका पुत्र यशःकर्ण शासनारूढ़ हुआ। बारहवीं शताब्दीके प्रथम चरणमें गयकर्णको अपने पिताका राज्य उत्तराधिकारमें मिला। कहते हैं, एक अभियानके समय यह नरेश हाथीपर सो रहा था। उसका रत्नहार वृक्षकी एक शाखामें अटक गया। हाथी चल रहा था। हारके कारण गला घुट जानेसे इसकी मृत्यु हो गयी। यह दहल नरेश सन् ११५१ में राज्य-शासन कर रहा था, इस प्रकारके प्रमाण उपलब्ध होते हैं।

भेड़ाघाट शिलालेखमें नीलकण्ठ महादेव, गजमुख गणेश और सरस्वतीकी वन्दना करनेके पश्चात् चन्द्रवंशी अर्जुनकी प्रशंसा करके उसी वंशमें हुए अपने पूर्वजोंकी वंशावली इस प्रकार दी गयी है—कोकल्लदेव, गगियदेव, कर्ण, यशःकर्ण। गयकर्णदेवकी रानीका नाम अल्हनदेवी था। वह मेवाड़ नरेश विजयसिंहकी पुत्री और मालवनरेश उदयादित्यकी दौहित्री थी। उसकी माताका नाम श्यामलादेवी था। इस प्रकार उसका रक्त सम्बन्ध मेवाड़के गुहिल और मालवाके परमारोंसे था। उसने भेड़ाघाटमें वैद्यनाथ इन्दुमौलि (महादेव) का एक भव्य मन्दिर संवत् ९०७ में निर्मित कराया था। उससे नरसिंह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। दूसरे पुत्रका नाम जयसिंह था। मन्दिरके साथ उसने स्वाध्याय-शाला और उद्यान-समूहका भी निर्माण कराया।

इस शिलालेखसे ज्ञात होता है कि यह लेख संवत् ९०७ में उत्कीर्ण किया गया। उस समय महाराज नरसिंहका राज्य था।

भरहुत शिलालेख संवत् ९०९ श्रावण सुदी ५ बुधवारका है और यह श्री नरसिंहके पौत्र बल्लालदेवके शासनकालका है। ७ पंक्तियोंके इस शिलालेखका मूलपाठ इस प्रकार है—

"स्वस्ति श्री परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वर - श्री वामदेवपादानुध्यातपरमभट्टारक-महामहाराजाधिराजपरमेश्वर परमहेश्वर-त्रिकलिंगाधिपति निजभुजोपार्जित अश्वपति गजपति नरपति राजत्रियाधिपति श्रीमान् नरसिंहदेवचरणाः बाघवा ग्रामकस्य महाराजपुत्र श्रीकेशवादित्य पुत्र बल्लालदेवकस्याह्वयः संवत् ९०९ श्रावक सुदी ५ बुधे।"

इस शिलालेखके अनुसार संवत् ९०९ में नरसिंहदेवका शासन चल रहा था। नरसिंहदेवके शासनकालसे पूर्वका एक शिलालेख संवत् ९०२ का त्रिपुरी (तेवर) से प्राप्त हुआ है। यह उस समयका है, जब गयकर्णदेवका शासन चल रहा था और नरसिंहदेव उसका युवराज था। यह शिलालेख १४३/४ इंच लम्बा १२ इंच चौड़ा है। यह ज्येष्ठ सुदी १ बुधवार संवत् ९०२ का है।

उपर्युक्त शिलालेखोंसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि संवत् ९०२ में गयकर्णदेव शासन कर रहा था और संवत् ९०७ में उसके पुत्र नरसिंहका शासन चल रहा था। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संवत् ९०२ और ९०७ के मध्यवर्ती कालमें गयकर्णकी मृत्यु हुई और नरसिंहदेव शासनारूढ़ हुआ।

अब एकमात्र यह निर्णय करना शेष रह सकता है कि यहाँ किस संवत्से अभिप्राय है। यह निश्चित होनेपर इन राजाओंका राज्यकाल और बहोरीबन्दकी मूर्तिका प्रतिष्ठा-काल निश्चित करनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी।

गयकर्णकी रानीका नाम अल्हनदेवी था। वह मालवाके उदयादित्यकी पौत्री थी। उदयादित्यका शासन-काल अनुमानतः सन् १०५० से ११२० माना जाता है। यह रानी मालवनरेश लक्ष्मीधरकी भतीजी थी। लक्ष्मीधरने सन् ११०४ में त्रिपुरीपर विजय प्राप्त की। नरसिंहदेव चन्देल-नरेश मदनवर्माका समकालीन था। मदनवर्माका इतिहाससम्मत शासन-काल सन् ११२९ से ११६३ तक माना जाता है। इन समकालीन नरेशोंके शासन-कालके साथ कलचुरि नरेशोंके शिलालेखोंमें उल्लिखित कालकी संगति बैठ सकती है, बशर्ते इन कलचुरि नरेशोंके शिलालेखों या ताम्रलेखोंके संवतों पर समुचित ध्यान दें। इन नरेशोंके ये लेख संवत् ७९३, ८९६, ८९८, ९०२, ९०७, ९०९, ९२८ के हैं और वाराणसी, जबलपुर, तेवर, भेड़ाघाट, कुम्भी, भरहुत आदि स्थानोंपर प्राप्त हुए हैं। राजिमसे प्राप्त एक शिलालेखमें इस संवत्की समस्याका समुचित समाधान प्राप्त होता है। वह लेख इस प्रकार है—

"कलचुरि संवत्सरे ८९६ माघ-मासे शुक्ल-पक्षे रथाष्टम्यां बुधदिने।" इस लेखमें संवत्सरका नाम कलचुरि संवत्सर दिया है। किसी-किसी शिलालेखमें इसको चेदि संवत्सर या चेदि संवत् भी कहा है। चेदि संवत्का प्रारम्भ इतिहासकारोंने ई. सन् २४९ में माना है। गयकर्णदेवके शासन-कालका चेदि संवत् ९०२ का जो शिलालेख उपलब्ध हुआ है, वह उसके शासन-कालके लगभग अन्तिम वर्षका या अन्तिम वर्षसे २-३ वर्ष पूर्वका है क्योंकि चेदि संवत् ९०७ का लेख गयकर्णके पुत्र नरसिंहका प्राप्त हुआ है। अतः गयकर्णका राज्य अनुमानतः ई. सं ११९५ से ११५२ तक माना जा सकता है।

इस परिप्रेक्ष्यमें बहोरीबन्दके शान्तिनाथके मूर्तिलेखपर विचार किया जाये तो ज्ञात होगा कि इसमें जो संवत् दिया गया है वह चेदि संवत् नहीं है, अपितु शक संवत् है। इस मूर्तिलेखका वास्तविक संवत् कितना है, यह अभी तक अनिर्णीत है। प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता और इतिहासकार कनिंघम, भण्डारकर, मिराशी आदि विद्वान् भी इस संख्याको सही नहीं पढ़ सके और न इसका निर्णय ही कर सके। उन्होंने इसे अपठनीय कहकर छोड़ दिया। किन्तु हमारा अनुमान है कि इस मूर्तिलेखमें जो शक संवत् दिया है, वह १०७० है। लेख घिस जानेके कारण यह अस्पष्ट हो गया है। कुछ विद्वान् इसे विक्रम सं. १०१० मानते हैं। किन्तु उपलब्ध शिलालेखोंसे इसकी संगति नहीं बैठती है। गयकर्णका अन्तिम शिलालेख चेदि सं. ९०२ (ई. सं. ११५१) का उपलब्ध हुआ है और उसके पुत्र नरसिंहके नामका उल्लेख एक शिलालेखमें चेदि सं. ९०७ (११५६ ई. सं.)

का मिला है। अतः गयकर्णका राज्य शासन ई. सन् ११५६ से पूर्व ही समाप्त हो चुका था। इसे हम तीन वर्ष पूर्व स्वीकार कर लें तो गयकर्णकी मृत्यु ई. सन् ११५३ के आसपास हो चुकी थी। जबकि बहोरीबन्दके मूर्तिलेखमें विक्रम संवत् १०१० माननेपर तो ई. सन् ९५३ में इस मूर्तिकी प्रतिष्ठा माननी पड़ेगी। उस समय तो गयकर्ण उत्पन्न भी नहीं हुआ था। अतः मूर्तिलेखों, ताम्रलेखों और समकालीन राजाओंके कालका सामंजस्य करते हुए इस मूर्तिलेखका काल शक संवत् १०७० उपयुक्त लगता है।

क्षेत्र-दर्शन

गाँवमें पुलिस स्टेशनसे आगे बाजारमें एक अहातेके अन्दर मन्दिर और धर्मशाला हैं। मन्दिरका निर्माण चालू है। एक महामण्डप बना है जो ४० × ३० फुट है और इसकी ऊँचाई २० फुट है। इसके मध्यमें भगवान् शान्तिनाथकी मूर्ति विराजमान है। उसके आसनकी कुरसी बनायी जा रही है। मूर्ति अस्थायी रूपसे खड़ी कर दी गयी है। मूर्तिका वर्ण सलेटी है। इसकी अवगाहना १३ फुट ९ इंच है तथा आसनसहित यह १५ फुट ६ इंच ऊँची है। न जाने कितने वर्षों या शताब्दियों-से यह प्रतिमा खुलेमें मिट्टीमें पड़ी हुई थी। अतः इसकी पालिश उतर गयी है। इससे मुख ही नहीं, शरीरका लावण्य और स्निग्धता जाती रही है। यदि इसके ऊपर पुनः पालिश हो जाये तो इसका सौन्दर्य सहस्र गुना बढ़ जाये।

इस मूर्तिके परिकरमें छत्र और गजवाला भाग टूट गया है। वह अलग रखा हुआ है। शीर्षके दोनों पार्श्वोंमें देवियाँ पारिजात पुष्पोंकी माला लिये हुए गगनमें विहार कर रही हैं। चरणोंके पास सौधर्म और ऐशान इन्द्र हाथमें चमर लिये हुए भगवान्‌की सेवामें खड़े हैं। चरणोंके निकट दोनों ओर कर-बद्ध मुद्रामें भक्त बैठे हैं। चरण-चौकीपर शान्तिनाथका लांछन हरिण अंकित है।

भूमिके उत्खननके फलस्वरूप कुछ मूर्तियाँ निकली थीं। उनमें-से कुछ मन्दिरमें और कुछ बाहर रखी हुई हैं। इन मूर्तियोंकी कुल संख्या १६ है। ये सभी सलेटी वर्णकी हैं। सभी मूर्तियाँ तीर्थंकरोंकी हैं। केवल एक मूर्ति अम्बिकाकी है। एक तीर्थंकर-मूर्ति निकटवर्ती कमरेमें रखी हुई है। इसकी अवगाहना ५ फुट ६ इंच है।

धर्मशालाके एक कमरेमें नवीन मूर्तियाँ विराजमान हैं, जिससे यात्रियोंको दर्शन-पूजनकी सुविधा रहे। मूर्तियोंमें मूलनायक हैं भगवान् ऋषभदेव। इनकी प्रतिमा श्वेत वर्ण की है और पद्मासन है। यहाँके समवसरणमें २ पाषाणकी और ११ धातुकी प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

गाँवमें एक मकानके निकट एक तीर्थंकर-मूर्ति पड़ी हुई है। मन्दिरसे लगभग २-३ फर्लांग दूर तालाबके किनारे एक वृक्षके नीचे ७ फुट लम्बे एक शिलाफलकमें नाग-शय्यापर लेटी हुई एक स्त्रीकी मूर्ति उत्कीर्ण है। उसके सिरके ऊपर फण-मण्डप तना हुआ है। देवी उसकी सेवामें रत हैं। प्रतीत होता है, यह मूर्ति पद्मावती देवीकी है। इस तालाबके चारों ओर पक्के घाट बने हुए थे जो आजकल भग्न दशामें अपने प्राचीन वैभवका स्मरण करके आँसू बहा रहे हैं। तालाबके निकट जीर्ण-शीर्ण दशामें कई मन्दिर एवं कमरे खड़े हुए हैं। प्राचीन कालमें सम्भवतः ये जैन मन्दिर थे। इनके निकट प्राचीन कुआँ भी बना हुआ है।

क्षेत्रपर जो मूर्तियाँ भूगर्भसे निकली हैं वे १२वीं-१३वीं शताब्दी कलचुरि-कालीन प्रतीत होती हैं। इन मूर्तियोंसे यह भी अनुमान होता है कि यहाँ तथा इसके आसपासमें एकाधिक जैन मन्दिर रहे होंगे।

अतिशय क्षेत्र

यहाँ और इसके आसपासमें जो जैन पुरातत्त्व बिखरा हुआ है, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह स्थान एक तीर्थक्षेत्रके रूपमें मान्य रहा है। यह तीर्थक्षेत्र रहा है, इसकी एक और भी करुण कहानी है। यहाँ कभी जंगल था, जहाँ आज जैन क्षेत्र है। यहाँ एक विशाल पाषाण-मूर्ति पड़ी हुई थी। ग्रामकी अशिक्षित जनता जादू-टोनेमें अधिक विश्वास करती थी। कभी किसीको इकतरा, तिजोरी या चौथिया (एक प्रकारके बुखार जो सर्दी देकर प्रतिदिन या कुछ दिनके अन्तरालसे आते हैं) आता तो इस मूर्तिके पास बिना किसीके टोके, मुँह अँधेरे जाता और मूर्तिको दो-एक बार जूते मारता, झाड़ू मारता, बस फिर बुखार लौटकर नहीं आता ऐसा था जनताका विश्वास। देहातोंमें आज भी ऐसे विश्वास मौजूद हैं। उक्त बुखारका कोई रोगी अलख सुबह जाकर किसी पीपल या करील या अकौअरके पेड़से लिपटकर मिलता है तो कोई चूल्हे और चक्कीसे। टोटकेके लिए जाते हुए रोगीको राहमें किसीने टोक दिया तो बुखार उस रोगीको छोड़कर टोकनेवालेको धर दबोचेगा। ऐसे हैं देहातके लोगोंके विश्वास।

इस मूर्तिको लोग खनुआदेव कहते आये हैं। खनुआदेव नाम क्यों पड़ा इनका भी इतिहास है। श्री कनिंघमने इस सम्बन्धमें बताया है कि "लोग इस मूर्तिको 'कनुआदेव' कहते हैं। राजा गयकर्ण देवके एक पुत्रका नाम 'कुनुआदेव' था। यहाँ बड़े सरोवरके किनारे बने हुए एक समाधि-स्तम्भपर यह लेख उत्कीर्ण है—'महाराज पुत्र श्री कनुआदेव'। सम्भवतः बहोरीबन्द उसकी जागीर थी। वह यहीं मरा और उसका स्मारक बनाया गया। जब मन्दिर नष्ट हो गया, लोग इस मूर्तिको भी भूल गये, उस समय वहाँके निवासियोंकी यह धारणा बन गयी कि यह मूर्ति वहाँके स्वर्गीय राजपुत्रकी मूर्ति है।"

जब जैन समाजको ज्ञात हुआ कि उनके सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथके साथ ग्रामीण जनता इस प्रकारका अपमानजनक व्यवहार करती है तो उसने प्रयत्न करके भारत सरकार और पुरातत्त्व विभागसे यह मूर्ति अपने अधिकारमें ले ली। मूर्तिको आतपवर्षा आदिसे सुरक्षित रखनेके लिए अब वहाँ मन्दिर बनाया जा रहा है। जैनेतर लोग अब भी इसे 'खनुआदेव' मानते हैं और ग्रामके रक्षक-देवके रूपमें इनकी पूजा करते हैं। किन्तु अब पूजाका वह प्राचीन रूप बदल गया है। अब तो स्त्री-पुरुष आकर भगवान्‌के सामने मनौती मानते हैं और उनकी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। इस प्रकार शान्तिनाथ प्रभुके चमत्कारोंकी कहानी इधरके लोगोंके मुखसे प्रायः सुननेको मिलती हैं। अब धीरे-धीरे यह स्थान सही अर्थोंमें अतिशय-क्षेत्र बन गया है।

धर्मशालाएँ

क्षेत्रपर अभी एक धर्मशाला बनी है, जिसमें छह कमरे हैं। क्षेत्रपर बिजलीकी सुविधा है। जलके लिए कुएँकी व्यवस्था है। क्षेत्रका अभी नवनिर्माण हो रहा है। अतः अधिक सुविधा-सम्पन्न बननेमें क्षेत्रको समय लग सकता है।

व्यवस्था

मेलेके अवसरपर यहाँ एक प्रबन्धकारिणी समितिका निर्वाचन होता है। क्षेत्रकी सम्पूर्ण व्यवस्था उसी समितिके अन्तर्गत है।

वार्षिक मेला

यहाँ प्रतिवर्ष दिसम्बरमें तीन दिनके लिए वार्षिक मेला भी भरता है। इसमें जैन और जैनेतर समाज पर्याप्त संख्यामें आकर सम्मिलित होती है। इस तीर्थ क्षेत्रको प्रकाशमें लानेका सम्पूर्ण श्रेय ब्र. कल्याणदास सिहोरावालोंको है। मन्दिर-निर्माणका कार्य भगवान् महावीरके २५००वें निर्वाण महोत्सव वर्षमें प्रारम्भ होकर पूर्ण होने जा रहा है। क्षेत्रकी व्यवस्थाके लिए श्री जयकुमार एडवोकेट, श्री धरमचन्द, प्रो. सुरेन्द्र रीठीवाला, सिहोराका कार्य सराहनीय है।

मन्दिरके चारों तरफकी जमीन खरीद ली गयी है। अब प्राचीन मूर्ति संग्रहालय, स्वाध्याय-भवन, ब्रह्मचर्याश्रम तथा विशाल धर्मशालाका निर्माण शीघ्र ही प्रारम्भ करनेकी योजना है।

आवागमनके साधन

जबलपुर-कटनीके बीच सिहोरा रोड स्टेशनसे प्रतिदिन ६ बसें जाने-आनेको मिलती हैं। बीना-कटनी लाइनपर सलैया स्टेशन उतरकर बस द्वारा यात्राके साधन उपलब्ध हैं। प्रतिवर्ष हजारों यात्री क्षेत्रपर जाते हैं। सम्पूर्ण ग्रामकी जनसंख्या ३५०० है। ग्राममें थाना, विकासखण्ड, जनपद, राइसमिल, अस्पताल, हाईस्कूल आदि सभी आवश्यक कार्यालय हैं। सिहोरा, बाकल, रीठी, तिवरीकी जैन समाज द्वारा यहाँकी व्यवस्था तथा निर्माण कार्योंकी देखरेख की जाती है। किसी प्रकारका कोई झगड़ा तीर्थ क्षेत्रके विषयमें नहीं है। मन्दिरके द्वार जैन-अजैन सभीके लिए खुले हैं। भविष्यमें इस क्षेत्रकी उन्नति एवं प्रगति सम्भावनीय है।

●

दशार्ण-विदर्भ जनपद

उदयगिरि

उदयपुर

पठारी

ग्यारसपुर
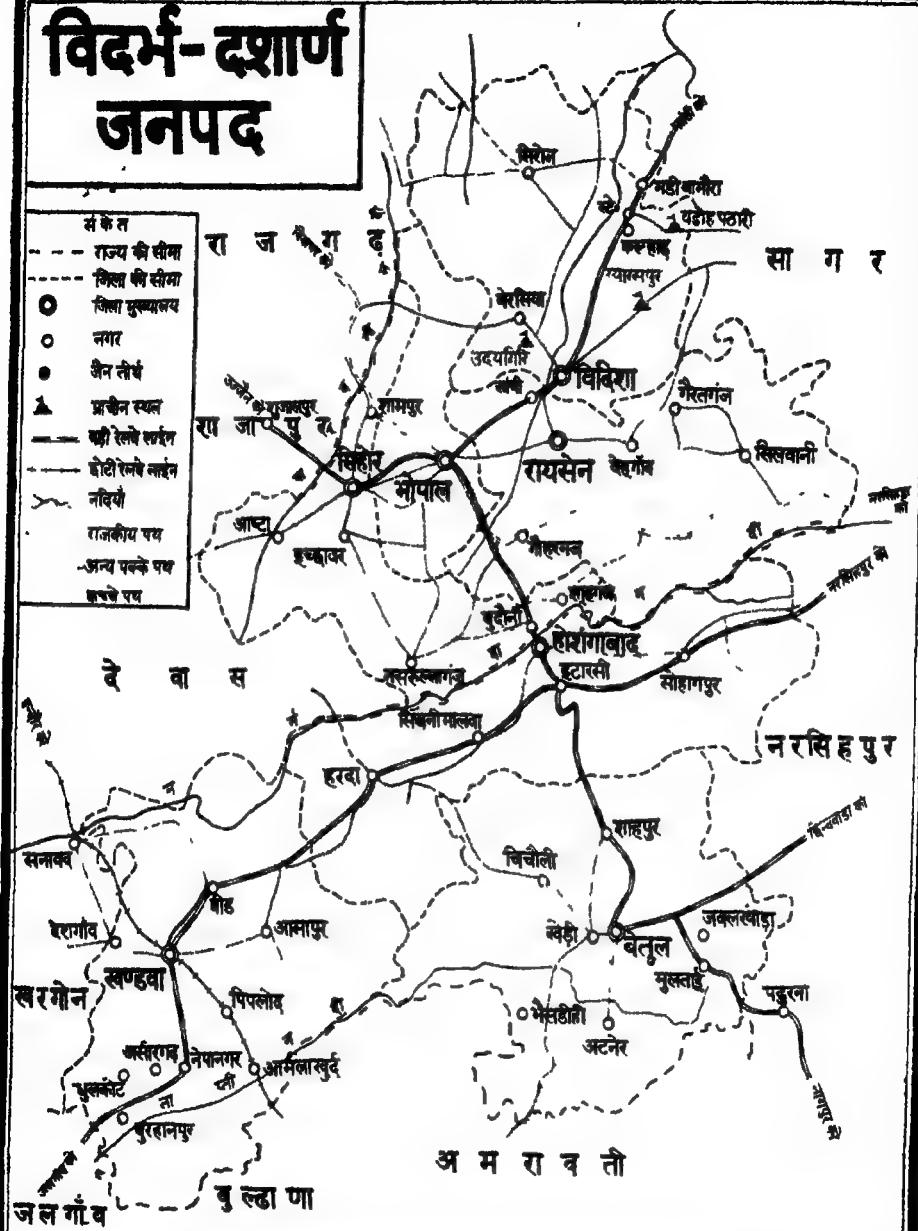
१. भारतके महासर्वेक्षककी अनुज्ञानुसार सर्वेक्षण विभागीय मानचित्रपर आधारित।

२. मानचित्रमें दिये गये नामोंका अक्षर-विन्यास विभिन्न सूत्रोंसे लिया गया है।

उदयगिरि गुहामन्दिर

उदयगिरि पहाड़ी भेलसा (विदिशा) से ६ कि. मी. और साँचीसे ८ कि. मी. है। यह पहाड़ी उत्तर-पश्चिमसे दक्षिण-पूर्वकी ओर डेढ़ मील लम्बी और उत्तर-पूर्वके सिरेपर ३५० फुट ऊँची है। यहाँकी चट्टानें नर्म, बलुआ पाषाणकी और परतदार हैं। यहाँका पत्थर मकान बनानेके काम आता रहा है। पहाड़ीके उत्तर-पूर्वी भागमें पहाड़ काटकर गुफाएँ निर्मित की गयी हैं, जिनकी संख्या २० है। इनमें अधिकांश छोटे आकारकी हैं। प्रत्येक गुफाके बाहर छज्जा बना हुआ है। इनमें-से दो गुफाओंमें चन्द्रगुप्त द्वितीयके अभिलेख विद्यमान हैं तथा तीसरी गुफामें गुप्त संवत् १०६ का एक अभिलेख है। अतः यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि मुख्य गुफाएँ गुप्त-कालकी हैं। इन गुफाओंमें नम्बर १ और २० की गुफाएँ जैनोंसे सम्बन्धित हैं।

नम्बर २० की गुफा अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। यह गुफा पहाड़ीके उत्तर-पश्चिमी सिरेपर अवस्थित है। सीढ़ियोंसे ऊपर चढ़कर गुफाके द्वारपर पहुँचते हैं। यह द्वार पश्चात्कालीन लगता है। फिर ८-१० सीढ़ियाँ उतरकर गुफामें पहुँचते हैं।

इस कक्षमें ४ फुट २ इंच ऊँचे एक शिलाफलकपर भगवान् पार्श्वनाथकी भूरे वर्णकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। यह १०वीं शतीकी है जो अन्यत्रसे लाकर यहाँ विराजमान कर दी गयी है। इसकी नाक और कान खण्डित हैं। मस्तकके ऊपर सप्त फणावली है। उसके ऊपर छत्रत्रयी है। इसके ऊपर दुन्दुभिका और उसके भी शीर्षपर पद्मासन तीर्थंकर-प्रतिमाका अंकन है। इसके दोनों पार्श्वोंमें विभिन्न प्रकारके वाद्य-यन्त्र लिये हुए गन्धर्व-समाज है। इनसे अधोभाग-में दोनों ओर दो-दो पद्मासन जिन-प्रतिमाएँ हैं। यहाँ शार्दूलका भी अंकन मिलता है। उनसे भी नीचे गज और माला लिये हुए देव हैं। उनसे नीचे चमरेन्द्र भगवान्‌की सेवामें सेवकके समान खड़े हुए हैं। चमरेन्द्रोंसे भी नीचेके भागमें यक्ष-यक्षी अंकित हैं। भगवान्‌के वक्षपर श्रीवत्सका सुन्दर अंकन है।

इस कक्षसे आगे बढ़कर दूसरे कक्षमें आते हैं। यह कक्ष सामनेसे खुला हुआ है। अतः इसमें प्रकाश और स्वच्छ वायुका पर्याप्त संचार रहता है। इस कक्षमें घुसते ही दायीं ओरकी दीवारमें दो पद्मासनासीन पार्श्वनाथ भगवान् अंकित दिखाई देते हैं। किन्तु दीवारमें इनका अंकन अस्पष्ट-सा है। दोनोंके दोनों पार्श्वोंमें चमरेन्द्र खड़े हुए हैं। दोनों प्रतिमाओंके मध्यवर्ती पाषाण-स्तम्भपर विद्याधर अपने बायें हाथमें पूजाकी सामग्री लिये हुए दीख पड़ते हैं। दायें हाथमें वे क्या लिये हुए हैं, यह ज्ञात नहीं होता; बहुत अस्पष्ट है।

दूसरे भीतरी कक्षमें बायीं ओर घूमकर सामनेकी दीवारके बायें कोनेमें भगवान् आदिनाथ-की ३ फुट ६ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा उत्कीर्ण है। भगवान्‌के मस्तकके पृष्ठभागमें भामण्डल बना हुआ है। ऊपरका भाग खण्डित है। वक्षपर श्रीवत्सका अंकन है। दोनों पार्श्वोंमें खण्डित चमरवाहक खड़े हुए हैं। उनसे नीचे हाथी कलश लिये हुए दिखाई पड़ते हैं। सिंहासनके सिंहोंके पार्श्वमें यक्ष-यक्षी बने हुए हैं। यक्षी चतुर्भुजी है। वह ललितासनसे बैठी है। दायें (ऊपरके) हाथमें शक्ति, नीचेका हाथ वरद मुद्रामें, बायाँ हाथ (ऊपरका) खण्डित, नीचेके हाथमें बिजौरा

फल है। इसी प्रकार यक्ष भी चतुर्भुज है। उसके दायें ऊपरी हाथमें शक्ति, नीचेके हाथमें फल है। इस मूर्तिके बगलमें दायीं ओर एक आलेमें ३ इंच लम्बे चरण रखे हुए हैं। इसके बराबर चबूतरा है। दूसरी ओर २ फुट ६ इंच चौड़ा पाषाण चत्वर है जो सम्भवतः मुनियोंके विश्रामके प्रयोजनके लिए बनाया गया होगा। ऐसी ही चत्वर-पट्टिका कक्ष १ में भी है।

उत्तरी कमरेकी एक भित्तिपर गुप्त-संवत् १०६ का अभिलेख अंकित है। यह मध्यप्रदेशमें अब तक उपलब्ध जैन अभिलेखोंमें सबसे प्राचीन है। यह अभिलेख ८ पंक्तियोंमें है और इस प्रकार पढ़ा गया है—

१. "नमः सिद्धेभ्यः श्री संयुतानां गुणतोयधीनां गुप्तान्वयानां नृपसत्तमानाम् (।)
२. राज्ये कुलस्याभिविवर्धमाने षड्भिर्युते वर्षशतेऽथ मासे (॥) १. सुकार्तिके बहुल दिनेऽथ पंचमे।
३. गुहामुखे स्फुटविकटोत्कटाभिमां (।) जितद्विषो जिनवर पार्श्वसंज्ञिकां जिनाकृतीं शमदमवान
४. चीकरत् (॥) २. आचार्य भद्रान्वयभूषणस्य शिष्यो ह्यसावार्यकुलोद्गतस्य (।) आचार्य गोश
५. र्म्म मुनेः सुतस्तु पद्मावत (स्या) श्वपतेर्भटस्य (॥) ३. परैरजेयस्य रिपुघ्नमानिनः ससंघ-
६. लस्येत्यभिविश्रुतो भुवि (।) स्वसंज्ञया शंकरनामशब्दितो विधानयुक्तं यतिमा
७. र्गमास्थितः (॥) ४. स उत्तराणां सदृशे कुरूणां उदग्दिशादेशवरे प्रसूतः (।)
८. क्षयाय कर्मारिगणस्य धीमान् यदत्र पुण्यं तदपाससर्ज (॥) ५.

इसका आशय यह है—सिद्धोंको नमस्कार हो। वैभवसम्पन्न, गुणोंके समुद्र, गुप्त-वंशके राजाओंके राज्यमें संवत् १०६ के कार्तिक मासकी कृष्णपंचमीके दिन गुफाके द्वारपर विस्तृत सर्प-फणसे युक्त शत्रुओंको जीतनेवाले जिनश्रेष्ठ पार्श्वनाथकी मूर्ति शमदमयुक्त शंकरने बनवायी जो आचार्य भद्रके अन्वयका भूषण और आर्यकुलोत्पन्न आचार्य गोशर्म मुनिका शिष्य था। दूसरों द्वारा अजेय, शत्रुओंका विनाश करनेवाले अश्वपति संघिल भट और पद्मावतीका पुत्र था। शंकर इस नामसे विख्यात था और यतिमार्गमें स्थित था। वह उत्तरकुरुओंके सदृश उत्तर दिशाके श्रेष्ठ देशमे उत्पन्न हुआ था। उसके इस पावन कार्यमें जो पुण्य हुआ हो, वह सब कर्मरूपी समूहके क्षयके लिए हो।

इस शिलालेखसे ज्ञात होता है कि गुप्त-नरेश कुमारगुप्तके शासन-कालमें शंकर नामक किसी धर्मात्मा व्यक्तिने इस गुफामें भगवान् पार्श्वनाथकी मूर्ति प्रतिष्ठित करायी थी।

इस गुफासे निकलकर आगे जानेपर रेस्ट हाउस मिलता है। पहाड़ीपर मार्ग बना हुआ है जो प्राचीन जैन मन्दिर तक जाता है। यह मन्दिर गुफा नं. २० से लगभग ३ फर्लांग दूर पड़ता है। इस मन्दिरमें गर्भगृह और अर्धमण्डप हैं। गर्भगृहका आकार ६ फुट १० इंच × ५ फुट १० इंच है। इसकी छत एक ही शिलासे निर्मित है। इसके कोर ऐरन तिगोवा और साँचीके समान गढ़े हुए हैं। इसकी पृष्ठभित्तिके सहारे वेदी है। पूर्वकालमें मध्यमें प्रतिमा रही होगी, किन्तु आजकल उसका स्थान रिक्त पड़ा हुआ है। बायीं ओर ४ फुट ६ इंच ऊँचे एक शिलाफलकपर भगवान् सुपार्श्वनाथकी खड्गासन मूर्ति है। इसके मस्तकपर पंच फणावलि है, जिसमें २ फण खण्डित हैं। इसके ऊपर छत्र हैं। इसके दोनों पार्श्वोंमें आकाशमें उड़ते हुए गन्धर्व पुष्पमालाएँ लिये हुए हैं।

से लांछित हैं। इनसे अधोभागमें दो पद्मासन और दो खड्गासन जिन-मूर्तियाँ दोनों ओर हैं। उनसे नीचे द्विभुजी देवी ललितासनमें विराजमान है। देवीका बायाँ हाथ वरद मुद्रामें है। दायें हाथमें सम्भवतः घण्टा है। यह देवी सुपार्श्वनाथकी शासन-सेविका काली (मानवी) प्रतीत होती है। देवीके दोनों ओर देवीके भक्त स्त्री-पुरुष हाथ जोड़कर सिर झुकाकर खड़े हुए हैं।

इसका अर्धमण्डप चार स्तम्भोंपर आधारित है। ये स्तम्भ ऐरन और तिगोवाकी तुलनामें अधिक स्पष्ट हैं। इस मन्दिरके बगलमें एक खुली गुफा है।

यहाँसे लौटते हुए वैष्णव और शैव गुफाएँ मिलती हैं। इनमें वराहावतार गुफा, विष्णु गुफा, अष्ट शक्ति गुफा, तवा गुफा, कोटरी गुफा, अमृत गुफा आदि गुफाएँ सम्मिलित हैं। वराह गुफामें वराहके निकट दो पंक्तियोंका शिलालेख है, जिसमें परम भट्टारक महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के शासनकालमें संवत्सर ८२ के आषाढ़ मासकी शुक्ला ११ को महाराज छागलिकके पौत्र, महाराज विष्णुदासके पुत्र सनकादिक महाराजके दानका वर्णन है। इसी प्रकार तवा गुफामें ५ पंक्तियोंका एक शिलालेख है, जिसके अनुसार इस गुफाका निर्माण चन्द्रगुप्तके अमात्यने कराया था। इसमें यह भी उल्लेख है कि वह अपने महाराजके साथ यहाँ आया था।

इन शिलालेखोंसे ज्ञात होता है कि इन गुफाओंका निर्माण चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) के राज्य-कालमें हुआ था।

विदिशा संग्रहालयमें जैन पुरातत्त्व

विदिशा, उदयगिरि तथा उसके आसपास पड़े हुए तथा उत्खननमें प्राप्त पुरातत्त्वको संग्रह करके यहाँ संग्रहालयमें सुरक्षित रख दिया गया है। यद्यपि परिमाणमें यह सामग्री विशाल भले ही नहीं है, किन्तु यहाँ सुरक्षित सामग्री ऐतिहासिक दृष्टिसे अवश्य महत्त्वपूर्ण है। यहाँ संग्रहीत सामग्रीमें जैन, बौद्ध, शैव, वैष्णव सभी भारतीय धर्मोंकी सामग्री है। यहाँके संग्रहमें सबसे प्राचीन सामग्री गुप्त-कालसे सम्बन्धित है। वह सामग्री एक जैन प्रतिमा है। उदयगिरिके निकट दुर्जनपुरा ग्राममें बेस नदीके तटपर सन् १९६९ में वहाँके एक कृषकको हल चलाते समय जो तीर्थंकर मूर्तियाँ उपलब्ध हुई थीं वे आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभु, नौवें तीर्थंकर पुष्पदन्त तथा चन्द्रप्रभ तीर्थंकरकी थीं। इनमें-से प्रारम्भकी दो मूर्तियाँ भोपाल संग्रहालयमें सुरक्षित हैं तथा अन्तिम चन्द्रप्रभकी मूर्ति इस संग्रहालयमें विद्यमान है। इस प्रतिमाकी प्रतिष्ठा महाराजाधिराज रामगुप्तने करायी थी। किन्तु रामगुप्तका व्यक्तित्व विवादास्पद है। इस विषयपर अनेक सुप्रसिद्ध इतिहासकारोंने विचार किया है, किन्तु वे एकमत नहीं हो सके।

रामगुप्त गुप्त-वंशके सुप्रसिद्ध सम्राट् समुद्रगुप्तका बड़ा पुत्र और चन्द्रगुप्त (द्वितीय) का बड़ा भाई था। भारतीय साहित्यमें रामगुप्तके सम्बन्धमें एक अद्भुत और रोचक घटनाका विवरण मिलता है। हर्षचरित[1] में लिखा है—"अरिपुरमें शक नरेश नारीवेशधारी चन्द्रगुप्त द्वारा उस समय मारा गया, जब वह परस्त्रीका आलिंगन कर रहा था।" हर्षचरितके टीकाकार शंकराचार्य[2] ने इसकी व्याख्या करते हुए घटनाको कुछ विस्तारके साथ दिया है कि "शक

१. अरिपुरे च परकलत्रकामुकं कामिनिवेशगुप्तः चन्द्रगुप्तः शकपतिमशातयत्।
—हर्षचरित, निर्णयसागर प्रेस संस्करण, पृ. २०० ।

२. शकानामाचार्यः शकपतिः चन्द्रगुप्त भ्रातृजायां ध्रुवदेवीं प्रार्थयमानः चन्द्रगुप्तेन ध्रुवदेवीवेषधारिणा स्त्रीवेश-जनपरिवृतेन रहसि व्यापादितः।

नरेश रामगुप्तकी पत्नी ध्रुवदेवीको चाहता था। इसलिए वह अन्तःपुरमें चन्द्रगुप्तके हाथों मारा गया, जिसने अपने भाईकी पत्नी ध्रुवदेवीका रूप धारण कर रखा था। उसके साथ कुछ अन्य लोग नारी-वेषमें थे।" राष्ट्रकूट-नरेश अमोघवर्षके शक संवत् ७९५ (ई. सन् ८७३) के एक ताम्रलेखमें भी इस घटनाका उल्लेख किया गया है। कवि विशाखदत्तके देवी-चन्द्रगुप्त नाटकमें भी यही कथावस्तु दी गयी है।

रामगुप्त एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। किन्तु रामगुप्तके जीवनकालमें एक ऐसी घटना हो गयी, जिससे उसके व्यक्तित्वको क्लीब, निर्बल और स्वार्थपरक व्यक्तित्वके रूपमें समझनेको हमें बाध्य किया और इसकी कालिखकी लपटमें चन्द्रगुप्त द्वितीय भी आ गया। शक नरेशने रामगुप्तसे उसकी सुन्दर पत्नी ध्रुवदेवी माँगी। रामगुप्त ऐसी विकट स्थितिमें फँस गया कि वह ध्रुवदेवीको देकर जनताके जीवन और धनकी रक्षा करे अथवा ध्रुवदेवीकी सुरक्षा करके जनताको निर्दय शकोंके हाथों सौंप दे। उसने देश और जनताके हितके लिए अपनी पत्नी देना ही उचित समझा।

किन्तु उसके अनुज चन्द्रगुप्तका दृष्टिकोण उससे भिन्न था। वह न ध्रुवदेवीको देना चाहता था, न जनताको हिंस्र भेड़ियोंके हाथ सौंपनेको तैयार था। बल्कि वह 'शठके प्रति शाठ्य' वाली नीतिको मानता था। वह अपने कुछ चुने हुए वीरोंके साथ स्त्रीवेशमें तैयार हुआ। शकराज बड़ी ललकके साथ ध्रुवदेवीको आलिंगनमें लेनेके लिए आगे बढ़ा किन्तु स्त्रीवेषधारी चन्द्रगुप्तने उसका काम तमाम कर दिया। ध्रुवदेवी चन्द्रगुप्तके अप्रतिम शौर्यपर रीझ गयी और उसने उसकी बाँहोंमें अपने शीलको सुरक्षित समझा। चन्द्रगुप्त ध्रुवदेवीके सौन्दर्यपर मोहित हो गया। उसने ध्रुवदेवीके सौन्दर्य और शीलमें भारतीय आत्माके दर्शन किये। उसने तत्काल निर्णय किया और कण्टक-स्वरूप क्लीब रामगुप्तको मारकर राज्यपर अधिकार कर लिया।

भारतके सांस्कृतिक और धार्मिक इतिहासमें चन्द्रगुप्त द्वितीय का विशिष्ट स्थान है। किन्तु अपने बड़े भाईकी स्त्रीके सौन्दर्यपर मुग्ध होकर उसके साथ विवाह करना और भाईको मारकर राज्य हथियाना यह भारतकी नैतिक परम्परा और प्राचीन आदर्शोंके विपरीत[२] है। अतः इस घटनासे चन्द्रगुप्तकी प्रतिष्ठापर एक काला धब्बा दिखाई पड़ता है। सम्भवतः इस कारणसे कुछ इतिहासकार इतिहासके इस कटु सत्यको सहज रूपसे निगल नहीं पाये। इसलिए उन्होंने इस घटनाको नकारना ही उचित समझा। इतना ही नहीं, रामगुप्तके अभिलेखों और सिक्कोंकी उपलब्धिके बावजूद महाराजाधिराज-पदधारी रामगुप्तको मालवका एक काल्पनिक माण्डलिक राजा मान लिया, जिसका इतिहासमें कोई अस्तित्व नहीं है। यह कितने आश्चर्यकी बात है कि समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त, कुमारगुप्त और स्कन्ध गुप्तके ऐरन, उदयगिरि, प्रयाग, गढ़वा, साँची, सकौर (हटा-सागर), बिलसद (एटा), मानकुँअर (इलाहाबाद), मण्डसर (मालवा) में मिले शिलालेखों और

---

१. हत्वा भ्रातरमेव राज्यमहरद्देवीञ्च दीनस्तथा,
लक्ष्यं कोटिमलेखयत् किल कलौ दाता स गुप्तान्वयः।
येनात्याजितनु स्वराज्यमसकृत् बाह्यार्थकैः का कथा,
ह्रीस्तस्योन्नति-राष्ट्रकूटतिलको ददाति कीर्त्यामपि ॥

—राष्ट्रकूट ताम्रलेख, ऐपिग्राफिका इण्डिका, भाग ४. पृ. २५७।

२. The Classical Age, by R. C. Majumdar, p. 18, Bharatiya Vidya Bhawan, Bombay.

सिक्कोंको गुप्तवंशके सम्राट् नरेशोंका माना जाता है, किन्तु रामगुप्तके विदिशा, ऐरन, उज्जयिनी आदिमें मिले शिलालेख और सिक्कोंको गुप्तवंशी रामगुप्तके होनेमें सन्देह प्रकट किया जाता है। यद्यपि ये सिक्के गुप्तकालीन ब्राह्मी लिपि, बनावट, शैली, वारमान और सिक्कोंपर गरुड़-चिह्न सभीमें गुप्तवंशी नरेशोंके सिक्कोंके समान हैं। अस्तु !

विदिशा संग्रहालयमें दुर्जनपुरासे प्राप्त चन्द्रप्रभ प्रतिमा २ फुट १ इंच ऊँची है और पद्मासन मुद्रामें आसीन है। इसकी चरण-चौकीपर उत्कीर्ण लेख इस प्रकार है—

'भगवतोऽर्हतः चन्द्रप्रभस्य प्रतिमेयं कारिता महाराजाधिराज श्रीरामगुप्तेन उपदेशात् पाणिपात्रिकचन्द्रक्षमाचार्यक्षमाश्रमणप्रशिष्य आचार्य सर्पसेन क्षमण शिष्यस्य गोलक्यान्त्या सत्पुत्रस्य चेलूक्षमणस्य।'

अर्थात्, भगवान् चन्द्रप्रभ तीर्थंकरकी यह प्रतिमा महाराजाधिराज श्री रामगुप्तने मुनि श्री चन्द्रक्षमाचार्य क्षमाश्रमणके प्रशिष्य एवं सर्पसेन क्षमणके शिष्य गोलक्यान्तिके पुत्र चेलू क्षमणके उपदेशसे प्रतिष्ठित करायी।

इस मूर्ति-लेखसे ज्ञात होता है कि इस मूर्तिकी प्रतिष्ठा महाराजाधिराज रामगुप्तने करायी थी। विदिशा संग्रहालयमें सुरक्षित पुष्पदन्त प्रतिमाकी पीठिकापर भी लगभग यही लेख अंकित है। तीसरी प्रतिमाके लेखमें केवल दो पंक्तियाँ अवशिष्ट हैं।

चन्द्रप्रभ भगवान्की उक्त प्रतिमाके अतिरिक्त इस संग्रहालयमें स्थित अन्य कुछ जैन प्रतिमाओंका परिचय इस प्रकार है—

(१) धरणेन्द्र-पद्मावती, (२) नेमिनाथ ४ फुट २ इंच ऊँचे शिलाफलकमें। मुख्य मूर्तिके परिकरके रूपमें २ पद्मासन, २ खड्गासन जिन-मूर्तियाँ—समय १०वीं शताब्दी। (३) नेमिनाथ ४ फुट ५ इंच शिलाफलकमें। मुख्य मूर्तिके परिकरमें २ पद्मासन, २ खड्गासन, नीचे अम्बिका, समय १०वीं शताब्दी, (४) तीर्थंकर प्रतिमा ३ फुट १ इंच ऊँची। बायीं ओरका भाग खण्डित। परिकर में छत्र, गन्धर्व, चमरवाहक (खण्डित) दोनों ओर खड्गासन जिन-प्रतिमा। (५) आदिनाथ—सलेटी वर्ण, पद्मासन, २ फुट ३ इंच ऊँची, चमरवाहक खण्डित है। काल १३वीं शताब्दी। अमरावद (रायसेन) से प्राप्त। (६) जैन प्रतिमाका शीर्ष, १२वीं शताब्दी। तीन अलंकृत शिखर तथा ३ पद्मासन मूर्तियाँ। (७) गैलरीमें नेमिनाथकी २ फुट ३ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा। प्रतिमाकी केश-लटें लटक रही हैं। प्रतिमाके शिलाफलकपर दोनों पार्श्वोंमें २-२ खड्गासन मूर्तियाँ हैं। इनमें एक मूर्ति खण्डित है। (८) पार्श्वनाथकी ५ फुट ११ इंच ऊँची खड्गासन प्रतिमा। प्रतिमाका सिर नहीं है। फण थोड़ा खण्डित है। परिकरमें गज, गन्धर्व, छत्र, यक्ष-यक्षी हैं। (९) शान्तिनाथकी ४ फुट ६ इंच उन्नत खड्गासन मूर्ति। सिर नहीं है। परिकरमें भामण्डल, छत्र, चमरेन्द्र और १० खड्गासन मूर्तियाँ हैं। (१०) नाग-नागी परस्पर लिपटे हुए हैं। सम्भवतः यह युगल धरणेन्द्र-पद्मावतीका प्रतीक है। इसके दोनों पार्श्वोंमें कायोत्सर्गासन प्रतिमाएँ हैं। (११) १ फुट ४ इंच ऊँचे शिलाफलकमें यक्ष और यक्षी। शीर्ष भागपर मध्यमें पद्मासनस्थ जिन-प्रतिमा तथा दोनों पार्श्वोंमें खड्गासन प्रतिमा। (१२) आदिनाथकी ४ इंच ऊँची प्रतिमा खण्डित है। यह उदयगिरिसे प्राप्त हुई है। (१३) तीर्थंकर प्रतिमा ८ फुट ७ इंच ऊँची खड्गासन। प्रतिष्ठा-काल वि. संवत् १२१४। प्रतिमाकी बाँह और चमरवाहक खण्डित हैं। (१४) ६ इंच ऊँची खड्गासन जिन-प्रतिमा। (१५) खड्गासन जिन-प्रतिमा। (१६) ६ फुट ६ इंच ऊँची पार्श्वनाथकी खड्गासन प्रतिमा मध्यमें तथा उसके चारों ओर २३ तीर्थंकर मूर्तियाँ। इस चतुर्विंशति पट्टमें छत्र, गज, चमरवाहक परिकरमें हैं। (१७) ३ फुट ऊँची तीर्थंकर-मूर्ति है। दोनों ओर चमरवाहक हैं।

(१८) एक शिलाफलकमें चतुर्विंशति तीर्थंकर प्रतिमाएँ। मध्यमें पार्श्वनाथ-प्रतिमा। वक्षसे नीचेका भाग नहीं है। (१९) एक खण्डित मूर्ति। सिर नही है तथा पद्मासनसे नीचेका भाग नहीं है। (२०) २ फुट ९ इंच उन्नत एक पाषाणफलकपर पद्मासन मुद्रामें तीर्थंकर-प्रतिमा, सिरके दोनों पार्श्वोंमें पारिजात पुष्पोंकी माला लिये हुए गन्धर्व, उनसे नीचे एक पद्मासन प्रतिमा, नीचे चमरेन्द्र। एक ओरका चमरेन्द्र नहीं है। (२१) एक विशाल तीर्थंकर मूर्ति कायोत्सर्गासनमें। छातीसे नीचेका भाग नहीं है। (२२) एक फलक २ फुट ८ इंच ऊँचा। उसपर पद्मासनस्थ जिन-प्रतिमा। सिर नहीं है। परिकरमे १३ पद्मासन जिन-प्रतिमाएँ। छत्र, चमरेन्द्र, यक्ष और यक्षी हैं। (२३) एक कक्षमें ३ फुट २ इंच ऊँचे शिलाफलकमें आदिनाथ तीर्थंकरकी खड्गासन प्रतिमा। मस्तकके ऊपर छत्र और पीछे भामण्डल है। शिरोभागपर मध्यमें दुन्दुभि, दोनों पार्श्वोंमें आकाशमें पुष्पमाला हाथमें लिये हुए गन्धर्व तथा अधोभागमें चमरवाहक इन्द्र हैं। (२४) ऋषभदेव प्रतिमा पद्मासन मुद्रामें सिरविहीन है। वर्तमान स्थितिमें २ फुट ऊँची है। चमरेन्द्र गजपर खड़े हैं। सिंहों (सिंहासनके) दोनों ओर मानस्तम्भ अंकित हैं। कोनोंपर बायीं ओर गोमुख यक्ष और दायीं ओर चक्रेश्वरी यक्षीका अंकन है।

कुछ प्राचीन प्रतिमाएँ उदयगिरि आदि स्थानोंसे प्राप्त हुई थी। वे श्रीमन्त सेठ लक्ष्मी-चन्दजीके जिनालयमें सुरक्षित हैं। इनमें कई प्रतिमाएँ गुप्त और कलचुरि कलाके मिश्रित प्रभावकी अनुपम कलाकृतियाँ हैं। इनका अनुमित काल ९वी १०वीं शताब्दी माना जाता है। इन मध्य-कालीन प्रतिमाओके कारण यह जिनालय एक लघु संग्रहालय बन गया है। ये प्रतिमाएँ बाह्य कक्षमें बनाये गये आलोंमें सुरक्षित हैं। कई अखण्डित प्रतिमाएँ वेदियोंमें विराजमान हैं। इनके कलागत वैशिष्ट्यका समुचित मूल्यांकन होना अभी शेष है।

उदयगिरिके आसपास जैन पुरातत्त्व

इसके निकटवर्ती अनेक स्थानोंपर प्राचीन मन्दिरों, मूर्तियों, स्तम्भों आदिके भग्नावशेष प्राप्त होते हैं। इन अवशेषोमें जैन सामग्री भी विपुल परिमाणमे मिलती है। इन स्थानोंमें उदयपुर, पठारी, बड़ोह, ऐरन, तिगोवा ये स्थान मुख्य हैं। इन स्थानोंपर प्राचीन जिनालयोंके ढेर पड़े हुए हैं, और कुछ खण्डित-अखण्डित जैन प्रतिमाएँ पड़ी हुई हैं। कुछ जिनालय अर्धभग्न दशामें हैं तथा कुछ मूर्तियोंको मूर्तिचोरों अथवा अन्य असामाजिक तत्त्वोंने बहुत क्षति पहुँचायी है। किन्तु जो सामग्री अब तक इन स्थानोंमे सुरक्षित बची हुई है, वह ऐतिहासिक दृष्टिसे अत्यन्त मूल्यवान् है। उसका काल गुप्त-काल (चौथीसे छठी शताब्दी) से १०वीं-११वी शताब्दी तक है। ये स्थान यद्यपि तीर्थक्षेत्र नहीं हैं इस कारण इन स्थानों और वहांकी पुरातत्त्व-सामग्रीका व्यवस्थित सर्वेक्षण नहीं किया जा सका, तथापि इन स्थानोंको कलातीर्थ कहा जा सकता है। इस नाते ही उनके बारेमें कुछ पंक्तियां लिखी जा रही हैं—

उदयपुर

यह स्थान विदिशासे उत्तरकी ओर ४५ कि. मी. दूर है। इस नगरकी स्थापना परमारनरेश उदयादित्यने की थी। यह धारानरेश भोजका सम्भवतः भाई था। इस नगरकी स्थापनाका भी बड़ा रोचक इतिहास है, जो किंवदन्तीके रूपमें प्रचलित है। कहते हैं—एक बार राजा उदयादित्य

जंगलमें शिकार खेलने गया। उसके सैनिक पीछे रह गये। वह जंगलमें एक ऐसे स्थानपर पहुँचा जहाँ आग लग रही थी। उसकी दृष्टि एक सर्पपर पड़ी जो मैदानमें अपने बिलसे बाहर पड़ा हुआ था। आगकी गर्मीके कारण वह प्याससे व्याकुल हो रहा था। राजाने दया करके एक बाँस द्वारा उस साँपको बचाया। साँपने व्याकुल होकर राजासे पानी माँगा। राजाने कहा—'यहाँ तो आस-पासमें कहीं जल नहीं है। मैं राजमहलमें पहुँचकर वहाँसे जल भेज दूँगा।' किन्तु सर्प गिड़गिड़ाकर बोला—'इतनी देरमें तो मेरे प्राण ही निकल जायेंगे। आप अपने मुँहमें मेरा फन रख लीजिए। मुझे इतनेसे ही शान्ति मिल जायेगी।' राजाको भय हुआ कि ऐसा करनेसे साँप कहीं पेटमें चला गया तब क्या होगा। उसने अपना यह भय कह सुनाया। किन्तु साँपने शपथ खाकर विश्वास दिलाया कि वह विश्वासघात नहीं करेगा। राजाने उसका विश्वास करके फन अपने मुखमें रख लिया, किन्तु अकस्मात् साँप राजाके पेटमें चला गया।

राजा अपने नगरमें लौट गया। उसे पेटमें भयंकर पीड़ा रहने लगी। सभी उपचार व्यर्थ हुए। तब उसने जीवनसे निराश होकर काशीमें जाकर प्राण-त्याग करनेका निश्चय किया। वह रानी और कुछ सेवकोंको लेकर वहाँसे चल दिया और भूतिजानगर पहुँचा। रातका समय था। राजा सो रहा था। रानी चिन्ताके कारण जाग रही थी। रानीने देखा—साँप राजाके मुँहमें-से निकला और फण फैलाकर बैठ गया। तभी एक दूसरा साँप एक बिलमें-से निकला। दोनों साँपोंने एक-दूसरेको क्रोधभरी दृष्टिसे देखा, फिर उनमें बातें होने लगीं। बिलवाला साँप बोला—'तू बड़ा मक्कार और झूठा है। तूने अनेक कसमें खायीं, फिर भी तू उसी व्यक्तिको मारनेपर तुला हुआ है, जिसने तेरे प्राण बचाये। अगर राजाको ज्ञात हो जाये कि काली मिर्च, नमक और मट्ठा पीनेसे तेरी मृत्यु हो सकती है तो वह पीकर तेरे विश्वासघातका बदला ले सकता है।' पेटवाला साँप फुफकारकर बोला—'तू खजानेपर क्यों बैठा रहता है। अगर किसीको ज्ञात हो जाये कि गर्म तेल तेरे बिलमें डालनेसे तू मर सकता है तो सारा खजाना उसे मिल जाये।' इन दोनों साँपोंकी बात रानी सुन रही थी। प्रातःकाल होनेपर रानीने साँपोंमें हुई बातचीत राजाको कह सुनायी। राजाने छाछमें नमक और काली मिर्च मिलाकर पी ली। उससे साँप टुकड़े-टुकड़े होकर उलटी द्वारा निकल गया। बिलमें गरम-गरम तेल डाला गया। इससे साँप मर गया और विपुल धन वहाँसे प्राप्त हुआ। उस धनसे राजाने उस स्थानपर एक विशाल मन्दिर बनवाया, जिसे 'उदयेश्वर मन्दिर' कहते हैं। वहाँ राजाने एक नगरकी भी स्थापना की, जिसका नाम राजाके नामपर 'उदयपुर' रखा गया। कुछ समय तक यह नगर उदयादित्यकी राजधानी भी रहा।

उदयपुर नगरकी स्थापनाके सम्बन्धमें प्रचलित इस किंवदन्तीसे मिलती-जुलती किंवदन्तियाँ कई नगरों और राजाओंके साथ जुड़ गयी हैं। जैसे, निमाड़ जिलेमें स्थित ऊनके सम्बन्धमें भी लगभग यही कहानी प्रचलित है। उत्तरप्रदेशके ललितपुर नगरकी स्थापनाके सम्बन्धमें भी ऐसी ही एक अद्भुत और रोचक किंवदन्ती प्रचलित है। कहते हैं, महोबाके चन्देल राजा सुमेरसिंहको जलोदर हो गया। बहुत उपचार किया, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। तब जीवनसे निराश होकर वह हिमालयकी ओर बर्फमें प्राण-विसर्जन करने चल दिया। साथमें उसकी रानी ललिता थी। उनका पड़ाव बयानामें था। रातमें राजा सो गया। रानी बैठी हुई पंखा झलती रही। थोड़ी देर बाद रानीने आश्चर्यके साथ देखा कि एक साँप राजाके मुखमें-से रेंगता हुआ बाहर निकला और इससे भी अधिक आश्चर्य उसे एक दूसरे साँपको पेटवाले साँपके साथ बातें करते हुए देखकर हुआ। दोनों साँपोंकी बातचीत वही हुई जो ऊपर बतायी गयी है। साधारण-सा अन्तर यह है कि

इसमें छाछके स्थानपर तालाबकी काईका प्रयोग बताया गया है। राजाने वैसा ही किया। वह नीरोग हो गया और धन प्राप्त होनेपर उसने विशाल तालाब बनवाया, जिसका नाम 'सुमेर सागर' रखा। इसके अतिरिक्त उसने अपनी रानीके नामपर एक नगर बसाया, जिसका नाम 'ललितापुर' अथवा 'ललितपुर' रखा।

इस प्रकारकी एक कथा पंचतन्त्र आदि प्राचीन कथा-ग्रन्थोंमें भी आती है। इन किंवदन्तियों और उनपर आधारित कथाओंसे यह निर्णय नहीं हो पाता कि क्या इस प्रकारकी घटना सम्भव है? यदि सम्भव है तो यह घटना किस स्थानपर घटित हुई है? किन्तु इनसे यह निष्कर्ष तो निकाला ही जा सकता है कि उदयपुर, ऊन और ललितपुरकी स्थापना क्रमशः उदयादित्य, बल्लाल और सुमेरसिंहने की थी और इन्होंने इन स्थानोंपर मन्दिर, सरोवर और बावड़ी बनवायी थी।

उदयपुरमें परमार नरेशोंके कालमें अनेक हिन्दू और जैन मन्दिरोंका निर्माण हुआ। वर्तमानमें जैन मन्दिर भग्न दशामें अवस्थित हैं। उसमें कई विशाल तीर्थंकर-मूर्तियाँ अवस्थित हैं। ये मूर्तियाँ ११वीं-१२वीं शताब्दीकी प्रतीत होती हैं।

पठारी

यह स्थान भेलसासे उत्तर-पूर्वकी ओर ८० कि. मी. है और गढ़ोरी-ज्ञाननाथ पहाड़ियोंके मध्यमें बसा हुआ है। मुगल कालमें यह जिलेका सदर मुकाम था। नगर और पहाड़ीके बीच एक तालाब बना हुआ है जिसके चारों ओर विभिन्न धर्मोंके प्राचीन धर्मस्थान, सतीचौरा, समाधि और स्तम्भ बने हुए हैं। तालाबके चारों ओर पक्के घाट बने हुए हैं। नगर पहाड़ीपर बसा हुआ है। नगरके चारों ओर चहारदीवारी है। इस नगरके बाहर गुप्त-कालके मन्दिरोंके भग्नावशेष, स्तम्भ, मूर्तियाँ आदि बिखरे पड़े हैं। नगरमें एक स्तम्भ बना हुआ है, जिसकी ऊँचाई ४७ फुट है। गाँववाले इसे भीमकी छड़ी कहते हैं। यह भी कहा जाता है कि अपने १४ वर्षोंके वनवास-कालमें पाण्डव इस स्थानपर कुछ काल तक ठहरे थे। ऐसा प्रतीत होता है कि यह मानस्तम्भ था जो किसी जैन मन्दिरके सामने बना हुआ था। मन्दिर नष्ट हो गया किन्तु मानस्तम्भ अभीतक बना हुआ है। शीर्षपर स्थित जैन मूर्तियाँ तुगलक या मुगल-कालमें हटा दी गयी या नष्ट कर दी गयीं।

पहाड़ीके दक्षिण-पूर्वमें बढ़ोह ग्रामके पास गडरमल नामक एक विशाल मन्दिर खड़ा है। मन्दिरके चारों ओर चहारदीवारी है। चहारदीवारीमें द्वार बना हुआ है। यह चार स्तम्भोंपर आधारित मण्डपनुमा है। मुख्य मन्दिरके पास सात लघु मन्दिर हैं। ये सब एक ही घेरेमें हैं। घेरेका प्रवेशद्वार अत्यन्त अलंकृत और कलापूर्ण है। मन्दिरकी गठन सादी किन्तु प्रभावशाली है। मन्दिरके सिरदलपर चतुर्भुजी यक्षी-मूर्ति है। उसकी एक भुजा खण्डित है। उसकी तीन भुजाओंमें ढाल, तलवार और धनुष हैं। देवीका वाहन भैंसा उसके निकट बैठा हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभकी शासन-सेविका ज्वालामालिनी है। मन्दिरमें एक बड़ी स्त्री-मूर्ति है। उसके बगलमें बालक है। कुछ विद्वान्, जैसा कि प्रायः देखा जाता है, उसे मायादेवी और बुद्धकी मूर्ति मानते हैं जबकि यहाँ न बौद्ध मन्दिर है, न कोई बुद्ध-मूर्ति मिली है। वास्तवमें यह मूर्ति तीर्थंकर माता और बालक तीर्थंकरकी है। किन्तु यह मूर्ति तीन टुकड़ोंमें खण्डित है।

इस मन्दिरके सम्बन्धमें एक अद्भुत किंवदन्ती प्रचलित है। प्राचीन कालमें पहाड़ीपर एक गुफामें एक मुनि तपस्या किया करते थे। एक गड़रिया उन पहाड़ियोंपर भेड़ चराने जाता था।

एक मेढ़ प्रतिदिन गुफाकी तरफसे आकर मेढ़ोंकी झुण्डमें मिल जाती थी और शामको गायब (अन्तर्धान) हो जाती थी। गड़रिया कुछ दिनों तक यह सब देखता रहा। एक दिन उसने मेढ़के मालिकका पता लगानेका निश्चय किया और सन्ध्या होनेपर जब वह मेढ़ गुफाकी ओर जाने लगी तो गड़रियाने उसका पीछा किया। किन्तु गुफाके अन्दर पहुँचनेपर गड़रियाको देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वहाँ मेढ़का कहीं पता नहीं है किन्तु एक मुनि अवश्य ध्यानमें बैठे हुए हैं। उसने मुनिको नमस्कार किया और बोला, "बाबा! तुम्हारी मेढ़को मैं कई महीनोंसे चरा रहा हूँ। मैं उसको चिराईकी मजदूरी लेने आया हूँ।' मुनि मुस्कराये। उन्होंने मुट्ठी बन्द करके गड़रियाकी धोतीमें कुछ डाल दिया। गड़रिया धोतीकी गाँठ बाँधकर वहाँसे चल दिया और अपने घर पहुँचा। मेढ़ें उससे पहले पहुँच गयी थीं। इससे उसकी स्त्री उसके ऊपर बिगड़ी। तब उसने स्त्रीसे सारी घटना कह सुनायी और मुनि द्वारा दी हुई मजदूरीको खोलकर देखने लगा। किन्तु उसे यह देखकर बड़ा क्रोध आया कि वे तो थोड़े-से मक्काके दाने थे। उसने गुस्सेके मारे वे दाने उपलोंके ढेरपर फेंक दिये। स्त्री रसोईके काममें लग गयी। जब वह उपले लेने गयी तो उसने आश्चर्यके साथ देखा कि उपले सोनेके हो गये हैं। दोनों यह देखकर खुशीसे भर उठे। सरल गड़रिया उस बातकी खबर देने भागा हुआ गुफामें पहुँचा किन्तु गुफा सूनी थी। मुनिका कहीं पता न था।

वह लौट आया। उसने धन छिपा दिया और एक मन्दिरका निर्माण कराया। गड़रियाके कारण लोग मन्दिरको गड़रमल कहने लगे। उसने मन्दिरके सामने एक तालाब भी बनवाया। उसने पक्के घाट बनवाये और घाटोंपर छतरियाँ बनवायीं। कहते हैं, इसके बाद उसने और भी कई मन्दिर बनवाये। यह भी कहा जाता है कि गड़रमल मन्दिरमें उसने अपनी और अपनी स्त्रीकी पाषाण-मूर्तियाँ बनवायी थीं। दोनोंके कोई सन्तान नहीं थी। उनका अवशिष्ट धन जमीनमें दबा हुआ रह गया।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि प्रारम्भमें सम्भवतः ८वीं शताब्दीमें, इस मन्दिरमें केवल गर्भगृह और उसके ऊपर शिखर बनाया गया। बादमें, सम्भवतः ९वीं शताब्दीमें, मन्दिरमें परिवर्धन किया गया। यह मन्दिर मूलतः जैन है। मन्दिरके जीर्ण होनेपर कभी इसका जीर्णोद्धार किया गया होगा। उस समय इन मन्दिरोंकी पुरानी सामग्री ही काममें लायी गयी। इस मन्दिरमें अब भी द्वारपर, दीवारोंमें और स्तम्भोंमें जैन मूर्तियाँ मिल सकती हैं। इस मन्दिरका प्रवेश-द्वार और उसका तोरण शिल्प-कलाकी उत्कृष्ट कृतियोंमें-से हैं। इसपर अलंकरणके अलावा नवग्रह, अष्टमातृका आदिका भव्य अंकन है। इस मन्दिरके सामने, सरोवरके तटपर १२ स्तम्भोंपर आधारित एक बारादरी है, जिसे बैठक भी कहते हैं। इसके निकट मन्दिरोंके अवशेष और बारादरियाँ हैं। यहीं पार्वती मन्दिर, दशावतार मन्दिर और वराह-मूर्ति है।

गड़रमल मन्दिरके उत्तर-पश्चिममें, पहाड़ीकी तलहटीमें जैन मन्दिरोंका समूह है। ये एक अहातेके अन्दर हैं। यद्यपि ये मन्दिर जीर्णप्राय हैं किन्तु इनमें वेदियाँ और कुछ मूर्तियाँ अच्छी दशामें हैं। कई मन्दिर तो दोमंजिला हैं। इनके ऊपर शिखर भी हैं। यहाँ ८ से १२ फुट ऊँची मूर्तियाँ हैं। मूर्तियाँ दोनों ही आसनोंमें स्थित हैं—खड्गासन भी और पद्मासन भी। यहाँ एक निषधिका भी बनी हुई है। उसमें चरण-चिह्न विराजमान हैं। सम्भवतः यह निषधिका पश्चात्कालीन है। किन्तु मन्दिर और मूर्तियाँ तो निश्चय ही ८वीं शताब्दीके अन्तिम चरण या ९वीं शताब्दीके प्रथम चरणकी हैं।

इनके निकट बहुत-से सती-स्तम्भ हैं। पठारी प्राचीन कालमें बड़ा समृद्ध और विशाल नगर

था। वर्तमान बड़ोह इस नगरका एक भाग था। कहा जाता है कि महाराज छत्रसालने युद्धके समय इसे लूटकर और नष्ट कर श्रीहीन कर दिया था। यह नगर पुनः भग्नावशेषोंके ऊपर आबाद हुआ। इसके आसपास चारों ओर प्राचीन मन्दिरों, सती-स्तम्भों, सरोवरों आदिके अवशेष बिखरे हुए हैं। पठारीकी बड़ी पहाड़ी ज्ञाननाथपर एक प्राकृतिक गुफा है, किन्तु उसे सुसंस्कृत किया गया है। इसमें तीन कक्ष हैं। इनमें अलंकृत स्तम्भ लगे हुए हैं। कहते हैं, यह वही गुफा है, जहाँ गड़रियाको मुनिके दर्शन हुए थे। चिह्नोंसे प्रतीत होता है कि यह गुफा जैन मुनियोंके ध्यान-अध्ययनके काम आती थी। स्तम्भों आदिपर जैन मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इसके निकट छोटी-छोटी कई गुफाएँ हैं। किसी समय यह स्थान जैन धर्मका प्रसिद्ध केन्द्र था।

पठारीमें एक बावड़ी है, जिसमें एक अभिलेख है। उसका आशय है कि इस बावड़ीका निर्माण संवत् १७३३ में अगहन सुदी पूर्णमासीको परगना आलमगीर (भिलसा) के पठारी जिलेमें पातशाह नौरंगजेब आलमगीरजूके शासनमें और महाराजाधिराज पृथ्वीराज देवजू और उनके भाई कुमारसिंह देवजूके समयमें अयोध्यापुरीके श्री साहू वस्तपालजू, उसकी पुत्रवधू मणीवा द्रौपदी लखपती और उसके पौत्र उदयभान, तुलाराम, भगवानदास, जीवनमल और दिशुण्ड परवार जातीय कौछल गोत्रीयने कराया।

इस प्रकार जैनोंने यहाँ अनेक लोकोपयोगी कार्य कराये थे।

यह बताया जा चुका है कि बड़ोह प्राचीन कालमें पठारीका ही एक भाग था। जब पठारी नगर नष्ट हो गया तो पुनर्वासके समय दोनों अलग-अलग हो गये। इस समय बड़ोहके भग्नावशेष पठारीसे दक्षिणमें लगभग ३ मील, ज्ञाननाथ पहाड़ीकी तलहटीमें तालाबके किनारे बिखरे हुए हैं। पठारी-बड़ोहकी समृद्धिके सम्बन्धमें एक अद्भुत किंवदन्ती सुनी जाती है।

तेलका एक व्यापारी भैंसोंपर तेल लादकर उस स्थानपर पहुँचा, जिसे आजकल पारस तालाब कहा जाता है। भैंसोंके गलेमें लोहेकी साँकल बँधी हुई थी। जब एक भैंसा तालाबसे बाहर निकला तो व्यापारीने आश्चर्यके साथ देखा कि लोहेकी साँकल सोनेकी हो गयी है। उसे विश्वास हो गया कि तालाबमें अवश्य ही पारण-मणि है। वह तालाबके भीतर घुसकर पारस-मणिकी तलाश करने लगा। भाग्यवश उसे पारस-मणि प्राप्त हो गयी। उसकी सहायतासे वह अपार धनका स्वामी हो गया। उसने अनेक मन्दिरोंका निर्माण कराया। वह भैंसाशाहके नामसे प्रसिद्ध हो गया।

इस किंवदन्तीकी पारस-मणिकी सत्यताके सम्बन्धमें विश्वासपूर्वक कुछ कह सकना कठिन है। किन्तु ऐसा एक व्यक्ति अवश्य हुआ है जो धनी था, पाड़ों (भैंसों) पर सामान लादकर परदेशमें जाता और वस्तुओंका क्रय-विक्रय किया करता था। उसने अनेक जैन मन्दिरों और मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करायी थी। पाड़ोंके कारण उसका नाम पाड़ाशाह ही पड़ गया। शिलालेखों या मूर्तिलेखोंमें भी उसका यही नाम मिलता है।

बड़ोह या पठारीमें उसके सम्बन्धमें जो किंवदन्ती प्रचलित है, इसमें उसे पारस-मणि प्राप्त होनेकी बात है। अहार, बजरंगढ़, थूबौन आदि जिन स्थानोंपर उसने जिनालय बनवाये, वहाँ कहीं-कहीं उसकी समृद्धिका कारण उसके राँगाका पारस-मणि द्वारा चाँदी होना बताया जाता है। उसके सम्बन्धमें इस प्रकारकी किंवदन्तीका प्रचलन उसी स्थानपर देखा जाता है, जहाँ उसने मन्दिर-निर्माण कराया। बड़ोह-पठारीमें ऐसी किंवदन्ती प्रचलित होनेका तर्कसंगत कारण यही हो सकता है कि यहाँपर भी उसने किसी जिनालयका अथवा अपनी स्त्रीके नामसे किसी वैष्णव मन्दिरका निर्माण कराया होगा।

ग्यारसपुर

अवस्थिति

ग्यारसपुर विदिशासे सागर जानेवाली सड़कपर उत्तर-पूर्वमें ३८ कि. मी. दूरीपर दो पहाड़ियोंके मध्य बसा हुआ एक प्राचीन नगर एवं महत्त्वपूर्ण कला-तीर्थ है[1]। कुछ विद्वानोंके अनुसार यह दसवें तीर्थंकर भगवान् शीतलनाथकी तपोभूमि है। अतः यह कल्याणक-क्षेत्र भी माना जाता है। साथ ही, कतिपय दैवीय घटनाओंके कारण यहाँकी जैन समाज इसे अतिशय-क्षेत्र भी मानती है।

क्षेत्र-दर्शन

इस नगरके भीतर और बाहर पुरावशेष बिखरे हुए हैं। यहाँके मध्यकालीन मन्दिर और उनके अवशेष पुरातत्त्व और कलाप्रेमियोंके आकर्षणकी वस्तुएँ हैं। मन्दाकिनी तालके पास उत्तरकी ओर पुरातन नगरके चिह्न दिखाई पड़ते हैं जिनसे प्रतीत होता है कि किसी समय यह एक महत्त्वपूर्ण नगर रहा होगा। यहाँके मुख्य अवशेषोंमें पश्चिमकी ओर नगरके बाहर अठखम्भा और वज्रमठ, नगरके बाहर पहाड़ीपर हिण्डोला और चारखम्भा और नगरके दक्षिणकी ओर पहाड़ीकी चोटीपर मालादेवी मन्दिर मुख्य हैं। इनमें वज्रमठ और मालादेवी ये दोनों जैन मन्दिर हैं। इनका शिल्प-सौष्ठव, पाषाणमें सूक्ष्मांकन और वास्तु-विधान अत्यन्त उत्कृष्ट कोटिका है।

नगरमें एक चैत्यालय है। नीचेके एक कमरेमें ४ फुट ९ इंच ऊँचे एक शिलाफलकमें मध्यमें भगवान् पार्श्वनाथकी खड्गासन प्रतिमा है। इसके सिरके ऊपर सप्तफण हैं। उनके ऊपर छत्रत्रयी सुशोभित है। उनके दोनों ओर पारिजात पुष्पोंकी माला लिये हुए देवियाँ खड़ी हैं। भगवान्के ऊपर-नीचे दोनों ओर शेष २३ तीर्थंकरोंकी पद्मासन मूर्तियाँ बनी हुई हैं। बायीं ओर पार्श्वनाथका सेवक यक्ष धरणेन्द्र और दायीं ओर उनकी सेविका यक्षी पद्मावती ललितासनमें बैठे हुए हैं। दोनोंके ऊपर फणावली है। यह प्रतिमा अतिशयपूर्ण है। ऐसा कहा जाता है कि लगभग २५ वर्ष पूर्व किन्हीं अज्ञात कारणोंसे इस मूर्तिसे पसीना निकलने लगा था जो हवन-शुद्धि करानेपर बन्द हुआ था। इस चमत्कृत घटनाके कारण इस क्षेत्रकी जैन समाज तबसे इसे अतिशय-क्षेत्र मानने लगी है।

यह प्रतिमा शैली आदिकी दृष्टिसे १०वीं शताब्दीकी प्रतीत होती है। यह चन्देल शैलीकी अद्भुत और कलासम्पन्न प्रतिमाओंमें-से है। यह पुरावशेषोंमें-से उपलब्ध हुई थी और अखण्डित है। इसकी उपलब्धिसे ऐसा अनुमान होता है कि यहाँ और भी जैन मन्दिर उस कालमें रहे होंगे।

चैत्यालयके ऊपरके कमरेमें नवीन प्रतिमा विराजमान हैं।

नगरके बाहर पहाड़पर थोड़ा चढ़नेपर हिण्डोला मिलता है। यह किसी प्राचीन मन्दिरका बचा हुआ अलंकृत द्वार है। द्वार हिण्डोलाके आकारका है। इसीलिए बोलचालमें लोग इसे हिण्डोला कहते हैं। इसके स्तम्भ चारों ओर अलंकृत हैं। एक स्तम्भपर विष्णुके दशावतार प्रदर्शित हैं। इसके निकट किसी मन्दिरके अवशेषोंका ढेर पड़ा हुआ है तथा उसकी आधार-चौकी भी है। बायीं ओर चार खम्भोंका मण्डप है। यह बिना छतका है। यहाँ एक पाषाणपर संवत् ११४० का एक शिलालेख मिला। इसके ऊपरी भागमें एक रीछ एक मनुष्यको नीचे पटक रहा है। यह दृश्य सम्भवतः श्रीमद्भागवतमें वर्णित जामवन्त और सत्राजित्के युद्धका है। जामवन्त ब्रह्माका पुत्र बताया जाता है। युद्ध स्यमन्तक मणिके लिए हुआ था। कनिंघमको एक भग्न शिलालेख

---

१. विदिशा-वैभव।

मिला था, जिसका कुछ अंश इस प्रकार पढ़ा गया था।

....अन स्वामी मन्दिरं मालवच्छरदम्

षट्त्रिंशत् संयुतेषु तितेषु नवमे शतेषु।

इसका अर्थ उन्होंने मालव संवत् ९३६ निकाला था। मालव संवत्का अर्थ विक्रम संवत् होता है। इसका अर्थ यह है कि यहाँका कोई मन्दिर ई. सन् ८७९ में निर्मित हुआ था। एक शिलाखण्डपर उन्हें संवत् १०६७ (ई. सन् १०१०) अभिलिखित मिला था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यहाँके मन्दिर ९-१०वीं शताब्दीमें निर्मित हुए।

हिण्डोलासे पर्वतके ऊपर एक पगडण्डी मालादेवी मन्दिरकी ओर गयी है। लगभग दो फर्लांग चलनेपर मालादेवी मन्दिर पहुँचते हैं। यह मन्दिर अत्यन्त विकसित नागर शैलीका है। इसकी कला और खजुराहोके मन्दिरोंकी कलामें बहुत साम्य प्रतीत होता है। इस मन्दिरकी पृष्ठ-भित्ति पहाड़को काटकर बनायी गयी है तथा अन्य दीवारों आदिमें यहाँके ही पाषाणोंका प्रयोग किया गया है। यह तलच्छन्द और ऊर्ध्वच्छन्द दोनों ही दृष्टियोंसे विलक्षण है। तलच्छन्दमें इसकी लम्बी भुजा पूर्वसे पश्चिमकी ओर फैली हुई है। इसमें गर्भगृह, अन्तराल, प्रदक्षिणापथ, महामण्डप और अर्धमण्डप हैं। अतः यह मन्दिर पंचायतन शैलीका मन्दिर माना जाता है। इसके ऊर्ध्वच्छन्दमें भी विलक्षणता है। अधिष्ठानके ऊपर जंघा या मन्दिरकी बाह्य दीवारें हैं जिनमें गवाक्ष हैं। जंघापर मूर्तियोंकी तीन पट्टिकाएँ हैं। इसकी छतें कोणस्तूपाकार हैं जो क्रमशः उन्नत होती गयी हैं और उनकी समाप्ति उत्तुंग शिखरमें होती है। यह पर्वतशृंखला-सी प्रतीत होती है। शिखरकी चोटीपर आमलक, उसपर चन्द्रिकाएँ, फिर छोटा आमलक, उसपर कलश और अन्ततः बीजपूरक हैं। मन्दिरमें प्रवेश करनेके लिए सोपान-पथ है।

इसका गर्भगृह १३ फुट १० इंच × १५ फुट ६ इंच है। मध्य शिलासनपर भगवान् शान्ति-नाथकी ५ फुट ३ इंच उन्नत पद्मासन मूर्ति है। सिरके ऊपर छत्रत्रय है। दोनों शीर्ष कोणोंपर आकाशचारी गन्धर्व हाथमें माला लिये हुए हैं। शेष भाग खण्डित हैं। दायीं ओर एक शिला-फलकमें ५ फुट ५ इंच उन्नत खड्गासन मुद्रामें तीर्थंकर-प्रतिमा है। सिरपर छत्र हैं। कोनोंपर गज और मालावाहक गन्धर्व हैं। अधोभागमें चमरेन्द्र और यक्ष-यक्षी बने हुए हैं। इस फलकमें तीर्थं-करोंकी अनेक खड्गासन मूर्तियाँ बनी हैं।

दायीं ओरकी दीवारके सहारे ४ फुट ५ इंच उन्नत दो पद्मासन प्रतिमाएँ रखी हैं।

मुख्य मूर्तिके बगलमें बायीं ओर ३ फुट २ इंच समुन्नत पद्मासन प्रतिमा है।

गर्भगृहका प्रवेशद्वार अत्यन्त अलंकृत है। महामण्डपमें दायीं ओरकी दीवारमें शान्तिनाथ-की खड्गासन प्रतिमा है। यह १० फुट लम्बी और ४ फुट चौड़ी है। एक पद्मासन और एक खड्गासन मूर्ति और है। एक मूर्ति भगवान् पुष्पदन्तकी है। पद्मासन मूर्ति ३ फुट २ इंच ऊँची है। सिरके पीछे अलंकृत भामण्डल है। ऊपरका भाग भग्न है। इनके अतिरिक्त २ पद्मासन एवं २ खड्गासन मूर्तियाँ हैं।

बायीं ओरकी दीवारमें एक शिलाफलकमें भगवान् शान्तिनाथकी ५ फुट ३ इंच उन्नत खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। अधोभागमें वीरासनसे दो इन्द्र हाथ जोड़े हुए बैठे हैं। इसका ऊपरका भाग खण्डित है। ये सब मूर्तियाँ दीवारमें बने हुए ताकोंमें विराजमान हैं।

महामण्डपमें ऊपरी भागमें चारों ओर पृथक् कोष्ठकोंमें चैत्यालय बने हुए हैं।

मन्दिरके द्वारके ललाट-बिम्बपर शान्तिनाथ तीर्थंकरकी यक्षी महामानसी बनी हुई है। उसके ऊपरी भागमें चैत्यालय है। चौखटोंपर मिथुन-मूर्तियाँ हैं तथा चौखटोंके अधोभागमें खड़ी

हुई देवी-मूर्तियाँ हैं। अर्धमण्डप और महामण्डपके वितान अत्यन्त मनोरम ढंगसे अलंकृत हैं। मन्दिरकी बाह्य भित्तियोंपर यक्ष-यक्षी और सुरसुन्दरियोंकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं।

मालादेवी जैन मन्दिरसे भेजी गयी एक सुर-सुन्दरीकी मूर्तिको विश्व-मूर्तिकला-प्रतियोगितामें प्रथम स्थान प्राप्त हुआ है। इस मूर्तिके सम्बन्धमें २८ जून १९६५के नवभारत टाइम्समें जो समाचार प्रकाशित हुआ है, इस प्रकार है—"म. प्र. के ग्यारसपुर नामक स्थानसे उपलब्ध १७ इंचकी एक पत्थरकी मूर्तिने पिछले तीन वर्षोंमें विश्वख्याति प्राप्त कर ली है। भारतकी एक उत्कृष्ट शिल्पकृतिके रूपमें इस मूर्तिने विश्व भ्रमण कर लिया है। १९६२ ई. में यह पश्चिमी जर्मनीमें आयोजित 'भारतके पाँच हजार' प्रदर्शिनीमें तथा १९६३ में जापानमें और अभी पिछले दिनों अमेरिकाके प्रमुख नगरोंमें प्रदर्शित की जा चुकी है। अपने देशमें पुरातत्त्व शताब्दी समारोहमें भी इसका गौरवशाली स्थान रहा।"

मन्दिरके बाहर परिसरमें एक स्थानपर ४ चरणयुगल बने हुए हैं तथा १ खड्गासन तीर्थंकर मूर्ति उत्कीर्ण है। इसी प्रकार एक अन्य शिलापर १ चरणयुगल अंकित है। इन चरण-चिह्नोंसे मनमें एक सम्भावना जाग्रत् होती है कि यह नगर सिद्धक्षेत्र भी हो सकता है। किन्तु पौराणिक या ऐतिहासिक प्रमाणोंके अभावमें इसके सिद्धक्षेत्र होनेकी पुष्टि कर देना युक्ति-युक्त नहीं होगा। हाँ, इस सम्भावनासे इनकार नहीं किया जा सकता कि यहाँ मुनिजन तपस्याके लिए आते होंगे। पर्वतकी एकान्त शान्ति, चारों ओरका अनुपम प्राकृतिक सौन्दर्य और पर्वतसे नीचे बहती हुई नदी आदि बातोंसे यह स्थान तपस्याके लिए अति उपयुक्त ठहरता है।

मन्दिरके निकट दीवार और भवनोंके चिह्न मिलते हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि प्राचीन कालमें मन्दिरके चारों ओर अहाता होगा तथा मुनिजनोंके उपयुक्त आवास बने होंगे।

वज्रमठ

मन्दिरके पृष्ठ भागसे पहाड़से उतरकर पगडण्डी द्वारा लगभग २ फर्लांग चलनेपर पहाड़की तलहटीमें वज्रमठ पहुँचते हैं। उसमें एक पंक्तिमें तीन गर्भगृह हैं। मध्य गर्भगृहके बाहर अर्धमण्डप है। मन्दिरके ऊपर शिखर है। कलाकी दृष्टिसे खजुराहोके पार्श्वनाथ मन्दिरके शिखरके साथ इसका बड़ा साम्य है। मध्य गर्भगृह ७ फुट ६ इंच × ७ फुट ९ इंच है। चौरस वेदीपर ऋषभदेवकी ६ फुट ९ इंच उन्नत देशी पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा है। सिरके पृष्ठभागमें भामण्डल और सिरके ऊपर छत्रत्रयी है। इनके दोनों पार्श्वोंमें गज हैं तथा आकाशविहारी गन्धर्व हाथमें माला लिये हुए हैं। प्रतिमाके दोनों ओर दो पद्मासन और दो खड्गासन तीर्थंकर-मूर्तियाँ हैं। चमरेन्द्र हाथीपर खड़े हैं। मूर्तिके हाथ तथा परिकरके कई भाग खण्डित हैं।

बायीं और दायीं ओरके गर्भगृह मध्य गर्भगृहसे एक फुट छोटे हैं। बायीं ओरके गर्भगृहमें एक तीर्थंकर मूर्ति खड्गासन मुद्रामें है। यह ७ फुट ९ इंच उन्नत है। सिरके ऊपर छत्र सुशोभित है। छत्रोंके दोनों पार्श्वोंमें चैत्यालय बने हुए हैं। उनमें पद्मासन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। परिकरका शेष भाग खण्डित है।

दायीं ओरके गर्भगृहमें ४ फुट १० इंच ऊँची एवं खड्गासन मुद्रामें तीर्थंकर मूर्ति विराजमान है। मूर्तिके सिरके ऊपर छत्र और उनके पार्श्वमें गन्धर्व हैं। इस मूर्तिके बगलमें एक अन्य तीर्थंकर मूर्ति है जो २ फुट ऊँची और खड्गासन है। सिरपर तीन छत्र हैं।

तीनों गर्भगृहोंके द्वार अलंकृत हैं। उनमें सिरदलपर अर्हन्त मूर्ति है। चौखटोंपर मिथुन-मूर्तियाँ और अधोभागमें देवी-मूर्तियाँ हैं। गर्भगृह साधारण ऊँचाईवाले हैं। मध्य गर्भगृहके ऊपर

समुन्नत शिखर है। उसके किनारे उभारदार हैं। शीर्षभागमें आमलक, चन्द्रिका, लघु आमलक और बीजपूरक हैं। किन्तु बगलके दोनों गर्भगृहोंकी छतें कोणस्तूपाकार हैं जो सोपान-शैलीमें उठती हुई शिखर तक जा पहुँची हैं। इससे शिखरकी शोभा द्विगुणित हो गयी है। मन्दिरको देखनेसे लगता है कि यह मन्दिर अधिक विशाल रहा होगा। निश्चय ही इसमें महामण्डप बना होगा। इसके स्तम्भ तथा अन्य सामग्री मन्दिरके आसपास बिखरी हुई है। यह भी लगता है कि पूर्वकी ओर ऊपर जानेके लिए जीना रहा होगा।

मन्दिरकी बाह्य भित्तियोंपरपर अलंकरण पट्टिकाएँ बनी हुई हैं, जिनमें विभिन्न तीर्थंकरोंके शासन-देवताओं और देवियोंकी, सुरसुन्दरियों और व्यालोंकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इनमें कुछ हिन्दू देवताओंकी भी मूर्तियाँ हैं। मन्दिरके निकट दो खण्डित तीर्थंकर मूर्तियाँ रखी हुई हैं। इनमें एक पद्मासन मूर्ति ४ फुट ६ इंच अवगाहनाकी है। इसकी बाँह और पैर खण्डित हैं। दूसरी मूर्ति भी पद्मासन है। इसका सिर नहीं है। सम्भवतः यह मूर्ति पार्श्वनाथकी है। इसका सर्पफणमण्डित सिर अलग पड़ा हुआ है। यह इसी मूर्तिका प्रतीत होता है।

मन्दिरकी बाह्य भित्तियोंपर हिन्दू देवताओंकी मूर्तियाँ देखकर कुछ विद्वानोंने यह आशंका व्यक्त की है कि यह मन्दिर मूलतः हिन्दू मन्दिर है। किन्तु यह आशंका निराधार है। मन्दिरके प्रवेश-द्वारपर, स्तम्भों और भित्तियोंपर जैन तीर्थंकरों और यक्ष-यक्षियोंकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं। किन्तु यह अवश्य विचारणीय है कि एक जैन मन्दिरमें हिन्दू मूर्तियाँ उत्कीर्ण किये जानेका क्या कारण है। हमारी सम्मतिमें इसका एक ही कारण हो सकता है। वह यह कि इस जैन मन्दिरके निर्माताका दृष्टिकोण अत्यन्त उदार रहा हो। शिल्पकारोंने उसकी उदारतासे लाभ उठाकर यहाँ अपने धर्मकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण कर दी हों। जैनोंमें ऐसी उदारता सदासे रही है। इसके उदाहरण अनेक स्थानोंपर मिलते हैं। किसी हिन्दू मन्दिरमें जैन देवताओं अथवा कथानकोंका अंकन किया गया हो, ऐसा उदाहरण हमारे दृष्टिपथमे नही आया। किन्तु जैन मन्दिरोंमे हिन्दू देवताओं और कथाओंका अंकन कई स्थानोपर हुआ मिलता है। कुछ विद्वानोंने भ्रम या अज्ञानवश तीर्थंकर मूर्तियोंको बुद्ध, शिव और विष्णुकी मूर्तियाँ भी लिख दिया है।

इस मन्दिरका निर्माता कौन था और इस मन्दिरका नाम वज्रमठ कैसे पड़ गया, इस सम्बन्धमें कोई लिखित साक्ष्य प्राप्त नही होता। किन्तु हमें लगता है, मुसलमानोंकी क्रूर विध्वंस-लीलाके बाद भी जब यह मन्दिर सुरक्षित रह गया तो जनताने इसका नाम वज्रमठ रख दिया। इस मन्दिरका निर्माण ९वीं-१०वीं शताब्दीमें हुआ था।

वज्रमठसे नगरमें आनेपर एक स्थानपर कुएँके पास तीर्थंकर मूर्ति रखी हुई है। इसे हिन्दू लोग सिन्दूर पोतकर भैरोंके नामसे पूजते हैं।

अठखम्भा नगरसे दूसरी ओर बना हुआ है। ये किसी प्राचीन विशाल मन्दिरके अलंकृत स्तम्भ हैं। सम्भवतः इनमें-से चार स्तम्भ तो महामण्डपके आधार-स्तम्भ थे, दो अन्तरालके और दो गर्भगृहके प्रवेशद्वारके। इन स्तम्भोंका शिल्प और तक्षण अत्यन्त समृद्ध और कलापूर्ण हैं। एक स्तम्भपर लेख भी है। इसके अनुसार वि. संवत् १०३९ में किसी भक्तने यहाँकी यात्रा की थी। अतः अनुमान किया जाता है कि इस मन्दिरका निर्माण ईसाकी नौवीं शताब्दीमें हुआ होगा।

१. Report of the Archaeological Survey of India, Vol. VII, pp. 90-95.
२. Report of the Archaeological Survey of India, Vol. X, pp. 31-35.

मालव-अवन्ती जनपद

मक्सी पार्श्वनाथ
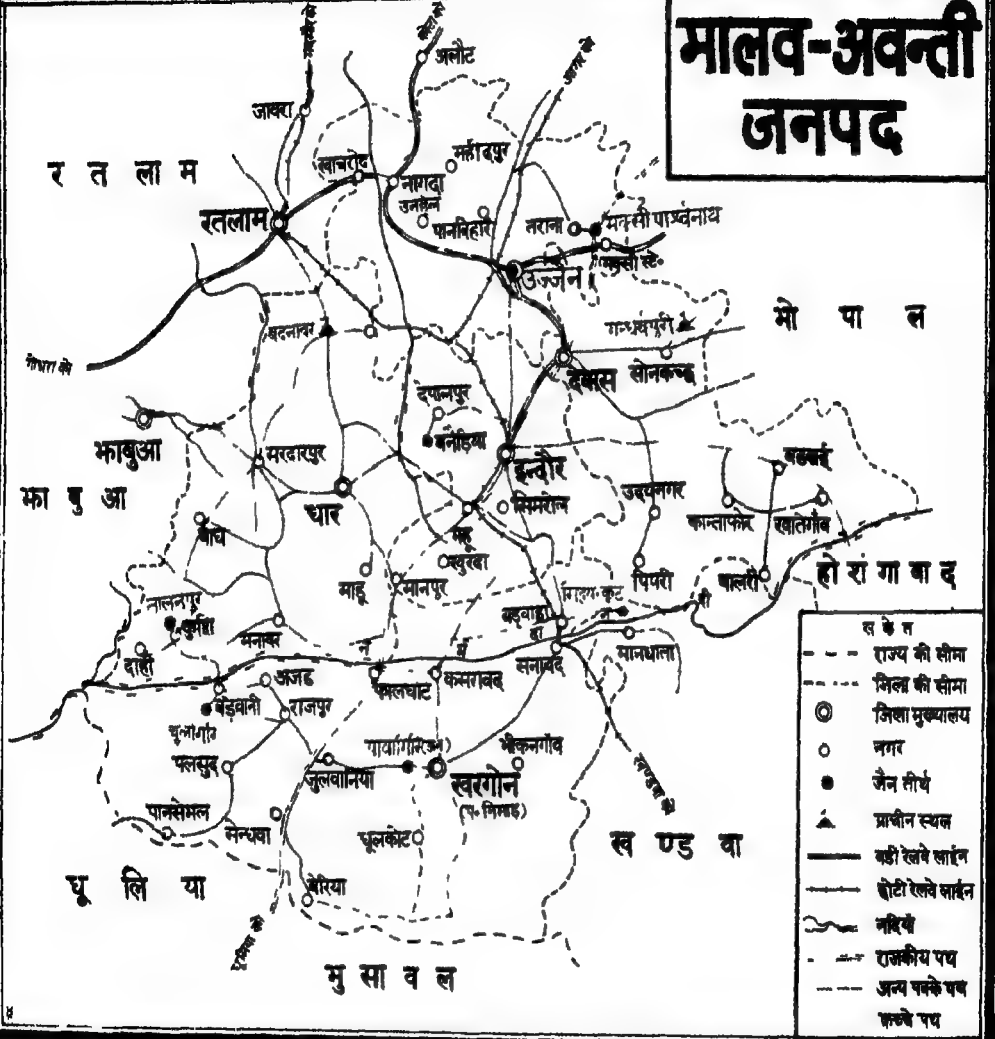
उज्जयिनी

बदनावर

गन्धर्वपुरी

चूलगिरि

तालनपुर

पावागिरि

सिद्धवरकूट

बनेड़िया

१. भारतके महासर्वेक्षककी अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभागीय मानचित्रपर आधारित।

२. मानचित्रमें दिये गये नामोंका अक्षर-विन्यास विभिन्न सूत्रोंसे लिया गया है।

मक्सी पार्श्वनाथ

मार्ग और अवस्थिति

श्री अतिशय क्षेत्र मक्सी पार्श्वनाथ सेण्ट्रल रेलवेकी भोपाल-उज्जैन शाखापर मक्सी नामक स्टेशनसे लगभग तीन कि. मी. दूर है। स्टेशनसे लगभग एक फर्लांग दूर दिगम्बर जैन धर्मशाला भी है। क्षेत्रपर दो मन्दिर हैं। उज्जैनसे यह क्षेत्र ३८ कि. मी. है और इन्दौरसे ७२ कि. मी.। क्षेत्रके लिए उज्जैन, इन्दौर, शाजापुरसे बराबर बसें मिलती हैं। यहाँ पोस्ट आफिस है। इसका जिला शाजापुर है। गाँवका नाम, जहाँ यह क्षेत्र है, कल्याणपुर है।

अतिशय

यह क्षेत्र भगवान् पार्श्वनाथकी प्रतिमाके अतिशयोंके कारण अतिशय क्षेत्र कहलाता है। इस मूर्तिके विविध चमत्कारोंकी कथाएँ जनश्रुतियोंके रूपमें प्रसिद्ध हैं। महमूद गजनवीने भारतके विभिन्न भागोंपर सन् १००० से १०२७ तक अनेक बार आक्रमण किये। आक्रमण करनेमें उसका मुख्य ध्येय इस्लामका प्रचार, भारतीयोंको इस्लामकी दीक्षा देना, भारतके मन्दिर और मूर्तियोंका विनाश करना, यहाँसे धन लूटना और अपने साथ अधिकसे अधिक हाथी और गुलामोंको गजनी ले जाना था। वह जब देशको रौंदता हुआ और मन्दिरों, मूर्तियोंका भंजन करता हुआ मक्सी आया, उस समय रात्रि हो गयी थी। उसने सैनिकोंको विश्राम करनेकी आज्ञा दी। प्रातःकाल होनेपर पार्श्वनाथकी विख्यात मूर्ति और मन्दिरको तोड़नेकी उसकी योजना थी। किन्तु रातमें वह भयानक रूपसे बीमार पड़ गया। उसे अन्तः अनुभव होने लगा कि यह यहाँके पार्श्वनाथका चमत्कार है। उसने फौजको आदेश दिया कि वे जैनियोंके इस मन्दिर और मूर्तिको कोई नुकसान न पहुँचावें। बल्कि उसने अपने कृत्यके प्रायश्चित्तस्वरूप मन्दिरके मुख्य द्वारपर ईरानी शैलीके पाँच कँगूरे बनवा दिये, जिससे इस घटनाकी स्मृति सुरक्षित रह सके तथा अन्य कोई मुस्लिम आक्रान्ता इसपर आक्रमण न करे।

ये कंगूरे मन्दिरके द्वारपर अब तक बने हुए हैं। लगता है, कि उक्त घटना महमूद गजनवी-की न होकर मालवाके किसी सुलतानकी है क्योंकि महमूद मालवामें तो आ ही नहीं पाया था। सुलतानका क्या नाम था, यह तो ज्ञात नहीं हो सका किन्तु उपर्युक्त घटनामें सत्य अवश्य मालूम पड़ता है।

एक और भी अनुश्रुति है। कुछ चोर ताला तोड़कर चोरी करनेके इरादेसे मन्दिरमें घुसे। वे माल-असबाबकी गठरी बाँधकर चलने लगे लेकिन वे अन्धे हो गये। वे रात-भर परिक्रमामें घूमते रहे, किन्तु मार्ग नहीं मिला। सुबह होनेपर वे मय मालके पकड़े गये।

यह निश्चित है कि मक्सीके पार्श्वनाथ चमत्कारी हैं और यहाँ अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाएँ घटित होती रहती हैं। इसलिए यहाँके सम्बन्धमें अनेक रहस्यपूर्ण किंवदन्तियाँ प्रचलित हो गयी हैं। आज भी अनेक जैनेतर लोग भी यहाँ मनौती मनाने आते हैं।

क्षेत्रका इतिहास

इस क्षेत्रका कोई प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध नहीं है। इसके सम्बन्धमें भी एक किंवदन्ती अवश्य प्रचलित है। प्राचीन कालमें शाजापुर-उज्जैन मार्गपर मक्सी गाँवमें एक ब्राह्मण राहगीरोंको पानी पिलाया करता था। एक रातमें उसे स्वप्नमें कोई दिव्य पुरुष कह रहा था—जहाँ तेरी प्याऊ है, उसके नीचे जमीनमें भगवान् हैं। उन्हें तू निकाल। दूसरे दिन उसने जमीन खोदी तो पार्श्वनाथकी मूर्ति निकली। ब्राह्मणको अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि भगवान्‌ने प्रकट होकर उसे दर्शन दिये हैं। उसने अपनी झोपड़ीमें मूर्ति विराजमान कर ली। वह भैरव मानकर इसकी पूजा करता था। इसके ऊपर तेल-सिन्दूर चढ़ाता। धीरे-धीरे लोगोंको इसके बारेमें पता चलता गया। लोग यहाँ आते, मनौती मनाते।

एक बार एक दिगम्बर जैन श्रेष्ठीको किसी अपराधमें कैद करके उज्जैन ले जाया गया। श्रेष्ठीका पुत्र अपने पितासे मिलने उज्जैन जा रहा था। मार्गमें मक्सीमें वह उक्त ब्राह्मणकी प्याऊपर पानी पीने रुका। बातों-बातोंमें उसे भैरवके चमत्कारोंका पता चला। उसने भैरवजीके दर्शन किये और मनौती मनायी, "अगर मेरे पिता कैदसे मुक्त हो जायेंगे तो मैं तुम्हारे लिए एक मन्दिर बनवाऊँगा।" मनौती मनाकर वह चल दिया। उस रातको उज्जैन नरेशको स्वप्न दिखाई दिया। स्वप्नमें राजाको कोई आदेश दे रहा था—"तुम शाजापुरके श्रेष्ठीको अविलम्ब मुक्त कर दो।" राजाने प्रातःकाल होते ही श्रेष्ठीको मुक्त कर दिया। श्रेष्ठीका पुत्र उज्जैन पहुँचकर अपने पितासे मिला। वहाँसे दोनों पिता-पुत्र घर पहुँचे। रातको श्रेष्ठी-पुत्रको स्वप्नमें एक दिगम्बर मुनिके दर्शन हुए। वे श्रेष्ठी-पुत्रसे कह रहे थे—"तुम मक्सीमें जिसे भैरव समझ रहे हो, वे तो भगवान् पार्श्वनाथ हैं।" श्रेष्ठी-पुत्र प्रातः होते ही अपने इष्ट-मित्रोंके साथ मक्सी पहुँचा। वहाँ देखा कि प्रतिमाका तेल-सिन्दूर अपने आप साफ हो चुका है। अब भगवान् पार्श्वनाथकी मनोज्ञ प्रतिमा वहाँ विराजमान थी। सबने भक्तिभावसे भगवान्‌के दर्शन किये और उनकी पूजा की। श्रेष्ठी-पुत्रने मक्सीमें एक विशाल मन्दिर निर्माण कराया। उसमें पार्श्वनाथ प्रतिमा विराजमान कराकर अपनी प्रतिज्ञाको पूर्ण किया।

इस किंवदन्तीमें घटनामूलक परिचय तो है किन्तु मन्दिर निर्माणके सम्बन्धमें विशेष कोई जानकारी नहीं मिलती। अन्य भी कोई स्रोत नहीं है, जिससे मन्दिर-निर्माताका नाम और परिचय ज्ञात हो सके। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भगवान् पार्श्वनाथकी यह मनोज्ञ प्रतिमा दिगम्बर परम्पराकी है। इस मन्दिरका निर्माण किसी अज्ञात दिगम्बर धर्मानुयायीने कराया है। प्रारम्भसे इस मन्दिरका स्वामित्व, व्यवस्था और अधिकार दिगम्बर समाजके अधीन रहा है। यहाँके मन्दिर, धर्मशाला, तालाब, बगीचा आदिका निर्माण दिगम्बर समाजने कराया है। पहले यहाँ दिगम्बर समाजके लोगोंकी संख्या बहुत थी। किन्तु आजीविका और व्यापारकी दृष्टिसे अधिकांश दिगम्बर जैन अन्यत्र चले गये। अवसर पाकर यहाँके ब्राह्मण पुजारियोंने मन्दिरके पीछे देहरियोंमें महादेव, हनुमान्, विष्णु एवं नवग्रहकी मूर्तियाँ रख दीं। मुसलमानोंने मन्दिरके पीछे बगीचेके पास अपनी कब्रें बना दी। अव्यवस्थाके इसी कालमें श्वेताम्बरोंने अपनी विधिसे पूजा करना और क्षेत्रकी सम्पत्तिपर अधिकार जमानेका प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया।

इस अतिशय क्षेत्रका उल्लेख भट्टारक सुमतिसागर (सोलहवी शताब्दीके मध्यमें), भट्टारक ज्ञानसागर (सोलहवी शताब्दीके अन्तमें), भट्टारक जयसागर (सत्रहवीं शताब्दीका पूर्वार्ध), भट्टारक ब्रह्महर्ष (सन् १८४३–१८६६) ने अपनी रचनाओंमें किया है। इनसे पूर्ववर्ती मदनकीर्ति

और आचार्य जिनप्रभसूरिने 'शासन-चतुस्त्रिंशिका' तथा 'विविध-तीर्थकल्प' में इस क्षेत्रका कोई उल्लेख नहीं किया। ये दोनों विद्वान् १३वीं-१४वीं शताब्दीके हैं। इन दोनोंने ही तत्कालीन प्रसिद्ध तीर्थोंके सम्बन्धमें परिचयात्मक प्रकाश डाला है, किन्तु मक्सी पार्श्वनाथका उल्लेख तक नहीं किया। इससे लगता है कि इस क्षेत्रके अतिशयोंकी ख्याति इन विद्वानोंके कालमें नहीं हो पायी थी, जबकि इन दोनोंने ही मालवाके अभिनन्दननाथ जिनकी स्तुति की है और बताया है कि यवनों द्वारा यह प्रतिमा तोड़ी जानेपर वह पुनः जुड़ गयी और अवयवों सहित वह ठीक हो गयी। उसके पश्चात् उस प्रतिमामें अनेक चमत्कार प्रकट हुए। 'विविध-तीर्थकल्प' में तो अवन्तिदेशके इस अभिनन्दननाथ जिनकी घटनाके सम्बन्धमें यह भी बताया है कि यह घटना मालवाधिपति जयसिंह देवके शासन-कालसे कुछ वर्ष पूर्वमें हुई थी।

उपर्युक्त विवेचनसे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मक्सी पार्श्वनाथ अतिशय-क्षेत्र-की स्थापना १४वीं शताब्दीके पश्चात् कभी हुई है। सम्भवतः पार्श्वनाथकी यह मूर्ति किसी मन्दिरमें थी। मन्दिरको आक्रान्ताओंने नष्ट कर दिया। १४वीं-१५वीं शताब्दीमें यह मूर्ति भूगर्भसे निकाली गयी और मन्दिरका निर्माण करके उसमें यह विराजमान की गयी। तबसे इसके अतिशयोंकी प्रसिद्धि हुई और यह अतिशय क्षेत्रके रूपमें प्रसिद्ध हो गया। लेकिन सोलहवीं शताब्दीमें यह क्षेत्र ख्यातिके शिखरपर पहुँच चुका था। भट्टारक ज्ञानसागरने इस क्षेत्रके सम्बन्धमें जैसी प्रशंसा की है, उससे इस धारणाकी पुष्टि होती है। उन्होंने लिखा है—

"मालव देश मझार नयर मगसी सुप्रसिद्धह।
महिमा मेरु समान निर्धनकूं धन दीधह।
मगसी पारसनाथ सकल संकट भयभंजन।
मनवांछित दातार विघनकोटि मद गंजन।
रोग शोक भय चोर रिपु तिस नामे दूर पले।
ब्रह्म ज्ञानसागर वदति मनवांछित सघलों फले॥

—सर्वतीर्थ वन्दना-२४

इसमें ज्ञानसागरजीने मक्सीके पार्श्वनाथको समस्त संकटोंको दूर करनेवाला, मनोकामना पूर्ण करनेवाला, विघ्नोंका हर्ता, रोग-शोक, भय, चोर-शत्रु इनको दूर करनेवाला बताया है। अवश्य ही भट्टारकजीके कालमें मक्सीके पार्श्वनाथकी प्रसिद्धि इसी रूपमें रही होगी।

अधिकारके लिए संघर्ष

यह मन्दिर मूलतः दिगम्बर जैन सम्प्रदायका था और इसकी व्यवस्था आदि भी सदासे दिगम्बर जैन समाजकी एक निर्वाचित प्रबन्ध समिति करती थी। इसका निर्माण भी दिगम्बर जैन समाजने केवल अपने द्रव्यसे कराया था। मन्दिरसे सम्बन्धित मकान, बगीचा आदि सभी चल-अचल सम्पत्ति दिगम्बर जैन समाजने ही बनवायी थी। मन्दिरोंमें जो मूर्तियाँ हैं, वे सभी दिगम्बर आम्नायकी हैं। यहाँ कभी-कभी श्वेताम्बर सम्प्रदायके लोग भी दर्शनोंके लिए आ जाते थे। भगवान्‌के दर्शन-पूजनसे किसीको वंचित न रखा जाये, इस नीतिके अनुसार उस समयकी प्रबन्ध समितिने श्वेताम्बर लोगोंको दर्शन-पूजन करनेसे कभी नहीं रोका।

पूजाके प्रश्न और सम्पत्तिकी मालिकीको लेकर श्वेताम्बर समाजने विवाद खड़ा कर दिया। जब विवाद किसी प्रकार शान्त नहीं हुआ, तब केस अदालतमें गया। तब अगस्त १८८२ में पंचनामे द्वारा यह तय हुआ था कि बड़े मन्दिरमें दोनों समाजोंको अपनी-अपनी आम्नायके

अनुसार दर्शन-पूजन करने दिया जाये। फैसलेमें प्रातः ६ बजे से ९ बजे तकका समय पूजनके लिए दिगम्बर समाजको दिया गया। उसके बादका समय श्वेताम्बर समाजको दिया गया। दर्शनके लिए किसीके ऊपर समयका प्रतिबन्ध नहीं रखा गया। फैसलेमें बड़ा मन्दिर श्वेताम्बर समाजके प्रबन्धमें दिया गया और छोटे मन्दिरका प्रबन्ध दिगम्बर समाजके। तत्कालीन ग्वालियर महाराजका आदेश स्पष्ट है कि सुपुर्दगीका अर्थ मालिकी नहीं, केवल ट्रस्टीशिप है क्योंकि मन्दिरकी मालिकी देवतामें निहित है। इनकी आय उनको होगी, जिनके सुपुर्द यह है। किसी सम्प्रदायका कोई व्यक्ति, जो किसी मन्दिरमें दर्शन, पूजनको जाये, वह कोई नयी बात नहीं करेगा। दिगम्बरी अपनी मान्यतानुसार बड़ी मूर्तिका अभिषेक, दर्शन और पूजन करते हैं और भविष्यमें भी करते रहेंगे।

इसके बाद सदाके लिए दोनोंका विवाद समाप्त करनेके लिए ग्वालियर महाराजने बड़े मन्दिरकी सुपुर्दगी और व्यवस्था श्वेताम्बर समाजसे लेकर दिनांक ४-५-१९२१ की आज्ञा द्वारा पंचकमेटीके सुपुर्द कर दी। इस कमेटीमें दो दिगम्बर, दो श्वेताम्बर और ग्वालियर हाईकोर्टके मुख्य न्यायाधीशको सम्मिलित किया गया। मुख्य न्यायाधीशकी ओरसे जिलेका कलेक्टर नियुक्त किया गया।

सन् १९२७ में ग्वालियर दरबारकी आज्ञासे नियुक्त सुपरिण्टेण्डेण्टने श्वेताम्बर-दिगम्बर पंचोंके सामने मन्दिरकी सब मूर्तियोंका विवरण तैयार किया था। उसकी पुस्तिका भी बनकर प्रकाशित हुई थी। उसमें देवरियोंकी सभी मूर्तियाँ दिगम्बर बतलायी हैं।

कानूनने बहुत स्पष्ट निर्णय दिये हैं किन्तु श्वेताम्बर लोगोंने मूलनायक पार्श्वनाथ भगवान्‌की दिगम्बर प्रतिमाको श्वेताम्बर आम्नायकी बनानेके कई बार प्रयत्न किये। इस बीच ४२ दिगम्बर मूर्तियोंपर नेत्र जड़ दिये गये हैं।

वर्तमानमें स्थिति इस प्रकार है—

(१) छोटे मन्दिर और उसकी धर्मशालापर दिगम्बर जैन समाजका पूर्ण अधिकार है। (२) बड़े मन्दिरमें प्रातः ६ बजेसे ९ बजे तक दिगम्बर समाजका कोई भी यात्री दिगम्बर आम्नायके अनुसार स्वतन्त्रतापूर्वक पूजा-प्रक्षाल कर सकता है। (३) दिगम्बर समाजको अधिकार है कि पूजाके समय मूलनायक श्री पार्श्वनाथकी मूर्तिपर किसी तरहका कोई आभूषण या शृंगार होवे तो उसे अलग कर देवे। (४) दिगम्बर यात्री जब भी दर्शन करना चाहें, उन्हें दर्शन करनेसे नहीं रोका जा सकता।

क्षेत्र-दर्शन

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मक्सी बस्तीके मध्यमें अवस्थित है। यहाँ परकोटेके अन्दर दो मन्दिर और धर्मशालाएँ हैं। परकोटेके मुख्य द्वारसे प्रवेश करनेपर दायीं ओर बड़ा मन्दिर (मुख्य मन्दिर) है तथा बायीं ओर धर्मशाला बनी हुई है। मन्दिरमें प्रवेश करनेपर सामने एक चबूतरेपर भगवान् पार्श्वनाथकी कृष्ण वर्ण पद्मासन मूर्ति विराजमान है। मूर्तिकी अवगाहना ३ फुट ६ इंच है। चबूतरा दो फुट ऊँचा है। मूर्तिके नीचे कोई पीठासन नहीं है। मूर्तिके सिरपर सप्त फणावली सुशोभित है। यह मूर्ति अत्यन्त सौम्य, शान्त एवं मनोज्ञ है। मुखपर सहज वीतरागता अंकित है। यह बलुआ पाषाण की है और इसके ऊपर ओपदार पालिश की हुई है। मूर्तिके दर्शन करनेपर दृष्टि और मन उसीपर केन्द्रित हो जाते हैं और हृदय भक्तिके सरस भावोंसे परिपूर्ण हो जाता है। यह प्रतिमा भगवान्‌के उस वीतराग रूपकी साक्षात् प्रतीक है, जब भगवान् अन्तर्बाह्य

परिग्रहसे रहित होकर पद्मासन मुद्रामें ध्यानावस्थित थे। उनके नेत्र ध्यानावस्थामें अर्धोन्मीलित थे, दृष्टिनासाके अग्रभागपर स्थिर थी और परम शुक्ल ध्यान द्वारा घातिया कर्मोंका नाश करके अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य और अनन्तसुखरूप अनन्त चतुष्टय प्राप्त कर अर्हन्त परमेष्ठी हुए। अष्ट प्रातिहार्ययुक्त उसी अवस्थाकी यह मूर्ति है।

प्रतिमाकी फणावलीके दोनों पार्श्वोंमें दो गज हैं। उनमें नीचे दो पुरुष खड़े हैं। बायीं ओरके पुरुषके हाथमें माला है। दायीं ओरके पुरुषके हाथमें कुछ नहीं है। उनसे नीचे दोनों पार्श्वोंमें चमरवाहक नागेन्द्र खड़े हुए हैं। ये सभी काली पालिशसे रँगे हुए हैं। इन्हें किन्हीं अनाड़ी हाथोंने गढ़ा है। लगता है भगवान्‌का यह सम्पूर्ण परिकर बादमें निर्मित हुआ है।

इस मूर्तिपर कोई लेख या लांछन नहीं है। सर्पफण-मण्डलके कारण पार्श्वनाथकी पहचान हो जाती है। जब यह प्रतिमा भूगर्भसे निकाली गयी, तब चरण-चौकी भूगर्भमें ही दबी रह गयी। अतः यह किस कालमें निर्मित हुई, इसका कोई प्रामाणिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। लोग भक्तिवश इसे चतुर्थ कालकी अर्थात् ईसा पूर्व छठी-सातवीं शताब्दीकी कहते हैं। पालिशके कारण इसके पाषाणकी भी परीक्षा नहीं हो सकती। साहित्यिक साक्ष्यके आधारपर देखें तो मदनकीर्ति यतिवर की 'शासनचतुस्त्रिंशिका' और 'विविधतीर्थकल्प' में या उनसे पूर्ववर्ती किसी ग्रन्थमें इस प्रतिमाकी चर्चा नहीं मिलती। सम्भव है, यह परमार कालकी रचना हो। यदि यह अनुमान सत्य हो तो यह स्वीकार करना होगा कि अपने प्रारम्भिक कालमें यह विशेष प्रसिद्ध नहीं थी। मुस्लिम कालमें इसका मन्दिर तोड़ दिया गया या टूटकर गिर गया होगा और यह प्रतिमा मन्दिरके अवशेषोंमें दब गयी होगी। जब भूगर्भसे निकालकर विराजमान किया गया, तब इसके चमत्कारोंका सौरभ बिखरा।

मूल वेदीके दायें और बायें पार्श्वमें एक-एक वेदी है, जो चबूतरेनुमा है। बायीं ओरकी वेदीपर कृष्णवर्णके पार्श्वनाथ विराजमान हैं। दायीं ओरकी वेदीपर नेमिनाथ स्वामीकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। मूलतः यह प्रतिमा श्वेत पाषाणकी है, किन्तु किन्हीं लोगोंने काला लेप लगाकर इसे कृष्ण वर्णकी बना दी है। इसके दोनों पार्श्वोंमें दो खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। ये सभी मूर्तियाँ दिगम्बर आम्नायकी हैं। इस वेदीपर सप्त धातुकी चन्द्रप्रभ स्वामीकी एक प्रतिमा विराजमान है। उसका मूर्तिलेख निम्न भाँति पढ़ा गया है—

'विक्रम संवत् १८९९ वर्षे मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे ११ बुधवारे श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वती गच्छे श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये....टीकमगढ़ निवासी चौधरी लक्ष्मणस्तस्य भ्राता....प्राणसुखस्तेन प्रतिमेयं श्री क्षेत्र मक्सीमध्ये प्रतिष्ठिता'।

टीकमगढ़ निवासी चौधरी लक्ष्मणदास प्राणसुखदासने यहाँके छोटे मन्दिरका निर्माण किया था और उसमें मूलनायक सुपार्श्वनाथ विराजमान किये थे। इसपर भी यही लेख अंकित है। ये दिगम्बर धर्मानुयायी श्रावक थे। टीकमगढ़में उनके वंशज अब तक विद्यमान हैं।

सभामण्डपमें चक्रेश्वरी और पद्मावतीकी मूर्तियाँ हैं। चक्रेश्वरीकी एक मूर्ति ताकमें है जिसके ऊपरी भागपर आदिनाथ भगवान्‌की दिगम्बर प्रतिमा विराजमान है। इस मन्दिरके सिरदलपर मध्यमें नेमिनाथ तथा इधर-उधर खड्गासन दिगम्बर मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

बड़े मन्दिरकी परिमा (परिक्रमा) में ४२ देहरियाँ (छोटे देवालय) बनी हुई हैं। इनमें ४ देहरियाँ खाली पड़ी हुई हैं। इनमें जीवराज पापड़ीवाल द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ विराजमान हैं।

सेठ जीवराज पापड़ीवाल एक धर्मात्मा दिगम्बर श्रावक थे। उन्होंने विक्रम संवत् १५४८ वैशाख सुदी ३ को सैकड़ों-हजारों मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करायी। प्रतिष्ठाचार्य थे भट्टारक जिनचन्द्र।

उन्होंने मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा कराके गाड़ियोंमें उन्हें भरवाकर विभिन्न स्थानोंके मन्दिरोंको भेज दिया। यही कारण है कि उत्तर भारतका तो शायद ही कोई मन्दिर ऐसा होगा जिसमें जीवराज पापड़ीवाल द्वारा प्रतिष्ठित मूर्ति विराजमान न हो। प्रायः उनकी सभी मूर्तियोंपर लेख रहता है। यह मूर्ति-लेख बहुधा निम्न प्रकारका या इससे मिलता-जुलता रहता है—

'संवत् १५४८ वैशाख सुदि ३ श्रीमूलसंघे भट्टारक जिनचन्द्रदेव साहु जीवराज पापड़ीवाल नित्यं प्रणमति सौख्यं शहर मुड़ासा श्री राजस्य सिंह रावल।'

भट्टारक जिनचन्द्र दिगम्बर परम्परामें बलात्कारगणकी दिल्ली-जयपुर शाखाके भट्टारक थे। वे भट्टारक शुभचन्द्र (सं. १४५०-१५०७) के शिष्य थे। इनका भट्टारक काल संवत् १५०७ से १५७१ तक माना जाता है। आपने अपने जीवन-कालमें अनेक मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करायी।

यहाँकी सभी देहरियोंमें सेठ जीवराज पापड़ीवाल द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ विराजमान हैं। अतः ऐसा लगता है कि देहरियोंकी प्रतिष्ठा पापड़ीवालने ही करायी थी और इन प्रतिमाओंको यहाँ विराजमान किया था। यदि यह मान लिया जाये कि पापड़ीवालने देहरियोंकी प्रतिष्ठा नहीं करायी, तब भी यह तो स्वीकार करना ही होगा कि मूलतः यह मन्दिर दिगम्बर परम्पराका था। इसलिए श्री पापड़ीवालने यहाँ मूर्तियाँ भिजवायीं क्योंकि उन्होंने किसी श्वेताम्बर मन्दिरमें मूर्तियाँ नहीं भिजवायी थीं।

देहरी नं. ३९ में नन्दीश्वर द्वीपकी रचना है। इसमें ५२ प्रतिमाएँ हैं। इनमें ४४ प्रतिमाएँ खड्गासन हैं, शेष पद्मासन हैं और दिगम्बर हैं। नन्दीश्वर द्वीपकी यह रचना दिगम्बर परम्पराके अनुसार है। श्वेताम्बर परम्परामें तो इस प्रकारकी नन्दीश्वर रचना कहीं नहीं मिलती।

बड़े मन्दिरमें एक शिलालेख (नं. १) है, जिसमें उल्लेख है कि इस मन्दिरका निर्माण संग्रामसिंह सोनोने संवत् १४७२ में कराया जो माण्डवगढ़के सुलतान महमूद खिलजीका खजांची था। मूर्तिकी प्रतिष्ठा संवत् १५१८ में की गयी। शिलालेखपर संवत् १६६७ उत्कीर्ण है। किन्तु शिलालेखकी लिपिके आधारपर यह शिलालेख अति आधुनिक प्रतीत होता है। प्राचीन संवत् डालकर नये शिलालेख बनवाने और उनसे अपने पक्षकी पुष्टि करनेका इतिहास पुराना है।

बड़े मन्दिरसे दक्षिणकी ओर इस अहातेमें ऊँचे चबूतरेपर छोटा मन्दिर है। यह सुपार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर कहलाता है। इस मन्दिरमें गर्भालय तथा महामण्डप बना हुआ है। गर्भालयमें भगवान् सुपार्श्वनाथकी कृष्ण वर्ण पद्मासन मूर्ति विराजमान है। इसकी अवगाहना २ फुट ६ इंच है तथा इसकी प्रतिष्ठा संवत् १८९९ में हुई। प्रतिमा चौरस वेदीमें विराजमान है। इस मन्दिर और मूर्तिकी प्रतिष्ठा टीकमगढ़ निवासी सेठ लक्ष्मणदास प्राणसुखदासने करायी थी, जिन्होंने बड़े मन्दिरकी चन्द्रप्रभ भगवान्की धातु-मूर्तिकी प्रतिष्ठा करायी। सुपार्श्वनाथकी प्रतिष्ठाके साथ ही चन्द्रप्रभकी भी प्रतिष्ठा हुई थी। उन्होंने एक मूर्ति छोटे मन्दिरमें मूलनायकके रूपमें विराजमान कर दी और धातु-मूर्ति बड़े मन्दिर में। बड़ा मन्दिर तब तक दिगम्बर परम्पराका मान्य मन्दिर था और दिगम्बर समाजके ही अधिकारमें था।

मूलनायक भगवान् सुपार्श्वनाथके दोनों पार्श्वोंमें महावीर और सुपार्श्वनाथकी मूँगिया वर्णकी पद्मासन मूर्तियाँ विराजमान हैं। इनकी अवगाहना १ फुट ८ इंच है। इसके आगेकी कटनीपर भ. पार्श्वनाथकी १ फुट ४ इंच उन्नत संवत् १५४८ की तथा भ. आदिनाथकी १ फुट २ इंच ऊँची लेखरहित तथा दो धातु-मूर्तियाँ एक पार्श्वनाथ २ फुट २ इंच तथा चौबीसी १ फुट ८ इंच विराजमान हैं।

महामण्डपमें एक वेदीमें भगवान् पार्श्वनाथकी कृष्ण पाषाणकी ५ फुट उन्नत पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। यह संवत् २०२५ की प्रतिष्ठित है।

इस मन्दिरके बराबरमें एक छोटा मन्दिर है। इसमें तीन दरकी एक वेदी है। मध्यमें भगवान् पार्श्वनाथकी कृष्ण पाषाणकी पद्मासन मूर्ति विराजमान है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९६१ में हुई थी। इसके पार्श्वमें बायीं ओर चन्द्रप्रभ और दायीं ओर पार्श्वनाथकी श्वेतवर्ण पाषाणपर पद्मासन मूर्तियाँ विराजमान हैं। दोनों ही सेठ जीवराज पापड़ीवाल द्वारा संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित हुई थीं।

छोटे मन्दिरके मुख्य प्रवेशद्वारके बगलमें क्षेत्रका कार्यालय है। मन्दिरके पृष्ठ भागमें धर्मशाला है। मन्दिरके आगे चबूतरा है। उसपर क्षेत्रके दक्षिणकी ओर सड़कके लिए द्वार बना हुआ है। क्षेत्रके अहातेसे पृष्ठ भागकी सड़क मिली हुई है। क्षेत्रके पीछे तालाब बना हुआ है।

धर्मशाला

छोटे मन्दिरके पृष्ठ भागमें धर्मशाला बनी हुई है। इसमें ११ कमरे हैं। रसोईघर, स्नान-गृह, शौचालय, बगीचा ये सब धर्मशालाके पृष्ठ भागमें हैं। जलके लिए नल और कुआँ है। प्रकाशके लिए बिजली है। नगरमें सभी आवश्यक वस्तुएँ मिल जाती हैं। बड़े मन्दिरके प्रवेश-द्वारके सामने भी एक धर्मशाला है।

क्षेत्रके अहातेसे लगा हुआ एक अहाता और है जिसमें विश्रान्ति भवन बना हुआ है। इसके ऊपरके भागमें दिगम्बर जैन गुरुकुल है तथा नीचेका भाग यात्रियोंके उपयोगके लिए है। यहाँ भी नल और बिजलीकी समुचित व्यवस्था है।

क्षेत्रपर स्थित संस्थाएँ

वर्तमानमें क्षेत्रपर एक गुरुकुल चल रहा है, जिसका संचालन मालवा प्रान्तिक दिगम्बर जैन सभा बड़नगर द्वारा किया जाता है।

व्यवस्था

क्षेत्रकी सम्पूर्ण व्यवस्था एक निर्वाचित प्रबन्ध समिति करती है। यह समिति मध्यप्रदेशीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटीके अधीन है।

वार्षिक मेला—इस क्षेत्रपर फाल्गुन शुक्ला ८ से १५ तक वार्षिक मेला होता है।

उज्जयिनी

उज्जयिनीका महत्त्व

उज्जयिनी, वर्तमानमें जिसे उज्जैन कहते हैं, भारतकी प्राचीन नगरियोंमें-से है। यह अवन्तिदेश (मालवा) में—सिप्रा नदीके तटपर अवस्थित है। प्राचीन भारतके इतिहासमें इस नगरीका महत्त्व सांस्कृतिक और राजनैतिक दृष्टिसे शताब्दियों तक रहा है। अनेक राजवंशोंकी राजधानी बननेका गौरव इसे प्राप्त हुआ, कई प्रमुख नरेशोंने इसे उपराजधानी भी बनाया। यहाँ-पर ऐसी अनेक घटनाएँ हुई हैं, जिनका भारतके सांस्कृतिक जीवनपर गहरा प्रभाव पड़ा और

जिन्होंने संस्कृतिकी विभिन्न धाराओंको ही मोड़ दिया। जैन संस्कृतिका उज्जयिनीके साथ गहरा सम्बन्ध रहा है, इसलिए जैन संस्कृतिके इतिहासमें उज्जयिनीको विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

जैन साहित्यमें उज्जयिनी

भगवज्जिनसेन कृत 'आदिपुराण' के अनुसार भगवान् ऋषभदेवने भारतको ५२ जनपदोंमें विभाजित किया था, उनमें अवन्ती जनपद भी था। प्राचीन कालमें इसकी राजधानी [1]उज्जयिनी थी। मालवाका ही प्राचीन नाम अवन्ती था। ईसाकी सातवीं-आठवीं शताब्दीसे अवन्तीका नाम मालवा हो गया।

उज्जयिनीका सम्बन्ध अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरके साथ भी रहा है। यहाँके अतिमुक्तक श्मशानमें तपस्या-रत भगवान् महावीरके ऊपर रुद्रने घोर उपसर्ग किया था। आचार्य गुणभद्रकृत 'उत्तरपुराण'[2] में वर्णित इससे सम्बन्धित कथाका सारांश इस प्रकार है—

एक बार विभिन्न देशोंमें विहार करते हुए भगवान् महावीर उज्जयिनी नगरी पधारे और वहाँके अतिमुक्तक श्मशानमें आतापन योग धारण करके ध्यानमग्न हो गये। उन्हें देखकर महादेव रुद्रने उनके धैर्यकी परीक्षा करनी चाही। उसने रात्रिमें भगवान्‌के ऊपर घोर उपसर्ग किया। उसने अनेक भयंकर वैतालोंका रूप धारण किया। उन वैतालोंमें कोई भयंकर मुख फाड़ रहा था, मानो निगल जाना चाहता था। कोई दूसरे वैतालका पेट फाड़कर उसमें प्रवेश करना चाहता था। कोई भयंकर अट्टहास कर रहा था, कोई नृत्य कर रहा था, कोई बीभत्स रूप बनाकर किलकारियाँ मार रहा था। इन उपसर्गोंका जब भगवान् पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, तब वह सर्प, हाथी, सिंह, अग्नि और भीलोंकी सेनाके भयंकर रूप बनाकर उपसर्ग करने लगा और भगवान्‌को समाधिसे विचलित करनेका घोर प्रयत्न करने लगा। किन्तु धीर-वीर भगवान् ध्यानसे तनिक भी विचलित नहीं हुए। रुद्रने अपनी पराजय स्वीकार कर ली। वह भगवान्‌के चरणोंमें नमस्कार करके बार-बार अपने अपराधोंकी क्षमा-याचना करने लगा। फिर उसने भक्तिमें गद्गद होकर भगवान्‌की स्तुति की, नृत्य किया और भगवान्‌के महति और महावीर ऐसे दो नाम रखकर स्वस्थानको चला गया।

श्वेताम्बर मान्यतानुसार उस उपसर्ग-भूमिमें नन्दिवर्धनने एक विशाल जिनालयका निर्माण कराया, जिससे जनताको भगवान्‌पर हुए घोर उपसर्ग और उनकी अविचल धीरता-वीरताकी स्मृति बनी रहे। पुराणप्रसिद्ध सुकुमालकी मृत्यु यहीं हुई थी। उनकी स्मृतिमें एक जिनालयका निर्माण अवन्ति सुकुमालके पुत्रने कराया[3] था। सम्भवतः बादमें इस मन्दिरको परिवर्तित करके महाकालका मन्दिर बना दिया गया। महाकाल मन्दिरके प्रांगणमें एक समाधि भी बनी हुई है, जिसे 'कोटि तीर्थ' कहते हैं। महाकालके कारण उज्जयिनीका एक नाम महाकाल वन भी है। हिन्दू मान्यतानुसार द्वादश[5] ज्योतिर्लिंगोंमें महाकालकी गणना की गयी है।

महावीरकी उपसर्ग-भूमि होनेके अतिरिक्त उज्जयिनीमें एक ऐसी घटना हुई, जिसने सम्पूर्ण जैन इतिहासको ही झकझोर दिया और भगवान् महावीरसे चले आ रहे एक और अखण्ड जैन

१. ब्रह्मपुराण अ. ४३, अनर्घराघव अंक ७।
२. उत्तरपुराण, पर्व ७४, श्लोक ३३१।
३. स्थविरावलि चरित, ११।१७७, परिशिष्ट पर्व, ११।१६७-१७७।
४. ,, अध्याय २२।
५. शिवपुराण, १–३८, ४६।

संघको दिगम्बर और श्वेताम्बर इन दो भागोंमें सदाके लिए विभक्त कर दिया। इस सम्बन्धमें निम्नलिखित कथा[1] प्राप्त होती है।

अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु संघ सहित उज्जयिनी नगरी पधारे। उस समय उज्जयिनीमें सम्राट् चन्द्रगुप्त आये हुए थे। वे सम्यग्दृष्टि एवं महान् श्रावक थे। एक दिन आचार्य भद्रबाहुने आहारके निमित्त एक घरमें प्रवेश किया। वहाँ केवल एक शिशु पालनेमें पड़ा हुआ था। वह शिशु बोला—तुम यहाँसे शीघ्र चले जाओ। निमित्तज्ञानी भद्रबाहुने जान लिया कि यहाँ बारह वर्ष तक वर्षा नहीं होगी और घोर दुष्काल पड़ेगा। यह जानकर वे आहार लिये बिना ही लौट गये। उन्होंने संघको एकत्रित करके उससे कहा—आप लोग यहाँसे शीघ्र विहार करके अन्यत्र चले जायें। यहाँ बारह वर्ष तक दुष्काल पड़नेवाला है। यह सुनकर सम्राट् चन्द्रगुप्तने उनके पास जिन-दीक्षा ले ली। मुनि होनेके पश्चात् चन्द्रगुप्तका नाम विशाख हो गया। वे दसपूर्वियोंमें प्रथम हुए और संघके अधिपति बना दिये गये।

मुनि-संघ आचार्य भद्रबाहुके साथ दक्षिणकी ओर चला गया, जहाँ सुभिक्ष था। वहाँ मुनि लोग विभिन्न गणनायकोंके नेतृत्वमें आचार्य महाराजकी आज्ञासे विभिन्न स्थानोंमें चले गये। भद्रबाहु और विशाखाचार्य (इनका नाम कहीं-कहीं प्रभाचन्द्र भी मिलता है) कटवप्र पर्वत (श्रवणबेलगोलाका चन्द्रगिरि) पर ठहर गये और एक गुफामें—जिसे आजकल भद्रबाहु गुफा कहते हैं—विशाखाचार्य अपने गुरुकी सेवा करते रहे। आचार्य भद्रबाहुका समाधिमरण यहीं हुआ।

जब उत्तर भारतमें दुर्भिक्ष समाप्त हो गया तो विशाखाचार्य संघ सहित मध्यदेश लौट आये। वहाँ आकर उन्होंने देखा कि मध्यदेशमें जो साधु दुर्भिक्षके समय रह गये थे वे वस्त्र धारण करने लगे तथा मुनि-आचारके विरुद्ध आचरण करने लगे हैं। आचार्यने उन मुनियोंसे इस प्रकारका मुनि-मार्ग-विरुद्ध आचरण करनेका कारण पूछा। तब उन मुनियोंने अकालजन्य वे परिस्थितियाँ बतायीं, जिनसे बाध्य होकर उन्हें मुनि-मार्गके विरुद्ध आचरण करना पड़ा। आचार्यने सुनकर कहा—अब स्थिति बदल गयी है। तुमलोग वस्त्र छोड़कर पुनः मुनि-धर्मका चारित्र पालन करो। आचार्यके उपदेशसे उनमें-से अनेक मुनियोंने वस्त्र त्यागकर प्रायश्चित्त लिया। किन्तु जो मुनि शिथिलाचारके अभ्यस्त हो गये थे, उन्होंने वस्त्रका त्याग करना स्वीकार नहीं किया। वे वस्त्र पहनते रहे और अपने शिथिलाचारको जैन परम्परासम्मत सिद्ध करनेका प्रयत्न भी करते रहे। शिथिलाचारसे उत्पन्न हुई यह परम्परा बादको श्वेताम्बर सम्प्रदाय हुआ तथा तीर्थंकरों द्वारा प्ररूपित मूल परम्परा दिगम्बर सम्प्रदाय कहलाने लगा।

इस प्रकार जैन संघके इस दुर्भाग्यपूर्ण विभाजनमें उज्जयिनीका प्रमुख हाथ रहा है।

उज्जयिनी अन्य अनेक पौराणिक घटनाओंकी केन्द्र रही है। मुनि विष्णुकुमारके प्रसिद्ध कथानकसे सम्बन्धित बलि, बृहस्पति, प्रह्लाद और नमुचि नामक चारों मन्त्री उज्जयिनी नरेश श्रीधर्माके राज्यमन्त्री थे। एक दिन अकम्पनाचार्य अपने विशाल संघके साथ उज्जयिनीके उद्यानमें ठहरे। राजा चारों मन्त्रियोंके साथ राजमहलकी छतपर बैठा हुआ था। उसने देखा, नगरवासी विशाल संख्यामें उद्यानकी ओर जा रहे हैं। पूछनेपर बलि बोला—"राजन्! राजोद्यानमें कुछ नंगे साधु आये हैं। उन्हींके दर्शनोंके लिए ये नागरिक जा रहे हैं।" राजाने कहा—"फिर तो हमें भी उन साधुओंके दर्शनोंके लिए चलना चाहिए।" वह पूजाकी सामग्री लेकर चलनेको उद्यत हुआ

---

१. हरिषेण कथाकोष–कथा १३९ देवसेन कृत भावसंग्रह। आक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया–वी. स्मिथ, पृष्ठ ७५-७६।

तो बलि आदिने राजाको रोकनेका बहुत प्रयत्न किया। किन्तु राजाने उनकी बात स्वीकार नहीं की और वह मुनियोके दर्शनार्थ गया। मन्त्रियोंको भी साथमें जाना पड़ा किन्तु उन्होंने राजासे एक शर्त रखी कि हम उन नग्न साधुओंसे वाद-विवाद करके उन्हें पराजित करेंगे। राजाने उनकी यह शर्त स्वीकार कर ली।

आचार्य अकम्पनने ध्यानयोगसे परिस्थिति जान ली और फिर विचार करके संघस्थ सब साधुओंको मौन रखनेका आदेश दे दिया। किन्तु श्रुतसागर नामक एक मुनिको इस आदेशका परिज्ञान नहीं था। वे उस समय चर्याके लिए नगरमें गये हुए थे।

जब राजा मन्त्रियोंके साथ मुनियोंके निकट पहुँचा तो राजाने मुनियोंकी भक्तिपूर्वक वन्दना की। किन्तु मुनियोंको मौन देखकर बलि राजासे गर्वपूर्वक बोला—"देखा महाराज! मेरे भयके कारण इन्होंने मौन रखना ही श्रेयस्कर समझा।" राजाने बलिकी इस गर्वोक्तिकी उपेक्षा कर दी। जब राजा और मन्त्री नगरको वापस लौट रहे थे तो मार्गमें उन्हें श्रुतसागर मुनि आते हुए मिले। उन्हें देखकर बलि बोला—"महाराज, देखिए, शृंग-पुच्छहीन एक नग्न वृषभ सामनेसे आ रहा है।" श्रुतसागर मुनिने बलिकी इस असभ्य उक्तिको सुन लिया। वे बोले—"भद्र! तुम कहाँसे आ रहे हो?" बलि बोला—"तू तो बड़ा ज्ञानी है। इतना भी नहीं जानता, मैं कहाँसे आ रहा हूँ।" मुनि बोले—"मैं जानता हूँ, तुम नगरसे आ रहे हो, किन्तु मैं पूछ रहा हूँ, तुम नरक से, निगोद से, तिर्यंच गति से कहाँ से इस जन्ममे आये हो?" बेचारा बलि क्या बताता। वह बोला—"यह तो कोई नही बता सकता।" मुनि बोले—"मैं जानता हूँ तुम्हारे भवान्तर। तुम इसी नगरमें मनुष्य हुए थे। क्रोधके कारण नरकमें गये। वहाँसे निकलकर तुम हिरण हुए। एक व्याधने बाणसे तुम्हे मार दिया, तब तुम देवकी माता और देव पितासे बलि नामक पुत्र हुए और इस राजाके मन्त्री बने।" राजा मुनिसे बलिके भवान्तर सुनकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ और उन्हें नमस्कार करके मन्त्रियोंके साथ चल दिया।

श्रुतसागर मुनि वाद जीतकर अपने गुरु अकम्पनाचार्यके पास आये और उन्हें सारी घटना सुना दी। सुनकर गुरुने आज्ञा दी—"वत्स! तुम संघ छोड़कर अन्यत्र एकान्तमें कायोत्सर्ग करो, जिससे संघपर कोई संकट न आवे।" गुरुकी आज्ञासे श्रुतसागर मुनि नगरके निकट एकान्त स्थानमें ध्यान लगाकर खड़े हो गये। रात्रिमे वे चारों मन्त्री श्रुतसागर मुनिको मारनेकी इच्छासे आये और मार्गमे ही खड़े हुए मुनिको देखकर अपने अपमानका बदला लेनेके लिए भयंकर क्रोधमें चारोंने एक साथ मुनिके ऊपर तलवारका प्रहार किया। किन्तु देवताने उन चारोंको वहीं कील दिया। सारी रात वे मुनि-निन्दक इसी अवस्थामें खड़े रहे। सूर्योदय होनेपर जब लोगोंने यह भयानक दृश्य देखा तो उन्होंने इसकी सूचना राजाको दी। राजा अविलम्ब वहाँ आया। असंख्य जनमेदिनी वहाँ एकत्रित हो गयी। तब आकाशस्थित देवी राजासे बोली—"मेरे वासस्थानमें ध्यानमग्न इन मुनिकी हत्या करनेका प्रयत्न करनेवाले इन दुष्टोंका वध मैं अब तुम्हारे ही समक्ष करूँगी।" राजा हाथ जोड़कर बोला—"देवी! मेरे कहनेसे आप इन नराधमोंको छोड़कर मुझे इनका न्याय करनेका अवसर दीजिए।" देवीने राजाके कहनेसे उन पापियोंको मुक्त कर दिया और मुनिको नमस्कार करके अन्तर्धान हो गयी। राजाने उन चारोंको देशसे निर्वासित कर दिया। राजा और प्रजा मुनिको नमस्कार करके अपने-अपने आवासोंको लौट आये। मुनि भी नियम पूर्ण होनेपर ध्यान समाप्त कर गुरु-चरणोंमें पहुँच गये।

उज्जयिनीसे सम्बन्धित एक अन्य घटना पुराणोंमें इस प्रकार मिलती है—

उज्जयिनी नरेश धृतिषेणके पुत्रका नाम चण्डप्रद्योत था। वह अठारह लिपियोंके वेत्ता उपाध्याय कालसन्दीवसे अध्ययन करता था। उसने सत्रह लिपियाँ तो सीख लीं। किन्तु अठारहवीं लिपि प्रयत्न करनेपर भी नहीं सीख पाया। एक दिन उपाध्यायने क्रोधमें आकर जोर से लात मारी जो राजकुमारके सिरमें जाकर लगी। राजकुमार क्रुद्ध होकर बोला—"तुमने मेरे सिरमें लात मारी है। जब मैं राजसिंहासनपर बैठूँगा तब तलवारसे तुम्हारे इसी पैरको काटूँगा।" कालसन्दीव बोला—"कुमार, तुम राजा बनोगे और मेरे पैरमें पट्टबन्ध बाँधोगे।"

कालसन्दीव वहाँसे चला गया और मुनिके मुखसे उपदेश सुनकर उसने मुनि-दीक्षा ले ली। कुछ ही कालमें वे समस्त सिद्धान्तके पारगामी विद्वान् हो गये। राजा धृतिषेणने भी चण्डप्रद्योतका राजतिलक करके मुनि-दीक्षा ले ली।

एक बार एक यवन राजाने चण्डप्रद्योत नरेशको यवन भाषामें पत्र भेजा, राजा इसी एक लिपिको नहीं जानता था, यहाँ तक कि उज्जयिनी नगर-भरमें इस लिपिका ज्ञाता कोई नहीं था। यद्यपि राजाने लेख पढ़कर उसका अर्थ तो निकाल लिया, किन्तु सामन्तोंको आदेश दिया, "तुम लोग जाओ और जहाँ भी मेरे गुरु कालसन्दीव मिलें, उन्हें आदरसहित यहाँ ले आओ।" सामन्त सब दिशाओंमें राज-गुरुको ढूँढ़ने निकले। उन्हें राज-गुरु विन्यातटपर ध्यानलीन मिले। उन्हें देखकर सामन्तोंने निवेदन किया, "प्रभो! हम राजाकी आज्ञासे आपको लेने आये हैं। जबतक आप वहाँ नहीं पधारेंगे, तबतकके लिए राजाने ताम्बूलादिका त्याग कर दिया है। इसलिए आप हमारे साथ अवश्य चलिए। सामन्तोंकी प्रार्थना सुनकर कालसन्दीव उनके साथ चल दिये।

जब मुनि कालसन्दीव चण्डप्रद्योतके महलोंमें पहुँचे तो राजाने हाथ जोड़कर उनकी वन्दना की, स्वयं आसन बिछाकर उसपर गुरुको बैठाया, उनके चरणोंका प्रक्षालन किया, उनके चरणोंपर सुगन्धका लेप किया और शंख-भेरी आदि वाद्योंके तुमुल नादके बीच गुरुके दोनों चरणोंमें अष्टापद-युक्त पट्टबन्ध बाँधा। पुष्प आदिसे गुरु-चरणोंकी पूजा करके प्रणिपात किया और दोनों हाथ जोड़कर गुरुसे प्रार्थना की, "भगवन्! मुझे भवोदधि पार करानेवाली जिन-दीक्षा देनेकी कृपा करें।" गुरुने उसकी प्रार्थना स्वीकार करके राजाको मुनि-दीक्षा दे दी।

दीक्षा लेकर मुनि चण्डप्रद्योत घोर तप करने लगे। तपके प्रभावसे उनका शरीर कुन्द धवल हो गया। इससे गुरुने उनका नाम श्वेतसन्दीव रख दिया। गुरु-शिष्य दोनों एक बार राजगृह गये। उस समय विपुलाचलपर भगवान् महावीरका समवसरण आया हुआ था। दोनों भगवान्‌के दर्शन करने समवसरण पहुँचे। श्वेतसन्दीवको देखकर महाराज श्रेणिकने उनसे पूछा—"नाथ! आपने किनसे दीक्षा ली है? यह सुनकर मुनि श्वेतसन्दीव अपने गुरुका नाम न ले सके और बोले—"मेरे गुरु तो भगवान् महावीर हैं।" इस गुरु-निह्नव-जैसे भयानक पापके कारण उनका चन्द्रोज्ज्वल शरीर बुझे हुए अंगारके समान हो गया। राजा श्रेणिकको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने गौतम स्वामीसे इसका कारण पूछा तो गौतम स्वामी बोले—"यह मुनि लज्जावश अपने गुरुका नाम नहीं ले सका और असत्य वचन बोला, जिससे इसका श्वेत शरीर कृष्ण हो गया।" श्वेतसन्दीवने यह सुना तो वे अपने गुरुके चरणोंमें पहुँचे और अपना अपराध निवेदन किया। गुरुने उन्हें प्रायश्चित्त दिया। प्रायश्चित्त द्वारा आत्म-शुद्धि करनेसे मुनि श्वेतसन्दीवको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया।

उज्जयिनीसे सम्बन्धित एक पौराणिक कथा इस प्रकार है—उज्जयिनीमें लकुच नामक राजकुमारने शत्रुपर युद्धमें विजय प्राप्त की। राजाने प्रसन्न होकर उससे वरदान माँगनेके लिए कहा। कुमारने कामचार (इच्छानुसार वर्तन) वर माँगा। राजाने कहा—"तथास्तु!" वर पाकर

राजकुमार उच्छृंखल हो गया। वह पंगुल श्रेष्ठीको पत्नीसे प्रेम करने लगा। एक बार दोनों नन्दन वनमें विहार करने गये। वहाँ धर्मसेन मुनिसे उपदेश सुनकर लकुचने मुनि-दीक्षा ले ली।

एक समय लकुच मुनि विहार करते हुए उज्जयिनी पधारे और महाकाल वनमें कायोत्सर्ग मुद्रामें ध्यानारूढ़ हो गये। पंगुल श्रेष्ठीने उन्हे देखा तो पूर्व वैरके कारण उसका शरीर क्रोधसे काँपने लगा। उसने गर्म लौह शलाकाओंसे मुनिके सारे शरीरको जला डाला, किन्तु मुनि ध्यानमें निश्चल रहे। धर्मध्यानमें उनका मरण हो गया और उनको देवगति प्राप्त हुई।

इसी नगरीमें हार चुरानेके अपराधमें दृढ़सूर्य चोरको फाँसीका दण्ड मिला। जब उसे फाँसी दी जा रही थी तो जिनालयको जाते हुए धनदत्त श्रेष्ठीको देखकर चोरने तृषाकुल होकर पानी माँगा। श्रेष्ठीने कहा—"जबतक मैं पानी लाता हूँ, तबतक तू इस मन्त्रका जाप कर।" यों कहकर श्रेष्ठीने उसे णमोकार मन्त्र सुनाया। श्रेष्ठी जबतक जल लाया, तृषाके कारण चोरके प्राण निकल गये, किन्तु णमोकार मन्त्रके जाप्यके कारण वह कल्पवासी देव हुआ।

राजाको जब ज्ञात हुआ कि धनदत्त श्रेष्ठीने फाँसीका दण्ड पाये हुए अपराधीको जल पिलाया है तो वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने श्रेष्ठीका घर और सम्पत्ति लूटनेकी आज्ञा दे दी। देवने अवधिज्ञानसे यह घटना जानकर आये हुए सैनिकोंको संज्ञाहीन कर दिया। तब राजा बहुत बड़ी सेना लेकर वहाँ आया। दृढ़सूर्य देवने उस सेनाको भी अचेतन कर दिया। राजा भयके कारण भागा और जिनालयमें दर्शन करते हुए धनदत्त श्रेष्ठीकी शरणमें जा पहुँचा और रक्षा करनेकी प्रार्थना करने लगा। तभी वह देव भी वहाँ आ गया। धनदत्त श्रेष्ठीके कहनेपर देवने राजाको मुक्त कर दिया। राजाने तत्काल जिनसेन मुनिके पास जाकर मुनि दीक्षा ले ली। देव भी स्वर्ण-पुष्पोंसे उनकी पूजा करके चला गया।

एक अन्य कथा इस प्रकार है—उज्जयिनीके राजा वृषभदत्तके राज्यमें गुणपाल नामक श्रेष्ठी था। उसकी सेठानीका नाम गुणश्री था। उन दोनोंके विषा नामक एक सुन्दर कन्या थी। इसी नगरमें श्रीदत्त नामक एक सार्थवाह था। उसकी स्त्री श्रीमतीसे सोमदत्त पुत्र हुआ। किन्तु जब वह माताके गर्भमें था, तब तो उसके पिताकी मृत्यु हो गयी और जब उसका जन्म हुआ तो उसकी माताकी मृत्यु हो गयी। उस सद्यःजात अभागे बालकका उसके कुटुम्बीजनोंने पालन किया। किन्तु ज्यों-ज्यों उस बालककी अवस्था बढ़ती गयी, त्यों-त्यों कुल और सम्पत्तिका क्षय होता गया। अब वह निराश्रय अनाथ बालक गुणपाल श्रेष्ठीके द्वारपर खड़ा रहता और जो जूठन फेंकी जाती, उससे अपना पेट भरता।

एक दिन दो मुनि वहाँसे निकले। शुभलक्षणोंसे युक्त इस बालकको देखकर छोटे मुनि बोले—"आर्य, इस बालकके लक्षण तो राजाओं जैसे हैं किन्तु भाग्यकी कैसी विडम्बना है कि यह जूठन खाता फिर रहा है।" बड़े मुनि अवधिज्ञानी थे। वे बोले—"आयुष्मन्! यह बालक जिस सेठकी जूठन खा रहा है, एक दिन यही बालक उस सेठकी सम्पत्तिका स्वामी होगा।"

गुणपाल श्रेष्ठीने मुनियोंकी वार्ता सुन ली और सोचने लगा—"यह हतभाग्य अनाथ बालक, मेरी इस अगाध सम्पत्तिका स्वामी बनेगा, फिर मेरे पुत्रका क्या होगा?" इसलिए इसको मार देना चाहिए। उसने निश्चय करके एक चाण्डालको बुलाया और उस बालकको एकान्तमें मारनेके लिए उससे सौदा किया। चाण्डाल बालकको सिप्राके एकान्त तटपर ले गया, किन्तु जब वह उसे मारनेको तैयार हुआ, उसके क्रूर हृदयमें भी बालकके प्रति दया उमड़ पड़ी और उसे वहीं छोड़कर चला आया। उसने श्रेष्ठीसे कह दिया कि बालकका वध कर दिया है।

बालक नदीका जल पीकर और जंगलके फल खाकर एक वृक्षकी छायामें सो गया। तभी गोविन्द गोपाल उधरसे निकला। उसने एक सुलक्षण बालकको वृक्षके नीचे सोता देखा। वह बालकको देखकर अपने घर पहुँचा और उसे अपनी पत्नी धनश्रीको दे दिया। वह निस्सन्तान थी। एक सुन्दर बालकको पाकर वह बड़ी हर्षित हुई। अब बालक सोमदत्तका लालन-पालन प्रेमपूर्वक होने लगा। उसे दूध-घीकी अब कोई कमी नहीं थी। धीरे-धीरे बालक युवक हो गया।

गुणपाल श्रेष्ठीका गोविन्द गोपालके साथ व्यवहार था। एक दिन गुणपाल गोविन्दके घर पहुँचा। उसने घरमें एक रूपवान् युवकको देखा। उसे देखते ही श्रेष्ठीने पहचान लिया। उसे निश्चय हो गया कि चाण्डालने उसे धोखा दिया है। श्रेष्ठीने गोपालसे पूछा—"यह सुदर्शन युवक कौन है ?" गोपाल बोला—"यह मेरा पुत्र है।" श्रेष्ठी पुत्रकी प्रशंसा करता हुआ बोला—"गोविन्द ! अपने पुत्रको मेरे घर भेज दे। मुझे अत्यन्त आवश्यक कार्य आ पड़ा है, अन्यथा मेरी बड़ी क्षति हो जायेगी। मुझे अभी ग्रामान्तर जाना है।" गोविन्दने स्वीकार कर लिया और पुत्रको वस्त्राभूषण पहनाकर भेज दिया। श्रेष्ठीने चलते समय उसे मुद्रांकित पत्र दे दिया।

सोमदत्त वहाँसे चल दिया। जब वह उज्जयिनीके बाहर वनमें पहुँचा तो वह बहुत थक गया था। वह विश्राम करनेके लिए एक वृक्षके नीचे लेट गया। लेटते ही उसे नींद आ गयी। तभी वसन्ततिलका गणिका वन-विहारके लिए वहाँ आयी। उसने एक रूपवान् युवकको वृक्ष तले सोता हुआ देखा। उसे देखते ही वह उसके ऊपर मोहित हो गयी। तभी उसकी दृष्टि युवकके गलेपर बँधे हुए पत्रपर पड़ी। उसने चुपकेसे पत्र खोल लिया और कुतूहलवश उसे पढ़ने लगी। पत्र पढ़ते ही वह एकदम चौंकी। पत्रमें लिखा था—"प्रिये ! जबतक मैं घर लौटूं, उससे पूर्व ही पत्रवाहकको विष दे देना।" वसन्ततिलका पत्रसे सारी स्थिति समझ गयी। उसने अपने नेत्रोंके काजलकी सहायतासे उस लेखमें इस प्रकार संशोधन कर दिया। "प्रिये, जबतक मैं घर लौटूं तबतक लेखवाहकके साथ मेरी पुत्री विषाका विवाह कर देना।" वसन्तमालाने पत्र पुनः मुद्रांकित करके पूर्ववत् युवकके गलेमें बाँध दिया।

सोमदत्त उठा और उज्जयिनीमें गुणपाल श्रेष्ठीके घर पहुँचा। वहाँ उसे गुणपालका पुत्र महाबल मिला। सोमदत्तने मुद्रांकित पत्र उसे दे दिया। उसने पत्र पढ़ा। पढ़ते ही वह अत्यन्त हर्षित हुआ। उसने जाकर यह समाचार अपनी माताको सुनाया। सारे घरमें हर्षका वातावरण बन गया। सोमदत्तका हार्दिक स्वागत-सत्कार हुआ। महाबलने उसी दिन सोमदत्तके साथ अपनी बहन विषाका विवाह कर दिया। उसने दहेजमें अपार धन-राशि और माल दिया। जब वर-वधू विवाह मण्डपमें बैठे हुए थे, तभी धूल-धूसरित गुणपाल श्रेष्ठी आ पहुँचा। उसने यह अकल्प्य दृश्य देखा तो उसे मर्मान्तक वेदना हुई। वह भीतरी कक्षमें जाकर शय्यापर हताश होकर लेट गया। महाबल उसके पास आया और पिताको शोकाकुल देखकर कहने लगा—"पूज्य ! आपकी आज्ञानुसार मैंने बहन विषाका विवाह सोमदत्तके साथ करनेका आयोजन किया है। आप उदास क्यों हैं ?" श्रेष्ठी उष्ण निश्वास फेंकते हुए बोला—"तूने मेरी अनुपस्थितिमें विषाका विवाह भी कर दिया ? तूने मेरे आनेकी भी प्रतीक्षा नहीं की ?" महाबलने वह लेख लाकर पिताको देकर कहा—आप अपने लेखको पढ़िए। मैंने तो उसीके अनुसार यह कार्य किया है।" श्रेष्ठी माथा ठोककर रह गया। विवाह सानन्द सम्पन्न हो गया।

१. अहं गृहं न यावच्च समायामि नितम्बिनि। तावद्विषं प्रदातव्यं लेखवाहाय सत्वरम् ॥
२. अहं गृहं न यावच्च समायामि नितम्बिनि। तावद्विषा प्रदातव्या लेखवाहाय मत्सुता ॥

—हरिषेण कथाकोष—कथा ७२

किन्तु श्रेष्ठी हार माननेवाला प्राणी नहीं था। उसने एकान्तमें अपनी पत्नीसे परामर्श करके एक नवीन योजना बनायी। उसने सन्ध्याके समय धूप-पुष्पादि सामग्रीसे सज्जित थाल देते हुए सोमदत्तसे कहा—"कुल-परम्परासे हमारे यहाँ विवाहके बाद नाग-पूजाकी रीति चली आयी है। तुम यह सामग्री लेकर नागमन्दिर चले जाओ।" सरलहृदय सोमदत्त पूजाका थाल लेकर चला। मार्गमें उसका साला महाबल मिल गया। उसे जब पता चला कि सोमदत्त अकेले ही नाग-मन्दिर जा रहे हैं तो उसे पिताका यह कार्य बड़ा अरुचिकर लगा और सोमदत्तसे थाल लेकर महाबल नागमन्दिरको चल दिया।

श्रेष्ठीने एक बधिकको नागमन्दिरमें पहलेसे ही छिपा दिया था। उसे आदेश था कि सन्ध्या-के समय जो व्यक्ति पूजाका थाल लेकर आवे, उसे तुम तलवार द्वारा मार देना। महाबलने ज्यों ही नाग-मन्दिरमें प्रवेश किया, प्रतीक्षारत बधिकने एक ही प्रहारमें उसके शरीरके दो खण्ड कर दिये।

सोमदत्त घर पहुँचा। उसे जीवित देखकर गुणपाल बड़े आश्चर्यके साथ पूछने लगा—"क्यों, तुम नागमन्दिर गये नहीं?" सोमदत्त बोला—"आर्य, मैं नागमन्दिर जा रहा था। मार्गमें महाबल मिल गये। वे मुझसे जबरदस्ती थाल लेकर मन्दिर चले गये।" यह सुनते ही श्रेष्ठी वहाँसे एक पलका भी विलम्ब किये बिना नागमन्दिरकी ओर भागा। उसे जिस दुर्घटनाकी आशंका थी, वही उसे अपनी आँखोंसे देखनी पड़ी। उसका एकमात्र पुत्र महाबल दो खण्डोंमें मृत पड़ा हुआ था। मन्दिरकी देव-भूमि रक्तस्नात थी। भवितव्य होकर ही रहती है। वह दुर्बुद्धि अपनी पुत्रीका सुहाग मिटाने चला था किन्तु उसके पापोंकी झंझावातने उसीके कुलदीपकको बुझा दिया।

आश्चर्य है, इतनी बड़ी दुर्घटनासे भी उसकी हियेकी गाँठ न खुल सकी। उसके सिरपर प्रतिशोधका भयंकर पिशाच चढा हुआ था। उसने अपनी स्त्रीसे कहा—"सोमदत्त मेरा जामाता नहीं, शत्रु है। इसे जल्दीसे जल्दी विष देकर समाप्त कर दो।" स्त्रीने बड़े जतनसे मोदक बनाये। उनमें सुगन्धि और नाना भाँतिके मेवा पड़े हुए थे। इनके साथ हलाहल विष भी मिश्रित था।

गुणश्री मोदक बनाकर पड़ोसमें कहीं चली गयी और अपनी पुत्रीसे कहती गयी—"बेटी! मैंने जामाताके लिए ये मोदक तैयार किये हैं। तू अपने हाथसे उन्हें खिला देना।" तभी गुणपाल आ गया और पुत्रीसे बोला—"बेटी, मुझे राजाने बुलाया है। कुछ खानेको हो तो ले आ। पता नहीं, वहाँ कितना समय लग जाये।" पुत्रीने वे ही मोदक लाकर पिताको परोस दिये। श्रेष्ठी शीघ्रताके कारण ध्यान नहीं दे सका अथवा उसे ज्ञान नहीं था। वह उन मोदकोंको खा गया। खाते ही उसका प्राणान्त हो गया। गुणश्री पड़ोसके मकानमें बैठी हुई रुदनके शब्दकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसके कानोंमें करुण विलापका स्वर पहुँचा। वह मनमें हर्ष सँजोये त्वरित गतिसे घर पहुँची। किन्तु जिसके मरणके लिए नाना उपाय किये गये थे, वह सोमदत्त श्वसुरके निधनपर आँसू बहा रहा था और मरण-योजनाओंका सूत्रधार मृत पड़ा था। श्रेष्ठिनी पछाड़ खाकर गिर पड़ी और विलाप करती हुई एक-एक कर उन क्रूर चालोंका बखान करने लगी जो दम्पतिने सोम-दत्तकी हत्याके लिए चली थी। अन्तमें अपनी पुत्री और जामातासे क्षमा-याचना करते हुए उसने विष-मिश्रित मोदक खा लिया, जिससे उसके भी प्राण-पखेरू उड़ गये।

राजाने सारी घटनाएँ सुनीं तो वह सोमदत्तके सौभाग्यकी सराहना करने लगा। उसने अपनी पुत्रीका विवाह उसके साथ कर दिया और आधा राज्य भी दे दिया।

अन्तमें सोमदत्तने मुनि-दीक्षा ले ली और तप करके सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र पद प्राप्त किया।

यहाँ यह विशेष उल्लेखनीय है कि सोमदत्त पूर्वभवमें मृगसेन धीवर था। किन्हीं मुनिसे उसने नियम किया था कि वह जालमें फँसी हुई पहली मछलीको छोड़ दिया करेगा। अगले दिन जब वह जाल लेकर सिप्रा नदीपर गया तो उसने जालमें फँसी पहली मछलीको अपने व्रतके अनुसार जलमें छोड़ दिया और पहचानके लिए उसने मछलीके गलेमें एक धागा बाँध दिया। उसने दुबारा जाल डाला तो फिर वही मछली आ गयी। उसने उसे फिर छोड़ दिया। इस प्रकार वही मछली चार बार जालमें आयी और उसने चारों ही बार उसे छोड़ दिया। उस दिन फिर कोई और मछली जालमें नहीं आयी। जब वह घर पहुँचा तो उसकी स्त्री घण्टाने मछली न लाने-पर उसे बहुत बुरा-भला कहा और घरसे निकाल दिया। बेचारा मृगसेन उस शिशिर ऋतुमें एक शून्यागारमें जाकर लेट गया। वहाँ उसे साँपने काट लिया और मर गया। उसकी स्त्री घण्टा भी उसे ढूँढ़ती हुई आयी। अपने पतिको मरा हुआ देखकर उसने भी प्रतिज्ञा की कि जो नियम मेरे पतिका था, वह मैं भी लेती हूँ। फिर उसने साँपके बिलमें हाथ डाल दिया। साँपने उसे भी काट लिया और वह भी शान्त भावोंसे मरी। दोनों मरकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुए। वहाँसे आयु पूरी होनेपर मृगसेनका जीव सोमदत्त हुआ और घण्टाका जीव विषा हुआ। सोमदत्तने चार बार मछलीपर दया करके उसे छोड़ दिया था। उसीका फल यह हुआ कि उसकी हत्याका चार बार प्रयत्न किया गया, किन्तु फिर भी वह बच गया।

उज्जयिनी नगरीसे सम्बन्धित एक यह कथा भी उल्लेखनीय है—मणिपति नामक एक राजाने मुनि-दीक्षा लेकर घोर तप किया। एक बार विहार करते हुए वे उज्जयिनीके श्मशानमें पहुँचे और वहाँ शयनप्रतिमासे स्थित हो गये। कृष्ण-पक्षकी चतुर्दशीकी अँधियारी रात थी। एक कापालिक वैताल विद्या-सिद्धिके लिए तीन मुरदोंकी तलाश करता हुआ वहाँ आया। उसने देखा एक मुरदा पड़ा हुआ है। वह दो और मुरदे ढूँढ़कर घसीट लाया और उन तीनोंके सिरोंको मिलाकर उसने चूल्हा बनाया तथा आग जला दी। आगमें मुनिका शरीर जलने लगा। इससे उनका सिर हिल गया। सिरको हिलते हुए देखकर कापालिक भयभीत होकर भाग गया। दूसरे दिन प्रातः-काल किसी व्यक्तिने अर्द्धदग्ध मुनिको देखा। वह नगरमें गया और धार्मिक श्रावक जिनदत्तको अर्द्धदग्ध मुनिके सम्बन्धमें समाचार दिया। जिनदत्त धर्मवात्सल्यके कारण त्वरित गतिसे श्मशान पहुँचा और वहाँसे मुनिको अपने घर ले आया और किसीसे लक्षपाक तेल लाकर मुनिका उससे उपचार किया। कुछ ही दिनोंमें मुनिका शरीर स्वर्ण-जैसा हो गया। चातुर्मास प्रारम्भ हो रहा था, अतः उन्होंने जिनदत्तकी प्रार्थनापर उसीके चैत्यालयमें चातुर्मास करना स्वीकार कर लिया।

एक दिन जिनदत्तने मुनि महाराजवाले प्रकोष्ठमें जमीन खोदकर उसमें मणिरत्नोंसे भरा हुआ एक ताम्रकुम्भ दबा दिया। कुम्भ जमीनमें गाड़ते हुए जिनदत्तके पुत्र कुबेरदत्तने देख लिया। वह अत्यन्त दुर्व्यसनी था। किसी दिन अवसर पाकर कुबेरदत्तने वह कुम्भ निकाल लिया। मुनि महाराजने कुम्भ गाड़ते हुए भी देखा था और कुम्भ निकालते हुए भी देखा किन्तु मुनिराज इस सबसे उदासीन रहे।

चातुर्मास समाप्तिके बाद मुनिराजने वहाँसे विहार कर दिया। उनके जानेके बाद जिनदत्तने भूमि खोदी, किन्तु वहाँ कुम्भ न पाकर वह चिन्तित हो उठा। उसका सन्देह मुनिके ऊपर गया। उसने अपने स्त्री-पुत्र आदिको भेजकर पुनः मुनिराजको किसी बहानेसे बुला लिया और नाना कथोपकथनों द्वारा अपना सन्देह उनके ऊपर व्यक्त किया। मुनिराज भी उसी प्रकार कथाओं द्वारा उसका सन्देह दूर करनेका प्रयत्न करते रहे।

कुबेरदत्त खड़ा-खड़ा दोनोंका यह संवाद सुन रहा था। एक वीतराग मुनिके ऊपर ऐसा जघन्य आक्षेप होता हुआ देखकर कुबेरदत्तकी अन्तरात्मा उसे धिक्कारने लगी—"अधम! यह सब तेरे कुकृत्योंका भीषण परिणाम है।" वह गया और ताम्रकुम्भ लाकर बोला, "कुम्भ मैंने चुराया था। वीतराग निर्ग्रन्थ मुनिपर दोष लगाना अनुचित है।" फिर उसने मुनिराजके चरण पकड़ लिये और फूट-फूटकर रोने लगा। रोते-रोते बोला—"भगवन्! मैं महापापी हूँ, सप्तव्यसनी हूँ। आप मुझे पापसे छुड़ाकर जिन-दीक्षा देनेकी कृपा करें। समस्त परिग्रहका त्याग कर उसने मुनि-दीक्षा ले ली, जिनदत्तने भी अपने गुरुतर अपराधकी क्षमा-याचना करते हुए मुनि-दीक्षा धारण कर ली।

इसी नगरीमें सेठ सुरेन्द्रदत्त और उसकी पत्नी यशोभद्राके सुकुमाल नामक पुत्र हुआ, जिन्हें अवन्ती सुकुमाल भी कहते हैं। जब सुकुमाल यौवन दशाको प्राप्त हुए, तब पिताने पुत्रको श्रेष्ठी पट्ट बाँधकर दीक्षा ले ली। सुकुमालका विवाह ३२ सुकुमारी कन्याओंके साथ हो गया। इनका काल सुखपूर्वक बीत रहा था। एक दिन एक निमित्तज्ञने श्रेष्ठी सुकुमालका हाथ देखकर कहा, जब ये किसी मुनिके दर्शन करेंगे तो ये भी मुनि बन जायेंगे। इस भविष्यवाणीसे भयभीत होकर माताने अपने घरमें किसी भी मुनिके आनेपर प्रतिबन्ध लगा दिया। उस नगरीके नरेशका नाम प्रद्योत और महारानीका नाम ज्योतिर्माला था।

एक दिन एक व्यापारी आठ रत्नकम्बल लेकर उस नगरीमें बेचने आया। वे सारे रत्न-कम्बल सुकुमालकी माताने खरीद लिये और उनके चार-चार भाग करके अपनी पुत्र-वधुओंके लिए उनके जूते बनवा दिये। एक दिन छतपर रखे हुए एक जूतेको मांस-खण्ड समझकर चील ले गयी। उसने आकाशमें जाकर जूता छोड़ दिया जो राजमहलकी छतपर महारानीके पास जाकर गिरा। महारानी उसे देखकर आश्चर्यचकित रह गयी। आश्चर्य इस बातका था कि जो रत्नकम्बल महारानी नहीं खरीद सकी, किसी नागरिकने वे रत्नकम्बल खरीदकर उनके जूते बनवाये हैं। कौन है वह महाभाग कुबेर! रानीने महाराजसे इस बातकी चर्चा की। महाराजने पता लगाया। महाराजको ज्ञात हुआ कि मेरे नगरमें अवन्ति सुकुमाल ऐसा धनकुबेर है। वे स्वयं सुकुमालके प्रासादमें पहुँचे। वहाँ सेठ सुकुमालके वैभव और उनकी सुकुमारताको देखकर वे विस्मित रह गये। श्रेष्ठी और महाराज दोनों प्रासादके उद्यानमें बनी पुष्करिणीके तटपर भ्रमणके लिए गये। महाराजकी उँगलीसे रत्नमुद्रिका निकलकर जलमें डूब गयी। तत्काल सेवक बुलाये गये। सेवक गोता लगाकर पुष्करिणीके तलसे हाथोंमें अनेक वस्तुएँ निकालकर ले आये। महाराजने देखा—उन वस्तुओंमें अनेक अँगूठियाँ और मणिहार थे, जो श्रेष्ठीकी पत्नियोंके होंगे, किन्तु जिन्हें निकालनेकी भी कभी किसीने चिन्ता नहीं की थी। महाराजकी आरती कपूर-दीपोंसे की गयी, जिनके प्रकाशसे सुकुमालकी आँखोंमें आँसू आ गये। राजाके पूछनेपर माताने बताया कि सुकुमालके लिए रत्नदीपक ही काम आते हैं, दीपक नहीं जलाये जाते। आज दीपक जलाये गये। उनकी प्रभाको सुकुमाल सहन नहीं कर सका। इसलिए उसकी आँखोंमें आँसू आ गये।

एक दिन चातुर्मासकी समाप्ति पर मुनिजन प्रज्ञप्तिका पाठ कर रहे थे। उनके पाठ-स्वरस आकृष्ट होकर सुकुमाल उनके निकट पहुँचा, उनका उपदेश सुना और उनसे यह भी ज्ञात हुआ कि मेरी आयु केवल तीन दिनकी शेष है। इससे सुकुमालने तत्काल मुनि-दीक्षा ले ली। वे महाकाल उद्यानमें एक पीलू वृक्षके नीचे जीवन पर्यन्तके लिए चतुर्विध आहारका त्याग करके ध्यानारूढ़ हो गये—निष्कषाय चित्त, सुमेरुके समान अचल, निष्कम्प!

तभी एक शृगालिनी अपने चार बच्चोंके साथ भूखी-प्यासी भटकती हुई उधर आ निकली। सुकुमाल नंगे पैर पैदल आये थे, उसके कारण उनके पैरोंसे रक्त बह रहा था। शृगाली आकर रक्त चाटने लगी, फिर उसने पैर तथा दूसरे अंग खाना प्रारम्भ कर दिया। वह बच्चों सहित तीन दिन तक सुकुमाल मुनिको खाती रही और सुकुमाल मुनि तीन तीन दिन तक आत्म-स्वरूपमें लीन रहकर कर्मोंकी निर्जरा करते रहे। आयु पूर्ण होनेपर वे अच्युत स्वर्गके नलिनी गुल्म विमान-में महर्द्धिक देव हुए।

कहते हैं, जिस स्थानपर सुकुमाल मुनिका समाधिमरण हुआ था, वह उज्जयिनीके दक्षिण द्वारसे दिखाई देता है। उस स्थानकी रक्षा कापालिक लोग अब भी करते हैं। सम्पन्न लोग कापा-लिकोंको अच्छी रकम देकर अपने मृत जनोंका दाह-संस्कार वहीं करते हैं। जब सुकुमाल मुनिका निधन हुआ, उस समय देवोंने सुगन्धित जलकी वर्षा की थी, जिससे वहाँकी नदी गन्धवती हो गयी थी। उनकी स्त्रियोंने उस समय जो रुदन कर कलकल शब्द किया था, उसके कारण वहाँकी देव-मूर्तिका नाम ही कलकलेश्वर हो गया था।

एक पौराणिक कथा इस प्रकार भी मिलती है—

काकन्दीका राजा अभयघोष एक कछुएको चारों पैर बाँधकर और लाठीमें लटकाकर नगरमें लाया। फिर तलवारके एक ही प्रहारसे उसके चारों पैर काट डाले। कछुआ अत्यन्त वेदना पाकर उसी रातमें मर गया और वह राजाका पुत्र चण्डवेग हुआ। एक दिन राजाके मनमें चन्द्र-ग्रहण देखकर वैराग्य उत्पन्न हो गया और उसने मुनि-दीक्षा ले ली।

एक बार मुनि अभयघोष विहार करते हुए उज्जयिनी पधारे और वीरासनसे ध्यानमग्न हो गये। तभी उनका पुत्र चण्डवेग उधर आ निकला। पूर्वजन्मके वैरके कारण उसे ऐसी दुर्बुद्धि जागृत हुई कि वह मुनिराजके ऊपर उपसर्ग करने लगा और उनके चारों हाथ-पैर काट दिये। मुनिराज इस उपसर्गको समभावसे सहकर आत्म-स्वरूपमें लीन रहे। कुछ ही क्षणोंमें उन्हें केवल-ज्ञान उत्पन्न हो गया और तभी मोक्ष हो गया।

मुनि अभयघोषके कारण उज्जयिनीको निर्वाण भूमि होनेका भी गौरव प्राप्त हुआ।

इस प्रकार उज्जयिनीमें अनेक पौराणिक और धार्मिक घटनाएँ घटित हुई हैं। उनका विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि उज्जयिनीका महाकाल श्मशान अनेक घटनाओंका केन्द्र रहा है। यहाँ अनेक मुनियोंने तपस्या की, अनेक मुनियोंपर उपसर्ग हुए और कई मुनियोंको इस भूमिमें केवलज्ञान और निर्वाणकी प्राप्ति हुई। इसके कारण यह स्थान कल्याणक क्षेत्र भी है और सिद्धक्षेत्र भी है। किन्तु इस स्थानको सर्वाधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुई महावीर भगवान्के ऊपर रुद्र द्वारा किये गये उपसर्गके कारण। तबसे इस स्थानको ऐतिहासिक और धार्मिक महत्त्व प्राप्त हो गया। भगवान् महावीरके उपसर्गकी घटनाकी स्मृति बनाये रखनेके लिए वहाँ एक विशाल जैन मन्दिर बनवाया गया। वह मन्दिर यहाँ किस काल तक रहा, वह कब धराशायी हो गया अथवा परि-वर्तित कर दिया गया, इसके लिए कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

उज्जयिनीका वैभव

जैन साहित्यमें उज्जयिनीमें घटित होनेवाली घटनाओंके अतिरिक्त इस प्रकारके वर्णन विभिन्न स्थलोंपर उपलब्ध होते हैं, जिनसे उज्जयिनीकी प्राचीनता और उसकी समृद्धिपर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। 'आदिपुराण' के अनुसार भगवान् ऋषभदेवकी आज्ञानुसार इन्द्रने भारतवर्षको ५२ जनपदोंमें विभाजित किया था, उनमें एक अवन्ती जनपद भी था। उसकी राजधानी अवन्तिका

थी, जो बादमें उज्जयिनीके नामसे प्रसिद्ध हुई। अवन्तिकाका वैभव स्वर्गकी अमरावतीसे तुलनीय था। इसलिए उसका एक नाम अमरावती भी था।

कथाकोष (मराठी) में बताया है कि उज्जयिनी नगरी रम्य एवं विशाल जिन-मन्दिरों, राजमार्गों और उत्तुंग प्रासादोंसे परिपूर्ण थी। वहाँके उद्यान आकर्षक थे। वहाँके व्यापारिक पेठों (बाजारों) के कारण दूर-दूरके व्यापारी वहाँ आया करते थे।

महाकवि पुष्पदन्त कृत 'जसहरचरिउ' में लिखा है कि अवन्ति देशमें स्वर्गपुरीके समान उज्जयिनी नगरी है। उस नगरमें मरकत मणियोंकी किरणोंसे व्याप्त, हरित पृथ्वीतलमें मूढ़-बुद्धि हाथी घास और मधुरसकी इच्छासे अपनी सूँड़ चलाते हुए मन्द गमन करते हैं। वहाँके हर्म्योंमें चन्द्रकान्त मणियोंकी प्रभा चमचमाती है। वहाँकी महिलाएँ सुशील और पतिपरायणा हैं। वहाँ बड़े-बड़े भवनोंमें रत्नजड़ित क्यारियोंमें सुगन्धित पुष्प सौरभ विकीर्ण करते रहते हैं। वहाँ कोई उपद्रव नहीं है।

'करकण्डुचरिउ' में उज्जयिनीको धन-धान्यसे अत्यन्त समृद्ध बताया है।

तमिल साहित्यका जैन महाकाव्य 'सिलप्पदिकारम्' आदि संगम कालकी रचना है। उसमें लिखा है कि अवन्तिनरेशने उज्जयिनीमें चोलराजका स्वागत मणिमुक्ताखचित स्वर्णमय तोरणद्वार बनाकर किया था। जिसका शिल्पचातुर्य दर्शनीय था।

अभिनन्दन जिनकी सातिशय मूर्ति—प्राकृत निर्वाण भक्तिमें 'पासं तह अहिणंदण णायदहि मंगलाउरे वंदे' गाथा द्वारा मंगलापुरके अभिनन्दननाथकी वन्दना की गयी है, जिससे ज्ञात होता है कि यह स्थान अतिशय क्षेत्र रहा है।

मंगलापुरके इसी अभिनन्दननाथ जिनके सम्बन्धमे यति मदनकीर्तिने 'शासन चतुस्त्रिंशिका' में एक अलग पद्य संख्या ३४ द्वारा उल्लेख किया है। उसका आशय यह है—

"मालवा देशके मंगलपुर नगरमें म्लेच्छोंके द्वारा, जो अपने प्रभावको फैलाते हुए वहाँ पहुँचे, श्री अभिनन्दन जिनेन्द्रकी मूर्ति जब तोड़ दी गयी तो वह पुनः जुड़ गयी और पूर्ण अवयव विशिष्ट हो गयी। बादमें उसके प्रभावसे नाना उपद्रव दूर हुए। वे प्रभावयुक्त श्री अभिनन्दन प्रभु दिगम्बर शासनको सुदृढ़[2] करें।"

मंगलपुरके इन अभिनन्दन नाथ प्रभुके सम्बन्धमे आचार्य जिनप्रभसूरिने विविधतीर्थकल्प[3]में अधिक विस्तृत विवरण दिया है। उसका आशय इस प्रकार है—

"मालव देशमें मंगलपुरके निकट मेदपल्लीमें अभिनन्दन देवका चैत्य था। किसी समय म्लेच्छोंकी सेनाने आकर मन्दिर और बिम्ब दोनों तोड़ दिये। बिम्बके सात या नौ खण्ड हो गये। भीलोंने वे खण्ड एक जगह रख दिये। कोई एक श्रावक धाराउ ग्रामसे प्रतिदिन वहाँ आता और अपना माल क्रय-विक्रय करके वापस अपने गाँवको चला जाता। वहाँ जाकर वह भगवान्‌की पूजा करता। देव-पूजा किये बिना वह भोजन भी नहीं करता था। एक दिन वहाँके भीलोंने

---

१. दी सिलप्पदिकारम्, आक्सफोर्ड प्रेस, पृ. १४४-३२०।

२. श्रीमन्मालवदेश मंगलपुरे म्लेच्छैः प्रतापागतैः
भग्ना मूर्तिरयोभियोजितशिराः संपूर्णतामाययौ।
यस्योपद्रवनाशिनः कलियुगेऽनेकप्रभावैर्युत
स श्रीमानभिनन्दनः स्थिरयते दिग्वाससां शासनम् ॥३४॥

३. अवन्तिदेशस्य अभिनन्दन-देव-कल्प।

उससे पूछा—तुम यहाँ भोजन नहीं करते, घर जाकर करते हो, क्या बात है ? श्रावक बोला—बन्धुवर ! मैं जबतक जिनेन्द्र भगवान्का पूजन देख न लूँ या स्वयं पूजन न कर लूँ, तबतक भोजन नहीं करता। भील बोले—अगर ये बात है तो हम आपको आपके भगवान् दिखाते हैं। तब वे भील मूर्तिखण्डोंको उठा लाये। श्रावकने उन्हें जोड़कर यथास्थान लगाया और उसके दर्शन किये। फिर वह उनके दर्शन करके वहीं भोजन करने लगा। एक दिन भीलोंने कुछ द्रव्य ऐंठनेके अभिप्रायसे वे मूर्तिखण्ड छिपा दिये। श्रावक बिना दर्शन किये भोजन कैसे करता। उसे इस तरह तीन उपवास करने पड़े। तब भीलोंने कहा—अगर आप हमें गुड़ दें तो हम आपको मूर्ति दिखा सकते हैं। श्रावकने गुड़ बाँटना स्वीकार कर लिया। भीलोंने मूर्ति खण्ड जोड़कर बताये। श्रावकने उन्हें खण्डोंको जोड़ते हुए देख लिया। इससे श्रावकके मनमें बड़ा विषाद हुआ और उसने प्रतिज्ञा की कि जबतक इस मूर्तिको मैं अखण्ड नहीं देख लूँगा तबतक मेरे आहार-जलका त्याग है। इस तरह उपवास करते हुए उसे कई दिन व्यतीत हो गये, तब उसे स्वप्नमें एक देवने बताया कि चन्दनका लेप करनेपर यह मूर्ति अखण्ड हो जायेगी। प्रातः होनेपर श्रावकने उसी प्रकार किया और वह मूर्ति अखण्ड हो गयी। सब सन्धियाँ मिल गयीं। तब उसने भक्ति-पूर्वक भगवान्की पूजा की और अपना उपवास खोला। उसने हर्षपूर्वक भीलोंको गुड़ बाँटा। फिर उसने एक पीपलके वृक्षके नीचे वेदी बनाकर उस मूर्तिकी वहाँ स्थापना कर दी। तबसे लोग देश-देशान्तरोंसे वहाँ दर्शनोंके लिए आने लगे।

प्राग्वाट वंशके येहूके पुत्र हालाकके कोई सन्तान नहीं थी। उसने यहाँ आकर मनौती मनायी—"यदि मेरे पुत्र उत्पन्न हो जाये तो मैं यहाँ मन्दिर निर्माण करा दूँगा।" देव-पूजाके पुण्यसे उसके कामदेव नामक पुत्र उत्पन्न हो गया। उसने यहाँ शिखरबन्द मन्दिर बनवाया। इसी प्रकार एक भीलने मूर्तिके सामने अपनी अँगुली काटकर चढ़ा दी। भगवान्का चन्दन लगानेपर नयी अँगुली निकल आयी। मालव नरेश जयसिंह देव भगवान्के इन अतिशयोंको सुनकर यहाँ आया और उसने भगवान्की पूजा की। उसने यहाँके भट्टारकको देव-पूजाके लिए चौबीस हलोंसे जोतने योग्य भूमि प्रदान की तथा पुजारियोंके लिए बारह हलोंसे जोतने योग्य भूमि दान की। उसने जैन धर्म धारण किया, अपना संवत्सर चलाया, कई जिनायतन बनवाये। उसके पाँच सौ सामन्तोंने भी अपने-अपने नामसे जिनायतन निर्मित कराये।

इन विवरणोंसे ज्ञात होता है कि ईसाकी प्रथम-द्वितीय शताब्दीसे चौदहवीं शताब्दी तक तो मंगलपुरके अभिनन्दननाथकी ख्याति निश्चित रूपसे रही है। किन्तु इसके पश्चात् इस सम्बन्ध-में कोई उल्लेख देखनेमें नहीं आया। वर्तमानमें मंगलपुर कहाँ है और क्या वहाँ अब भी अभिनन्दन जिनकी वह सातिशय मूर्ति विद्यमान है ? सम्भव है, उज्जयिनीके बाह्य उद्यानमें यह मन्दिर और मूर्ति रही होगी।

परवर्ती जैन साहित्यमें उज्जयिनी—ईसाकी पन्द्रहवीं शताब्दीके पश्चात् तीर्थ सम्बन्धी पर्याप्त साहित्य विभिन्न देशी भाषाओंमें लिखा गया है। सोलहवीं शताब्दीके विद्वान् भट्टारक सुमतिसागरने 'तीर्थ-जयमाला' नामक लघु रचनामें उज्जयिनीके 'चिन्तामणि पार्श्वनाथ' की वन्दना की है। उन्होंने इस सम्बन्धमें विशेष विवरण तो नहीं दिया, केवल इतना ही लिखा है—'सुचिन्तामणि उज्जैनी धीर'। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनके कालमें यहाँपर चिन्तामणि पार्श्वनाथकी कोई सातिशय प्रतिमा रही होगी, जिसकी मान्यता सुदूर तक होगी।

उन्होंने 'सुशान्ति अवन्तिराम सुधार' इस छन्दांश द्वारा अवन्ति शान्तिनाथकी भी सूचना दी है। 'अवन्ति शान्तिनाथ' इस नामसे ऐसा ज्ञात होता है कि शान्तिनाथ भगवान्की कोई ऐसी

मूर्ति थी, जिसकी मान्यता सम्पूर्ण अवन्ति जनपदमें थी और जो अवन्ति देशकी राष्ट्रीय देव-मूर्तिके उच्चासनपर प्रतिष्ठित थी। जिस प्रकार कलिंग देशमें लगभग २२०० वर्ष पूर्व भगवान् ऋषभदेवकी एक मूर्तिको 'कलिंग जिन' कहा जाता था। उस मूर्तिको कई शताब्दी तक राष्ट्रीय देव-मूर्तिके रूपमें सम्पूर्ण कलिंगवासी अपनी आराध्य मूर्ति मानते रहे। लगता है कि यही ख्याति और स्थिति अवन्ति देशमें अवन्ति शान्तिनाथकी मूर्तिकी भी रही होगी। अवन्ति देशका केन्द्रस्थान होनेके कारण सम्भवत: अवन्ति शान्तिनाथकी यह मूर्ति उज्जयिनीमें ही रही होगी।

भट्टारक सुमतिसागरकी ये दोनों सूचनाएँ—चिन्तामणि पार्श्वनाथ और अवन्ति शान्तिनाथ—अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इन दोनों अतिशय सम्पन्न प्रतिमाओंका इतिहास क्या है तथा वर्तमानमें वे कहाँ हैं, यह कुछ ज्ञात नहीं हो सका।

भट्टारक ज्ञानसागरजी सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दीके विद्वान् हैं। उन्होंने 'सर्वतीर्थवन्दना' लिखी है, जिसमें १०१ छप्पय हैं। इस रचनामें कविने उज्जयिनीके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—

'उज्जैनीपुर सार देश मालव मुखमण्डन।
पार्श्वदेव जिनराय पाप मिथ्यामति खण्डन॥
सिद्धसेन मुनिराय तेन महियल प्रगटायो
विक्रम नरपति सार सुद्ध सभक्ति गुण पायो॥
मन-वच-काया सुद्ध करी जिनपद सेवत जगपति।
अवन्ति पार्श्व जिन वंदिये कहत ज्ञानसागर यति॥८२॥

अर्थात् उज्जयिनीमें पार्श्वनाथ मन्दिर था। आचार्य सिद्धसेनने पार्श्वनाथकी मूर्ति प्रकट-करके विक्रम नरेशको धर्मनिष्ठ बनाया था। राजाने मन-वचन-कायकी शुद्धिके साथ उस 'अवन्ति पार्श्वनाथ' की पूजा की।

ऐसा प्रतीत होता है, भट्टारक सुमतिसागरके चिन्तामणि पार्श्वनाथ और भट्टारक ज्ञान-सागरके अवन्तिपार्श्वनाथ दोनों एक ही हैं। सम्भव है, आचार्य सिद्धसेनने पार्श्वनाथकी मूर्तिको प्रकट करके जब विक्रमादित्य नरेशको प्रभावित किया और विक्रमादित्य नरेशने श्रद्धा-भक्तिके साथ उस मूर्तिकी पूजा की तो वह मूर्ति सारे देशमे विशेषत: अवन्ति देशमें सर्वसाधारणकी श्रद्धा-भाजन बन गयी और उसे 'अवन्ति पार्श्वनाथ' कहा जाने लगा। पश्चात् इसीका नाम 'चिन्ता-मणि पार्श्वनाथ' हो गया। यदि हमारी यह मान्यता सही हो तो मानना होगा कि ईसाकी चौथी शताब्दीमें इस मूर्तिकी प्रदेशव्यापी प्रतिष्ठा थी। इसके बाद कई शताब्दियों तक यह प्रतिष्ठा बनी रही।

सत्रहवीं शताब्दीके विद्वान् भट्टारक जयसागरने गुजराती मिश्रित हिन्दीमें 'तीर्थ-जयमाला' नामक लघु रचना लिखी है। उसमें कविने उज्जयिनीके 'अवन्ति पार्श्वनाथ'का वर्णन किया है। यथा 'सुडजेणीय पास अवंतीय वीर।' इससे ज्ञात होता है कि पार्श्वनाथकी वह विख्यात मूर्ति ही 'अवन्ति पार्श्वनाथ' कहलाती थी।

उन्नीसवीं शताब्दीके भट्टारक ब्रह्महर्षने संस्कृत-हिन्दी मिश्रित भाषामें 'पार्श्वनाथ-जयमाला' लिखी है। उसमें एक स्थानपर उन्होंने उज्जयिनीके 'अवन्ति पार्श्वनाथ' की भी वन्दना की है। मूलपाठ इस प्रकार है—'तवनिधि पास अवंति उजेनं।'

इन उपर्युक्त प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि यहाँ भगवान् पार्श्वनाथकी एक मूर्तिको लोक-मान्यता प्राप्त थी। उसे ही 'अवन्ति पार्श्वनाथ' कहा जाता था और उसीका नाम 'चिन्तामणि पार्श्वनाथ' था।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भगवान् महावीरके कालमें चण्डप्रद्योत उज्जयिनीका शासक था। एक बार एक चित्रकार कौशाम्बी नरेश शतानीकको पत्नी मृगावतीका चित्र बनाकर लाया। प्रद्योत उस चित्रको देखते ही मृगावती पर मोहित हो गया। उसने शतानीकसे मृगावतीकी याचना की। इसपर दोनोंमें युद्ध हो गया। युद्धके मध्यमें किसी रोगसे शतानीकको मृत्यु हो गयी। बादमें मृगावती भगवान् महावीर-के पास आर्जिका बन गयी और प्रद्योतने श्रावकके व्रत लिये। जिस दिन भगवान् महावीरका निर्वाण हुआ उसी दिन उज्जयिनीमें पालकका राज्याभिषेक हुआ।

उज्जयिनी मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्तकी उपराजधानी थी। वे वर्षमें कुछ दिन यहाँ ठहरते थे। पाटलिपुत्र दक्षिण भारतसे बहुत दूर पड़ता था, वहाँ रहकर विशाल साम्राज्यका नियन्त्रण भली प्रकार नहीं हो सकता था। इसलिए उन्होंने उज्जयिनीको अपनी उपराजधानी बनाया था। यहाँ उनके कुमारामात्य उपरिकके रूपमें रहते थे और वे स्वयं भी यहाँ कभी-कभी जाते रहते थे। जब अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु उज्जयिनी पधारे थे, उस समय सम्राट् चन्द्रगुप्त यहीं पर थे और लगभग ५० वर्षकी अवस्थामें ही उनसे दीक्षा लेकर दक्षिणकी ओर चले गये थे।

जब चन्द्रगुप्त सम्राट् थे, उस समय उज्जयिनीमें बिन्दुसार उपरिक थे। जब बिन्दुसार सम्राट् बन गये, उस समय अशोक यहाँके उपरिक बनाये गये। उनके पुत्र महेन्द्रका जन्म यहींपर हुआ था। अशोकके राज्यासीन होनेपर कुणाल यहाँके उपरिक बने। यहींपर उनकी आँखें तप्त लौह शलाकाओं द्वारा महारानी तिष्यरक्षिताके कुटिल षड्यन्त्रके फलस्वरूप फोड़ी गयीं। यहींपर सम्प्रतिका जन्म हुआ। श्वेताम्बर परम्पराके अनुसार यहाँ इस कालमें 'चैत्य यात्रा उत्सव' मनाने-की परम्परा थी। यहाँ एक जैन मन्दिर था, जिसमें जीवन्त स्वामीकी एक प्रतिमा थी। चैत्र मासमें यहाँ एक विशाल उत्सव होता था। उत्सवके अन्तिम दिन रथयात्रा होती थी। इसमें सम्मिलित होनेके लिए दूर-दूरसे जैनाचार्य और जैनसंघ आते थे। सम्प्रतिके कालमें इस उत्सवमें भाग लेनेके लिए पाटलिपुत्रसे आर्य सुहस्ति और आर्य महागिरि आये थे। सम्राट् सम्प्रतिने राजभवनके सामने रथके आनेपर जिनेन्द्र-प्रतिमाकी पूजा अष्ट द्रव्यसे की थी। उस रथको श्रावक लोग खींचते थे और रथके चारों ओर श्राविकाएँ मंगलगान और जिनेन्द्र-स्तुति करती चलती[1] थीं।

गर्दभिल्ल वंशके राजाओंकी राजधानी उज्जयिनी ही थी। 'कालकाचार्य-कथा' के अनुसार कालकाचार्य (श्वेताम्बर) की बहन साध्वी सरस्वतीके सौन्दर्यपर मुग्ध होकर गर्दभिल्ल उन्हें बलात् अपहरण करके अपने महलोंमें ले गया। कालकाचार्य द्वारा समझानेपर भी जब वह अत्या-चारी साध्वीको मुक्त करनेको सहमत नहीं हुआ तो कालकाचार्यने उससे भयंकर प्रतिशोध लिया। उन्होंने शकों द्वारा गर्दभिल्लको उखाड़ फेंका, साध्वीको मुक्त कराया। उज्जयिनीमें शक-राज्य स्थापित हुआ। इन्हीं कालकाचार्यने पर्यूषण पर्व भाद्रपद शुक्ला ४ से प्रचलित किया। गर्दभिल्लके पुत्र विक्रमादित्यने शकोंको हराकर उज्जयिनीको पुनः प्राप्त किया। इसके उपलक्ष्यमें विक्रम संवत् उसने प्रचलित किया। विक्रम संवत् १३५ में शकोंने विक्रमादित्यके वंशजोंको पराजित करके मालवापर पुनः अधिकार कर लिया। उन्होंने भी इस विजयके उपलक्ष्यमें शाक संवत्का प्रचलन किया।

चन्द्रगुप्त द्वितीयको विक्रमादित्य तथा उन्हींके द्वारा विक्रम संवत्के समान शक संवत्के

---

१. परिशिष्ट पर्व ११।२४

चलाये जानेके सम्बन्धमें भी इतिहासकार एकमत नहीं हैं। कुछका मत है कि ई. सन् ७८ में उज्जयिनीके राजसिंहासनपर शक नरेश चष्टन आसीन हुआ। उसने ही दिग्विजयके बाद शक संवत्का प्रचलन किया था। इस प्रकार विक्रम संवत् और शक संवत् दोनोंके ही प्रचलनका श्रेय उज्जयिनीको है।

चन्द्रगुप्त प्रथमके कालमें गुप्तवंशकी राजधानी पाटलिपुत्र थी। समुद्रगुप्तने वहाँसे हटाकर अयोध्याको अपनी राजधानी बनाया। चन्द्रगुप्त द्वितीयने सत्यसिंहके पुत्र, शक-नरेश रुद्रसिंहको हराकर लगभग सन् ३९५ में उज्जयिनीको अपनी राजधानी बनाया। उस समय तक उज्जयिनी शक नरेशोंकी राजधानी थी। उनके राज्यमें मालवा, कच्छ, सौराष्ट्र, सिन्ध और कोंकणके प्रदेश सम्मिलित थे।

सातवीं शताब्दीमें, शंकराचार्यके कालमें उज्जयिनी नरेश सुधन्वने बौद्धोंके ऊपर भयानक अत्याचार किये और उन्हें भारतसे भागकर दूसरे देशोंमें शरण लेनेको बाध्य किया। उसने जैनोंके ऊपर भी भयंकर अत्याचार किये। किन्तु वह जैनोंको बौद्धोंके समान भगा नहीं सका।

परमार वंशके शासन-कालमें उज्जयिनीकी समृद्धि भी बढ़ी और यहाँ विद्वानोंका सम्मान भी बढ़ा। परमारवंशके राजा वाक्पतिराज मुंज और भोजके कालमें उज्जयिनी विद्वानों और विद्वत्ताका केन्द्र बन गयी थी। राजा भोजके सम्बन्धमें तो यह अनुश्रुति भी प्रचलित है कि वह प्रत्येक नवीन श्लोकपर विद्वान्को एक लाख रुपयेका पुरस्कार देता था और उसके राज्यमें प्रत्येक जातिके लोग संस्कृत भाषा और साहित्यके विद्वान् होते थे। राजा भोज वस्तुतः विद्वानोंका आश्रयदाता था।

परमार वंशके राजाओंकी राजधानी धारा थी। भोजने उज्जयिनीको अपनी राजधानी बनाया। राजा मुंजकी राज्य-सभामें लाडबागड़ संघान्वयी गुणाकरसेनके शिष्य आचार्य महासेन-का बड़ा प्रभाव था। मुंजराज तथा सिन्धुराजके मन्त्री पर्पटने आपका बड़ा सम्मान किया था। इसी प्रकार माथुर संघान्वयी माधवसेनके शिष्य आचार्य अमितगतिको भी मुंजके दरबारमें बड़ा सम्मान मिला। सुभाषित-रत्न-सन्दोह, धर्मपरीक्षा, पंचसंग्रह, तत्त्वभावना, उपा-सकाचार, द्वात्रिंशिका और आराधना ये आपकी रचनाएँ हैं। हलायुध, धनपाल, पद्मगुप्त, धनंजय आदि अनेक जैन विद्वान् यहाँ रहते थे।

इसी प्रकार राजा भोजकी सभामें जैनोंको विशेष सम्मान प्राप्त था। उन्होंने प्रभाचन्द्रा-चार्यका विशेष सम्मान किया था। दिगम्बर जैनाचार्य श्री शान्तिसेनने भोजकी सभामें अनेक विद्वानोंको वाद-विवादमें पराजित किया था।[3] इसी प्रकार चतुर्विंशति प्रबन्धसे ज्ञात होता है कि आचार्य विशालकीर्तिके शिष्य मदनकीर्तिने परवादियोंपर विजय प्राप्त करके 'महाप्रामाणिक' पदवी प्राप्त की थी। कविश्रेष्ठ धनपालको विशेष सम्मान प्राप्त था।

परमारवंशके अर्जुनवर्म, यशोवर्म, बल्लाल आदि राजाओंने भी इस परम्पराका निर्वाह किया। इस कालमें भी अनेक जैन विद्वानोंको राज्याश्रय मिलता रहा और अनेक कलापूर्ण जैन मन्दिरोंका निर्माण हुआ। देवपाल देवके समयमें इल्तुतमिशने सन् १२३३ में उज्जयिनीपर भयंकर आक्रमण करके कुछ समयके लिए मालवापर अधिकार कर लिया। किन्तु इस अल्पकालमें ही

१. कल्पसूत्र भाष्य, मेरुतुंग थेरावली, समयसुन्दर कृत कालकाचार्य कथा।
२. माधवाचार्यकृत शंकर-विजय, अध्याय १ और ५।
३. जैन हितैषी, भाग १, पृ. ४८५।

उसने मालवाके इन गगनचुम्बी मन्दिरों और कलापूर्ण मूर्तियोंका भयंकर विनाश कर दिया; धारा, नलकच्छपुर, माण्डव, उज्जयिनी आदिके विशाल ग्रन्थ भण्डार हमामोंमें पानी गरम करनेके लिए जलाये गये।

इस धर्मोन्मादके परिणामस्वरूप जैन साहित्य और कलाका भयंकर विनाश हुआ। आज जैनकला अवशेषोंके रूपमें मालवाके निम्नलिखित स्थानोंपर बिखरी हुई पड़ी है—

नावली, कालूखेड़ा, कवला, कालाखेत, मोड़ी, भानपुरा, निममूर, (अभिनव गिरनार) कुकड़ेश्वर, नीमच, खोर, मल्हारगढ़, झारडा, पिपल्या, मन्दसौर, पिपलोद, रिंगणोद, रुणिजा, बदनावर, धार, भोपावर, कुक्षी, सुसारी, खट्टोली, राणापुर, नानपुर, भैंवर्स्यी, निसरपुर, मनावर, धरमपुरी, धामनोद, माण्डव, नालछा, बिगथान, सागोंद, इन्दौर, हरसोल, काटाफोड़, कन्नोद, नेमावर, ऊन, देवास, नागदा, गोपावर, सोनकच्छ, गन्धावल, मेतवास, सिहोर, आष्टा, उज्जैन, झारड़ा, महतपुर, आलोद, आसामपुरा, कायथा, सुसनेर, लोहारी, सोयत, गोदल, मह्, शाजापुर, सुन्दरसी, सारंगपुर, पचोर, कोटरा, बिहार, जामनेर, गुना, बजरंगढ़, देवली, बड़वानी, अंजड़, ओक्षर, नेवाली, कसरावद, सिद्धवरकूट, महेश्वर, चोली, विदिशा, रायसेन, मण्डीद्वीप, भोजपुर, आसापुर, पठारी, बसोदा, शान्तिखेर आदि।

जैन भट्टारकोंका पट्ट स्थान—गुप्तकालसे उज्जयिनीमें जैन भट्टारकोंका एक सुदृढ़ और व्यवस्थित पीठ-स्थान बना। इस परम्परामें निम्नलिखित दिगम्बराचार्य प्रसिद्ध हुए—(१) महाकीर्ति (सन् ६२९), (२) विष्णुनन्दि (सन् ६४७), (३) श्रीभूषण (सन् ६६९), (४) श्रीचन्द्र (सन् ६७८), (५) श्रीनन्दि (सन् ६९२), (६) देशभूषण (सन् ६९८), (७) अनन्तकीर्ति (सन् ७०८), (८) धर्मनन्दि (सन् ७२८), (९) विद्यानन्दि (सन् ७५१), (१०) रामचन्द्र (सन् ७८३), (११) रामकीर्ति (सन् ७९०), (१२) अभयचन्द्र (सन् ८२१), (१३) नरचन्द्र (सन् ८४०), (१४) नागचन्द्र (सन् ८५९), (१५) हरिनन्दि (सन् ८८२), (१६) हरिश्चन्द्र (सन् ८९१), (१७) महीचन्द्र (सन् ९२७), (१८) माघचन्द्र (सन् ९३३), (१९) लक्ष्मीचन्द्र (सन् ९६६), (२०) गुणकीर्ति (सन् ९७०), (२१) गुणचन्द्र (सन् ९९१), (२२) लोकचन्द्र (सन् १००९), (२३) श्रुतकीर्ति (सन् १०२२), (२४) भावचन्द्र (सन् १०३७) और (२५) महीचन्द्र (सन् १०५८)।[2]

इस प्रकार सन् ६२९ से १०५८ तक अर्थात् ४२९ वर्ष तक यहाँ भट्टारकोंका व्यवस्थित पीठ रहा। मर्करा ताम्रपत्र, ऐहोल शिलालेख आदिसे ज्ञात होता है कि वि. सं. ५२६ में वज्रनन्दिने द्राविड़ संघकी स्थापना की थी। उसके मूलमें परवर्ती कालमें भट्टारक परम्परासे विकसित विशिष्ट आचरण पद्धतियोंके दर्शन होते हैं। इसी प्रकार शक सं. ६३४ में मुनि रविकीर्तिने ऐहोल ग्राममें जो मन्दिर बनवाया, उसके लिए उन्होंने भूमि-दान स्वीकार किया था। दिगम्बर मुनियों द्वारा वस्त्रधारण करनेकी परम्परा, मन्दिरों और मठोंका निर्माण और उनका अपने निवासके लिए उपयोग, उनके लिए भूमि-दानका स्वीकार, वैभवका संग्रह और प्रदर्शन आदि कारणोंसे दिगम्बर सम्प्रदायमें भट्टारक प्रथाको जन्म दिया और उसे व्यवस्थित रूप लेनेमें पर्याप्त समय लगा। किन्तु हमें लगता है, गुप्तकालसे जैन मुनियोंको जो राज्याश्रय और राजसम्मान प्राप्त हुआ, उसने उज्जयिनीमें गुप्तकालमें ही भट्टारक परम्पराका प्रारम्भ कर दिया और यहाँका भट्टारक पीठ चार

१. वी. एस. वाकणकरके लेखसे साभार उद्धृत।

२. जैन हितैषी, भाग ६, अंक ७-८, पृष्ठ २८-३१।

शताब्दियोंसे भी अधिक समय तक व्यवस्थित ढंगसे चलता रहा। इसके पश्चात् यहाँके पीठ और भट्टारकोंका क्या हुआ, इसका कोई उल्लेख हमारे देखनेमें नहीं आया।

जैन पुरातत्त्व

मालव भूमि जैन पुरातत्त्वकी दृष्टिसे अत्यन्त समृद्ध है। मालवामें भी निमाड़ क्षेत्र जैन अवशेषोंसे अत्यधिक सम्पन्न है। जब मालवापर आक्रमण होने लगे और वहाँके गगनचुम्बी जिनालय धूलि-धूसरित होने लगे, उससे पूर्व ही कई स्थानोंकी प्रतिमाएँ अन्य सुरक्षित मन्दिरोंमें भेज दी गयी। तालनपुरमें मण्डपदुर्गसे आयी कई प्रतिमाएँ रखी हैं। किन्तु अधिकांश स्थानोंपर जैन पुरातत्त्व भग्न दशामें मिलता है। इन अवशेषोंमें मन्दिरों और मूर्तियोंके अवशेष सम्मिलित हैं। मूर्तियाँ खण्डित और अखण्डित दोनों ही प्रकारकी मिलती हैं। कई स्थानोंसे महत्त्वपूर्ण शिलालेख भी उपलब्ध हुए हैं।

उज्जैनके कुछ उत्साही बन्धुओंने जिनमें श्री सत्यन्धरकुमार सेठीका नाम विशेष उल्लेखनीय है—मालवाकी इन बिखरी हुई कलाकृतियोंको एकत्रित करनेका साहस किया और जैसिंहपुरा दिगम्बर जैन मन्दिर उज्जैनमें इन एकत्रित पुरावशेषों और कलाकृतियोंका संकलन करके जैन संग्रहालयका रूप प्रदान किया। अब तक इस संग्रहालयमें ५१ जैन प्रतिमाओंका संग्रह हो चुका है। इस संग्रहमें तीर्थंकरों, यक्ष-यक्षियोंकी पाषाण और धातु प्रतिमाएँ, धातुयन्त्र, मन्दिरोंके स्तम्भ, तोरण, अभिलेख आदि सम्मिलित हैं। सर्वतोभद्रिका प्रतिमाएँ भी यहाँ हैं। ये सभी प्रतिमाएँ ९वीं शताब्दी-से १६वी शताब्दीके मध्यवर्ती कालकी हैं। यहाँ परमार काल और उसके उत्तरवर्ती कालकी उत्कृष्ट कलाके दर्शन होते हैं। सभी जैन तीर्थंकरों और जैन शासन-देवियोंकी मूर्तियाँ पृथक् या एकत्र यहाँ मिलती हैं। परमारकालीन और उत्तरकालीन जैन कला, इतिहास, पुरातत्त्व और संस्कृतिका अध्ययन करनेके लिए यह एक समृद्ध संग्रहालय कहा जा सकता है।

यहाँ गोंदलमऊ, बदनावर, गुना, जामनेर, उज्जैन, नागदा, मक्सी, आष्टा, सुन्दरसी, ईसागढ़, धार, इन्दूर, जवास, इन्दरगढ़, गन्धर्वपुरी, अजितखो, नलखेड़ा, सकरा, उदयपुर, सुसनेर, पलसावद, देवास, बीजाबाड़ा, कारछा आदि स्थानोंसे इस सामग्रीका संग्रह किया गया है। लगभग ९६ प्रतिमाओंपर अभिलेख अंकित हैं, जिनसे मूर्तिका निर्माण काल, निर्माता, संघ, गण, गच्छ, प्रतिष्ठाचार्य और भट्टारकों आदिके इतिहासपर प्रकाश पड़ता है।

इस संग्रहालयमें सभी २४ तीर्थंकरोंकी प्रतिमाएँ संयुक्त और स्वतन्त्र विद्यमान हैं, केवल शीतलनाथ, विमलनाथ और मल्लिनाथकी स्वतन्त्र प्रतिमाएँ नहीं हैं। जैन शासन देवियोंमें चक्रेश्वरी, महामानसी, रोहिणी, अम्बिका, गोमेधा, निर्वाणी, बहुरूपिणी, सरस्वतीकी मूर्तियाँ यहाँ-पर विद्यमान हैं। प्रथम तीर्थंकर आदिनाथकी खण्डित-अखण्डित कुल प्रतिमाओंकी संख्या ३७ है। बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथकी केवल एक ही प्रतिमा है। पार्श्वनाथ और महावीरकी प्रतिमाएँ सबसे अधिक हैं। तीर्थंकर प्रतिमाएँ पद्मासन और कायोत्सर्गासन (खड्गासन) दोनों ही मुद्राओंमें मिलती हैं। किन्तु खड्गासनकी अपेक्षा पद्मासन प्रतिमाएँ अधिक संख्यामें हैं।

इस संग्रहालयमे विद्यमान सभी प्रतिमाओंका परिचय देना तो सम्भव नहीं है, किन्तु विशेष प्रतिमाओंका परिचय स्थान-क्रमसे जहाँसे ये प्रतिमाएँ लायी गयी हैं—यहाँ दिया जा रहा है।

बदनावर

धार जिलेकी एक तहसील है। परमार युगमें यह वर्द्धनापुर नामसे विख्यात था। मूर्तिलेखों, उदयपुर प्रशस्ति एवं मान्धाता ताम्रपत्रमे इसे 'वर्धनापुर प्रतिजागरण' कहा गया है। यह परमार

कालमें एक महत्त्वपूर्ण नगर था। वर्तमानमें यहाँ वैष्णव, शैव और जैन धर्मोंके लगभग १२ ध्वस्त मन्दिर हैं। इन अवशेषोंमें असंख्य मूर्तियाँ भग्न और खण्डित दशामें मिलती हैं। तेरहवीं शताब्दीके मध्यमें आक्रान्ताओंने इन मन्दिरों और मूर्तियोंका निर्दयतापूर्वक विध्वंस किया था। धार और उज्जयिनीके परमार शासकोंके कालमें कला, साहित्य और स्थापत्यके क्षेत्रमें इस नगरको भी समृद्धिसम्पन्न बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इस नगरकी स्थापना सम्भवतः गुप्त युगमें हुई थी। वर्तमान किलेसे गुप्तयुगके मृत्पात्र और मृण्मूर्तियाँ (टेराकोटा) भी मिली हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि गुप्त युगसे परमार युग तक यह नगर व्यापारिक केन्द्र रहा होगा।

बदनावरसे २७ जैन प्रतिमाएँ लाकर इस संग्रहालयमें रखी गयी हैं। इनके अतिरिक्त अभी बदनावरमें अनेक जैन प्रतिमाएँ पड़ी हुई हैं। संग्रहालयमें स्थित ये प्रतिमाएँ ९वीं शताब्दीसे १४वीं शताब्दी तककी हैं, जैसा कि उनके मूर्तिलेखोंसे प्रकट होता है। इन मूर्तियोंका शिल्प अत्यन्त उत्कृष्ट कोटिका है। कुछ मूर्तियोंकी चरण-चौकीपर संवत् १२१९, १२२८, १२२९, १२३४, १३०८, १३२६ अंकित हैं।

मूर्ति क्रमांक ११ संगमरमरसे निर्मित एक प्रस्तर खण्डमें महावीर पद्मासन मुद्रामें ध्याना-वस्थित हैं। दो चमरवाहिका दोनों पार्श्वोंमें खड़ी हैं। प्रतिमाके शीर्षभागके दोनों ओर दो गज तथा अधोभागमें दोनों ओर दो सिंह अत्यन्त कलात्मक बन पड़े हैं।

मूर्ति क्रमांक १६—काले पाषाणके १ फुट ३॥ इंच ऊँचे और चौड़े शिलाफलकपर चक्रेश्वरी देवीका भव्य अंकन है। देवी गरुड़ासना है और चक्र धारण किये हुए है। देवीके मस्तक भागपर पद्मासनमें ऋषभदेव अंकित हैं। प्रतिमाकी पाद-चौकीपर इस प्रकार लेख अंकित है—"संवत् १३०८ माघ सुदी ९ श्री वागड़ संघ आचार्य श्री कल्याणकीर्ति वन्द्येन वघेरवाल सा—सुत काष्ठासंघ कनक सिरि सुतपामावदा भार्या भागदा द्वितीय भार्या काकु प्रणमति नित्यम्।"

मूर्ति क्रमांक १८—लाल पाषाणफलकपर चौबीसी बनी हुई है। मध्यमें भगवान् पद्मासनमें विराजमान हैं, शेष २३ तीर्थंकर खड्गासन मुद्रामें हैं।

मूर्ति क्रमांक ३७—तीन जैन यक्षियोंकी मूर्तियाँ हैं जो हिरण, मयूर और हंसपर आसीन हैं। सम्भवतः ये देवियाँ क्रमशः वासुपूज्य भगवान्‌की यक्षिणी गौरी (गोमेधकी), सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथकी यक्षिणी महामानसी (कन्दर्पा) और अठारवें तीर्थंकर अरनाथकी यक्षिणी तारावती (काली) प्रतीत होती है। तारावतीके अतिरिक्त चौथे तीर्थंकर अभिनन्दननाथकी यक्षिणी वज्रशृंखला (दुरितारि) तथा चौदहवें तीर्थंकर अनन्तनाथकी यक्षिणी अनन्तमती (विजृम्भिणी) भी हंसवाहना होती हैं।

मूर्ति क्रमांक ५१—मन्दिरका एक सिरदल है, जिसकी नीचेकी पट्टीपर खड्गासन तीर्थंकर अंकित हैं तथा ऊपरकी पट्टीपर हंस पंक्ति, कलश द्वारा अभिषेक करते हुए गज और नृत्यरत युवक-युवती हैं। लोक-जीवनका यह अंकन अत्यन्त कलापूर्ण और मनोहारी है।

मूर्ति क्रमांक २९—संगमरमर पाषाणकी १ फुट १० इंच ऊँची और ९ इंच चौड़ी अवगाहना-वाली ऋषभदेव प्रतिमा है। पादपीठपर वृषभ लांछन अंकित है। शिरोभागके दोनों ओर गन्धर्व आकाशसे पुष्पवर्षा कर रहे हैं। मूर्तिके दोनों ओर दो चमरवाहिका खड़ी हैं। चरणोंके पास एक भक्त दम्पति करबद्ध खड़े हैं। तीर्थंकरकी मुखमुद्रापर असीम सौम्यता और अनन्त करुणाके भाव अंकित हैं।

मूर्ति क्रमांक ६१—पद्मावतीकी मूर्ति। आकार ३ फुट १ इंच × २ फुट १० इंच है। परमार-कालीन लिपिमें देवीका नाम सुमेधा अंकित है। देवी वस्त्रालंकारोंसे सज्जित है। कर्ण-कुण्डल,

गलहार और भुजबन्धका अंकन अत्यन्त सुन्दर है। देवीके शिरोभागपर मध्यमें पार्श्वनाथ और दोनों कोनोंपर चार पद्मासन तीर्थंकर-प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। ऊपरके दोनों कोनोंपर किन्नर गज बने हुए हैं। चरण-चौकीपर अभिलेख अंकित हैं। इसमें वर्द्धमान पुरान्वये तथा संवत् १२०२ लिखे हैं।

गोंबलमऊ

मूर्ति क्रमांक ४५—"कृष्ण वर्णकी यह पार्श्वनाथ प्रतिमा अत्यन्त भव्य है। सर्प-फण कलापूर्ण है। इसकी अभिलिखित चौकीका लेख इस प्रकार पढ़ा गया है—ओं ह्रीं अदअसी अवुस हूर्या नमोः। श्री श्रीसेननाथ आचार्येन देया सुतस्य भार्या करमदेवा श्री नन्दी समादेदियन दीसना वीरादिनाथ पीलाचार्यन्विय पद्मप्रभु देव प्रणमति संवत् ११६० वैशाख सुदी ९ स्थितिकेन।"

सुन्दरसी

एक शिलाफलकपर पंचबालयतियोंकी प्रतिमाएँ हैं। मध्यवर्ती प्रतिमा खड्गासन है तथा शेष चार प्रतिमाएँ चारों कोनोंपर पद्मासन मुद्रामें स्थित हैं।

यहाँसे प्राप्त एक पार्श्वनाथ प्रतिमा (मूर्ति क्रमांक ९) अति कलापूर्ण है। पार्श्वनाथ पद्मासनमे ध्यानमग्न हैं। सिरके ऊपर सप्त-फणावलि है। प्रस्तर मटमैला है। सिरके पृष्ठ भागमें प्रभा-मण्डल बना हुआ है जो अति भव्य लगता है। ऊपरी भागमें किन्नर मृदंग, बाँसुरी, झाँझ और दुन्दुभि लिये हुए नृत्यरत है। अधोभागमें चरणोंके पास आराधक युगल करबद्ध बैठा हुआ है। अनुमानतः यह मूर्ति १४वीं शताब्दीकी है।

गुना

मूर्ति क्रमांक २—शान्तिनाथ भगवान्‌की खड्गासन प्रतिमा ४ फुट ६ इंच लम्बी और २ फुट ६ इंच चौड़ी एक शिलापर उत्कीर्ण है। मूर्तिके घुँघराले कुन्तल, स्कन्धचुम्बी कर्ण, आजानुबाहु, श्रीवत्स लांछन और पुष्पाकार प्रभामण्डल कलाके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। शिरोभागमें दोनों ओर दो गज कलश लिये अभिषेकरत हैं। उनसे ऊपर दो नभचारी गन्धर्व पुष्पहार लिये हुए अंकित हैं। ऊपर दोनों कोनोंमे दो ध्यानमग्न तीर्थंकर विराजमान हैं। दायें-बायें दो चमरधारिणी गजासीन है। चरणतलमें दो परिचारिकाएँ कलश लिये हुए खड़ी हैं। अधोभागमें दोनों कोनोंमें दो सिंह आसनके प्रतीक हैं। उनके मध्य भागमे हिरण लांछनके रूपमें अंकित है। परमारकालीन कलाका चरम विकास इस मूर्तिमे परिलक्षित होता है। इसलिए इस मूर्तिको सुन्दरतम कलाकृतियोंमे माना जाता है।

मूर्ति क्रमांक ७—यह मूर्ति भी पंचबालयति प्रतिमा है। मध्यमें कायोत्सर्गासनमें एक तीर्थंकर खड़े हुए हैं तथा चार तीर्थंकर पद्मासनमें आसीन हैं। शिरोभागमें वीणा लिये हुए किन्नर दिखाई पड़ते हैं। अधोभागमें दोनों पार्श्वोंमें दो भक्त करबद्ध मुद्रामें खड़े हैं।

मूर्ति क्रमांक ९२—भगवान् पार्श्वनाथकी पद्मासन प्रतिमा है। मस्तकके ऊपर सर्पफण है। उसके ऊपर छत्र हैं। मस्तकके पीछे भामण्डल है। छत्रोंके दोनों पार्श्वोंमें दो पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। राजपुरुषोचित परिधान धारण किये हुए चमरेन्द्र खड़े हैं। नीचे यक्ष-यक्षी हैं। यह संग्रहालयकी सर्वश्रेष्ठ प्रतिमा है।

सुसनेर

मूर्ति क्रमांक २३—एक सलेटी पाषाणपर अभिलिखित तीर्थंकर प्रतिमा है। लेख इस प्रकार है—

“रत्नो श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वयेन उत्काचार्य श्री गुणचन्द्र तस्य देवमंडलाचार्य श्री जिन-वहृत्तरपदे मंडलाचार्य श्री सकलचन्द्र तद्गुरु मातृण्डविराचार्य श्री हेमकीर्ति गुरूपदेशात् जे सव।”

गुप्तकालीन मानस्तम्भ—यहाँ चार मानस्तम्भोंके शीर्ष-भाग अथवा चैत्य हैं। ये अजीत-खो, गुना, इन्दरगढ़ और ईसागढ़से लाये गये हैं। ये चारों गुप्तकालीन माने जाते हैं। इनमें चारों दिशाओंमें पद्मासन मुद्रामें चार ध्यानस्थ तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। ये शैली आदिमें उदयगिरिमें प्राप्त रामगुप्तके अभिलेखवाली प्रतिमाओंसे साम्य रखती हैं।

यहाँ कुछ ऐसी देवी प्रतिमाएँ भी विद्यमान हैं, जिनके नीचे देवियोंके नाम प्रायः सुननेमें नहीं आये। जैसे मूर्ति क्रमांक १५६ में चार जैन देवियाँ बालक लिये हुए हैं। उनके नीचे उनके नाम दिये गये हैं—१. देवीदामी, २. रसादगुणदेवी, ३. विमारवती और ४. त्रिसलादेवी। मूर्ति क्रमांक १४१ में एक शिलाफलकमें ६ देवियाँ उत्कीर्ण हैं। उनके नाम इस प्रकार दिये हैं—वारिदेवी, सिमिदेवी, उमादेवी, सुवयदेवी, वर्षादेवी और सवाईदेवी।

इसी प्रकार एक ताम्रयन्त्र पर सहस्र किरणवाला सूर्य अंकित है। उसपर ६४ जैन शासन देवियोंके नाम उत्कीर्ण हैं जिनमेंसे कुछ नाम इस प्रकार हैं—जयंकरी, विद्या, सौभारी, चन्द्रा, काराही, मुण्डधारिणी, भैरवी, चक्राणी, क्षुधी, उर्मुखी, प्रेतवासिनी, कटकी, मलिनि, बाकाली, यक्षमा, विरूपाक्षा, निशाचरी, कालरानी, प्रेतसी, जिनेश्वरी, सिद्धयोगिनी, विकटा, दुर्घंटी, व्याघ्रा, विशाखा, भक्षिणी, कुण्डला, कंकाली, धूर्तेश्वरी, बर्बरी आदि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैसिंहपुरा जैन मन्दिरमें स्थित यह जैन पुरातत्त्व संग्रहालय परमार कालीन जैन पुरातत्त्व सामग्रीकी दृष्टिसे अत्यन्त समृद्ध है। परमार युगकी जैन पुरातत्त्व सामग्री इतने प्रचुर परिमाणमें और इतनी महत्त्वपूर्ण अन्यत्र दुर्लभ है। परमार कालकी कला, पुरातत्त्व और इतिहासका अध्ययन करनेके लिए यह विशेष और नानाविध उपादानोंसे सम्पन्न है। इस संग्रहके लिए इसके संयोजक विशेष धन्यवादके पात्र हैं।

विक्रम विश्वविद्यालय पुरातत्त्व संग्रहालयमें संग्रहीत जैन सामग्री

इस संग्रहालयमें उज्जैन जिले तथा उसके आसपाससे प्राप्त जैन सामग्री संग्रहीत की गयी है। इस सामग्रीमें प्रायः अभिलिखित तीर्थंकर मूर्तियाँ, शासन देवियोंकी मूर्तियाँ, पाषाण-स्तम्भ आदि हैं। यह सम्पूर्ण सामग्री परमार काल या उसके उत्तरवर्ती कालकी है। परमार कालका समस्त कला वैशिष्ट्य, शैली और शिल्प आदि इनमें दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ ऐसी कुछ मूर्तियोंका परिचय दिया जा रहा है—

१. भग्न तीर्थंकर प्रतिमा—इस प्रतिमाका मुख तथा उसके ऊपरका ही भाग अवशिष्ट है। मुख-मुद्रा अत्यन्त सौम्य है। ध्यानावस्थित तीर्थंकरके मुखपर मन्द स्मितिकी झलक है। केश घुँघराले हैं। कर्ण स्कन्धचुम्बी और नेत्र अर्धोन्मीलित हैं। मुखके दोनों पार्श्वोंपर गन्धर्व दम्पति नृत्य मुद्रामें अंकित हैं। यह भक्ति-नृत्य अत्यन्त भावपूर्ण है। ऊपरी भागमें ऐरावत गजके ऊपर इन्द्र आसीन हैं। गजराजका एक पैर ऊपर उठा हुआ है, जिससे प्रतीत होता है कि वे भगवान्का अभिवादन कर रहे हैं। प्रतिमाका जितना भाग अवशिष्ट है, उससे ही प्रतीत होता है कि यह अति भव्य मूर्तियोंमें-से एक है।

२. पार्श्वनाथ प्रतिमा—काले पाषाणकी यह प्रतिमा सम्भवतः संग्रहालयकी सर्वश्रेष्ठ प्रतिमा है। प्रतिमाके वक्षपर श्रीवत्स चिह्न अंकित है। मूलतः यह प्रतिमा दिगम्बर सम्प्रदायकी रही होगी, जैसा कि उसके चरण-पीठ पर अभिलिखित लेखसे ज्ञात होता है कि वह मूलसंघान्वयी

भट्टारक विशालकीर्तिदेव, उनके शिष्य शुभ कीर्तिदेव, उनके शिष्य आचार्य धर्मभूषणदेव....आचार्य सागरचन्द्र उनके शिष्य रत्नकीर्तिदेवने इस प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करायी। मूर्ति-लेख इस प्रकार है–

"संवत् १२२३ माघ सुदी ७ भौम श्री मूलसंघ भट्टारक श्री विशालकीर्तिदेव तस्य शिष्य श्री शुभकीर्तिदेव....आचार्य श्री सागरचन्द्र तस्य शिष्य रत्नकीर्ति श्री मेड़तवालान्वये साहु भोगा भार्या सावित्री पुत्र माखिल भार्या विल्हु पुत्र परम भार्या पद्मावति व्यास विणी पुत्र....प्रणमति नित्यम्।"

इस लेखके अनुसार इस मूर्तिकी प्रतिष्ठा संवत् १२२३ माघ सुदी ७ मंगलवारको मूलसंघके भट्टारक रत्नकीर्तिने करायी थी। अतः यह प्रतिमा दिगम्बर आम्नायकी है।

३. तीर्थंकर प्रतिमा—१२वीं शताब्दीकी पद्मासनमें स्थित एक तीर्थंकर प्रतिमा ओखलेश्वर (उज्जैन) के निकट क्षिप्रा नदीमें-से निकालकर यहाँ लायी गयी। यह मटमैले पाषाणकी है।

४. ऋषभदेव प्रतिमा—यह प्रतिमा भग्न है तथा इसका केवल अधोभाग है। यह पद्मासन मुद्रामें है। इसके पादपीठपर वृषभका लांछन अंकित है। इस प्रतिमाका निर्माण-काल संवत् १२९९ है। मूर्ति-लेख इस प्रकार है—

"संवत् १२९९ चैत्र सुदी ६ शनौ आचार्य श्री सागरचन्द्र श्री खण्डेलवालान्वये सा० भरहा भार्या गौरी प्रणमति नित्यं।"

५ तीर्थंकरकी मृण्मूर्ति—कायथा ग्रामसे उपलब्ध तीर्थंकरकी ४ इंच अवगाहनावाली इस मृण्मूर्तिका निर्माण-काल ईसाकी ४थी या ५वीं शताब्दी माना जाता है। सिरपर उष्णीषयुक्त केश हैं।

यहाँ कुछ जैन प्रतिमाएँ १५वीं शताब्दीके उत्तरकालकी हैं जिनमें दो प्रतिमाएँ पीत वर्णकी, तीन प्रतिमाएँ श्वेत वर्णकी तथा दो प्रतिमाएँ कृष्ण वर्णकी हैं। ये सभी प्रतिमाएँ श्वेताम्बर आम्नायकी मानी जाती हैं।

६. अष्टभुजी चक्रेश्वरी देवी—चक्रेश्वरी देवीकी यह प्रतिमा गरुड़के ऊपर आसीन है। गरुड़को मानवाकारमें प्रदर्शित किया गया है। वह अपने हाथोंको ऊपर उठाये हुए है। देवी पद्मासन मुद्रामें है। उसकी अष्ट भुजाएँ हैं, जिनमें पाँच भुजाएँ भग्न हैं। दो हाथोंमें चक्र और एक हाथमें वज्र लिये हुए हैं। देवीके मस्तकके ऊपर तीर्थंकरकी पद्मासन प्रतिमा है। एक वृक्षका भी अंकन किया गया है। उसकी शाखाओंपर दो वानर किलोल करते हुए प्रदर्शित हैं। ऊपर दोनों पार्श्वोंमें आकाशचारी गन्धर्व दम्पती है। पीठासनमें दो स्त्री-पुरुष देवीकी पूजा करते हुए बैठे हैं। मध्य भागमें नवग्रहोंका भव्य अंकन किया गया है।

७. पाषाण-स्तम्भ—यहाँ तीन स्तम्भ भी संग्रहीत हैं। ये उज्जैनसे प्राप्त हुए हैं। एक स्तम्भमें खड्गासन मुद्रामें पार्श्वनाथकी मूर्ति है। उनके दोनों पार्श्वोंमें दो तीर्थंकर प्रतिमाएँ ध्यानमुद्रामें पद्मासनसे आसीन हैं। यह प्रतिमा ११वीं शताब्दीकी प्रतीत होती है।

दूसरे स्तम्भमें दो ओर पद्मासन मुद्रामें १२ तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। प्रतिमाएँ प्रायः ३ इंच अवगाहनाकी हैं। स्तम्भके दो भाग खण्डित हैं। सम्भवतः उन दोनों भागोंमें भी १२ तीर्थंकर प्रतिमाएँ रही होंगी।

तीसरे स्तम्भमें पद्मासन मुद्रामें ध्यानमग्न तीर्थंकर प्रतिमा है। प्रतिमाके आसपास छोटे-छोटे स्तम्भोंकी आकृति बनी हुई है।

जैन मन्दिरोंमें विराजमान प्राचीन प्रतिमाएँ—

जयसिंहपुराके दिगम्बर जैन मन्दिरमें भूगर्भसे प्राप्त कुछ जैन प्रतिमाएँ रखी हुई हैं। ये सभी प्रतिमाएँ अखण्डित हैं, कलापूर्ण हैं। इनका काल भी ११वीं–१२वीं शताब्दी है। ये प्रतिमाएँ परमारोंके शासन कालमें निर्मित हुई थीं।

दो फुट ऊँचे एक स्तूपाकार पाषाण स्तम्भमें अत्यन्त सुन्दर चतुर्मुखी चौबीसी है। चतुर्मुखी या सर्वतोभद्रिका प्रतिमाएँ बहुत-से स्थानोंपर मिलती हैं। उनमें प्रत्येक दिशामें एक खड्गासन अथवा पद्मासन तीर्थंकर-प्रतिमा होती है। किन्तु प्रत्येक दिशामें चौबीस तीर्थंकरोंवाली चतुर्मुखी चौबीसी प्रायः देखनेमें नहीं आती। अतः इस प्रतिमाको विरल एवं अद्भुत प्रतिमाओंमें स्थान दिया जा सकता है।

एक पाषाणफलक २ फुट ऊँचा तथा २ फुट ३ इंच चौड़ा है। उसके ऊपर २४ तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

२ फुट ९ इंच ऊँचे और २ फुट ३ इंच चौड़े लकड़ीके एक चौकोर कुण्डाकार फ्रेममें पीतलकी छोटी-छोटी प्रतिमाएँ छोटी-छोटी प्रतिमाकार कुलिकाओंमें रखी हुई हैं। चारों दिशाओंमें ५४-५४ प्रतिमाएँ हैं। इनमें कुछ प्रतिमाएँ नहीं हैं। यह रचना भी अपनेमें अद्भुत है।

यहाँ साधु परमेष्ठीकी स्वतन्त्र प्रतिमाएँ देखनेमें आयीं। १ फुट ९ इंच ऊँचे एक शिलाफलकमें कृष्णवर्ण नग्न साधुमूर्तियाँ हैं। ये खड़ी मुद्रामें हैं। बायें हाथमें कमण्डलु है तथा दायें हाथमें माला और पीछी है। ऊपर छत्र शोभित हैं।

बदनावर

मार्ग और अवस्थिति

बदनावर मध्यप्रदेशके धार जिलेमें एक प्राचीन कसबा है। यह इन्दौरसे ९० कि. मी. दूर महू-नीमच रोडपर बलवन्ती नदीके किनारे बसा हुआ है। इस नदीके कारण इस नगरके दो भाग हो गये हैं। उत्तरी भागको खेड़ा कहते हैं। यह सड़क द्वारा दक्षिणमें धार से, उत्तर-पश्चिममें रतलामसे जुड़ा हुआ है तथा पश्चिम रेलवेके बड़नगर स्टेशनसे (अजमेर-खण्डवा रेल-मार्गपर) प्रायः १८ कि. मी. दूर है। ऐसे प्रमाण मिले हैं जिनसे सिद्ध होता है कि इस नगरकी स्थापना गुप्त कालमें हुई थी।

जैन कला केन्द्र

मध्यकालीन शिलालेखोंमें इस नगरके वर्धनपुर, वर्धनापुर, वर्धमानपुर नाम भी प्राप्त होते हैं। बुधनावर नाम भी मिलता है जो अपभ्रंश नाम है। यहाँ खुदाईमें अनेक मूर्तियाँ तथा पुरातत्त्व सामग्री उपलब्ध हुई हैं। यहाँपर जो मूर्तियाँ मिली हैं, वे प्रायः सभी परमार कालकी हैं और वे वि. सं. १२०२ से १३३६ तक की हैं। नगरमें और नगरके बाहर चारों ओर पुरातत्त्व सामग्री और पुरावशेष विपुल परिमाणमें बिखरे पड़े हैं। इससे इस नगरके विगत वैभवपर प्रकाश पड़ता है।

मुगलकालमें यहाँ सूबेदारका महल बना हुआ था। आइने अकबरीके अनुसार यहाँ उस समय एक किला भी बना हुआ था। उसके अवशेष अब भी हैं। इस स्थानसे गुप्तकालीन मृत्पात्र और मृण्मूर्ति प्राप्त हुई हैं, जो इस नगरको प्रमाणित करते हैं।

मध्य कालमें यहाँ अनेक मन्दिर बने हुए थे। उनमें-से दो विशेष उल्लेखनीय हैं—(१) बैजनाथ महादेव और (२) नागेश्वर महादेव।

बैजनाथ महादेव—यह मन्दिर कसबेके पश्चिमी सिरेपर है। इसकी ऊँचाई ६० फुट है। इसके बाहरी भागमें स्तम्भोंपर आधारित अर्धमण्डप है। मन्दिरके मध्यमें अर्घपट्टपर शिवलिंग विराजमान है। इस मन्दिरके सामने सड़ककी दूसरी ओर प्राचीन स्थापत्यावशेष बहुसंख्यामें बिखरे हुए हैं। कुछ वर्ष पूर्व इस मन्दिरकी मरम्मत की गयी थी। संभवतः उस समय कुछ हिन्दू और जैन मूर्तियोंको मन्दिरकी चहारदीवारीकी पूर्वी दीवारमें बड़े भोंडे ढंगसे जड़ दिया गया। इस मन्दिरको ध्यानपूर्वक देखने और उसके चारों ओर बिखरे हुए जैन पुरावशेषोंको ध्यानमें रखनेपर कोई भी निष्पक्ष विद्वान् इस निष्कर्षपर पहुँचे बिना नहीं रहेगा कि उपर्युक्त शिव मन्दिर मूलतः जैन मन्दिर था। जैन मन्दिरोंको परिवर्तित करके हिन्दू मन्दिर बना लेनेके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। यहीं निकट ही मन्दसोर जिलेके कोहड़ी नामक ग्राममें राम मन्दिर ठेठ जैन वास्तुशिल्प शैलीमें बना हुआ है और वहाँ विराजमान देवताका नाम भी 'जैन भंजन राम' है जिससे विश्वास होता है कि वह मन्दिर मूलतः जैन मन्दिर था। उक्त शिव मन्दिरके सम्बन्धमें भी यही सन्देह उत्पन्न होता है। इस प्रकारके प्रमाण उपलब्ध हैं कि हिन्दुओंने इस प्रान्तमें जैन मूर्तियों और मन्दिरोंका व्यापक विनाश किया। इस विनाशको एक पर्वका रूप दे दिया गया। इसकी स्मृति बनाये रखनेके लिए वे लोग 'जैन भंजन दिवस' मनाते थे, जो जैन मन्दिर और मूर्तियाँ उन्होंने परिवर्तित करके अपने धर्मकी बना ली; उनका नाम भी उन्होंने 'जैन भंजन राम, जैन भंजन महादेव' रखे जो अब भी प्रचलित हैं।

इस मन्दिरके द्वारवर्ती एक खम्भेके ऊपर दस पंक्तियोंका एक शिलालेख उत्कीर्ण है। यह शिलालेख ११ इंच लम्बा और ७ इंच चौड़ा है। इस शिलालेखके ऊपर इस बुरी तरहसे सफेदी की गयी है कि उसे पढ़ना कठिन है। बहुत प्रयत्नोंके पश्चात् केवल वि. सं. १६९२ पढ़ा जा सका। मन्दिरकी रचना शैली और स्थापत्य कलाको देखनेपर प्रतीत होता है कि मन्दिर १२-१३वीं शताब्दीका बना हुआ है। अतः स्तम्भपर शिलालेख बादमें उत्कीर्ण किया गया, ऐसा लगता है।

नागेश्वर मन्दिर—दूसरे मन्दिरका नाम नागेश्वर महादेव है जो कसबेके उत्तर-पश्चिममें पहले मन्दिरसे लगभग २ कि. मी. दूर है। इसमें भी महादेवका लिंग विराजमान है। यह एक बावड़ीके निकट बना हुआ है। यही यहाँका मुख्य मन्दिर कहलाता है। इसके आसपास और भी कई छोटे-मोटे मन्दिर बने हुए हैं। इसके शिखर जगन्नाथपुरी और भुवनेश्वर मन्दिरके शिखर-जैसे हैं। शिखरोंके ऊपर आमलक या चूड़ामणि नही है।

यहाँ चारों ओर खण्डित और अखण्डित मूर्तियाँ, स्तम्भ, तोरण आदि स्थापत्य सामग्री बिखरी हुई हैं। पश्चात्कालीन मन्दिरों और बावड़ीके निर्माणमें इस पुरातन सामग्रीका स्वतन्त्रतासे उपयोग किया गया है। यहाँ तीन शिलालेख या मूर्तिलेख भी हैं। एक शिलालेख मुख्य मन्दिरमें है तथा दो मूर्तियोंके पादपीठपर मूर्तिलेख हैं। किन्तु इनपर चूना-सफेदी गहरी पोत दी गयी है, जिससे वे पढ़े नहीं जाते।

यहाँकी परिस्थितिका सूक्ष्म अध्ययन करनेपर ऐसा लगता है कि बदनावर मुख्यतः जैन धर्मका केन्द्र रहा है और इसने शताब्दियों तक समृद्धि और उत्कर्षका भोग किया है। यहाँ भूगर्भ-से उत्खननमें जैन मूर्तियाँ और महत्त्वपूर्ण जैन पुरातात्त्विक सामग्री निकली है। यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि यहाँ जो भी प्राचीन जैनेतर मन्दिर आज विद्यमान हैं, वे मूलतः जैन मन्दिर रहे हैं। इसी प्रकार जो जैनेतर मन्दिर १६-१७वीं या उसके बादके शताब्दीके बने हुए हैं, वे प्रायः ध्वस्त जैन मन्दिरोंकी सामग्रीसे निर्मित किये गये हैं।

पुरातत्त्व सामग्री

एक बार एक किसानको दिनांक १४-६-१९५० को हल जोतते हुए श्वेत पाषाणकी ५८ जैन मूर्तियाँ मिलीं। प्रायः सभी मूर्तियाँ खण्डित हैं। इन मूर्तियोंके सम्बन्धमें ज्ञातव्य—यथा परिचय, प्रतिष्ठाकाल, मन्दिरका स्थान और नाम और उनका विनाश आदि यहाँ दिया जा रहा है। यह सम्पूर्ण जानकारी मूर्ति-लेखोंसे संकलित की जा सकती है। ये मूर्तियाँ जैन संग्रहालय उज्जैन या स्थानीय जैन मन्दिरमें सुरक्षित हैं।

मूर्तियोंका परिचय—(१) तीर्थंकर मूर्ति, आसन और छत्र सहित अवगाहना ३ फुट १ इंच है। हथेलियों और पैरोंपर कमल तथा छातीपर श्रीवत्स अंकित है। पादपीठपर सिंहका लांछन बना हुआ है। अतः यह प्रतिमा अन्तिम तीर्थंकर महावीरकी है।

(२) तीन तीर्थंकर मूर्तियाँ, जो पद्मासन मुद्रामें अवस्थित हैं, वे सभी २ फुट ऊँची हैं। एकके पादपीठपर वृषभ लांछन है, अतः वह ऋषभदेवकी मूर्ति है। दूसरीके आसनपर मगरका चिह्न बना हुआ है, अतः वह पुष्पदन्त भगवान्‌की मूर्ति है। तीसरी मूर्तिकी चरण-चौकी खण्डित है, अतः चिह्न न होनेके कारण यह कहना कठिन है कि यह मूर्ति किस तीर्थंकरकी है।

(३) यह १३ मूर्तियोंका समूह है। मूर्तियोंके अधोभाग तो आसनके साथ हैं किन्तु उपरिम-भाग नदारद हैं। कोई मूर्ति गरदनसे खण्डित है, कोई छाती से। पाँच मूर्तियोंकी चरण-चौकीपर कमल, वृषभ, कलश, मगर और बन्दरके लांछन अंकित हैं। अतः ये क्रमशः पद्मप्रभ, ऋषभदेव, मल्लिनाथ, पुष्पदन्त और अभिनन्दननाथकी मूर्तियाँ हैं।

(४) एक शिला-फलकपर तीर्थंकर माताके १६ मंगल स्वप्न अंकित हैं। स्वप्नोंकी १६ संख्यासे ज्ञात होता है कि ये मूर्तियाँ और मन्दिर दिगम्बर परम्परासे सम्बन्धित थे क्योंकि श्वेताम्बर परम्परामें तीर्थंकर-माताको १४ स्वप्न आनेकी मान्यता है।

इनके अतिरिक्त शेष सभी प्रतिमाएँ खण्डित हैं अर्थात् सर्वांग सम्पूर्ण नहीं हैं।

काल-निर्णय

मूर्तियोंकी सभी चरण-चौकियाँ अभिलिखित हैं। किसी अभिलेखमें ३ पंक्तियाँ हैं और किसीमें ४ पंक्तियाँ हैं। कुछ मूर्तियोंकी चरण-चौकीपर वि. संवत् १३०८ की माघ शुक्ला ९ रविवार यह प्रतिष्ठा-काल दिया है तथा प्रतिष्ठाचार्यका नाम आचार्य कल्याणकीर्ति दिया है। लगता है, इन सभी मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा एक ही प्रतिष्ठा महोत्सवमें सम्पन्न हुई थी। सम्भवतः आचार्य कल्याणकीर्ति उज्जयिनीके भट्टारकपीठके भट्टारक थे।

कुछ मूर्तियोंके अभिलेख इस प्रकार हैं—

'संवत् १२१९ ज्येष्ठ सुदी ५ बुधे आचार्य कुमारसेन चन्द्रकीर्ति वर्धमान पुरान्वये।'

चतुर्भुजनाथके चबूतरेपर जड़ी जैन प्रतिमाके नीचे इस प्रकार लेख है—

'संवत् १२२८ वर्षे फाल्गुन सुदि १ श्रीमाथुरसंघे पंडिताचार्य श्री धर्मकीर्ति तस्य शिष्य आचार्य ललितकीर्ति'

अगले जैन मन्दिरमें एक प्रतिमापर लेख इस भाँति है—

'संवत् १२३४ वर्षे माघ सुदि ५ बुधे श्रीमन्माथुरसंघे पंडिताचार्य धर्मकीर्ति शिष्य ललित-कीर्ति वर्धमानपुरान्वये सी. ग्रामदेव भार्या प्राहिणी सुत राणूसाः दिगमसाः का साः जादंड साः राणू भार्या माणिक सुत महुण किजकुले बाल साः महुण भार्या रोहिणी प्रणमति नित्यं।'

कुछ मूर्ति-लेख इस प्रकार हैं—

'संवत् १२१६ चैत्र सुदी ५ बुधे रामचन्द्र प्रणमति वर्धमानपुरान्वये सा. सुभोदित सुत बाला सोपा भार्या राया सुत बिल्ला भार्या वायणि प्रणमति।'

'संवत् १२२९ वैशाख वदी ९ शुक्रे अर्हद्दास वर्धनापुरे श्री शान्तिनाथचैत्ये सा॰ श्री सलन सा. गोक्षल भा. ब्रह्मादि भा. बड़देवादि कुटुम्बसहितेन निजगोत्रदेव्या श्री अच्छुप्ताः प्रतिकृतिः कारिता श्री कुलचन्द्रोपाध्यायैः प्रतिष्ठिता।'

'संवत् १३०८ वर्षे माघ सुदी ९ श्री वर्धनापुरान्वये पंडित रतनु भार्या साधु सुत साइगभार्या कोड़े पुत्र सा. असिभार्या होन्तु नित्यं प्रणमति।'

'संवत् १२१६ ज्येष्ठ सुदी ५ बुधे आचार्य कुमारसेन चन्द्रकीर्ति वर्धमानपुरान्वये साधु वाह्लिव: सुत माल्हा भार्या पाणु सुत पील्हा भार्या पाहुणी, प्रणमति नित्यं।'

'संवत् १२३० माघ शुक्ला १३ श्री मूलसंघे आचार्य भट्टाराम नागयाने भार्या जमनी सुत साधु, सवहा तस्य भार्या रतना प्रणमति नित्यं बांधा बीलू बाल्ही साधू।'

संवत् ११८२ माघ शुक्ला ९ हरा दिनेश्च अद्येह वर्द्धनपुरे श्री सियापुर वास्तव्य पुत्र सलन दे॰ आ॰....सेवा प्रणमति नित्यम्।'

इस प्रकार इन मूर्तिलेखोंसे ज्ञात होता है कि यहाँकी अधिकांश जैन प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा १२वीं-१३वीं शताब्दीमें हुई थी। इन प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा परमार कालमें हुई थी, किन्तु किसी भी मूर्तिलेखमें तत्कालीन नरेशका नामोल्लेख नहीं मिलता। किन्तु मूर्तिलेखोंमें उल्लिखित कालके द्वारा परमारवंशके तत्कालीन राजाओंका नाम ज्ञात किया जा सकता है। बदनावरकी मूर्तियोंके पाठपीठपर वि. सं. १२०२, १२०५, १२१९, १२२८, १२२९, १२३४, १३०८ और १४१५ मिलते हैं। परमार नरेशोंमें मुंज, भोज, उदयादित्य, विन्ध्यवर्मा, सुभटवर्मा, अर्जुनवर्मा, देवपाल जैतुगिदेव (जयसिंह द्वितीय) ये नरेश बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। इन राजाओंके कालमें इनकी उदारता और कला प्रेमके कारण साहित्य और कलाको बड़ा प्रोत्साहन मिला। ये राजा जैन धर्मानुयायी न होते हुए भी जैन धर्मके प्रति उदार थे। अर्जुनवर्माका भाद्रपद सुदी १५ बुधवार संवत् १२७२ का एक दानपत्र मिला है जिसके अन्तमें लिखा है—'रचितमिदं महासान्धिविग्रहिक राजासलखण-संमतेन राजगुरुणा मदनेन' अर्थात् यह दानपत्र महासान्धिविग्रहिक राजा सलखणकी सम्मतिसे राजगुरु मदनने रचा। ये राजा सलखण (सल्लक्षण) प्रसिद्ध जैन साहित्यकार पं. आशाधरके पिता थे, ऐसा माना जाता है। पं. आशाधरके पुत्र छाहड़ भी अर्जुनवर्माके राज्यमें किसी उच्च राज्यपदपर प्रतिष्ठित थे। पं. आशाधरने अपने पुत्र छाहड़के सम्बन्धमें प्रशस्तिमें लिखा है—'रंजितार्जुनभूपतिम्' अर्थात् जिसने राजा अर्जुनवर्माको प्रसन्न किया है। सम्भव है अपने पितामह सल्लक्षणके बाद छाहड़ राजाका सान्धिविग्रहिक बना हो। कहनेका सारांश यह है कि परमार नरेश उदार और सहिष्णु थे। उनके राज्यमें अनेक जैन राज्यके उच्च पदोंपर अधिष्ठित थे। ऐसे अनुकूल कालमें कलाको प्रोत्साहन मिलना स्वाभाविक था। बदनावर परमार नरेशोंकी दोनों राजधानियों—धारा और उज्जैनसे प्रायः समान दूरीपर ६४ कि. मी. अवस्थित है। एक प्रकारसे साहित्यके समान कलाको भी परमार नरेशोंका संरक्षण प्राप्त था। इसलिए इस नगरमें भी जैन मन्दिरों और मूर्तियोंपर परमार कलाका प्रभाव स्पष्ट अंकित है। इसलिए कहा जा सकता है कि जैन मूर्तियाँ इसी काल की देन हैं।

कलाका विनाश

ये मूर्तियाँ किस मन्दिरकी थीं, यह जाननेका कोई साधन आज शेष नहीं है। जितनी मूर्तियाँ यहाँसे अब तक उपलब्ध हो चुकी हैं, उनसे अधिक संख्यामें अभी भग्न दशामें पड़ी हुई हैं और यह भी असम्भव नहीं है कि भूगर्भमें अभी कुछ मूर्तियाँ दबी पड़ी हों। अब तक पुरातत्त्व विभागकी ओरसे यहाँ उत्खनन कार्य नहीं हुआ। जो मूर्तियाँ मिली हैं, वे या तो ध्वस्त मन्दिरके मलबेसे निकाली गयी हैं अथवा किसी खेतमें जोतते समय निकली हैं। अस्तु।

एक मूर्तिके अभिलेखमें उस जिनालयका भी नाम दिया गया है जिसमें वह मूर्ति विराजमान की गयी थी। उसमें पाठ है 'शान्तिनाथ चैत्ये।' अर्थात् शान्तिनाथ चैत्यमें। आज न तो वह शान्तिनाथ चैत्य विद्यमान है और न शान्तिनाथ भगवान्‌की वह मूलनायक प्रतिमा ही उपलब्ध है जिसके कारण मन्दिरका नाम शान्तिनाथ चैत्य रखा गया। सम्भवतः दोनों ही नष्ट हो गये। 'नष्ट हो गये' यह कहना भी सम्भवतः यथार्थके विरुद्ध होगा, नष्ट कर दिये गये, यही कहना तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओंके परिप्रेक्ष्यमें सुसंगत लगता है।

तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाएँ क्या हैं, यह जाननेके लिए परमार राजवंशके उस कालमें एक दृष्टि डालनी होगी जब वह राजनीतिक क्षितिजपर धूमिल पड़ते-पड़ते अस्त हो गया। तेरहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें परमार सत्ता निर्बल हाथोंमें पहुँच गयी थी। चारों ओरसे उनके ऊपर आक्रमण होने लगे। दक्षिणमें यादव, उत्तरमें चाहमान, पश्चिममें बघेल और पूर्वमें कलचुरि परमारोंके प्रबल शत्रु थे और वे निरन्तर आक्रमण करते रहते थे। इस प्रकार परमारोंका राज्य चारों ओरसे शत्रुओंसे घिरा हुआ था। सबसे बड़े शत्रु थे वे आक्रमणकारी मुसलमान जिन्होंने इस काल तक उत्तरी भारतका बहुत बड़ा भाग अपने अधिकारमें ले लिया था और अब मालवाका द्वार खटखटा रहे थे। मालवापर आक्रमणका यह दौर इल्तमशने ही प्रारम्भ कर दिया था। उसने सन् १२३३-३४ में भेलसा (विदिशा) के किलेपर अधिकार कर लिया और फिर उज्जैनको रौंद डाला। सन् १३०५ में तो मुसलमानोंने परमार सत्ताको सदाके लिए समाप्त कर दिया। मालवापर अधिकार होते ही उन्होंने भीषण रक्तपात, बलात्कार और दमनचक्र चालू कर दिया। उन्होंने पवित्र धार्मिक स्थानोंका—मन्दिरों और तीर्थोंका व्यापक विनाश किया तथा मूर्तियोंको बुरी तरह तोड़फोड़ डाला। उस समय बदनावर जैन धार्मिक केन्द्रके रूपमें विख्यात था। यहाँके जैन मन्दिरों और मूर्तियोंकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। इसलिए यह कल्पना करना तर्कसंगत होगा कि उस समय तथा बादमें आनेवाले मुस्लिम आक्रान्ताओंने अपने धर्मोन्मादमें यहाँके जैन मन्दिरों और मूर्तियोंका क्रूर विनाश किया। यह सम्भव है कि जैनोंने आपत्काल समझकर मन्दिरकी समस्त मूर्तियोंको किसी सुरक्षित तलघरमें पहुँचा दिया हो, जिसका पता इन धर्मोन्मादी आक्रमणकारियों-को भी लग गया और उन्होंने उन एकत्रित समस्त मूर्तियोंको तोड़-फोड़ डाला। यह भी सम्भावना है, आक्रमणकारियों द्वारा तोड़ी गयी मूर्तियाँ बादमें एक स्थानपर लाकर रखी गयी हों। यह विनाश उस विनाशसे पृथक् था जिसका उल्लेख पूर्वमें कर आये हैं।

जितनी मूर्तियाँ यहाँ मिलती हैं, उनमें अधिकांश जैन हैं और श्याम पाषाणकी हैं। यहाँ वैष्णव और शैव धर्मकी भी परमार कालकी कई मूर्तियाँ मिलती हैं। ध्वस्त मन्दिरोंमें—जिनकी कुल संख्या १२ है—जैन मन्दिरोंके अतिरिक्त वैष्णव और शैव मन्दिर भी हैं।

बदनावरका ऐतिहासिक महत्त्व

जैसा कि पूर्वमें बतलाया जा चुका है, बदनावरका प्राचीन नाम वर्धमानपुर था। आचार्य जिनसेनने 'हरिवंशपुराण' की प्रशस्तिमें इसकी रचनाका स्थान वर्धमानपुर बताया है। प्रशस्ति-का वह श्लोक इस प्रकार है—

कल्याणैः परिवर्धमानविपुलश्रीवर्धमाने पुरे
श्रीपार्श्वालयनन्नराजवसतौ पर्याप्तशेषः पुरा।
पश्चाद्दोस्तटिकाप्रजाप्रजनितप्राज्यार्चनावर्चने
शान्तेः शान्तगृहे जिनस्य रचितो वंशो हरीणामयम् ॥६६।५३

इसमें बताया है कि अतिशय कल्याणोंसे वृद्धिगत और धन-वैभवसे सम्पन्न वर्धमानपुरमें नन्नराजके बनवाये हुए पार्श्वनाथ जिनालयमें बैठकर इस ग्रन्थकी रचना की। किन्तु वहाँ इसकी रचना पूर्ण नहीं हुई। पश्चात् दोस्तटिकाके प्रशान्त शान्तिनाथ जिनालयमें इसकी रचना पूर्ण हुई। तब प्रजाने इस ग्रन्थकी पूजा की।

उन्होंने यह भी लिखा है कि इसकी रचना शक संवत् ७०५ (७८३) में समाप्त की। इनके १४८ वर्ष पश्चात् आचार्य हरिषेणने शक संवत् ८५३ (सन् ९३१) में बृहत् कथाकोषकी रचना भी इसी वर्धमानपुरमें की थी। ये दोनों ही आचार्य पुन्नाट संघके प्रसिद्ध आचार्य थे।

नामसाम्यके कारण सहज ही हमारा ध्यान बदनावर (प्राचीन वर्धमानपुर) की ओर जाता है और यह जिज्ञासा होती है कि क्या आचार्यद्वयकी कर्म-स्थली बननेका सौभाग्य बदनावर-को प्राप्त हुआ था? पुन्नाट संघके आचार्योंमें केवल इन दो ही आचार्योंकी रचनाएँ प्राप्त होती हैं और वे दोनो ही रचनाएँ वर्धमानपुरमें निर्मित हुईं। इस दृष्टिसे वर्धमानपुरका पुन्नाट संघके साथ ऐतिहासिक सम्बन्ध ज्ञात होता है।

वर्धमानपुर नामके कई नगरोंके उल्लेख प्राचीन शिलालेखों और दानपत्रोंमें प्राप्त होते हैं और वे नगर अब भी कुछ अपभ्रंश नामोंसे मिलते हैं। जैसे (१) बदनावर। यहाँसे प्राप्त शिला-लेखों अथवा मूर्तिलेखोंमे इसका नाम वर्धमानपुर मिलता है। (२) बंगालमें बर्दवान नामक स्थान है। यहाँके किसी चित्रसेनने सन् १७४४मे चित्रचम्पूकी रचना की थी। पहले इसका नाम वर्धमान-पुर होगा। (३) आन्ध्रप्रदेशमे बढमाण नामक एक स्थान है, जिसका प्राचीन नाम वर्धमान नगरी था। काकातीय रुद्रदेवका शक संवत् १०८४ का जो अनुमकोण्डा शिलालेख प्राप्त हुआ है, उसमें रुद्रदेव द्वारा वर्धमान नगरीपर अधिकार करनेका विवरण दिया हुआ है। वर्धमान नगरी अनुमकोण्डाके निकट है और अब इसका नाम बढमाण है। (४) काठियावाड़-गुजरातमें बढमाण नामक नगर है जिसका प्राचीन नाम वर्धमानपुर था और जहाँ मेरुतुंगने वि. संवत् १३६१ में प्रबन्ध-चिन्तामणिकी रचना की थी। इस प्रकार वर्धमानपुर नामके चार नगर विद्यमान थे। इनमें-से आचार्य जिनसेन और आचार्य हरिषेणका वर्धमानपुर कौन-सा था, यह पता लगाना है।

आचार्य जिनसेनने वर्धमानपुरकी चारों दिशाओंके राजाओंका नाम दिया है, जिससे उस स्थानकी पहचान सरलतासे हो सके। उन्होंने अपने ग्रन्थकी प्रशस्तिमें इस प्रकार पद्य दिया है—

शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिशं पंचोत्तरेषूत्तरां,
पातीन्द्रायुधनाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणाम्।
पूर्वां श्रीमदवन्तिभूभृति नृपे वत्सादिराजेऽपरां
सौराणामधिमण्डलं जययुते वीरे वराहेऽवति ॥६६।५२॥

अर्थात् शक संवत् ७०५ में जब उत्तर दिशाकी रक्षा इन्द्रायुध नामक राजा, दक्षिणकी कृष्णका पुत्र श्रीवल्लभ, पूर्व दिशाकी अवन्ति नरेश वत्सराज और पश्चिमके सौराष्ट्रकी वीर जय-वराह रक्षा करता था, तब इस ग्रन्थकी रचना हुई।

इसी प्रकार आचार्य हरिषेणने भी ग्रन्थके अन्तमें प्रशस्तिमें सूचना दी है कि उन्होंने यह ग्रन्थ शक संवत् ८५३, विक्रम संवत् ९८९ में राजा विनयपालके राज्यमें पूर्ण किया।

ऐतिहासिक दृष्टिसे ये सूचनाएँ अत्यन्त उपयोगी हैं और वि. स्मिथ, आर. जी. भण्डारकर, सी. वी. वैद्य, ऐच. सी. ओझा, अल्तेकर आदिने अपने ग्रन्थोंमें इनका उपयोग किया है। किन्तु इस सम्बन्धमें इतिहासकार अभी तक निर्भ्रान्त नहीं हैं और स्थानके सम्बन्धमें अभी तक अन्तिम निर्णय नहीं हो पाया। स्थानका निर्णय करनेके लिए सुप्रसिद्ध जैन इतिहासकारों—पं. नाथूराम प्रेमी, डॉ. ए. एन. उपाध्ये, डा. हीरालाल जैनने प्रयत्न किया है किन्तु वे सब एक निष्कर्षपर नहीं पहुँच सके। इस सम्बन्धमें इन विद्वानोंने जो तर्क अपने पक्षके समर्थनमें दिये हैं, वे यहाँ दिये जा रहे हैं।

पं. नाथूराम प्रेमी[1]—आचार्य जिनसेन और हरिषेण पुन्नाट संघ के थे। पुन्नाट कर्नाटकका प्राचीन नाम है। हरिषेणने अपने कथाकोषमें कई स्थानोंपर पुन्नाटको दक्षिणापथमें बतलाया है।[2] यदि वर्धमानपुरको कर्नाटकमें माना जाये तो उसके पूर्वमें अवन्ति या मालवाकी अवस्थिति ठीक नहीं बैठ सकती। परन्तु काठियावाड़में माननेसे ठीक बैठ जाती है। अब हमें उल्लिखित चारों राजाओंके सम्बन्धमें विचार करना है—

"१. इन्द्रायुध—स्व. चिन्तामणि विनायक वैद्यने[3] बतलाया है कि इन्द्रायुध भण्डिकुलका था और उक्त वंशको वर्मवंश भी कहते थे। इसके पुत्र चक्रायुधको परास्त करके प्रतिहारवंशी राजा वत्सराजके पुत्र नागभट द्वितीयने (जिसका राज्य-काल विन्सेण्ट स्मिथके अनुसार वि. सं. ८५७-८८२ है तथा म. म. ओझाजीके अनुसार वि. सं. ८७२ से ८९० है) कन्नौजका साम्राज्य उससे छीना था। वढमाणके उत्तरमें मारवाड़का प्रदेश पड़ता है। इसका अर्थ यह हुआ कि कन्नौजसे लेकर मारवाड़ तक इन्द्रायुधका राज्य फैला हुआ था।"

"२. श्रीवल्लभ—यह दक्षिणके राष्ट्रकूट वंशके राजा कृष्ण प्रथमका पुत्र था। इसका प्रसिद्ध नाम गोविन्द (द्वितीय) था। कावीमें मिले हुए ताम्रपटमें[4] भी इसे गोविन्द न लिखकर वल्लभ ही लिखा है। वर्धमानपुरकी दक्षिण दिशामें इसीका राज्य था। शक संवत् ६९२ का अर्थात् हरिवंशपुराणकी रचनाके १३ वर्ष पहलेका उसका एक ताम्रपत्र[5] भी मिला है।"

"३. वत्सराज—यह प्रतिहार वंशका राजा था और उस नागावलोक या नागभट द्वितीय-का पिता था जिसने चक्रायुधको परास्त किया था। यह पूर्व दिशा और अवन्तिका राजा था। ओझाजीने लिखा है कि वत्सराजने मालवाके राजापर चढ़ाई की थी और मालवराजको बचानेके लिए ध्रुवराज उसपर चढ़ दौड़ा था। उस समय तो मालवा वत्सराजके अधिकारमें था।

१. जैन साहित्य और इतिहास—पृ. ४२०-३९।
२. दक्षिणापथदेशस्य पुन्नाटविषयं ययौ। —हरिषेण कथाकोष, कथा १३१, पृ. ३१८।
पुन्नाटविषये रम्ये दक्षिणापथगोचरे। „ कथा १४५, पृ. ३३९।
३. हिन्दू भारतका उत्कर्ष, पृ. १७५।
४. इण्डियन एण्टीक्वेरी, वाल्यु. ५, पृ. १४६।
५. एपीग्राफिया इण्डीका, वोल्यूम ६, पृ. २०९।

चक्रायुधका राज्यारोहण शक सं. ७०७ के लगभग अनुमान किया गया है। ध्रुवराजने वत्सराजपर इसके बाद ही उक्त चढ़ाई की होगी।"

"श्वेताम्बराचार्य उद्योतनसूरिने शक संवत् ७०० के समाप्त होनेसे एक दिन पहले 'कुवलय-माला' ग्रन्थ जावालिपुर या जालौर (मारवाड़) में समाप्त किया था। उस समय वहाँ वत्सराज-का राज्य था। हरिवंशपुराणकी समाप्तिके समय शक संवत् ७०५ में उत्तरमें मारवाड़ इन्द्रायुधके अधिकारमें था और पूर्वमें मालवा वत्सराजके अधिकारमें था। तथा इसके पाँच वर्ष पहले कुवलय-मालाकी समाप्तिके समय अर्थात् शक संवत् ७००में मारवाड़का अधिकारी भी वत्सराज था। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पहले मारवाड़ और मालवा इन्द्रायुधके अधिकारमें थे। उससे वत्सराजने ये दोनों प्रान्त छीन लिये—मारवाड़ शक संवत् ७०० से पहले और मालवा शक सं. ७०५ से पहले। राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द द्वितीयके छोटे भाई ध्रुवराजने चढ़ाई करके मालवा उससे छीनकर पुनः इन्द्रायुधको दे दिया और वत्सराजको मारवाड़की ओर भागनेको मजबूर किया।"

"४. वीर जयवराह—यह पश्चिममें सौरोंके अधिमण्डलका राजा था। सौरोंके अधिमण्डल-का अर्थ है सौराष्ट्र। सम्भवतः यह चौलुक्य वंशका राजा था और 'वराह' उसको उसी तरह कहा गया होगा, जिस तरह कीर्तिवर्मा (द्वितीय) को 'महावराह' कहा गया है। चौलुक्योंके दान-पत्रोंमें उनका राजचिह्न वराह मिलता है। धराश्रय भी कुछ राजाओंके नामके साथ संलग्न मिलता है। धराश्रयका अर्थ भी वराह है। काठियावाड़पर पहले चौलुक्योंका अधिकार था, किन्तु शक सं. ६७५ में राष्ट्रकूटोंने उनसे वह अधिकार छीन लिया। सम्भवतः हरिवंशके रचना-कालमें चौलुक्य वंशकी किसी शाखाका अधिकार काठियावाड़पर रहा होगा। अतः जयवराह इस शाखाका कोई सामन्त राजा होगा और उसका पूरा नाम जयसिंह होगा।"

'प्रेमीजीके मतानुसार इसी वर्धमानपुरमें हरिवंशपुराणकी रचनाके १४८ वर्ष पश्चात् हरिषेणने कथाकोषकी रचना की थी। यद्यपि पुन्नाट संघने काठियावाड़से दूर कर्नाटकमें जन्म लिया था, किन्तु जिस चौलुक्य और राष्ट्रकूट वंशका राज्याश्रय जैन धर्मको प्राप्त होता रहा, उन्हीं वंशोंके राजाओंके अनुरोधपर पुन्नाट संघके कुछ मुनि काठियावाड़में आ गये और स्थायी रूपसे उधर ही विहार करने लगे। वर्धमानपुरकी जिस नलराज द्वारा बनवायी हुई पार्श्वनाथ वसतिमें हरिवंशपुराणकी रचना हुई, यह नलराज नाम भी कर्नाटकके सम्बन्धका आभास देता है। इस प्रकारके नाम कर्नाटकके शिलालेखोंमें प्रायः मिलते हैं।"

इस प्रकार प्रेमीजी काठियावाड़के बढमाणको प्राचीन वर्धमानपुर मानते हैं।

डा. ए. एन. उपाध्येका मत—"स्वयं हरिषेणके मतानुसार पुन्नाट विषय दक्षिणापथ में था। राइस,[3] आर. नरसिंहाचारी,[4] बी. ए. सालेटोर,[5] एम. जी. पाई,[6] प्रो. बी. काणे[7] आदिके

---

१. परमडभिडडिमंगो पणईयणरोहिणी कलाचंदो।
सिरिवच्छरायणामो णरहत्थी पत्थिवो जइआ॥—जैन साहित्य संशोधक, खण्ड ३, अंक २।

२. हरिषेण कथाकोषकी भूमिका।

३. मैसूर एण्ड कुर्ग फ्रॉम दि इंस्क्रिप्शंस, पृष्ठ २६।

४. ई. सी. २, पृष्ठ-३७, ७३।

५. दि एन्सीएण्ट किंगडम ऑफ पुन्नाट, इण्डियन कल्चर, वोल्यूम ३, पृष्ठ-३०३-१७।

६. रुलर्स ऑफ पुन्नाट।

७. पूना, १९४१, पीपी ३०८-२६।

मतानुसार "पुन्नाट कर्नाटकका एक प्राचीन राज्य था। उसके मध्यमें कावेरी और कापिनी नदियाँ बहती थीं। इसकी राजधानी कीर्तिपुर–वर्तमान किट्टूर थी जो कापिनी नदीके तटपर अवस्थित है। यह वर्तमान मैसूरके दक्षिणमें है। इसमें हैगड्डेवनाकोट और दूसरे तालुके हैं। पुन्नाट संघ इसी क्षेत्रसे निकला होगा। किन्तु जहाँ तक मेरी जानकारी है, दक्षिणमें ऐसा एक भी शिलालेख उपलब्ध नहीं हुआ, जिसमें पुन्नाट संघका नाम आया हो। दक्षिणमें सम्भवतः मूलतः इस संघका नाम किट्टूर संघ रहा होगा जो पुन्नाट राज्यकी राजधानीके नामपर कहा जाता होगा। किट्टूर संघका उल्लेख श्रवणबेलगोलाके शक संवत् ६२२ के एक शिलालेखमें भी आया है। किन्तु पुन्नाट संघके सम्बन्धमें विशेष जानकारी नहीं मिलती। इतना सुनिश्चित है कि ईसाकी आठवीं शताब्दीके प्रारम्भसे यह संघ वर्धमानपुर और उसके आसपास सुप्रसिद्ध था।"

"पुन्नाट संघने दक्षिणमें जन्म लिया, इसके समर्थनमें कई तर्क हैं। जैन धर्म कर्नाटकका एक समर्थ धर्म था। विशेषतः ईसाकी प्रथम शताब्दीके उत्तरार्धमें। इसे विभिन्न राजवंशोंका आश्रय प्राप्त हुआ। पश्चिमी चालुक्य शाखाके पुलकेशिन द्वितीय (सन् ६०८) ने भड़ौंचके लाट और गुर्जरोंको जीतकर गुजरातमें चालुक्य शाखाकी स्थापना की। जैन कवि रविकीर्ति (सन् ६३४) के ऊपर पुलकेशिन द्वितीयका विशेष स्नेह था। कुछ राष्ट्रकूट नरेशोंका भी गुजरातसे सम्बन्ध था। कक्कराज द्वितीयके कालमें गुजरातमें एक पृथक् राष्ट्रकूट राज्यकी स्थापना हो गयी। अमोघवर्ष प्रथम जैन धर्मके प्रति श्रद्धालु था। यह गुर्जर नरेन्द्र कहलाता था। इन अनुकूल परिस्थितियोंके कारण पुन्नाट संघके मुनि कर्नाटकसे गुजराजमें आ गये होंगे। दूसरी बात यह है कि नन्नराज—जिसके मन्दिरका नामोल्लेख आचार्य जिनसेनने किया है—दक्षिण भारतीय नाम है। सम्भवतः यह नन्न दक्षिणका कोई सामन्त या सरदार होगा। वह वर्धमानपुरमें आकर बस गया होगा और उसने पार्श्वनाथ मन्दिरका निर्माण कराया होगा। अन्तिम बात यह है कि हरिषेणने कथाकोषमें दक्षिण भारतके प्रदेशों और नगरोंका उल्लेख प्रचुरतासे किया है। इन तर्कोंके आधारपर यह सम्भावना सुसंगत प्रतीत होती है कि पुन्नाट संघ कर्नाटकसे गुजरात-काठियावाड़में पहुँचा।'

"वर्धमानपुर नामके कई नगर हैं। किन्तु वह वर्धमानपुर कौन-सा है, जिसका सम्बन्ध आचार्य जिनसेन और हरिषेणके साथ रहा है। इस सम्बन्धमें हम उन स्थितियोंके प्रकाशमें सही निर्णयपर पहुँच सकते हैं, जिनका वर्णन दोनों आचार्योंने किया है। जिनसेनने जिन राजाओंका उल्लेख किया है, उनकी सीमाओंकी संगति वढमाण (काठियावाड़) को प्राचीन वर्धमानपुर माननेपर ही हो सकती है। इसी प्रकार हरिषेणने कथाकोषकी रचना राजा विनायकपालके राज्यमें की। गुर्जर प्रतिहारवंशके एक राजाका नाम विनायकपाल था, जिसने सन् ९३१ में कन्नौज राजधानीपर अधिकार किया था। कथाकोषकी रचनासे केवल एक वर्ष पूर्व विक्रम संवत् ९८८में महोदय (कन्नौज) से आज्ञापित उसका एक दानपत्र भी प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार काठियावाड़के हड्डाला गाँवमें विनायक पालके बड़े भाई महीपालके समयका भी शक सं. ८३६ का एक दानपत्र मिला है, जिससे मालूम होता है कि उस समय वर्धमानपुरमें उसके सामन्त चापवंशी धरणीवराहका अधिकार था।

इस प्रकार सभी दृष्टियोंसे जाँच करनेपर वढमाण ही वर्धमानपुर निश्चित होता है।"

डॉ. हीरालाल[1] उक्त दोनों विद्वानोंकी मान्यतासे सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि 'इन दोनों विद्वानोंके कथनोंपर सूक्ष्म विचारकी आवश्यकता है। विचार करने योग्य पहला विषय

---

१. जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १२, किरण २, पृ. ९-१७।

यह है कि क्या इन्द्रायुधका राज्य शक संवत् ७०५ में इस अंश तक पश्चिमकी ओर फैला हुआ था कि वह वढमाणके उत्तर तक पहुँचा कहा जा सकता है। वढमाण सौराष्ट्रमें है। उसके उत्तरमें मारवाड़का प्रदेश है और इस प्रदेशपर इन्द्रायुधका राज्य सिद्ध करनेके लिए कोई प्रमाण नहीं दिया गया। कुवलयमालासे तो यही सिद्ध होता है कि शक संवत् ७०० में मारवाड़पर वत्सराज राज्य करता था। इससे मारवाड़पर इन्द्रायुधके राज्यकी पुष्टि नही होती। इन्द्रायुध कन्नौजका शासक था। इस राज्यपर उत्तर-पश्चिमसे काश्मीरके शासकका और पूर्वसे बंगाल या गौड़के शासकका दबाव पड़ रहा था। अतः वह इस योग्य नहीं था कि कोई नये देशपर विजय करे। इसके विपरीत वत्सराजके प्रपितामह नागभट्ट या नागावलोकके द्वारा भिनमालमें स्थापित किया हुआ मारवाड़का राज्य कन्नौज और आसपासके राज्योंको क्षति पहुँचाता हुआ उत्तरोत्तर वृद्धि कर रहा था। वढमाणके उत्तर और पूर्व दोनों दिशाओंमें ही वत्सराजका राज्य था।'

दूसरी भूल हुई है जिनसेनके राजाओं सम्बन्धी श्लोकका अर्थ करनेमें। उस श्लोककी दो पंक्तियोंको ध्यानपूर्वक देखनेपर यह भूल ज्ञात हो सकती है। वे दो पंक्तियाँ इस प्रकार है—

'पूर्वां श्रीमदवन्तिभूभृति नृपे वत्सादिराजेऽपरां
सौराणामधिमण्डलं जययुते वीरे वराहेऽवति' ॥

'इन पंक्तियोका अर्थ करते हुए विद्वानोने वत्सराजको अवन्ति नरेश माना है। किन्तु उन विद्वानोंने 'अवन्ति-भूभृति' और 'नृपे' इन दोनों एकार्थक शब्दोंपर ध्यान नहीं दिया। जिनसेन-जैसे प्रौढ़ विद्वान् आचार्य 'भूभृति' देकर फिर 'नृपे' शब्द देनेकी पुनरुक्ति क्यों करते, जबकि दोनों शब्दोंका अर्थ राजा है। स्पष्ट है कि 'अवन्ति-भूभृति' 'वत्सादिराजे' (वत्सराज) का विशेषण नही है, 'नृपे' उसका विशेषण है। इस प्रकार माननेपर अवन्ति नरेश कोई भिन्न व्यक्ति था और वत्सराज उससे भिन्न था। इतिहास और ताम्रपत्रोंसे भी यह सिद्ध होता है कि वत्सराजने मालव-राजके प्रदेशोंपर आक्रमण किया था। किन्तु राष्ट्रकूट नरेश मालवराजकी सहायताके लिए आ गया। अतः वत्सराजको मारवाड़की ओर भागना पड़ा। अतः अवन्तिका राजा वत्सराजसे भिन्न था और उसका राज्य सौरमण्डल (सौराष्ट्र) की सीमा तक नही फैला था। भण्डारकर, ओझा और वैद्य सभीने दोनोंको भिन्न माना है और वत्सराजको पश्चिममें राज्य करता हुआ स्वीकार किया है।'

'तीसरी भूल हुई है 'अपरां' को 'सौराणामधिमण्डलं' के साथ लगाकर ऐसा करनेपर यह अर्थ निकलता है कि सौरमण्डल उसके पश्चिममें स्थित था और वीर जयवराह वहाँ शासन कर रहा था। किन्तु विचारणीय यह है कि वढमाण सम्भवतः जयवराहकी राजधानी थी और वह सौर-मण्डल राज्यकी सीमामें था। वढमाणको वर्धमानपुर माना जाये तो वढमाणमें लिखते हुए क्या जिनसेन सदृश्य लेखक यह कहेगा कि सौरमण्डल इसके पश्चिममे स्थित था।'

उपर्युक्त विवेचनसे शक सं. ७०५ मे राजनीतिक स्थिति इस प्रकार सिद्ध होती है—

'उत्तरमें कन्नौजसे मालवाकी सीमा तक इन्द्रायुधका राज्य था। मालवाके दक्षिणमें राष्ट्र-कूटोंका राज्य फैला हुआ था। मालवा अवन्तिके राजाके शासनमे था और उससे लगकर ही सम्पूर्ण मारवाड़ और गुजरातमें वत्सराजका राज्य था। काठियावाड़मे वीर जयवराह शासन कर रहा था।'

---

१. इण्डियन एण्टीक्वेरी १२, पी. १६०।
तृतीय गोविन्दराजके राधनपुर और डिंडोरीसे प्राप्त लेख।

'ऐसी स्थितिमें वढमाणको वर्धमानपुर नहीं माना जा सकता क्योंकि तत्कालीन राजनीतिक स्थितिके साथ उसकी संगति नहीं बैठती। अतः वर्धमानपुर, जिसका उल्लेख जिनसेन और हरिषेणने किया है, की पुनः खोज करनेकी आवश्यकता है।'

'ऐसे स्थानकी खोज करते हुए हमारी दृष्टि उज्जैनसे पश्चिमकी ओर ६४ कि. मी. दूरपर स्थित बदनावरपर जाती है। जिनसेन द्वारा दी हुई सीमाएँ भी उसके साथ संगत बैठ जाती हैं। इन्द्रायुधका कन्नौजका राज्य ठीक उसके उत्तरमें था। राष्ट्रकूटोंका राज्य धारकी सीमाको छूता था, वह उसके दक्षिण में होगा। अवन्तिका राज्य उसके पूर्वमें और वत्सराजका राज्य, जो कि पश्चिममें सौरमण्डलसे लगा हुआ था, उसके पश्चिम में था। बदनावरमें प्राप्त शिलालेखों और मूर्तिलेखोंमें इसका वर्धमानपुर नाम मिलता ही है। यहाँ अनेक प्राचीन जैन मूर्तियाँ मिली हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि प्राचीन कालमें यह जैन धर्मका सुप्रसिद्ध केन्द्र था। यहींपर जिनसेन और हरिषेणने अपने महान् ग्रन्थोंकी रचना की थी। ये दोनों ही पुन्नाटगण के थे। इस नगरके नामपर पुन्नाटगणकी एक शाखाका नाम ही वर्धमानपुरान्वय हो गया। ऐसे कुछ अभिलेख भी यहाँपर प्राप्त हुए हैं, जिनमें इस अन्वयका नाम मिलता है। जानकारीके लिए यहाँ ऐसे दो अभिलेख दिये जा रहे हैं—

'सं० १२१६ ज्येष्ठ सुदि ५ बुधे आ० कुमारसेन चन्द्रकीर्ति वर्धमानपुरान्वये साधु वोहिव्व सुत माल्हा भार्या पाणू सुत पोल्हा भार्या पाहुणी प्रणमति नित्यं।'

'स० १२३४ वर्षे माघ सुदी ५ बुधे श्रीमान् माथुरसंघे पंडिताचार्य धर्मकीर्ति शिष्य ललितकीर्ति वर्धमानपुरान्वये सा० प्रामदेव भार्या प्राहिणी सुत राणू सा० दिगम सा० याका सा० जाहड़ सा० राणू भार्या माणिक सुत महण कीतू केलू बालू सा० महण भार्या रूपिणी सुत नेमि बांधा बीजा यमदेव पमा रामदेव सिरीचन्द प्रणमति नित्यं।'

आचार्य हरिषेणने जिस विनायकपाल राजाके राज्यमें अपने कथाकोषकी रचना की थी, उस समय पूरा उत्तरभारत गुर्जर प्रतिहार राजाओंके आधिपत्यमें आ चुका था। उन राजाओंमें विनायकपाल नामक राजा शक सं. ८५३ (ई. स. ९३१) में राज्य कर रहा था और उसी वर्ष कथाकोषकी रचना समाप्त हुई।

जिनसेनने हरिवंशपुराणकी रचना दोस्तटिकाके शान्तिनाथ जिनालयमें समाप्त की थी। यह दोस्तटिका बदनावरसे लगभग १६ कि. मी. दूर है, जिसका आधुनिक नाम दोतरिया है। यह गाँव माही और वागेड़ी दो नदियोंके मध्य बसा हुआ है। माही गाँवसे एक मीलकी दूरीपर बहती है और वागेड़ी इसीमें गाँवसे कुछ दूर जाकर मिल जाती है। दोतरियाके पास माही नदीके पश्चिमकी ओर गुजरात और पूर्वकी ओर मालवाकी सीमा प्रारम्भ होती है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विद्वानोंने वर्धमानपुरके सम्बन्धमें जो विचार प्रकट किये हैं, उनमें दो मान्यताएँ सामने आयी हैं—एक तो वढमाणकी, जो सौराष्ट्रमें है और दूसरे बदनावरकी, जो मध्यप्रदेशमें है। श्री प्रेमीजी और डॉ. उपाध्येने वढमाणके पक्षमें जो तर्क दिये हैं, डॉ. हीरालालजीने उनका सयुक्तिक खण्डन करके वढमाणके पक्षको निर्बल बना दिया है। डॉक्टर साहबने आचार्य जिनसेनके श्लोकका जो अर्थ किया है, उससे प्रेमीजी और उपाध्येजी द्वारा खींचा गया राजनीतिक नक्शा ही धूमिल पड़ जाता है। उससे वढमाणकी अवस्थिति और उसकी कल्पित सीमाएँ सन्देहास्पद बन जाती हैं। इन दोनों मान्य विद्वानोंके समस्त तर्कोंका एकमात्र आधार पुन्नाट नामक संघ रहा है जो जिनसेन और हरिषेण दोनों आचार्योंका था। पुन्नाट कर्नाटक अथवा दक्षिणापथका एक विषय (प्रदेश) था। वहाँ संघकी स्थापना की गयी, अतः संघका नाम

उस विषय (प्रदेश) के नामपर पुन्नाट रखा गया। कर्नाटकमें जैन धर्मको राज्याश्रय प्राप्त हुआ था। पश्चिमी चौलुक्य और राष्ट्रकूट वंशकी शाखाओंकी स्थापना सौराष्ट्र और गुजरातमें भी हो गयी थी। इन शाखाओंके पुलकेशिन द्वितीय, अमोघवर्ष आदि कई राजा जैन धर्मानुयायी थे। अनुकूल परिस्थितियाँ होनेके कारण पुन्नाट संघके मुनि सौराष्ट्रमें आ गये। वढमाण (वर्धमानपुर) उनका केन्द्र या कर्म-क्षेत्र था। इस प्रकार तर्क द्वारा दोनों विद्वानोंने वढमाणको वर्धमानपुर सिद्ध करनेका प्रयत्न किया था। किन्तु डॉ. हीरालालजी द्वारा श्लोकके किये जा रहे अर्थकी भूल पकड़नेपर वढमाणका सारा भौगोलिक आधार ही समाप्त हो गया। ऐसा लगता है कि उक्त दोनों मान्य विद्वानोंकी दृष्टिमें बदनावर नहीं आया, इसलिए वह विचारकोटिमें भी नहीं रखा गया। अब इसमें तो कोई सन्देह नही रह गया कि बदनावर ही प्राचीन वर्धमानपुर है। यहींके पार्श्वनाथ जिनालयमें बैठकर आचार्य जिनसेनने हरिवंशपुराणकी रचना की थी और यहाँसे १६ कि. मी. दूर दोस्तटिकाके शान्तिनाथ जिनालयमें रचना पूर्ण की थी। इसी प्रकार आचार्य हरिषेण-ने अपने कथाकोषकी रचना इसी नगरमें की थी। इन आचार्योंके कारण यह नगर जैन धर्मका महान् केन्द्र बन गया था। जैन धर्मके केन्द्रके रूपमें यह नगर अपनी गरिमाको कमसे कम ६-७ शताब्दी तक अर्थात् आठवी शताब्दीसे १४वीं शताब्दी तक अक्षुण्ण रख सका।

यह अवश्य आश्चर्यका विषय है कि पुन्नाट गण जिसके साथ जिनसेन और हरिषेण-जैसे महान् आचार्योंका सम्बन्ध था—उसका नामोल्लेख आज तक उत्तर-दक्षिणके किसी शिलालेखमें नहीं मिला। यह भी आश्चर्यकी बात है कि बदनावरमे इन आचार्योंके कालका मन्दिर अथवा एक भी मूर्ति नही मिली और न किसी मूर्तिलेखमें पुन्नाट गणका नामोल्लेख ही मिला। सम्भव है, इसका कारण यह रहा हो कि जिस कालकी मूर्तियाँ यहाँ मिली हैं, उस कालमें पुन्नाट गणका स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त हो गया और वह लाटवारि (लाटवागड़) संघमे विलीन हो गया। इस सम्बन्धमें एक पट्टावलीमें इस प्रकार संकेत भी दिया गया है—

'तदन्वये श्रीमल्लाटवर्गटगच्छवंशप्रतापप्रकटनयावज्जीवबोधोपवासैकांतरे नीरस्याहारेणा-तापनायोगसमुद्धारणधीरश्रीचित्रसेनदेवाना यैः पंचलाटवर्गटदेशे प्रतिबोधं विधाय मिथ्यात्वमल-निरसनं चक्रे ततः पुन्नाटगच्छ इति भांडागारे स्थितं लोके लाटवर्गटनामाभिधानं प्रथिव्यां प्रथितं प्रकटीबभूव।

इसमें बताया गया है कि एकान्तर उपवास करनेवाले, केवल जलका आहार करनेवाले और आतापन योग द्वारा दुर्द्धर तप करनेवाले भट्टारक चित्रसेनने पंच लाटवर्गट देशमें धर्मका प्रचार करके मिथ्यात्वका नाश किया। तबसे पुन्नाट गच्छका नाम लाटवर्गट (लाडवागड़) गच्छके नामसे प्रसिद्ध हो गया।

उपर्युक्त प्रशस्तिको पढ़कर तो इसमें सन्देहको कोई अवकाश नहीं रहता कि पुन्नाट संघी आचार्य जिनसेन और हरिषेणने इसी वर्धमानपुर (वर्तमान बदनावर) में शास्त्ररचना की थी। यहाँकी मूर्तियोंके अभिलेखोंमें पुन्नाट गच्छका नाम प्राप्त न होनेका रहस्य भी यही जान पड़ता है, क्योंकि जिस कालकी ये मूर्तियाँ हैं, उससे पूर्वमें ही पुन्नाट गच्छ लाटवर्गट गच्छमें विलय हो चुका था।

बदनावरके मूर्तिलेखोंका अध्ययन करनेपर एक रोचक तथ्यकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित हुआ। वह यह कि इन मूर्तिलेखोंमें न तो पुन्नाट गच्छका नाम आया है और लाटवागड़ गच्छका

---

१. भट्टारक सम्प्रदाय, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, पृ. २५२।

नाम भी देखनेमें नहीं आया। बल्कि एक नया ही अन्वय मिला। वह है वर्धमानपुरान्वय। इससे प्रतीत होता है कि १२वीं-१३वीं शताब्दीमें एक विख्यात जैन केन्द्रके रूपमें वर्धमानपुरको मान्यता प्राप्त थी और भट्टारक अपना मूलगण गच्छ भूलकर यहाँकी मूर्तियोंपर अपने आपको वर्धमान-पुरान्वयका लिखवानेमें गौरवका अनुभव करते थे।

गन्धर्वपुरी

मार्ग और अवस्थिति

गन्धर्वपुरी मध्यप्रदेशके देवास जिलेमें सोनकच्छ तहसीलके मुख्यालयसे लगभग ९ कि. मी. उत्तरकी ओर सोमवती नदी, जो काली सिन्धमें गिरती है, के तटपर स्थित है। उज्जैनसे यह ७८ कि. मी. है। सोनकच्छसे यहाँके लिए बस, टेम्पो जाते हैं। पक्की सड़क है।

इस नगरके नामके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती प्रचलित है कि महाराज गर्दभिल्ल यहाँ शासन करते थे। उन्हींके नामपर इस नगरका नाम गन्धावल हो गया। कुछ समय पूर्व स्थानीय एक देवालयमें एक पाषाणमूर्ति रखी हुई थी, जिसे स्थानीय लोग गर्दभिल्लकी मूर्ति कहते थे। इस किंवदन्ती और गर्दभिल्ल मूर्तिकी बातमें कितना तथ्य है, यह कहा नहीं जा सकता। किन्तु अभी तक इन बातोंकी पुष्टि किसी प्रमाण द्वारा नहीं हो पायी है। वर्तमानमें इस गाँवका नाम गन्धर्व-पुरी है।

पुरातत्त्वका महत्त्वपूर्ण केन्द्र

प्राचीन कालमें गन्धावल एक समृद्ध नगर और जैनोंका महत्त्वपूर्ण केन्द्र था। इसका कारण स्पष्ट है। वह ऐसे, प्राचीन व्यापारिक मार्गपर अवस्थित है जहाँसे एक ओर उज्जैन, नागदा आदिको सड़क जाती है, दूसरी ओर देवास और इन्दौरको तथा तीसरी ओर भोपाल और विदिशाको मार्ग है। व्यापारिक केन्द्र होनेके कारण यहाँ अनेक देवालयोंका निर्माण भी हुआ। किन्तु कालके कराल आघातोंसे वह नगर बच नहीं पाया और अब वह भग्नावस्थामें बिखरा पड़ा है। हिन्दू और जैन दोनों ही धर्मोंके देवालयोंके अवशेष चारों ओर पड़े हुए हैं। सोमकर्ण या सोनवतीके प्रवाहने गाँवके दो भाग कर दिये हैं। उनमें बड़े हिस्सेमें अनेक जैन मूर्तियाँ तथा एक जैन मन्दिर है। गाँवकी खास बस्ती भी यहीं है। इस ग्रामके कुओं, उद्यानों और खेतोंमें अनेक प्रतिमाएँ पड़ी हुई हैं। ग्रामवासियोंने मन्दिरोंके स्तम्भों, पाषाणों और यहाँ तक कि प्रतिमाओंका उपयोग अपने घर बनानेमें स्वतन्त्रतापूर्वक किया है। अनुमान किया जाता है कि यहाँ पायी जाने-वाली प्राचीन प्रतिमाओंकी संख्या दो सौसे कहीं अधिक होगी।

मध्यप्रदेश शासनके पुरातत्त्व विभागने बहुत सी मूर्तियाँ संग्रह करके ग्राम-पंचायत भवनके समीप कँटीले तारोंकी बाड़ बनाकर वहाँ रखी हैं। ग्राम-पंचायतने भी बहुत-सी मूर्तियाँ गाँवके मध्य एक ऊँचे चबूतरेपर, जिसे शीतला माताका चबूतरा कहते हैं, एकत्रित कर रखी हैं। दोनों ही स्थानोंपर सुरक्षा और सम्मानकी कोई व्यवस्था नहीं है। पुरातत्त्व विभाग द्वारा संग्रहीत मूर्तियों-की देखभालके लिए सरकारने एक चौकीदार रखा है। ग्राम-पंचायत द्वारा एकत्रित मूर्तियोंकी देखभालके लिए ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। शीतला माताका चबूतरा होनेके कारण अशिक्षित ग्रामवासी मूर्तियोंपर सिन्दूर लगा देते हैं। इससे उनके लेख आदि दब गये हैं, पढ़े नहीं जाते।

ज्ञात हुआ, यहाँ ३ जैन मूर्तियाँ १२-१२ फुटकी कायोत्सर्ग मुद्रावाली थीं। उनमें-से एक मूर्ति पुरातत्त्व विभागके संग्रहमें भूमिपर लेटी हुई है। यह आदि तीर्थंकर ऋषभदेवकी प्रतिमा है। इसके कन्धोंपर जटाओंकी त्रिवलियाँ लहरा रही हैं। चरणोंके दोनों ओर गोमुख यक्ष और चक्रेश्वरी यक्षी है। दूसरी मूर्ति गाँवके मध्य चमरपुरीकी मात नामक एक पतली गलीके किनारे किसी प्राचीन मन्दिरके भग्नावशेषोंके टीलेपर खड़ी है। घुटनोंके नीचेका भाग जमीनमें दबा हुआ है। जमीनसे ऊपर जो भाग निकला हुआ है, उसकी ऊँचाई ९ फुट ६ इंच है। सम्भवतः २ फुट ६ इंच के लगभग जमीनमे दबी हुई है। भामण्डलका आधा भाग वहीं पड़ा हुआ है। छत्र नही हैं, वक्षपर श्रीवत्स लांछन है। भगवान्‌के दोनों पार्श्वोंमें चमरेन्द्र हैं, जिनकी अवगाहना ६ फुट ५ इंच है। इन्द्र सभी अलंकार धारण किये हुए हैं, यथा मुकुट, रत्नहार, भुजबन्द, कुण्डल, केयूर, कड़े, मेखला आदि। वे जनेऊ भी धारण किये हुए है। एक ओरका चमरेन्द्र कमरसे नीचे टीलेमें दबा हुआ है। मूर्तिके ऊपरका भाग दो खण्डोंमे पड़ा हुआ है। पुष्पमालधारी गन्धर्ववाला भाग, छत्रसे ऊपरका भाग और भामण्डल ये सब भी वहाँ पड़े हुए हैं। इस मूर्तिपर कोई लांछन या लेख है या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि चरण-चौकीका भाग भूगर्भमें दबा हुआ है। किन्तु यह मूर्ति निश्चित रूपसे ऋषभदेव तीर्थंकरकी है। इसकी पहचान दो साधनोंसे की गयी। एक तो जटाओंसे और दूसरे ऋषभदेवकी शासन-रक्षिका यक्षी चक्रेश्वरीकी मूर्तिसे, जो यहीं अवस्थित है।

गन्धावल (गन्धर्वपुरी) में प्राप्त प्रतिमाओंमें चक्रेश्वरीदेवीकी इस मूर्तिकी उपलब्धि वस्तुतः बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस विंशतिभुजा देवीके अधिकांश हाथ खण्डित हैं किन्तु अवशिष्ट हाथोंमे लिये हुए मातुलिंग फल, वज्र आदिके अतिरिक्त दो हाथोंमें चक्र स्पष्ट दीख पड़ते हैं जिनके कारण इसे चक्रेश्वरी माननेमे कोई बाधा नही है। देवी रत्नाभरण धारण किये हुए है। इसके शीर्षभागमें पाँच कोष्ठकोंमे पाँच पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ विराजमान हैं। सिरके पृष्ठभागमें प्रभावली अंकित है जिसके दोनो ओर विद्याधर-युगल प्रदर्शित हैं। देवीका घुटनोंसे नीचेका भाग भूमिमें धँसा हुआ है। भूमिके ऊपर इसका आकार ४ फुट है। देवीके एक ओर देवीका वाहन गरुड़ दीख पड़ता है जो अपने बायें हाथमे सर्प पकड़े हुए है। दूसरी ओर सेविकाकी एक खण्डित मूर्ति है। इसने दायें हाथमे शक्ति धारण कर रखी है।

इन तीन विशाल मूर्तियोंमें-से तीसरी मूर्तिके सम्बन्धमें कहा जाता है कि वह मूर्ति गाँवमें एक स्थान पर पड़ी हुई थी। कुछ वर्ष पहले रातमें ४०-५० व्यक्ति आये और मूर्तिको ट्रकमें रखकर ले गये। वे व्यक्ति कौन थे, मूर्तिको कहाँ ले गये, इसका किसीको पता नहीं है। इसके सम्बन्धमे आज तक किसीने कोई चिन्ता नही की।

ग्राम पंचायत द्वारा संगृहीत मूर्तियों में हैं—चक्रेश्वरी, गौरी, अम्बिका, यक्षी, आदिनाथ और महावीरकी खड्गासन मूर्तियाँ, शीतलनाथकी यक्षी मानवी, पार्श्वनाथ तीर्थंकर मूर्तिका पादपीठ, शीतलनाथका यक्ष, ब्रह्मेश्वर, तीर्थंकर-मस्तक। एक चबूतरेमें कई ऐसे शिलाफलक जड़े हुए हैं जिनपर तीर्थंकर मूर्तियाँ अंकित हैं। इसी प्रकार एक तीर्थंकर मूर्तिका ऊपरी भाग जिसमे सुरों द्वारा पुष्पवर्षा प्रदर्शित है तथा एक महावीर मूर्ति भी जड़ी हुई है।

पुरातत्त्व विभागने जो मूर्तियाँ संगृहीत की हैं, उनमें कुछ मूर्तियाँ इस प्रकार हैं—

(१) १२ फुट ऊँची प्रतिमाके अतिरिक्त यहाँ जैन प्रतिमाओंकी संख्या बहुत है। एक पार्श्वनाथ प्रतिमा है जिसके दोनों ओर धरणेन्द्र-पद्मावती त्रिभंग मुद्रामें खड़े हैं। मूर्तिके सिरके पीछे भामण्डल है तथा सिरके ऊपर त्रिछत्र शोभित हैं। छत्रके नीचे सर्पफण मण्डलसे सुशोभित

भगवान् पार्श्वनाथ कायोत्सर्गासनमें खड़े हैं। सर्पके फण, भगवान्का मुख और उँगलियाँ खण्डित हैं। गन्धर्वोंके ऊपरी और निचले भागोंमें लघु तीर्थंकर-मूर्तियाँ हैं। चरण-चौकीपर चक्र अंकित है।

भगवान् महावीरकी एक खण्डित पाषाण मूर्ति भी है। इसके दोनों ओर मातंग यक्ष और सिद्धायनी यक्षी बने हुए हैं। पादपीठपर सिंह लांछन अंकित है।

(२) प्रथम तीर्थंकरकी यक्षी चक्रेश्वरी, (३) पार्श्वनाथ मूर्तिके ऊपरी भागमें यक्षी सिद्धायनी सहित तीर्थंकर वर्धमान, (४) एक शिलाफलकपर विद्यादेवियों सहित तीर्थंकर। देवियोंका अंकन कुण्डिका सहित किया गया है। (५) छतका शिलाखण्ड, जिसमें कीर्तिमुख दीख पड़ते हैं, (६) एक स्तम्भपर महावीरकी खड्गासन मूर्ति और उसके ऊपर पार्श्वनाथ मूर्ति, (७) एक शिलाफलकमें महावीरकी खड्गासन मूर्ति अष्ट प्रातिहार्योंसे युक्त, (८) एक शिलाफलकपर २४ तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ, (९) भगवान् शान्तिनाथ। अधोभागमें दो उपासक प्रणाम मुद्रा में, (१०) भगवान् शान्तिनाथ, (११) ऐरावत गजारूढ़ चतुर्भुज इन्द्र, (१२) पद्मप्रभ तीर्थंकर, (१३) सुमतिनाथ, (१४) ऐरावतपर आसीन इन्द्र, (१५) महावीरकी मूर्ति यक्ष-यक्षी सहित। कई द्वारपाल मूर्तियाँ हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई मूर्तियाँ हैं।

गन्धर्वपुरी ग्राममें जो जैन मूर्तियाँ हैं, वे प्रायः जमीनमें-से निकली हैं। अब भी कभी-कभी खेतोंमें हल चलाते समय और पुराने खण्डहरोंमें जैन मूर्तियाँ मिल जाती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि गन्धर्वपुरी प्राचीन कालमें प्रसिद्ध जैन तीर्थ रहा होगा। वर्तमानमें भी इस ग्राममें एक दिगम्बर जैन मन्दिर है। यह मन्दिर प्राचीन है किन्तु जीर्णोद्धारके कारण नया दीखता है। इसमें इधर-उधरसे लायी हुई ६ प्राचीन मूर्तियाँ हैं। इनका पाषाण सलेटी है। ये सभी तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं।

जैन मन्दिरके सामने एक प्याऊ है। उसके चबूतरेमें एक पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति जड़ी हुई अब भी दिखाई पड़ती है। जैन मन्दिरके निकट एक कब्रिस्तान है। कब्रोंके बनानेमें अधिकतर जैन मन्दिरोंकी सामग्रीका ही उपयोग हुआ है। हरिजनोंके मन्दिरमें भी जैन मन्दिरोंके पाषाण एवं मूर्तियोंके खण्ड लगे हुए हैं। सोमवतीके दूसरे तटपर गन्धर्वसेनके मन्दिरके पास सीढ़ियोंमें भी ऐसी सामग्री लगी है। गाँवमें और गाँवके बाहर मन्दिरोंके भग्नावशेष बिखरे हुए हैं। यह समस्त सामग्री १०वीं-११वीं शताब्दीकी है और परमारकालीन है।

चूलगिरि

सिद्धक्षेत्र

चूलगिरि सिद्धक्षेत्र है। यहाँसे इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण तथा अन्य अनेक मुनि मुक्त हुए हैं। प्राकृत निर्वाण काण्डमें इस सम्बन्धमें निम्नलिखित उल्लेख प्राप्त होता है—

'बड़वाणीवरणयरे दक्खिणभायम्मि चूलगिरिसिहरे।
इंदजिय कुम्भकरणो णिव्वाणगया णमो तेसिं' ॥१२॥

अर्थात् बड़वानी नगरसे दक्षिणकी ओर चूलगिरि शिखरसे इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण आदि मुनि मोक्ष गये। मैं उनको नमस्कार करता हूँ।

इस गाथाका हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है—

'बड़वानी बड़नयर सुचंग। दक्षिणदिशि गिरिचूल उतंग।
इन्द्रजीत अरु कुम्भजु कर्ण। ते बन्दों भवसायर तर्ण॥'

संस्कृत निर्वाण भक्तिमें इस तीर्थके सम्बन्धमें कोई उल्लेख नहीं है। किन्तु उत्तरकालीन भट्टारकोंने इस क्षेत्रको सिद्धक्षेत्र या निर्वाण क्षेत्र स्वीकार किया है। यथा—भट्टारक श्रुतसागरने बोधप्राभृतकी २७वीं गाथाकी टीकामें निर्वाण क्षेत्रों तथा कल्याणक क्षेत्रोंका वर्णन करते हुए चूलाचलका उल्लेख किया है।

मेघराज कविने 'तीर्थ-वन्दना' नामक गुजराती रचनामें इस तीर्थके सम्बन्धमें निर्वाण-काण्डके समान ही इस प्रकार लिखा है—

'बडवानि नगर सुतीर्थ पश्चिम चुलगिरि जानिजोए।
कुंभकर्ण इंद्रजित सिद्ध हवा ते बखाणि जोए॥'

काष्ठा संघ नन्दीतटगच्छके भट्टारक ज्ञानसागरने 'सर्वतीर्थवंदना' नामक एक रचना हिन्दी मिश्रित गुजरातीमे लिखी है। उसमें अनेक तीर्थोंका १०१ छप्पय छन्दोंमे परिचय दिया है। चूल-गिरि क्षेत्रका परिचय देते हुए उन्होंने कुछ नयी जानकारी भी दी है—

'बड़वाणी वरनयर तास समीप मनोहर।
चूलगिरीन्द्र पवित्र भवियण जन बहुसुखकार॥
कुंभकर्ण मुनिराय इंद्रजित मोक्ष पधार्या।
सिद्धक्षेत्र जग जाण बहु जन भव जल तार्या॥
बावन संघपति आय करि बिंबप्रतिष्ठा बहुकरी।
ब्रह्मज्ञानसागर वदति कीर्ति त्रिभुवनमां विस्तरी' ॥६४॥

इस पद्यमें यह विशेष सूचना दी गयी है कि ५२ संघपतियोंने यहाँ अनेक बिम्बोंकी प्रतिष्ठाएँ करायी। क्षेत्रपर संवत् १३८० में प्रतिष्ठित मूर्तियोंकी बहुत बड़ी संख्या है। सम्भवतः कविका अभिप्राय इन्हीं मूर्तियोंकी प्रतिष्ठासे है।

मराठी भाषाके प्रमुख कवि चिमणा पण्डितने इस क्षेत्रके सम्बन्धमें परिचय देते हुए लिखा है कि—

'बडवानिनयर दक्षिन भागी। चूलगिरि पर्वत तू पाहे वेगी।
इन्द्रजित कुम्भकर्ण उभय योगी। तपोनिधि झाले शिव सुखभोगी' ॥१७॥

भट्टारक उदयकीर्तिने 'तीर्थ-वन्दना' नामक अपनी रचनामें बडवानीसे रावणके पुत्र इन्द्र-जित्को मुक्त हुआ माना है—

'बड़वाणी रावण तणउ पुत्त। हउं वंदउं इंदजित मुणि पवित्त।'

यति मदनकीर्ति—जो लगभग १२वीं-१३वीं शताब्दीके विद्वान् हैं, ने 'शासन-चतुस्त्रिंशिका' में लिखा है कि भगवान् आदिनाथकी ५२ हाथ ऊँची मूर्ति है। इसे बृहद्देव कहा जाता है। इसका निर्माण अर्ककीर्ति राजाने एक ही पाषाणसे कराया था। इस स्थानको आदि निषधिका कहा जाता था। वह नगर बृहत्पुर कहलाता था।

'द्वापञ्चाशदनूनपाणिपरमोन्मानं करैः पञ्चभिः
यं चक्रे जिनमर्ककीर्तिनृपतिर्ग्रावाणमेकं महत्।
तन्नाम्ना स बृहत्पुरे वरबृहद्देवाख्यया गीयते
श्रीमत्यादिनिषिद्धिकेयमवताद् दिग्वाससां शासनम्' ॥६॥

---

१. मदन और आशाधर मालवराज अर्जुनवर्मन परमार (१२१०-१२१८) के दरबारके रत्न थे। दि स्ट्रगल फॉर एम्पायर, पृ. ७१, भारतीय विद्या भवन, बम्बई।

भट्टारक सुमतिसागरने इस क्षेत्रकी मूर्तिको बावनगजा माना है। 'सुविंझाचल बावण-गजदेव।' भट्टारक जयसागरने भी इसका स्मरण इस प्रकार किया है—

'सुबावनगज विन्ध्याचल ठाय।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनेक विद्वान् लेखकोंने तीर्थोंका वर्णन करते समय चूलगिरि-का स्मरण किया है। कुछ लेखकोंने निर्वाण क्षेत्रके रूपमें इसका उल्लेख किया है और दूसरे विद्वानोंने यहाँकी आदिनाथ स्वामीकी विशाल प्रतिमा—जिसे बावनगजाजी कहते हैं—का वर्णन किया है। वास्तवमें जैसे इस क्षेत्रका माहात्म्य निर्वाण क्षेत्र होनेके कारण है, उसी प्रकार भारतकी सबसे बड़ी प्रतिमा होनेके कारण भी इस क्षेत्रका महत्त्व है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

उपर्युक्त उल्लेखोंके अनुसार बड़वानी नगरके निकटवर्ती चूलगिरिसे रावण-पुत्र इन्द्रजित् और रावणके अनुज कुम्भकर्ण मुनि-अवस्थामें तप करके मुक्त हुए हैं। अतः यह क्षेत्र सिद्धक्षेत्र अथवा निर्वाण-क्षेत्र कहलाता है।

आचार्य रविषेणकृत 'पद्मपुराण'में रावणकी मृत्यु होनेके बादकी एक महत्त्वपूर्ण घटनाका वर्णन आया है। एक दिन छप्पन हजार आकाशचारी मुनियोंके संघके साथ अनन्तवीर्य मुनिराज पधारे। उसी दिन रात्रिके समय उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। देवोंने आकर केवलज्ञानकी पूजा की और गन्धकुटीकी रचना की। समाचार मिलते ही रामचन्द्र, लक्ष्मण, वानरवंशी, ऋक्ष-वंशी और राक्षसवंशी सब लोग उनके दर्शनोंको आये। भगवान् अनन्तवीर्य केवलीका उपदेश सुनकर इन्द्रजीत, मेघनाद, कुम्भकर्ण, मारीच आदिने लंकाके उसी कुसुमायुध नामक उद्यानमें केवली भगवान्के समीप मुनि-दीक्षा ले ली। कुछ समय पश्चात् वे विभिन्न देशोंमें विहार करने लगे।

किन्तु इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण आदिने किस स्थानसे मोक्ष प्राप्त किया, इसका कोई उल्लेख पद्मपुराणकारने नहीं किया। साधारण-सा संकेत दिया है कि विन्ध्यवनकी महाभूमिमें जहाँ इन्द्रजीतके साथ मेघवाहन मुनिराज विराजमान रहे, वहाँ मेघरव नामक तीर्थ बन गया (पद्म-पुराण ८०।१३६) तथा रजोगुण और तमोगुणसे रहित महामुनि कुम्भकर्ण योगी नर्मदाके जिस तीरपर निर्वाणको प्राप्त हुए थे, वहाँ पिठरक्षत नामका तीर्थ प्रसिद्ध हुआ।

यह मेघरव और पिठरक्षित तीर्थ कहाँ रहे हैं। आज इसका पता किसीको नहीं है। आचार्य गुणभद्रके 'उत्तरपुराण'में भी इनके निर्वाण-स्थानका उल्लेख नहीं मिलता। इतना अवश्य मिलता है कि सुग्रीव, विभीषण, हनुमान् आदिके साथ रामचन्द्रने सम्मेदशिखरसे निर्वाण प्राप्त किया। कुछ विद्वान् यहाँ आये हुए 'आदि' शब्दसे इन्द्रजीत और कुम्भकर्णको भी रामचन्द्रके साथ सम्मिलित करनेपर जोर देते हैं। विभीषण, सुग्रीव आदि मुनि-अवस्थामें रामचन्द्रके साथ रहे हों, यह सम्भव हो सकता है। किन्तु इन्द्रजीत और कुम्भकर्ण रामचन्द्रके साथ तपस्या करते हों और सम्मेदशिखरपर अन्तमें उनके साथ रहे हों, यह एक क्लिष्ट कल्पना है। क्योंकि इन्द्रजीत और कुम्भकर्णने लंकाकी पराजयके बाद ही मुनि-दीक्षा धारण कर ली थी, जबकि रामचन्द्र आदि बहुत समयके पश्चात् मुनि हुए थे। दूसरे, रामचन्द्रके प्रति उनके मनमें किसी आकर्षणकी सम्भावना ही नहीं थी। इसलिए यह स्वीकार करना कठिन है कि इन्द्रजीत और कुम्भकर्णने सम्मेदशिखरसे मोक्ष प्राप्त किया था।

वास्तवमें इन्द्रजीत और कुम्भकर्णका निर्वाण इसी चूलगिरिसे हुआ था, इसीलिए यह शताब्दियोंसे सिद्धक्षेत्रके रूपमें प्रसिद्ध रहा है। प्राकृत निर्वाण-भक्ति आचार्य कुन्दकुन्द विरचित

है, इस प्रकारकी मान्यता प्रचलित है। यदि यह मान्यता ठीक है तो यह स्वीकार करनेमें कोई आपत्ति नहीं है कि दो सहस्राब्दी पूर्वमें भी चूलगिरि सिद्धक्षेत्रके रूपमें मान्य रहा है।

भारतकी सर्वोन्नत मूर्ति, बावनगजाजी

चूलगिरि सतपुड़ा शैल मालाओंकी सबसे ऊँची चोटी कही जाती है। यहींपर भारतकी सबसे विशाल मूर्ति विराजमान है। यह मूर्ति आद्य तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेवकी है जो चूलगिरि-के मध्यमें एक ही पाषाणमें उकेरी हुई है। यह प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रामें है और ८४ फुट ऊँची है। सर्व-साधारणमें यह मूर्ति बावनगजाजीके नामसे प्रसिद्ध है। प्राचीन कालमें इस प्रान्तमें एक हाथको ही कच्चा गज माननेकी परम्परा थी। चूँकि यह प्रतिमा ५२ हाथ ऊँची है, अतः जनतामें यह बावनगजाजीके नामसे विख्यात हो गयी। श्रवणबेलगोलामें गोम्मटेश्वरकी प्रतिमा लगभग ५७ फुटकी है। सौम्यता और भावमुद्रामें संसारकी कोई भी प्रतिमा गोम्मटेश्वरकी प्रतिमाके साथ समता नहीं कर सकती। वह सारे पहाड़को काटकर निर्मित हुई है और निराधार खड़ी हुई है, जबकि बावनगजाकी ऋषभदेव प्रतिमा न तो भावांकनमें उसकी समानता कर सकती है और न ही वह निराधार ही खड़ी है। बल्कि पहाड़के सहारे खड़ी हुई है। तथापि बावनगजाजीकी इस प्रतिमाकी अपनी कुछ अनुपम विशेषता है और वह है इसकी विशालता। इतनी विशाल प्रतिमाका निर्माण करके जैनोंने कलाके क्षेत्रमें निश्चय ही एक महान् देन दी है। इसका शिल्प-विधान भी अनूठा है। यह समानुपातिक है। इसके अंग-प्रत्यंग सुडौल हैं। मुखपर विराग, करुणा और हास्य-की संतुलित छवि अंकित है।

बावनगजाजीका पूरा माप इस प्रकार है—

मूर्तिकी ऊँचाई	८४ फुट
एक भुजासे दूसरी भुजाका आकार	२९ फुट ६ इंच
भुजासे उँगली तक	४६ फुट २ इंच
कमरसे एड़ी तक	३७ फुट
सिरका घेरा	२६ फुट
पैरकी लम्बाई	१३ फुट ९ इच
नाककी लम्बाई	३ फुट ११ इंच
आँखकी लम्बाई	३ फुट ३ इंच
कानकी लम्बाई	९ फुट ८ इंच
एक कानसे दूसरे कानकी दूरी	१७ फुट ६ इंच
पाँवके पंजेकी चौड़ाई	५ फुट

मूर्तिका निर्माण काल

यह मूर्ति भूरे देशी पाषाणकी बनी हुई है। इस मूर्तिपर कोई लेख नहीं है। अतः इसके निर्माता या प्रतिष्ठाकारकका नाम और प्रतिष्ठा-काल निश्चयपूर्वक कहना कठिन है। यह कैसे आश्चर्यकी बात है कि इतनी विशाल कला-मूर्तिके निर्माता कलाकार, प्रतिष्ठाकारक और प्रतिष्ठा-चार्य सभी अपने यशके प्रति इतने निरीह रहे हैं कि उन्होंने अपने पीछे अपने परिचयका कोई सूत्र तक नहीं छोड़ा और अपनी समस्त आकांक्षाओंके साकार रूपमें यह भव्य-प्रतिमा निर्मित करके अपने आपको सर्वान्तःकरणसे भगवान् ऋषभदेवके चरणोंमें समर्पित कर दिया। वास्तवमें युगयुगों तक जगत्के लिए आत्म-कल्याणका मार्ग प्रशस्त करके वे धन्य हो गये।

यहाँ विचारणीय यह है कि यति मदनकीर्ति १३वीं शताब्दीके विद्वान् हैं। उन्होंने इस मूर्तिका उल्लेख किया है। इसका अर्थ है कि यह मूर्ति उनसे पूर्वकी है। यतिजीने इसके निर्माता-का नाम अर्ककीर्ति लिखा है। इस नामके तत्कालीन किसी नरेशका पता इतिहास-ग्रन्थोंमें नहीं मिलता। सम्भवतः यह कोई छोटा-मोटा राजा रहा होगा।

यतिजीसे भी पूर्वकालके दो लेख इस मन्दिरके सभामण्डपमें पूर्व और दक्षिणकी ओर उत्कीर्ण हैं। ये लेख संवत् १२२३ (सन् ११६६) भाद्रपद वदी १४ शुक्रवारके हैं। पूर्ववाले लेखमें रामचद्र मुनिकी प्रशंसा की गयी है तथा दक्षिणवाले लेखमें मुनि लोकनन्द, देवनन्द और उनके शिष्य रामचन्द्रकी प्रशंसा करते हुए उनके द्वारा यहाँ मन्दिर निर्माण करानेका उल्लेख किया गया है।

इसमें जिस मन्दिरके निर्माणका उल्लेख है, सम्भवतः वह चूलगिरि पर स्थित मुख्य मन्दिर ही है। किन्तु इसमें बड़ी मूर्तिके निर्माणके बारेमें कुछ भी संकेत नहीं किया गया। यह भी सम्भव है कि मुनि रामचन्द्रके उपदेशसे अर्ककीर्ति नरेशने मुख्य मन्दिर और बड़ी मूर्तिका निर्माण कराया हो। किन्तु इस प्रकारका कोई स्पष्ट उल्लेख न होनेके कारण विश्वासपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। इतना तो सुनिश्चित है कि शिलालेखके अनुसार मुख्य मन्दिरका निर्माण संवत् १२२३ में हुआ था और यति मदनकीर्ति द्वारा ५२ हाथ ऊँची मूर्तिका उल्लेख करनेसे स्पष्ट है कि यह मूर्ति मदनकीर्तिके कालमें विद्यमान थी। मदनकीर्तिका इतिहाससम्मत काल १३वीं शताब्दी है।

एक शिलालेखके अनुसार संवत् १५१६ में भट्टारक रत्नकीर्तिने इस मन्दिरका जीर्णोद्धार कराया। शिलालेखका मूलपाठ इस प्रकार है—

'स्वस्ति श्री संवत् १५१६ वर्षे मार्गशीर्षे वदि ९ रवौ सूरसेनं मेहमुन्द राज्ये श्री काष्ठासंघे माथुरगछे(च्छे) पुष्करगणे भट्टारकः श्री श्रीक्षेमकीर्तिदेवः व्रतनियमस्वाध्यायानुष्ठानतपोपशमैक-नियम भट्टारकश्रीहेमकीर्तिदेवस्तच्छिष्य महावादवादीश्वररायवादीपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्ति-नलः श्रीकमलकीर्तिदेयस्तच्छिष्यजिनसिद्धान्तपाठपयोधिनायकान्तटोपासीन मण्डलाचार्य श्रीरत्न-कीर्तिना जीर्णोद्धारः कृतः बृहच्चैत्यालयपार्श्वे दशजिनवसतिकाः कारापिताः भट्टेश्वर द्वितीयसं डालु भार्या खेतु द्वि (........) ना (........) पद्मिनी खेतुपुत्र सं० वाढा सं पारस एतैः इन्द्रजितः प्रतिमां प्रतिष्ठाप्य नित्यमर्चमन्तो पूजमन्तो वा शुभं तावच्छ्रीसंघस्य।'

इस शिलालेखसे ज्ञात होता है कि काष्ठासंघ माथुरगच्छ पुष्करगणके भट्टारक क्षेमकीर्ति, उनके शिष्य भट्टारक हेमकीर्ति, उनके शिष्य कमलकीर्ति, उनके शिष्य भट्टारक रत्नकीर्ति देवने इसका जीर्णोद्धार कराया तथा बड़े मन्दिरके बगलमें दस जिनालय बनवाये। उन्होंने इन्द्रजीतकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा करके स्थापित की।

ये भट्टारक ग्वालियर पीठके स्वामी थे। रत्नकीर्तिके गुरु कमलकीर्तिका आनुमानिक काल संवत् १५०६-१५१० है।

मन्दिरमें उत्तरकी ओर एक लेख है। उसमें लिखा है कि संवत् १५१६ में सूत्रशालाका जीर्णोद्धार किया गया। इसका अर्थ है कि मन्दिरकी तरह सूत्रशाला भी पर्याप्त प्राचीन थी, जिससे उसके जीर्णोद्धारकी आवश्यकता हुई।

सारांश यह है कि बावनगजाजी मूर्तिका सही निर्माण काल तो निश्चित नहीं हो पाया, किन्तु यह १३वीं शताब्दीसे पूर्वकालिक है। यहाँका मुख्य मन्दिर १२वीं शताब्दीमें निर्मित हुआ था। सम्भवतः सूत्रशालाकी रचना भी इसी कालमें हुई थी। मुख्य मन्दिरके निकटवर्ती १० मन्दिरोंका निर्माण भट्टारक रत्नकीर्तिके उपदेशसे १५वीं शताब्दीमें किया गया।

इसके पश्चात् मुस्लिम-कालमें और बादमें भी बहुत समय तक इस मूर्तिकी उपेक्षा रही। मूर्तिके ऊपर धूप और वर्षासे बचावके लिए न छतरी थी और न प्रक्षाल आदि करनेके लिए सीढ़ी। बुरबुरे पाषाणकी होनेके कारण यह प्रकृतिके असह्य प्रहारोंके कारण खिरती भी रहती थी। वर्षाका पानी पहाड़के भीतर प्रवेश करके मूर्तिके आसपाससे निकलता रहता था। अतः भय होने लगा कि कहीं यह विशाल प्रतिमा नष्ट न हो जाये। तब दिगम्बर जैन समाजने इसकी सुरक्षाकी ओर ध्यान देना आरम्भ किया, कई प्रसिद्ध इंजीनियरों और पुरातत्त्व विभागके अधिकारियोंसे परामर्श किया गया और माघ सुदी १ वीर सं. २४४९ (वि. सं. १९७९) को जीर्णोद्धारका मुहूर्त किया गया। इसमें ५९००० रुपये व्यय हुए। इसके फलस्वरूप मूर्तिके दोनों ओर गैलरी बना दी गयी, जहाँ खड़े होकर आसानीसे अभिषेक किया जा सके। धूप और वर्षासे बचावके लिए मूर्तिके ऊपर ४० फुट लम्बे १॥ फुट चौड़े गर्टर डालकर ऊपर बाम्बेके पत्रोंकी छत बनवा दी गयी है। इस प्रकार इस मूर्तिकी सुरक्षा की गयी है। मूर्तिके ऊपर पालिश भी करा दी गयी है। इससे मूर्ति सौम्य और आकर्षक हो गयी है। किन्तु मूर्तिकी प्राचीनता इसके कारण दब गयी लगती है।

बड़वानीके मन्दिर और संस्थाएँ

बड़वानीमें एक विशाल दिगम्बर जैन मन्दिर है। मन्दिरमें मूलनायक भगवान् नेमिनाथकी भव्य प्रतिमा है, जिसकी प्रतिष्ठा संवत् १३८० में हुई थी। इसके पादपीठपर इस विषयक मूर्ति-लेख भी है। चूलगिरि क्षेत्रकी ४ धर्मशालाएँ भी यहींपर हैं। धर्मशालाओंके निकट ही श्री हरसुखराय दि. जैन छात्रावास तथा श्री महावीर चैत्यालय है। जैन धर्मशाला और जैन छात्रावास जिस जमीनपर बने हुए हैं, वह जमीन ३१ जुलाई १८६७ को तत्कालीन बड़वानी नरेश महाराणा जसवन्तसिंहजीने दिगम्बर जैनोंको भेंटस्वरूप दी थी। यह जमीन राणापुरा मुहल्लेकी खाईके पश्चिमकी ओर उत्तर-पश्चिममें ५०० हाथ तथा पूर्व-पश्चिममें ५०० हाथ लम्बी-चौड़ी और चौरस है। जब इसके आसपास आबादी बढ़ गयी और जमीनका मूल्य बढ़ गया, तब २८-७-१९१६ को इस जमीनके बदले जैन धर्मशालाके पीछेकी खराब जमीन देनेके लिए तत्कालीन बड़वानी रियासतके दरबार ऑफिसकी ओरसे आदेश जारी हुआ। जिसके विरोधमें सारे भारतके दिगम्बर जैन समाजमें आन्दोलन हुआ। फलतः नरेशको आदेश वापस लेना पड़ा। इसके बाद वहाँके दरबार और म्युनिसिपैलिटीने इस भूमिपर जैनोंके कानूनी अधिकारको मान्य करनेका लिखित आश्वासन दिया। वहाँकी नगरपालिकाने प्रस्ताव पास करके जैन समाजको छात्रावास और धर्मशाला बनानेकी आज्ञा दी है। इस प्रकार इस भूमिपर जैन समाजका वैध अधिकार है। उसने इसका बहुत विकास किया है। इस भूमिपर धर्मशाला, छात्रावास और मन्दिर जन-कल्याणके लिए बनाये गये हैं।

क्षेत्र-दर्शन

बड़वानीसे पहाड़ी मार्ग द्वारा चूलगिरि क्षेत्र ७ कि. मी. है। क्षेत्र तक पक्की सड़क है। इस सड़कको बनवानेके लिए दिगम्बर जैन समाजने तत्कालीन दरबारको २००० रुपये प्रदान किये थे। सड़कका नाम बावनगजा रोड है। बसें धर्मशाला तक नियमित रूपसे चलती हैं।

तलहटीकी धर्मशालाओंके पास सेठ रोडमल मेघराज सुसारीकी ओरसे दो गुफाएँ बनी हुई हैं। धर्मशालासे चलकर प्रायः २ फर्लांगपर एक छोटा-सा मन्दिर मिलता है। यह नेमिनाथ मन्दिर है। इसमें कृष्ण पाषाणकी १ फुट २ इंच ऊँची भगवान् नेमिनाथकी पद्मासन प्रतिमा

विराजमान है। यह संवत् १९३९ में प्रतिष्ठित हुई है। इसके बगलमें चन्द्रप्रभ भगवान्की २ फुट १ इंच ऊँची पद्मासन मुद्रामें श्वेत वर्ण प्रतिमा विराजमान है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९६७ में हुई है। इस मन्दिरका निर्माण सेठानी बड़ी बाई धर्मपत्नी सेठ नानूराम ऋषभदास बड़वानीने कराया था।

आगे एक द्वार मिलता है। यह विश्राम स्थान भी है। इसके बगलमें जिनालय है। मन्दिरमें घुसते ही बायीं ओर देशी पाषाणकी आदिनाथ स्वामीकी पद्मासन प्रतिमा है। इसकी अवगाहना ३ फुट ८ इंच है और इसकी प्रतिष्ठा संवत् १३८० है। इसके बगलके गर्भगृहमें भगवान् नेमिनाथकी कृष्ण पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। यह ३ फुट ३ इंच ऊँची है और संवत् १९६७ में इसकी प्रतिष्ठा हुई है। इसकी बायी ओर भगवान् पार्श्वनाथकी कृष्ण वर्णकी पद्मासन प्रतिमा है जो २ फुट ५ इंच ऊँची है और संवत् १९३९ की प्रतिष्ठित है। दायीं ओर भगवान् पार्श्वनाथकी देशी पाषाणकी ३ फुट ५ इंच समुन्नत खड्गासन मूर्ति है। वेदीपर प्राचीन चरण हैं। मन्दिरके निर्माता सेठ मीठाजी चन्दूलाल मोतीलाल बड़वानी हैं।

दूसरे गर्भालयमें भगवान् शान्तिनाथकी देशी पाषाणकी खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। अवगाहना १० फुट है और प्रतिष्ठा संवत् १३८० है। इसे नोगजाजी कहा जाता है। भगवान्के सिरके पृष्ठभागमें भामण्डल अलंकृत है तथा सिरके ऊपर छत्रत्रयी है। भगवान्के चरणोंके दोनों ओर सौधर्म और ऐशान इन्द्र चमर हाथमें लिये सेवारत हैं। बायीं ओर कुन्थुनाथ भगवान्की ४ फुट ७ इंच उन्नत प्रतिमा है और बायीं ओर ५ फुट उन्नत अरनाथ विराजमान हैं। इन प्रतिमाओंके परिकरमें भामण्डल और चमरवाहक हैं तथा प्रतिष्ठाकारक और उनकी पत्नी हाथ जोड़े हुए भगवान्की सेवामें खड़े हैं। शान्तिनाथकी चरण-चौकीपर उसका प्रतिष्ठा काल संवत् १३८० अंकित है। इस मन्दिरका निर्माण सेठ रोडजी सूरजमलजी सुसारी तथा श्री हुकमीचन्द चुन्नीलाल डेहरीने कराया था।

इन मन्दिरोंसे बावनगजाजी तक जानेके लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। मध्यमें पार्श्वनाथ मन्दिर है। पार्श्वनाथ भगवान्की भूरे देशी पाषाणकी ४ फुट ७ इंच उन्नत पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। चरण-चौकीपर अंकित मूर्ति-लेखके अनुसार इसकी प्रतिष्ठा संवत् १२४२ में की गयी। प्रतिष्ठाकारक और उनकी पत्नी भगवान्के दोनों ओर चरणोंमें हाथ जोड़े हुए बैठे हैं। इस मन्दिरका निर्माण सेठ हीराचन्द विजयलाल रतावरने कराया।

इस मन्दिरसे कुछ ही दूरीपर देवाधिदेव ऋषभदेव स्वामीकी जगद्विख्यात प्रतिमा उच्च पर्वत शिखरपर खड़ी संसारके सन्त्रस्त प्राणियोंके ऊपर अपनी अनन्त करुणाकी वर्षा कर रही है। यही प्रतिमा बावनगजाजीके नामसे जगविश्रुत है। उनके चरणोंमें पहुँचकर उनकी महानताके समक्ष अपनी हीनता और अकिंचनताका बोध होता है। जाते ही उनके चरणोंमें मस्तक स्वतः झुक जाता है। मन पावनतासे स्निग्ध हो उठता है। जगत्की नानाविध आकुलताओंसे सन्तप्त मानसपर मानो शीतल फुहारें पड़ने लगती हैं। हृदय भक्तिसे तरंगित हो उठता है। जब चरणोंसे मस्तक हटाकर ऊपरकी ओर दृष्टि उठाते हैं तो महाप्रभुके मुखपर अनिद्य मुसकान बिखरी हुई दिखाई पड़ती है। लगता है, प्रभु हमपर करुणाकी वर्षा करके अभय दे रहे हैं। उनकी पावन छायामें पहुँचकर शान्तिका अनुभव होने लगता है।

भगवान् ऋषभदेवकी यह प्रतिमा खड्गासन मुद्रामें है। यह पहाड़में-से ही उकेरी गयी है। यह गोम्मटेशके समान निराधार नहीं है बल्कि उसे पहाड़का आधार प्राप्त है। यह अपनी उच्चतामें अद्वितीय है। प्रतिमाकी छातीपर श्रीवत्स लांछन है। प्रतिमाके हाथ जांघोंसे मिले हुए

नहीं हैं, पृथक् हैं। बायीं ओर चतुर्भुजी गोमुख यक्ष और दायीं ओर षोडशभुजी चक्रेश्वरी यक्षीकी मूर्ति है। ये भगवान् ऋषभदेवके सेवक यक्ष-यक्षी हैं। इस प्रतिमाके दर्शन चरणोंमें खड़े होकर नहीं हो पाते, इसके लिए मूर्तिसे कुछ हटकर सामने खड़ा होना पड़ता है।

बायीं ओर दीवारमें दो फुट ऊँचे एक शिलाफलकमें अजितनाथ तीर्थंकरकी पद्मासन प्रतिमा उत्कीर्ण है। परिकरमें भामण्डल, छत्र, गजलक्ष्मी और मालाधारी गन्धर्व हैं। चमरवाहक एक हाथमें चमर तथा दूसरे हाथमें जलकलश लिये हुए हैं। प्रतीकात्मक रूपसे सौधर्म और ऐशान इन्द्रोंको सानत्कुमार और माहेन्द्र इन्द्रोंके कार्योंको करते हुए दिखाया गया है। अधोभागमें अजितनाथके यक्ष-यक्षी महायक्ष और अजिता बने हुए हैं। चरण-चौकीपर अजितनाथका लांछन हाथी अंकित है।

बड़ी मूर्तिके आगे एक बड़ा चबूतरा है तथा दोनों बाजुओंमें दालान या सभामण्डप बने हुए हैं।

बड़ी मूर्तिके अभिषेक आदिके उद्देश्यसे ऊपर जानेके लिए सीढ़ियाँ और मंच बने हुए हैं। ऊपर मूर्तिके सिरके पीछे एक कमरेमें तीन वेदियाँ बनी हुई हैं। मध्यवेदीमें भगवान् चन्द्रप्रभकी श्वेत पाषाणकी कायोत्सर्गासन प्रतिमा है जिसकी अवगाहना ३ फुट है। यह वीर संवत् २४५७ में प्रतिष्ठित हुई है।

शेष दोनों वेदियोंमें इसी संवत्के प्रतिष्ठित तीन मुनियोंके चरण-चिह्न बने हुए हैं। मुनियोंके नाम हैं—मुनि आनन्दसागरजी, मुनि शान्तिसागरजी और मुनि ज्ञानसागरजी।

बावनगजाजीसे कुछ ऊपर जानेपर एक द्वार मिलता है। बायीं ओरको आदिनाथ मन्दिर है। इसमें भगवान् ऋषभदेवकी संवत् १३८० की एक पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी अवगाहना २ फुट है। बायी ओर १ फुट १ इंच ऊँचे और १ फुट ५ इंच चौड़े शिलाफलकमें एक पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा विराजमान है। इसके दोनों पार्श्वोंमे दो खड्गासन प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। दायीं ओर एक फलकमें यक्ष-यक्षी बने हुए हैं। दोनों बैठे हुए है। उनके दोनों पैर लटके हुए हैं। ये दोनों प्रतिमाएँ पहाड़पर उत्खननमें प्राप्त हुई थीं। दायी ओर श्वेत वर्ण चन्द्रप्रभ विराजमान हैं। प्रतिमाका आकार १ फुट ७ इंच है। यह पद्मासन है और संवत् १९६७ की प्रतिष्ठित है।

मन्दिरके बाहर दो खण्डित तीर्थंकर मूर्तियाँ रखी हुई हैं। ये भी उत्खननमें प्राप्त हुई बतायी जाती हैं।

पहाड़की चोटीपर चूलगिरि मन्दिर है। यही सिद्धभूमि है। यहींसे मुनि इन्द्रजीत, मुनि कुम्भकर्ण और अन्य अनेक मुनि मुक्त हुए हैं। उनकी साधना, तपस्या और वीतरागतासे पवित्र हुए यहाँके परमाणु अब तक यहाँके कण-कणमें व्याप्त हैं। देवताओं और इन्द्रोंने इन मुनियोंका निर्वाणोत्सव इसी स्थानपर आकर धूमधामसे मनाया था।

चूलगिरि मन्दिरमें महामण्डप और गर्भालय हैं। अन्य मन्दिरोंके समान यह मन्दिर शिखर-बन्द है। गर्भालयमें वेदीपर उक्त मुनिराजोंके तीन चरण-चिह्न बने हुए हैं तथा श्वेत पाषाणकी दो प्रतिमाएँ विराजमान हैं—मल्लिनाथ और चन्द्रप्रभ। इनके चरण-पीठपर क्रमशः कलश और अर्धचन्द्र ये चिह्न अंकित हैं। इनके अतिरिक्त महामण्डपमें दोनों ओर ३६ मूर्तियाँ विराजमान हैं। इनमें २ मूर्तियाँ खण्डित हैं। इन मूर्तियोंमें १४ मूर्तियाँ संवत् १३८० की है, शेष संवत् १९३९ की प्रतिष्ठित हैं। मूर्तियोंकी चरण-चौकीपर मूर्ति-लेख अंकित हैं। ३६ मूर्तियोंमें १७ श्वेत, ६ कृष्ण और १३ भूरे वर्णकी हैं। मन्दिरके महामण्डपमें ४ शिलालेख भी हैं। शिलालेख संवत् १११६, १२२३ और १५०८ के हैं। इन शिलालेखोंके अनुसार इन संवतोंमें इस मन्दिरका निर्माण एवं

जीर्णोद्धार किया गया था। इससे प्रतीत होता है कि सिद्धक्षेत्रके रूपमें इस क्षेत्रकी मान्यता प्राचीन कालसे चली आ रही है।

मन्दिरके बाहर बने हुए अहातेके आलोंमें २२ मूर्तियाँ रखी हुई हैं। ये सब पहाड़पर उत्खननमें प्राप्त हुई थीं। इन मूर्तियोंमें नेमिनाथकी एक मूर्ति ४ फुट ४ इंच तथा पार्श्वनाथकी एक मूर्ति ४ फुट ३ इंचकी है। ये मूर्तियाँ प्रायः खण्डित हैं। कुछ मूर्ति-लेखोंके अनुसार ये संवत् १३८० की हैं।

इस मन्दिरके पृष्ठभागमें एक गुमटी या मन्दरिया बनी हुई है। इसमें तीन वेदियाँ हैं। सामनेवाली वेदीमें २ फुट २ इंच ऊँची एक खड़ी नग्न मूर्ति है। मूर्ति हाथ जोड़े हुए है। इसके दोनों ओर चमरवाहक हैं। मूर्तिके साथ पीछी-कमण्डल नहीं है। दायीं दीवारमें कृष्ण पाषाणकी हाथ जोड़े हुए मुनि-मूर्ति है। नीचे हाथ जोड़े हुए श्रावक-श्राविका हैं। इस मूर्तिके अधोभागमें लेख अंकित है। इसी प्रकार बायीं ओरकी दीवारमें भी एक मुनि-मूर्ति खड़ी है। उसके दोनों पार्श्वोंमें चमरवाहक हैं। बगलमें एक यक्षी-मूर्ति है। इन तीनों मूर्तियोंका आकार १ फुट ८ इंच है। कुछ लोगोंकी धारणा है कि दायीं ओर की दीवारमें बनी हुई मूर्ति आचार्य कुन्दकुन्दकी है और शेष दोनों मूर्तियाँ दो गणधरोंकी हैं। इस मूर्ति-लेखको देखकर यह भ्रान्ति पकड़में सरलतापूर्वक आ जाती है। मूर्ति-लेखके प्रारम्भमें 'कुन्दकुन्द....न्वये' रह गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'कुन्दकुन्द' शब्दको पढ़कर इस मूर्तिको ही कुन्दकुन्द मान लिया गया। अनुकरणप्रिय लोगोंने बिना देखे-समझे रिपोर्टों, पत्रों आदिमें उसे प्रकाशित कर दिया। समाजमें स्वीकृत तथ्यके रूपमें यह प्रचारित हो गया। ऐसी निराधार मान्यता बड़ी उपहासास्पद प्रतीत होती है।

चूलगिरि क्षेत्रको तलहटीके मन्दिरोंका विवरण इस प्रकार है—

(१) पार्श्वनाथ मन्दिर—इसमें मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथकी कृष्ण पाषाणकी पद्मासन मूर्ति है। इसकी आकार ३ फुट है। इस मन्दिरमें ५ पाषाण और २ धातु मूर्तियाँ हैं। इसके निर्माता सेठ गम्भीरमल टेकचन्द मनावर हैं।

(२) चन्द्रप्रभ मन्दिर—इसमें चन्द्रप्रभ भगवान्की श्वेतवर्ण मूर्ति है। यह पद्मासन है और ३ फुट ५ इंच उन्नत है। इसके अतिरिक्त यहाँ २ पाषाणकी तथा २ धातुकी मूर्तियाँ हैं। मन्दिरका निर्माण श्री लच्छीराममलजी अंजड़ने कराया।

(३) पार्श्वनाथ मन्दिर—इसमें ३ फुट उन्नत पार्श्वनाथ स्वामीकी मूर्ति नौ फणावलीसे मण्डित है। मूर्ति कृष्ण पाषाणकी है और पद्मासन है। इसके अतिरिक्त इस मन्दिरमें ३ पाषाणकी और ६ धातुकी मूर्तियाँ और भी हैं।

(४) पार्श्वनाथ मन्दिर—इस मन्दिरके निर्माता चौ. गोण्डुसा महाकाल-सा मण्डलेश्वर हैं। इसमें भगवान् पार्श्वनाथकी कृष्ण वर्णकी ३ फुट ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है।

(५) शान्तिनाथ मन्दिर—इसमें मूलनायक शान्तिनाथ स्वामीकी ३ फुट ३ इंच अवगाहनावाली श्वेत वर्ण प्रतिमा है। यह पद्मासन मुद्रामें ध्यानावस्थित है। इस मन्दिरके निर्माता सेठ सेवासा पीपल गोत्र हैं। यहाँ ६ पाषाणकी और १ धातुकी प्रतिमा और है। धातुकी एक चौबीसी संवत् १४८७ की है।

(६) पार्श्वनाथ मन्दिर—यहाँ पार्श्वनाथ भगवान्की श्यामवर्ण ३ फुट ३ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त दो पाषाण प्रतिमाएँ और हैं। इस मन्दिरका निर्माण सेठ शामलाल पन्नालाल धरमपुरीने कराया है।

(७) वासुपूज्य मन्दिर—इस मन्दिरकी मूलनायक प्रतिमा वासुपूज्य भगवान्‌की है। यह श्वेतवर्ण एवं पद्मासन है। इसका आकार २ फुट ६ इंच है। इस मन्दिरके निर्माता सेठ जीवनलाल चम्पालाल अंजड हैं। प्रतिष्ठा संवत् २००५ है।

(८) चन्द्रप्रभ मन्दिर—इसमें चन्द्रप्रभकी एकमात्र प्रतिमा है। श्वेतवर्णकी यह पद्मासन प्रतिमा २ फुट ६ इंच ऊँची है। मन्दिरका निर्माण संवत् १९४७ में श्री रतनबाई धर्मपत्नी श्री मांगीलाल पाटनी इन्दौरने कराया।

(९) पार्श्वनाथ मन्दिर—यहाँ केवल पार्श्वनाथ स्वामी विराजमान हैं। यह मूर्ति कृष्णवर्ण पद्मासन है तथा ३ फुट ६ इंच उन्नत है। सेठ माणिकचन्द मगनीराम इन्दौरने इसका निर्माण कराया।

(१०) नेमिनाथ मन्दिर—मूलनायकके रूपमें यहाँ भगवान् नेमिनाथकी कृष्णवर्णकी प्रतिमा विराजमान है। इसकी अवगाहना १ फुट ६ इंच है। यह पद्मासनमें है। इसके अतिरिक्त यहाँ दो प्रतिमाएँ और विराजमान हैं। इसके निर्माता सर्वसुख रसोईदार इन्दौर हैं।

(११) आदिनाथ मन्दिर—यहाँ मूलनायक श्री आदिनाथ भगवान्‌की कृष्णवर्ण पद्मासन प्रतिमा है। इसकी अवगाहना १ फुट २ इंच है। इसके अलावा पाषाणकी दो और भी प्रतिमाएँ यहाँ विराजमान हैं। मन्दिरके निर्माता श्री विजयचन्द्र सेठी बड़नगर हैं।

(१२) पार्श्वनाथ मन्दिर—पार्श्वनाथ भगवान्‌की यह मूलनायक प्रतिमा १ फुट ९ इंच अवगाहनावाली है, श्वेत पाषाणकी है और पद्मासन है। इस वेदीपर पाषाणकी दो प्रतिमा और हैं। इस मन्दिरके निर्माता श्री भीकासा मांगीलाल लोनारा हैं।

(१३) शान्तिनाथ मन्दिर—इसमें मूलनायक प्रतिमा भगवान् शान्तिनाथकी है। यह श्वेत पाषाणकी ३ फुट ६ इंच ऊँची पद्मासन मुद्रामें है। इसके अतिरिक्त दो पाषाण-प्रतिमाएँ और विराजमान हैं। मन्दिरके निर्माता श्री डालूराम कालूराम सोनकच्छ हैं।

(१४) आदिनाथ मन्दिर—इसमें मूलनायक भगवान् आदिनाथकी श्वेतवर्ण प्रतिमा ३ फुट ६ इंच उन्नत है और पद्मासन है। इस वेदीपर दो पाषाण प्रतिमाएँ और भी विराजमान हैं। मन्दिरके निर्माता श्री जयचन्द चुन्नीलाल इन्दौर हैं।

(१५) चन्द्रप्रभ मन्दिर—यहाँ साढ़े तीन फुट उत्तुंग भगवान् चन्द्रप्रभकी मूलनायक प्रतिमा श्वेत पाषाणकी है और पद्मासन है। उसके अतिरिक्त दो पाषाण प्रतिमाएँ और हैं। इस मन्दिरका निर्माण श्री नन्दराम सेठी इन्दौरने कराया।

(१६) आदिनाथ मन्दिर—भगवान् आदिनाथकी श्वेत पाषाणकी मूलनायक प्रतिमा पद्मासन मुद्रामें विराजमान है। इसका आकार ३ फुट ९ इंच है। इसके अतिरिक्त वेदीपर ४ पाषाण प्रतिमाएँ और हैं। इस मन्दिरके निर्माता श्री नाथूलाल चुन्नीलाल इन्दौर हैं।

(१७) चन्द्रप्रभ मन्दिर—इस मन्दिरका निर्माण श्री गुमानीराम नाथूराम इन्दौरने कराया है। मूलनायक प्रतिमा भगवान् चन्द्रप्रभकी है। यह ३ फुट ९ इंच उन्नत है, पद्मासन है और श्वेत पाषाणकी है। इस प्रतिमाके अतिरिक्त यहाँ दो पाषाण प्रतिमाएँ और हैं।

(१८) आदिनाथ मन्दिर—यहाँ आदिनाथ भगवान्‌की मूलनायक प्रतिमा ३ फुट १० इंच ऊँची श्वेत पाषाणकी है और पद्मासन है। इस वेदीपर दो पाषाण प्रतिमाएँ और हैं। मन्दिरके निर्माता श्री मलुकचन्द बेणीचन्द इन्दौर हैं।

(१९) महावीर मन्दिर—महावीर स्वामीकी श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा इस मन्दिरकी मूलनायक प्रतिमा है। यह ३ फुट ६ इंच ऊँची है। इस वेदीपर दो-पाषाण प्रतिमाएँ और विराजमान हैं। इस मन्दिरका निर्माण श्री गुमानीराम सदालाल इन्दौरने कराया।

(२०) मानस्तम्भ—मानस्तम्भ ६० फुट ऊँचा है। इसकी शिखर वेदिकापर पुष्पदन्त भगवान्‌की श्वेतवर्णकी ४ पद्मासन और ४ खड्गासन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इसका निर्माण सेठ चाँदमल धन्नालाल सुजानगढ़ने कराया।

इस प्रकार पहाड़की तलहटीमें १९ मन्दिर, १ मानस्तम्भ और १ छत्री है।

क्षेत्रपर जितनी मूर्तियाँ हैं, उनमें दो मूर्तियाँ, जो मुनिसुव्रतनाथकी कही जाती हैं, वि. संवत् ११३१ की हैं। ये ही मूर्तियाँ यहाँकी प्राचीनतम मूर्तियाँ हैं। इनके अतिरिक्त पार्श्वनाथकी दो मूर्तियाँ संवत् १२४२ की हैं। एक धातु मूर्ति संवत् १४८७ की है। संवत् १३८० और १९३९ की मूर्तियोंकी संख्या बहुत है। तलहटीके मन्दिरोंमें १३ मन्दिर एक अहातेमें बने हुए हैं तथा ६ मन्दिर अलग-अलग बने हुए हैं।

धर्मशालाएँ

तलहटीमें चार धर्मशालाएँ यात्रियोंके लिए बनी हुई हैं। इनमें कुल ५० कमरे हैं। धर्मशालाओंके निकट ही बावड़ी, कुआँ, जलकुण्ड, स्नानघर, नल और बस स्टाप है। प्रकाशके लिए बिजलीकी सुविधा है।

क्षेत्रकी व्यवस्था

क्षेत्रकी व्यवस्था प्रबन्धकारिणी कमेटी, श्री चूलगिरि सिद्धक्षेत्र द्वारा होती है। इस क्षेत्रपर प्रारम्भसे ही दिगम्बर जैन समाजका अधिकार रहा है। एक बार सं. १७४२ में वैष्णव समाजने चूलगिरिके मुख्य मन्दिरपर अपना अधिकार जतानेका प्रयत्न किया था। वह इन्द्रजीत, कुम्भकर्णके चरणोंको दत्तात्रेयके चरण बताते थे। यह केस संवत् १७५८ तक चला, उसमें जैनोंकी विजय हुई। स्वर्गीय महाराजा रणजीतसिंहजीकी राजमातेश्वरी धनकुँअर महारानीने क्षेत्रपर दिगम्बर जैनोंके परम्परागत अधिकारोंको स्वीकार किया और वैष्णव समाजकी सन्तुष्टिके लिए उन्होंने नर्मदाके तटपर बड़वानीसे ३ मल दूर दत्तात्रेयका एक सुन्दर मन्दिर बनवा दिया।

शिकारका निषेध

तलहटीके घेरेमें और पहाड़के शिखरपर जानेके मार्गसे एक मील सभी दिशाओंमें सरकारी आज्ञाके अनुसार शिकार खेलना कानूनन निषिद्ध है।

वार्षिक मेला

क्षेत्रका वार्षिक मेला पौष सुदी ८ से १५ तक भरता था। चतुर्दशीको चूलगिरिके सभी मन्दिरोंपर ध्वजारोहण किया जाता था। जब बड़वानी स्टेट थी, उस समय आखिरी दिन बड़वानीके सभी मुख्य बाजारोंसे होकर पालकी निकलती थी। किन्तु कई वर्षसे यह उत्सव बन्द हो गया है।

क्षेत्रपर उल्लेखनीय मेला वि. संवत् १९३९ और १९८७ में हुआ था। दोनों ही बार पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई जिसमें हजारों व्यक्तियोंने सम्मिलित हो धर्मलाभ लिया। संवत् १९८० की

प्रतिष्ठाके समय बावनगजाजीका महामस्तकाभिषेक हुआ था। इसी समय बावनगजाजी, मौगजाजी और बड़वानीके मन्दिरोंपर स्वर्णकलश चढ़ाये गये थे।

मार्ग

श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र चूलगिरि मध्यप्रदेशमें बड़वानी शहरसे ७ कि. मी. दूरपर स्थित है। इसका दूसरा नाम बावनगजाजी अत्यन्त प्रसिद्ध है। बड़वानी जानेके लिए इन्दौर, मऊ, खण्डवा, सनावद, धूलिया और दोहद इन स्टेशनोंसे मोटर बसें मिलती हैं। मालवावालोंको इन्दौर व मऊ से, खानदेशवालोंको धूलिया से, निमाड़वालोंको खण्डवा व सनावदसे और गुजरातवालोंको दोहद स्टेशनसे आना चाहिए। बड़वानी, जो निमाड़ जिलेमें है, से क्षेत्र तक पक्की सड़क है।

खण्डवा स्टेशनसे आनेवालोंको खरगौन होते हुए पावागिरि क्षेत्रके दर्शन करते हुए जुलवानिया आना पड़ता है। वहाँसे मोटर बस द्वारा बड़वानी आना चाहिए। इसी प्रकार दोहद स्टेशनपर उतरनेवालोंको मोटर बस द्वारा कुक्षि आना चाहिए और कुक्षिके पास तालनपुरमें दर्शन कर वहाँसे बड़वानी आना चाहिए।

तालनपुर

मार्ग

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र तालनपुर धार जिलेमें स्थित है। इसका पोस्ट आफिस कुक्षि है। यहाँ जानेके लिए दाहोद या मऊ स्टेशन उतरना चाहिए। गुजरातकी ओरसे आनेवालोंको मध्य रेलवेके दाहोद स्टेशनपर उतरना चाहिए। वहाँसे बस द्वारा ९६ कि. मी. दूर कुक्षि या सुसारी पड़ता है। सुसारीसे कुक्षि होते हुए तालनपुर ५ कि. मी. है तथा कुक्षिसे ३ कि. मी.। मध्यप्रदेशसे आनेवालोंको मध्य रेलवेके मऊ स्टेशनपर उतरना चाहिए। मऊसे बस द्वारा बड़वानी जाकर वहाँसे कुक्षि होकर यह क्षेत्र २२ कि. मी. है। कुक्षिसे क्षेत्र तक पक्की सड़क है। धर्मशाला और मन्दिर सड़कके किनारे ही हैं।

क्षेत्र दर्शन

क्षेत्रपर एक विशाल दिगम्बर जैन मन्दिर है। मन्दिरमें मूलनायकके रूपमें भगवान् मल्लिनाथकी २ फुट ६ इंच अवगाहनावाली पद्मासन पाषाण प्रतिमा विराजमान है। इसका वर्ण भूरा है। मूर्तिकी पाद-पीठिकापर लेख अंकित है जिसके अनुसार इस प्रतिमाकी प्रतिष्ठा संवत् १३२५ वैशाख वदी ८ बुधवारको लाडबागड़गच्छ (काष्ठा संघ) के आचार्य महेशकीर्ति, उनके शिष्य विपुलकीर्ति, उनके शिष्य विशालकीर्तिके उपदेशसे की गयी अर्थात् यह प्रतिमा ईस्वी सन् १२६८ में प्रतिष्ठित हुई थी।

इस प्रतिमाके अतिरिक्त मन्दिरमें ५ प्रतिमाएँ और हैं, किन्तु वे अवगाहनामें इससे छोटी हैं तथा उनके ऊपर कोई लेख भी नहीं है। वेदी तीन दरकी है। गर्भगृह काफी बड़ा है। बाहर सभामण्डप है। मन्दिर शिखरबन्द है।

क्षेत्रका इतिहास

इस क्षेत्रके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती बहु-प्रचलित है कि संवत् १८९८ में एक भील अपने खेतमें हल चला रहा था। एक स्थानपर हल अटक गया। उसने हल निकालनेका बड़ा प्रयत्न किया किन्तु वह सफल नहीं हुआ। तब थककर वह अपने घर चला गया। रात्रिमें उसे स्वप्न हुआ। स्वप्नमें उसे लगा कि उसे कोई दिव्यपुरुष उस स्थानको खोदनेका आदेश दे रहा है, जहाँ हल अटका था। दूसरे दिन भीलने खेतमें जाकर उस स्थानको खोदा। वहाँ एक भोंयरेमें १३ जैन मूर्तियाँ निकलीं। इसकी सूचना कुक्षिके जैनोंको दी गयी। फलतः दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायके जैन वहाँ एकत्रित हुए। सभी मूर्तियाँ दिगम्बर आम्नायकी थीं। मालवा सदासे दिगम्बर जैनोंका गढ़ रहा है। उस कालमें भी यहाँ दिगम्बर जैनोंका प्राधान्य था। उन्होंने उदारता तथा साधर्मी वात्सल्यके नाते यह सुझाव रखा कि मिली हुई १३ प्रतिमाओंमें ५ बड़ी प्रतिमाएँ हैं और ८ छोटी हैं। इसलिए इनके ऐसे दो विभाग किये जायें। सबने यह सुझाव स्वीकार कर लिया। पर्ची डाली गयी। उसके अनुसार ५ बड़ी मूर्तियाँ दिगम्बरोंको और छोटी ८ प्रतिमाएँ श्वेताम्बरोंको मिलीं।

प्रतिमाओंका बँटवारा हो जानेपर कुक्षिकी दिगम्बर जैन समाजने निश्चय किया कि प्रतिमाओंको कुक्षि ले चलें और वहाँके मन्दिरमें विराजमान कर दें। प्रतिमाएँ गाड़ीमें रख दी गयीं। किन्तु बहुत कुछ उपाय करनेपर भी गाड़ी नहीं चल सकी। इस दैवी अतिशयको देखकर सबने यही निश्चय किया कि यहींपर मन्दिर बनवाकर प्रतिमाएँ उसमें विराजमान कर दी जायें। फलतः यहींपर एक विशाल दिगम्बर जैन मन्दिर सेठ रोडजी मेघराजजी, सुसारीकी ओरसे बनाया गया जो अब तक विद्यमान है। इसके निकट ही श्वेताम्बर समाजने भी मन्दिरका निर्माण कराया है। जिस स्थानपर ये मूर्तियाँ निकली थीं, वहाँ एक चबूतरेपर गुमटी बनाकर उसमें चरण विराजमान कर दिये हैं। इस गुमटीपर दिगम्बर समाजका अधिकार है। यह स्थान मन्दिरसे एक फर्लांग दूर गाँवके पीछे है।

धर्मशाला

क्षेत्रपर एक धर्मशाला सड़कके किनारे बनी हुई है। धर्मशालामें ४ कमरे हैं, एक पक्का कुआँ है।

व्यवस्था

इस क्षेत्रकी व्यवस्था सेठ रोडजी मेघराजजी सुकृत फण्ड, सुसारीकी ओरसे होती है। पहले यहाँकी व्यवस्था सुन्दर थी। निकटवर्ती गाँवों और दूरके भी यात्री यहाँ आते रहते थे। किन्तु अब यात्रियोंका आना नगण्य-सा ही रह गया है। सुकृत फण्डकी ओरसे जो मासिक अनुदान मिलता है, उसमें श्रीजीकी सेवा-पूजा भी सन्तोषजनक ढंगसे नहीं हो पाती।

मेला

यहाँ अब कोई नियमित वार्षिक मेला नहीं होता।

पावागिरि

सिद्धक्षेत्र

यह सिद्धक्षेत्र है। यहाँसे स्वर्णभद्र आदि चार मुनि निर्वाणको प्राप्त हुए थे। ये स्वर्णभद्र कौन थे, इस सम्बन्धमें विशेष जानकारी नहीं मिलती। एक सुवर्णभद्र उज्जयिनी नरेश श्रीदत्तके पुत्र थे। उन्होंने अपने पिताके समान ही एक विशाल यात्रा-संघ स्वर्णगिरिकी यात्राके लिए निकाला था। इस यात्रा-संघमें मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविकारूप चतुर्विध संघ सम्मिलित था। इसमें अनेक राजा और स्त्री-पुरुष थे। उसने स्वर्णगिरिकी यात्रा आनन्द पूर्वक की। एक दिन उसके मनमें संसार और भोगोंके प्रति तीव्र विराग जागृत हुआ। उसने मुनि-दीक्षा ले ली और घोर तप करके स्वर्णगिरिसे पाँच हजार मुनियोंके साथ मुक्ति प्राप्त की। इस कथानकसे तो स्वर्णगिरिसे मुक्ति प्राप्त करनेवाले सुवर्णभद्र और पावागिरिसे निर्वाण प्राप्त करनेवाले सुवर्णभद्र भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे। यह सिद्ध होता है। अतः पावागिरिसे मुक्त होनेवाले सुवर्णभद्र और अन्य तीन मुनियोंका परिचय अन्वेषणीय है।

पावागिरिसे इन सुवर्णभद्रादि चार मुनियोंकी मुक्ति प्राप्तिसे सम्बन्धित उल्लेख प्राकृत निर्वाण-काण्डमें मिलता है। यथा—

> "पावागिरिवरसिहरे सुवण्णभद्दाइमुणिवरा चउरो।
> चलणाणईतडग्गे णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥१३॥"

अर्थात् पावागिरिके शिखरपर चलना नदीके तटपर सुवर्णभद्र आदि चार मुनीश्वर निर्वाणको प्राप्त हुए।

इस गाथाके अनुसार यह सिद्धक्षेत्र चलना नदीके तटपर अवस्थित था। संस्कृत निर्वाण-भक्तिमें नदीका नाम न देकर केवल इतना ही उल्लेख कर दिया है—'नद्यास्तटे जितरिपुश्च सुवर्णभद्रः' अर्थात् कर्मशत्रुओंको जीतनेवाले सुवर्णभद्र नदीके तटपर मुक्त हुए।

भट्टारक गुणकीर्तिने पावागिरिको सिद्धक्षेत्र तो माना है किन्तु उन्होंने इसके लिए 'चलणा नयतटाकि' अर्थात् 'चलना नदीके तटसे' यह प्रयुक्त किया है तथा यहाँसे साढ़े तीन करोड़ मुनियोंका निर्वाण होना माना है। उनका तत्सम्बन्धी अंश[1] इस प्रकार है—

> "चलणा नयतटाकि आहूठ कोडि सिद्धासि नमस्कार माझा।'

भट्टारक श्रुतसागरने भी इस क्षेत्रका नाम न देकर 'चलनानदी तट'[2] शब्द दिया है।

भट्टारक ज्ञानसागरने 'सर्वतीर्थ-वन्दना' नामक रचनामें पावागिरिके स्थानपर ऊन नाम दिया है और उसकी बड़ी प्रशंसा की है। मूल पाठ इस प्रकार है।

> "ऊननयर अभिराम देश नमिआउ मनोहर।
> शिखरबद्ध प्रासाद भविक जीव मन सुखकर।
> देखत परमानन्द पूजत पाप बिनासे।
> मन चिंते जे कोय तास सुभ ज्ञान प्रकासे ॥
> दर्शन देखत जे निपुन पाप ताप दूरे पले।
> ब्रह्म ज्ञानसागर बदति मन चिंतित फल सवि फले ॥८४॥"

---

१. तीर्थवन्दन संग्रह, पृ. ५१।
२. बोध प्राभृत टीका—गाथा २७।

चिमणा पण्डित ने 'तीर्थ-वन्दना' नामक रचनामें पावागिरि सिद्धक्षेत्रको नमस्कार करते हुए भक्तिपूर्ण पद लिखा है जो इस प्रकार है—

"पावागिरि समीप सुवर्णभद्रा। महातपोनिधि चवरे मुनीन्द्रा॥
साधु मुक्ति गेले चलना तडागी। ऐसे सिद्धक्षेत्रा नमस्कार वेगी॥१८॥"

इस प्रकार यद्यपि इन सभी विद्वानोंने इस तीर्थको सिद्धक्षेत्र स्वीकार किया है, किन्तु सबने इसका नामोल्लेख न करके किसी ने 'नद्यास्तटे' लिखा, किसीने 'चलणा नयतटकि' लिखा और किसीने न तो पावागिरि लिखा, न ही चलना नदीका तट, बल्कि ऊन लिखकर सिद्धक्षेत्रके रूपमें स्मरण किया। इन सबका अभिप्रेत पावागिरि ही रहा, जो चलना नदीके तटपर अवस्थित था।

निर्वाण काण्डमें पावागिरिके शिखरसे सुवर्णभद्रादि मुनियोंकी मुक्ति मानी है और निर्वाण-भक्ति तथा अन्य कई तीर्थ-वन्दनाओंमें चलना या नदी तटसे उनको मुक्त हुआ माना है। किन्तु विचार करनेपर इनमें कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता। पावाके साथ गिरि शब्द होनेका अर्थ ही यह है कि यह पर्वत था। यह पर्वत चलना नदीके तटपर अवस्थित था। मुनियोंने इस पर्वत शिखरपर तपस्या करके मुक्ति प्राप्त की। इसीको विभिन्न लेखकोंने विभिन्न रूपोंमें वर्णित किया है। भिन्न-भिन्न रूपोंमें वर्णन करनेका एक मात्र कारण यह है कि पावागिरि नामके दो तीर्थ-क्षेत्र हैं। एक तो वह जहाँ रामके पुत्र और लाट नरेन्द्र आदि पाँच करोड़ मुनि मुक्त हुए। दूसरा वह, जहाँसे सुवर्णभद्र आदि चार मुनियोंको मुक्ति लाभ हुआ। प्राकृत निर्वाण-काण्डमें दोनों ही पावागिरि क्षेत्रोंका उल्लेख है और दोनोंके लिए 'पावागिरिवर सिहरे' लिखा है। किन्तु वहीं दोनोंके मध्य अन्तर भी डाल दिया है। एकमें (गाथा नं. ६) तो केवल 'पावागिरि वर सिहरे' रहने दिया, जबकि दूसरे क्षेत्रके वर्णनमें (गाथा नं. १३) में 'पावागिरिवर सिहरे' के साथ 'चलणाणईतडग्गे' लगाकर विशेषता प्रकट कर दी। निर्वाण-भक्तिमें इसका नाम न देकर केवल 'नद्यास्तटे' दिया है। श्रुतसागरने एक पावागिरिका उल्लेख 'लाटदेश पावागिरि'के रूपमें किया तथा दूसरा निर्वाण-भक्तिके समान 'चलनानदी तट' इस रूपमें दिया। ज्ञानसागरने पावागिरिके लिए 'पावागढ़ सुपवित्र देश गुज्जर मुखमण्डन' लिखकर उसे गुर्जर देशमें अवस्थित बताया और दूसरे पावागिरिकी स्थिति अधिक स्पष्ट करनेके लिए उसे निमाड़ देशमें स्थित बताकर ऊन नामसे अभिहित किया।

साहित्यमें दोनों ही क्षेत्रोंको पावागिरि कहा गया है, किन्तु व्यवहारमें गुर्जर (गुजरात) प्रदेशके पावागिरिको पावागढ़ कहा जाता है क्योंकि यहाँ बहुत विशाल पहाड़ी गढ़ (किला) है। और दूसरे क्षेत्रको पावागिरि ही कहा जाता है।

क्षेत्रका इतिहास

बात उन दिनोंकी है जब ऊनमें प्राचीन जैन मन्दिर जीर्ण-शीर्ण दशामें खड़े हुए थे। लोग किन्हीं कारणोंसे तीर्थक्षेत्रके रूपमें इसे भूल चुके थे और यहाँ कोई यात्री नहीं आता था। यहाँके जीर्ण मन्दिर और मन्दिरोंके भग्नावशेष तत्कालीन होल्कर रियासतके पुरातत्त्व विभागके अधिकारमें थे। उन दिनों सेठ मोतीलालजी बड़वानी और सेठ हरसुखजी सुसारीने सागर निवासी श्री चेतनलाल पुजारीको ऊनके मन्दिरोंके प्रक्षाल, पूजन और सफाईके लिए नियुक्त किया। कुछ समय बाद आषाढ़ वदी ८ संवत् १९९१ को पुजारीको एक अद्भुत स्वप्न आया। स्वप्नमें उनसे कोई कह रहा था—'अमुक स्थानपर जिनेन्द्र भगवान्‌की मूर्तियाँ हैं, तुम उनको खोदो तो दर्शन होगा।'

प्रातःकाल नियमानुसार पुजारी मन्दिरमें प्रक्षाल पूजाके लिए गया। इससे निवृत्त होनेपर जब वह वापस आने लगा, तब उसे रात्रिमें देखे हुए स्वप्नका स्मरण हो आया। खण्डहरोंके बीचमें स्वप्नमें देखा हुआ स्थान उसे दीख पड़ा। उसने उस स्थानसे कुछ मिट्टी हटायी ही थी कि मूर्तिका सिर दिखाई पड़ा। तब उत्साहित होकर मजदूरोंसे उस स्थानको खुदवाया। फलतः भगवान् महावीरकी एक सुन्दर प्रतिमा निकली। इसके अतिरिक्त चरण चिह्न और चार अन्य तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ निकलीं। पुजारीने ये सब मूर्तियाँ अपनी कुटियामें रख लीं और यह समाचार निकटवर्ती नगरोंमें भिजवा दिया। समाचार मिलते ही सुसारी, बड़वानी, लोनावा आदि स्थानोंसे अनेक प्रतिष्ठित सज्जन पधारे। उन्होंने आकर मूर्तियोंका प्रक्षाल और पूजन किया। चरण-चिह्न भी उत्खननमें प्राप्त हुए थे। अतः यह निश्चय किया कि चरण-चिह्न सिद्धक्षेत्रपर विराजमान होते थे, अतः यह स्थान सिद्धक्षेत्र होना चाहिए। यह सिद्धक्षेत्र पावागिरि हो सकता है, जिसका उल्लेख निर्वाण-काण्डमें किया गया है।

कुछ दिनों पश्चात् अपने इस निर्णयकी पुष्टि इन्दौर आदि कई स्थानोंके विद्वानोंको ऊन बुलाकर उनसे करा ली गयी और स्थानको पावागिरि सिद्धक्षेत्र घोषित कर दिया गया।

सरकार द्वारा जैन समाजको अधिकार

ऊनके निकट पावागिरि सिद्धक्षेत्रकी स्थापना और उसका उद्घाटन कर दिया गया। किन्तु प्राचीन मन्दिर-मूर्तियोंपर सरकारका अधिकार था। अतः अधिकार प्राप्तिके लिए सर सेठ हुकमचन्द्रजी, इन्दौरने तत्कालीन होल्कर रियासतके महाराज श्री यशवन्तराव होल्करकी सेवामें प्रार्थना-पत्र दिया और यह क्षेत्र दिगम्बर जैन समाजके अधिकारमें देनेका अनुरोध किया। काफी प्रयत्नोंके पश्चात् हुजूर श्री शंकरके आदेश नं. २९४ दिनांक २९-८-३५ के अनुसार सर सेठ साहबको अधिकार-पत्र प्राप्त हुआ, जिसके अनुसार दिगम्बर जैन समाजको यह अधिकार प्रदान किया गया कि ऊनमें नयी खोजी हुई मूर्तियोंपर उसका अधिकार रहे या, ऊनके ग्वालेश्वर मन्दिरमें इन्हें विराजमान किया जा सकता है। साथ ही, अपने व्ययसे दिगम्बर जैन समाज ग्वालेश्वर मन्दिरका जीर्णोद्धार करा सकती है। बशर्ते (१) जीर्णोद्धारका यह कार्य इन्दौर म्यूजियमके क्यूरेटरके परामर्शसे किया जाये, जिससे इस प्राचीन स्मारकका पुरातात्त्विक महत्त्व और कलावैशिष्ट्य नष्ट न हो। (२) मूर्तियाँ ऊनसे अन्यत्र नहीं ले जायी जायेंगी। (३) ऊनके प्राचीन स्मारकोंका स्वामित्व सरकारका होगा।

ऊन नाम : एक किंवदन्ती

इस स्थानका नाम ऊन क्यों पड़ा, इस सम्बन्धमें एक किंवदन्ती बहुप्रचलित है। जिसका उल्लेख 'दी इन्दौर स्टेट गजेटियर' जि. १ पृ. ६६७ पर इस प्रकार किया गया है—

ऊनके राजा बल्लालके पेटमें एक सर्पिणी चली गयी। धीरे-धीरे वह वहाँ बड़ी हो गयी। इसके कारण राजाको असह्य वेदना होती थी। उसने अनेक उपचार कराये किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। तब जीवनसे निराश होकर वह गंगामें डूबनेके लिए बनारसको चल दिया। उसकी रानी उसके साथ थी। रातमें राजाके सो जानेपर सर्पिणी बाहर निकल आती थी। एक रात एक साँप आया और उस सर्पिणीसे वार्तालाप करने लगा। साँपने नागिनसे कहा—"अगर राजाको यह ज्ञात हो जाये कि पानीमें बुझाया हुआ चूना खा लेनेसे तेरा अन्त हो सकता है तो तेरा जीना ही असम्भव हो जाये।" नागिन बोली—"अगर राजाको यह पता चल जाये कि तेरे बिलमें गरम

तेल डालनेसे तू मर सकता है तो उसे वह अपार धन मिल जायेगा, जिसकी रक्षा तू बराबर करता है।"

रानीने नाग-नागिनका यह वार्तालाप सुन लिया और प्रातःकाल होनेपर राजाको कह सुनाया। राजाने वैसा ही किया। कुछ चूना खा लिया जिससे पेटकी नागिन मर गयी और उसकी पीड़ा दूर हो गयी। फिर उस सर्पके बिलका पता लगाकर उसने गर्म तेल डाल दिया। जिससे साँप मर गया और राजाको विपुल धन-राशिकी प्राप्ति हुई। धन पाकर उसने १०० मन्दिरों, १०० सरोवरों और १०० कुओंके निर्माण की प्रतिज्ञा की। किन्तु कुएँ, सरोवर और मन्दिर प्रत्येक ९९ ही बन पाये। प्रत्येकमें एककी कमी (ऊन) रहनेसे इस स्थानका नाम ही 'ऊन' पड़ गया।

ऊनका ऐतिहासिक महत्त्व

ऊनका शासक बल्लाल कौन था और किस वंशसे सम्बन्धित था, इस विषयमें इतिहास-कारोंमें कई मत पाये जाते हैं। एक मत है कि ऊनमें मन्दिरोंका निर्माता होयसलवंशी बल्लाल द्वितीय था। यह नरसिंह देव प्रथमका पुत्र था। इसका शासन-काल सन् ११७३ से १२२० तक था। होयसल वंशमें विनयादित्यका पुत्र एरेयंग हुआ था, जो चालुक्य राजाका सामन्त था तथा जिसने मालवराजकी राजधानी धारानगरीपर आक्रमण करके उसका विध्वंस किया था। इस घटनासे यह अनुमान लगाना स्वाभाविक है कि एरेयंगकी चौथी पीढ़ीमें होनेवाला बल्लाल द्वितीय मालवाका शासक रहा होगा। वही बल्लाल वाराणसी भी गंगामें प्राण विसर्जनके लिए जाता हुआ जब इस स्थान (ऊन) पर ठहरा होगा, जिसका संकेत किंवदन्तीमें है तब इस होयसलवंशी बल्लाल द्वितीयने ऊनमें मन्दिरोंका निर्माण कराया होगा।

दूसरा मत 'पज्जुण्णचरियं (प्रद्युम्नचरितं) की प्रशस्तिमें प्रतिपादित है। इस ग्रन्थके कर्ता सिद्ध और सिंह कवि हैं। इसका रचना काल अनुमानतः बारहवीं शताब्दीका मध्य काल है। इसमें बताया है कि बम्हणवाड़ नामक नगरमें अनेक मठ, मन्दिर और जिनालय थे। वहाँका शासक रणधोरीका पुत्र बल्लाल था। अर्णोराजका क्षय करनेके लिए वह कालस्वरूप था। उसका भृत्य गुहिलवंशीय भुल्लण था।

अर्णोराज सपादलक्ष (साँभर) का राजा था। उक्त प्रशस्तिमें रणधोरीके पुत्र बल्लालको अर्णोराजका क्षय करनेके लिए कालस्वरूप बताया है। किन्तु अन्य साक्ष्योंसे यह सिद्ध होता है कि अर्णोराजका संहार चौलुक्यवंशी कुमारपालने किया था। इससे लगता है कि बल्लालने किसी युद्धमें अर्णोराजको पराजित किया होगा किन्तु बादमें उन दोनोंकी मित्रता हो गयी होगी और बादमें उन दोनोंको कुमारपालने पराजित किया।

इस प्रशस्तिसे यह स्पष्ट ज्ञात नहीं होता कि रणधोरीका पुत्र बल्लाल क्या मालवराज बल्लाल था अथवा निमाड़का कोई राजा था। किन्तु विचार करनेपर यह बल्लाल मालवराज प्रतीत होता है। कुमारपालने जिस बल्लालको युद्धमें मरवाया था, वह वही बल्लाल था, जिसने ऊनमें ९९ मन्दिरोंका निर्माण कराया था और जो मालवाका स्वामी था।

आचार्य सोमप्रभने 'कुमारपाल-प्रबोध' नामक ग्रन्थ ९००० श्लोक परिमाण लिखा था। इस ग्रन्थकी रचना संवत् १२४१ में की गयी अर्थात् सोमप्रभाचार्य महाराज कुमारपालके समकालीन थे और उन्होंने महाराजको उपदेश भी दिया था। इसलिए इनकी रचनामें ऐतिह्य सामग्री विशेष प्रामाणिक हो सकती है ऐसा विश्वास किया जाता है। इन्हींकी रचनाको आधार बनाकर सोम-तिलक सूरिने विक्रमकी चौदहवीं शताब्दीके अन्तिम चरणमें 'कुमारपालचरित' की रचना की थी।

इन आचार्योंके इन ग्रन्थोंसे बल्लाल तथा तत्कालीन राजाओंके इतिहासपर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

कुमारपाल जब गद्दीपर बैठा, उस समय चौलुक्य वंशका राज्य-विस्तार सुदूर प्रान्तों में था। उसका मन्त्री उदयन था। उदयनका तीसरा पुत्र चाहड़ बड़ा साहसी समरवीर था। जब कुमारपाल अपने राज्यकी व्यवस्थामें लगा हुआ था, तब किसी कारणवश चाहड़ कुमारपालसे असन्तुष्ट होकर शाकम्भरी-नरेश अर्णोराजसे जा मिला। अर्णोराजके साथ कुमारपालकी बहन देवलदेवीका विवाह हुआ था। किन्तु अर्णोराज कुमारपालके विरुद्ध हो गया था। चाहड़की कूटनीतिसे मालवराज बल्लाल भी कुमारपालके विरुद्ध इस गुटमें आ मिला। जब कुमारपाल अर्णोराजके ऊपर चढ़ाई करनेके लिए चला तो चन्द्रावती (आबूके निकटस्थ) के राजा विक्रमसिंहने कुमारपालकी अभ्यर्थना करके भोजनका निमन्त्रण दिया। किन्तु चतुर कुमारपाल उसकी कपट-योजनाको भाँप गया। वास्तवमें विक्रमसिंहने लाखका एक महल बनवाया था। वह कुमारपालको मारना चाहता था। कुमारपाल उस समय वहाँसे शत्रुसे युद्ध करने चला गया। उसने अर्णोराजपर प्रबल आक्रमण करके उसे शरणागत होनेको बाध्य किया। लौटते हुए उसने विक्रमसिंहपर आक्रमण किया और उसे पिंजड़ेमें बन्द करके अपने साथ अपनी राजधानी ले गया। बल्लालके ऊपर आक्रमण करनेके लिए उसने अपने विश्वस्त सेनाध्यक्ष काकमरकी अध्यक्षतामें एक विशाल सेना भेजी। सेनापतिने मालवनरेशका सिर काटकर कुमारपालकी विजयपताका उज्जयिनीके राजमहलपर फहरा दी। इस प्रकार गुजरातके पड़ोसी और प्रतिस्पर्द्धी तीन राज्योंको एक साथ गुजरातके मातहत कर लिया।

मन्त्री तेजपालके आबू स्थित लूणबसति के लेख में—जो संवत् १२८७ का है—मालवराज बल्लालका वध करनेवालेका नाम यशोधरवल दिया है। इसका समर्थन अचलेश्वर मन्दिरके शिलालेखसे भी होता है।

यशोधवलका वि. सं. १२०२ का एक शिलालेख अजारीगाँवसे मिला है, जिसमें 'प्रमारवंशोद्भव महामण्डलेश्वर श्रीयशोधवलराज्ये' इस वाक्य द्वारा यशोधवलको महामण्डलेश्वर और परमारवंशका बताया है। वह कुमारपालका माण्डलिक राजा था और आबूमें राज्य करता था। उसके पुत्र धारावर्षका संवत् १२२० का एक लेख मिला है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यशोधवलका देहान्त इससे पूर्व हो गया होगा।[2]

मालवाके परमार राजा यशोवर्माको गुर्जरनरेश सिद्धराज जयसिंहने पराजित करके मालवापर अधिकार कर लिया था। यशोवर्माके पश्चात् मालवाधिपतिका विरुद बल्लालदेवके साथ लगा हुआ मिलता है। किन्तु परमार वंशावलीमें बल्लाल नामक कोई व्यक्ति नहीं मिलता। तब प्रश्न उठता है कि यह बल्लाल किस वंशका था।

---

१. रोदःकन्दरवर्तिकीर्तिलहरीलिप्तामृतांशुद्युते–
रप्रद्युम्नवशो यशोधवल इत्यासीत्तनूजस्ततः।
यश्चौलुक्यकुमारपालनृपतिः प्रत्यर्थितामागतं
मत्वा सत्वरमेव मालवपतिं बल्लालमालब्धवान्॥
अर्थात् परमारवंशी रामदेवके अत्यन्त यशस्वी कामजेता यशोधवल नामक पुत्र हुआ। चौलुक्यवंशी कुमारपालके शत्रु मालवपति बल्लालको आता जानकर इसीने उसको मार डाला।

२. भारतके प्राचीन राजवंश, भाग १, पृ. ७६-७७।

बल्लालकी मृत्युके सम्बन्धमें कई प्रशस्तियों और लेखोंमें उल्लेख मिलता है। बड़नगरमें कुमारपालकी एक प्रशस्ति मिली है। उसके १५वें श्लोकमें बताया है कि बल्लालको जीतकर उसका मस्तक कुमारपालके महलोंके द्वारपर लटका दिया। इस प्रशस्तिका काल संवत् १२०८ है और कुमारपालके राज्याभिषेकका काल सं. १२०० है। अतः इस बीचमें ही बल्लालकी मृत्यु होनी सम्भव है।

ऊनके एक शिवमन्दिरमें एक शिलालेख है। उसमें बल्लाल देवका नाम आया है। 'भोज-प्रबन्ध' का कर्ता भी एक बल्लाल था। ऊन नगरके बसानेवाले बल्लालसे भोज-प्रबन्धका कर्ता बल्लाल भिन्न था या दोनों एक ही व्यक्ति थे, यह भी एक प्रश्न है। ऊनको बसानेवाला बल्लाल निश्चय ही एक राजा था, और उसका एक सामन्त भुल्लण ब्रह्मणवाड़का शासक था। जैसा कि 'पज्जुण्णचरियं' की प्रशस्तिसे पता चलता है। सम्भव है, इस राजाने ही भोज-प्रबन्धकी रचना की हो।

अभी एक समस्या शेष है, जिसका समाधान आवश्यक है। बल्लालको कुमारपाल चरित-ग्रन्थों, शिलालेखों और प्रशस्तियोंमें सर्वत्र मालवराज लिखा है। क्या मालवमें उज्जयिनी भी शामिल थी?

श्री लक्ष्मीशंकर व्यासने 'चौलुक्य कुमारपाल' नामक ग्रन्थ लिखा है। उसमें उन्होंने बल्लाल नामक दो राजाओंका उल्लेख किया है—एक उज्जयिनीराज बल्लाल तथा दूसरा मालवराज बल्लाल। तथा यह भी लिखा है कि उज्जयिनीराज बल्लालने मालवराज बल्लालसे सैनिक अभिसन्धि कर ली।

इस ग्रन्थके आमुख लेखक डॉ. राजबली पाण्डेयने भी चौलुक्य कुमारपालके विरुद्ध उज्जयिनीके राजा बल्लाल द्वारा अभियान करनेका उल्लेख किया है।

इन इतिहासकारोंके मतमें उज्जयिनी और मालवाके राजाओंके नाम बल्लाल थे। दोनों समकालीन थे और दोनोंकी परस्पर सुरक्षा सन्धि थी। इन विद्वानोंकी इस मान्यताका आधार क्या है, यह स्पष्ट नहीं हो सका।

आचार्य सोमप्रभ, आचार्य हेमचन्द्र और आचार्य सोमतिलक सूरिके कुमारपाल सम्बन्धी चरित-ग्रन्थोंमें बल्लालको मालवराज लिखा है। तथा यह भी स्पष्ट लिखा है कि बल्लालके ऊपर चढ़ाई करनेवाले सेनापतिने शत्रुका शिरच्छेद करके कुमारपालकी विजयपताका उज्जयिनीके राजमहलपर फहरायी। उदयपुर (भेलसा) में कुमारपालके दो लेख सं. १२२० और १२२२ के मिले हैं। उनमें कुमारपालको अवन्तिनाथ कहा गया है। मालवराज बल्लालको मारकर कुमारपाल अवन्तिनाथ कहलाया। इसका तात्पर्य यह है कि मालवराज बल्लाल और उज्जयिनीका बल्लाल ये दो पृथक् व्यक्ति नहीं थे, दोनों एक थे।

यहाँ हम संक्षेपमें मालवाके परमारों और गुजरातके चालुक्य राजाओंका क्रमबद्ध इतिहास[१] दे रहे हैं। इससे अनेक शंकाओंका समाधान हो जाता है।

"मुंज और सिन्धुराजने मालवामें परमारोंका राज्य सुदृढ़ किया। सिन्धुराजका पुत्र भोज सन् १००० में मालवाकी गद्दी पर बैठा। उसने अपना राज्य चित्तौड़, बाँसगढ़ा, डूँगरपुर, भेलसा,

१. The Parimaras of Malwa (XI). The Chaulukyas of Gujrat (XII) by D. C. Ganguly, in the Struggle for Empire, Vol. V, pp. 66·81, Bharatiya Vidya Bhawan, Bombay.

खानदेश, कोंकण और गोदावरीके ऊपरी मुहानों तक विस्तृत कर लिया। धारा, उज्जैन और माण्डु भी उसके अधिकारमें थे। उसके राज्यकालमें ही सन् १०४२ में चौलुक्य जयसिंहके पुत्र सोमेश्वर प्रथमने मालवापर कुछ समयके लिए अधिकार कर लिया। भोजकी मृत्युके बाद सन् १०५५ में मालवा कलचुरि और चालुक्योंके हाथमें चला गया। भोजका उत्तराधिकारी जयसिंह हुआ। उसने दक्षिणके विक्रमादित्य षष्ठकी सहायतासे पुनः एक बार मालवापर अधिकार कर लिया। सोमेश्वर द्वितीयने पुनः मालवापर चढ़ाई करके जयसिंहको मार दिया और मालवापर अधिकार कर लिया। जयसिंहकी मृत्यु होनेपर भोजके भाई उदयादित्यने चाहमान विग्रहराज तृतीयकी सहायतासे पुनः मालवापर अधिकार कर लिया। सन् १०८० और १०८६ के उदयादित्यके शिलालेखोंके अनुसार उसकी राज्य सीमाएँ दक्षिणमें निमाड़ जिला, उत्तरमें झालावाड़ स्टेट, पूर्वमें भेलसा तक थी। सन् ११०४ के लेखके अनुसार उसके बाद क्रमशः उसके दो पुत्र लक्ष्मदेव और नरवर्मन गद्दीपर बैठे।

नरवर्मन मालवाकी गद्दीपर सन् १०९४ में बैठा। यह चन्देल और शाकम्भरीके राजाओंसे दो बार पराजित भी हुआ। चौलुक्य नरेश जयसिंह सिद्धराजके हाथों भी उसे करारी पराजय उठानी पडी और इसमे वह कैद भी हो गया। वह बादमें छूट गया, किन्तु परमार राज्यकी चूलें तक इससे हिल गयीं।

नरवर्मनका पुत्र यशोवर्मन सन् ११३३ में गद्दीपर बैठा। परमार राज्य बिखर गया था। देवासमें विनयपालने अपना राज्य जमा लिया। चन्देल मदनवर्मनने भेलसापर अधिकार कर लिया। फिर चौलुक्य जयसिंह सिद्धराजने पुनः मालवापर आक्रमण करके उसे बन्दी बना लिया और सम्पूर्ण मालवापर अधिकार करके उसे अपने राज्यमें मिला लिया और अवन्तिनाथ विरुद धारण किया। सन् ११३८ तक मालवा जयसिंहके अधिकारमे रहा। इसके पश्चात् सम्भवतः यशोवर्मनके पुत्र जयवर्मनने जयसिंह चौलुक्यके शासनके अन्तिम दिनोंमें मालवाको स्वतन्त्र कर लिया। किन्तु वह अधिक समय तक मालवापर अपना अधिकार नही रख सका। कल्याणके चालुक्य जगदेकमल्ल और होयसल नरसिंह प्रथमने मालवापर आक्रमण किया, उसकी शक्ति नष्ट कर दी और उस देशकी राजगद्दीपर 'बल्लाल' नामक एक व्यक्तिको बैठा दिया। इस घटनाके कुछ समय पश्चात् सन् ११४३ में चौलुक्य कुमारपाल बल्लालको राजगद्दीसे उखाड़ फेंका और भेलसा तक सारा मालवा अपने राज्यमे मिला लिया।

लगभग बीस वर्ष तक मालवा गुजरातके राजाका भाग रहा। इस अवधिमें परमार वंशके राजा गुजरात नरेशके सामन्त बनकर भोपाल, निमाड़ जिला, होशंगाबाद और खानदेशका शासन चलाते रहे। इन्हें 'महाकुमार' कहा जाता था। बारहवीं शताब्दीके सातवें शतकमें परमार जयवर्मनके पुत्र विन्ध्यवर्मनने चौलुक्य मूलराज द्वितीयको पराजित करके मालवापर अधिकार कर लिया। किन्तु विन्ध्यवर्मन शान्तिपूर्वक राज्य नहीं कर पाया। होयसलो और यादवोंने उसे चैनसे नहीं बैठने दिया। वे मालवापर निरन्तर आक्रमण करते रहे। सन् ११९० के लगभग चोलोंकी सहायतासे विन्ध्यवर्मनने होयसळ राज्यपर आक्रमण कर दिया किन्तु होयसल नरेश बल्लाल द्वितीयने उसे भगा दिया।"

उपर्युक्त विवरणसे कई बातोंपर प्रकाश पड़ता है। (१) मालवराज बल्लाल परमार वंश का राजा नही था। (२) मालवा और अवन्तीमें बल्लाल नामके दो राजा नहीं थे, किन्तु अवन्ती भी मालवामें थी और चालुक्य-होयसल राजाओंने मिलकर परमार नरेशको मारकर उसके स्थानपर बल्लालको राजा बनाया था। (३) होयसलवंशी बल्लाल द्वितीय कुमारपालकी मृत्यु (सन्

११७२) के पश्चात् सन् ११७३ में राजसिंहासनपर बैठा था। मालवराज बल्लालकी मृत्यु उससे पहले ही हो चुकी थी क्योंकि कुमारपालके सामन्त यशोधवलने युद्धमें उसे मारा था। इसलिए यह सम्भावना भी समाप्त हो जाती है कि प्रशस्तियों और लेखोंमें जिस मालवराज बल्लालका उल्लेख आया है, वह होयसलवंशी बल्लाल द्वितीय हो सकता है।

इन निष्कर्षोंके प्रकाशमें हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि ऊनमें मन्दिरोंका निर्माता मालवराज बल्लाल था। तब एक प्रश्न शेष रह जाता है कि अगर यह मालवराज बल्लाल परमार या होयसल नहीं था तो फिर यह किस वंशसे सम्बन्धित था ?

इस सम्बन्धमें खेरला गाँव (जिला बैतूल) से प्राप्त शिलालेखसे कुछ समाधान मिल सकता है। यह शिलालेख शक संवत् १०७९ (ई. सन् ११५७) का है। इस शिलालेखमें राजा नृसिंह बल्लाल जैतपाल ऐसी राज परम्परा दी हुई है। यह शिलालेख खण्डित है, अतः यह पूरा नहीं पढ़ा जा सका है। एक और भी लेख यहाँ प्राप्त हुआ है। यह लेख शक संवत् १०९४ (ई. सन् ११७२) का है। इस समय जैतपाल राजा राज्य कर रहा था। इस लेखका प्रारम्भ 'जिनानुसिद्धिः' पदसे हुआ है। इससे लगता है कि ये राजा जैन थे। किन्तु जैतपालको मराठीके आद्यकवि मुकुन्दराजने वैदिक धर्मका उपदेश देकर उसे वेदानुयायी बना लिया था।

ये राजा ऐलवंशी राजा श्रीपालके वंशज थे। खेरला ग्राम श्रीपाल राजाके आधीन था। राजा श्रीपालके साथ महमूद गजनवी (सन् ९९९ से १०२७) के भानजे अब्दुल रहमानका युद्ध हुआ था। 'तवारीख-ए-अमजदिया' के अनुसार यह युद्ध ई. सन् १००१ में ऐलिचपुर और खेरलाके निकट हुआ था। अब्दुल रहमानका विवाह हो रहा था तभी लड़ाई छिड़ गयी। वह दूल्हेके वेषमें ही लड़ा। इस युद्धमें दोनों मारे गये।

इस ऐतिहासिक तथ्यसे यह सिद्ध हो जाता है कि बल्लाल ऐलवंशी था, इसके पूर्वजोंका शासन ऐलिचपुरमें था। कल्याणके चालुक्य जगदेकमल्ल और होयसल नरसिंह प्रथमने परमार राजा जयवर्मनके विरुद्ध सन् ११३८ के लगभग आक्रमण करके उसे राज्यच्युत कर दिया और अपने विश्वस्त राजा बल्लालको ऐलिचपुरसे बुलाकर मालवाका राज्य सौंप दिया। सन् ११४३ में चौलुक्य कुमारपालकी आज्ञासे चन्द्रावती नरेश विक्रमसिंहके भतीजे परमारवंशी यशोधवलने बल्लालपर आक्रमण करके युद्धमें उसका वध कर दिया और उसका सिर कुमारपालके महलके द्वारपर टाँग दिया। इस प्रकार बल्लाल मालवापर प्रायः ५-७ साल तक ही शासन कर पाया। किन्तु 'पज्जुण्णचरियं' में बल्लालको सपादलक्षके अधिपति अर्णोराजके लिए कालस्वरूप बताया है। इससे प्रतीत होता है कि बल्लाल अत्यन्त वीर और साहसी था और उसने अल्पकालमें ही अपने प्रभावका विस्तार कर लिया था।

हमें यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि बल्लाल प्रतापी नरेश था। साथ ही उसका व्यक्तित्व विवादास्पद भी था। विभिन्न शिलालेखों और ग्रन्थोंमें उसके सम्बन्धमें ऐकमत्य नहीं मिलता। 'पज्जुण्णचरियं' में उसे रणधोरीका पुत्र बताया है तो खेरलाके शिलालेखमें नृसिंहका। सोमप्रभ आचार्यने 'कुमारपालप्रबोध' में कुमारपाल नरेशके सेनाध्यक्ष काकभटको बल्लालका वध करनेवाला बताया है तो लूणवसति, अचलेश्वर और अजारीगाँवके शिलालेखोंमें बल्लालके संहारकर्ताका नाम यशोधवल दिया है। इस प्रकारके मतभेदोंके कारण और कहीं भी उसके वंशका उल्लेख न होनेके कारण इतिहासज्ञोंमें भी बल्लालको लेकर भारी मतभेद पाये जाते हैं। ऐसी स्थितिमें किसी भी शिलालेख अथवा प्राचीन ग्रन्थकी विश्वसनीयतामें सन्देह न करते हुए भी उनमें सामंजस्य स्थापित करनेका हमें प्रयत्न करना है। तभी सत्य पकड़में आ सकता है।

विवादास्पद पावागिरि

चलना नदी कौन-सी है, यह ज्ञात नहीं होता। अतः पावागिरिके विषयमें विवाद है। जिन्होंने ऊनके निकट पावागिरिकी स्थिति मानी है, वे ऊनके निकट बहनेवाली चिरूड़को ही चलना नदी मानते हैं। उनके मत से चेलनाका चेटक, चेटकका चिरट, चिरटका चिरूड़ हो गया।

ऊनके निकट पावागिरि माननेके लिए तर्क यह दिया जाता है—

"निर्वाण काण्डमें निमाड़ स्थित सिद्धक्षेत्रोंकी वन्दनाका क्रम इस प्रकार है—(१) रेवा नदीके दोनों तटोंसे मुक्त होनेवाले रावणके पुत्र और साढ़े पाँच कोटि मुनियोंको निर्वाण-स्थली। (२) रेवानदीके तटपर पश्चिम दिशामें सिद्धवरकूट क्षेत्र जहाँसे दो चक्री, दस कामकुमार और साढ़े तीन करोड़ मुनियोंने मुक्ति-लाभ किया। (३) बड़वानी नगरके दक्षिणमें चूलगिरिके शिखरसे इन्द्रजीत और कुम्भकर्ण मुक्त हुए। (४) चलना नदीके तटपर पावागिरिके शिखरपर सुवर्णभद्र आदि चार मुनियोंको निर्वाण प्राप्त हुआ।

उपर्युक्त क्रममें सिद्धवरकूट, बड़वानी, फिर पावागिरि है। इस क्रमसे यह संगति बैठायी गयी है कि ये तीनों तीर्थ निकटवर्ती हैं। इसलिए पावागिरि बड़वानी नगरके निकट होना चाहिए। इस स्थानके अतिरिक्त अन्य कोई स्थान नही है, जिसे पावागिरि क्षेत्र माना जा सके। ऊन के निकट प्राचीन मन्दिर और मूर्तियाँ मिली हैं जिनका काल ईसवी सन्की ११वीं-१२वीं शताब्दी तक है। वहाँ प्राचीन चरण-चिह्न भी उपलब्ध हुए हैं। सिद्धक्षेत्रोंपर चरण-चिह्न विराजमान करनेकी परम्परा रही है। इन सब तर्क संगत कारणोंसे ऊनके निकटवर्ती स्थानको पावागिरि सिद्धक्षेत्र मानना सुसंगत है।"

ऊन को पावागिरि सिद्धक्षेत्र माननेमें जो कारण ऊपर दिये हैं, कुछ विद्वान् इन कारणोंको विशेष महत्त्व नहीं देना चाहते। पुरातत्त्व सामग्री और चरण तो उन स्थानोंपर भी प्राप्त हुए हैं, जो सिद्धक्षेत्र नहीं माने जाते हैं। इसी प्रकार निर्वाण-काण्डके क्रमिक वर्णनको गम्भीर कारण नहीं माना जा सकता। निर्वाण-काण्डमें क्रमका कोई ध्यान नही रखा गया। इसके अतिरिक्त इन कारणोके विरुद्ध कई तर्क हैं। निर्वाण-काण्डकी कई प्राचीन प्रतियोंमें 'पावागिरिवरसिहरे' यह गाथा नही मिलती। लगता है, यह गाथा विवादास्पद रही है। कुछ लोग इसे निर्वाण-काण्डकी मूल गाथा मानते हैं और कुछ लोग इसे प्रक्षिप्त मानते हैं।

यह बात भी आश्चर्यजनक है कि वर्तमानमें ऊनमें उपलब्ध किसी शिलालेख, मन्दिर या मूर्तिपर पावागिरिका नाम नहीं मिलता और न यहाँ चेलना अथवा चलना नदी ही है। यहाँ जो नदी वर्तमानमें है उसे लोग चिरूड़ कहते हैं और सरकारी कागजातोंमें इस नदीका नाम चन्देरी पाया जाता है। चेलनाका चिरूड़ या चन्देरीके रूपमें कैसे अपभ्रंश हो गया, इसकी खोज अब तक नहीं हो सकी है।

एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। मालवनरेश बल्लालने यहाँ ९९ मन्दिरोंका निर्माण कराया था। उपर्युक्त किंवदन्तीके अनुसार उसने इन मन्दिरोंका निर्माण व्याधिसे मुक्त होनेपर और दबा हुआ धन प्राप्त होनेपर उससे ही कराया था। यह किंवदन्ती निराधार है, यदि यह भी मान लिया जाये, तब भी उसने यहाँपर तीर्थक्षेत्र होनेके कारण इन मन्दिरोंका निर्माण कराया था, यह बात विश्वासपूर्वक कहना कठिन है। इन ९९ मन्दिरोंमें कितने जैन मन्दिर थे और कितने वैष्णव मन्दिर, यह उल्लेख किसी शिलालेख आदिमें देखनेमें नहीं आया। किन्तु वर्तमानमें जो ११ मन्दिर बचे हुए मिलते हैं, उनमें ८ वैष्णव मन्दिर हैं और ३ जैन मन्दिर। इससे यह अनुमान लगाना अनुपयुक्त न होगा कि वैष्णव मन्दिरोंकी संख्या जैन मन्दिरोंकी संख्यासे अधिक रही

होगी। इन मन्दिरोंके अतिरिक्त इस भूभागमें जो भग्नावशेष बिखरे पड़े हैं, वे उन्हीं ९९ मन्दिरों-के प्रतीत होते हैं। जो मूर्तियाँ और शिलालेख यहाँ मिले हैं, वे सब प्रायः बल्लालके समयके अथवा पश्चात्कालके हैं, बल्लालसे पूर्वका कोई लेख, मूर्ति अथवा मन्दिर नहीं मिला। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि बल्लालसे पहले इस स्थानको तीर्थके रूपमें मान्यता नहीं थी। बल्लालने तीर्थक्षेत्र होनेके कारण यहाँ मन्दिरोंका निर्माण नहीं कराया था, अन्य किसी कारणसे कराया था। यदि तीर्थभूमि होनेके कारण उसने यहाँ मन्दिरोंका निर्माण कराया होता तो उसे यहाँ वैष्णव मन्दिर बनवानेकी क्या आवश्यकता थी। बल्लाल अपने जीवनमें मन्दिरोंका ही निर्माण करा सका, मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा तो उसके बादमें हुई। जो जैन मूर्तियाँ अब तक भूगर्भसे प्राप्त हुई हैं वे संवत् १२१८, १२५२ और १२६३ की हैं। ये सब बल्लालके भी बादकी हैं। इस स्थानका नाम कभी पावा रहा हो, ऐसा कोई प्रमाण भी नहीं मिलता। किन्तु इन सब तर्कोंके विरुद्ध एक प्रबल समर्थक प्रमाण उपलब्ध होता है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि ईसाकी १५वीं-१६वीं शताब्दीमें यह स्थान तीर्थक्षेत्रके रूपमें मान्य था। १५-१६वीं शताब्दीके विद्वान् भट्टारक ज्ञानसागरने 'सर्व-तीर्थ-वन्दना' में इस क्षेत्रका माहात्म्य प्रकट किया है जैसा कि पिछले पृष्ठोंमें निवेदन कर चुके हैं। उसमें यद्यपि ऊन नगरके शिखरबद्ध मन्दिरोंका वर्णन है, किन्तु वह वर्णन वस्तुतः पावागिरि क्षेत्रका ही है क्योंकि न तो ऊन कोई क्षेत्र है और न पावागिरि क्षेत्रका किसी अन्य पद्यमें माहात्म्य ही प्रकट किया है। अतः इसमें तो सन्देह नहीं है कि यह वर्णन पावागिरिसे सम्बन्धित है। इससे सिद्ध होता है कि १५वीं-१६वीं शताब्दीमें यह तीर्थ यहाँ माना जाता था।

इन समस्त तर्कोंके बावजूद हमारा एक निवेदन है। यदि वास्तविक पावागिरि क्षेत्र वर्तमान ऊन न होकर कोई अन्य स्थान है, तब जबतक उसके सम्बन्धमें निश्चित प्रमाण उपलब्ध न हों, तबतक सन्देह और सम्भावनाओंके बलपर वर्तमान क्षेत्रको अमान्य कर देनेकी बातको गम्भीरताके साथ नहीं लिया जा सकता। पक्ष-विपक्षके तर्क उपस्थित करनेमें हमारा आशय शोध-छात्रों और विद्वानोंके समक्ष तथ्य उपस्थित करना है जिससे पावागिरि सिद्धक्षेत्र वस्तुतः कहाँ है, इसका निर्णय किया जा सके।

क्या पवा क्षेत्र पावागिरि है ?

पवा क्षेत्र झाँसी जिलेमें झाँसी और ललितपुरके मध्यमें तालबेहटसे १३ कि. मी. दूर है। यह क्षेत्र घने जंगलोंमें दो पहाड़ियोंके बीचमें स्थित है। क्षेत्रका प्राकृतिक सौन्दर्य अत्यन्त मनोरम है। एक ओर बेतवा बहती है, दूसरी ओर बेलना। चारों ओर पहाड़ियाँ और इन सबके बीचमें क्षेत्र है। उत्तरकी ओर जो नदी बहती है, उसे नाला कहा जाता है। इसके कई नाम हैं। नाले-को बाँधके पास 'बेला नाला' कहते हैं और दूसरे बाँधके पास इसका नाम 'बेलाताल' है। यह ताल बहुत बड़ा है। आगे पहाड़की परिक्रमा करता हुआ यह नाला 'बेलोना' नामसे पुकारा जाता है। किन्तु थोड़ा और आगे चलकर इसे 'बेलना' कहते हैं।

क्षेत्रपर एक भोंयरा है, जिसमें ६ तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। कुछ मूर्तियाँ बावड़ीकी खुदाईमें भी निकली थीं। एक मूर्तिकी चरण-चौकीपर प्रतिष्ठाकाल संवत् २९९ उत्कीर्ण है। किन्तु मूर्तिकी रचना-शैलीसे यह संवत् १२९९ प्रतीत होता है। इस लेखमें 'पवा' शब्द भी लिखा हुआ है, जिससे प्रतीत होता है कि मूर्तिकी प्रतिष्ठा यहीं पर हुई थी।

इस क्षेत्रके अधिकारियोंकी मान्यता है कि यह क्षेत्र बहुत प्राचीन है तथा यही पावागिरि क्षेत्र है, यहींसे स्वर्णभद्र आदि चार मुनि मुक्त हुए थे। बेलना नदी ही वस्तुतः चेलना नदी है।

चेलनाका रूप बदलते-बदलते बेलना नाम पड़ गया। अपनी इसी मान्यताके बलपर ये लोग अब पवाको पावागिरि क्षेत्र कहने लगे हैं।

इसमें सन्देह नहीं है कि पावा और पवा, चेलना और बेलना इनमें शब्दसाम्य है। किन्तु विचारणीय बात यह है कि जिस मूर्तिकी चरण-चौकीपर पवा शब्द उत्कीर्ण मिलता है, उससे लगता है कि संवत् २९९ (ई. सन् २४२) मे अथवा १२९९ (ई. सन् १२४२) में भी इस क्षेत्रको पवा कहा जाता था, पावा नहीं। बेलना नदीके जो विभिन्न नाम मिलते हैं, जैसे बेलानाला, बैलाताल, बैलोना, बेलना, उन नामोंमें तो परस्पर साम्य है और बेलानालाका ही रूप बदलते-बदलते बेलना पड़ गया है, किन्तु चेलना या चलनाके साथ उनका कोई साम्य नहीं और विश्वास-पूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि चेलना अथवा चलनाका रूप बिगड़ते-बिगड़ते बेलना पड़ गया। इसके अतिरिक्त यह बात भी विचारणीय है कि १२वीं-१३वीं शताब्दीसे पूर्ववर्ती कोई लेख, मूर्ति अथवा मन्दिर यहाँ उपलब्ध नहीं, जिसमे पावाका स्पष्ट उल्लेख मिलता हो। इसलिए केवल सम्भावनाके बलपर इसे पावागिरि और सिद्धक्षेत्र मानना क्या उचित हो सकता है? इसके लिए कुछ ठोस आधार खोजने होंगे। वर्तमान कल्पनाओंके सहारे अधिक दूर तक नहीं चला जा सकता।

पावागिरि क्षेत्रपर उपलब्ध पुरातत्त्व सामग्री

होल्कर राज्यके गजेटियरमें ऊन ग्रामके सम्बन्धमे विवरण प्रकाशित हुआ था, उसमें लिखा है—'यह एक छोटा-सा गाँव है। इसकी एकमात्र विशेषता प्राचीन जैन मन्दिरोंके भग्नावशेषोंमें निहित है। ये १२वीं शताब्दीके हैं। उनमे-से एक मन्दिरमे धारके एक परमार राजाका एक लेख भी मिला है।

प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता श्री राखालदास बनर्जीके मतानुसार खजुराहोके पश्चात् मध्यभारतमें ऊनके अलावा और कोई स्थान ऐसा नहीं है जहाँ इतने प्राचीन देवालय अब तक सुरक्षित अथवा अर्धरक्षित दशामें विद्यमान हों।

प्रारम्भ में यहाँ पुजारीको पाँच प्रतिमाएँ और एक चरण-युगल मिले थे। कुछ समय पश्चात् धर्मशालाके पीछे जमीन खोदते समय एक प्रतिमा और चरण निकले थे। इनके अतिरिक्त चौबारा डेरा नं २ नामक जैन मन्दिरमें बारहवी शताब्दीकी दो तीर्थंकर मूर्तियाँ थीं जो इन्दौर नवरत्न-मन्दिर (पुरातत्त्व संग्रहालय) मे पहुँचा दी गयी हैं। मन्दिर-द्वारके सिरदलपर वि. सं. १३३२ का दो पंक्तियोंका एक लेख था। वह भी इन्दौर संग्रहालयमे सुरक्षित है।

जो पाँच मूर्तियाँ भूगर्भसे उत्खननके फलस्वरूप निकली थी, उनका विवरण इस प्रकार है—

मूर्ति नं. १—मूर्ति खड्गासन, अवगाहना १ फुट १० इंच, दोनो ओर इन्द्र। ऊपरकी ओर दो देव तथा दो पद्मासन एवं एक खड्गासन मूर्तियाँ।

मूर्ति नं. २—खड्गासन, अवगाहना १ फुट १० इंच। शेष पहली मूर्तिके समान।

मूर्ति नं. ३—खड्गासन, अवगाहना १ फुट १० इंच। इधर-उधर दो चमरेन्द्र। ऊपर दो देव तथा दो तीर्थंकर प्रतिमाएँ, एक पद्मासन, दूसरी खड्गासन।

मूर्ति नं. ४—खड्गासन, एक चमरवाहक। यह शिलाफलक लगभग डेढ़ फुटका है।

मूर्ति नं. ५—भगवान् महावीरकी २ फुट २ इंच अवगाहनावाली पद्मासन, श्याम वर्ण। इसकी चरण-चौकीपर लेख है जो इस प्रकार पढ़ा गया है—

---

१. The Indore State Gagetteer, Vol. I, Text by L. C. Dhariwal.

'आचार्य श्री प्रभाचन्द्रः प्रणमति नित्यं सं. १२५२ माघ सुदी ५ रवौ चित्रकूटान्वये साधु बाल्हु भार्या शाल्हु तथा मन्दोदरी सुत गोल्हु रतन माल्लू प्रणमति नित्यं।"

चित्रकूटान्वय बलात्कारगणकी एक शाखा रहा है। बलगाम्बेके एक कन्नड़ शिलालेखमें चित्रकूटान्वयका प्रयोग मिलता है। उसके अनुसार मालवके शान्तिनाथदेवसे सम्बन्धित बलात्कार-गणके चित्रकूटान्वयके मुनिचन्द्र सिद्धान्तदेवके शिष्य अनन्तकीर्तिदेवको उनके भक्त हेग्गड़े केशवदेव द्वारा दान दिया गया था।

इन मूर्तियोंके साथ जो चरण मिले थे, वे लगभग १० इंच लम्बे हैं। उनपर कोई लेख अंकित नहीं हैं। धर्मशालाके पीछे जो मूर्ति निकली थी, वह भगवान् सम्भवनाथकी है। इसकी अवगाहना २ फुट ८ इंच है। इसके आसनपर संवत् १२१८ का लेख अंकित है जो दो पंक्तियोंमें है। कुछ मूर्तियाँ धर्मशालाके एक कमरेमें रख दी हैं। ये भूगर्भसे निकली थीं।

क्षेत्रपर तीन मन्दिर प्राचीन हैं जिनमें सड़कके पास ग्राममें दो मन्दिर हैं। इन दोनों जैन मन्दिरोंका कलापक्ष अत्यन्त समृद्ध और समुन्नत है। इन दोनों मन्दिरोंमें एक है चौबारा डेरा नं. १ और दूसरा है 'नहाल अवारका डेरा' या चौबारा डेरा नं. २। तीसरा मन्दिर ग्वालेश्वर मन्दिरके नामसे प्रसिद्ध है जो धर्मशालासे दो फर्लांग दूर पहाड़पर अवस्थित है। ये मन्दिर १२वीं शताब्दीके हैं। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

चौबारा डेरा नं. १—यह मन्दिर नगरमें पूर्वाभिमुख अर्धभग्न दशामें विद्यमान है। यह सभी मन्दिरोंमें विशाल है। इस मन्दिरके मध्यमें एक सभा मण्डप बना हुआ है तथा पूर्व-दक्षिण और उत्तरकी ओर अर्धमण्डप बने हुए हैं। सभा-मण्डपके चारों आधार स्तम्भ कलाके उत्कृष्ट नमूनोंमें-से हैं। उत्तरी दीवारपर एक वस्तु ऐसी बनी हुई है जिसकी ओर सहज ही ध्यान आकर्षित हो जाता है और इससे प्राचीन देवनागरी लिपिपर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है—यह है सर्पबन्ध। एक सर्पाकृति कुण्डलाकार बनी हुई है, जिसपर देवनागरी लिपिके वर्ण और धातुओंके परस्मैपद और आत्मनेपदके प्रत्यय बने हुए हैं। सम्भवतः प्राचीन कालमें मन्दिरके इस भागका उपयोग एक पाठशालाके रूपमें किया जाता था। बालकोंको खेल-खिलोनोंके माध्यमसे उस कालमें शिक्षण दिया जाता था। इस प्रकार सर्पबन्ध तत्कालीन शिक्षण पद्धतिकी ओर संकेत करता है। सर्पबन्धके निकट ही छोटे लेख भी अंकित हैं जिनमें मालवाके परमारवंशी राजा उदयादित्य (लगभग सन् १०८० से ११०४) का उल्लेख है। इसी देवालयके द्वारपर वि. सं. १३३२ का एक शिलापट लगा हुआ था, जिसमें लेख था तथा एक धर्मचक्र बना हुआ था। उसके दोनों ओर सिंह और हाथी बने हुए थे। यह आजकल इन्दौर संग्रहालयमें सुरक्षित है। इस मन्दिरका शिखर और उसमें की गयी तक्षणकला नयनाभिराम है।

इसमें कुछ प्राचीन प्रतिमाएँ संग्रहीत हैं। भगवान् पार्श्वनाथकी ५ फुट उन्नत एक पद्मासन प्रतिमा है। इसकी फणावली खण्डित है। सभामण्डपमें एक ७ फुट ३ इंच, दूसरी ७ फुट ३ इंच, तीसरी ५ फुट उन्नत खण्डित प्रतिमाएँ हैं। इसके स्तम्भ कलात्मक ढंगसे अलंकृत हैं। उनमें यक्षी और सुर-सुन्दरियाँ विभिन्न मुद्राओंमें उत्कीर्ण हैं। इसकी छतका अलंकरण अनूठा है।

चौबारा डेरा नं. २—(नहाल अवारका डेरा) यह मन्दिर उत्तरकी ओर गाँवके छोरपर एक ऊँचे टीलेपर बना हुआ है। यह उत्तराभिमुख है। यह काफी जीर्ण हो चुका है। इसमें गर्भगृह, अन्तराल और मण्डप बने हुए हैं। चारों दिशाओंमें अर्धमण्डप हैं। गर्भगृहसे उनमें जानेके लिए

१. जैन शिलालेख संग्रह, भाग २, पृ. २६५, माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला।

द्वार बने हैं। यह चौलुक्य शैलीकी अत्युत्कृष्ट शिल्प रचना है। चौलुक्य कुमारपालके बनवाये हुए मन्दिरोंके साथ इसकी बहुत समानता है। प्रत्येक अर्धमण्डप चार स्तम्भोंपर आधारित है। उत्तरी अर्धमण्डपसे मन्दिरमें प्रवेश करना पड़ता है। अर्धमण्डप, मण्डप और गूढ़मण्डपके स्तम्भ चाहे वे आधार-स्तम्भ हों या भित्ति-स्तम्भ—सभी अलंकृत हैं। इसकी छतों विशेषतः अर्धमण्डप और महामण्डपकी छतोंमें अलंकृत पद्म बने हैं। गूढ़मण्डपमें आठ स्तम्भ हैं। द्वार शाखाएँ, पत्रलता, पद्मपत्र-लताओंसे सुशोभित हैं। इसके सिरदलोंपर तीर्थंकर और यक्षी-मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इसकी बाह्य भित्तियोंमें रथिकाएँ बनी हुई हैं। उनमें यक्ष-यक्षी, सुर-सुन्दरियाँ एवं तीर्थंकर मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इन भित्तियोंपर खजुराहोके समान कुछ कामकला सम्बन्धी अंकन भी हैं। किन्तु दोनों स्थानोंका अन्तर ध्यानपूर्वक देखनेपर दृष्टिमें आये बिना नहीं रहता। मुख्य अन्तर तो पाषाणका है। खजुराहोका पाषाण चिकना और ठोस है। यहाँका पाषाण बुरबुरा और खुरदरा है। खजुराहोका पाषाण झड़ता नहीं, इसलिए वहाँकी मूर्तियाँ धूप और वर्षामें भी अब तक सुरक्षित हैं और स्पष्ट हैं, जबकि यहाँकी मूर्तियोंका पाषाण खिर रहा है, इसलिए ये मूर्तियाँ बहुत कुछ अस्पष्ट होती जा रही हैं। सरसरी दृष्टिसे देखनेपर ये पकड़में नहीं आतीं। खजुराहोके समान यहाँके कलाकार शिल्पीने लौकिक और धार्मिक दोनों ही जीवनोंको पाषाणमें मूर्त रूप दिया है। एक ओर उसने तीर्थंकरों, उनके सेवक यक्ष-यक्षियोंका अंकन किया तो दूसरी ओर लोकानुरंजक दृश्यों—जैसे, सुरसुन्दरियों और मिथुनोंको भी अपनी कल्पना और कलाके सहारे पाषाणोंमें सजीव रूप दिया।

वर्तमानमें इस मन्दिरमें कोई प्रतिमा विराजमान नहीं है। यहाँकी दो प्रतिमाएँ इन्दौर म्यूजियममें पहुँच गयी हैं। उनमें शान्तिनाथ भगवान्की प्रतिमापर सं. १२४२ माघ सुदी ७ अंकित है। दूसरी प्रतिमापर लेख तो है किन्तु वह अस्पष्ट है। सम्भवतः वह भी इसके समकालीन होगी।

ग्वालेश्वर मन्दिर—पहाड़पर जो विशाल मन्दिर बना हुआ है, वह ग्वालेश्वर मन्दिरके नामसे प्रसिद्ध है। संभवतः यह मन्दिर किसी ग्वाल नामक व्यक्तिने बनवाया था, इसलिए इसका नाम ग्वालेश्वर मन्दिर प्रसिद्ध हो गया। सिरपुरमें एक मन्दिरमें शिलालेख मिला था उसमें रामखेतके शिष्य ग्वाल गोविन्दका नाम मिलता है। उदयपुर केशरियामें भी ग्वाल गोविन्द द्वारा प्रतिष्ठा किये जानेके प्रमाण मिले हैं। अचलपुर और खेरलाका शासक श्रीपाल नरेश जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है—सम्भवतः इन्हीं रामखेतका शिष्य था। यदि यह ग्वालेश्वर मन्दिर इसी ग्वाल गोविन्दका बनाया हुआ सिद्ध हो जाता है तो इनका इतिहास बल्लालसे प्रायः सौ वर्ष प्राचीन सिद्ध हो सकता है। किन्तु अभी इस सम्बन्धमें कोई निश्चित मत प्रकट करना जल्दबाजी होगी।

कहते हैं, इस मन्दिरमें पहले एक सिंह रहा करता था। हो सकता है, इस निर्जन और एकान्त वन प्रदेशमें बने हुए इस पार्वत्य मन्दिरको अपने लिए सुरक्षित और सुविधाजनक समझकर वनराजने इसे अपना अड्डा बना लिया हो।

इस मन्दिरकी रचना शैलीपर परमार और चौलुक्य कलाका संयुक्त प्रभाव परिलक्षित होता है। यों यह चौबारा डेरा नं. २ से बहुत मिलता-जुलता है। इसकी छतोंमें अत्यन्त कलापूर्ण कमल बने हुए हैं जो आठ शताब्दियोंके कठिन आघात सहकर आज भी सजीव-से प्रतीत होते हैं। मन्दिरके मध्यमें सभा-मण्डप बना हुआ है। तीन द्वार हैं, जिनके सिरदलोंपर पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इसका गर्भगृह सभा-मण्डपसे दस फुट नीचा है। नीचे पहुँचनेके लिए दस

सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। गर्भगृहमें तीन विशाल प्रतिमाएँ खड्गासन मुद्रामें विराजमान हैं। ये तीनों प्रतिमाएँ भगवान् शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथकी हैं।

इस मन्दिरको देखनेसे एक बातकी ओर विशेष रूपसे ध्यान जाता है। इसके शिखरकी रचना अनूठी है और यह जैन स्तूपोंके आधारपर की गयी प्रतीत होती है।

चौबारा डेरा मन्दिरोंके आसपासमें प्राचीन मन्दिरोंके अवशेष बिखरे पड़े हैं। अनेक जैन मूर्तियाँ भी पुरातत्त्व विभागने एक स्थानपर संग्रह कर ली हैं। जैन कन्या विद्यालयके भवनमें भी अनेक मूर्तियाँ संग्रहीत हैं। इनमें तीर्थंकरों, यक्ष-यक्षियों, नवग्रहों तथा कई हिन्दू देवताओंकी मूर्तियाँ सम्मिलित हैं। कुछ प्राचीन मूर्तियाँ शान्तिनाथ मन्दिरके महामण्डपमें विराजमान हैं। इनमें अधिकांश मूर्तियाँ १२वीं शताब्दीकी हैं। उस कालके जैन मन्दिरोंके समान कई हिन्दू मन्दिर भी अबतक सुरक्षित हैं। यहाँके ये सभी मन्दिर और भग्नावशेष बल्लाल नरेश द्वारा निर्मित मन्दिरोंके ही कहे जाते हैं। शान्तिनाथ मन्दिरको छोड़कर शेष सभी मन्दिर और मूर्तियाँ भारत सरकारके पुरातत्त्व विभागके संरक्षणमें हैं।

क्षेत्र दर्शन

सड़कके किनारे ही श्री पावागिरि दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्रकी विशाल धर्मशाला है। उसके मध्यवर्ती प्रांगणमें महावीर मन्दिर बना हुआ है। इसमें तीन दरकी एक वेदी है जिसमें भगवान् महावीरकी श्यामवर्णकी २ फुट २ इंच उन्नत भव्य प्रतिमा विराजमान है। यही यहाँकी मूलनायक प्रतिमा है। यह संवत् १२५२ में आचार्य प्रभाचन्द्रने प्रतिष्ठित करायी। यह प्रतिमा उत्खननमें प्राप्त हुई थी।

बायीं ओर पद्मप्रभ और दायीं ओर आदिनाथ भगवान्की श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। ये दोनों वीर संवत् २४६४ में प्रतिष्ठित हुई हैं। वेदीमें ८ धातु प्रतिमाएँ तथा १ लघु पाषाण प्रतिमा और विराजमान हैं। मन्दिरके आगे एक भव्य समुन्नत मानस्तम्भ बना हुआ है, जिसके शीर्ष पर ४ मूर्तियाँ विराजमान हैं। चारों मूर्तियाँ भगवान् शान्तिनाथकी हैं। मन्दिरके शिखरमें एक वेदी बनी हुई है, जिसमें भगवान् शान्तिनाथकी श्वेतवर्णकी खड्गासन मूर्ति सं. १९९५ की विराजमान है। अवगाहना ३ फुट ६ इंच है। एक चरण चिह्न भी है। मन्दिरके द्वारके ऊपर भी एक छोटी वेदी है। उसमें भगवान् शान्तिनाथकी १ फुट ३ इंच ऊँची श्वेत पद्मासन मूर्ति है। प्रतिष्ठा काल संवत् २००८ है। सड़कसे एवं धर्मशालाके पृष्ठभागसे पावागिरि क्षेत्र तक रोड बन गया है। रोडका नाम महावीर मार्ग रखा गया है। कुछ दूर चलनेपर एक पक्का द्वार बनाया गया है जिसका नाम श्री महावीर प्रवेश-द्वार है। उससे थोड़ा और आगे जानेपर क्षेत्रपर पहुँच जाते हैं। यह धर्मशालासे २ फर्लांग है और एक छोटी पहाड़ीपर है।

महावीर मन्दिर—यह एक गुमटी या मन्दरिया है। इसमें भगवान् महावीरकी एक श्वेत वर्णवाली १ फुट ९ इंच उन्नत पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। प्रतिष्ठा काल संवत् २४८७ है।

चन्द्रप्रभ मन्दिर—भगवान् चन्द्रप्रभकी ११ फुट ऊँची श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसके दोनों पार्श्वोंमें भगवान् शान्तिनाथकी श्वेत वर्णवाली पद्मासन प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

इन दोनों मन्दिरोंके मध्य चौकमें ४० फुट ऊँचा मानस्तम्भ है। इसके सामने ही सुप्रसिद्ध ग्वालेश्वर या शान्तिनाथ मन्दिर है। यही यहाँका सर्वप्रमुख मन्दिर है। स्वर्णभद्र आदि मुनियोंकी निर्वाण-भूमि यही मानी जाती है। यह मन्दिर एक ऊँची टेकरीपर बना हुआ है। यह मध्य-

कालीन परमार और चौलुक्य कलाकी उत्कृष्ट कृति है। इस मन्दिरमें गूढ़मण्डप या गर्भगृह, महामण्डप, अर्धमण्डप हैं, तीन ओर द्वार बने हुए हैं। गूढ़मण्डपके ऊपर समुन्नत शिखर है। ऊन के प्राचीन मन्दिरोंमें एकमात्र यही मन्दिर अच्छी दशामें है। इसका जीर्णोद्धार किया जा चुका है। इससे यह आकर्षक बन गया है। जीर्णोद्धार करते समय इसकी प्राचीनता और कलाको क्षति नहीं पहुँची, यह प्रशंसा योग्य है।

गर्भगृहमें जानेके लिए १० सीढ़ियाँ उतरनी पड़ती हैं। गर्भगृहका आकार ११ फुट ८ इंच × ९ फुट ३ इंच और ऊँचाई २० फुट है। गर्भगृह अपने मूलरूपमें सुरक्षित है, केवल शिखरमें कुछ परिवर्तन किया गया है। सामने वेदीपर भगवान् शान्तिनाथकी १२ फुट ९ इंच ऊँची भव्य प्रतिमा विराजमान है। यह कायोत्सर्ग मुद्रामें खड़ी है। यह कृष्ण पाषाणकी है। चरण-चौकीपर उनका लांछन हिरण बना हुआ है तथा मूर्तिलेख भी अंकित है जिसका 'संवत् १२६३ जेष्ठ वदी १३ गुरौ आचार्य श्री यशकीर्ति प्रणमति' यह अंश ही पढ़ा जा सका। इसके पार्श्वमें बायीं ओर कुन्थुनाथ और दायीं ओर अरनाथकी ८-८ फुट ऊँची खड्गासन मूर्तियाँ हैं। कुन्थुनाथकी मूर्तिके पीठासनपर यक्ष-यक्षी और लांछन बकरा बने हुए हैं तथा 'संवत् १२६३ ज्येष्ठ वदी १३ गुरौ सिन्धी पं. तरंगसिंह सुत जीतसिंह प्रणमति' यह लेख अंकित है। अरनाथकी मूर्तिके पादपीठपर उनका चिह्न मत्स्य अंकित है। इन तीनों मूर्तियोंके दोनों पार्श्वोंमें चमरवाहक खड़े हुए हैं। यह नवीन रचना है। मूर्तियोंके सिरके ऊपर पाषाण छत्र नहीं है; बल्कि धातुके नवीन छत्र लगे हुए हैं।

गर्भगृहका द्वार विशेष अलंकृत है। दायीं ओर तीन दरकी एक वेदीमें मन्दिरके साथ निकली हुई मूर्तियाँ और चरण विराजमान हैं। एक शिलाफलक ३ फुट चौड़ा और १ फुट ३ इंच ऊँचा है। उसमें पाँच पद्मासन तीर्थंकर मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। यह किसी सिरदलका भाग लगता है। एक अन्य मूर्ति १० इंच ऊँची है। मध्यमें पद्मासन प्रतिमा है। उसके ऊपर छत्र बना हुआ है। दोनों ओर कोष्ठकोंमें दो पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। नीचे दो खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। एक और मूर्ति १ फुट ५ इंच चौड़ी और १० इंच ऊँची है। कोष्ठकमे पद्मासन मूर्ति है। दायीं ओर देव पुष्पमाला लिये हुए हैं और देवी बायें हाथमें सम्भवतः बिजौरा फल लिये है। एक पाषाणमें चरणचिह्न बने हुए हैं। इनका आकार १० इंच है।

बायी ओरकी वेदीमें किसी मूर्तिका ऊपरी भाग रखा हुआ है। इसके शीर्षपर एक पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा बनी हुई है। उससे नीचे माला लिये हुए देवी है। उससे नीचे छत्र हैं। इसके दोनों ओर नर्तक-नर्तकी तथा देव-देवियाँ हैं। उनसे नीचे गज हैं। कोष्ठकमें एक पद्मासन प्रतिमा है। देव माला लिये हुए है और देवी फल (बिजौरा) लिये हुए है।

एक मूर्ति १ फुट २ इंच उन्नत है। शिखराकृतिमे पद्मासन प्रतिमा बनी हुई है। १० इंच लम्बे चरणचिह्न विराजमान हैं। दायीं ओरकी वेदीमें भगवान् पार्श्वनाथकी श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसका आकार १ फुट ६ इंच है और प्रतिष्ठा-काल वीर सं. २४९३ है। इसके दोनों पार्श्वोंमें दो प्राचीन प्रतिमाएँ हैं। एक १ फुट ३ इंच है। यह खड्गासन है। एक ओर तीन पद्मासन और एक खड्गासन प्रतिमा है। सिरके दोनों ओर मालाधारी देव हैं। चरणोंके दोनों ओर चमरेन्द्र खड़े हैं। दूसरी प्रतिमा १ फुट १० इंच है। इस फलकमें दोनों ओर दो-दो स्तम्भ और उनके मध्य कोष्ठक हैं। उन कोष्ठकोंमें खड्गासन मूर्तियाँ हैं। उनके एक पार्श्वमें चमरवाहक हैं।

इससे आगेकी वेदी महावीर भगवान्की है। उनकी मूर्ति कृष्णवर्णकी है और पद्मासन है। यह १ फुट ४ इंच ऊँची है तथा इसका प्रतिष्ठाकाल वीर संवत् २४६२ है। दायीं ओर एक

प्राचीन प्रतिमा विराजमान है। पाषाणफलक १ फुट ७ इंच है। प्रतिमाके दोनों ओर चमरवाहक खड़े हुए हैं। बायीं ओर भगवान् महावीरकी श्वेतवर्णकी पद्मासन प्रतिमा है। लेखके अनुसार इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९९३ में हुई। इसकी अवगाहना १ फुट ८ इंच है। इधर-उधर दो खड्गासन प्राचीन प्रतिमाएँ हैं। इनका आकार १ फुट १० इंच है।

बगलकी वेदीमें भगवान् सम्भवनाथकी कृष्ण पाषाणकी प्रतिमा पद्मासन मुद्रामें विराजमान है। इसकी अवगाहना २ फुट ८ इंच है। इसके प्रतिमा-लेखमें प्रतिष्ठा संवत् १२१८ दिया है। इसकी बगलमें श्वेतवर्णकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है।

पंच पहाड़ी—शान्तिनाथ मन्दिरसे उतरकर थोड़ी दूर चलनेपर एक ऊँची टेकरी मिलती है। इसके ऊपर प्राचीन मन्दिरोंके अवशेषोंपर छोटे-छोटे छह नवीन मन्दिर बने हुए हैं। (१) आचार्य शान्तिसागरजी के चरणचिह्न विराजमान हैं। (२) बाहुबली स्वामीकी मार्बलकी श्वेत प्रतिमा है। (३,४) भगवान् शान्तिनाथकी पद्मासन मूर्तियाँ हैं (५) भगवान् पार्श्वनाथकी श्वेत प्रतिमा है, (६) भगवान् आदिनाथकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है।

यहाँ प्राचीन मन्दिरोंके भग्नावशेष दबे पड़े हैं। यदि यहाँ उत्खनन किया जाये तो काफी पुरातत्त्व सामग्री उपलब्ध होनेकी सम्भावना है।

अतिशय

सिद्धक्षेत्र होनेके कारण यहाँ समय-समयपर कुछ ऐसी असामान्य बातें देखने-सुननेको मिलती हैं, जिन्हें सर्वसाधारण श्रद्धावश देवी चमत्कार मानता है क्योंकि उन बातोंका कोई कार्य-कारण समझमें नहीं आता। जैसे, संवत् १९६२ की बात है। आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराजका यहाँ चर्तुमास था। चौंसठ ऋद्धि विधान हो रहा था। एक दिन लगभग १५ मिनट तक 'ॐ नमः' की ध्वनिके साथ रह-रहकर बाजे बजनेकी ध्वनि आती रही।

रात्रिमें नृत्य, पूजन और बाजोंकी ध्वनि अनेक बार सुनी गयी है। ऐसे अनेक प्रत्यक्षदर्शी विद्यमान हैं, जिन्होंने ये आवाजें सुनी हैं। ये घटनाएँ महावीर मन्दिर (धर्मशाला) में होती हैं।

धर्मशाला

यहाँ धर्मशालामें कुल ५२ कमरे हैं। प्रत्येक कमरेके पीछे रसोई घर है। सामूहिक भोजके लिए बड़ा रसोई घर है। धर्मशालामें स्नानगृह, शौचालय, मूत्रालय, नल, कुआँ, बिजली आदि सभी आश्यक सुविधाएँ हैं। यहाँ बाजार होनेसे प्रत्येक आवश्यक वस्तु मिल जाती है। पोस्ट ऑफिस, टेलीफोन, पुलिस-स्टेशन ये धर्मशालाके निकट होने से बड़ी सुविधा है।

क्षेत्रपर स्थित संस्थाएं

क्षेत्रपर जन-सेवाकी प्रवृत्तियाँ निरन्तर चलती रहती हैं। जन-सेवा करनेवाली कुछ संस्थाएँ भी क्षेत्रपर चल रही हैं।

१. श्री शान्तिनाथ आयुर्वेदिक औषधालय।
२. श्री सम्भवनाथ वाचनालय।
३. श्री निहालचन्द शारदा भवन (बालकोंका उच्चतर माध्यमिक विद्यालय उस स्थान-पर स्थित है जहाँ ५ मूर्तियाँ भूगर्भसे निकली थीं)।
४. श्री दिगम्बर जैन गुरुकुल।

वार्षिक मेला

क्षेत्रपर कोई नियमित वार्षिक मेला नहीं होता है। पहले फागुन सुदी ५ से १० तक वार्षिक मेला भरता था।

व्यवस्था

इस क्षेत्रकी सम्पूर्ण व्यवस्था श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र श्री पावागिरिजी ट्रस्ट कमेटी और प्रबन्धकारिणी कमेटी द्वारा होती है। हर तीन वर्षके बाद साधारण सभा द्वारा प्रबन्धकारिणी कमेटीका चुनाव होता है।

मार्ग और अवस्थिति

श्री पावागिरि सिद्धक्षेत्र मध्यप्रदेशके जिला खरगौनमें ऊन नामक स्थानसे दो फर्लांग दूर स्थित है। ऊन एक छोटा-सा कसबा है जिसकी जनसंख्या लगभग ४००० है। यहाँपर पोस्टऑफिस, पुलिसथाना, दवाखाना, उच्चतर माध्यमिक स्कूल आदि हैं। यहाँ आनेके लिए निकटवर्ती स्टेशन खण्डवा १०४ कि. मी., इन्दौर १५४ कि. मी., सनावद ८३ कि. मी. और महू १३१ कि. मी. है। खण्डवा और सनावद होकर आनेवाले यात्रियोंको खरगौन होकर और इन्दौर या महूसे आनेवाले यात्रियोंको जुलवान्या होकर बस द्वारा ऊन उतरना पड़ता है। खरगौन यहाँसे केवल १८ कि. मी. है। खरगौनसे जुलवान्या जानेवाली सड़कके किनारे ही दिगम्बर जैन धर्मशाला बनी हुई है। यह ऊनमें है। धर्मशालासे पावागिरि सिद्धक्षेत्र केवल दो फर्लांग दूर है।

सिद्धक्षेत्र पावागिरिके पूर्व भागमें चिरूढ़ नदी बहती है, पश्चिममें कमलतलाई तालाब है। इसमें कमलके फूल खिलते हैं। उत्तरमें ऊन ग्राम है। दक्षिण दिशामें एक कुण्ड बना हुआ है जिसे नारायण-कुण्ड कहा जाता है। वैष्णव लोग इसे तीर्थ मानते हैं।

इस क्षेत्रके पश्चिममें चूलगिरि, बावनगजाजी और उत्तरमें सिद्धवरकूट क्षेत्र हैं। यहाँका पोस्ट ऑफिस ऊन है।

सिद्धवरकूट

सिद्धक्षेत्र

सिद्धवरकूट सिद्धक्षेत्र है इस बातका समर्थन अनेक आचार्योंने किया है। प्राकृत निर्वाण-काण्डमें इस सम्बन्धमें इस प्रकार उल्लेख है—

रेवाणइये तीरे पच्छिमभायम्मि सिद्धवरकूडे।
दो चक्की दह कप्पे आहुट्ठयकोडि णिव्वुदे वंदे ॥११॥

अर्थात् रेवा नदीके तटपर पश्चिम दिशाकी ओर सिद्धवरकूट क्षेत्र है। वहाँसे दो चक्री, दस कामदेव और साढ़े तीन करोड़ मुनि निर्वाणको प्राप्त हुए।

हिन्दी भाषाकारने इसका रूपान्तर इस प्रकार किया है—

'रेवा नदी सिद्धवरकूट
पश्चिम दिशा देह जहँ छूट।
द्वय चक्री दश कामकुमार
हूँठ कोड़ि बन्दों भव पार ॥'

संस्कृत निर्वाण-भक्तिमें सिद्धवरकूट नामक किसी निर्वाण-क्षेत्रका उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु उसमें 'विन्ध्ये' पद द्वारा विन्ध्याचलके समस्त तीर्थोंको ले लिया है। इस निर्वाण-भक्तिमें इसी कारण सिद्धवरकूटके समान पावागिरिका भी नामोल्लेख नहीं किया है एवं विन्ध्याचलके समान सह्याचल और हिमवान पर्वतका ही नाम दिया है, वहांके तीर्थोंका नहीं।

बोधप्राभृतकी गाथा २७ की व्याख्यामें भट्टारक. श्रुतसागरने क्षेत्रका नाम सिद्धकूट दिया है। भट्टारक गुणकीर्ति, विश्वभूषण आदि लेखकोंने भी इसका नाम सिद्धकूट ही दिया है।

प्राकृत निर्वाण-काण्डकी उपर्युक्त गाथामें इस क्षेत्रकी अवस्थितिकी ओर भी संकेत किया गया है कि यह क्षेत्र रेवा नदीके पश्चिम तटपर अवस्थित है। कूट शब्दसे यह आशय निकलता है कि यह क्षेत्र पर्वतके ऊपर है और वह कूट सिद्धकूट या सिद्धवरकूट कहलाता है। संस्कृत निर्वाण-भक्तिमें 'वरसिद्धकूटे' शब्द आया है किन्तु वह इस क्षेत्रके सन्दर्भमें नहीं आया, बल्कि वैभारगिरिके सन्दर्भमें आया है और उसमें 'वैभार पर्वततले वरसिद्धकूटे' इस पद द्वारा यह स्पष्ट किया है कि वैभारगिरिकी तलहटी और ऊपर शिखरसे मुनि मुक्त हुए।

रेवाके तटवर्ती इस क्षेत्रका कोई विशेष नाम नहीं था, बल्कि साढ़े तीन करोड़ मुनियोंका सिद्धिस्थान होनेके कारण इस पर्वत-शिखर और क्षेत्रका नाम ही सिद्धवरकूट हो गया।

दो चक्री और दस कामदेव—दो चक्रवर्ती और दस कामकुमार कौन थे, इनके नामोंका उल्लेख कहीं देखनेमें नहीं आया। चक्रवर्तियोंमें भरत और सगर कैलाससे मुक्त हुए। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ सम्मेदशिखरसे मोक्ष गये। हरिषेण सर्वार्थसिद्धिमें और जयसेन अनुत्तर विमानमें अहमिन्द्र बने। सुभौम और ब्रह्मदत्त ये दो चक्रवर्ती नरकमें गये। केवल मघवा, सनत्कुमार और पद्मनाभ ये तीन चक्रवर्ती शेष रहे, जिनके सम्बन्धमें विशेष अनुसन्धानकी आवश्यकता है। इस सम्बन्धमें आचार्योंमें कुछ मतभेद प्रतीत होता है। 'तिलोय-पण्णत्ति' ४।१४१० के अनुसार आठ चक्रवर्ती मोक्षमें, ब्रह्मदत्त और सुभौम नरकमें तथा मघवा और सनत्कुमार तीसरे सानत्कुमार कल्पमें गये। 'उत्तर पुराण' के अनुसार ये दोनों चक्रवर्ती मुक्त हुए थे। पद्मनाभके सम्बन्धमें दोनों आचार्य एकमत हैं और उनको मुक्त होना मानते हैं। केवल मतभेद मघवा और सनत्कुमार इन दो चक्रवर्तियोंके बारेमें है। मुनिराज सनत्कुमारने जिस प्रकार घोर तपश्चर्या की और इन्द्रको भी उनकी तपोनिष्ठाकी प्रशंसा करनी पड़ी थी, उससे तो यह विश्वास होता है कि ऐसा सम्यग्दृष्टि घोर तपस्वी मुनि अवश्य मुक्त हुआ होगा। यदि इन दोनों चक्रवर्तियोंको हम मुक्त हुआ मान लें तो उनका निर्वाण-स्थान कौन-सा था, इस सम्बन्धमें जिज्ञासा होना स्वाभाविक है। लगता है, जिन आचार्योंने सिद्धवरकूट क्षेत्रसे दो चक्रवर्तियोंका निर्वाण-गमन लिखा है, वे 'उत्तर-पुराण' के मतके ही थे और उनके मनमें, सिद्धवरकूटसे मघवा और सनत्कुमार ये दो चक्रवर्ती मुक्त हुए, यह बात रही थी। अस्तु,

जिस प्रकार दो चक्रवर्तियोंके सम्बन्धमें कहीं स्पष्ट उल्लेख उपलब्ध नहीं होता, इसी प्रकार दस कामकुमारोंके सम्बन्धमें भी कहीं कोई उल्लेख देखनेमें नहीं आया।

इस सम्बन्धमें दिगम्बर परम्परामें जो स्थिति है, लगभग वही स्थिति श्वेताम्बर परम्परामें भी रही है। आचार्य हेमचन्द्र कृत 'त्रिषष्ठि शलाकापुरुषचरित' में बारह चक्रवर्तियोंमें-से आठ चक्रवर्तियोंको मोक्ष माना है, मघवा और सनत्कुमारको तीसरे स्वर्ग सानत्कुमारमें देव पर्याय और सुभौम एवं ब्रह्मदत्त दो चक्रवर्तियोंको नरक पर्यायकी प्राप्ति बताया है।

इससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस सम्बन्धमें कुछ अस्पष्टता या मत-विभिन्नता रही है। एक मत 'तिलोयपण्णत्ति' और 'त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित' का रहा है, जिसके अनुसार मघवा और

सनत्कुमार तीसरे स्वर्गमें देव बने, ऐसा माना गया है। दूसरा मत उत्तरपुराण और निर्वाण-काण्डका रहा—जिसके अनुसार दो चक्री सिद्धवरकूटमें रेवा-तटसे मुक्त हुए, ऐसा स्वीकार किया गया है।

दिगम्बर परम्पराके समान श्वेताम्बर परम्परामें भी इन दस कामकुमारोंके सम्बन्धमें कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। कुल कामदेव २४ हुए हैं, जिनके नाम इस प्रकार मिलते हैं—बाहुबली, अमिततेज, श्रीधर, दशभद्र, प्रसेनजित्, चन्द्रवर्ण, अग्निमुक्ति, सनत्कुमार चक्रवर्ती, वत्सराज, कनकप्रभ, मेघवर्ण, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, विजयराज, श्रीचन्द्र, राजा नल, हनुमान्, बलराज, वसुदेव, प्रद्युम्न, नागकुमार, श्रीपाल और जीवन्धर।

इनमें-से कौन-से १० कामकुमार यहाँसे मुक्त हुए हैं, यह उल्लेख कहीं नहीं मिलता। कुछ लोगोंने यहाँसे निर्वाण-प्राप्त कामकुमारोंके नाम इस प्रकार दिये हैं—सनत्कुमार, वत्सराज, कनकप्रभ, मेघप्रभ, विजयराज, श्रीचन्द, नलराज, बलराज, वसुदेव और जीवन्धर।

ये नाम किस शास्त्रके आधारसे लिये गये हैं, यह ज्ञात नहीं हो सका। इनमें-से वसुदेव, जीवन्धर आदि कई कामकुमार तो हरिवंशपुराण, उत्तरपुराणके अनुसार गिरनार, विपुलाचलसे मुक्त हुए हैं। यह विषय अनुसन्धान श्रेणीमें है, अभी निर्णीत नही है।

क्षेत्रकी खोज

सिद्धवरकूट क्षेत्र वास्तवमें कहाँ था, और वह कब, कैसे विस्मृत कर दिया गया, इसके बारेमें कोई स्पष्ट प्रमाण प्राप्त नही होते। 'निर्वाण-काण्ड' में सिद्धवरकूट क्षेत्रसे दो चक्री, दस कामकुमार और साढ़े तीन कोटि मुनियोंका मुक्त होना बताया है, किन्तु शास्त्रोंमें ऐसे प्रसिद्ध निर्वाण-क्षेत्रके बारेमें विशेष ज्ञातव्य कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। 'निर्वाण-काण्ड'में भी जो बताया है, वह भी बड़ा अस्पष्ट है।

'निर्वाण-काण्ड' (प्राकृत) में सिद्धवरकूटका नाम तो आया है, किन्तु संस्कृत 'निर्वाण-भक्ति' मे इस क्षेत्रका नाम तक नही है, केवल 'विन्ध्ये' शब्द आया है। अर्थात् सम्पूर्ण विन्ध्याचल-को सिद्धक्षेत्र स्वीकार किया है। और विन्ध्याचल रेवाके तटपर बहुत दूर तक गया है, इसलिए रेवातटवर्ती सिद्धक्षेत्रोंका अन्तर्भाव इसमे किया जा सकता है।

'निर्वाण-काण्ड' मे रेवातटवर्ती सिद्धक्षेत्रोंके लिए निम्नलिखित दो गाथाएँ मिलती हैं—

'दहमुहरायस्स सुआ कोडी पंचद्धमुणिवरे सहिया।
रेवाउहयम्मि तीरे णिव्वाण गया णमोतेसिं ॥१०॥
रेवाणइए तीरे पच्छिमभायम्मि सिद्धवरकूटे।
दो चक्की दह कप्पे आहुट्ठयकोडिणिव्वुदे वंदे'[1] ॥११॥

---

१. 'क्रियाकलाप' ग्रन्थमें पं. पन्नालाल सोनीने सूचित किया है कि कई पुस्तकोंमें यह गाथा नहीं मिलती। कुछ पुस्तकोंमें इसके स्थानपर निम्नलिखित दो गाथाएँ उपलब्ध होती है—

रेवातडम्मि तीरे दक्खिणभायम्मि सिद्धवरकूडे।
आहुट्ठकोडीओ णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥१॥
रेवातडम्मि तीरे संभवनाथस्स केवलुप्पत्ती।
आहुट्ठयकोडीओ णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥२॥

अर्थात् रेवा नदीके दोनों तटोंसे साढ़े पाँच करोड़ मुनियोंके सहित दशमुख (रावण) राजाके पुत्र मुक्त हुए।

रेवा नदीके किनारे पश्चिम भागमें स्थित सिद्धवरकूटसे दो चक्री, दस कामकुमार और साढ़े तीन करोड़ मुनि मोक्षमें गये। मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।

पहली गाथामें रेवा नदीके दोनों तटोंसे साढ़े पाँच करोड़ मुनियोंका निर्वाण होना बताया है और दूसरी गाथामें केवल पश्चिम तटवर्ती सिद्धवरकूटसे साढ़े तीन करोड़ मुनियोंकी मुक्ति बतलायी है। इसका अर्थ यह हुआ कि रेवा नदीके पूर्वी तटसे दो करोड़ मुनि मुक्त हुए। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि जब पहली गाथामें दोनों तटोंसे मुक्त हुए मुनियोंका उल्लेख कर दिया तो फिर पश्चिम तटसे मुक्त होनेवालोंकी संख्या देनेकी आवश्यकता क्या थी। किन्तु इसके लिए पृथक् गाथा देनेका उद्देश्य हमारी सम्मतिमें यह रहा कि सिद्धवरकूट विख्यात तीर्थ रहा है, उसकी असाधारण महत्ता थी। अतः उस क्षेत्रकी महत्ता अक्षुण्ण रखने की दृष्टिसे ही उसका पृथक् उल्लेख किया गया।

रेवा नदीको वर्तमानमें नर्मदा नदी कहा जाता है।

उक्त गाथाओंमें दशमुख राजाके कौन-कौन-से पुत्र रेवा तटसे मुक्त हुए, यह नामोल्लेख नहीं है। 'पद्मपुराण' आदिमें भी उन पुत्रोंका नाम नहीं मिलता जो यहाँसे मुक्त हुए थे। इस गाथामें उल्लिखित सिद्धवरकूट कहाँपर अवस्थित था, यह भी ज्ञात नहीं होता। वस्तुतः अकृत्रिम पर्वतोंके शिखरपर एक सिद्धवरकूट होता है, जहाँसे मुनिजन मुक्ति जाते हैं। विन्ध्याचल पर्वत अकृत्रिम पर्वत तो है नहीं, वह कल्पके अन्तमें नष्ट हो जाता है। इसलिए सिद्धवरकूट यह वस्तुतः क्षेत्रका नाम है। अकृत्रिम पर्वतोंके शिखरपर स्थित उस कूटसे यहाँ सम्भवतः तात्पर्य नहीं है जो तपस्वी मुनियोंके निर्वाण-स्थलके रूपमें सिद्धवरकूट कहलाने लगता है। एक स्थान विशेषका नाम है, दूसरा पर्वतके शिखरका नाम है।

सिद्धवरकूट क्षेत्र रेवाके पश्चिम तटपर अवस्थित था, इसके अतिरिक्त अन्य कोई सूचना किसी ग्रन्थमें नहीं मिलती। ऐसा लगता है कि शताब्दियोंसे यह तीर्थ अज्ञात दशामें पड़ा हुआ था। सम्भवतः कोई यात्री भी यहाँ नहीं आते थे। उपेक्षाके कारण यहाँके मन्दिर जीर्ण-शीर्ण होकर धराशायी होने लगे। यह भी सम्भव है कि किसी धर्मान्ध शासकने इस क्षेत्रको नष्ट कर दिया हो और जनतापर इतने भयानक अत्याचार ढाये हों कि उसके हृदयमें आतंक व्याप्त हो गया हो तथा भयके कारण यहाँकी यात्रा बन्द कर दी हो। धीरे-धीरे जनता इस क्षेत्रका नाम और स्थान आदिके बारेमें भी भूल गयी।

यह क्षेत्र प्रकाशमें कैसे आया, इसका भी एक रोचक इतिहास है। कार्तिक कृष्णा १४ संवत् १९३५ को इन्दौर पट्टके भट्टारक श्री महेन्द्रकीर्तिजीको स्वप्न आया, जिसमें उन्होंने सिद्धवरकूट क्षेत्रके दर्शन किये। स्वप्नमें देखे हुए स्थानकी खोजके लिए भट्टारकजी दूसरे दिन ही चल दिये और रेवा नदीके तटपर पहुँचकर उन्होंने खोज प्रारम्भ की। वे कुछ लोगोंके साथ रेवाके

अर्थात् रेवाके तटपर दक्षिण दिशामें स्थित सिद्धवरकूटसे साढ़े तीन करोड़ मुनि मुक्त हुए। मैं उनको नमस्कार करता हूँ। रेवा नदीके तटपर सम्भवनाथ भगवान्‌को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ तथा साढ़े तीन करोड़ मुनि मोक्ष गये। मैं उन सबको नमस्कार करता हूँ।

इनमें द्वितीय गाथामें रेवा नदीके तटपर सम्भवनाथ भगवान्‌को केवलज्ञानकी प्राप्ति बतलायी है। किन्तु 'उत्तरपुराण' पर्व ४९।४०-४१ में उन्हें श्रावस्तीके सहेतुक वनमें केवलज्ञानकी प्राप्ति बतलायी है।

तटवर्ती वनके भीतर आकर तलाश करते रहे, किन्तु जो दृश्य उन्होंने स्वप्नमें देखा था, वह अब तक नहीं मिला था। खोज कई दिनों तक होती रही। तभी एक दिन उन्हें उसी जंगलमें भगवान् चन्द्रप्रभकी अतिमनोज्ञ एक मूर्ति मिली। इस मूर्तिकी प्रतिष्ठा राणा उदयसिंहके राज्यकालमें श्री विशालभूषण स्वामी प्रतिष्ठाचार्य द्वारा की गयी थी। एक और प्रतिमा भगवान् आदिनाथकी मिली जो भट्टारक सोमसेनके द्वारा शाह माणिकचन्द हेमदत्त सुत धर्मदासने प्रतिष्ठित करायी थी।

मूर्ति प्राप्त होनेपर आशा होने लगी कि अवश्य ही यहाँ कहीं मन्दिर भी रहा होगा। कुछ आगे बढ़नेपर एक जीर्ण-शीर्ण किन्तु विशाल जैन मन्दिर मिला। उसके द्वारके सिरदलपर दिगम्बर तीर्थंकर प्रतिमा बनी हुई थी। और भी दो-तीन जैन मन्दिर भग्नावशेष दशामें मिले। यद्यपि कोई शिलालेख या पुरातत्त्व सम्बन्धी साक्ष्य प्राप्त नहीं हुआ, जिसके आधारपर यह सिद्ध होता कि यह स्थान ही वस्तुतः सिद्धवरकूट क्षेत्र है, किन्तु भट्टारकजीने अपने स्वप्नमें देखे हुए स्थानके साथ उस स्थानकी समानताके आधारपर यह मान लिया कि अवश्य यही स्थान सिद्धवरकूट क्षेत्र है। किन्तु फिर भी अपनी इस धारणाकी पुष्टि करा लेना उन्होंने आवश्यक समझा। तब संवत् १९४० में श्री चारुकीर्ति पण्डिताचार्य और श्री सूरसेन पट्टाचार्यने इस स्थानका निरीक्षण करके भट्टारकजीकी धारणाकी पुष्टि की। तबसे यह स्थान सिद्धक्षेत्र सिद्धवरकूटके रूपमें मान्य हो गया।

ओंकारेश्वर मन्दिर

इस क्षेत्रके निकट ओंकारेश्वर मन्दिर है। उसका आकार प्रायः ॐ-जैसा है। सम्भवतः इसी कारण यह मन्दिर ओंकारेश्वर कहलाता है। यह मान्धाता टापूपर है जो नर्मदा और कावेरीके मध्यमें है। मान्धाता एक पहाड़ी है जो प्रायः एक वर्गमीलमें है। यह मन्दिर आजकल हिन्दुओंके अधिकारमें है। इस मन्दिरका सूक्ष्म निरीक्षण करनेपर ऐसा प्रतीत होता है कि मूलतः यह मन्दिर जैनोंका रहा होगा। कुछ स्थापत्य विशेषज्ञोंने तो यहाँ तक अनुमान लगाया है कि ओंकारेश्वर मन्दिर, कोल्हापुरका अम्बिका मन्दिर और अजमेरकी ख्वाजा साहबकी दरगाह—इन तीनोंकी रचना-शैलीमें बड़ी समानता है। सम्भव है, इनकी रचना-शैलीका मूल प्रेरणा स्रोत एक ही रहा हो और यह स्रोत जैन धर्म हो।

ओंकारेश्वर मन्दिरके जिन्होंने दर्शन किये हैं, ऐसे कुछ विद्वानोंकी तो धारणा है कि सिद्धवरकूट इस ओंकारेश्वर पर्वतपर होना चाहिए। उनकी रायमें सिद्धवरकूट नामका कोई क्षेत्र नहीं था बल्कि इस पहाड़ीके ऊपरके कूटको ही सिद्धवरकूट कहा जाता था। यहाँका दृश्य बड़ा सुन्दर है। इस पहाड़ीके एक ओर कावेरी बहती है तो दूसरी ओर नर्मदा। ओंकारेश्वरका मन्दिर तिमंजिला है। इसके पासमें ही एक छतरी बनी हुई है। यहाँ कालभैरव वास करते हैं। उनके लिए अपना जीवन अर्पण करनेका विधान है। मुक्तिकामी हिन्दू लोगोंकी धारणा थी कि इस छतरीमें-से छलांग लगाकर पहाड़ीके नीचे बनी हुई एक शिलापर गिरकर मरनेसे मुक्ति मिलती है। इस विश्वासके अनुसार अनेक व्यक्ति यहाँसे मुक्तिकी दुराशामें मृत्युका आलिंगन करते रहे हैं। किन्तु अँगरेजी शासनने कानून द्वारा इस आत्म-हत्याको निषिद्ध करार दे दिया।

यहाँसे मुक्ति मिलती है, इस धारणाके मूलमें कोई एक बात है, जिसको भुला दिया है और पत्थरसे सिर फोड़कर आत्महत्या करनेको मुक्ति मान लिया है। यहाँसे मुक्ति मिलती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। यहाँसे साढ़े तीन करोड़ मुनियोंको मुक्ति मिली थी। किन्तु वह मुक्ति उन्हें आत्म-हत्या द्वारा नहीं मिली, वरन् सम्पूर्ण आरम्भ-परिग्रहका त्याग करके सम्यक् तपस्या द्वारा

कर्मोंका नाश करनेसे मिली थी। प्राचीन कालसे यहाँसे मुक्ति प्राप्तकी जो धारणा चली आ रही है, वह भी एक तथ्य है जो हमें यह स्वीकार करनेको प्रेरित करता है कि यही स्थान सिद्धवरकूट है। वर्तमानमें जो क्षेत्र है वह ओंकारेश्वरसे बहुत निकट है। हिन्दू पुराणोंमें ओंकारेश्वरको १२ ज्योतिर्लिंगोंमें-से एक ज्योतिर्लिंग माना है। ओंकारेश्वर मन्दिर जिस पहाड़ीपर है, वहाँ प्राचीन मन्दिरोंके भग्नावशेष पड़े हुए हैं। ये पुरातत्त्व विभागके अन्तर्गत हैं। यदि यहाँ खुदाई की जाये तो यहाँ जैन कलावशेष प्रचुर परिमाणमें मिलनेकी सम्भावना है।

क्षेत्रका विकास

क्षेत्रका निश्चय होनेपर इन्दौर पट्टके भट्टारक महेन्द्रकीर्तिजीने क्षेत्रके उद्धार कार्यमें अपना पूरा ध्यान लगाया। उनके आदेशानुसार श्री भूरजी सूरजमलजी मोदी इन्दौर और उनके परिवार-जनोंने प्राचीन बड़े मन्दिरका जीर्णोद्धार करनेका संकल्प किया। माघ सुदी ३ संवत् १९४० से मन्दिरके जीर्णोद्धार करनेका कार्य आरम्भ हुआ तथा मन्दिर और बिम्ब-प्रतिष्ठा संवत् १९५१ में श्री हुकमलजी शोलापुरने भट्टारक महेन्द्रकीर्तिजी द्वारा करायी।

एक बार इस भूमिको सिद्धक्षेत्र स्वीकार करनेके बाद इस क्षेत्रका विकास जिस द्रुतगतिसे हुआ है वह अवश्य ही आश्चर्यजनक है। कावेरी नदीसे क्षेत्र पर्यन्त पक्का घाट और सीढ़ियाँ भी बन चुकी हैं।

क्षेत्र दर्शन

मान्धाता (ओंकारेश्वर) में बस स्टेण्डके निकट ही क्षेत्रकी धर्मशाला है। ओंकारेश्वर रोडपर भी बस स्टेण्डके निकट सेठ कल्याणमल त्रिलोकचन्द इन्दौरवालोंकी धर्मशाला है। मान्धातासे सिद्धवरकूट तक नावों द्वारा नर्मदा-कावेरी संगमको पारकर पहुँचना होता है। इन दोनों नदियोंके बीचमें ओंकारेश्वर पहाड़ी है, जिसके ऊपर ओंकारेश्वर मन्दिर और कालभैरवका मन्दिर बना हुआ है। नावमें जाते हुए यह मन्दिर और पहाड़ी पड़ती है। नाव द्वारा लगभग एक मील जाना पड़ता है। क्षेत्रकी ओरसे नाव भाड़ा निश्चित है। नावसे क्षेत्रके घाटपर उतरते हैं। यदि क्षेत्रके दर्शन करके तत्काल वापस जाना हो तो नाव वापसी करनी चाहिए। नाववाला घाटपर रुका रहता है। आवश्यक सूचनाएँ मान्धाताकी जैन धर्मशालाके व्यवस्थासे ज्ञात कर लेना उपयोगी रहता है।

घाटपर उतरकर पक्की सीढ़ियाँ मिलती हैं। यहाँसे मार्ग क्षेत्र तक जाता है। क्षेत्रपर पहुँचकर विशाल द्वार मिलता है। मन्दिर, धर्मशालाएँ और कार्यालय एक स्थानपर हैं। इनके चारों ओर अहाता है। प्रवेश-द्वारके निकट ही क्षेत्रका कार्यालय बना हुआ है। सामने ही ऊँचाई-पर मन्दिर बने हुए हैं। वहाँ पहुँचनेके लिए मार्बलकी सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। मध्यमें मार्बलका खुला चबूतरा है जिसके तीन ओर भव्य जिनालय हैं। सभी जिनालय शिखरबन्द हैं। उनकी नभस्पर्शी उन्नत श्वेत धवल शिखर-पंक्ति बड़ी मनोज्ञ प्रतीत होती है। मन्दिरोंके निकट सामने ही उद्धत नर्मदा और प्रशान्तक कावेरी बहती है, मन्दिरोंके तीन ओर सघन जंगल हैं। सिद्धि-प्राप्त महामुनियोंकी तपःपूत साधना यहाँके वातावरणमें आज भी व्याप्त है। यहाँ आकर मानवका बोझिल मन सहज शान्ति, निराकुल आनन्द और दिव्य सपनोंसे भर उठता है।

यहाँके सभी मन्दिरोंपर क्रम संख्या पड़ी हुई है। अतः दर्शनोंमें कोई असुविधा नहीं होती। मन्दिरोंका विवरण इस प्रकार है—

मन्दिर नं. १—यहाँ मूलनायक भगवान् नेमिनाथकी प्रतिमा श्वेत पाषाणकी १ फुट ७ इंच उन्नत है और पद्मासन मुद्रामें आसीन है। प्रतिष्ठा संवत् १९५१ में हुई। यहाँ वेदीपर धातुकी दो प्रतिमाएँ भी हैं—महावीर स्वामी और चन्द्रप्रभ स्वामीकी। प्रत्येककी अवगाहना १ फुट ३ इंच है।

मन्दिर नं. २—इसमें भगवान् शान्तिनाथकी ३ फुट २ इंच उत्तुंग श्वेतवर्ण प्रतिमा पद्मासनमें विराजमान है। प्रतिष्ठा संवत् २४६३ (वीर सं.) है। इसके पार्श्वमें कृष्ण वर्ण पार्श्वनाथ और श्वेत वर्ण महावीरकी पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। ४ धातु-प्रतिमाएँ भी हैं।

इस मन्दिरमें बायीं ओर बरामदेमें दो दीवार-वेदियाँ हैं।

छतरी—इस मन्दिरके निकट एक छतरी है। इसमें १० कामदेव तथा २ चक्रवर्ती मुनियोंके चरण-चिह्न बने हुए हैं तथा १ चरण-चिह्न अन्य मुनिका है।

मन्दिर नं. ३—इस अवसर्पिणी कालके प्रथम सिद्धिप्राप्त मुनिराज बाहुबली स्वामीकी ८ फुट ऊँची मकरानेकी एक भव्य प्रतिमा कायोत्सर्गासनसे ध्यानमुद्रामें खड़ी हुई है। इसकी प्रतिष्ठा वीर संवत् २४९१ में हुई।

मन्दिर नं. ४—बड़े मन्दिरके बाहर बरामदेमें यह मन्दिर है। इसमें भगवान् महावीरकी एक खड्गासन मूर्ति विराजमान है, जिसकी प्रतिष्ठा संवत् १९५१ में भट्टारक महेन्द्रकीर्ति द्वारा हुई। यह ४ फुट ऊँची है। यह मूँगिया वर्णकी है। इस वेदीपर २ पाषाण प्रतिमाएँ और हैं।

मन्दिर नं. ५—यह यहाँका बड़ा मन्दिर कहलाता है। इसमें मूलनायक प्रतिमा भगवान् सम्भवनाथकी है। यह ३ फुट १ इंच अवगाहनाकी है। पद्मासन मुद्रामें ध्यानावस्थित है। इसका वर्ण श्वेत है। यह वि. संवत् १९५१ में प्रतिष्ठित हुई है। इसके दोनों पार्श्वोंमें चन्द्रप्रभ और सम्भवनाथ तीर्थंकरोंकी श्वेतवर्णकी प्रतिमाएँ पद्मासन मुद्रामें अवस्थित हैं। इनके अतिरिक्त समवसरणमें २७ धातुकी और ३ पाषाणकी प्रतिमाएँ हैं।

बायीं ओर वेदीमें वि. सं. १९५१ की प्रतिष्ठित चन्द्रप्रभकी श्वेत पाषाणकी पद्मासन मूर्ति विराजमान है। अवगाहना १ फुट ८ इंच है। इनके अतिरिक्त सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, सुपार्श्वनाथकी कृष्ण वर्ण पद्मासन और बाहुबलीकी श्वेत वर्ण खड्गासन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इसी बरामदेमें क्षेत्रपाल एक आलेमें विराजमान हैं।

दायीं ओर गन्धकुटीमें पार्श्वनाथ भगवान्‌की एक धातु प्रतिमा है, जिसकी अवगाहना १ फुट २ इंच है। यह भी वि. संवत् १९५१ मे प्रतिष्ठित हुई है।

इसके आगे बढ़नेपर एक वेदीमें इसी कालकी श्वेत पाषाणकी सम्भवनाथ भगवान्‌की प्रतिमा है। यह १ फुट १० इंच ऊँची है। इसके अतिरिक्त इस वेदीपर ५ पाषाण प्रतिमाएँ विराजमान हैं, जिनमें ३ कृष्ण वर्णकी ओर १ श्वेत वर्णकी है। इनमें पार्श्वनाथकी १ प्रतिमा वि. संवत् १५४८ की है।

ऊपर छतपर भी एक वेदी है। इसमें भगवान् आदिनाथकी कृष्ण पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी चरण-चौकीपर नागरी लिपिमें निम्नलिखित लेख उत्कीर्ण है। इसकी भाषा अत्यन्त अशुद्ध है—

"संवत्.......११ ऐकन ऐकनपे वैसाष मासे शुक्ल पक्षे तिथौ ९ गुरुवासरे मूलसंघे गणे बलात्कार श्री कुन्दकुन्दचारचारीय आमनाय तत् उपदेसात् श्री हेमचन्द्र असारीय नग्र सीदपुर.... हूबड़ ग्याति लगुसा साषा भवेरज गोत्र साहाजि दयचन्दजी भारीया सुरीबाई बीजा दलीच वषप नीटाकमीनी।"

यह प्रतिमा लिपि और भाषाकी दृष्टिसे १८वीं-१९वीं शताब्दीकी प्रतीत होती है।

इसके अतिरिक्त चार श्वेत वर्णकी तीर्थंकर प्रतिमाएँ इस वेदीपर विराजमान हैं। ये सभी पद्मासन हैं।

इस मन्दिरके प्रवेशद्वारके ललाट बिम्बपर अर्हन्त भगवान्की पद्मासन मूर्ति उत्कीर्ण है। दूसरे द्वारपर भी एक पद्मासन अर्हन्त मूर्ति बनी हुई है। यह एक शिलाफलकपर उत्कीर्ण है। ऊपरके भागमें यक्ष-यक्षी और पुष्पमाल लिये हुए देव-देवियाँ बने हुए हैं।

मन्दिर नं. ६—ऊपरवाले मन्दिरके बगलमें ही यह मन्दिर बना हुआ है। इसमें संवत् १९५१ में प्रतिष्ठित भगवान् अजितनाथकी श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी अवगाहना १ फुट ६ इंच है। इसी कालकी चन्द्रप्रभ स्वामीकी दो पाषाण प्रतिमाएँ इसी वेदीपर विराजमान हैं। ये ९ इंच ऊँची हैं।

मन्दिर नं. ७—पूर्ववाले मन्दिरके पृष्ठ भागमें एक वेदीमें कृष्ण पाषाणकी भगवान् महावीर-की पद्मासन प्रतिमा है। इसका माप २ फुट ७ इंच है। पादपीठपर कोई लेख नहीं है। प्रतिमा शास्त्रीय दृष्टिसे सौम्य और समचतुरस्र नहीं है। सम्भवतः यह संवत् १९५१ में ही प्रतिष्ठित हुई है।

इसके दोनों पार्श्वोंमें आदिनाथ और चन्द्रप्रभ भगवान्की कृष्ण वर्णकी पद्मासन प्रतिमाएँ हैं।

इस मन्दिरके बाहर बरामदेमें दीवालपर यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं। यक्ष-दम्पति ललितासनसे बैठा हुआ है। यक्षके दोनों हाथोंमें चक्र है। यक्षी चतुर्भुजी है। दायें ऊपरी हाथमें कुठार है तथा नीचेका दायाँ हाथ वरद मुद्रामें है। ऊपरका बायाँ हाथ खण्डित है तथा नीचेके हाथमें कलश है। इस यक्ष-दम्पतिके ऊपर गहरी सफेदी पोती हुई है। यक्ष-यक्षीके उपकरण स्पष्ट नहीं हैं, केवल अनुमान द्वारा लिखे गये हैं।

मन्दिर नं. ८—यह गुमटी या मन्दरिया है। इसमें देशी पाषाणकी भगवान् आदिनाथकी १ फुट २ इंच ऊँची प्रतिमा खड्गासन मुद्रामें विराजमान है। प्रतिमापर कोई लेख और लांछन नही है।

इस मन्दिरके चबूतरेपर किसी मन्दिरके तोरणका भाग रखा हुआ है। यह ३ फुट ६ इंच ऊँचा और ४ फुट ४ इंच चौड़ा है। शीर्षपर अर्हन्त प्रतिमा पद्मासन मुद्रामें विराजमान है। उनके दोनों पार्श्वमें माला लिये हुए देव खड़े हैं। उनके अधोभागमें चमरवाहक खड़े हैं। नीचे देवियोंकी पाँत है। एक कोष्ठक मध्यमें खाली है। उसके ऊपर हाथ जोड़े भक्त खड़े हैं। कोष्ठकके दोनों ओर गज खड़े हैं। कोष्ठकके नीचे खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमा है। उसकी एक बाँह खण्डित है। इस फलकके दोनों सिरोंपर स्तम्भ बने हुए है, जिनमें शृंखला युक्त घण्टे लटक रहे हैं। इस फलक-को भी चूना-सफेदीसे पोत दिया गया है। अतः इन मूर्तियोंके निर्माण कालका कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

मन्दिर नं. ९—इसमें कृष्ण पाषाणकी भगवान् पार्श्वनाथकी प्रतिमा विराजमान है। यह २ फुट ११ इंच उत्तुंग है एवं पद्मासन मुद्रामें है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९५१ में हुई। धातुकी खड्गासन मुद्रामें एक सिद्ध प्रतिमा भी वेदीपर विराजमान है।

मन्दिर नं. १०—इसमें धातुकी शान्तिनाथ प्रतिमा मूलनायक है। इसके अतिरिक्त १० कामकुमारों और २ चक्रियोंकी भी धातु-प्रतिमाएँ विराजमान हैं। मूर्तियोंपर उनके नाम भी अंकित हैं तथा दीवारपर भी दर्शनार्थियोंके अवलोकनार्थ नाम लिख दिये हैं।

पुरातत्त्व

इस क्षेत्रपर पुरातत्त्व सम्बन्धी सामग्रीका सर्वथा अभाव नहीं है। यहाँ कई प्राचीन मूर्तियाँ देखनेमें आयी हैं। इनके ऊपर सफेदी-चूना पुता हुआ होनेके कारण इनका समय निर्धारण तो नहीं किया जा सकता किन्तु ओंकारेश्वर पहाड़ीपर जो भग्नावशेष पड़े हुए हैं, उन्हें ध्यानपूर्वक देखनेपर ज्ञात होता है कि यह सम्पूर्ण अवशेष जिन मन्दिर मूर्तियोंके हैं वे अनुमानतः ११वीं-१२वीं शताब्दीके लगते हैं। क्षेत्रपर स्थित ये मूर्तियाँ उन्हीं अवशेषोंके भाग हैं। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि इन मूर्तियोंका काल भी वही हो।

पुरातत्त्वावशेषोंकी उक्त शृंखला कावेरीको पार करके क्षेत्रके पृष्ठ भागमें दूर तक चली गयी है। कुछ भग्न मन्दिर और मूर्तियाँ क्षेत्रसे लगभग ३ फर्लांग दूर कावेरीको तटवर्ती पहाड़ीके ऊपर एक स्थानपर पड़े हुए है। यहाँ एक जीर्ण मन्दिर खड़ा हुआ है। एक छोटा मन्दिर अर्धभग्न हो चुका है। मन्दिरका एक गर्भगृह भी अपनी अन्तिम साँसें गिन रहा है। इन मन्दिरोंके स्तम्भ तथा अन्य सामग्री भी यहाँ-वहाँ बिखरी हुई पड़ी हैं।

इस कलावशेषमें एक बहुमूल्य मूर्ति सुरक्षित खड़ी हुई है। यह मूर्ति ५ फुट ऊँची और २ फुट ९ इंच चौड़ी शिलामें बनी है। मूर्ति किसी राजपुरुषकी प्रतीत होती है। उसके सिरपर मुकुट, गलेमे रत्नहार, भुजाओंमे केयूर, कटिपर रत्नमेखला आदि रत्नाभरण है। उसके शीर्षपर तीर्थंकर प्रतिमा पद्मासन मुद्रामें है। दोनों पार्श्वोंमें चमरवाहक है। एक ओर अश्वपर एक पुरुष आरूढ़ है। उसके साथ सेवक-सेविका भी हैं।

कुछ लोग इसे चक्रवर्तीकी मूर्ति बताते हैं। किन्तु इसमें चक्रवर्तीका परिचय देनेवाले नवनिधि या चौदह रत्न अथवा चक्र कुछ भी नही है। केवल अलंकारोंके कारण इसे चक्रवर्तीकी मूर्ति स्वीकार करना तर्कसंगत नही लगता। इसमे कोई सन्देह नही है कि यह मूर्ति अद्भुत है और परमार-शिल्पकी प्रतिनिधि रचना है।

धर्मशालाएँ

क्षेत्रपर १४ धर्मशालाएँ हैं। इनमें बिजली और नलकी व्यवस्था है। यात्रियोंको ठहरनेके लिए ६२ कमरे हैं। यहाँ मुनि और त्यागियोके लिए पृथक् आश्रम है।

मेला

क्षेत्रपर वार्षिक मेला फागुन सुदी १३ से १५ तक होता है।

व्यवस्था

क्षेत्रकी व्यवस्था एक प्रबन्धकारिणी समिति द्वारा होती है, जिसका चुनाव मेलेके अवसरपर होता है।

मार्ग

इन्दौरसे मान्धाता (ओंकारेश्वर) ७७ कि. मी. है। खण्डवासे भी इतना ही है। ओंकारेश्वर रोड (अजमेर-खण्डवाके मध्य रेलवे स्टेशन) से मान्धाता ११ कि. मी. है। वहाँसे नाव द्वारा सिद्धवरकूट पहुँचते हैं। बड़वाह (पश्चिमी रेलवेके इन्दौर खण्डवा स्टेशनोंके मध्य एक स्टेशन) से फेअरवैदर रोड द्वारा सिद्धवरकूट १९ कि. मी. है। इस मार्गसे नर्मदा नदी नहीं

पड़ती। किन्तु यह मार्ग अभी पक्का नहीं हो पाया। मान्धातामें क्षेत्रकी धर्मशाला है और बड़वाहमें पोरवाड़ जैन धर्मशाला है। ये दोनों धर्मशालाएँ मोटर स्टैण्डके निकट ही हैं।

मुक्तागिरिसे आनेवालोंको खण्डवा होकर, मक्सी और बनेड़ियासे आनेवालोंको इन्दौरसे और पावागिरिसे आनेवाले यात्रियोंको सनावद और मान्धाता होकर यहाँ आना चाहिए।

निकटवर्ती प्रदेशमें जैन साहित्यकार

यह क्षेत्र खण्डवा तहसीलमें है। खण्डवा यहाँसे केवल ७७ कि. मी. है।

खण्डवासे बुरहानपुर जाते हुए मार्गमें आसेरगढ़का किला मिलता है। मुगल कालमें यहाँ ब्रह्म जिनदास नामक बड़े प्रभावक भट्टारक हुए हैं। ये बड़े विद्वान् और मन्त्रवेत्ता सिद्ध पुरुष थे। इनके सम्बन्धमें अनेक किंवदन्तियाँ जनतामें अब तक प्रचलित हैं। कहते हैं, बादशाहने उनकी ख्याति सुनकर परीक्षा लेनेकी इच्छासे उन्हें बुलाया। उनके बैठनेके लिए एक चबूतरा बनवाया गया और उसके नीचे एक बकरी बँधवा दी। जब भट्टारकजी यहाँ पधारे और उनसे चबूतरेपर बैठनेका अनुरोध किया गया तो उन्होंने बैठनेसे इनकार कर दिया। बादशाहने इसका कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि चबूतरेके नीचे तीन प्राणी कष्ट पा रहे हैं। बादशाहको इससे बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने चबूतरा तुड़वाया तो देखा कि एक बकरी और उसके दो बच्चे वहाँ मौजूद हैं। वास्तवमें बकरी वहाँ ब्याह गयी थी। बादशाहने भट्टारकजीका बड़ा सम्मान किया।

इस किलेके निकट जंगलमें इन भट्टारकजीकी छत्री और चरणचिह्न अब तक विद्यमान हैं।

ब्रह्म जिनदास भट्टारकके सम्बन्धमें कुछ ग्रन्थों—जैसे जम्बू-स्वामी चरित, हरिवंश-पुराण आदिकी ग्रन्थ प्रशस्तियोंसे कुछ जानकारी प्राप्त होती है। इनके अनुसार इनके पिताका नाम कर्णसिंह था। ये पाटनमें रहते थे और हूमड़वंशी थे। माताका नाम शोभा था। परिवार अत्यन्त सम्पन्न था। जिनदास भट्टारक सकलकीर्तिके लघु भ्राता थे जो मूलसंघ सरस्वती गच्छके प्रसिद्ध विद्वान् थे। जिनदासके ऊपर अपने भाईके व्यक्तित्वका बड़ा प्रभाव था। ये आजीवन ब्रह्मचारी रहे और अपने भाईके पास जाकर उनके शिष्य हो गये। आपके जीवनका अधिकांश समय आत्म-साधना, पठन-पाठन और ग्रन्थ-निर्माणमें व्यतीत होता था। आप प्राकृत, संस्कृत, गुजराती, राजस्थानी और हिन्दी भाषाके वेत्ता थे। आपने विहार करके अनेक स्थानोंपर मन्दिरों और मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करायी। उपदेशों द्वारा अनेक भव्य लोगोंका कल्याण किया। आपने अनेक ग्रन्थोंका निर्माण किया, जिनमें अधिकांश राजस्थानी भाषाका रासा साहित्य है, कुछ ग्रन्थ कथा और पूजाके हैं। उनके रासा ग्रन्थोंसे उनके कई शिष्योंका पता चलता है जैसे मनोहर, मल्लिदास, गुणदास, नेमिदास, शान्तिदास, गुणकीर्ति। ब्रह्म जिनदासका काल क्या था, यह तो ठीक ज्ञात नहीं हो पाया किन्तु भट्टारक सकलकीर्तिने बड़ाली नगरके चातुर्माससें अमीझराके पार्श्वनाथ मन्दिरमें ब्रह्म जिनदासके अनुरोधसे संवत् १४८१ में मूलाचार प्रदीपकी रचना की थी। कविने 'राम-रास' की रचना संवत् १५०८ में की थी। गंज-बासौदाके बूढ़ेपुरा मन्दिरमें एक मूर्ति-लेख है, जिसकी अनुसार संवत् १५१६ माघ सुदी ५ को मूलसंघके श्री सकलकीर्ति देवके शिष्य जिनदासके उपदेशसे ब्र. मल्लिदास जोगड़ा पोरवाड़ नाऊ भार्या नेई भ्राताने बड़ी प्रसन्नतासे प्रतिष्ठा करायी। इसी प्रकार कविने 'हरिवंश-रास' की रचना संवत् १५२० में की थी। इस प्रकार संवत् १४८१ से संवत् १५२० तक तो वे निश्चित रूपसे थे। किन्तु उनका निश्चित काल क्या है, यह अभी अन्वेषणीय है। इनकी भाषा गुजराती मिश्रित हिन्दी है, इनके ग्रन्थ खण्डवा, बुरहानपुर, शाहपुर, अंमाशा, मलकापुर आदि स्थानोंके शास्त्र-भण्डारोंमें मिलते हैं।

बुरहानपुरमें क्षुल्लक धर्मदास हुए हैं। इनके भी तीन-चार अध्यात्म ग्रन्थ मिलते हैं।

हिन्दू तीर्थ

सिद्धवरकूट क्षेत्रके निकट ओंकारेश्वर क्षेत्रमें ओंकारेश्वरका तिमंजिला मन्दिर है। विष्णुपुरीमें अमलेश्वर ज्योतिर्लिंग है। कावेरीके उद्गम स्थानपर चौबीसी अवतार और पशुपतिनाथका मन्दिर है। यहाँसे लगभग १० मील दूर सीतावाटिका नामक स्थान है। कहा जाता है कि यहाँ महर्षि वाल्मीकिका आश्रम था और सीताजीने परित्यक्त दशामें यहीं निवास किया था।

बनैड़िया

मार्ग और अवस्थिति

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बनैड़िया इन्दौर जिलेमें स्थित है। यह इन्दौर स्टेशनसे सड़क मार्गसे ४५ कि. मी. तथा पश्चिम रेलवेके पाविमा स्टेशनसे २९ कि. मी. है। इसका पोस्ट आफिस बनैड़िया है। इन्दौरसे वाया देवालपुर बनैड़िया तक बसें चलती हैं।

क्षेत्र-दर्शन

यहाँ एक सरोवरके तटपर एक परकोटेके अन्दर दो जैन मन्दिर हैं, जिनमें एक प्राचीन है। दूसरा नवीन है जिसकी प्रतिष्ठा वि. सं. १९९४ में हुई है। प्राचीन मन्दिरमें मूलनायक प्रतिमा भगवान् अजितनाथकी है। यह पद्मासन श्वेतवर्ण है। इसकी अवगाहना ३ फुट ८ इंच है। इस प्रतिमाकी प्रतिष्ठा शाह जीवराज पापड़ीवालने वि. सं. १५४८ वैशाख सुदी ३ को करायी थी। इस प्रतिमाके अतिरिक्त पापड़ीवाल द्वारा प्रतिष्ठित अन्य कई प्रतिमाएँ भी यहाँ मिलती हैं। कुछ ऐसी भी प्रतिमाएँ यहाँ विराजमान हैं, जिनकी प्रतिष्ठा पापड़ीवालकी माता वरयणा देवी तथा उनकी लघु पत्नी द्वारा करायी गयी थी। यहाँ वि. सं. १५४८ में प्रतिष्ठित ४३ प्रतिमाएँ विद्यमान है। इनमें आदिनाथ ३ फुट ३ इंच, अजितनाथ २ फुट ११ इंच, चन्द्रप्रभ २ फुट ५ इंच, आदिनाथ २ फुट ९ इंच और अजितनाथ २ फुट ८ इंचकी प्रतिमाएँ अधिक मनोज्ञ और प्रभावक हैं। ये सभी प्रतिमाएँ श्वेत पाषाणकी हैं और पद्मासन हैं।

इसके पश्चात् वि. स. १६७३, १७८४ और इनके पश्चात्‌कालकी अनेक प्रतिमाएँ हैं।

इस मन्दिरमें चार वेदियाँ हैं। मुख्य वेदी भगवान् अजितनाथ की है। उनके समवसरणमें ७ पाषाण मूर्तियाँ हैं। बायी ओरकी वेदीमें मूलनायक पार्श्वनाथ हैं। उसमें २१ मूर्तियाँ विराजमान हैं। दायीं ओरकी वेदीमें मूलनायक शान्तिनाथ हैं तथा साथमें ३४ मूर्तियाँ और विराजमान हैं। चौकमें वेदीपर भगवान् आदिनाथकी प्रतिमा है। चबूतरेपर एक गन्धकुटीमें भगवान् पार्श्वनाथकी प्रतिमा है। यही दूसरा मन्दिर कहलाता है। इस मन्दिरका शिखर अत्यन्त कलापूर्ण और दर्शनीय है।

अतिशय

यहाँकी मूलनायक प्रतिमाके अतिशयोंके सम्बन्धमें अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। यहाँपर केवल जैन ही नहीं हजारों जैनेतर लोग भी मनौती मनाने आते हैं। यहाँके वार्षिक मेलेके अवसर-

पर तो आसपासके हजारों कृषक नर-नारी आते हैं और बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ पैसे आदि चढ़ाते हैं।

इस मन्दिरके साथ चमत्कारकी एक विचित्र किंवदन्ती जुड़ी हुई है। कहते हैं कोई यति इस मन्दिरको गुजरातके किसी स्थानसे अपने मन्त्रबलके द्वारा आकाशमार्गसे ले जा रहे थे। किसी कारणवश उन्हें बनेड़ियामें उतरना पड़ा। तबसे यह मन्दिर यहींपर स्थित है। इस मन्दिर-की नींव नहीं है। यह उड़ा हुआ मन्दिर कहलाता है।

धर्मशाला

यहाँ परकोटेके अन्दर मन्दिरके निकट ही एक धर्मशाला है। कुल ३० कमरे हैं। धर्मशालामें बिजली है। जलके लिए कुएँ हैं, तालाब हैं। क्षेत्र तक बस जाती है। यहाँ कोई दुकान नहीं है।

मेला

क्षेत्रका वार्षिक मेला चैत्र सुदी १३ से १५ तक होता है। यहाँ उल्लेख योग्य एक धार्मिक मेला वि. सं. २४९४ में वेदी प्रतिष्ठाके अवसरपर हुआ था। इसमें हजारों व्यक्तियोंने भाग लिया था।

व्यवस्था

क्षेत्रकी व्यवस्था इस शताब्दीके पूर्वसे ही मारवाड़ी गोठ, शक्कर बाजार, इन्दौरके आधीन चली आ रही है। पहले मालवामें प्रति जैन घर पीछे आठ आने इस क्षेत्रके लिए लाग लगी हुई थी। प्रत्येक स्थानकी पचायत अपने यहाँसे रुपया उगाकर मारवाड़ी गोठको भेज दिया करती थी। इससे क्षेत्र आर्थिक दृष्टिसे निश्चिन्त था। किन्तु अब यह परम्परा प्रायः समाप्त हो चुकी है।

●

परिशिष्ट–१

मध्यप्रदेशके दिगम्बर जैन तीर्थोंका संक्षिप्त परिचय और उनका यात्रा-मार्ग

मध्यप्रदेशके दिगम्बर जैन तीर्थोंका संक्षिप्त परिचय और उनका यात्रा-मार्ग

सिहोनिया

आगरा-ग्वालियरके मध्य स्थित मुरैनासे यह स्थान ३० कि. मी. है। मुरैनासे सिहोनिया गाँव तक पक्की सड़क है और कई बसें आती हैं। बस गाँवके बाहर थाने तक आती है। वहाँसे श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र सिहोनिया कच्चे मार्गसे लगभग १ कि. मी. है। क्षेत्रपर ठहरनेके लिए धर्मशाला है, किन्तु अभी वहाँ सुरक्षाकी कोई व्यवस्था नहीं है। क्षेत्रपर शान्तिनाथ भगवान्‌की १६ फुट ऊँची मूर्ति तथा भूगर्भसे निकली हुई मूर्तियाँ हैं। क्षेत्रके मन्त्री कार्यालयका पता इस प्रकार है—मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र सिहोनिया, द्वारा श्रमण वस्त्रालय, झण्डा चौक, मुरैना (म. प्र.)

ग्वालियर

मुरैनासे रेल-मार्ग द्वारा ग्वालियर ३९ कि. मी. है। यह शहर तीन भागोंमें विभाजित है। ग्वालियर, लश्कर और मुरार। लश्करमें ९ जैन धर्मशालाएँ हैं। ग्वालियरमें २ और मुरारमें १। इनमें नयी सड़क (लश्कर) पर महावीर धर्मशाला अधिक सुविधाजनक है। ग्वालियरमें ४ मन्दिर और ४ चैत्यालय हैं। लश्करमें २० मन्दिर और ३ चैत्यालय हैं तथा मुरारमें २ मन्दिर और २ चैत्यालय हैं। ग्वालियरके किलेमें पहाड़में उकेरी हुई मूर्तियाँ दर्शनीय हैं। मूर्तियोंकी संख्या अनुमानतः १५०० के लगभग है। ये मूर्तियाँ किलेमें ५ समूहोंमें हैं, उरवाही समूह, दक्षिण-पश्चिम समूह, दक्षिण-पूर्व समूह, उत्तर-पश्चिम समूह और उत्तर-पूर्व समूह। इनमें सबसे विशाल मूर्ति खड्गासनमें उरवाही द्वीप समूहमें भगवान् आदिनाथकी ५७ फुट और पद्मासनमें एक पत्थरकी बावड़ीमें सुपार्श्वनाथको ३५ फुट ऊँची प्रतिमा हैं। ये मूर्तियाँ १५वीं शताब्दीमें तोमरवंशीय नरेश डूंगरसिंह, कीर्तिसिंह और मानसिंहके राज्यकालमें बनी थीं और बननेके ६० वर्ष बाद बाबरने इन्हें खण्डित किया।

इन मूर्तियोंके अतिरिक्त किलेमें दर्शनीय स्थान ये हैं—गूजरी महल जहाँ संग्रहालय है। सास-बहूके दो मन्दिर, तेलीका मन्दिर। वर्षमें ग्वालियरमें कई जन मेले होते हैं—२६ जनवरीको रथयात्रा, असौज कृष्णा २, ४ और अमावस्याको जलेब।

सोनागिरि

ग्वालियरसे ६१ कि. मी. दूर सोनागिरि रेलवे स्टेशन है। वहाँसे क्षेत्र ५ कि. मी. है। क्षेत्र तक पक्की सड़क है। स्टेशनपर ताँगे मिलते हैं। ग्वालियरसे सोनागिरि तक सीधी पक्की सड़क है तथा सीधी बस-सेवा भी है।

यह सिद्धक्षेत्र है। यहाँसे नंगकुमार, अनंगकुमार आदि पाँच करोड़ मुनि मुक्त हुए हैं। आठवें तीर्थंकर भगवान् चन्द्रप्रभका समवसरण भी यहाँपर आया था। इस पर्वतपर अनेक मुनियोंको केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई है।

पर्वतके ऊपर ७७ मन्दिर, १३ छतरियाँ हैं तथा तलहटीमें १७ मन्दिर और ५ छतरियाँ हैं। यहाँका मन्दिर नं. ५७ मुख्य मन्दिर है। इसमें भगवान् चन्द्रप्रभकी साढ़े नौ फुट ऊँची मूलनायक प्रतिमा है। मूर्ति अत्यन्त भव्य है। मन्दिर विशाल है। इस मन्दिरके निकट एक छतरीमें नंग-अनंग आदि मुनियोंके चरण-चिह्न बने हुए हैं।

इस क्षेत्रपर दो स्थान विशेष आकर्षणके केन्द्र हैं—नारियल कुण्ड और बाजनी शिला। मन्दिर नं. ६९ के बाद एक मार्ग इन दोनों स्थानोंके लिए गया है। नारियल कुण्ड एक छोटा-सा कुण्ड है जो नारियलके आकारका है। लोगोंका विश्वास है कि यदि कोई निस्सन्तान व्यक्ति इस कुण्डमें बादाम डाले और बादाम जलके ऊपर तैरने लगे तो उसे अवश्य सन्तान प्राप्त होगी। इसके पास एक पहाड़ी शिला है जिसे बजानेसे मधुर ध्वनि निकलती है।

क्षेत्रपर कुल १५ धर्मशालाएँ हैं। पहाड़के मन्दिरोंकी व्यवस्था तो एक कमेटीके अन्तर्गत है, किन्तु धर्मशालाओंकी और तलहटीके मन्दिरोंकी व्यवस्था विभिन्न कमेटियोंके आधीन है। किन्तु कोई यात्री किसी भी धर्मशालामें ठहर सकता है। क्षेत्रपर वार्षिक मेला चैत्र कृष्णा १ से ५ तक भरता है।

क्षेत्रका पता इस प्रकार है—मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन सोनागिरि सिद्धक्षेत्र संरक्षिणी कमेटी, सोनागिरि, जिला दतिया (म. प्र.)

पनिहार-बरई

सोनागिरिसे ग्वालियर लौटकर वहाँसे पनिहार बरई जा सकते हैं। ग्वालियरसे शिवपुरी रेल-मार्गपर ग्वालियरसे २४ कि. मी. दूर पनिहार स्टेशन है। स्टेशनसे पनिहार गाँव लगभग २ कि. मी. है। सड़क-मार्गसे ग्वालियर-शिवपुरी रोड़पर २२ कि. मी. दूर सड़कसे दायीं ओर बरई गाँव है और बायीं ओर पनिहार गाँव है। पनिहार गाँवके बाहर ही प्राचीन जिनालय और भोंयरा है। सड़कसे यह लगभग १ कि. मी. है। रास्ता कच्चा है। सड़कसे लगभग ३ कि. मी. दूर बरई गाँवके बाहर एक टीलेपर भग्नप्राय जैन मन्दिर है। वहाँ बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ हैं। यहाँ ठहरनेकी सुविधा नहीं है।

शिवपुरी

पनिहारसे शिवपुरी रेल और सड़क-मार्गसे ९६ कि. मी. है। यहाँ सरकारी संग्रहालय है। इसमें अधिक भाग जैन सामग्रीका है। नगरमें कई जिनालय है।

खनियाधाना

शिवपुरीसे सड़क-मार्गसे यह स्थान १०२ कि. मी. है। यहाँ दो प्राचीन मन्दिर और १ मानस्तम्भ हैं। यहाँकी क्षेत्र-कमेटीका पता है—मन्त्री, चौरासी दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, खनियाधाना (शिवपुरी म. प्र.)।

गोलाकोट

खनियाधानासे गूडर होते हुए ११ कि. मी. है। मार्ग कच्चा है। बाँधके किनारे पहाड़ीपर यह क्षेत्र है। एक चहारदीवारीके अन्दर एक मन्दिर है उसमें ११९ मूर्तियाँ हैं।

पचराई

खनियाधानासे यह १८ कि. मी. है, जिसमें १४ कि. मी. पक्की सड़क है और ४ कि. मी. कच्चा मार्ग है। यहाँ एक परकोटेके अन्दर २८ जैन मन्दिर हैं। भगवान् शीतलनाथ मन्दिर यहाँका मुख्य मन्दिर है। शीतलनाथ स्वामीकी मूर्ति १२ फुट ऊँची है। यहाँकी मूर्तियोंके ऊपर हीरेकी पालिश की हुई है।

बजरंगढ़

खनियाधानासे गुना तक पक्की सड़क है। गुना आगरा-बम्बई मार्गपर अथवा इन्दौर-ग्वालियर मार्गपर पड़ता है। गुनामें दो भव्य मन्दिर हैं। गुनासे गुना-आरौन मार्गपर ७ कि. मी. दूर बजरंगढ़ है। गुनासे बस और ताँगों द्वारा यहाँ पहुँच सकते हैं। सड़कके निकट ही यह क्षेत्र है। मुख्य मन्दिरके अतिरिक्त एक मन्दिर बाजारमें है। दोनों मन्दिरोंके साथ धर्मशालाएँ हैं। गुना नगरमें भी जैन धर्मशाला है। यह अधिक सुविधाजनक है।

यह अतिशय क्षेत्र है। इस मन्दिरका निर्माण सेठ पाड़ाशाहने वि. सं. १२३६ में कराया था। इसमें भगवान् शान्तिनाथकी साढ़े चौदह फुट ऊँची मूलनायक प्रतिमा है। पता : मन्त्री, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, बजरंगढ़ (गुना म. प्र.)।

थूबौन

गुनासे अशोकनगर ४५ कि. मी. पक्की सड़क है। अशोकनगरसे चन्देरी जानेवाली सड़क पर थूबौन ५८ कि. मी. है जिसमें ५० कि. मी. पक्की सड़क है और फिर पिपरौलसे ८ कि. मी. कच्ची सड़क है। यहाँ कुल २५ मन्दिर हैं। मन्दिर नं. १५ की मूलनायक भगवान् ऋषभदेवकी प्रतिमा २५ फुट अवगाहनावाली कायोत्सर्ग मुद्रामें विराजमान है। इसी प्रतिमाके अतिशयोंके कारण यह क्षेत्र अतिशय-क्षेत्र कहलाता है। क्षेत्रपर धर्मशाला है। धर्मशालामें बिजलीकी व्यवस्था है। जलके लिए कुएँ हैं, थोड़ी दूरपर नदी बहती है। पता : मन्त्री, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, थूबौन, पो. चन्देरी, जिला गुना (म. प्र.)।

चन्देरी

थूबौनसे चन्देरी २२ कि. मी. है जिसमें ८ कि. मी. पिपरौल ग्राम तक कच्ची सड़क है और पिपरौलसे ३४ कि. मी. पक्की सड़क है। अशोकनगरसे चन्देरी तक बसें चलती हैं। चन्देरीके बस स्टैण्डसे लगभग एक कि. मी. दूर बड़ा जैन मन्दिर है। इसी मन्दिरमें विख्यात चौबीसी विराजमान है। प्रत्येक तीर्थंकरकी प्रतिमा एक अलग गर्भ-गृहमें विराजमान है। जिस तीर्थंकरका जो वर्ण शास्त्रोंमें बताया गया है, वही वर्ण उनकी प्रतिमाका है। सभी मूर्तियाँ अत्यन्त मनोहर हैं। इस मन्दिरके बराबरमें एक धर्मशाला त्यागी व्रतियोंके लिए है। दूसरी धर्मशाला यात्रियोंके लिए है। इसमें कन्या पाठशाला चल रही है।

नगरमें इस मन्दिरके अतिरिक्त एक मन्दिर और एक चैत्यालय और हैं। पता—मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन चौबीसी बड़ा मन्दिर, पो.—चन्देरी (गुना) म. प्र.।

चन्देरीके आसपास अनेक स्थान हैं, जहाँ अनेक प्राचीन मूर्तियाँ और मन्दिर हैं, जैसे खन्दार (चन्देरीके निकट पहाड़पर), गुरीलागिरि (चन्देरीसे ७ कि. मी. मार्ग द्वारा), आमन-चार (चन्देरीसे मुंगावली रोडपर २९ कि. मी., जिसमें २६ कि. मी. पक्की सड़क और ३ कि. मी.

कच्ची सड़क है) भियादांत, चन्देरीसे १४ कि. मी., (११ कि. मी. पक्की सड़क और ३ कि. मी. कच्चा मार्ग), बिठला (चन्देरीसे १९ कि. मी.), भामौन (चन्देरीसे १६ कि. मी.), आदि।

पपौरा

चन्देरीसे ललितपुर (३४ कि. मी.) होते हुए वहाँसे टीकमगढ़ जाना चाहिए। टीकमगढ़से बण्डा-सागर रोडपर पपौरा ५ कि. मी. है। सड़कसे क्षेत्र दो फर्लांग दूर है। यहाँ कुल १०७ मन्दिर और ४ मानस्तम्भ हैं। मन्दिर सभी शिखरबन्द हैं। अतः यह मन्दिरोंकी नगरी लगती है। यह एक अतिशय-क्षेत्र है। मन्दिर नं. ४२ की मूलनायक प्रतिमा चन्द्रप्रभ भगवान्‌की है। वह बड़ी अतिशय सम्पन्न है। अनेक स्त्री-पुरुष यहाँपर मनौती मनाने आते हैं और इसी प्रतिमाके कारण यह क्षेत्र अतिशय-क्षेत्र कहलाता है।

इस क्षेत्रपर दर्शनीय स्थानोंमें एक तो चौबीसी मन्दिर है। इस अद्भुत रचनामें चारों दिशाओंमें छह-छह मन्दिरोंकी पंक्तियाँ हैं। दूसरा है बाहुबली स्वामी-मन्दिर। इसमें मध्यमें बाहुबली स्वामीकी मूर्ति है। उसके चारों ओर गोलाकारमें २४ तीर्थंकरोंकी गुमटियाँ बनी हुई हैं। क्षेत्रपर वार्षिक मेला कार्तिक शुक्ला १३ से १५ तक भरता है।

क्षेत्रपर धर्मशाला, नल, बिजली, फ्लशके सण्डास आदिकी सुविधा सन्तोषजनक है। यहाँ श्री दिगम्बर जैन वीर विद्यालय भी चल रहा है। यहाँका पता है—

मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, पपौरा (टीकमगढ़) म. प्र.।

अहार

पपौरासे टीकमगढ़ आकर वहाँसे टीकमगढ़-बल्देवगढ़ रोडपर १९ कि. मी. पर अहार-तिगोलकी पुलिया है। वहाँसे ५ कि. मी. दूर मदन-सागरसे आगे यह क्षेत्र है। बसें क्षेत्र तक जाती हैं। पक्की सड़क है। यहाँ पाड़ाशाह द्वारा निर्मित भगवान् शान्तिनाथका मन्दिर है। भगवान् शान्तिनाथकी मूर्ति अत्यन्त अतिशय-सम्पन्न है तथा लगभग १७ फुटकी है। यहाँ हालमें ९२ दीवार-वेदियाँ बनी हुई हैं। इनमें तीन चौबीसी और २० विदेह क्षेत्रस्थ तीर्थंकरोंकी कुल ९२ मूर्तियाँ विराजमान हैं। इनके अतिरिक्त गर्भगृहके बाहर ४ वेदियाँ और बनी हैं।

मुख्य मन्दिरके अतिरिक्त यहाँ ६ मन्दिर और १०वीं शताब्दीके दो मानस्तम्भ और हैं तथा यहाँसे लगभग दो फर्लांग कच्चे रास्तेसे जाकर पहाड़ीपर ६ लघु मन्दिर बने हुए हैं। क्षेत्रपर एक संग्रहालय बना हुआ है। इसमें अहार तथा निकटवर्ती स्थानोंसे भूगर्भ आदिसे प्राप्त प्रतिमाएँ सुरक्षित हैं। इनमें अनेक मूर्तियाँ ११वीं-१२वीं शताब्दीकी हैं।

क्षेत्रपर धर्मशाला, नल, कुआँ, बिजलीकी समुचित व्यवस्था है। यहाँ भी शान्तिनाथ दि. जैन विद्यालय, महिलाश्रम और व्रती नामक संस्थाएँ चल रही हैं। यहाँका पता है—मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, अहार (जि. टीकमगढ़) म. प्र.।

बन्धा

अहारसे टीकमगढ़ लौटकर वहाँसे झाँसी जानेवाली सड़कपर ४० कि. मी. दूर बम्हौरी बराना स्थान पड़ता है। बम्हौरी बरानासे कच्चे मार्ग द्वारा यह १० कि. मी. है।

खजुराहो

बन्धासे टीकमगढ़, वहाँसे छतरपुर होकर खजुराहो जा सकते हैं। नियमित बस-सेवा है। खजुराहो अत्यन्त उत्कृष्ट शिल्प और भव्य मन्दिरोंके कारण विश्व-भरमें प्रसिद्ध है। यह एक प्रसिद्ध पर्यटक केन्द्र है। यहाँ अनेक हिन्दू और जैन मन्दिर हैं। जैन मन्दिरोंका समूह बस स्टेण्डसे लगभग २ कि. मी. है। यहींपर एक अहातेमें ३२ मन्दिर और धर्मशालाएँ हैं। मन्दिरोंमें पार्श्वनाथ मन्दिर, आदिनाथ मन्दिर और शान्तिनाथ मन्दिर उच्चकोटिकी कलाके कारण दर्शनीय हैं। इनकी भीतरी और बाह्य भित्तियों, शिखरों और द्वार-शाखाओंपर तीर्थंकर मूर्तियोंके अतिरिक्त शासन देव-देवियों, सुर-सुन्दरियों, गन्धर्व-मिथुनों और व्यालोंकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इन मन्दिरों तथा अन्य भी मन्दिरोंमें एक हजार वर्ष प्राचीन अनेक मूर्तियाँ हैं। शान्तिनाथ मन्दिरमें मूलनायक भगवान् शान्तिनाथ की १६ फीट ऊँची मनोज्ञ मूर्ति है। पार्श्वनाथ मन्दिरके पास खुले मैदानमें प्राचीन जैन-मूर्तियोंका संग्रहालय है।

गाँवके दक्षिणमें, उन मन्दिरोंसे लगभग १ कि. मी. दूर घण्टई मन्दिर है। यह प्राचीन जैन मन्दिरका अवशेष मात्र है। किन्तु इसके खम्भों और छतपर उत्कीर्ण कला दर्शनीय है।

इसके पश्चात् यहाँके हिन्दू मन्दिर और संग्रहालय दर्शनीय हैं। ये बस स्टेण्डके निकट हैं। यों तो सभी मन्दिर दर्शनीय हैं किन्तु इनमें कन्दारिया महादेव, लक्ष्मण, चतुर्भुज, दूलादेव आदि मन्दिर विशेष द्रष्टव्य हैं।

जैन यात्रियोंको जैन धर्मशालामें ठहरनेमें विशेष सुविधा रहती है। जलके लिए कुएँ हैं। क्षेत्रपर बिजलीकी व्यवस्था है। यहाँका पता इस प्रकार है—मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र खजुराहो प्रबन्धक समिति, खजुराहो (जिला—छतरपुर) म. प्र.।

द्रोणगिरि

खजुराहोसे छतरपुर होकर मलहरा जाना चाहिए। यह छतरपुर-सागर रोडपर है। खजुराहोसे मलहरा १०४ कि. मी. है। मलहरासे द्रोणगिरि ७ कि. मी. है। सभी जगह नियमित बस-सेवा है। गाँवका नाम सेंधपा है, द्रोणगिरि तो पर्वतका नाम है। सेंधपाके बस-स्टेण्डसे जैन धर्मशाला १०० गज दूर गाँवके भीतर है। वहीं गाँवका मन्दिर और गुरुदत्त जैन संस्कृत विद्यालय है। धर्मशालामें बिजली और कुएँकी सुविधा है।

पर्वतके ऊपर कुल २८ जिनालय बने हुए हैं। इनमें तिगोड़ावालोंका मन्दिर सबसे प्राचीन है और बड़ा मन्दिर कहलाता है। अन्तिम मन्दिरके निकट एक गुफा है। कहा जाता है कि मुनि गुरुदत्तने यहींसे निर्वाण प्राप्त किया था। इसीलिए यह क्षेत्र सिद्ध-क्षेत्र कहलाता है।

यहाँका पता है—मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन सिद्ध क्षेत्र द्रोणगिरि, सेंधपा (जिला छतरपुर) म. प्र.। यहाँका वार्षिक मेला फाल्गुन कृष्णा १ से ५ तक होता है।

रेशन्दीगिरि

द्रोणगिरिसे मलहरा वापस लौटकर वहाँसे दलपतपुर (६४ कि. मी.) तथा वहाँसे दलपतपुर-बकस्वाहा रोडसे क्षेत्र रेशन्दीगिरि (१२ कि. मी.) जाना चाहिए। पक्की सड़क है। नियमित बस-सेवा है। क्षेत्र सड़कके किनारे ही है।

यह सिद्ध-क्षेत्र है। यहाँसे वरदत्त आदि ५ मुनिराज मुक्त हुए हैं। यहाँ पर्वतपर ३६ मन्दिर हैं तथा तलहटीमें १५ मन्दिर हैं। पर्वतपर मन्दिर क्रमांक ११ बड़ा मन्दिर कहलाता है। यह

मन्दिर भूगर्भसे उत्खननके फलस्वरूप १०० वर्ष पूर्व निकला था। इसमें ११वीं शताब्दीकी मूर्तियाँ और शिलालेख हैं। तलहटीके मन्दिरोंमें जल-मन्दिर बहुत सुन्दर लगता है। यहाँ ठहरनेके लिए धर्मशाला है। बिजली और कुएँकी सुविधा है। क्षेत्रका वार्षिक मेला और रथोत्सव अगहन सुदी ११ से १५ तक होता है। क्षेत्रका पता इस प्रकार है—मन्त्री, श्री सिद्धक्षेत्र संरक्षिणी सभा, रेशन्दीगिरि, पो. नैनागिर (छतरपुर) म प्र.।

यहाँसे यदि अजयगढ़के पुरातत्त्वको देखने जाना चाहें तो रेशन्दीगिरिसे बिजावर होकर जा सकते हैं।

पजनारी

रेशन्दीगिरिसे बसवाहा होकर वहाँसे बण्डा जाना चाहिए। बण्डासे पश्चिममें बण्डा-बाँदरी रोडपर ८ कि. मी. दूर बाकरई नदीके तटपर पहाड़ीपर यह क्षेत्र है। नदी-तटपर जैन धर्मशाला है तथा पहाड़ीपर एक विशाल अहातेमें मन्दिर है। मूलनायक भगवान् शान्तिनाथकी मूर्ति पद्मासन मुद्रामें ४ फुट अवगाहनाकी है। यह बड़ी अतिशय-सम्पन्न है। इसके कारण यह अतिशय-क्षेत्र कहलाता है। पता है—मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, पजनारी, पो. बण्डा। बेलई (सागर) म. प्र.।

बीना-बारहा

पजनारीसे बण्डा वापस आकर वहाँसे सागर ४५ कि. मी. है। सागरसे देवरीकलाँ ६६ कि. मी. है। पक्की सड़क है। देवरीकलाँसे बीनाबारहा लगभग ६ कि. मी. है। मार्ग अभी तक कच्चा है। सड़क बन रही है। सड़क तैयार होनेपर कच्चा मार्ग केवल १ कि. मी. रह जायेगा।

यह अतिशय क्षेत्र है। भगवान् शान्तिनाथकी १५ फुट ऊँची खड्गासन प्रतिमा अत्यन्त अतिशय-सम्पन्न है। भगवान् महावीरकी एक पद्मासन प्रतिमा १३ फुट ऊँची है और दीवारमें ईंट-गारेसे बनी हुई है। जली हुई नारियलकी जटाओंको घीमें मिलाकर उससे इसका लेप किया जाता है, जलसे अभिषेक नहीं किया जाता। क्षेत्रपर कुल ५ मन्दिर हैं। एक स्थानपर प्राचीन मूर्तियोंका संग्रह किया गया है। क्षेत्रपर धर्मशाला और बिजली है, कुआँ भी है।

यहाँपर वार्षिक मेला २५ दिगम्बरसे १ जनवरी तक होता है। यहाँका पता इस प्रकार है—मन्त्री, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, बीना-बारहा, पो. देवरीकलाँ (सागर) म. प्र.।

पटनागंज

देवरीकलाँसे रहली ३२ कि. मी. है। पक्की सड़क है। नियमित बस-सेवा है। रहली सुवर्णभद्र नदीके इस तटपर अवस्थित है तथा नदीके दूसरे तटपर पटनागंज क्षेत्र है। ठहरनेके लिए रहलीमें भी धर्मशाला है तथा पटनागंजमें भी धर्मशाला है। बाजार आदिकी सुविधा रहलीमें हैं। क्षेत्रपर बिजलीकी व्यवस्था है। कुएँ भी हैं।

इस क्षेत्रपर कुल २५ मन्दिर हैं। इनमें मन्दिर क्रमांक २२ बड़ा मन्दिर है तथा उसमें विराजमान साढ़े तेरह फीट ऊँची भगवान् महावीरकी प्रतिमा 'बड़े देव' कहलाती है। यह प्रतिमा सातिशय है और इसीके कारण यह अतिशय क्षेत्र कहलाता है। मन्दिर नं. २३ में पार्श्वनाथ स्वामीकी दो अद्भुत प्रतिमाएँ हैं। इनके सिरपर सहस्र फणावलीका वितान है।

यहाँका पता इस भाँति है—मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, पटनागंज, पो. रहली (जिला सागर) म. प्र.।

कुण्डलपुर

रहलीसे गढ़ाकोटा होते हुए दमोह जाना चाहिए। यह लगभग ७० कि. मी. है। दमोहसे ३५ कि. मी. पटेरा है और वहाँसे ३ कि. मी. कुण्डलपुर है। सड़क पक्की है।

यह अतिशय क्षेत्र है। कुछ समयसे इसे अन्तिम अननुबद्ध केवली श्रीधरकी निर्वाण-भूमि होनेके कारण सिद्धक्षेत्र बताया जा रहा है। यहाँ पहाड़ी और तलहटीपर मन्दिरोंकी कुल संख्या ६१ है तथा एक मानस्तम्भ है। पहाड़ीपर मन्दिर नं. ११ मुख्य मन्दिर कहलाता है। यह बड़े बाबाका मन्दिर कहा जाता है। मूलनायक भगवान् आदिनाथकी प्रतिमा साढ़े बारह फुट ऊँची और पद्मासनस्थ है। इस प्रतिमाके अतिशयोंके सम्बन्धमें बहुत किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कहते हैं महाराज छत्रसालने मनौती मनायी थी और वह पूरी हो गयी। फलतः उन्होंने बड़े बाबाके पूजनके लिए बरतन और भारी घण्टा चढ़ाये और वर्धमान सरोवरपर पक्के घाट बनवाये।

क्षेत्रपर धर्मशालाएँ हैं, बिजली है तथा जलके लिए विशाल सरोवर, बावड़ी और कुएँ हैं। यहाँका वार्षिक मेला माघ सुदी ११ से १५ तक होता है। महावीर-जयन्ती और दीपावलीपर भी मेले भरते हैं। यहाँका पता इस भाँति है—मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, कुण्डलपुर (दमोह) म. प्र.।

लखनादौन

दमोह आकर वहाँसे जबलपुर जाना चाहिए। जबलपुरसे सिवनी जानेवाले मार्गपर ८३ कि. मी. लखनादौन है। नगरमें श्री दिगम्बर जैन महावीर मन्दिर है। इसमें भगवान् महावीरकी भूगर्भसे प्राप्त पद्मासन प्रतिमा सातिशय और अत्यन्त मनोज्ञ है। इस प्रतिमाके कारण ही इस मन्दिरको विशेष ख्याति प्राप्त हुई है।

यहाँ जैन धर्मशाला है, जिसमें नल, बिजली आदिकी सुविधा है। पता है—मन्त्री, श्री महावीर दिगम्बर जैन मन्दिर, लखनादौन (सिवनी) म. प्र.।

जबलपुर

लखनादौनसे वापस जबलपुर लौटकर आवें। जबलपुर जैनोंका प्रमुख केन्द्र है। यहाँ ४६ दिगम्बर जैन मन्दिर हैं। लार्डगंज, हनुमानताल आदिमें जैन धर्मशालाएँ हैं। हनुमानतालके बड़े मन्दिरमें अत्यन्त कलापूर्ण और मनोज्ञ मूर्तियाँ हैं।

शहरसे पश्चिम दिशामें ९ कि. मी. दूर त्रिपुरी (वर्तमान नाम तेवर) है। इसके निकट मार्बलकी चट्टानें और नर्मदाका विश्वविख्यात धुआँधार प्रपात है। यहींपर नर्मदाके दोनों ओर संगमरमरकी वे चट्टानें हैं जिन्हें बन्दर-कूदनी कहते हैं। यात्री नाव द्वारा इन स्थानोंको देखने जाते हैं। वहाँसे लौटते हुए मार्गमें चौंसठ योगिनियोंका मन्दिर मिलता है। यह भी दर्शनीय है। इन दर्शनीय स्थानोंके लिए बस और टेम्पो चलते हैं।

मढ़िया

जबलपुर-नागपुर रोडपर जबलपुर नगरसे ६ कि. मी. दूर मेडिकल कालेजके सामने 'पिसनहारीकी मढ़िया' नामक अतिशय-क्षेत्र है। सड़कके किनारे धर्मशाला है तथा महावीर

जिनालय और उसके सामने मानस्तम्भ है। पहाड़ीपर छोटे-बड़े सब मिलाकर कुल ३७ मन्दिर हैं।

यहाँ धर्मशालामें जल और प्रकाशकी समुचित व्यवस्था है। यहाँका पता है—मन्त्री, पिसनहारी मढ़िया ट्रस्ट, नागपुर रोड, जबलपुर (म. प्र.)।

कोनी

जबलपुरसे दमोह जानेवाले राजमार्गपर ३२ कि. मी. पाटन नगर है तथा पाटनसे ४ कि. मी. बासन ग्राम होकर वहाँसे कोनी तक २ कि मी. पक्की सड़क है। यह एक अतिशय-क्षेत्र है। यहाँ कुल ९ मन्दिर हैं। इनमें गर्भ-मन्दिर अतिशयोंका केन्द्र है। इस मन्दिरमें सहस्रकूट चैत्यालय है। यहाँके सहस्रकूट चैत्यालय और नन्दीश्वर जिनालय दर्शनीय हैं। क्षेत्रपर धर्मशाला है। बिजली और कुएँकी व्यवस्था है। यहाँका वार्षिक मेला जनवरीमें होता है। इसका पता इस प्रकार है—मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र कोनी, पो. पाटन (जबलपुर) म. प्र.।

पनागर

पाटनसे पुनः जबलपुर लौटकर वहाँसे पनागर जाना चाहिए। यह जबलपुरसे उत्तरकी ओर १६ कि. मी. है। पक्की सड़क है। जबलपुर-सागर रेलमार्गपर देवरीसे यह दो कि. मी. है। नगरमे १७ मन्दिर हैं। रेलवे लाइनके किनारे ११ मन्दिर हैं—८ एक अहातेके अन्दर और ३ एक अहातेके बाहर। इनमें पंचायती मन्दिरमें भगवान् ऋषभदेवकी कायोत्सर्गासनमें सवा आठ फीट ऊँची मूर्ति है जो बड़ी सातिशय है। इस मूर्तिके अतिशयोंके कारण ही यह अतिशय-क्षेत्र कहलाता है।

यहाँ दो धर्मशालाएँ हैं जिनमें नल, बिजलीकी व्यवस्था है। माँगनेपर बरतन और बिछावन भी मिल सकते हैं। यहाँका वार्षिक मेला अगहन शुक्ला पूर्णिमासीको होता है। यहाँका पता इस प्रकार है—मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन प्रबन्धकारिणी सभा, पनागर (जबलपुर) म. प्र।

बहोरीबन्द

पनागरसे सीहोरा नगर ११ कि. मी. दूर है तथा सीहोरा–सलेहा रोडपर बहोरीबन्द सीहोरासे २४ कि. मी. पक्की सड़क है। यह मन्दिर बाजारमें है। भगवान् शान्तिनाथकी पौने चौदह फीट ऊँची खड्गासन मूर्ति बहुत वर्षोंसे खुलेमें पड़ी हुई थी। लोग अविनय करते थे। अतः नया मन्दिर बनाकर इस मन्दिरमें मूर्तिको विराजमान किया जा रहा है। मूर्तिके चमत्कारोंकी अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। इसी मूर्तिके कारण यह अतिशय-क्षेत्र कहलाता है। खुदाईमें जमीनसे १६ मूर्तियाँ निकली हैं। यहाँ धर्मशाला है। धर्मशालामे कुआँ और बिजली है। यहाँ दिसम्बरमें तीन दिनके लिए मेला भरता है। यहाँका पोस्ट-आफिस सीहोरा और जिला जबलपुर है।

ग्यारसपुर

बहुरीबन्दसे कटनी होते हुए सागर आवें। सागरसे विदिशा जानेवाली सड़कपर ग्यारसपुर नामक गाँव है। यहाँ नगरके दक्षिणकी ओर पहाड़ीकी चोटीपर मालादेवी मन्दिर है तथा वहाँसे उतर कर पहाड़ीके पीछे मैदानमें वज्रमठ नामक मन्दिर है। ये दोनों जैन मन्दिर हैं तथा कलाके उच्चकोटिके केन्द्र हैं। नगरमें कोई जैन धर्मशाला नहीं है। नगरमें एक चैत्यालय है। इसका पता है—मन्त्री, दिगम्बर जैन समाज, पो.—ग्यारसपुर (जिला विदिशा) म. प्र.।

विदिशा

ग्यारसपुरसे विदिशा ३८ कि. मी. है। पक्की सड़क है। श्रीमन्त सेठ लक्ष्मीचन्द्रजीकी जैन धर्मशाला सुविधाजनक है। इसीमें ऊपरके भागमें जिनालय है। इसमें इधर-उधरसे प्राप्त अनेक जैन मूर्तियाँ सुरक्षित हैं। इनमें ९वीं-१०वीं शताब्दी तककी मूर्तियाँ हैं। यहाँ सरकारी संग्रहालय भी है। इसमें दुर्जनपुरासे उत्खननमें प्राप्त और गुप्त सम्राट् रामगुप्त द्वारा प्रतिष्ठित चन्द्रप्रभ तीर्थंकरकी मूर्ति विराजमान है। इसके अतिरिक्त उदयगिरि आदि स्थानोंसे प्राप्त मध्यकालीन जैन मूर्तियाँ भी हैं।

उदयगिरि

विदिशासे ६ कि. मी. दूर उदयगिरिकी प्रसिद्ध गुफाएँ हैं। पक्की सड़क है। ताँगे या स्कूटर द्वारा जा सकते हैं। गुफाओंमें गुफा नं. २० और १ जैन गुफाएँ हैं। गुफा नं. २० में गुप्त संवत् १०६ का एक अभिलेख तथा गुप्तकालीन मूर्तियाँ उपलब्ध हैं। गुफा नं. १ में श्री सुपार्श्वनाथकी एक प्राचीन मूर्ति विराजमान है। इन दो गुफाओंके अतिरिक्त शेष गुफाएँ शैव और वैष्णव धर्मसे सम्बन्धित हैं। इनमें कई गुफाएँ गुप्त-कालकी हैं। साँची यहाँसे ८ कि. मी. है।

पठारी

उदयगिरिसे विदिशा लौटकर वहाँसे मण्डी-बामोरा ट्रेनसे ६८ कि. मी. जायें। वहाँसे पठारी १२ कि. मी. है। यहाँ गडरमल मन्दिर और वनमन्दिर नामके दो प्राचीन जैन मन्दिर हैं जो संभवतः ८-९वीं शताब्दीके होंगे। यहाँ अनेक प्राचीन जैन मूर्तियाँ तथा मन्दिरोंके ध्वंसावशेष पड़े हुए हैं।

मक्सी पार्श्वनाथ

पठारीसे बामोरा-मण्डी लौटकर वहाँसे रेल या बस द्वारा १२१ कि. मी. भोपाल जाना चाहिए तथा वहाँसे रेल द्वारा या बस द्वारा (लगभग १४२ कि. मी.) मक्सी जाना चाहिए। क्षेत्रपर एक परकोटेमें दो मन्दिर और धर्मशालाएँ हैं। बड़ा मन्दिर पार्श्वनाथ भगवान्‌का है। इस मन्दिरमें दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायवाले अपनी-अपनी मान्यतानुसार दर्शन-पूजन करते हैं। दर्शनोंके लिए समयका कोई प्रतिबन्ध नहीं है। पूजनका समय दिगम्बर सम्प्रदायके लिए प्रातः ६ से ९ तक निश्चित है। मूर्ति अत्यन्त अतिशय सम्पन्न है। इस मन्दिरकी परिक्रमामें ४२ देहरियाँ (छोटे देवालय) बने हुए हैं। छोटा मन्दिर सुपार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर है। इस मन्दिरके पृष्ठ भागमें यात्रियोंके ठहरनेकी व्यवस्था है। इसके अहातेसे लगा हुआ विश्रान्ति-भवनका अहाता है। इसके ऊपरी भागमें मालवा प्रान्तिक दिगम्बर जैन गुरुकुल चल रहा है तथा नीचेका भाग यात्रियोंके लिए है। नल, बिजली आदिकी समुचित व्यवस्था है। क्षेत्र बस्तीके बीचमें है और वहाँ तक सड़क है। क्षेत्रका पता है—मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, मक्सी (जि. उज्जैन) म. प्र.। फाल्गुनी अष्टाह्निकामें क्षेत्रपर वार्षिक मेला होता है।

उज्जैन

मक्सीसे उज्जैन रेल मार्ग द्वारा ४१ कि. मी. है। पक्की सड़क है। यहाँके श्मसानमें रुद्रने भगवान् महावीरपर उपसर्ग किया था। यहींसे निमित्त-ज्ञान द्वारा बारह वर्षके भावी दुष्कालका

ज्ञान होनेपर अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु अपने विशाल संघके साथ दक्षिण भारतकी ओर चले गये थे। उनके साथ मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त भी मुनि-दीक्षा लेकर चले गये। जो मुनि यहाँ रह गये, वे परिस्थितियोंसे बाध्य होकर शिथिलाचारी बन गये और वस्त्र पहनने लगे। धीरे-धीरे इसका अभ्यास होनेपर दुष्काल बीतनेपर भी वे शिथिलाचारका परित्याग नहीं कर सके और अपने शिथिलाचारको शास्त्र सम्मत सिद्ध करनेके लिए उन्हें श्वेताम्बर सम्प्रदाय नामसे एक पृथक् सम्प्रदाय और नये शास्त्रोंका सृजन करना पड़ा। मुनि अभयघोष अन्तकृत् केवली थे, वे यहाँसे मुक्त हुए। अतः यह निर्वाण-क्षेत्र भी है। यहाँ जयसिंहपुरा दिगम्बर जैन मन्दिरके पृष्ठ कक्षमें जैन संग्रहालय है, जिसमें लगभग ५०० प्राचीन कलावशेष और मूर्तियाँ सुरक्षित हैं। नमकमण्डीमें दिगम्बर जैन धर्मशाला है। उज्जैन मध्यप्रदेशका प्रमुख व्यवसाय केन्द्र है और जिला मुख्यालयका केन्द्र है।

गन्धर्वपुरी

उज्जैनसे देवास और सोनकच्छ होते हुए गन्धर्वपुरी ७८ कि. मी. है। पक्की सड़क है। सोनकच्छ देवास-भोपाल मार्ग पर है। वहाँसे गन्धर्वपुरी ९ कि. मी. है। बस और टेम्पो जाते हैं। नगरमें एक जैन मन्दिर है। यहाँ एक सरकारी संग्रहालय है। उसमें अनेक जैन मूर्तियाँ हैं। नगरके भीतर और बाहर जैन पुरातत्त्व बिखरा पड़ा है। कई मकानोंमें जैन मूर्तियाँ लगी हुई हैं। यहाँ कोई जैन धर्मशाला नही है। जैनोंके कुछ घर हैं। यहाँ पोस्ट-आफिस है तथा इसका जिला देवास है।

इन्दौर

गन्धर्वपुरीसे सोनकच्छ लौटकर वहाँसे इन्दौर जाना चाहिए। यहाँ जँवरीबागमें सर सेठ हुकमचन्दजीकी नशिया है। वहीं विश्रान्ति-भवन (जैन धर्मशाला) है। वहीं जिनालय, जैन महाविद्यालय एवं छात्रावास है। यह स्थान मध्यप्रदेशका प्रमुख व्यापारिक केन्द्र है तथा जैनोंका गढ़ है। यहाँ अनेक जैन संस्थाएँ हैं। यहाँके प्रमुख जिनालयोंमें काँच-मन्दिर, तुकोगंज, मल्हारगंज और दीतवारियाके मन्दिर हैं।

इन्दौरसे चाहें तो मोरटक्का होते हुए सिद्धवरकूट, फिर पावागिरि, बड़वानी, तालनपुर होते हुए बनेड़ियाको जा सकते हैं। अथवा पहले बड़वानी, तालनपुर, पावागिरि, सिद्धवरकूट और बनेड़ियाकी यात्रा की जा सकती है।

चूलगिरि

इन्दौरसे सड़क मार्गसे बड़वानी १५० कि. मी. है। बड़वानीसे चूलगिरि बावनगजाजी क्षेत्र ६ कि. मी. है। पक्की सड़क है। बस धर्मशाला तक जाती है। चूलगिरि सिद्ध-क्षेत्र है। यहाँसे इन्द्रजीत और कुम्भकर्ण मुक्त हुए हैं। पर्वतपर भारतकी सबसे विशाल प्रतिमा भगवान् आदिनाथकी ८४ फुट ऊँची विराजमान है। पहाड़पर कुल ११ मन्दिर है तथा तलहटीमें मन्दिरोंकी कुल संख्या १९ है। पहाड़की चोटीपर चूलगिरि मन्दिर है। यहीं निर्वाण-स्थान माना जाता है। यहाँ ४ धर्मशालाएँ हैं, जिनमें नल, कुआँ, बिजलीकी व्यवस्था है। बड़वानीमें विशाल नेमिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, श्री हरसुखराय दि. जैन छात्रावास और जैन धर्मशाला है। क्षेत्रका पता है—मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन सिद्ध क्षेत्र, चूलगिरि, जिला खरगोन म. प्र.।

तालनपुर

बड़वानीसे कुक्षि २२ कि. मी. है तथा वहाँसे तालनपुर ५ कि. मी. है। पक्की सड़क है। नियमित बस सेवा है। यह एक अतिशय-क्षेत्र कहलाता है। यहाँ एक खेतमें १३ मूर्तियाँ भूगर्भसे प्राप्त हुई थीं। परस्पर विवाद होनेपर ८ छोटी मूर्तियाँ श्वेताम्बरोंने ले लीं और ५ बड़ी मूर्तियाँ दिगम्बर समाजने लीं। दोनोंके पास-पास मन्दिर हैं। दिगम्बर जैन धर्मशाला भी है। जल और प्रकाशकी समुचित व्यवस्था है। इस क्षेत्रका पता है—मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन अतिशय-क्षेत्र तालनपुर, पो. कुक्षि (जिला धार) म. प्र.।

पावागिरि

बड़वानीसे बस द्वारा जुलवानिया होकर ऊन उतरना चाहिए। सड़कके किनारे ही क्षेत्रकी विशाल धर्मशाला और जिनालय है। यहाँसे दो फर्लांग दूर ग्वालेश्वर या शान्तिनाथ मन्दिर है। यही निर्वाण-स्थान है जहाँसे स्वर्णभद्र आदि चार मुनि मुक्त हुए हैं। इसलिए यह निर्वाण-क्षेत्र कहलाता है। यहाँ तीन मन्दिर हैं। ग्वालेश्वर मन्दिरसे लौटते समय पंच पहाड़ी नामक एक टीला है जहाँ पाँच लघु मन्दिर हैं। ऊन नगरमें ११वीं-१२वीं शताब्दीके मन्दिर और मूर्तियाँ मिलती हैं, जिनमें चौबारा डेरा नं. १ और नं. २ उल्लेख योग्य हैं। यहाँ धर्मशाला बहुत बड़ी है। नल, बिजली, विद्युत् आदिकी सभी सुविधाएँ उपलब्ध हैं। यहाँका पता है—मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन पावागिरि सिद्धक्षेत्र, पो. ऊन, जि.—खरगौन (पश्चिम निमाड़) म. प्र.।

सिद्धवरकूट

ऊनसे खरगौन होते हुए सनावाद और वहाँसे मान्धाता जाना चाहिए। ऊनसे मान्धाता ८८ कि. मी. है। पक्की सड़क है। मान्धातामें क्षेत्रकी धर्मशाला है। वहाँके मैनेजरसे नाव भाड़े आदिकी पूरी जानकारी ले लेनी चाहिए। धर्मशालासे चलकर नर्मदा नदीपर आकर नाव द्वारा सिद्धवरकूट क्षेत्र जाना चाहिए। यहाँ नर्मदा और कावेरी नदियोंका संगम हुआ है। कावेरीकी एक धारा अलग हो गयी है और दोनों नदियोंके मध्य पर्वत आ गया है। इसीपर वैष्णवोंका ओंकारेश्वर तीर्थ है। बड़वाहासे सिद्धवरकूट क्षेत्र तक फेअर वेदर रोड है। १९ कि. मी. मार्ग है। इस मार्गपर नर्मदा पड़ती है। सिद्धवरकूट सिद्ध-क्षेत्र है। यहाँसे २ चक्रवर्ती, १० कामदेव और साढ़े तीन करोड़ मुनि मुक्त हुए हैं। यहाँ एक ही स्थानपर १० जिनालय हैं। क्षेत्रपर १४ धर्मशालाएँ हैं। नल, बिजली, बरतन आदिकी सम्पूर्ण सुविधा सुलभ है। यहाँका मेला फागुन सुदी १३ से १५ तक होता है। यहाँका पता—मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र सिद्धवरकूट, पो. मान्धाता (ओंकारेश्वर), जिला पूर्व निमाड़ म. प्र.।

बनेड़िया

सिद्धवरकूटसे लौटकर मान्धाता आना चाहिए। यहाँसे इन्दौर ७७ कि. मी. है। पक्की सड़क है। नियमित बस सेवा है। इन्दौरसे देवालपुर होकर बनेड़िया क्षेत्र ४५ कि. मी. है। बसें जाती हैं। यह एक अतिशय-क्षेत्र है। यहाँका वार्षिक मेला चैत सुदी १३ से १५ तक होता है। यहाँका पता है—मन्त्री, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, बनेड़िया, (जिला इन्दौर) म. प्र.।

●

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

हर्षचरित—महाकवि बाण
स्कन्दपुराण
जैन सन्देश
श्रमण
मध्यभारत स्टेट गजैटियर
जैन साहित्य और इतिहास—नाथूराम प्रेमी
बृहत्कथाकोष—आचार्य हरिषेण
हिन्दू भारतका उत्कर्ष—चिन्तामणि विनायक वैद्य
जैन साहित्य संशोधक (खण्ड १)
जैन सिद्धान्त भास्कर
ब्रह्मपुराण
उत्तरपुराण—आचार्य गुणभद्र
स्थविरावली
शिवपुराण
शंकर विजय—माधवाचार्य
जैन हितैषी
महाभारत
बृहत्संहिता
हेमकोश—हेमचन्द्राचार्य
अनर्घराघव—मुरारी
भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति
आवश्यक चूर्णि
निशीथ चूर्णि
वसुदेव हिण्डी
आवश्यक निर्युक्ति
भावसंग्रह—आचार्य देवसेन
हरिवंशपुराण—आचार्य जिनसेन
निर्वाण-भक्ति (संस्कृत) आचार्य पूज्यपाद
क्रियाकलाप—आचार्य प्रभाचन्द्र
तिलोयपण्णत्ती—आचार्य यतिवृषभ
हरिवंशपुराण—महर्षि वेदव्यास
त्रिलोकसार—आचार्य नेमिचन्द्र
निर्वाणकाण्ड (प्राकृत)—आचार्य कुन्दकुन्द
बोधप्राभृत टीका—भट्टारक श्रुतसागर
तीर्थवन्दना (गुजराती)—कवि मेघराज
सर्वतीर्थवन्दना—भट्टारक ज्ञानसागर
तीर्थवन्दना—भट्टारक उदयकीर्ति
तीर्थवन्दना (मराठी)—चिमणा पण्डित
शासन चतुस्त्रिंशिका—यति मदनकीर्ति
तीर्थजयमाला (गुजराती)—भट्टारक जयसागर
तीर्थजयमाला—भट्टारक सुमतिसागर
पद्मपुराण—आचार्य रविषेण
उत्तरपुराण—आचार्य गुणभद्र
जैन शिलालेख संग्रह—भाग १ से ५
विविध तीर्थकल्प—आचार्य जिनप्रभसूरि
तीर्थ-वन्दना (मराठी)—भट्टारक गुणकीर्ति
भारतीय संस्कृतिमें जैनधर्मका योगदान—
डॉ. हीरालाल
पज्जुण्णचरियं—कवि सिद्ध
कुमारपाल प्रबोध—आचार्य सोमप्रभ
कुमारपाल चरित—आचार्य सोमतिलक सूरि
भारतके प्राचीन राजवंश—विश्वेश्वरनाथ रेउ
चौलुक्य कुमारपाल—लक्ष्मीशंकर व्यास
भट्टारक सम्प्रदाय—डॉ. विद्याधर जोहरापुरकर
जसहरचरिउ—महाकवि पुष्पदन्त
करकण्डुचरिउ—मुनि कनकामर
पार्श्वनाथ जयमाला—भट्टारक ब्रह्महर्ष
कल्पसूत्र
मेरुतुंग थेरावली
कालकाचार्य कथा—समयसुन्दरगणि
परिशिष्ट पर्व—आचार्य हेमचन्द्र
सम्मइ जिणचरिउ—महाकवि रइधू

प्राचीन जैन लेख संग्रह—कामताप्रसाद जैन
पुण्णासवकहाकोस—महाकवि रइधू
जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह—परमानन्द शास्त्री
रिट्ठणेमिचरिउ—महाकवि रइधू
अंगुत्तर निकाय—
भगवती आराधना—आचार्य शिवकोटि
आराधनासार
निर्वाणकाण्ड (हिन्दी)—भैया भगवतीदास
बुन्देलखण्डका संक्षिप्त इतिहास—गोरेलाल तिवारी
तीर्थवन्दन संग्रह—डॉ. विद्याधर जोहरापुरकर
खण्डहरोंका वैभव—मुनि कान्तिसागर
खजुराहोकी देव प्रतिमाएँ—डॉ. रामाश्रय अवस्थी
Epigraphia Indica
The classical age—R. C. Majumdar
The struggle for Empire— „
Archeological survey of India Report
Monumental antiquities and inscriptions—Dr. Farhrer
Dowson's Classical Dictionary. 4th ed.
Journal of the Asiatic Society of Bengal
Alberuni's India
Indian Antiquary
Mysore & Coorg from the inscriptions—David Rhys
The Ancient Kingdom of Punnat—Dr. B. A. Saletore, in Indian Culture
Rulers of Punnat, M. G. Pai
Buddhist India—Rhys David
The Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India—Nandalal Day
Me Crindle's Invasion of India—Alexandar
History of Daccan—Dr. Bhandarkar
Journal of Oriental Institute
Ins riptions in C. P. & Berar—Ra. B. Hiralal
The Indore State Gazetteer (Vol. I.)
A Guide to the Central Archeological Museum Gwalior—S. K. Dixit.

चित्र-सूची

१. चेदि जनपद

१. सिहौनिया—भगवान् शान्तिनाथकी १६ फुट उन्नत मूर्ति, भूगर्भसे प्राप्त। पार्श्वोंमें भगवान् कुन्थुनाथ और अरनाथ। समय १०वीं शताब्दी।

२ ग्वालियर—एक पत्थरकी बावड़ी (किले) में एक विशाल तीर्थंकर-मूर्ति।

३. ग्वालियर—किलेमें सास-बहूका अत्यन्त कलापूर्ण बड़ा मन्दिर।

४. ग्वालियर—सरकारी संग्रहालय (गूजरी महल) में एक मध्यकालीन भव्य तीर्थंकर-मूर्ति।

५. सोनागिरि—भगवान् चन्द्रप्रभका विख्यात मन्दिर।

६. सोनागिरि—भगवान् चन्द्रप्रभकी भव्य प्रतिमा।

७. सोनागिरि—मन्दिर नं. ५७ के सामने समवसरण रचनाकी एक झाँकी।

८ सोनागिरि—मनहरदेव (चैतनाथ) के शान्तिनाथ स्वामीकी १४ फुट उत्तुंग खड्गासन मूर्ति।

९. पनिहार—भोंयरेमें अति मनोज्ञ तीर्थंकर-मूर्तियाँ।

१०. बरई—एक उपेक्षित प्राचीन जिनालयका कलापूर्ण प्रवेशद्वार।

११. गोलाकोट—एक मनोज्ञ तीर्थंकर प्रतिमा।

१२. पचराई—जिनालयोंकी मनोहर झाँकी।

१३. बजरंगढ़—क्षेत्रका बाह्य दृश्य।

१४. बजरंगढ़—एक द्वार आकृतिमें चौबीसी। मध्यमें भगवान् नेमिनाथ। समय १२वीं शताब्दी।

१५. थूबौन—मूलनायक भगवान् आदिनाथका मन्दिर (नं. १५)।

१६. थूबौन—पाड़ाशाह द्वारा निर्मित भगवान् शान्तिनाथका मन्दिर (नं. ५)।

१७. थूबौन—भगवान् शान्तिनाथका मन्दिर (नं. २१) तथा सामने ३० फुट ऊँचा मानस्तम्भ।

१८. थूबौन—पुरानी थूबौनके जंगलमें एक भग्न जिनालय।

१९. चन्देरी—बूढ़ी चन्देरीसे प्राप्त भगवान् महावीर-की भव्य मूर्ति।

२०. खन्दार—बाहुबली स्वामीकी एक अद्भुत प्रतिमा, जिसके ऊपर सर्प, छिपकली, चूहे आदि का अंकन करके अविचल ध्यान मुद्रा प्रदर्शित की है।

२१. पपौरा—मुख्य द्वारके ऊपर निर्मित जिनालय जो रथाकार है।

२२. पपौरा—मन्दिरोंकी अद्भुत चौबीसी।

२३. अहार—भगवान् शान्तिनाथका विशाल मन्दिर।

२४. अहार—भगवान् शान्तिनाथकी भव्य प्रतिमा।

२५. खजुराहो—पार्श्वनाथ मन्दिरका बाह्य दृश्य। इसका शिल्प-सौन्दर्य अनुपम है।

२६. खजुराहो—शान्तिनाथ मन्दिरमें भगवान् शान्तिनाथकी विशाल खड्गासन प्रतिमा।

२७. खजुराहो—शान्तिनाथ मन्दिरमें यक्ष-दम्पती।

२८. खजुराहो—नृत्य करती हुई नीलांजना।

२९. खजुराहो—काँटा निकालती हुई एक सुरसुन्दरी-का मोहक रूप।

३०. पन्ना—तीर्थंकर महावीर। समय–छठी शताब्दी।

३१. द्रोणगिरि—निर्वाण-गुफा, जहाँसे मुनिराज गुरुदत्तको निर्वाण हुआ।

३२. द्रोणगिरि—पर्वतपर जिनालयोंका मनोरम दृश्य।

३३. नैनागिरि—जल मन्दिरका मनोरम दृश्य।

३४. नैनागिरि—पर्वतपर अहातेके अन्दर बने हुए जिनालयोंका भव्य दृश्य।

३५. पजनारी—मूलनायक भगवान् शान्तिनाथ। उनके दोनों पार्श्वोंमें भगवान् कुन्थुनाथ और भगवान् अरनाथ।

३६. बीना बारहा—भगवान् आदिनाथकी १३ फुट ऊँची पद्मासन प्रतिमा। यह ईंट-गारेसे निर्मित है।

३७. बीना बारहा—गन्धकुटी मन्दिर। मन्दिरमें पहुँचनेके लिए चारों दिशाओंमें सीढ़ियाँ बनी हुई हैं।

३८. पटनागंज—भगवान् महावीरकी साढ़े तेरह फुट उत्तुंग अतिशयसम्पन्न पद्मासन प्रतिमा। इन्हें 'बड़े देव' भी कहते हैं।

३९-४०. पटनागंज—पार्श्वनाथ तीर्थंकरकी सहस्र-फणावली युक्त दो अद्भुत मूर्तियाँ।

२. सुकोशल जनपद

४१. कुण्डलपुर—भगवान् ऋषभदेवकी साढ़े बारह फुट ऊँची सातिशय पद्मासन प्रतिमा। इसे 'बड़े बाबा' भी कहते हैं

४२. कुण्डलपुर—'बड़े बाबा' के पीठासनपर ऋषभदेवका यक्ष गोमुख।

४३. कुण्डलपुर—'बड़े बाबा'के पीठासनपर ऋषभ-देवकी यक्षी चक्रेश्वरी।

४४. कुण्डलपुर—अन्तिम अननुबद्ध केवली श्रीधर स्वामीके चरण-चिह्न।

४५. कुण्डलपुर—वर्धमानसागर (सरोवर) के तट-पर स्थित जिनालयोंकी भव्य झाँकी।

४६. लखनादौन—भूगर्भसे प्राप्त भगवान् महावीरकी मध्यकालीन मनोज्ञ प्रतिमा।

४७. मढ़िया (जबलपुर)—क्षेत्रका एक विहंगम दृश्य।

४८. कोनी—कलापूर्ण सहस्रकूट जिनालय।

४९. पनागर—भगवान् ऋषभदेवकी सातिशय प्रतिमा।

५०. बहोरीबन्द—शान्तिनाथ भगवान्‌की मूलनायक प्रतिमा। जनतामें यह 'खनुआदेव' के नामसे प्रसिद्ध है।

३. दशार्ण-विदर्भ जनपद

५१. उदयगिरि(विदिशा)—गुप्तकालीन गुहा-मन्दिर।

५२. उदयगिरि—गुफा नं. २० में दीवालपर गुप्त-कालीन अभिलेख।

५३. पठारी—गडरमल मन्दिरका भव्य शिखर।

५४. पठारी—वन-मन्दिरकी भव्य झाँकी।

५५. ग्यारसपुर—मालादेवीके विख्यात मन्दिरका बाह्य दृश्य।

५६. ग्यारसपुर—बज्रमठकी कलापूर्ण शिखर-संयोजना।

५७. ग्यारसपुर—बज्रमठमें एक वेदीपर प्राचीन तीर्थंकर मूर्तियाँ।

४. मालव-अवन्ती जनपद

५८. मक्सी—मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथका अतिशयसम्पन्न प्रतिमा।

५९. उज्जैन—लकड़ीके एक चौकोर फ्रेममें पीतलकी ५४-५४ प्रतिमाएँ चारों दिशामें।

६०. उज्जैन—भूगर्भसे प्राप्त एक फलकमें साधु परमेष्ठीकी प्रतिमाएँ हाथोंमें कमण्डलु-पीछी और माला है।

६१. गन्धर्वपुरी—भगवान् ऋषभदेवकी १२ फुट ऊँची मूर्ति।

६२. चूलगिरि—विश्वकी सबसे विशाल प्रतिमा। भगवान् ऋषभदेवकी यह प्रति ८२ फुट ऊँची है। जनतामें यह 'बावनगजाजी' के नामसे प्रसिद्ध है।

६३. चूलगिरि—मुनिराज इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण आदि-के चरण। यहीसे उन्होंने मुक्ति प्राप्त की थी।

६४. तालनपुर—क्षेत्रका बाह्य दृश्य।

६५. पावागिरि—ग्वालेश्वर मन्दिर, समय १२वीं शताब्दी।

६६. पावागिरि—चौबारा डेरा नं. १, समय १२वीं शताब्दी।

६७. पावागिरि—धर्मशालाके मन्दिरमें मूलनायक भगवान् महावीरकी आकर्षक प्रतिमा। समय विक्रम संवत् १२५२।

६८. सिद्धवरकूट—क्षेत्रके मन्दिरोंकी एक झलक।

६९. सिद्धवरकूट—कावेरीके तटवर्ती जंगलमें प्राचीन मन्दिरोंके भग्नावशेषोंके मध्य ५ फुट ऊँची एक अलंकृत प्रतिमा। शीर्ष भागपर तीर्थंकर प्रतिमा है।

७०. बनेड़िया—क्षेत्रका विशाल प्रवेश-द्वार।

७१. बनेड़िया—मन्दिरकी एक वेदीका दृश्य।

चित्र
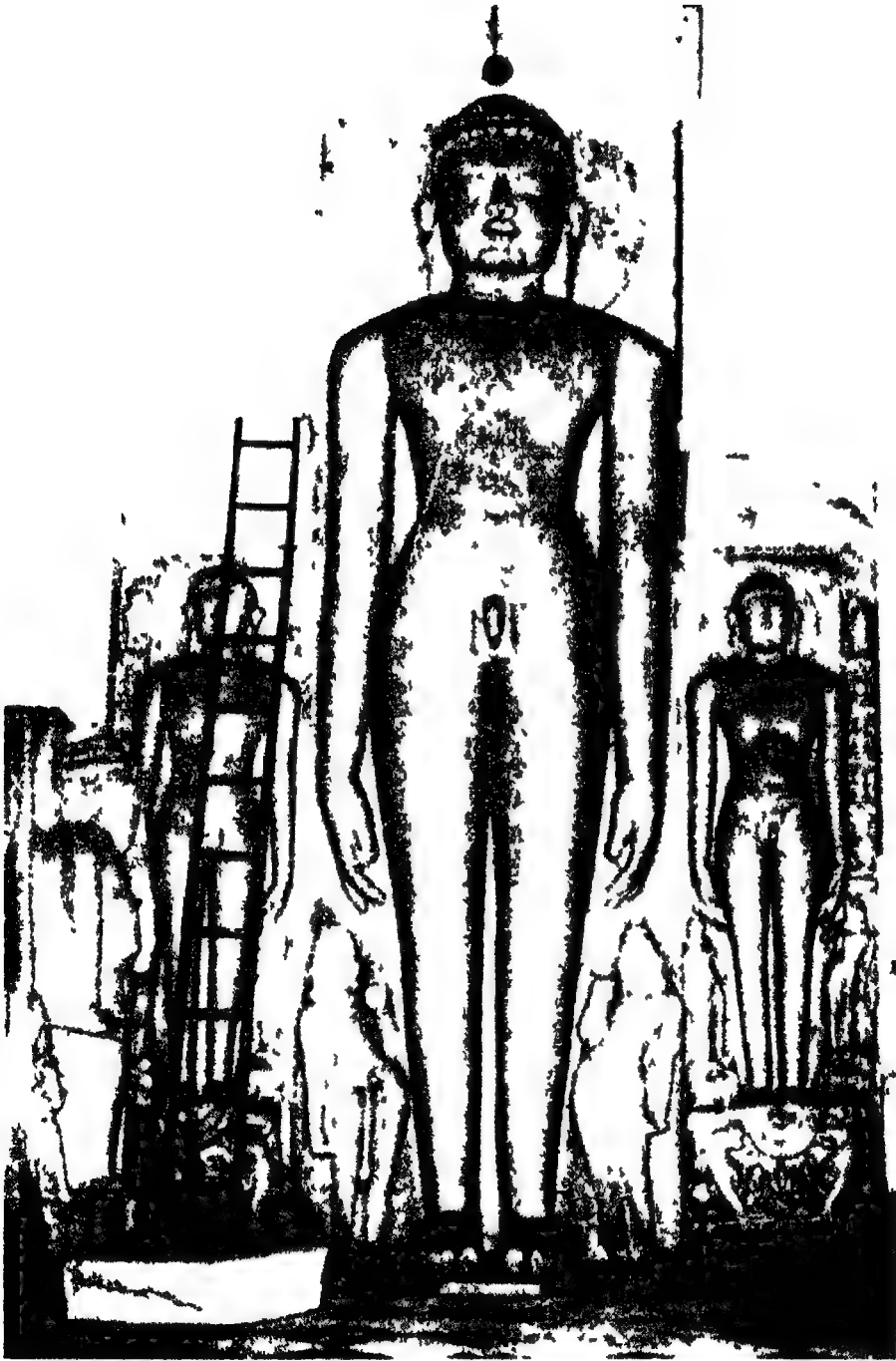
१. सिहोनिया—भगवान् शान्तिनाथकी १३ फुट उन्नत मूर्ति, भूगर्भसे प्राप्त। पार्श्वोंमें भगवान् कुन्थुनाथ और अमरनाथ। समय १०वी शताब्दी।
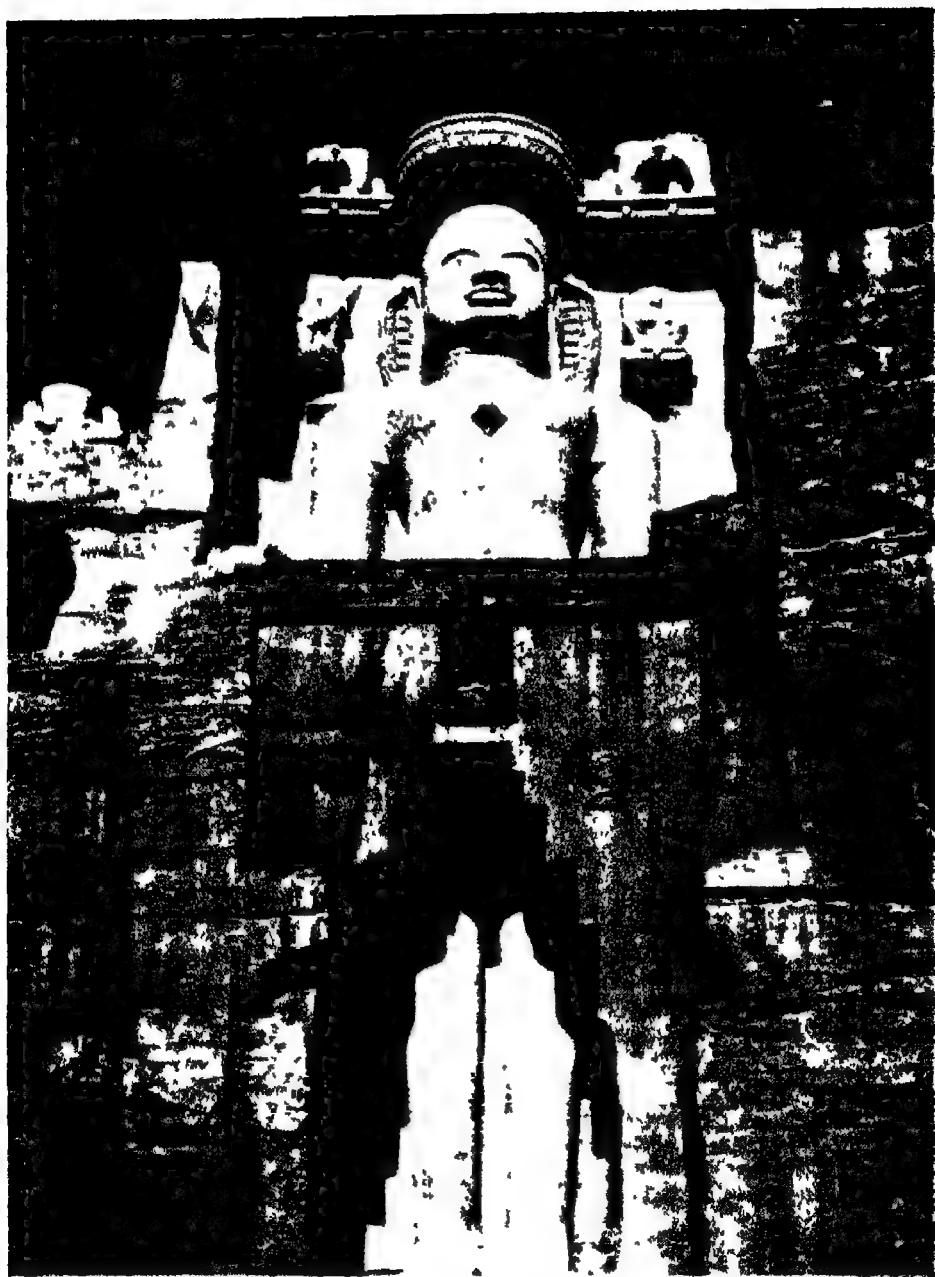
२. ग्वालियर—एक पत्थरकी बावड़ी (किले) में एक विशाल तीर्थंकर-मूर्ति ।

४. ग्वालियर—सरकारी संग्रहालय (गूजरी महल) में एक मध्यकालीन भव्य तीर्थंकर-मूर्ति
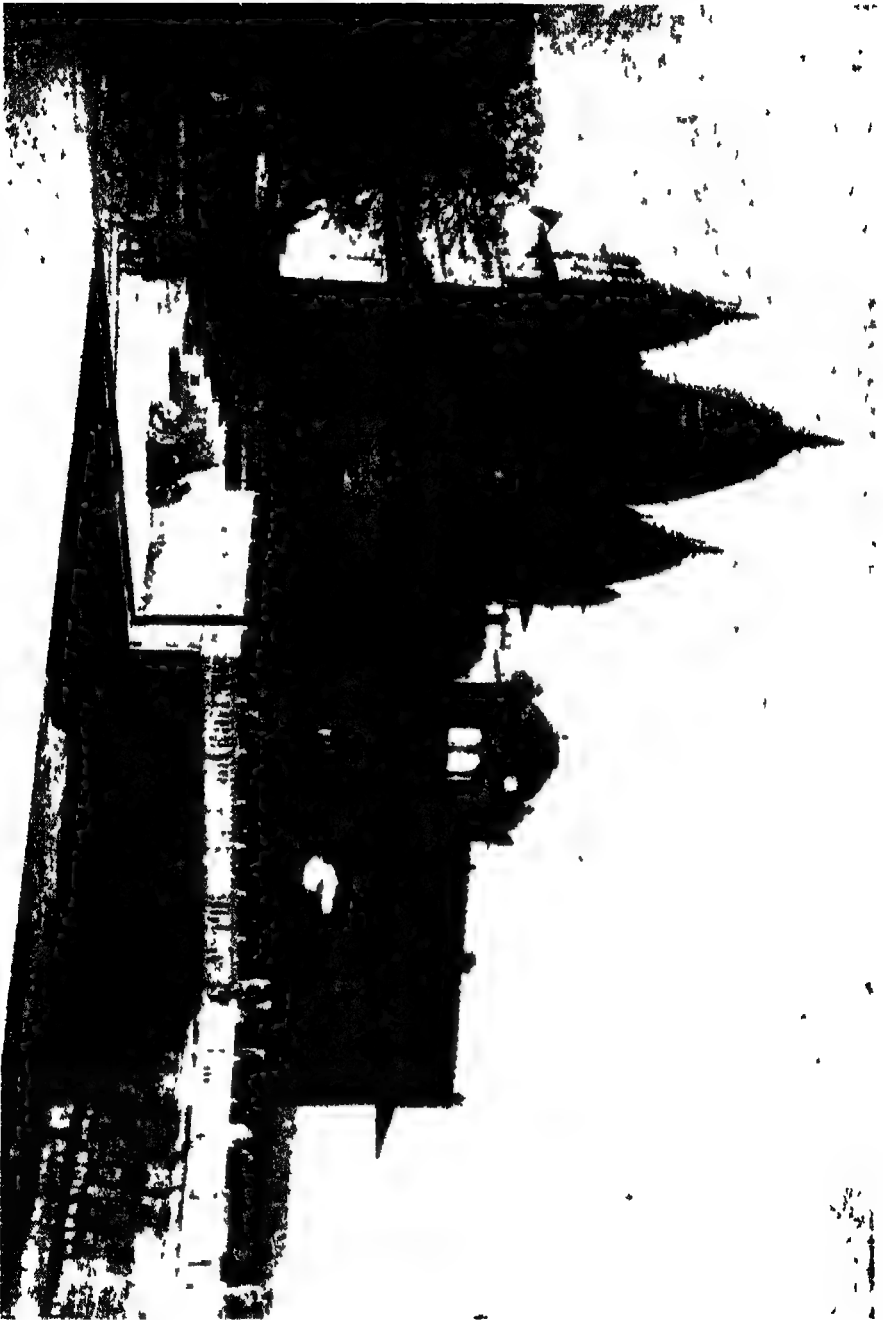
५. सोनागिरि—भगवान् चन्द्रप्रभका विख्यात मन्दिर।

६. सोनागिरि—भगवान् चन्द्रप्रभकी भव्य प्रतिमा।
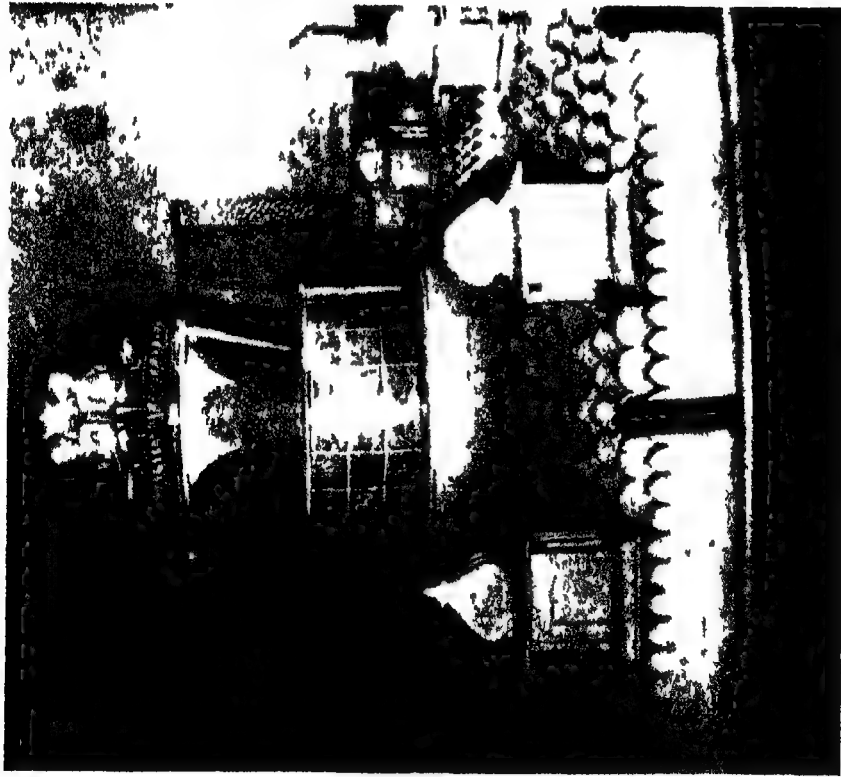
७. सोनागिरि—मन्दिर नं० ५७ के सामने समवसरण रचनाकी एक झाँकी ।
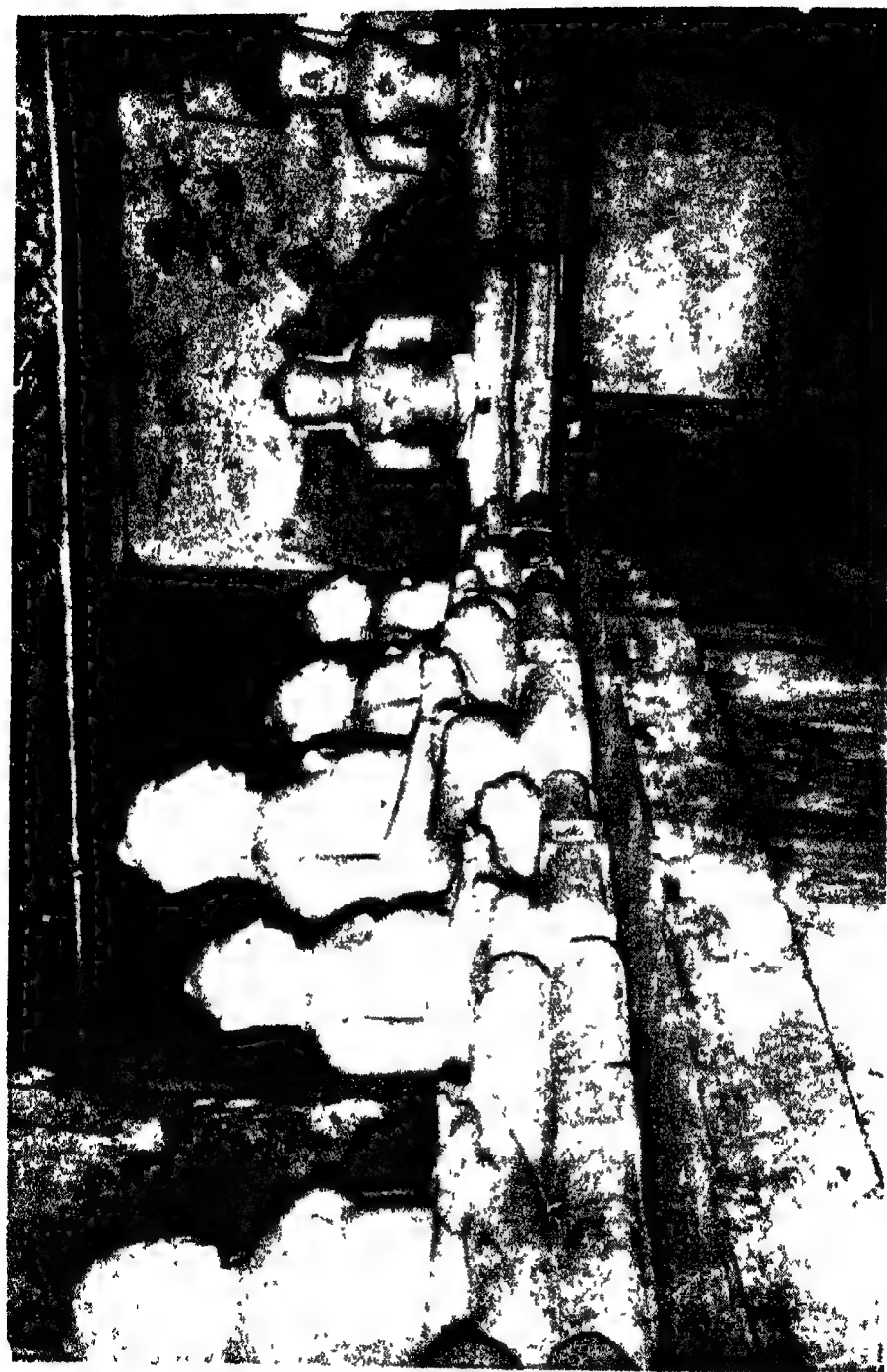
८. सोनागिरि—मनहरदेव (चैतनाथ) के शान्तिनाथ स्वामीकी १४ फुट उत्तुग खड्गासन मूर्ति ।

९. पनिहार—भोयरेमें अति मनोज्ञ तीर्थंकर-मूर्तियाँ।

१०. बरई—एक उपेक्षित प्राचीन जिनालयका कलापूर्ण प्रवेशद्वार।

११. गोलाकोट—एक मनोज्ञ तीर्थंकर प्रतिमा

१२. पचराई—जिनालयोंकी मनोहर झाँकी ।

१३. बजरंगढ़—क्षेत्रका बाह्य दृश्य ।

१४. बजरंगढ़—एक द्वार आकृतिमे चौबीसी। मध्यमें भगवान् नेमिनाथ।
समय १२वीं शताब्दी।

१५. थूबौन—मूलनायक भगवान् आदिनाथका मन्दिर (नं० १५)
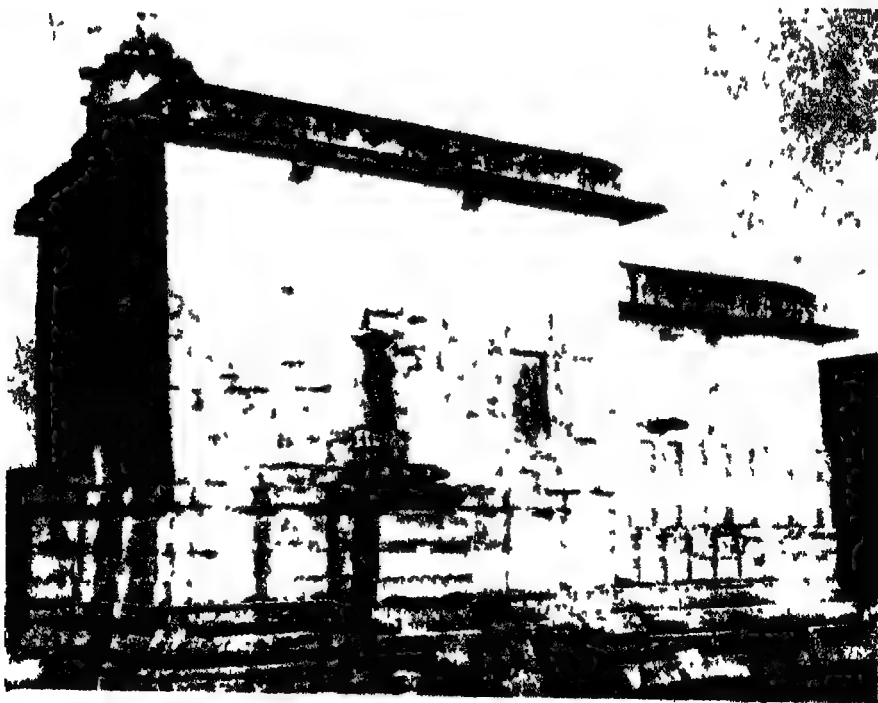
१६. थूबौन—पाड़ाशाह द्वारा निर्मित भगवान् शान्तिनाथका मन्दिर (नं० ५)
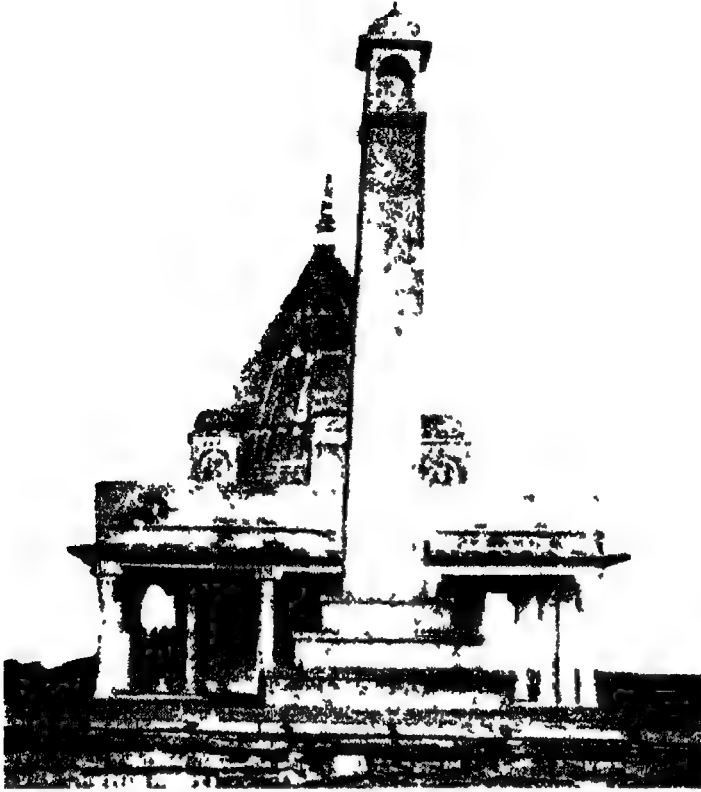
१७. थूबौन—भगवान् शान्तिनाथका मन्दिर (नं० २२) तथा सामने ३० फुट ऊँचा मानस्तम्भ।

१८. थूबौन—पुरानी थूबौनके जंगलमें एक भग्न जिनालय।

१९. चन्देरी—बूढ़ी चन्देरीसे प्राप्त भगवान् महावीरकी भव्य मूर्ति ।

२०. खन्दार—बाहुबली स्वामीकी एक अद्भुत प्रतिमा, जिसके ऊपर सर्प, छिपकली, चूहे आदिका अंकन करके अविचल ध्यान मुद्रा प्रदर्शित की है ।

२१. पपौरा—मुख्यद्वारके ऊपर निर्मित जिनालय जो रथाकार है।

२२. पपौरा—मन्दिरोंकी अद्भुत चौबीसी।

२३. अहार—भगवान् शान्तिनाथका विशाल मन्दिर ।

२४. अहार—भगवान् शान्तिनाथकी भव्य प्रतिमा।

२५. खजुराहो—पार्श्वनाथ मन्दिरका बाह्य दृश्य। इसका शिल्प-सौन्दर्य अनुपम है।

२६. खजुराहो—शान्तिनाथ मन्दिरमे भगवान्
शान्तिनाथकी विशाल खड्गासन प्रतिमा ।

२७. खजुराहो—शान्तिनाथ मन्दिरमें यक्ष-दम्पति ।

२८. खजुराहो—नृत्य करती हुई नीलांजना ।

२९. खजुराहो—काँटा निकालती हुई एक सुरसुन्दरीका मोहक रूप ।

३०. पन्ना—तीर्थंकर महावीर। समय—छठी शताब्दी।

३१. द्रोणगिरि—निर्वाण गुफा, जहाँसे मुनिराज गुरुदत्तको निर्वाण हुआ।

३२. द्रोणगिरि—पर्वतपर जिनालयोंका मनोरम दृश्य ।

३३. नैनागिरि—जल मन्दिरका मनोरम दृश्य।

३४. नैनागिरि—पर्वतपर अहातेके अन्दर बने हुए जिनालयोका भव्य दृश्य

३५. पजनारी—मूलनायक भगवान् शान्तिनाथ । उनके दोनो पार्श्वोंमें भगवान् कुन्थुनाथ और भगवान् अरनाथ ।

३६. बीना बारहा—भगवान् आदिनाथकी १२ फुट ऊँची पद्मासन प्रतिमा। यह ईंट-गारेसे निर्मित है।

३७. बीना बारहा—गन्धकुटी मन्दिर। मन्दिरमें पहुँचनेके लिए चारों दिशाओंमें सीढ़ियाँ बनी हुई हैं।

३८. पटनागंज—भगवान् महावीरकी साढ़े तेरह फुट उत्तुंग अतिशयसम्पन्न पद्मासन प्रतिमा। इन्हें 'बड़े देव' भी कहते हैं।

३९,४०. पटनागंज—पार्श्वनाथ तीर्थंकरकी सहस्र-फणावली युक्त दो अद्भुत मूर्तियाँ।

४१. कुण्डलपुर—भगवान् ऋषभदेवकी साढे बारह फुट ऊँची सातिशय पद्मासन प्रतिमा।
इसे 'बड़े बाबा' भी कहते है।

४२. कुण्डलपुर—बडे बाबाके पीठासनपर ऋषभदेवका यक्ष गोमुख।

४३. कुण्डलपुर—बड़े बाबाके पीठासनपर ऋषभदेवकी यक्षी चक्रेश्वरी।

४४. कुण्डलपुर—अन्तिम अननुबद्ध केवली श्रीधर स्वामीके चरण-चिह्न ।

४५ कुण्डलपुर—वर्धमानसागर (सरोवर) के तटपर स्थित जिनालयोंकी भव्य झांकी ।

४६. लखमादौन—भूगर्भसे प्राप्त भगवान् महावीरकी मध्यकालीन मनोज्ञ प्रतिमा

४७. मढ़िया (जबलपुर)—क्षेत्रका एक विहंगम दृश्य।

४८. कोनी—कलापूर्ण सहस्रकूट जिनालय।

४९. पनागर—भगवान् ऋषभदेवकी सातिशय प्रतिमा।

५०. बहोरीबन्द—शान्तिनाथ भगवान्की मूलनायक प्रतिमा। जनतामें यह 'खनुआदेव' के नामसे प्रसिद्ध है।

५१. उदयगिरि (विदिशा)—गुप्तकालीन गुहा-मन्दिर।

५२. उदयगिरि—गुफा नं० २० में दीवालपर गुप्तकालीन अभिलेख।

५१ पठारी—गडरमल मन्दिरका भव्य शिखर।

५४. पठारी—वन-मन्दिरकी भव्य झाँकी ।

५५. ग्यारसपुर—मालादेवीके विख्यात मन्दिरका बाह्य दृश्य ।

५६ ग्यारसपुर—वज्रमठकी कलापूर्ण शिखर-संयोजना ।

५७. ग्यारसपुर—वज्रमठमें एक वेदीपर प्राचीन तीर्थंकर मूर्तियाँ।

५८. मक्सी—मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथकी अतिशयसम्पन्न प्रतिमा ।

५९ उज्जैन–लकड़ीके एक चौकोर फ्रेममे पीतलकी ५४–५४ प्रतिमाएँ चारों दिशामे ।

६०. उज्जैन—भूगर्भसे प्राप्त एक फलकमे साधु परमेष्ठीकी प्रतिमाएँ हाथोमें कमण्डल-पीछी और माला है ।

६१. गन्धर्वपुरी—भगवान् ऋषभदेवकी १२ फुट ऊँची मूर्ति ।

६२. चूलगिरि—विश्वकी सबसे विशाल प्रतिमा। भगवान् ऋषभदेवकी यह प्रति ८२ फुट ऊँची है। जनतामें यह 'बावनगजाजी' के नामसे प्रसिद्ध है।

६३ चूलगिरि—मुनिराज इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण आदिके चरण। यहींसे उन्होंने मुक्ति प्राप्त की थी।

६४. पाजनपुर—क्षेत्रका बाह्य दृश्य।

६५. पावागिरि— ग्वालेश्वर मन्दिर, समय १२वीं शताब्दी।

६६. पावागिरि—चौबारा डेरा नं० १, समय १२वीं शताब्दी ।

६७. पावागिरि—धर्मशालाके मन्दिरमें मूलनायक भगवान् महावीरकी आकर्षक प्रतिमा। समय विक्रम संवत् १२५२।

६८. सिद्धवरकूट—क्षेत्रके मन्दिरोंकी एक झलक ।

६९. सिद्धवरकूट—कावेरीके तटवर्ती जंगलमें प्राचीन मन्दिरोंके भग्नावशेषोंके मध्य ५ फुट ऊँची एक अलंकृत प्रतिमा। शीर्ष भागपर तीर्थंकर प्रतिमा है।

७०. बनैड़िया—क्षेत्रका विशाल प्रवेश-द्वार

७१. बनैडिया—मन्दिरकी एक वेदीका दृश्य ।